बुद्ध कथा

[जन्म से परिनिर्वाण तक अग्र श्रावक-श्राविका
उपासक-उपासिकाओ के १८३ चरित]

⊙

लेखक

रघुनाथ सिंह

हिन्दी प्रचारक संस्थान
वाराणसी-१

श्रीमतां भरतवसुन्धरासमुन्नयनबद्धपरिकराणां

भारतवर्षोपप्रधानमन्त्रिणां

श्री मोरारजी देसाई महाभागानां

कृते

सादरसमर्पणम्

कथा-सूची

पुस्तक प्रयोजन :

दु ख—जन्म दु ख है। मृत्यु दु ख है। प्रिय से सयोग दु ख है। प्रिय से वियोग दु ख है। जीवन दु ख है। जगत् दु ख है। तथापि—दु ख मन्दिर शरीर को प्राणी ढोता रहता है। फेकता नही है। उसके विनाश की कल्पना से कॉप उठता है।

यह कल्पना दर्शनो की जननी है। यह कल्पना धर्मो की आधारशिला है। यह कल्पना नास्तिक और आस्तिकवाद की उद्भाविका है। यह कल्पना कभी थकती नही। कभी पुरानी नही होती। उषा की तरह चिर नूतन है। चिर प्रेरक है।

सृष्टि के आदि से प्राणियो ने इसे जानने का प्रयास किया है। प्रयास कर रहे है। करते जा रहे है। ज्ञान और विज्ञान उसमे लगा है। फिर भी अहर्निश सूर्य उगता है। शशिकला घटती-बढती है। महार्णव गरजता है। आँधी फुफकारती है। तुषारपात ठण्डा करता है। आतप को जलाता है।

प्रकृति प्राणियो के साथ खेलती है। यह खेल चाहे माया हो, चाहे ऋत हो, चाहे कर्म हो, किन्तु यह तथ्य है। शून्यवाद उसे शून्य नही बना सकेगा। मून्यवाद के होते भी मानवचिन्तन क्रम अबाध गति से जारी है। जारी रहेगा। इस जीवन का प्रयोजन क्या है?

किसी ने प्राणियो को क्यो बनाया है? किसी ने उन्हे क्यो बिगाडा है? कोई मिट्टी के खिलौने की तरह उनसे क्यो खेलता है? किसी को उन्हे तडपाने मे, उनकी वेदना मे, उन्हे बन्धनो से जकडने मे, पीडा मे, क्या रस मिलता है?

भीरु प्राणी ने अव्यक्त के इस भयकर भय के कारण रुद्र रूप की कल्पना की। सहारक शक्ति की कल्पना की। उसे प्रसन्न करने की कल्पना की। किन्तु—सब व्यर्थ। सहार जारी रहा। करुण क्रन्दन से उसका मन नही पसीजा। करोडो मन घृत आहुति मे जल गया। करोडो मन तिल-तण्डुल हवि बन गया। किन्तु उसे जरा भी दया नही आयी प्राणियो की करुण पुकार पर। उनकी करुण स्थिति पर।

भयाकुल प्राणी ने प्राणी के प्राण के बदले प्राण देकर प्राण खरीदने का प्रयत्न किया। लेकिन सब बेकार साबित हुआ। मर कर प्राणी लौटा नही। अपनी कहानी सुनाने नही आया।

दुर्वल सवल की वलि वन गया। लेकिन अग्नि ज्वाला वलि और वलिदाता दोनो को आत्मसात् करती रही। उसके इस निर्मम भस्म कार्य मे किंचित् मात्र भी अन्तर नही आया। अतएव, वुद्ध ने कहा—'यज्ञ व्यर्थ है। वलि व्यर्थ है। अव्यक्त शक्ति को प्रसन्न करने की कल्पना व्यर्थ है।'

आशावादियो ने रुद्र को प्रसन्न करना चाहा। उसे कल्याण रूप माना। उसे शिव कहा। उसे नृत्यमय, सगीतमय, उमगमय, उत्साहमय, उल्लासमय, आनन्द-मय समझा। समझ के अनुसार कार्य किया। तथापि प्राणियो की आँखें वन्द होती रही। उन्हे मारने से कोई रोक नही सका।

किसी ने उसे शिवयोगी कहा। योग का आश्रय लेकर शिव को प्रसन्न करना चाहा। अपने कर्म से, अपने योग से, जन्म मृत्यु के प्रपच से वचित रहने की कल्पना की। उसे क्लेश, कर्म विपाक, आशयहीन कहा। किन्तु योग जीवन की अवधि वढा नही सका। हाँ—शरीर स्वस्थ रख सका। शान्त रख सका। ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ दिला सका। लेकिन एक दिन आया। काल का ठण्डा स्पर्श प्राणियो को शीतल करने मे सकोच नही किया।

प्राणी घर वनाता है। घर विगाडता है। राज्य वनाता है। राज्य विगाडता है। शासन चलाता है। शासन विगाडता है। प्राणी ने समझा इसी प्रकार कोई वनाने विगाडनेवाला है। कोई इसी प्रकार शासन चलानेवाला है। कोई सार्वभौम सत्ता सम्पन्न एक राजा तुल्य जगत्-राज्य चलाता है।

उसने इस विचार को एक सज्ञा दी। उसे ईश्वर कहा। उसे कर्त्ता माना। उसे हर्ता माना। उसे सव कुछ माना। उसे उद्गम एव लय का केन्द्र माना।

उस पर विश्वास किया। जगत्-प्रपच का उसे उत्तरदायी ठहराया। जो कुछ होता है, उसकी इच्छा से, पत्ता खडकता है, उसकी इच्छा से। आदमी मरता है, उसकी इच्छा से। आदमी नाना प्रकार का कष्ट पाता है। रोता-रोता मर जाता है, उसकी इच्छा से। सव उसकी इच्छा पर निर्भर है। विश्वास को एक चरम सीमा तक पहुँचाया गया। किन्तु यह विश्वास भी प्राणी को सहार से—दुख से वचा नही सका।

इस विश्वास ने एक काम किया। निराशा एव असतोष मे सतोष का माध्यम अवश्य बन गया। भाग्यवाद का मार्ग प्रशस्त किया। सहायक हुआ प्राणी को अव्यक्त शक्ति का अक्रीत दास वनाने मे। उसे देव का मुखापेक्षी बनाने मे। उसको निष्क्रिय बनाने मे। अपने पर से विश्वास उठाने मे। उसे दैव का अत्यन्त विनम्र श्रद्धालु अन्धविश्वासी सेवक वनाने मे। वह ऐसा सेवक वन गया, जो कभी दासता से मुक्त

होने की कल्पना नही करता। वह स्वय भूखा रहकर, उसे खिलाने-पिलाने की कल्पना करने लगा। स्वय टूटी झोपडी मे रहकर, उसके लिए भव्य विशाल देवालय निर्माण की कल्पना करने लगा।

ईश्वर के प्रति इस अटूट विश्वास ने भी जगत् की विषमता, दु ख-सुख प्रपच रोकने मे असमर्थ रहा। मानव जगत् की समस्याओ, वेदनाओ, कष्टो, दुखो के उसी प्रकार शिकार होते रहे, जैसा एक विश्वास न करनेवाला, अतएव एक वर्ग उत्पन्न हुआ। उसने नवीन कल्पना की। यदि ईश्वर को न माने तो क्या हर्ज ?

कुछ नही बिगडा। विश्वासी-अविश्वासी एक साथ जीते रहे। एक जैसे मरते रहे। प्राकृतिक शक्तियाँ, भौतिक शक्तियाँ, अविश्वासी तथा विश्वासी दोनो के साथ समान व्यवहार करती रही। सूर्य दोनो को प्रकाश देता रहा। प्राण वायु दोनो को प्राण देती रही। जल दोनो की तृष्णा शान्त करता रहा। पृथ्वी दोनो का भार उठाती रही। वे एक जैसे मरते रहे। एक जैसे जलते रहे। एक जैसे गडते रहे। एक जैसे कष्ट उठाते रहे। एक जैसे वेदना किंवा सवेदना का अनुभव करते रहे।

हाँ—इस अन्धविश्वास ने धीरे-धीरे एक काम अवश्य किया। मनुष्य का विश्वास स्वय अपने ऊपर से उठ गया। वह कुसस्कार और रूढियो से जकड गया। उसके विश्वास ने उसका साथ त्याग दिया। विश्वास ईश्वर से चिपट गया।

परिणाम भयकर हुआ। ईश्वर के नाम पर, उसके विश्वास के नाम पर, प्राणियो का सहार प्राणी निस्सकोच करने लगे। हत्याएँ पुण्य कार्य हुई। ईश्वर की सन्तान, उसी की सन्तान को मारने मे गर्व करने लगा। सहार मे रुचि लेने लगी। प्राणियो को मारने, जलाने, नष्ट करने मे, प्राणियो मे ही परस्पर होड लग गयी। और रचना हुई इतिहास के अत्यन्त दु खमय रक्तिम अध्यायो की।

इन विश्वासवादियो का अजीव तमाशा हुआ। प्रत्येक -विश्वास का ईश्वर अलग बन गया। प्रत्येक विश्वास की आचार सहिता अलग बन गयी। बेचारा प्राणी उसमे बुरी तरह पिस उठा।

एक विश्वास का ईश्वर दूसरे विश्वास के ईश्वर से जैसे लड गया। प्रत्येक धर्म प्रवर्तक ने ईश्वर की मर्यादा सीमित कर दी। अलग बना ली। उसके नाम पर उचित-अनुचित, बुरा-भला सब कुछ होने लगा। मन्दिर टूटने लगे। उनकी रक्षा मे उसके नाम पर लोग मरने लगे। भग्न देव-स्थानो पर मस्जिदे बनने लगी। टूटता घर ईश्वर का था। बनता घर ईश्वर का था।

तलवार की धार पर लोग उतरने लगे। शिखा बन गयी दाढ़ी। धोती हो

गयी तहमत । उत्तरीय बन गया अंगरखा । कमला देवी बन गयी गुलबदन खातून और रामदास हो गये अजीज खाँ । मोहन-मल्ल बन गये रिचार्डसन । जनक बीबी हो गयी कैथरिन । शंख की जगह आवाज होने लगी अजान की और अजान की जगह बजने लगा चर्च का घण्टा । और घण्टा की जगह बजने लगी यहूदी की तुरही ।

मस्जिदें गिरी । गिरजे बने । जरूसलम को यहूदियो ने ईसाइयो ने मुसलमानो ने माना अपना घर । लगे उस घर मे झगड़ने । एक ही घर मे तीन ईश्वर नामधारी देव आ गये । यहूदी, ईसाई, मुसलमान, शताब्दियो तक ईश्वर के नाम पर इस घर के लिए लड़ते मरते रहे । शताब्दियाँ बीती । यहूदियो ने जरूसलम को अपने ईश्वर के नाम पर ले लिया ।

विचित्र बात थी । जरूसलम पहले यहूदियो के ईश्वर का घर बना । रोमनो ने उसे ईश्वर के नाम पर नष्ट किया । तत्पश्चात् ईसाइयो के ईश्वर का घर बना । अनन्तर मुसलमानो ने उसे अपने ईश्वर का घर बनाया । घड़ी की सूई घूमती फिर अपनी जगह आयी । यहूदियो ने उसे ले लिया । उनके ईश्वर का फिर वह घर बन गया ।

यह सब किया उन्होने जो थे, उसके पुजारी । उस पर विश्वास करनेवाले । उसके नाम पर सब कुछ न्योछावर करनेवाले । किन्तु एक बात सत्य थी । सर्वदा ईश्वर एक चतुर राजनीतिज्ञ की तरह प्रत्येक परिस्थिति मे प्रतिष्ठित रहा । उस पर आँच न आई । वह निर्विकार, जहाँ का तहाँ, पूर्ववत् बैठा रहा ।

विचित्र स्थिति थी । प्राणियो का पिता ईश्वर अपने सम्मुख अपने लडको को अपने नाम पर कट मरते देखता था । एक का दूसरे पर अनाचार देखता था । लेकिन वह जडवत् निरपेक्ष था । निष्क्रिय था । किसी को रोकता नही था । चुप था । किसी के काम मे हस्तक्षेप नही करता था । अपने सन्तानो को कोई निर्देश नही देता था । अपनी शक्ति का प्रयोग रक्तपात रोकने मे नही करता था । इस अराजकता मे भी वह जैसे प्रसन्न था । निर्विकार था ।

लाखो प्राणी घास-मूली की तरह युद्ध मे राज्य के अस्तित्व काल से कटते रहे । नगर का नगर सहार मे भस्म हो जाता था । एटम बम से हिरोशिमा-नागाशाकी नष्ट हो गये । उसमे रहनेवाले मनुष्य ईश्वर की पूजा करते थे । उसका नाम लेकर सोते थे । उसका नाम लेकर जागते थे । उसके नाम की माला जपते थे । तथापि अगणित पापहीन, निर्दोष प्राणी, अमानुषिक क्रूरता के शिकार हुए । लेकिन ईश्वर ने यह तबाही देखनी पसन्द की । इस सहार का वह मूक द्रष्टा था

बात और है । उसने एक ओर प्राणी बनाया । दूसरी तरफ प्राणियो के सहार

के लिए भूकम्प, जल-प्लावन, तुपारपात, अग्निदाहादि सामग्रियाँ उपस्थित कर दी। मासूम पशुओ को मारने के लिए उसने शेर बनाया। प्राणी का आहार प्राणी वन गया। सवल का दुर्वल आहार हो गया। पिता परमेश्वर का अपने वच्चो के प्रति यह था, अद्भुत वात्सल्य।

विचित्र वात थी। उस पर अन्धविश्वास करनेवाले कहने लगे। सफाई देने लगे। पूर्वजन्म का फल है। भाग्य है। अपने किये का लोग फल भोगते है। सब कुछ पूर्व निश्चित है। यदि सब कुछ पूर्व जन्म के फल का परिणाम है। भाग्य का खेल है। सब कुछ पहले से निश्चित है तो प्रश्न उठता है। काम करने की क्या जरूरत? हाथ-पैर डुलाने की क्या जरूरत? सब कुछ जैसा होनेवाला है होता ही रहेगा, तो कौन पूर्वापर की चिन्ता करे? यह था, एक चरम भाग्यवादी विचार। प्रश्न उपस्थित होता है। क्या वह जडता की ओर प्राणियो को नही ले जाती?

उलझनो से ऊबकर कोई वैराग्य लेता है। कोई अतीव दु ख से पीडित होकर वैराग्य लेता है। कोई नैराश्य की तीव्रता मे वैराग्य लेता है। कोई जगत् से घवडाकर वैराग्य लेता है। कोई दुनिया से दूर किसी गुफा मे, किसी नदी-तट पर, किसी वन मे, चुपचाप पडा रहता है। दुनिया से अपने को अलग खीच लेता है। दिनो को गिनता रहता है। चिन्तन करता रहता है। जीवन अध्याय बन्द होने की बाट जोहता है। उसी तरह जोहता है, उसी तरह चिन्तन करता है, उसी तरह दिन गिनता है, फाँसी घर मे बैठा एक कैदी।

दोनो चिन्तनो मे किंचित् अन्तर है। एक स्वत उस दिन का चिन्तन करता है, बाट जोहता है, दिन गिनता है। और दूसरा मजबूर होकर। अवसान को अवश्यम्भावी जानकर, मनुष्य की अन्तिम भयकर गति देखकर, जगत् की निस्सारता अनुभव कर, विरक्त होता है। सन्त नाम धारण कर बैठता है। निरन्तर उस दिन की चिन्ता करता है। जब उसे यह जगत् त्यागकर जाना है। वह इस दिन का दु ख मिश्रित प्रसन्नता के साथ स्वागत करता है। इस आशा मे, यहाँ के पश्चात्, यहाँ की तपस्या, शारीरिक कष्ट सहन, मानसिक सतुलन के परिणामस्वरूप मुक्ति मिलेगी। वह परमात्मा मे सायुज्यता प्राप्त कर अमित शक्तिशाली परमात्मामय हो जायगा। अथवा स्वर्ग मे देवोपम सुख प्राप्त करेगा। अथवा जगत् के भोगो को त्यागने के कारण परलोक मे अलभ्य भोग प्राप्त करेगा।

इन सब धारणाओ, इन सब मान्यताओ मे जकडे प्राणियो के बीच, एक पुरुष आया। ढाई हजार वर्ष पूर्व आया। कपिलवस्तु मे जन्म लिया। इक्ष्वाकुवशीय

शाक्य राजपुत्र था। उसने राजसुख मे वय प्राप्त किया। एक समय देखा—जरा। एक समय देखा—व्याधि। एक समय देखा—मृत्यु। एक ओर उसने पीडित दुखी नरककाल देखा। दूसरी ओर कंकाल पर चढे मास, मज्जा, रक्त से बने, उमगमय यौवन सौंदर्य को देखा। उसके मन मे प्रश्न उठा। एक ही शरीर का यह विरोधी दर्शन कैसा? एक ही शरीर का यह दुखी और सुखी रूप कैसा? वह विचारशील हुआ।

उसने अपने समय मे देखा। नग्न साधु नामधारी परिव्राजक समाज को। उसने देखा—जटाजूटधारी जटिलो को। उसने देखा—कष्टकर तपस्या मे रत प्राणियो को। वे बिना घर-बार के थे। घूम रहे थे। अन्तिम दिन की जोह मे। उन्हे महात्मा नाम मिला था। साधु नाम मिला था। समाज उन्हे खिलाता था। पिलाता था। उनकी सेवा करता था।

वे मस्त थे। उत्तरदायित्वहीन थे। कर्महीन थे। समाज के किसी उत्पादन, नियोजन, संवर्धन में उनका हाथ नही था। वे समझते थे। यहाँ का त्याग स्वर्ग के सुख का साधन है। फिर भी समाज उन्हे अपना भार नही मानता था। वे स्वय अपने को समाज पर भार नही मानते थे। समाज उनका आदर करता था। वे समाज का आदर नही करते थे। समाज उनके लिए अपने को उत्तरदायी मानता था। परन्तु वे समाज के लिए उत्तरदायी नही थे।

उनसे पूछा गया—वे जो चाहते थे पाये? उत्तर मिला नही। उनसे पूछा गया—कितने उनकी तरह रहनेवाले स्वर्ग पहुँचे? उत्तर मिला—नही बता सकते। उनसे पूछा गया—स्वर्ग पहुँचनेवालो ने क्या कभी कोई सन्देशा भेजा? वे वहाँ कैसे है? उन्हे वहाँ क्या मिला—नही।

उस पुरुष ने देखा—निर्ग्रन्थो को। किसी ग्रन्थ पर विश्वास न करनेवालो को। वे किसी ग्रन्थ के साथ पैदा नही हुए थे। उनके गले मे कोई ग्रन्थ बाँध कर, किसी ने उन्हे भेजा नही था। अतएव वे बन गये निर्ग्रन्थ।

उनकी वेद पर आस्था कैसे होती? शास्त्र पर आस्था कैसे होती? वे आकाश से धूमकेतु तुल्य गिरे नही थे। उल्कापात की तरह दूसरे लोक से आये नही थे। वे लिखे गये थे। उनके जैसे मानवो द्वारा मानव कृत थे। केवल मानव अनुभूतियो, विचारो के सग्रह थे। उन पर विश्वास कैसे करते? बात ठीक थी। मानव अपने जैसे मानव पर कैसे विश्वास करता? कल्पो से चिन्त्य ईश्वर प्रत्यक्ष दिखायी नही दिया। वह शब्द प्रमाण का विषय था। वह केवल अनुमान का विषय था। अपनी

भावना का प्रतीक था। अस्तु भगवान् का अस्तित्व मानने के लिए वे उत्सुक नही हुए।

उस पुरुप ने देखा इस लोक मे परलोक की कल्पना करनेवालो को। इस जीवन मे सब कुछ देकर दूसरे जीवन मे पानेवालो की लम्बी पक्ति को। दिशाओ की पूजा कर, दिशाओ को प्रसन्न करनेवालो को। किन्तु दिशाएँ सहायक न हुई। कुछ वोल न सकी।

दिशाहीन एक मत उठा। आकाश छोरहीन है। आकाश दिशाहीन है। सीमा हीन है। ईश्वर ही चिदाकाश है। वह आकाश तुल्य है। मनुष्य चित्ताकाश है। यह जगत् भूताकाश मे स्थित है। लेकिन यह चिदाकाश, चित्ताकाश, भूताकाश केवल कल्पना वनकर रह गये। जन्म, मृत्यु, दु ख, कष्ट, उत्पत्ति, स्थिति, लय से प्राणियो को वचा नही सके।

अर्घ का जल नदी मे गिरकर नदी जल मे अस्तित्व खो वैठा। भूमि पर गिरा जल विन्दु सूख गया। कोई दिशाओ को स्पर्श नही कर सका। कोई दिशाओ को पार नही कर सका। कोई आकाश को स्पर्श नही कर सका। उसमे मिल नही सका। आकाश सहायक नही हो सका।

उस पुरुष ने देखा। वृक्षो पर पक्षियो की तरह घोसलो मे रहते मनुष्यो को। शाखो से लटके मनुष्यो को। शाखो से उलटे झूलते मनुष्यो को। पच अग्नि के सम्मुख वैठकर शरीर सुखानेवाले मनुष्यो को। अपने शरीर को नाना प्रकार की कष्ट साध्य तपस्या मे पीडित करनेवाले मनुष्यो को। इस आशा मे, यहाँ कष्ट उठाने पर उन्हे कही और सुख मिलेगा। लेकिन कोई परलोक जाकर अपनी कहानी सुनाने नही आया।

इस परलोक की भी विचित्र छिछालेदर की गयी। यहूदियो का परलोक एक तरह का, ईसाइयो का परलोक एक दूसरी तरह का, पारसियो का तीसरी तरह का, मुसलमानो का चौथी तरह का और हिन्दुओ मे शैव, वैष्णव, शक्ति आदि सभी सम्प्रदायो का परलोक भिन्न-भिन्न रूप, आकार-प्रकार तथा प्रसाधनो से युक्त माना गया। किसी एक सम्प्रदाय के स्वर्ग का रूप, किसी दूसरे सम्प्रदाय के पर-लोक के रूप से, मेल नही खा सका।

सवने अपने स्वर्ग को, अपने परलोक को सत्य माना। यही उनका विश्वास था। सव धर्मो ने स्वर्ग, परलोक अलग-अलग माना। यह स्वाभाविक था। उनके भावना की कल्पना यदि अलग-अलग थी तो स्वर्ग, परलोक भी अलग होना चाहिए था।

इस जगत् में ईश्वर के नाम पर, उसके रूप पर, अनन्त काल से विवाद चलता आ रहा है। यही दुर्दशा बेचारे परलोक और स्वर्ग की हुई। वे भी विवाद का विषय बन गये प्रमाणित होता है। स्वर्ग कोई देखकर नही लौटा है। भगवान् को भी कोई देखकर नही लौटा है। यदि भगवान् एक होता, स्वर्ग एक होता, परलोक एक होता तो उसके सत्य रूप देखने का दावा करनेवाले एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न रूप एव परस्पर विरोधी वर्णन न करते।

भगवान् का रूप कैसा है?—पता नही। उसे किसी ने देखा है या नही? —पता नही। परन्तु प्रत्येक विश्वासी जो विश्वास पैदा करने का दावा करता है, अपने वर्णन की यथार्थता का दावा करता है, वह अपनी कल्पनानुसार ईश्वर के रूप का वर्णन करता है। कोई उसे मनुष्याकार मानता है। कोई उसे पश्वाकार मानता है। कोई उसे पशु और मनुष्य दोनो की मिश्रित आकृति मानता है। कोई उसे दो हाथ वाला मानता है। कोई उसे चार हाथो वाला मानता है। कोई उसे दाढी मूँछ वाला मानता है। कोई दाढी-मूँछ विहीन मानता है। कोई केवल दाढी या केवल मूँछ वाला मानता है।

मनुष्य ने कल्पना की। ईश्वर का मनुष्य जैसा आकार है। मनुष्याकार उसकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित होने लगी। यदि वह मनुष्याकार है। मनुष्य जैसा है तो उसका आचरण भी मनुष्य जैसा होना चाहिए। अस्तु—ईश्वर के काल्पनिक मूर्ति की सेवा, मनुष्य जैसी होने लगी। मूर्ति को प्रतीक मानकर, जगाने के लिए जागरण आरती होने लगी। स्नान कराया जाने लगा। प्रात कलेवा करने के लिए स्वादिष्ठ पदार्थ उसके सम्मुख रखे जाने लगे। मध्याह्न मे भोजन के लिए छप्पन प्रकार के पदार्थ बनाये गये। मध्याह्न आरती के साथ उसके सम्मुख रखे जाने लगे।

तत्पश्चात् वह मनुष्य जैसा विश्राम करने लगा। मन्दिर का द्वार बन्द हो जाता। वह एकान्त मे विश्राम करता।

सन्ध्या पूर्व उसे उठाया जाता। पट खुलता। दर्शन होता। राज-दरबार की तरह दरबार लगता। सगीतज्ञ उसे सगीत सुनाते। नर्तक नृत्य करते। नाना वाद्यो, नाना गीतो से उसे रिझाने का प्रयास किया जाता। सध्या समय उसकी पुन आरती उतारी जाती।

अन्त मे उसकी अनेक भोज्य पदार्थों से पूजा की जाती। शयन आरती होती। आरती के पश्चात् स्वर्ण, रजत या अन्य सुन्दर पलग पर गद्दा-तकिया लग जाता। मसहरी तन जाती। वह मनुष्य जैसा रात्रि मे विश्राम करने लगा।

मनुष्य ने उसे अपने जैसा समझा । अपने जैसा, मूर्ति के साथ वह सब व्यवहार किया । इसलिये किया कि, अव्यक्त शक्ति उस पर प्रसन्न होकर, उसके लौकिक तथा पारलौकिक जीवन को सुखमय कर दे ।

सेवक तथा स्वामी के भाव के पश्चात् एक मत उसे सखा रूप माना । वे सखा बन गये । वह एकागी भाव था । अस्तु—कुछ लोग उसके सखी बन गये । वे ईश्वर की सखी हुए ।

अपने सुख की कल्पना के अनुसार, उस अव्यक्त शक्ति को प्रसन्न कर, उससे सुख प्राप्ति की कामना के अभिप्राय से, नाना प्रकार के मत-मतान्तरो तथा सम्प्रदायो की स्थापना हुई । अग-भग भी ईश्वर को प्रसन्न करने का साधन बन गया । किसी ते कान कटवा लिया । कोई शिश्न का चमडा कटाने लगा । कहा गया—ईश्वर की दया उसकी कृपा तब तक नही हो सकती थी, जब तक ये सब न कर दिये जायँ । इस जगत् मे यहूदी और मुसलमान शिश्न कटाने लगे। उन्होने विश्वास किया । इस प्रकार ईश्वर का प्रसाद प्राप्त करेगे ।

इस मत के भी विरोधी हो गये । वे ईसाई थे । शिश्न न कटानेवाले अन्य मतावलम्बी थे । उन्होने कहा । यदि भगवान् को यह प्रथा स्वीकार थी तो उसने अपने अन्य दूतो, अपने अन्य सदेश वाहको और अपने नाम पर चिल्लाने वालो से इस प्रथा का समर्थन क्यो नही कराया ? उसने ऐसा शिश्न ही क्यो बनाया जिसे मनुष्य को काटने की आवश्यकता पडती ?

कोई मतावलम्बी, कोई विश्वासी, कोई उसे देखने का दावा करनेवाले, उसका इस प्रकार वर्णन करते है, जो एक-दूसरे से मिलता नही । यही अवस्था ईश्वर के वर्ण की है । कोई उसे श्याम, कोई उसे गौर, कोई उसे हेम वर्ण मानता है ।

वास्तव मे यदि वह एक है। तो समझ मे नही आता । उसके देखने का दावा करनेवाले, उसके भिन्न रूपो, आकारो एव वर्णो का परस्पर विरोधी वर्णन किस प्रकार करते है ? यदि सबकी बात अपने स्थान पर सत्य है, तो वह एक नही अनेक है ।

इन सब उलझनो से बचने के लिए, इसका स्पष्टीकरण देने के लिए ईश्वरवादियो के एक मत ने कहा—वह निराकार है । निर्गुण ।

यह एक ऐसा मार्ग था । जो कम से कम विवादास्पद था । प्रश्न उपस्थित होता है । यदि वह निर्गुण है । निराकार है । तो वह गुणग्राही, गुणप्रद तथा आकार प्रदान करने मे कैसे समर्थ होगा ?

इसका भी स्पष्टीकरण किया गया । उसका उत्तर दिया गया । एक मत ने

कहा—हमी ब्रह्म है। किसी दूसरे को ब्रह्म मानने की क्या आवश्यकता ? दूसरो को मानने की अपेक्षा अपने को ही क्यो न ईश्वर किवा उसका अश अथवा उसका रूप मानकर, समस्या का निराकरण किया जाय।

अद्वैतवाद के सिद्धान्त के विरुद्ध द्वैतवाद खडा हो गया। उसके भक्ति, विश्वास तथा श्रद्धा मे ठेस लगी। वह प्रबल विरोधी इस मत का हो गया कि हमी ब्रह्म है।

ईश्वर के रूप, आचरण, अनुशासन, व्यवहार, गुणादि के विपय मे अत्यधिक लिखा गया है। अत्यधिक चिन्तन किया गया है। यदि ईश्वर सबको जानता है। समझता है। अपने चिन्तन और न चिन्तन करनेवालो की क्षण-क्षण के क्रियाकलाप, जीवन पर दृष्टि रखता है, तो न जाने वह किस प्रतिभा का होगा ?

इस सबसे परेशान होकर लोग कह उठे — वह अनन्त रूप, अनन्त गुण, अनन्त पाद, हस्त, नेत्रादि युक्त है। एक चरम सीमा पर पहुँचकर लोग चिल्ला उठे— वह विश्व के कण-कण मे है। वह सर्वत्र व्याप्त है। उसी का सब रूप है। ईश्वर अपनी भावनानुसार, कल्पनानुसार होता है। शरीर उसका मन्दिर है। उसमे बोलनेवाला ईश्वर है। कही दूसरी जगह उसे खोजने की आवश्यकता नही है।

ईश्वर होने का दावा करनेवाले लोग पैदा हुए। जगत् मे आये। उसके सन्देहवाहक रूप मे पैदा हुए। उसके दूत रूप मे पैदा हुए। वे चाहे अवतार बनकर आये, सन्देहवाहक अथवा दूत बनकर आये, सब मनुष्य की तरह मरे। उनकी मृत्यु किसी दूसरे प्रकार से नही हुई। उन्होने शरीर छोडा, साधारण प्राणी की तरह। शरीर छोडकर के पुन नही आये। इस समय न जाने कहाँ रह रहे है ? कैसे है ? कुछ बताने की कृपा न की।

ईश्वर के यहाँ पहुँच होनेवाले वर्ग का विकास हुआ। वे पुरोहित कहलाये। पंडित कहलाये। पादरी कहलाये। मुल्ला कहलाये। कर्मकाण्डी कहलाये। ज्योतिषी कहलाये। पूजा-पाठ करनेवाले कहलाये। इतने अधिक माध्यम उत्पन्न हो गये कि उनका एक शोषक वर्ग बन गया। साधारण जनता का शोपण होने लगा।

उसके नाम पर पूजा-पाठ होने लगा। कोई बीमार हुआ। पाठ बैठ गया। कोई काम पड गया। पाठ-पूजा आरम्भ हो गयी। मन्नत मानी जाने लगी। मन्नतो का प्रसाद भगवान् नही खा सका। जड मूर्तियाँ, जड समाधियाँ नही खा सकी। उनके नाम पर एक वर्ग खाने लगा। यह उनका पेशा बन गया। इन्सोरेंस एजेन्ट की तरह, किसी दवा के एजेन्ट की तरह यह वर्ग बन गया। ईश्वर का, देवी-देवताओ का, महान् प्रचारक हो गया। चाहे देवी-देवता हो या नही। चाहे उनकी बातें सुनते हो या नही। परन्तु वे जीवित जाग्रत मनुष्य थे। उनको पेट भरना

था। वे समाज पर लद गये। गरीव जनता का शोपण करने लगे। पूँजीपति कुछ कुछ देकर शोपण करता है। परन्तु इस वर्ग ने किसी को कुछ दिया नही। वह शुद्ध शोषक था। पूँजीपति से भी भयकर।

उसे शक्ति रूप माननेवालो का एक वर्ग खडा हो गया। इस जगत् की कोई चालक शक्ति है। वह शक्ति सव कुछ चलाती है। उस शक्ति के अनेक रूप है। अनेक प्रकार शक्ति को प्रसन्न करने का प्रयास किया गया। शक्ति के नाम पर अगणित पशु वलि चढा दिये गये। नर वलि सर्वश्रेष्ठ समझी गयी। नर वलि दी जाने लगी। मनुष्य जवर्दस्ती वलि किये जाने लगे। पशु की तरह खरीदकर वलि किये जाने लगे। इसकी चरम सीमा उस समय हो गयी। जव कितने उग्रउन्मादी विश्वासी स्वय अपना मस्तक काटकर शक्ति के चरणो पर रखने लगे।

उस शक्ति के नाम पर पच मकारो की कल्पना की गयी। मद्य, मास, मत्स्य, मैथुन, मुद्रा का सेवन देवी के नाम पर चल पडा। देवी का प्रसाद वन गया मदिरा, मास, मत्स्य। मनुष्य उस अव्यक्त शक्ति को प्रसन्न करने के चक्कर मे वन गया मासाहारी। बन गया मद्यप। बन गया मैथुन का दास।

जीवित नर बन गया कापालिक। हाथ मे लिये मृत कपाल। मनुष्य की खोपडी बन गयी, उसका पान पात्र। उसे अपने कपाल जैसी खोखली खोपडी स्वर्ण पात्र, रजत पात्र, धातु पात्र, मृत्तिका पात्र के स्थान पर पसन्द आयी। वह खोपडी जगाने लगा। स्मशान जगाने लगा। किन्तु मृत्यु आयी। उसकी खोपडी वन गयी दूसरे कापालिक का भिक्षा-पात्र।

हाथ मे खोपडी, त्रिशूल, जटाजूटधारी, नग्न, अर्धनग्न, स्मशान मे घूमने वाले कापालिको से भी एक मत और उग्रता की ओर वढा। वे थे औघड। वे स्मशान की अग्नि, स्मशान की लकडी, स्मशान का वस्त्र तथा स्मशान का मास भक्षण करने लगे। उनका भात चिता की अग्नि पर पकने लगा। उनकी रोटी चिता के अगारो पर फूलने लगी। उन्होने जगत् ईश्वर कृत माना। अग्नि को एक ही अग्नि का अनेक रूप माना।

सब कुछ ईश्वर कृत है। तो वे भी ईश्वर कृत है। उनके लिए जगत् की कोई वस्तु त्याज्य-अत्याज्य, कोई वस्तु अस्पृश्य तथा कोई वस्तु घृणित नही रह गयी। स्मशान मे भस्म होते मनुष्य का भुनता मास भी उतना ही अच्छा खाद्य पदार्थ था। जैसा अन्य स्वादिष्ठ भोजन।

विष्ठादि भी खाद्य पदार्थ वन गये। कोई वस्तु त्याज्य नही रह गयी। वे किसे

जगत् मे अपना कहकर अपनाते या त्यागते । जगत् की सब वस्तुएँ उन्ही जैसी ईश्वर कृत थी । उनमे किसी से घृणा का अर्थ उसके बनाने वाले से घृणा करना था । जिसने उन्हे बनाया था । बनानेवाला दोषी हो सकता था । वह घृणित हो सकता था । जगत् के बेचारे बने पदार्थो किंवा प्राणियो का उसमे क्या दोष था । वे ईश्वर कृत थे । ईश्वर कृत जगत् मे स्थित थे । वे स्वत. घृणापात्र नही थे । अखाद्य नही थे । अस्पृश्य नही थे ।

वे सर्वभक्षी हो गये । सर्वपेयी हो गये । भक्ष्याभक्ष्य मे, पेयापेय मे कोई भेद नही रह गया । यह थी समता की, समदर्शिता की चरम सीमा । किन्तु इस स्मशान प्रेम ने, इस समता ने, इस सम दृष्टि ने उन्हे मरने से विमुख नही किया । वे भी एक दिन मरे । उसी स्मशान मे, उसी तरह फूँके गये, जिस प्रकार एक साधारण व्यक्ति फूँका गया था । स्मशान अपनी पूजा के कारण, अपनी भक्ति के कारण उन पर दया न कर सका । उनका भी मास खाने लगे उनके ही जैसे विचार वाले । आगे बढे । जिसकी शायद अपने जीवन मे, अपने चमत्कार, अपनी पवित्रता की भावना, उन्होने कल्पना न की थी ।

चाहे यह कितना भी आदर्शवादी ईश्वरीय समता का सिद्धान्त क्यो न हो, उसने भी जीर्णावस्था प्राप्त की । वह भी रूढ हो गया । वह भी मनुष्यो के माँग का साधन बन गया । फकीरी का बाना बन गया । उन्होने भी एक वर्ग उत्पन्न किया । वह उठाने लगा । दुर्बल मनुष्यो को दुर्बलता का लाभ । वे भी बन गये, ईश्वर के एक माध्यम ।

भोगवाद के विरुद्ध एक दूसरी चरम सीमा पर पहुँच गया वैराग्य । जगत् मिथ्या है । नारी माया है । इस जगत् मे, इसके भोगो मे पडे रहना व्यर्थ है । भोग का अन्त नही है । नारी सुख का अन्त नही है ।

इस वैराग्य ने एक विशाल जन-समूह भारत मे उत्पन्न कर दिया । कुछ इतने उग्र हो गये कि उन्होने अपने शिश्न तक कटा दिये । न शिश्न रहेगा और न काम-वासना उत्पन्न होगी, और न होगी नारी की आवश्यकता । जबर्दस्ती इन्द्रिय निग्रह का रूप उन लोगो ने निकाल लिया, जो स्वत इन्द्रिय निग्रह नही कर सकते थे । जिनका अधिकार अपनी इन्द्रियो पर नही था ।

प्रकृति कृत शिश्न को कटाकर, प्रजनन कार्य से विरत होने वाले इन पुरुषो से कोई यह न पूछ सका ? क्या नारी उनके अस्तित्व का कारण नही थी ?

इन वैरागियो ने घर-बार त्याग कर धूनी रमाया । नागा बाबा बन गये ।

भगवान् की पूजा करते रहे । किन्तु उनका भगवान् जैसे एकागी हो गया । उस भगवान् की सृष्टि मे माता का स्थान नही था । नारी का स्थान नही था ।

इन विरक्तो, वैरागियो, भोग्य पदार्थों के त्यागियो, स्त्री से दूर भागने वालो के विपरीत दिशा वाला एक समुदाय और था । वह था भोगवादियो का वर्ग । वह था नास्तिकवादियो का लोकायत दर्शन । उन्होने ईश्वर की सत्ता अस्वीकार की । उन्होने परलोक स्वर्ग, नरक आदि को मिथ्या माना । सबको प्रतिक्रियावादी विचार माना । वे हो गये पूर्ण भोगवादी । भौतिकवादी । अध्यात्म, देवी-देवता एव ईश्वर की कल्पना उनके लिए हास्यास्पद थी । उनके मत मे ऋण लेकर, घृत पीना उचित था । यावत् जीवन सुख चैन से रहना उचित था । यह शरीर भस्म हो जाता है । इस शरीर के पश्चात् पुनरागमन कहाँ ?

यह शरीर भस्म हो गया । उसका अन्त हो गया । शरीर भस्म से पुन शरीर बनकर नही लौटता । अस्तु, यह जीवन ही सुख का अन्त है । इस जीवन के पश्चात् सुख, दु ख, पाप, पुण्य, दण्ड एव प्रसाद की कल्पना निरा पाखण्ड है । इस सिद्धान्त ने कर्मवाद के सिद्धान्त को नही स्वीकार किया । यह दिशा वैदिक, पौराणिक, बौद्ध एव जैन सब दिशाओ के विपरीत थी । पूर्ण भोगवादी थी । उसके मत से यह जीवन ही आदि एव अन्त दोनो का केन्द्र है । आत्मा नाम की कोई वस्तु नही है । शरीर नष्ट हुआ । उसके साथ ही साथ सब कुछ समाप्त ।

यह बात भी ठीक नही है । यह जानकर एक मत ने भगवान् का रूप अर्ध-नारीश्वर माना । पुरुप, प्रकृति से जगत् चलता है । पुरुष प्रकृति कभी भिन्न नही होते । उनका सगम, उनका सहवास सृष्टि का कारण है । इसलिए एक ही मूर्ति मे दक्षिणाग नर तथा वामाग नारी का बनाया गया । इस भावना की प्रतीक हुई अर्ध नारीश्वर की मूर्ति । शक्ति तथा शिव दोनो को एक मे मिलाकर दोनो के एक रूप की पूजा आरम्भ हुई । नर एव नारी को समान माना गया । ईश्वर केवल पुरुपा-कार नही नार्याकार भी होता है । इन दोनो भावो का समन्वय अर्धनारीश्वर मे किया गया । नारी विरक्तो की तरह पाप की खान नही पुण्य की प्रतीक भी बनी । पूजा की सामग्री बनी । यह हुआ दो अतियो का मध्यम मार्ग । एक विवाद से बचने का माध्यम । यदि जगत् का कारण शक्ति है । यदि जगत् का कारण शिव है । तो दोनो को एक साथ प्रसन्न करने का प्रयास किया गया ।

ईश्वर हो गया न तो पुरुप और न स्त्री । वह हो गया नर-नारी का युगल रूप । शक्ति एव शिव जो भी अव्यक्त शक्ति जगत् को चलाती है । दोनो को एक साथ प्रसन्न करने का यह एक अद्भुत प्रयास था ।

अव्यक्त शक्ति के नाम पर मनुष्यो के गले मे, वाहु पर, कलाई पर, कमर मे, पैर मे, यज्ञोपवीत मे, करधनी मे जन्तरें शोभा पाने लगी। तावीजें शोभा पाने लगी। गण्डे और नारे शोभा पाने लगे। किसी भोजपत्र, किसी अश्वत्थ के पत्र पर लिखा कोई मन्त्र मनुष्य का भाग्यविधाता बन गया। मनुष्य अपनी दुर्वलता, अपने भय के कारण उनमे चिपक गया। अपने पर विश्वास खोकर जड मन्त्रो का गुलाम उसी प्रकार वन गया जैसे आज यन्त्रो का, मशीन युग का, गुलाम वन-कर अपनी स्वाधीनता खो बैठा है।

इस मनोवृत्ति ने मनुष्य को विचित्र प्रेरणा दी। प्राणियो के सेवाभाव की भावना, समाज के सेवाभाव की भावना, त्याग की भावना, मनुष्य मे कम हो गयी। उसके अचेतन मन पर प्रभाव पडने लगा। बुरे कर्मों का प्रायश्चित्त करने से निवारण हो सकता है। पाप का निवारण दान-दक्षिणा, पूजा-पाठ से हो सकता है। उसके और ईश्वर के वीच वने माध्यम वर्ग को खिला-पिलाकर सन्तुष्ट करने से हो सकता है। उनके सतुष्ट होने पर ईश्वर सन्तुष्ट होगा। अव्यक्त शक्ति सन्तुष्ट होगी। उसका कुछ विगडेगा नही। वह पुण्य खरीद सकता वै। ईश्वर का अनु-ग्रह खरीद सकता है।

इस वर्ग ने शोषण के अनेक साधन वनाये। अनेक मोहक उपाय निकाले। उन साधनो मे, उन मोहक उपायो मे वेचारा मनुष्य साध्य को भूल गया। स्वय साधन मात्र रह गया। वह अपना पेट काट कर प्रसाद वनाने लगा। उन्हे चढाने लगा। मूर्ति या ईश्वर प्रसाद न खा सका, वह जाने लगा माध्यमो के पेट मे। चढानेवाला प्रसाद का एक टुकडा प्राप्त कर सन्तोष किया। उसने उसे भगवान् प्रदत्त ही समझा।

ईश्वर को वस्त्र से, आभूषणो से, नाना प्रकार के प्रसाधनो से, सजाने की भावना उत्पन्न हुई। मनुष्य उन्हे देने लगा। वे सव ईश्वर के नाम पर प्राप्त कर किसी का घर भरने लगे, किसी के घर सजाने मे काम आने लगी। ईश्वर एक सफल व्यापार का साधन हो गया।

उसका नाम विकने लगा। रुपयेवालो ने जप बैठा दिया। रुपया देनेवालो के नाम पर कोई माला फेरने लगा। जप करने लगा। पुण्य विकने लगा। उसका अनुग्रह विकने लगा।

वात और बढ गयी। कन्याएँ भगवान् पर चढायी जाने लगी। वे भारत मे देवदासी कहलाईं। ईसाइयो मे नन वनी। उन्होने अपना जीवन ईश्वर पर अर्पित

कर दिया। वे उस प्रजनन कार्य से जबर्दस्ती विरत कर दी गयी, जिसके लिए प्रकृति ने उन्हे बनाया था। उनका जन्म हुआ था।

जगत् मे जादू, टोना, झाड, फूँक, गण्डा, मूत्र, तावीज, जन्त्र देनेवाले पाखण्डियो का बडा भारी वर्ग बन गया। उन्होने अपना एक गोल बना लिया। वह उनकी जीविका का साधन हो गया।

ईश्वर से उतर कर नक्षत्रो की बारी आयी। ज्योतिषियो ने, नजूमियो ने प्रत्येक नक्षत्र को प्रसन्न करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के रत्न, अन्न, वस्त्रो की कल्पना की। लाखो मील दूर नक्षत्र एक रत्न पहनने, एक पत्थर पहनने, किसी प्रकार का वस्त्र पहनने, किसी प्रकार का अन्न खाने अथवा उनका दान करने से प्रभावित होने लगे। वे मनुष्यो के भाग्य का सचालन उनसे लाखो मील दूर रहकर करने लगे। मनुष्य उनके हाथ की कटपुतली बन गमा। अपना स्वतन्त्र चिन्तन, अपना कर्म, अपना आत्म-विश्वास खो दिया। रूढ सस्कारो ने मनुष्य का विवेक, तर्क युक्त विचार एवं शक्ति हर ली। उसे आकाश के नक्षत्रो, उसके प्रतीक वने देवताओ की अगणित शृखलाओ ने बुरी तरह जकड लिया।

जिस समय यह भूमिका लिख रहा था उस समय भी ऐसी ही घटना घटी। मेरे कुछ मित्र सर्वदा मेरे शुभ की कामना करते रहे। इसी समय राज्य सभा के चुनाव की चर्चा चली।

एक दिन एक सिख ज्योतिषी जी आ गये। बडा जोर दिया। मैने स्पष्ट कह दिया। मै पैसा नही दूँगा। इसी बीच मेरे एक साथी आ गये। उन्होने कहा—हर्ज क्या है? मुझे जन्मदिन याद नही। सन् भी याद नही। उसमे विश्वास नही करता। ज्योतिषी जी महाराज ने अपने देवता का नाम लेकर हाथ देखा। बोले—आप राज्य सभा के सदस्य होगे। मै हँस उठा। कहा असम्भव। उन्होने एक घण्टा तक गणित किया। गणित करने पर विश्वास के साथ कहा। मुझे उन पर दया आयी। मैने उनसे कहा—महारज! गत प्रधान मन्त्री के चुनाव के समय मैने आपको दोनो उम्मेदवारो के यहाँ देखा था। दोनो से आपने कहा था—आप ही प्रधान मन्त्री होगे? वे बेचारे कुछ झेंपे। बोले—हाँ एक का नक्षत्र कुछ ऊँचा था।

मेरे मित्र माननेवाले नही थे। उनके विदा होने के पश्चात् उन लोगो ने भगवान् का नाम लेकर गोटी छोडी। दोनो बार निकला—मै राज्य सभा का सदस्य हूँगा। मै हँस कर रह गया। खूब प्रचार चला। पूँजावाद चला। छलवाद

चला। जो कुछ चल सकता था, सब कुछ चला। मै निरपेक्ष रूप से सब देखता रहा। परिणाम वही हुआ जो होना था। ज्योतिषी महोदय दिल्ली मे दिखाई नही दिये। गोटी डालने वाले मित्र लज्जित हो गये। मैंने केवल इतना कहा—जिस प्रकार डॉक्टर अन्तरग रोग को बिना देखे भी लक्षणो से जान लेता है। उसी प्रकार ज्योतिष भी एक विद्या है। वह मानव प्रकृति एव घटनावलियो पर आधारित है। भविष्य कठिनता से कुछ प्रतिशत ठीक उतरता है। इसलिए ठीक उतरना माना जाता है कि हाँ या नही मे एक को तो होना ही है जो हो गया। उसे लोगो ने ज्योतिष का भविष्यवाणी ठीक उतरी कहकर शोर किया। जिसका नही होता, वह इस भय से कि देव किवा नक्षत्र नाराज न हो जाय, भविष्य बिगाड न दें, अविश्वास करना चाहते हुए भी अविश्वास नही करते। भयग्रस्त रहते है। अपने कर्म को दोष देते है। ज्योतिष पर फिर भी विश्वास बनाये रखने है। यह है, सरल मानवीय दुर्बलता। और है, आत्म-विश्वास पर पूरा अविश्वास।

वैज्ञानिको ने ईश्वर की इस अव्यक्त शक्ति के विषय मे अन्वेषण किया। वे किंचित् पूर्व परम्परा से हट कर विचार करने लगते। उन्हे नास्तिक कहा गया। उनके ग्रन्थ बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक फूँके जाते थे। वे समाज से बहिष्कृत थे।

आयुर्विज्ञान के धुरन्धर विद्वानो ने औषधि, शल्य-चिकित्सालय का विकास किया। मनुष्य के शरीर को यन्त्रवत् समझा। उसे उस मोटरकार की तरह समझा, जो पुरजो के बदलते और मरम्मत करते रहने पर भी एक दिन अपनी उपादेयता खो देती है। उसका चलना बन्द हो जाता हैं। उसी प्रकार यह शरीर यन्त्र है। यन्त्र बन्द हो गया गाडी की तरह उसे नष्ट कर दिया जाता है। गाडी के जैसे अच्छे पुरजे निकाल कर दूसरी गाडी को चलाने के लिए रख लिये जाते है उसी प्रकार नेत्र, हृदय आदि निकाल कर स्पेयर पार्ट्स की तरह रखे जाने लगे। उनका उपयोग दूसरे शरीर-यन्त्र को चलाने के लिए होने लगा।

अतएव आयुर्वेद ने कहा—आस्तिक और नास्तिक मे चुनाव पडे तो आस्तिकवाद को चुनना चाहिए।' कारण स्पष्ट है जब आयुर्विज्ञान मनुष्य यन्त्र को चलाने मे असमर्थ हो जाता है, तो उसका दोष किसी पर अपनी रक्षा तथा मान्यता कायम रखने के लिए मढ देना आवश्यक होता है। निस्सदेह यह शक्ति अव्यक्त शक्ति है जो किसी प्रकार का स्पष्टीकरण देने मे असमर्थ रहती है।

जब पुरुष ने सब कुछ सुनकर, सब कुछ देखकर कहा—जो उत्पन्न होता है।

सव कर्मो का कुछ हेतु होता है। सव धर्मों का हेतु होता है। ईश्वर- अनीश्वर की कल्पना, उस पर विचार करना अव्याकृत है। यह जगत् है। यह रहेगा। श्रेयस्कर है—उत्तम आचरण। श्रेयस्कर है—उत्तम शासन। दु ख से भागने की आवश्यकता नही। जगत् से भागने की आवश्यकता नही। भाग कर कोई वच नही सकता। कर्म का चक्र सवको चलाता रहेगा। उससे कोई वच नही सकता। हम स्वय अपने कर्म के परिणाम है।

उसने जडता से, अन्ध-विश्वास से, प्राणियो को दूर हटाने का प्रयास किया। किसी के आशीर्वाद से, किसी के प्रसाद से, किसी के माध्यम से स्वर्ग-प्राप्ति, मुक्ति, उद्धार की भावना से प्राणियो को दूर हटाया। उसकी दृष्टि मे यज्ञ मे पशु-वलि की हवा उसी प्रकार व्यर्थ थी, जैसे भूमि पर गिर कर सूखता जल।

उसने कहा—'मृत्यु आनेवाली है। आयेगी। उससे विश्व की कोई शक्ति वचा नही सकती। उससे भय करना व्यर्थ है। मृत्युभयग्रस्त प्राणी अपने चारो ओर स्वय भय-वितान वना लेता है। उससे घिर जाता है। दु ख से भयभीत होकर, उससे डरकर, प्राणी कहाँ जायेगा। उसे रहना है इसी पृथ्वी पर। उसका सामना जगत् की होनेवाली क्रिया की तरह करनी चाहिए। विश्वास करना चाहिए—अपनी वुद्धि का। अपनी शक्ति का। अपने आचरण का। अपने अनु-शासन का। अपने कर्म का।

उस महापुरुष के ८० वर्ष के लम्वे जीवन-काल को इस पुस्तक 'वुद्ध कथा' मे लिपिवद्ध किया है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त की कथाएँ इसमे गुम्फित है। घटनाओ को कथावद्ध किया है। जीवन के कालक्रम से कथाओ का क्रम रखा है।

प्रत्येक कथा अपने आप मे पूर्ण है। सुमिरनी के दानो की तरह भिन्न अस्तिव रखती है। किन्तु उन्हे पुस्तकाकार सूत्र मे गुहकर जीवन-चरित रूप मे प्रस्तुत किया है।

उस महापुरुष के चरित्र से सम्वन्धित उनके साथ रहनेवाले, विचरनेवाले, अग्रश्रावक एव श्राविका, उपासक एव उपासिकाओ का चरित्र प्रत्येक कथा मे स्वतत्र रूप से चित्रित किया गया है। कौन अग्रश्रावक, श्राविका तथा उपासक एव उपासिकाएँ थी, यह भगवान् वुद्ध ने स्वय कहा है। स्वय उनकी विस्तृत तालिका दी है। मैंने उसी तालिका को आधार माना है।

अग्रश्रावक, श्राविकाओ, उपासक, उपासिकाओ के चरित्रो का अभी तक एक पुस्तक रूप मे सकलन विश्व की किसी भाषा में नही किया गया है। अतएव यह पुस्तक अपने ढग की पहली पुस्तक है।

इन महान् पुरुषो के पूर्व जीवन के विषय मे बहुत स्वल्प ज्ञान है। बहुत कम लिखा गया। भिक्षु होने के पूर्व जीवन पर कम महत्त्व दिया गया है। अतएव उनके जीवन पर पूरा प्रकाश पडना असम्भव है। जहाँ तक बौद्ध साहित्य मे सामग्रियाँ उपलब्ध हो सकी है, उनके सकलन का प्रयास किया है। उनके सग्रह करने मे परिश्रम तथा धन का सकोच नही किया है।

कथाक्रम इस प्रकार रखा गया है कि अग्रश्रावको आदि के जीवन उनके विचार, भगवान् के साथ हुई उनकी वार्ता पर प्रकाश पडते हुए भगवान् की दिनचर्या, जीवन-वृत्त, क्रियाकलाप, उपदेश, तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एव धार्मिक स्थिति और उस समय के व्याप्त कुसस्कार, दुर्विचार, भलाई, बुराई सब पर साधारणतया प्रकाश पड जाता है।

कथा की सामग्री का मूल स्रोत पाली त्रिपिटक है। समस्त त्रिपिटको का अनुवाद हिन्दी मे नही हुआ है। कुछ अश का अनुवाद हिन्दी मे हुआ है। मैंने अग्रेजी या हिन्दी अनुवादो को तब तक ठीक नही माना है, जब तक उन्हे पाली से मिलाकर देख नही लिया है। अनुवादो तथा मेरे वर्णन मे कही-कही भिन्नता मिलेगी, इसका मूल कारण यही है। आधुनिक अनुवादको ने अंग्रेजी अनुवादो का आश्रय लेकर भयकर भूल की है। मैंने इससे बचने का प्रयास किया है।

नालन्दा विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित नागरी त्रिपिटक के साथ ही साथ सिहली लिपि मे प्रकाशित पाली त्रिपिटक को, जहाँ भी सन्देह उत्पन्न हुआ है, मिलाया गया है। मै स्वय सिंहली नही जानता। इस कार्य मे भिक्षु श्री धर्मरक्षित जी सारनाथ ने अथक परिश्रम कर अपने सरल मधुर स्वभाव से सहायता की है। संदिग्ध स्थानो को उन्होने सिंहली लिपि मे मुद्रित त्रिपिटको से मिलाकर पाण्डुलिपि शोधा है।

यह ग्रन्थ धार्मिक ग्रन्थ है। भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित है। अतएव प्रत्येक शब्द तौला गया है। विचारो की अभिव्यक्ति मे भाषा शैथिल्य तथा वैचित्र्य के कारण त्रुटि हो सकती है, परन्तु घटनाएँ अपने मूल रूप मे सत्य रखी गयी है।

बौद्ध साहित्य मे एक ही नाम के अनेक व्यक्ति हुए है। उन्हे निश्चित करने मे विशेष प्रयास करना पडा है। पाद-टिप्पणियो मे यथास्थान उन पर प्रकाश भी डाला गया है। तथापि कुछ नामो को निश्चित करने मे असमर्थ रहा हूँ। इसका संकेत यथास्थान कर दिया है।

पुस्तक की शैली मूल त्रिपिटक की शैली के यथाशक्ति समीप रखने का प्रयास

किया है ।। भगवान् का उपदेश तथा प्रवचन सवादो मे है । त्रिपिटको का वर्णन भी संवाद बहुल है । वही शैली पुस्तक को वर्णन शैली है । सहृदय पाठको को, आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व संवाद, तथा प्रवचन की शैली का क्या रूप था, उसका इस पुस्तक में एक आभास मिलेगा ।

कथानको मे अपनी तरफ से कुछ जोडने का सफल अथवा विफल प्रयास नही किया है । उसे शुद्ध मूल रूप मे रखा है । अनुवादको ने कथानको के नामो, रूपो तथा घटनाओ आदि का अनुवाद कही-कही ठीक नही किया है । अतएव हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद की तुला पर पुस्तक वर्णित घटनाओ एव कथानक को तौलना ठीक नही होगा ।

इस पुस्तक की रचना के सम्बन्ध मे कुछ लिखना उचित है । इसका रचना-काल एक प्रकार से अपने जीवन के अत्यन्त नैराश्य एव दु खद वातावरण मे हुआ है ।

बौद्ध दर्शन दु खवाद का विश्लेषण करता है । दु.ख होता है भौतिकता मे । मैंने भी यह पुस्तक दु'ख की छाया मे लिखी है । अध्यात्म दु ख से परे की स्थिति है । मै अध्यात्म के उस परे की स्थिति मे नही पहुँचा हूँ । पहुँच सकूँगा या नही कहना कठिन है ।

सन् १९२१ ई० की प्रथम जेल-यात्रा से सन् १९६७ तक के लम्बे जीवन-काल मे ठेस नही लगी थी । वह सघर्ष का काल था । उस सघर्ष मे लहरें उठती थी । उन लहरो पर तैरता गया । बहता गया । सघर्ष मे ऐसी मजिलें हुआ करती है । दु.ख में सुख मिलता है । लहरो ने कभी किनारो पर पटका है । कभी बहाकर उथले जल मे ले गयी है । कभी गम्भीर जल मे ले गयी । किन्तु निराशा में प्रेरणा मिलती गयी ।

सघर्ष देश की स्वतत्रता मे परिणत हुआ । उस विजय मे दु ख सुख हो गया । सन् १९५२ ई० मे ससद् मे आया । सन् १९६७ ई० तक सदस्य था । ससदीय कार्यो मे परिश्रम किया । लेकिन अपने विचारो, सिद्धान्तो पर स्थिर रह कर, सुपथ को कभी कुपथ नही बनने दिया । इसमे राज्यश्री की कृपा न हो सकी । मै उसका इच्छुक नही था । मनुष्य का कर्म उसके साथ जाता है । मनुष्य का सस्कार उसके साथ जाता है । काशी निवासी होने के कारण कम से कम यह प्रभाव मन पर पडा था । मन ने मुझे विचलित नही होने दिया ।

दु.ख के समय अनजाने भी सहानुभूति प्रदर्शन मन को हर लेता है । कोई

दु·ख ले नही लेता। लेकिन क्षुब्ध मन को शान्ति मिलती है। मै सन् १९६७ ई० का ससदीय चुनाव अपने काशी के क्षेत्र से हार गया। कारण स्पष्ट था। मुसलमानो ने काग्रेस को वोट नही दिया। हमारे क्षेत्र मे मुसलिम मतदाता काफी थे। ईश्वरवादी मुसलमानो ने अनीश्वरवादी वाम कम्युनिस्टो को वोट दिया। उनका यह निश्चय जिस दिन हो गया। मै उसी दिन समझ गया। पराजय आ गयी। अपने साथियो से कह दिया। डायरी मे लिखकर रख दिया। यह भविष्यवाणी किसी ज्योतिषी से पूछकर नही की थी। काशी के अनेक ज्योतिषियो ने लिखकर स्वत मेरे पास पत्र भेजा कि मै जीत जाऊंगा। लेकिन उसी पत्र के पुस्त पर लिख देता था। हार निश्चित है। मे ज्योतिष मे विश्वास नही करता। मुझे मेरा जन्म-दिन तथा सवत् भी याद नही है। मै ज्योतिषियो की खिल्ली उडाता हूँ। मनुष्य अपने कर्म का फल स्वय नही भोगेगा तो लाखो कोस दूर नक्षत्र बैठे-बैठे हमारा भाग्य क्या बना-बिगाड सकेंगे। तथापि मानवीय दुर्बलता अपने सुन्दर भविष्य की कल्पना करती है। अच्छी बात सुनने पर पुलकित होकर ज्योतिषियो के जेब भर देती है। ज्योतिषी मनुष्य की इस दुर्बलता का खूब लाभ उठाते है।

जनसघ की बढती शक्ति मे हिन्दू वोट बुरी तरह बँट गये। पन्द्रह वर्ष के पश्चात् यह धक्का कठोर था। मित्रो ने आँखें फेर लो। लोग दूर हटने लगे। मानो हारकर मेने बडा बुरा पाप किया था। मेरा जन्म-जन्मान्तर का जैसे सब कर्म अचानक लोप हो गया। अपने को बहिष्कृत सदृश अनुभव करने लगा।

इस आपद काल मे केवल एक व्यक्ति मुझे ऐसे मिले जिनके व्यवहार मे अन्तर नही आया। वह थे श्री मोरार जी देसाई। उनका स्नेह पूर्ववत् बना रहा। निस्सन्देह वे मेरी हार से अत्यन्त दु खी हुए थे।

मै जैसे अन्धकार मे विलीन होने लगा। लोग मुझे भूलने लगे। मानवीय दुर्बलता के कारण अपने साथियो की तरफ सहानुभूति प्राप्त करने के लिए देखता। वे आँखें फेर लेते। ठेस लगती। दु ख होता। मनस्ताप बढता। राजनीति की क्रूर प्रवचना पर गम्भीर हो उठता। मै कभी-कभी सोचता। जैसे मै जीवित ही मृत हूँ।

इस काल मे एक महान् आत्मा ने और भी स्नेह प्रदर्शित किया। वे थे स्वर्गीय युगलकिशोर जी बिडला। मुझे कही निकलना अच्छा नही लगता था। मै अपनी कोठरी मे दिल्ली ससदीय पुस्तकालय मे एक प्रकार से बन्द हो गया।

सम्पादक, दैनिक 'हिन्दी हिन्दुस्तान' एक दिन मेरे पास आये। बोले—युगलकिशोर जी के यहाँ चलना है। बीमार है।

उनके निवास-स्थान पर पहुँचा। वे मुस्कराते मिले। मै दग हो गया। वे बीमार थे। उस वेदना काल मे वह मुसकराहट। वे बोले—मैंने जनसघ वालो से कहा था। वे तुम्हारे खिलाफ से उम्मीदवार हटा लें। मुझे काशी की स्थिति मालूम थी। किन्तु उनमे एक नेता—कुछ जिद्दी थे। उन्होने मेरी बात पर ध्यान नही दिया।

मै अवाक् हो गया। वह बात मुझे मालूम नही थी। उनकी ओर देखता रह गया। वे बाहर आकाश की ओर देखते हुए बोले—'मैंने कहलवाया था। मदद की जरुरत हो तो कहना। लेकिन कुछ कहलवाया नही।'

मै क्या उत्तर देता। मुझे वे आकाश जैसे ऊँचे लगे। मै परित्यक्त कण से भी अपने को छोटा समझ रहा था। कुछ बोला नही। चुपचाप उठा। मैंने आज समझा। पराजय का दु ख मेरी एक भ्रान्ति थी। जगत् का चक्र था।

इस महान् मानव के कुछ शब्दो की निश्छल व्यक्त भावना ससद् सदस्यता से कही ऊँची थी। कही महान् थी। वह मेरे जीवन की सबसे बडी निधि थी। उसकी स्मृति मे दु ख अनायास गल जाता है। मै उस दिन रात भर सो नही सका। बैठा रहा। बाहर लान पर घूमता रहा। मानव इतना महान् हो सकता है। इस युग मे बिना प्रीति, बिना स्वार्थ, बिना किसी सम्बन्ध, बिना किसी लगाव के यह कैसी उदात्तता। रात्रि के तीन बज गये। यह मेरे आसन और प्राणायाम करने का समय था। मै आसन पर बैठ गया।

युगलकिशोर जी का शीघ्र ही निर्वाण हो गया। केवल तीन-चार बार उनके पास और गया। सर्वदा हिन्दू जाति के भविष्य की वे चिन्ता करते थे। ईश्वर पर अटूट श्रद्धा रखते थे। विश्वास करते थे। मै समझता हूँ। भारत मे कम लोगो ने उनकी महान् आत्मा का दर्शन किया था।

श्री देसाई जी से पूर्ववत् अध्यात्म चर्चा होती रही। कभी-कभी रात के ग्यारह बज जाते। चर्चा का विषय ईश्वर होता था। वह ईश्वर की महत्ता पर चर्चा करते तो गगा की निर्मल धारा जैसी बहती चली जाती। उस निर्मल विचारधारा मे मन पुलकित होता। वह मेरे मन मे बैठाना चाहते थे—"ईश्वर है। उस पर अटूट श्रद्धा होनी चाहिए। उस पर भक्ति होनी चाहिए। सब कुछ उसकी इच्छा से होता है।" मै सुनता रहता।

किन्तु देसाईजी के इस ईश्वरवादी दर्शन के विपरीत भारत मे एक दर्शन और हुआ। विश्व मे एक दर्शन और है। विश्व मे एक वर्ग और है। वह ईश्वर मे विश्वास नही रखता। उसके अस्तित्व मे विश्वास नही रखता। यह वर्ग समस्त विश्व मे फैला है।

भारत मे यह नास्तिक दर्शन कहा जाता है। वेद को मान्यता नही देता। उनमे बौद्ध एव जैन दर्शन है। लोकायत दर्शन है। बृहस्पति एव चार्वाक ईश्वरवाद के ठीक विरोधी दिशा मे चरम सीमा पर पहुँच गये है।

पश्चिम का नास्तिकवाद जड है। भारत का नास्तिकवाद जड नही है। उसमे गति है। प्रगति है। उसकी अपनी आचार सहिता है। बौद्ध मत का दु खवाद, शून्यवाद तथा सौत्रान्त्रितक, माध्यमिक, योगाचार, वैभाषिक दर्शनो की चारो शाखाएँ दर्शन जगत् मे विशिष्ट स्थान रखती है। हीनयान, महायान एव वज्रयान ठोस विचारो पर आधारित है। जैनियो के अर्हत दर्शन की अपनी एक अलग परपरा है।

मै बेकार था। आजन्म राजनीतिक कार्य किया। सघर्ष में रहा। किसी से कुछ लिया नही। भरसक दिया ही। रुपये-पैसे की चिन्ता नही थी। लेकिन दुनिया मे सब कुछ रुपया ही नही है। एकाध मास टक्कर खाता रहा।

दिल्ली मे रहने की समस्या विकट थी। दिल्ली एक तरह से कार्यक्षेत्र बन गयी थी। मित्रो की राय हुई। यही रहूँ। परन्तु बगला अपना छोडना ही था। ससद् सदस्य मित्रवर श्री प्रकाशवीर शास्त्री तथा श्री श्यामनन्दन मिश्र अपने साथ अपने बगलो मे लिवा ले गये। रहने के लिए कमरा भी निर्धारित कर दिया। उनके इस औदार्य से मैं दब गया। इस सहानुभूति की स्मृति बहुत भली लगती है। किन्तु इसी बीच हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड उदयपुर राजकीय प्रतिष्ठान का अध्यक्ष बन गया। यह पद अवैतनिक था। किन्तु देश-सेवा समझ कर काम लिया। उसका एक अतिथि भवन दिल्ली मे स्थापित हो गया। वहाँ प्रतिदिन नियमानुसार कुछ देकर ठहरने की व्यवस्था हो गयी।

समस्या खर्च की उत्पन्न हुई। मैने कभी पैतृक सम्पत्ति से कुछ लिया नही था। विद्यार्थी जीवन से ही अर्जन करने की आदत थी। घर मे भी हाथ फैलाने की आदत नही थी। माँग कर भोजन करने मे भी सकोच होता है। हारते ही मेरी पत्नी श्रीमती लीलावती ने कहा—सब कुछ है। रुपया रखकर क्या होगा। पाँच सौ-हजार महीना लेकर खर्च कीजिये। हमे है ही कौन ? निस्सदेह मैं सन्तानहीन हूँ। किसी की जिम्मेदारी मुझ पर नही है। किन्तु पैतृक सम्पत्ति से आज तक कुछ लिया नही। इस दु खमय काल मे लेना और पसन्द नही किया। हाँ—इतना अवश्य हँसकर कहा—बनारस मे रहूँ तो दो रोटी दे देना। पत्नी के निर्मल दो बूँद आँसुओ ने इसका जो उत्तर दिया वह वर्णनातीत है।

मेरी आवश्यकता स्वल्प है। केवल एक बार दस बजे दिन मे भोजन करता हूँ। नाश्ता नही करता। घी नही खाता। दाल नही खाता। मिर्च नही खाता।

मसाला से परहेज करता हूँ। केवल रोटी और तरकारी खाता हूँ। सायकाल यदि मिल जाय तो आध सेर दूध का स्वागत अवश्य करता हूँ। किन्तु उसकी भी आदत नही है। शुद्ध शाकाहारी हूँ। मेरा यह नियम बीसो वर्ष से चल रहा है।

किन्तु इसके लिए भी पैसा चाहिए। महगी दिल्ली मे रहने के लिए पैसा चाहिए। युवक नौकर रामजीत तथा उसकी स्त्री मेरे साथ रहती थी। उसे बचपन से साथ रखा था। उसका विवाह किया था। उसने साथ छोडना पसन्द नही किया। यह एक खर्च था। इसकी समस्या थी।

'नन्दन' के सम्पादक, श्री राजेन्द्र अवस्थी एक दिन भेट करने आये। कुछ लिखने की बात चली। मैंने उनमे यह तो नही कहा कि पैसे की आवश्यकता है, परन्तु इतना अवश्य कहा—प्रतिमास कहानी छपती रहनी चाहिए। उन्होने वचन का निर्वाह किया। आठ मास तक ५० रुपया प्रतिमास की यह आमदनी मेरे लिए वरदान हो गयी। जिस दिन इस पुस्तक की पाण्डुलिपि लिखकर समाप्त किया उसी दिन 'नन्दन' मे कहानी लिखना बन्द कर दिया। 'नन्दन' मे महाभारत की कहानियाँ लिखता था।

भगवान् बुद्ध के विषय मे चर्चा श्री देसाई जी के यहाँ हुई। इसी बीच अनाथपिण्डक की एक अधूरी कहानी हिन्दी दैनिक 'हिन्दुस्तान' मे छपी। तुरन्त विचार आया। साधिकार सप्रमाण 'बुद्ध कथा' क्यो न लिखू। इसके पूर्व 'रामायण कथा' 'योग वासिष्ठ कथा' तथा 'वेद कथा' लिख चुका था। उनका हिन्दी जगत् मे अच्छा स्वागत हुआ था।

बुद्ध धर्म सम्बन्धी पुस्तके जितनी भी हिन्दी मे प्राप्त थी, सब खरीद लिया। लगभग डेढ हजार रुपये इस दु खद काल मे खर्च हो गये। उनमे त्रिपिटको के अनुवाद अधिक थे। नालन्दा से नागरी लिपि मे प्रकाशित त्रिपिटक मेरे मित्र श्री कृष्णचन्द्र बेरी ने दिया। इससे काम मे बहुत सरलता हो गयी।

सारनाथ पुस्तकालय मे पुस्तकें काम लायक नही मिली। सिंहली मे पुस्तकें अधिक थी। शेष का स्वत संग्रह मेरे पास था। दो-चार दिन मे वहाँ के पुस्तकालय का काम समाप्त किया। श्री काशी विद्यापीठ पुस्तकालय से कुछ पुस्तकें मिल गयी।

मुझे आश्चर्य हुआ। बुद्ध धर्म सम्बन्धी पुस्तको का वास्तव मे नितान्त अभाव था। काशी विश्वविद्यालय आदि के विशाल पुस्तकालय से भी विशेष सहायता न मिल सकी। अग्रेजी मे पुस्तकें कुछ मिली। वे गम्भीर नही थी। मेरे लिए अनुपयोगी थी। उनसे भ्रम अधिक पैदा हुआ।

कलकत्ता की नेशनल लाइब्रेरी तथा बम्बई की सेन्ट्रल लाइब्रेरी मे भी पहुँचा। कुछ विशेप काम नही बन पडा। ससदीय पुस्तकालय, नयी दिल्ली अधिक काम मे आया और उपयोगी सिद्ध हुआ।

मैने जिन पुस्तको के आधार पर, जिन कथाओ को लिखा है उन्हे पाद-टिप्पणियो की सन्दर्भ ग्रन्थ तालिका मे दे दिया है। प्राय हिन्दी, पाली और अग्रेजी तीनो ही ग्रन्थो का सन्दर्भ दिया है। पाठक यदि मूल देखना चाहे तो पाली और अग्रेजी मे जानना चाहे तो अग्रेजी ग्रन्थ देखने का कष्ट उठा सकते है।

भगवान् बुद्ध सुवर्ण वर्ण थे। उनकी प्रतिमा प्राय स्वर्ण वर्ण बनायी जाती है। मैने वेदकथा स्वर्ण कलम से लिखी थी। उसी से यह पुस्तक लिखने की परिकल्पना की। दो कहानी उससे लिखकर दिल्ली से काशी चला आया। कलम टेबुल के ड्रावर मे छोड दिया। अचानक मुझे काशी मे अनुभूति हुई। कलम गायब हो गयी। मै दिल्ली आया। सचमुच कलम गायब थी। दो सज्जन मेरे उस कमरे मे आकर टिके थे। और कोई नही आया था। मैने पूछा। वे मुझ पर ही बिगड गये। मै चुप हो गया। इस समय मै विचित्र विपत्ति काल से गुजर रहा था। कोई भी कुछ कह सकता था। 'वेद कथा' इस स्वर्ण कलम से लिखा था। बुद्ध वेदवादी नही थे। सम्भव है कोई अव्यक्त शक्ति चाहती रही होगी। मै इस कलम से बुद्ध कथा न लिखूँ। उसके लोप होने का विषाद स्वत विचार-वीथियो मे विलीन हो गया।

कहानियो का प्रारूप काशी तथा नयी दिल्ली मे तैयार किया। ससदीय पुस्त-कालय मे पाण्डुलिपि शोधने लगा। इस शोध मे मूल कथा लिखने से भी अधिक समय लग गया। त्रुटियाँ बहुत ही कम मिली, कहानियाँ ठीक लिखी गयी है। इसका विश्वास हो गया। मै इस स्थिति मे हो गया। कह सकूँ कहानियाँ साधि-कार शुद्ध है।

शोध के पश्चात् उसे हिन्दी मे टाइप करने के लिए दिया। टाइप हो जाने के पश्चात् सन्दर्भ ग्रन्थ तथा पाद-टिप्पणियाँ कथाओ के पाद मे लिखने लगा। टिप्पणो लिखने मे समय अपेक्षाकृत अधिक लगा। अथक परिश्रम करना पडा। यह क्रम पुस्तक छपने तक जारी रहा। पुस्तक लिखने मे तीन मास, शुद्ध करने मे चार मास तथा टिप्पणी तैयार करने मे दो मास समय लगा है। टिप्पणी लिखते समय जो कुछ त्रुटि पुस्तक मे रह गयी थी, वह भी शुद्ध हो गयी।

टकित पाण्डुलिपि तैयार हो जाने पर सारनाथ पहुँचा। श्री भिक्षु धर्मरक्षित जी के निवास-स्थान पर मध्याह्न ३ बजे दिन से सात बजे रात तक बहुत दिनो

तक सगत हुई। वहाँ प्रत्येक शब्द तथा पक्ति पढकर सिंहली त्रिपिटको से मिलाया जाता था। अनेक भ्रामक स्थानो को ठीक किया गया।

उस महापुरुप के प्रथम उपदेश स्थान सारनाथ मे, मूलगन्ध कुटी विहार मे, जहाँ भगवान् की धातु अर्थात् अस्थि रखी है, पवित्र एव शुद्ध भावना से पुस्तक मे हाथ लगाया था। सारनाथ के गम्भीर, शान्त वातावरण तथा स्थान की पवित्रता के कारण मन पर विचित्र प्रभाव पडता था। काशी से सारनाथ प्रतिदिन जाने मे असुविधा कुछ होती थी। हमारी जीप प्राय मगनी चली जाती थी। कार्यकर्त्ता होने के कारण किसी को इन्कार नही कर सकता था। कभी-कभी, वेरी जी की कार ले लेता था। सब कुछ अप्राप्य होने पर बस और रिक्शा की शरण लेता था। जिस गति से काम चल रहा था उससे प्रसन्नता का बोध होता था। पुस्तक लेखन काल मे किसी प्रकार की असुविधा का मुझे अनुभव नही हुआ।

सबसे अधिक कठिनाई कथाओ को क्रमबद्ध करने मे हुई। अग्रश्रावको तथा श्राविकाओ और उपासक तथा उपासिकाओ का अब तक सम्पूर्ण चरित्र एक स्थान पर पुस्तकाकार किसी भाषा मे मुझे देखने को नही मिला। थेर तथा थेरी गाथा मे उन महापुरुषो के बहुत कम चरित्र दिये गये है। जो है, वे भी अत्यन्त सक्षिप्त। कहानियाँ त्रिपिटको से ढूँढकर निकाली है। अनेक घटनाओ को जोडकर एक कहानी का रूप दिया है।

किस समय किस कथा का काल है तथा उपदेश दिया गया है। किस समय किस श्रावक-श्राविका तथा उपासक-उपासिकाओ ने दीक्षा ली थी अथवा भगवान् की शरण मे आये थे, यह काल-निर्णय करना कठिन है। तथापि निर्णय पर पहुँच-काल-क्रम से उन्हे रखा है।

इसके लिए मैने बुद्ध भगवान् के वर्षावास का वर्ष तथा उनके उपदेश के स्थानो का आश्रय लिया है। उन्ही के आधार पर कहानियो को क्रमबद्ध किया है। कुछ स्थानो पर व्यतिक्रम हो सकता है। साधारणतया यह क्रम ठीक उतरा है। श्री राहुल साकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'बुद्ध-चर्या' में इस क्रम का अनुकरण किया है। उससे सहायता मिली है। उन्होने एक दिशा दिखायी है। उसका अनु-करण कर मैने काल-क्रम का निर्णय किया है। कुछ त्रुटि हो सकती है। उसके सुधार का भार भविष्य के लेखको पर छोड देना उचित होगा।

पुस्तक को मार्च से जून तक, काशी मे अपने पैतृक निवास-स्थान धोहट्टा, वाराणसी की चौथी मजिल मे लिखा है। भयकर गर्मी थी। लिखता था। सोता था। फिर उठता था। फिर लिखता था। बाहरी दुनिया से इन दिनो सम्बन्ध

टूट-सा गया था । मै अपने दशाश्वमेध घाट के मकान पर जाकर पुस्तक लिखना चाहता था । वहाँ सफाई कराई । किन्तु वहाॅ एक दिन के लिए भी बैठ न सका । हारने के कारण मन उचट गया था ।

ससदीय पुस्तकालय तथा १५, कैनिगलेन, नयी दिल्ली मे बैठकर टंकित पाण्डुलिपि को आमूल पुन देखकर शोधा । दैनिक हिन्दुस्तान' नयी दिल्ली मे कुछ कहानियाँ प्रकाशित हुई उनका हिन्दी जगत् मे स्वागत हुआ । इस पत्र मे प० जवाहरलाल का 'महाप्रस्थान' तथा 'वेद-कथा' की कुछ कहानियाँ क्रमश प्रकाशित हो चुकी थी । उन्हे नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली के स्वामी श्री कन्हैयालाल मल्लिक ने पुस्तकाकार प्रकाशित किया है ।

मैं चाहता था । उन्ही के यहाॅ से यह पुस्तक प्रकाशित हो । परन्तु मित्रवर श्री कृष्णचन्द्र बेरी ने मुझ से पाण्डुलिपि लेकर प्रेस मे दे दी । इस सहज स्नेह को मै टाल नही सका ।

पुस्तक हम चाहते थे कि नवम्बर सन् १९६७ई० तक निकल जाय। महावीर प्रेस काशी के स्वामी श्री बाबूलालजी जैन ने उत्तरदायित्व उठाया। किन्तु इसी बीच श्री बेरी जी के भाइयो मे विवाद उठ खडा हुआ । गृह विभाजन का मामला जटिल होता है। सभी कुछ अस्त-व्यस्त हो गया । पुस्तक का तेजी से चलता मुद्रण प्राय बन्द हो गया । किसी प्रकार अनेक कठिनाइयो को पश्चात् पुस्तक छप सकी है ।

पुस्तक मे प्रूफ की भयंकर गलतियाँ रह गयी है । मै प्रूफ काशीसे दूर रहने के कारण स्वय नही देख सका । तथापि श्री महादेव चतुर्वेदी जी ने प्रूफ देखा है । उन्हे धन्यवाद दिये बिना नही रह सकता ।

अन्त मे मै अपने प्रकाशक श्री कृष्णचन्द्र बेरी, मुद्रक श्री बाबूलाल जैन फागुल्ल तथा पाण्डुलिपि हिन्दी टकक थी चन्द्रदेव पाण्डेय, ग्राम व डाकखाना जनाडी, बलिया, उत्तरप्रदेश तथा ससदीय पुस्तकालय के सभी अधिकारियो तथा कर्मचारियो को धन्यवाद देता हू, जिन्होंने इस पुस्तक के तैयार करने मे सहयोग प्रदान किया है ।

काशी का निवासी होने के कारण सारनाथ बाल्यकाल से ही जाता रहा हूँ । सावन में सारनाथ महादेव का मेला लगता है । उन दिनो नगर से लोग सकुटुम्ब जाते थे । मिट्टी के बर्तन मे दाल, तरकारी, भात तथा बाटी बनाते थे । जब वर्षा आती तो भगदड मचती थी । आम के पेडो के नीचे आश्रय मिलता था ।

उन दिनो सारनाथ मे बर्मा वालो के एक छोटे मन्दिर और जमीदार की एक

पक्की इमारत जो सारनाथ महादेव के तालाव के पास थी, और कोई इमारत नही थी। केवल धमेक स्तूप और चौखण्डी स्तूप थे। सारनाथ का सग्रहालय बन गया था। उसमे खनन-कार्य से प्राप्त मूर्तियाँ रखी थी। धमेक स्तूप के पास एक जैन मन्दिर तथा उसी के दक्षिण दिशा मे सडक के पार जैन धर्मशाला थी। संग्रहालय के पीछे दो-चार घरो की आवादी थी। खपरैल के मकान थे। इसी प्रकार सारनाथ ग्राम भी कुछ खपरैल के मकानो का सग्रह था। सारनाथ महादेव का मन्दिर यथावत् है। केवल इतनी ही आबादी वहाँ पर थी। सारनाथ स्टेशन गाजीपुर जानेवाली सडक के समीप सारनाथ जानेवाली सडक पर लगभग एक फर्लाङ्ग दूर पर वना था। अव स्टेशन मन्दिर के समीप वौद्ध स्थापत्य शैली पर बन गया है।

उन दिनो सारनाथ का कोई महत्त्व नही था। हम छोटे थे। हमे सग्रहालय टूटी-फूटी मूर्त्तियो का एक कौतूहल स्थान अवश्य लगता था। कभी भूले-भटके, वर्मा, लका अथवा किसी बौद्ध देश से कोई भिक्षु आ जाता था। वह हमारे कौतूहल की सामग्री बनता था।

वे सारनाथ के खडहरो मे चुपचाप करवद्ध घूमते थे। धमेक स्तूप के पत्थर पर सोना रगडते थे। उस पर पुष्प चढाकर धूप और मोमवत्ती जलाते थे। अपनी समझ मे उन दिनो कुछ आता नही था। हम यही समझते थे। सारनाथ ईटो की खदान अर्थात् खान है। ईटो का पहाड है। जमीन मे भी ईटें गडी है। यह वात ठीक भी थी। धर्मराजिक स्तूप की सब ईटें काशीराज के वशज उठाकर ले गये। उन ईट और पत्थरो से जगतगज मुहल्ला शताब्दियो पूर्व आवाद हुआ। स्तूप मे रखे स्वर्ण-पात्र मे भस्म तथा अस्थि मिली थी। काशीराज ने उसे देखकर आज्ञा दी। उसका गगा मे प्रवाह कर दिया जाय। अतएव लगभग २५ शताब्दियो पश्चात् भगवान् की धातु गगा मे प्रवाहित की गयी।

हमारी उम्र वढती गयी। सारनाथ भी बढता गया। एक चीनी सज्जन ने एक कोठरी मे अस्पताल स्थापित किया। वर्मी धर्मशाला मन्दिर मे यात्री आकर ठहरने लगे। यात्रियो की सख्या वढने लगी।

अनागरिक धर्मपाल को मैने देखा है। उनके साथ रहा हूँ। वह चल नही सकते थे। पहिएवाली कुर्सी पर चलते थे। सन् १९२१ के पश्चात् भारत मे पुनर्जागरण का काल आया। भारतीयता के प्रति प्रेम वढा। पुराने इतिहास, गौरव, सस्कृत एव सभ्यता की ओर लोगो का ध्यान आकर्पित हुआ। सारनाथ पर भी लेख तथा पुस्तकें लिखी जाने लगी। जापान की उन्नति एव दक्षिण-पूर्व एशिया के देशो मे वौद्ध जागरण के कारण सारनाथ का महत्व वढ़ता गया। यात्री काफी सख्या मे आने लगे।

स्वर्गीय स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने सन् १९२२ ई० में बौद्ध गया का मन्दिर बौद्धो को देने का प्रस्ताव देश के सम्मुख रखा। आन्दोलन हुआ। जनता जागरूक हुई। भारतीय जनता ने समझा। हिन्दु और बौद्ध एक ही भारतीय धर्म की शाखा है। जापान, चीन तथा बौद्ध देशो के प्रति भाईचारे का भाव बढा। भारत अब तक बौद्ध जगत् के प्रति उदासीन था। उसने उदासीनता त्यागकर हाथ बटाना आरम्भ किया। बौद्ध जगत् की रुचि भारत की ओर बढने लगी।

महाबोधि सोसाइटी की स्थापना हो चुकी थी। बर्मा भारत का ही एक प्रदेश था। श्रीलका भी निकट था। दोनो हीनयान बौद्ध सम्प्रदाय जन बहुल देश थे। उनके यात्री बहुत अधिक सख्या मे आने लगे।

श्री अनागरिक धर्मपाल ने सारनाथ के पुनरुद्धार का बीडा उठाया। सारनाथ भारत मे कलकत्ता के पश्चात् बौद्ध-विचार तथा प्रचार का केन्द्र बन गया। मूलगन्ध कुटी विहार की परिकल्पना की गयी। तब मूलगन्ध कुटी विहार धमेक स्तूप के समीप बनाने की योजना थी। किन्तु तत्कालीन पुरातत्त्व-विभाग के निर्देशक श्री मार्शल ने उक्त स्थान देना स्वीकार नही किया, अतएव वर्तमान स्थान चुना गया। जहाँ आज मन्दिर बना है।

मन्दिर का पुराना नक्शा बडा विशाल था। उसमे हजारो व्यक्तियो के बैठने की योजना थी। परन्तु अर्थाभाव के कारण मन्दिर को लघु वर्तमान रूप देना पडा। हमारे कौटुम्बिक मित्र श्री सत्येन्द्रनाथ सान्याल पूर्वकल्पित मन्दिर बनाने का भार उठाये थे परन्तु अन्त मे इस लघु मन्दिर का ठीका काशी के श्री मुन्नालाल गोविल को दिया गया।

सारनाथ प्राय मास मे एक बार अवश्य जाता हूँ। उसे जगल से सुन्दर आबादी मे परिणत होते देखा हूँ। यात्रियो के लिए श्री युगल किशोर बिडला ने धर्मशाला बनवा कर महाबोधि सोसाइटी को सौंप दी। इस धर्मशाला के कारण यात्रियो को सुविधा प्राप्त होने के साथ ही साथ एक अभाव की पूर्ति हो गयी।

मूलगन्ध कुटी के उद्घाटन के अवसर पर समस्त विश्व के बौद्ध भिक्षु एकत्रित हुए थे। तिब्बत के बौद्धो का लामा नृत्य प्रथम बार यहाँ इस उत्सवकाल मे देखा। वह दिन बौद्ध जगत् के आधुनिक युग का उषाकाल था। प्रथम बार विश्व के भिक्षु कोने-कोने से आये थे। मिले थे। अपने को कुटुम्ब का सदस्य समझा था।

तत्पश्चात् चीना बाबा ने 'चीन मन्दिर' बनवाया। उसकी नीव तत्कालीन भारत स्थित चीन के कलकत्ता स्थित ट्रेड कमिश्नर ने रखी थी। स्थापना-दिवस के पत्र पर मैंने भी हस्ताक्षर किये थे।

बुद्ध-जगत् मे लुम्बिनी, बोध गया, सारनाथ तथा कुशीनगर चार स्थान तीर्थ यात्रा के लिए पवित्र माने गये है। बुद्ध गया पहली बार सन् १९२३ मे गया था। उसके पश्चात् कई बार गया हूँ। लुम्बिनी तथा कुशीनगर की भी यात्रा की है। लुम्बिनी स्थान हमे सारनाथ ही जैसा जीवनमय मिला।

मन जब उचटता, मैं सारनाथ चला जाता था। मुझे स्थान प्रिय लगता है। शन्ति मिलती है। वायु-मण्डल मे गूँज का अनुभव होता है। गम्भीरता का अनुभव होता है। अब बहुत कुछ बदल गया है। पच्चीससौवी बुद्ध जयन्ती के पश्चात् सारनाथ के सौन्दर्य तथा स्थान मे आमूल परिवर्तन हो गया है। फिर भी वायु-मडल मे भगवान् की वाणी जैसे गूँजती प्रतीत होती है।

जापानी चित्रकार ने मूलगन्ध कुटी विहार मे भित्ति-चित्र बनाये है। उसके साथ मेरे स्वर्गीय मित्र प्रसिद्ध चित्रकार श्री रमाकान्त कण्ठाले, अगस्तकुण्डा, काशी ने नि शुल्क कार्य किया था। उनका बगीचा भी सारनाथ की चौमुहानी पर था।

मै उस बुद्धभक्त चित्रकार को चित्रकारी करते वर्षो तक बैठा चुपचाप देखता रहा हूँ। वह अजन्ता जाता था वहाँ से चित्र की नकल उतारता था। वही की वेषभूषा के आधार पर उस पवित्रात्मा विदेशी ने लगन से, भक्ति से, श्रद्धा से भगवान् के जीवन-चरित्र को भित्तियो पर चित्रित किया है। कुछ दिनो तक जापान की सरकार उसे सहायता देती थी। समय अधिक लगने के कारण सहायता बन्द हो गयी। वह रात्रि मे चित्र बनाता था। बेचता था। उससे जो कुछ आय होती थी, उससे भरण-पोषण कर उसने चित्रण के महान् कार्य को समाप्त किया। इस धरती पर आज इस प्रकार के कितने श्रद्धालु व्यक्ति है।? परन्तु यही वे व्यक्ति है, जो अपने पीछे युगो तक मानव को अनुप्राणित करते रहते है। उसने सारनाथ की भित्ति पर कितना मार्मिक उद्‌गार लिखा है।

सारनाथ का प्रभाव मन पर पडता था। भगवान् की ओर देखते रहने की इच्छा होती थी। भित्ति चित्रो को बार-बार देखने पर भी मन नही भरता था। पचीसो वर्षो से उसे देखता आ रहा हूँ। जब जाता हूँ। कम-से-कम एक बार अवश्य देख लेता हूँ। सर्वदा नई भावना उठती है। नवीन प्रेरणा मिलती है।

काशी के धार्मिक सस्कर, हिन्दू धर्म की परपरा मे पलने के कारण अनायास बुद्ध की ओर झुकाव नही हुआ। अब भी यही बात है। मैं किसी ग्रन्थ को ईश्वर प्रदत्त नही मानता।

यदि कोई ग्रन्थ ईश्वर प्रदत्त है, तो उसकी भाषा भी ईश्वरीय होनी चाहिए जिसे सब समझ जायँ। वह भाषा ऐसी होनी चाहिए जो सबके लिए बोधगम्य

हो । परन्तु पुरातन वाइबिल इब्रानी मे है । नूतन वाइबिव, यूनानी भापा मे है । कुरान शरीफ अरवी भापा मे है । जिन्दाबेस्ता पहेलवी भाषा मे है । वेद वैदिक भापा मे है । गीता सस्कृत मे हैं । शिन्तो जापानी मे है । भगवान् सव भापाओ के लिए अलग हो गया । उसके मनानेवालो ने समझा । उन्ही की भापा भगवान् की भापा है । देवभापा है ।

भगवान् ने भापा का विवाद खडा कर दिया । मुसलमानो के लिए अरवी, यहूदियो आदि के लिए इब्रानी, पारसियो के लिए पहेलवी और आर्यो के लिए वैदिक भापा देवभापा हो गयी । धर्म-प्रचारको ने अपनी भापा दूसरो पर लादना धर्म समझा । नाम परिवर्तन कर देना पुनीत कार्य माना ।

भगवान् बुद्ध ने वोलचाल, तत्कालीन प्रचलित भापा मे उपदेश दिया है। उन्होने किसी ग्रन्थ की रचना नही की किसी एक ग्रन्थ को ईश्वरकृत नही माना । उनका उपदेश उनके मृत्यु के पश्चात् प्रथम सगीति मे महाकाश्यप की अध्यक्षता मे लिपिबद्ध किया गया । यह कार्य उनके निर्वाण के एक वर्ष के अन्दर ही राजगृह की सात वर्णी गुहा मे किया था । इसी प्रकार द्वितीय सगापयन किंवा सगति वैसाली मे एक सौ वर्ष पश्चात् और तृतीय सम्राट् अशोक के समय पाटलीपुत्र मे त्रिपिटको के पाठ शुद्ध करने के लिये हुई थी ।

कनिष्क ने त्रिपिटको को एक सगीति, जो काश्मीर मे हुई थी, शुद्ध पाठकर, ताम्रपत्र पर खुदवा कर काश्मीर मे कही स्तूप के नीचे गडवा दी थी । किन्तु वह अभी तक मिली नही है। यदि वह मिल जाय, तो त्रिपिटको का शुद्ध तथा मूल रूप प्राप्य हो सकता है । इस ग्रन्थ का आधार प्राप्य त्रिपिटक है । कनिष्क के समय सर्वप्रथन बुद्ध-प्रतिमा भगवान् के परिनिर्वाण के लगभग सवा छ वर्प पश्चात् बनायी गयी । उस समय से प्रतिमा स्थापित करने की परम्परा चल निकली ।

यह ग्रन्थ मैने श्री मोरार जी रणछोडजी देसाई को भेट किया है । उनसे अपने बहुत-से विचार मिलते नही तथापि मन कहता है कि उन्हे भेंट करूँ, इसीलिए भेट किया है ।

समय पर मित्र धर्म का पालन बहुत कम लोग करते है । तथापि हमारे जिन मित्रो ने जाने अथवा अनजाने मेरी किसी प्रकार की सहायता इस भौतिक दु ख-काल मे की है, उन्हे अजलिवद्ध प्रणाम करता हूँ । उनमे मै काशी के मर्व श्री गिरिधारीलाल तथा श्री अलखनाथ यादव, दिल्ली के श्री अमरसिह छिब्बर, श्री सुरेश कुमार भटनागर तथा चन्द्रदेव पाण्डेय पुस्तक के टकक तथा रोशन अली खाँ बनारसी को न भूलूँगा । उसका स्नेह यथा पूर्व बना रहा । परिस्थितियाँ उन्हे मित्र धर्म से विचलित न कर सकी ।

यह कार्य समाप्त हुआ। बुरा है। भला है। इसे विज्ञ पाठक परखेंगे। एक काम उठाया था। समाप्त हुआ। किसी काम की समाप्ति पर नैसर्गिक आनन्द का अनुभव होता है, वही इस पुस्तक का मेरा पारिश्रमिक है।

अपनी त्रुटियो के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। इस लोक मे रहूँ, परलोक मे रहूँ। जहाँ कही रहूँ, यह वात स्मरणीय रहेगी। इस पुस्तक को किसी स्वार्थदृष्टि से नही लिखा है। धनार्जन के लिए नही लिखा है। भगवान् बुद्ध उनके अग्र-श्रावको-श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ का चरित्र, जीवन-वृत्त, बौद्ध-दर्शन तथा सिद्धान्त का जनता दर्शन प्राप्त कर सके, मेरा वेकार समय एक अच्छे काम मे लग सके, इसी उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की है।

नमो बुद्धाय—

घीहट्टा, वाराणसी
२० ११ ६८

—रघुनाथ सिंह

संक्षिप्त अंग्रेजी पुस्तक शीर्षक तालिका

A = अंगुत्तर निकाय, पाँच भाग, पी टी एस (पाली टेक्स्ट सोसाइटी)

AA = मनोरथ पूरणी अगुत्तर कमेण्टरी, २ भाग, एस एच वी (साइमन हेवा वितरने विक्वेष्ट सीरीज़ कोलम्बो)

Abhs = अभिधम्मत्थ संगह सव पी टी एस जनरल सन् १८८४ ई०

Ah = अपदान, २ भाग पी टी. एस

ApA = अपादान कमेण्टरी, एस एच वी

Avs = अवदान शतक, स्पेयर (वाइविल-वुधिका)

Bu = बुद्धवंग, पी टी एस

Bua = बुद्धवंश कमेण्टरी, एस एच वी

D = दीघ निकाय, ३ भाग पी टी एस्

Dath = दत्थवंश, पी टी एस् , जनरल सन् १८८४ ई०

DhA = धम्मपद अट्टकथा, ५ भाग पी टी एस्

DhS = धम्मसगणी, पी टी एस्.

DhSA = अट्ठ शालिनी, पी टी एस्

DPV = दीप वंश, एच. ओल्डेनवर्ग, (कैम्ब्रिज)

Dvy = दिव्यावदान

Gv = गंध वश, पी टी एस् जनरल सन् १८८६ ई०

J = जातक, फाउस वोल्ल सस्करण, पाँच भाग

Kvu = कथा वत्थु, पी टी एस्

M = मज्झिम निकाय, ३ भाग पी टी एस्

MA = पपंच सूदनी, मज्झिम कमेण्टरी, २ भाग अलु विहार सीरीज कोलम्बो

Mhv = महा वश, जीजर पी टी एस

Mil = मिलिन्द पन्ह, (सस्करण) ट्रेन्कनर (विलियम नरगोटे)

Mtu = महा वस्तु, (सस्करण) सेनात ३ भाग

Mt = महावश टीका, पी टी एस्

Nida = महा निद्देस कमेण्टरी, एस्. एच् वी

PAS = पटिसम्भिदामग्ग, २ भाग पी. टी एस्.

PSA = पटिसम्भिदामग्ग कमेण्टरी, एस् एच्. वी,

Pug = पुग्गल पञ्ञत्ति, पी टी एस्.

PvA = पेतवत्थु कमेण्टरी, पी टी एस्.

S = सयुक्त निकाय, ५ भाग पी टी एस्

SA = सारत्थप्पकासिनी सयुक्त कमेण्टरी

SaS = शासन वश, पी टी एस्

SN = सुत्त निपात, पी टी एस्

SNA = सुत्त निपात कमेण्टरी, २ भाग पी टी एस्

Sp = समत पासादिका, ४ भाग पी टी एस्

Svd = शासन वश दीप, विमल शार थेरा कोलम्बो सन् १९२९ ई

Thg = थेर गाथा, पी टी एस

ThgA = थेर गाथा कमेण्टरी, २ भाग एस् एच् वी

Thıg = थेरी गाथा, पी टी एस्.

ThıgA थेरी गाथा कमेण्टरी, पी टी एस्

Ud = उदान, पी टी एस्

UdA = उदान कमेण्टरी, पी टी एस्

Vıbha सम्मोह विनोदिनी विभग, कमेण्टरी पी टी एस्

Vın = विनय पिटक, ५ भाग ओल्डेनबर्ग (विलियम्स नरगोट)

Vsm = विसुद्धिमग्ग, २ भाग पी टी एस्

Vv = विमान वत्थु, पी. टी एस्

VvA = विमान वत्थु, कमेण्टरी, पी टी एस्

ZDMg = Zeıtschrıft der Deutschen Morgenlandıschen Gesellschaft

मलल सेकर = डिक्शनरी आफ पालि नेम

सन्दर्भ-ग्रन्थ

पालि ग्रन्थ—

त्रिपिटक नालन्द देवनागरी पालिग्रन्थ मालाय
बिहार राजकीयेन, पालि पकासन मण्डलेन, बिहार।

सस्कृत—

अश्वघोष = बुद्ध चरित

हिन्दी ग्रन्थ—

राहुल साकृतायन (१) बुद्ध चर्य्या
(२) महामानव बुद्ध
(३) विनय पिटक
(४) मज्झिम निकाय
(५) बौद्ध सस्कृति

राहुल साकृतायन तथा भदन्त आनन्द कौशल्यायन = बुद्ध वश

राहुल साकृतायन तथा जगदीश काश्यप = दीघ निकाय

आचार्य नरेन्द्र देव = अभिधर्म कोश

भदन्त आनन्द कौशल्यायन (१) अगुत्तर निकाय
(२) जातक छह भाग
(३) महावश

भिक्षु जगदीश काश्यप = मिलिन्द प्रश्न

भिक्षु जगदीश काश्यप एव भिक्षु धर्मरक्षित = (१) सयुक्त निकाय
(२) उदान

भिक्षु धर्मरक्षित (१) धम्म पद
(२) इति वुत्तक
(३) श्री लका

भिक्षु धर्म रत्न (१) खुद्दक पाठ
(२) सुत्त निपात
(३) विमान वत्थु-पेत वत्थु-थेर गाथा

भरत सिंह उपाध्याय (१) बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल
(२) थेरी गाथाएँ

सूर्य नारायण चौधरी = सौन्दरनन्द

धर्मानन्द कोसम्बी = भगवान् बुद्ध

लेखक की अन्य पुस्तकें

राजनीति

१—धर्म-निरपेक्ष राज्य (पुरस्कृत)
२—आधुनिक राजनीति का क-ख-ग
३—फासिज्म
४—जागृत नेपाल
५—टुवर्डस फ्रीडम
६—कसिडर

धर्म

१—विश्व के धर्म-प्रवर्तक
२—सर्वधर्म समभाव
३—रामायण कथा
४—योगवासिष्ठ कथा
५—वेद कथा
६—बुद्ध कथा

पर्यटन

१—आर्याना
२—आस्ट्रेलिया
३—दक्षिण-पूर्व एशिया (पुरस्कृत)

उपन्यास

१—इन्द्रजाल (द्वितीय संस्करण)
२—मैं
३—भिखारिणी
४—सस्कार (द्वितीय सस्करण)
५—कहा
६—एक कोना
७—चौरा
८—लावारिस

अन्य

१—पडित जवाहरलाल नेहरू का महाप्रस्थान

यंत्रस्थ

१—राजतरगिणी (३ खड)
२—कश्मीर कीर्ति कलस (३ खंड)

वंश

द्वीपो मे जम्बूद्वीप श्रेष्ठ है। बुद्ध जम्बूद्वीप[1] मे जन्म लेते है। द्वीप दस सहस्र योजन विस्तृत है। मध्यदेश जम्बूद्वीप मे है। उसकी सीमा सुनिश्चित है। पूर्व सीमा पर कजगल[2] है। अनन्तर शाल वन है। पूर्व-दक्षिण मे सललवती[3] सलिला है। उसके पश्चात् प्रत्यत देश है।

दक्षिण दिशा मे सीमा पर सेत कण्णिक[4] जनपद है। तत्पश्चात् सीमान्त देश है। पश्चिम दिशा मे सीमान्त पर थूण[5] ग्राम है। ब्राह्मणो द्वारा निवसित है। अनन्तर सीमान्त देश है। उत्तर दिशा मे उशीरध्वज[6] पर्वत है। तत्पश्चात् सीमान्त देश है।

मध्य देश तीन सौ योजन लम्बा है। दो सौ पचास योजन चौडा है। नव सौ योजन विस्तृत है। पवित्र भूखण्ड है। उसमे बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, अग्रश्रावक, महाश्रावक, अस्सी महाश्रावक, चक्रवर्ती एव अन्य महाप्रताप-शाली, ऐश्वर्यशाली, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, जन्म लेते है। उस मध्यदेश मे पवित्र कपिलवस्तु नगर है।

ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ण श्रेष्ठ कहे गये है। इन्ही कुलो मे, वर्णो मे, लोक मान्य जन्म ग्रहण करते है। तत्कालीन समाज मे क्षत्रिय कुल लोक-मान्य था। उस क्षत्रिय कुल मे राजा शुद्धोदन थे।

राजा शुद्धोदन[7] सूर्यवशी थे। उनका गोत्र गौतम था। कुल शाक्य था। कपिलवस्तु गणराज्य के महासम्मर्त[8] राजा थे। उनके पूर्वज इक्ष्वाकु थे। उनके प्रपिता का नाम जयसेन था। कल्पवृक्ष के अमृत फल के समान सिह हनु के पुत्र थे। शुक्लोदन, अमृतोदन, धौतोदन तथा शुक्रोदन उनके सगे भाई थे। राजा शुद्धोदन शुद्ध शरद शर्वरी समान प्रजा हेतु सुखकर थे। महाराज इक्ष्वाकु तुल्य प्रभावशाली थे।

राजा शुद्धोदन का प्रथम विवाह देवी महामाया से हुआ था। देवीकी एक मात्र सन्तान सिद्धार्थ थे। देवी दिवगत हुईं। तत्पश्चात् द्वितीय विवाह राजा का महाप्रजापति[9] गौतमी से हुआ था। देवी महामाया की सगी बहन थी। महाप्रजापति गौतमी की सन्तान नन्द और रूपनन्दा थी।

देवी महामाया गर्भी थी। किन्तु चंचल नही थी। वाचाल नहीं थी। मग्न नहीं थी। कर्मों से पारमितायें पूर्ण करती थी। अखण्ड शील पालन मे रत थी।

बोधिसत्त्व ने विचार किया। मध्य देशान्तर्गत कपिलवस्तु[3] मे जन्म ग्रहण करेगे। राजा शुद्धोदन पिता होगे। देवी महामाया माता होंगी। माता केवल सात दिन जन्म के पश्चात् जीवित रहेंगी। उनका जीवन केवल दस मास सात दिन शेष रह जायेगा।

आषाढ का उत्सव था। कपिलवस्तु नगर मे उल्लास था। उत्सव घोषित हो चुका था। उत्सव मे लोक उत्साहित थे। वीथियां सजी थी। विशाखा तोरणो से सजे थे। राजपथ द्वारो से सजे थे। भवन पुष्प-मालाओ से सजे थे।

नर्तकियो से नगर पूरित था। नूपुरो की झंकार से झंकरित था। संगीत लय मे तरंगित था। मृदंग ताल मे उल्लोलित था। वृन्दगान मे मुदित था। कामिनियों के मंगलगान मे प्रसन्न था।

आषाढ पूर्णिमा मे सात दिन शेष थे। देवी महामाया मद्यपान विरत थी। गन्ध द्वारा सुरभित थी। अंगराग से शोभित थी। उत्सवो मे उत्साहित थी। किन्तु शालीनता के साथ। मर्यादा के साथ। भावी बुद्ध के माता के अनुरूप।

सातवाँ शुभ दिन विकसित हुआ। प्रत्यूष मे देवी उठी। उषा ने अभिनन्दन किया। आकाश थाल मे अरुण किरणे मुस्करायी। प्राची ने थाल उठाया। देवीकी आरती उतारी। कलरव ने वन्दना किया। देवी के छाया स्पर्श से सुगन्धित जल-पात्र कृत-कृत्य हुए।

देवी के गात्र जल विन्दुओ से तरल हुए। शिथिलता ने नमस्कार किया। अरुण उज्ज्वल पथ की ओर बढा। स्फूर्ति ने प्रवेश किया, देवी के रोम कूपो मे। स्नान हुआ पूर्ण। काया हुई प्रसन्न।

अलकारो की शोभा वृद्धि हुई, शरीर स्पर्श से। उनकी शोभा मुखरित हुई, शरीर की शोभा मे। उनकी दीप्ति बढी, देवी के दीप्त प्रतिबिम्व मे।

दान की वृद्धि के साथ सूर्य होने लगे प्रखर। कीर्त्तिलता लगी बढने। दानसे प्रसन्न हुए नर-नारी। देवी के दान से मुखरित हुए, ब्राह्मणो के मगल गान। चारणो की वाणी ने गाया वश-गौरव। वन्दीजनो ने किया वन्दना। देवी ने रखा निराहार व्रत।

सूर्य धावित था, पश्चिम की ओर। दिन का अवसान आने लगा समीप। सन्ध्या आयी। निशा भिनी।

शयन-कक्ष मे सुगन्धित तैलदीप का दिव्य प्रकाश पुज फैला था। सुरुचिपूर्ण ढग से सजा था। प्रफुल्लित कमल दल से सुसज्जित था। मालाओ से सुरभित था।

देवी महामाया के चरण कमल मुहुर-मुहुर शयन-कक्ष की ओर वढे। अलकृत शय्या पर देवी की पवित्र कोमल काया ने स्पर्श किया। पर्यक हो गया प्रसन्न। परिचायिकाएँ करने लगी विजन। रजत माला तुल्य, उज्ज्वल कमल सुअलकृता, कुसुम सुरभि पूर्ण, देवी लेट गयी।

देवी की ज्योति अन्तुर्मखी होने लगी। वातायन से शीतल मरुत् ने किया प्रवेश। वातायन से पूर्ण शशि विम्ब की धवल शर्वरी ने किया प्रवेश। शरीर मे विश्राम ने किया प्रवेश। निद्रा देवी ने किया काया मन्दिर मे प्रवेश।

आधार ग्रन्थ

खुद्दक निकाय वुद्ध वंसो (पालि) २७ १-२४

दीघ निकाय महावग्ग महापदान सुत्त (पालि) १ : ५, ६, १२,

महावश : २

जातक निदान कथा।

मि० प्र० ४ ६ ५२

सौन्दरनन्द सर्ग १ तथा २

---

(१) जम्वुद्वीप बौद्ध, जैन तथा पुराणो की परिभापाओ मे अन्तर है। पुराणो के अनुसार जम्वु द्वीप सप्त द्वीपो मे विभाजित था—जम्वु, शाक, कुश, शाल्मल, क्रौच, गोमेद तथा पुष्कर। उनके नव वर्पो मे एक वर्प भारत वर्ष है। भारत वप के नव खण्ड—इन्द्र, कशेरूमान, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान, नाग द्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण तथा नवम के लिये सागर सवृत शब्द दिया गया है। राजशेखर ने काव्य-मीमासा मे इसे कुमारी द्वीप वताया है।

जैन मान्यता के अनुसार जम्वु द्वीप को एक महाद्वीप मानते है। उसे सात वर्पो किंवा भेदो का उल्लेख मिलता है—भरह, हेमवय, हरि, विदेह, रम्मग, हेरण्णवय तथा एराव है।

वौद्ध मान्यता के अनुसार जम्वु द्वीप के सात राजनैतिक विभाजन थे—(१) कलिंग, (२) अस्सक, (३) अवन्ती, (४) सौवीर, (५) विदेह, (६) अग तथा (७) काशी। उनकी राजधानियाँ क्रमश दत्तपुर, पोतन, माहिष्मती, रोरुक, मिथिला, चम्पा तथा वाराणसी थी।

(२) कजगल यह एक समृद्धिशाली निगम था। यहाँ का कुश सुन्दर तथा उत्तम होता था। इसमे वेणुवन किंवा सुवेणु वन तथा दूसरा मुखेलुवन था। कचगला भी इसको कहते थे। एक मत है कि यह ब्राह्मण ग्राम था। मध्य-देश की पूर्वीय सीमा पर था। मज्झिम निकाय के १५२वें इन्द्रिय भावना सुत्त का भगवान् ने यहाँ उपदेश दिया था। एकमत है कि यह सुह्म जनपद मे था। सुह्म को कही-कही सुम्य भी कहा गया है। सथाल परगना मे ककजोल स्थान से इसे मिलाया जाता है।

(३) सललवती नदी सिलई नदी।

(४) सेत कण्णिक सम्भवत सुह्म जनपद मे निगम था। निश्चित स्थान का साधिकार पता नही चल सका है। यह नागसेन का जन्म स्थान था।

(५) थूण वर्तमान थानेश्वर पजाव मे है।

(६) उशीरध्वज : एक पर्वत है। मध्यदेश के उत्तरी सीमा पर था। हरिद्वार मे कनखल के समीप उशीर गिरि पर्वत इसे माना जाता है। यूअन् चुआन् ने मथुरा के समीप उरुमुण्ड के समीप शीर किंवा उशीर पर्वत का उल्लेख किया है।

(७) शुद्धोदन इक्ष्वाकु पुत्रो की वश परम्परा मे थे। उनके सिद्धार्थ तथा

नन्दनामक दो पुत्र थे। उनका आचरण राजर्षि तुल्य था। उनके सामन्त विनीत तथा वशवर्ती थे।

(८) महासम्मत शाक्यो के आदि राजा थे। महासम्मत से बुद्ध तक वश वृक्ष कभी छिन्न नही हुआ था। वश परम्परा टूटो नही थी। वह सूर्य वशी थे। उन्हे महासम्मत इसलिये कहा जाता था कि पृथ्वी पर जव अनाचार फैला तो जनता ने सर्वसम्मति से उन्हे राजा निर्वाचित किया था। महासम्मत के राज्य मे ताडना, बहिष्कार, जुर्माना आदि दण्ड के प्रकार अज्ञात थे। एक मत है। महासम्मत मनु थे। श्री लका के राजा अपनी वशावली महासम्मत से जोडते थे।

(९) थेरी गाथा (स० ५५) मे महा प्रजापति गौतमी को महा सुप्रवुद्ध की कन्या कहा गया है। महावश (पृष्ठ १०) में माया तथा प्रजापति गौतमी दोनो को अजन की कन्याएँ कहा गया है। सुप्रवुद्ध और दण्डपाणि को अजन का पुत्र अर्थात् प्रजापति का भ्राता कहा गया है। महावश के परिशिष्ट एक मे इसी वात की पुनरावृत्ति की गयी है। सुप्रबुद्ध और पुण्डरीक नाम दिये है। महावंश दो ही भ्राता मानता है। परन्तु पुण्डरीक के स्थान पर दण्डपाणि नाम देता है। सुप्रवुद्ध एक दूसरे शाक्य थे। जिनका भूमिमे लुप्त होना मलिन्द प्रश्न कहता है। म० प्र० ४ १ २

(१०) शुक्रोदन कतिपय लेखको मे शुद्धोदन के चार भाइयो का उल्लेख किया है। शुक्रोदन का नाम छोड दिया है। परन्तु महावश मे शुद्धोदन के एक और भाई का नाम शुक्रोदन कहा गया है। महावश के अनुसार बुद्ध के पिता पाँच भाई और दो वहने थी। मैंने इसी को माना है।

(११) महामाया उनकी चालीस से पचास वर्ष की अवस्था के मध्य भगवान् ने जन्म लिया था। पिता शाक्य अजन थे। वह देवदह शाक्य के पुत्र थे। माता का नाम यशोघरा था। वह जयसेन की कन्या थी। पूर्व जन्म मे विपस्सी बुद्ध के समय में ९१ कल्प पूर्व वह राजा वन्धुमा की ज्येष्ठ कन्या थी। राजा के अधीनस्थ सामन्त ने राजा को चन्दन तथा एक स्वर्ण माला भेंट दिया। चन्दन राजा ने ज्येष्ठ तथा माला कनिष्ठ कन्या को दिया। ज्येष्ठ कन्या ने चन्दन का भूरा बनाया। उसे लेकर बुद्ध के समीप गयी। कुछ भूरा भगवान् को शरीर मे लगाने के लिये दिया। कुछ उनकी कुटी मे सुगन्धि के लिये बिखेर दिया। भगवान् का सुवर्ण वर्ण देखकर देवी की इच्छा हुई। पुत्र रूप

से उनके गर्भ मे भगवान् का शुभ आगमन हो। यही कारण था कि भगवान् ने महामाया के इस जन्म मे उनके गर्भ मे प्रवेश किया।

(१२) देवदह निगम के रूप मे देवदह सुत्त मे इसका उल्लेख मिलता है। शाक्य जनपद मे यह निगम था।

(१३) कपिलवस्तु वर्तमान वस्ती जिला के शुहरतगढ रेलवे स्टेशन से १२ मील दूर नैपाल की तराई मे तौलिहवा बाजार के समीप तिलौरा कोट है। इस जनपद मे चातुमा, सामगाम, उलुम्ब्र, सक्कर, शीलवती तथा खोमदुस्स मुख्य नगर एव ग्राम थे। कपिल गौतम मुनि का हिमालय के अंचल मे आश्रम था। इक्ष्वाकु वशी राजकुमार वहाँ निवास की इच्छा से गये। उनके ज्येष्ठ भ्राता योग्य और महात्मा थे। कनिष्ठ भाई अयोग्य तथा मूर्ख था। माता के शुल्क मे प्राप्त राज्य नही ग्रहण किया। वन का आश्रय लिया। उनके उपाध्याय कपिल गौतम हुए। अतएव वे कौत्स गुरु के योग के कारण गौतम कहे गये। जहाँ तपस्या किया। वह स्थान शाल वन से आवृत था। वे इक्ष्वाकु वशीय शाक्य नाम से विख्यात हुए। गौतम एक दिन जल कलश के साथ आकाश मे चले गये। राजकुमारो से बोले। वे उनका अनुकरण करें। मुनि ने आश्रम के चारो ओर जलधारा गिरायी। यथा शक्ति राजपुत्र रथो पर मुनि का अनुकरण करते थे। मुनि ने कहा—मेरे स्वर्गगामी होने पर यहाँ पर एक नगर का निर्माण करो।

गौतम के दिवगत होने पर राजकुमार उच्छृखल हो गये। शिकार करने लगे। तपस्वियो ने आश्रम त्यागकर हिमालय का आश्रय लिया। कालान्तर मे वहाँ एक नगर स्थापित किया गया। नगर की परिखा नदी के समान चौडी थी। सडकें सीधी थी। प्राचीर पर्वत तुल्य थी। बाजार सुविभक्त थे। श्वेत अट्टालिकाओ से पूर्ण थे। कपिल के आश्रम स्थान पर नगर बसाया गया था। अतएव उसका नाम कपिलवस्तु पडा। उन राजपुत्रो ने श्रेष्ठ भाई को निर्वाचित कर राज रक्षा निमित्त राजा बनाया।

जन्म

देवी महामाया को स्वप्न आया—उज्ज्वल वर्ण हाथी के रूप मे बोधि-सत्त्व ने शयन कक्ष मे प्रवेश किया। सूँड मे था रजत कमल। देवी महा-माया की शय्या की बोधि सत्त्व ने तीन बार प्रदक्षिण की। फिर देवी की कुक्षि मे प्रवेश किया। रानी की निद्रा टूटी। परिचारिकाएँ परिचर्या मे लगी। किन्तु रानी के मस्तिष्क मे स्वप्न की घटना चक्कर लगा रही थी। रानी जानना चाहती थी—स्वप्न का रहस्य।

राजा ने चौसठ नैमित्तिक ब्राह्मणो को आमन्त्रित किया। उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। उनसे पूछा स्वप्न का रहस्य।

ब्राह्मणो ने उत्तर दिया—'राजन्! देवी ने गर्भ धारण किया है।'

राजा ने मृदु स्वर से पूछा—'महात्मन्! गर्भ का रूप क्या होगा!'

प्रश्न का तात्पर्य जानकर ब्राह्मणो ने उत्तर दिया—'देवी की कुक्षि मे स्थित गर्भ-पुत्र है। कन्या नही है।'

राजा का कमल मुख खिल गया। नम्रतापूर्वक निवेदन किया—'पुत्र का भविष्य कैसा है?'

ब्राह्मणो ने परस्पर विचार किया। वे बोले—'राजन्! यदि पुत्र गृहस्थ धर्म मे रहेगा तो चक्रवर्ती सम्राट् होगा।'

'नही तो—?' राजा ने शीघ्रता पूर्वक पूछा।

ब्राह्मण कहते-कहते रुक गए। 'यदि परिव्राजक हुआ तो—।'

'तो क्या होगा?' राजा ने पूछा।

'बुद्ध होगा।'

ब्राह्मणो ने गर्भस्थ शिशु को प्रणाम किया और राजा हो गए गम्भीर।

गर्भ धारण किए जब दश मास होने को आए तो रानी ने अपने मायके जाने की इच्छा प्रकट की।

राजा की अनुमति मिलने पर देवी महामाया पीहर जाने की सुखद कल्पना से प्रसन्न हो गई।

देवी ने राज कुलोत्पन्न मनोज्ञ सुन्दरियो के साथ, कुलागनाओ के साथ, देव स्वरूप राजपुरुषो के साथ, राजकीय शोभा के साथ, देवदह के लिये, मंगल वेला मे, शुभ मुहूर्त मे प्रस्थान किया।

देवदह और कपिलवस्तु के मध्य लुम्बिनी की पवित्र भूमि थी। विस्तृत हरित शाल वन था। वह दोनों नगर वालो को प्रिय था। उस पर देवदह और कपिलवस्तु दोनो स्थानो के लोगो की ममता थी। वह दोनो का था।

लुभावनी वन-श्री देख कर देवी आनन्दित हो गई। वन भ्रमण की इच्छा हुई। परिचारिकाओ तथा राज्याधिकारियो सहित वन मे प्रविष्ट हुई। वनस्थली देवी के चरण-स्पर्श से फूल उठी।

वैशाख पूर्णिमा थी। पुण्य नक्षत्र था। दिशायें स्वच्छ थी। गगन निरभ्र था। देवी एक पुष्पित मगल शाल वृक्ष के नीचे आकर खडी हो गई। शाखाएँ कुसुम भार से विनत थी। देवी की इच्छा हुई शाखा को पकड़े। देवी की इच्छा जानकर शाखा स्वत झुक गई। देवी का दाहिना हाथ उठा। करपल्लवो मे आ गई कोमल शाखा। नवपल्लवो मे आश्रयशील पक्षी लगे मगल गान गाने।

शाखा ग्रहण किये खडी देवी की वह शोभा अनुपम थी। उनका सौन्दर्य दिव्य था। सुअलकृत थी। प्रत्येक आभूषण, देवी के पवित्र शरीर पर इस वेला मे जैसे चेतन थे। देवी के दाहिने स्कन्ध प्रदेश पर पडा उत्तरा-सग मृदुल पवन प्रवाह मे पताका तुल्य फहरा जाता था। सकेत करने लगता था। आनेवाले शुभ मुहूर्त का।

देवी का एक हाथ शाखा पर था। दूसरा हाथ लटका था। करतल खुला था। रजका राजित था। केयूर मे मरकत की झालर गौर गोल भुजापर स्वर्ण ककण मे जटित वैदूर्य अपनी प्रभा से प्रात रश्मियो से स्पर्धा करता था।

देवी का अधो वस्त्र अति भव्य था। उसका रग हलका था। किनारी सुवर्ण सूत्रो से मण्डित थी। अधोशुक के ऊपर कटिभाग से सुवर्ण मेखला, वाम कटि पार्श्व से दक्षिण तक, अधोगामिनी सरिता तुल्य चली गयी थी। उदरावर्त के अधोभाग से मुक्ता लडी मुक्त गुच्छ के साथ दोनो ऊरुओ के बीच फुफती पर लटक रही थी। कण्ठ की सुवर्ण माला, मुक्ता माला दाहिनी ओर से बायी ओर झुक गयी थी। वाम

कुण्डल झूल रहे थे और दाहिने कुण्डल कपोलो-पर स्थिर थे। जूडा मे अर्धविकसित उज्ज्वल, रक्तिम, पीत, हरित मिश्रित पुष्पो को वेणी थी। ललाट पर सिन्दूर की बिन्दी थी। नेत्रो मे हलका अजन था। ओष्ठ अरुण थे। पतले थे। मुख सुगन्धित था। उँगलियो के नख रगे थे। करपृष्ठ पर चित्रकारी थी। पादागुलितल रॉगा से अरुण थे। पादागुलियो के नख रंजित थे। पादागुलियो से पार्ष्णि तक चित्रकारो फैली थी। उस पर स्वर्ण पायल थे। उनमे घुघरुओ के स्थान पर मुक्ता झूल रहे थे।

अकस्मात् देवी को प्रसव वेदना हुई। देवी ने सकेत किया। वस्त्र वितान उनके चारो ओर घेर दिया गया। लोग वहॉ से हट गए।

शाल शाखा देवी के पवित्र दाहिने हाथ मे थी। गर्भोत्थान हुआ। तुरन्त चारो महाब्रह्मा सुवर्ण जाल लेकर वहाँ उपस्थित हुए।

भगवान् ने माता के गर्भ का त्याग किया। भगवान् स्वर्ण जाल मे आ गए। चारो महाब्रह्मा ने स्वर्ण जाल देवी के सम्मुख रखा। देवी को प्रणाम किया। निवेदन किया—'देवी ! आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है।'

देवी ने देखा—गर्भ मल से अलिप्त कुक्षि त्याग कर निकले मणितुल्य बुद्ध को।

चार महा राजाओ ने बुद्ध को स्वर्ण जाल से लेकर मृग चर्म मे ग्रहण किया। तत्पश्चात् मानव ने उन्हे दुकूल करण्ड मे ग्रहण किया। अनन्तर दुकूल से निकल कर भगवान् उत्फुल्ल कमल पर खडे हो गए। भगवान् की सरल दृष्टि पूर्व दिशा की ओर उठी।

उस महापुरुष ने दसो दिशाओ की ओर दृष्टिपात किया। उत्तर दिशा की ओर चक्रवर्ती राजाओ तुल्य सात पद गमन किया। भगवान् को गमनशील देखकर चारो महाब्राह्मणो ने श्वेत छत्र डुलाया। देवताओ ने खड्ग, उष्णीष, पादुका आदि राजचिह्न दिए। सातवे पद पर पहुँचते ही बोल उठे 'जगत् मे मै श्रेष्ठ हूँ।'

× × ×

राजा शुद्धोधन के कुल पुरोहित थे तपस्वी काल देवल[२]। उन्हे पता लगा तो वे भी आए। तपस्वी ने जिज्ञासा की—'राजन् ! आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है ?'

राजा ने सस्मित 'हाँ' कहा। तपस्वी की मुद्रा प्रफुल्लित हो गई। उसने राजा से कहा—'राजन्! क्या उस महान् पुरुष का मै दर्शन कर सकूँगा।'

दो परिचारिकाएँ आई सुअलंकृत शिशु के साथ।

पाण्डु वर्ण कम्बल मे रखी जैसे स्वर्ण मुद्रा सुन्दर लगती है उसी प्रकार श्वेत छत्रधारी शिशु सुन्दर था। शिशु की कान्ति सुवर्ण तुल्य जाज्वल्यमान थी। वे अगार तुल्य थे। गगन मध्य निर्मल शशि विम्व तुल्य थे। मेघ रहित शरदाकाशगत भुवन भास्कर तुल्य थे।

राजा ने शिशु को काल देवल के सम्मुख बढाया। तपस्वी ने शिशु को अपने दोनो हाथो मे ले लिया। हाथो में शिशु को किंचित् उछाला। शिशु को प्रसन्न देखकर तपस्वी हँसे। राजा विस्मित हुए।

अकस्मात् तपस्वी गम्भीर हो गये। उनकी भौहे नत हुई। उनकी दृष्टि दक्षिण पार्श्व मे रखे कमण्डलु पर पडी। चौकी के सहारे रखे दण्ड पर पडी। उन्होने गगन की ओर देखा। वह कुछ विचार करने लगे। उनकी आँखे तरल हो गयी। राजा चकित हुए। दोनो परिचारिकाओ का मुख आश्चर्य से खुल गया। उनकी कौतूहल पूर्ण दृष्टि तपस्वी के मुखमण्डल पर स्थिर हो गयी। राजा ने सोचा तपस्वी शायद भविष्य जानकार उद्विग्न हो गए है। राजा ने तपस्वी के मुख के समीप अपना कान करते हुए पूछा, 'भन्ते! क्या भविष्य सकटापन्न है?'

'नही राजन्!' तपस्वी ने शिशु को श्रद्धापूर्वक मस्तक से लगाते हुए उत्तर दिया।

'आप हँसे, फिर आप रोये ·· ?' राजा ने संकेत द्वारा प्रश्न किया।

परिचारिकाएँ कुछ आगे खिसक आई। उनकी उत्सुक दृष्टि काल देवल पर लगी थी।

'अपने दुर्भाग्य पर रोया, राजन्!'

'यह आपका दुर्भाग्य कैसे?'

'राजन्! मैने शिशु के लक्षण देखे है। यह पुरुष अद्भुत है।'

'महात्मन्! इसके लक्षण क्या है।'

'यह महापुरुष बुद्ध होगा। किन्तु उस समय तक मै जीवित नही रहूँगा। यही सोचकर मेरी आँखे भर आयी थी राजन्। यही मेरे दुर्भाग्य

का कारण है। आप सौभाग्यशाली है। आप उसके बुद्ध रूप को देख सकेगे।'

तपस्वी ने अपना मस्तक शिशु के चरणो पर रख दिया।

पाँचवाँ दिन था। राजप्रासाद की भूमि चार प्रकार की गधो से लीपी गयी। उसपर चार प्रकार के पुष्प बिखरे थे। उसपर लाजा वर्षा की गयी थी।

शिशु को स्नान कराथा गया। नामकरण सस्कार की तैयारी की गयी।

वेदो के पारगत एक सौ आठ ब्राह्मण आमन्त्रित किए गए। निर्जल खीर बनवाई गयी। खीर खाकर ब्राह्मण सतुष्ट हुए। राजा ने करबद्ध निवेदन किया 'ब्राह्मण! शिशु का भविष्य कैसा है?'

समवेत ब्राह्मणो मे केवल आठ ब्राह्मण दैवज्ञ लक्षण ज्ञाता थे। उन्होने गर्भाधान के दिन सगुन का विचार किया था। उनमे सात ब्राह्मणो ने अपनी दो उँगलियाँ उठाकर उत्तर दिया 'राजन्! यदि यह महा-पुरुष गृहस्थ धर्म का पालन करेगा तो चक्रवर्ती राजा होगा। यदि प्रवज्या ले तो होगा—बुद्ध।'

आठवाँ ब्राह्मण तरुण था। सबसे कम उसकी उम्र थी। वह अपने आसन से उठा। शनै शनै शिशु के समीप आया। शिशु के लक्षणो को ध्यान पूर्वक देखने लगा। उसका नाम कौडिन्य था। उसकी गम्भीरता बढी। राजा ने मृदु स्वर मे पूछा 'कौडिन्य! आपका क्या मत है?'

तरुण कौडिन्य मुसकराया। उसकी एक उँगली उठी। उसने शब्दो पर जोर देते हुए कहा 'यह पुरुष राजप्रासाद की शोभा वृद्धि नही करेगा। यह होगा—विवृत कपाट बुद्ध।'

—और जन्म के सात दिन पश्चात्, बुद्ध-माता महामाया देह त्याग कर स्वर्ग सिधार गई और शिशु महा प्रजापति गौतमी के सरक्षण मे छोड दिया गया।

मात्रहीन कुमार सबके प्रिय थे। वह एक के अक से दूसरे के अक मे घूमते रहते थे। वे उत्पल, पद्म, पुण्डरीक तुल्य उत्फुल्ल थे। उनका स्वर मधुर था। प्रिय था। हिमालय स्थित करविक पक्षी के कण्ठ स्वर तुल्य उनका मजु स्वर था। वे मनोज्ञ थे। उन्हे दिव्य चक्षु उत्पन्न हुए थे। वे

एक योजन पर्यन्त तक देख सकते थे। कुमार के दिव्य आचरण, हाव भाव से लोग प्रसन्न थे। वे राज प्रासाद की दिव्य ज्योति थे।

आधार ग्रन्थ

दीघ निकाय . २ · १ (पृष्ठ ९८-१०१)
मज्झिम निकाय २ ५ १
ब्रह्माण सुत्त
महावश २
सुत्त निपात ३७
म० प्र० ४ · ६ ५२

टिप्पणियाँ

(१) लुम्बिनी—भगवान् का लुम्बिनी मे जन्म हुआ था। उसके दो अकाट्य ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त है। प्रथम है। सुत्त निपात का उल्लेख यथा

'सो बोधि सत्तो '

अशोक ने लुम्बिनी की यात्रा की थी। उसके स्तम्भ अभिलेख से स्पष्ट होता है कि भगवान् का उसी स्थान पर जन्म हुआ था .

देवानपियेन पियदसनि लाजिन वीसतिवसाभिसितेन अतन अगात महीपते हिद बुधे जाते सक्यमुनोति सिला विगडभीचा कालायित सिलाथभे च उसपापिते हिद भगव जाते ति लुम्मिनिगामे उबलिके कटे अठभागिये च।

बीस वर्षो से अभिषिक्त देवानाप्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा स्वय आकर (स्थानका) गौरव किया गया, क्योकि यहाँ शाक्य मुनि बुद्ध जन्म लिये थे। पत्थर की दृढ दीवार यहाँ बनायी गयी और शिला स्तम्भ खडा किया गया। क्योकि भगवान् यहाँ उत्पन्न हुए थे लुम्बिनी ग्राम (धर्म) कर से मुक्त किया गया। और अष्टभागी बना दिया गया। (अशोक के अभिलेख पृष्ठ १८९, श्री रा० व० पाण्डेय)।

(२) असित देवल—मिलिन्द प्रश्न उन्हे बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व भगवान् का गुरु मानता है। उन्होने भगवान् को शिक्षित किया था। शुद्धोधन के पिता सिंह हनु के असित पुरोहित थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् शुद्धोधन के पुरोहित थे। उनके शिक्षक भी थे। प्रति दिन प्रात. तथा साय काल शुद्धोधन को पुत्रवत् देखने आते थे। राजा की अनुमति से गृह त्याग कर संन्यासी जीवन व्यतीत करते थे। उन्हे ऋद्धि

शक्ति प्राप्त थी। ईसा मसीह के जीवन सम्बन्धी साइमन से बौद्ध जगत् मे इनकी तुलना की जाती है। असित ने अपने भानजे नालक से बुध के देखने के लिये कहा था। जबकि वे स्वयं दिवगत होकर अरूप जगत् मे होगे।

बुद्ध घोष का मत है कि उनके काले रग के कारण उन्हे असित कहा जाता था। उन्हें काल देवल, श्री कण्ह, कण्ह, श्री, कण्ह देवता भी कहते थे। असित तथा काल देवल नाम के और लोग बुद्ध साहित्य मे पाये जाते है वे भिन्न व्यक्ति है।

•

हंस

हस सुन्दर है। दिव्य है। धवल है। आकर्षक है। सरल है। अतएव सरस्वती का वाहन है। उसकी उपमा सन्तो के मानस से दी गयी है।

✓सुन्दरता मे असुन्दरता का रहस्य छिपा है। असुन्दरता मे सुन्दरता परिलक्षित होती है। उसका सम्बन्ध है चित्तवृत्ति से। उसका सम्बन्ध है, परिस्थितियो से। वे ही उसका मूल्याकन करती है। सुन्दर को असुन्दर बनाती है, असुन्दर को सुन्दर। सुन्दर सुख पहुँचाता है। असुन्दर खिन्न करता है। तथापि मृत्यु मे भी लोग सुख की कल्पना करते है।

कपिलवस्तु का राजकीय उद्यान था। पादप प्रफुल्ल थे। कुसुमावली सुरभित थी। सुषमा पूर्ण थी। उसमे सब कुछ था। जो राज-उद्यान की शोभा के लिए वाछनीय था। सिद्धार्थ के मनोविनोद निमित्त वहाँ सब कुछ सगृहीत था।

कुमार गौतम का उद्यान मे पदार्पण हुआ। लताओ ने झुककर अभिनन्दन किया। कलियो ने खिलकर अर्घ दिया। हरित दूर्वा दल चरण स्पर्श से झुके।

जलाशय मे नील कमल थे। विकसित थे। कमल पत्र कुछ उठे थे। कुछ जल पर फैले थे। हस दल उनमे केलिरत था। उनके पख से जल-बिन्दु उछलते। पद्म-पत्रो पर मुक्ता-तुल्य छलक जाते।

शीतल मन्द समीर द्वारा मृणाल दण्ड कम्पित होते। पद्म-पत्र पर बिखरे जल-बिन्दु हिलते। जल मे निर्वाण प्राप्त करते।

नील गगन मे उज्ज्वल हस-पक्ति गमनशील थी। प्रसन्न थो। नील जल पर चलती, हंस पक्ति से स्पर्धा करती थी। आकाश पथ मे उनका गमन, द्वन्द गान, राजपथ गामिनी राज कुलागनाओ के मगल गान से, कम प्रिय नही था।

अकस्मात् हस-पक्ति बिखरी। जैसे किसी ने नील जल स्तर पर कुन्द बिखेर दिया। उनका नभ सगीत परिवर्तित हो गया क्रन्दन में। और कुमार के चरणो पर गिर गया किसी क्रूर के बाण द्वारा आहत एक हस।

जलाशय को विहँसती हस-पक्ति ने देखा। गगनलोक से मृत्युलोक मे पतित उनका एक बन्धु। आर्तनाद के साथ। हस-पक्ति भयभीत हुई। कुछ तट की ओर सिमटी। कुछ कमल पत्रो मे, कुछ कमल दल मे लगी छिपने और सिद्धार्थ गौतम के दयालु कर पल्लव चले आहत हस की ओर।

हस जीवन-मृत्यु की लीला मे फडफडा रहा था। वीरवहूटी तुल्य रक्त बिन्दु भूमि पर फैल गयी। कुमार सिहर गये। करुणा आयी कुमार के निर्मल लोचनो मे। विद्ध बाण निकाल कर दूर फेक दिया। हस को गोद मे उठा लिया। चिरपरिचित प्राणो की तरह। हस दबक गया, परम कारुणिक के अक मे।

कर-पल्लव सुहलाने लगे हँस के पीठ-प्रदेश को। हस ने पाया आश्रय। हस ने पाया प्रेम। दुख लगा भागने। क्रन्दन हो गया लुप्त। वेदना हो गयी लज्जित।

रक्तस्राव ने कर दिया था उसे निर्बल। गौतम की परम करुणा ने उसमे भर दिया जैसे बल। वह लगा सोने। लम्बा कण्ठ मुडकर पीठ पर आ गया। स्थिर हो गया। कुमार के शरीर से लिपट कर, हो जाना चाहता था एकाकार।

उसके उपचार की चिन्ता हुई। कुमार ने अपने चारो तरफ देखा। परिचारिकाएँ वहाँ नही थी। चामरधारिणी ललनाये दूर थी। विजन डुलाने वाली कुमारियाँ उनकी गम्भीर मुद्रा देखकर, पहले ही जलाशय के पास चली आयी थी। हसो की जल-क्रीडा देख रही थी। हसो को अचानक भयभीत देखने लगी। कुमार उन्हे स्मरण आये। वे चली, कुमार की तरफ।

कुमार की दृष्टि पडी देवदत्त पर। उसके हाथो मे घातक धनुष बाण था। वेगपूर्वक हस की ओर बढ रहा था। कुमार हस लिए खडे थे। उसे किंचित् झुलाकर सुला रहे थे।

देवदत्त की पदध्वनि हस ने सुनी। उसकी आँखे खुली। धनुष-बाण पर दृष्टि पडी। यह चिहुँक गया। अपने हत्यारे को देखा। कुमार के अक मे सिमट जाना चाहा प्राण-भय के कारण।

'गौतम !' देवदत्त ने तीक्ष्ण स्वर से कहा ।

'देवदत्त !' कुमार ने शान्त स्वर मे उत्तर दिया ।

'यह हस मेरा है ।'

'किन्तु यह गगन से गिरा है ।' कुमार ने सस्मित कहा ।

'मैने मारा है ।'

'मैने इसे बचाया है ।'

'यह मेरा शिकार है ।'

'देवदत्त ! धीरे बोलो । देखो ! भयभीत हो गया है ।' कुमार ने स्नेह से हस के उज्ज्वल पखो को सहलाते हुए कहा ।

'मैने आकाश मे निशाना लगाया था ।' देवदत्त ने गर्व से कहा ।
'देवदत्त ! हस पीडित है ।'

देवदत्त की मुद्रा क्रूर होने लगी । वह क्रोध से बोला—'यह मेरा है । मुझे दो ।'

'नही ।' गौतम का शब्द शखध्वनि की तरह गम्भीर किन्तु दृढ था ।
'मै इसे लूँगा ।'

देवदत्त वेगपूर्वक आगे बढा । हस को छीनना चाहा । हस ने देखा अपना बधिक । उसके भयाकुल लोचन कुमार की ओर उठे । कुमार ने देखा उन निर्मल कातर नयनो को । उनके नेत्र देवदत्त की तरफ उठे ।

'मैने इसके प्राणो की रक्षा की है ।'

'ऊँह ! इसे मैने मारा है । इस पर मेरा अधिकार है ।'

'तुम्हे नही मिलेगा ।'

'क्यो ?'

'मैने इसकी रक्षा की है । इस पर अब मेरा अधिकार है ।'

'नही, मेरा है । मै लूँगा ।'

देवदत्त लडने पर कटिबद्ध हो गया । विवाद बढा । निश्चय हुआ, विवाद का निर्णय राजा करे ।

दोनो राजकुमार पहुँचे राजा के पास । सिद्धार्थ की गोद मे आहत प्राणार्थी हस । देवदत्त के हाथो मे प्राण घातक धनुष-बाण ।

राजा ने कुमारो को प्यार किया। दोनो के मस्तको को सूँघा। उनके विवाद को सुनकर हँसे। देवदत्त की पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले। 'देवदत्त! जीवित प्राणी पर उसी का अधिकार होता है जो उसके प्राणो की रक्षा करता है।'

'यदि मर जाता—?'

'तो शिकार तुम्हारा होता।'

'ऊँह! न जाने क्यो नही मरा?' देवदत्त ने क्रोध से हस की ओर देखा।

हस दुबक कर कुमार के अक मे और सिमट गया। उसकी आँखो मे प्रसन्नता थी। जब तक देवदत्त आँखो से ओझल नही हुआ उसे देखता रहा। उसे लोप होते देखकर, उसने ग्रीवा उठाई। सिद्धार्थ की आँखो मे देखा। प्रफुल्लित हो गया। उसके दुबके पख फूल गये। नेत्रो मे ज्योति आ गयी।

हलकर्षणोत्सव

कपिलवस्तु मे हलकर्षणोत्सव का विशेप महत्त्व था।

सम्पूर्ण नगर उत्सव के दिन सुचारु ढग से सजाया जाता था। घरो की वधुएँ गोबर और मिट्टी से भूमि लीपती थी। गाती राज-पथो पर जल लेने जाती। गुनगुनाती घर की सफाई करती। वही उत्सव कपिल-वस्तु नगर मे मनाने का दिन आया।

राजपथ और वीथियॉ तोरण और कदली स्तम्भो से सजे थे। नगर के द्वारो पर आम के पल्लव लगे थे। भवनो के स्तम्भ अशोक के पल्लव द्वारा वेष्ठित थे। द्वारो पर जलपूर्ण कलश थे। देवालयो के गर्भ गृह धूपगन्ध से भर गए थे।

अट्टालिकाओ पर पताकाएँ फहराने लगी थी। मृदग, वेणु, वीणा, मुरज पर सगीत लहरियाँ थिरकने लगी थी। दुकाने सजी थी।

नगर नववधूतुल्य अलकृत था। पुरजन नवीन वस्त्र पहने थे। वे सब एकत्रित थे राजभवन के प्रागण मे।

राजा शुद्धोधन की लम्बी-चौडी खेती थी। उनके यहॉ एक हजार हल चलते थे। वैलो को मल-मल कर स्नान कराया गया था। उनके सीग रगे थे। एक सौ साठ राजकीय हल प्रागण मे एकत्रित थे। राजा का अपना सुवर्ण-जटित हल था। कोडे की डोरी स्वर्ण तारो से गुथी थी।

हल उठा। बैल चले। लोग पक्तिबद्ध हुए। सगीत लहरियॉ उठी। पुष्प और लाजा वर्षा हुई। शख बजे। राजपथ की अट्टालिकाएँ सज गईं कुलवधुओ से। पटरियो पर सज गए पुरुष।

राजा के साथ थे ग्यारह वर्षीय कुमार सिद्धार्थ। उनके सिर पर स्वर्ण मुकुट था। कानो मे कुण्डल थे। स्कन्ध प्रदेश पर उत्तरीय था।

सिद्धार्थ देख रहे थे जनता को। और जनसमुदाय देख रहा था उनको।

खेत के समीप एक जामुन का वृक्ष था। वह पूर्णतया पल्लवित था। शीतल घनी छाया से समन्वित था। उसके मूल मे सुवर्ण-तार खचित चन्दोवा लगा था। वहाँ मन्त्रियों, अमात्यो एवं पुरजनो सहित राजा पहुँचे।

राजा खेत पर आए। राजकुमार शय्या पर बिठा दिए गए। परिचारिकाये विजन करने लगी। तूर्य ध्वनि हुई। जनता के उल्लासमय जयघोष के साथ राजा ने हल पकडा। अमात्यो ने अन्य एक सौ साठ हल पकडे। साथ ही पुरजनों ने अपने-अपने खेतो पर हल पकडे।

शख ध्वनि हुई। हल चले। बालक उछले। नारियाँ लगी गाने। हल खेत के एक छोर से दूसरे छोर जाते। फिर लौटते। भूमि मे लकीर बनती जाती।

हल तेज चलाने की होड लगी। दर्शको का प्रोत्साहन मिला। बैलो मे उत्साह आया। कुमार के पास खड़ी परिचारिकाएँ, धात्रियाँ बाहर निकल आयी। देखने लगी हलकर्षणोत्सव का समारोह।

उत्तम बैलो की प्रशसा हो रही थी। आलसी की निन्दा। सबके हल चालन की निपुणता की सामूहिक आलोचना-प्रत्यालोचना हो रही थी।

धूल से विवर्णित विकल बैल, तृण तथा कुश जिन्हे हल खीचकर उखाडते, उनकी लीला समाप्त करते, उन पर मुख लगाते। उनसे क्षुधा तृप्त करते। प्रसन्नता से झूमते। वेग से तृण सहार मे लिप्त हो जाते।

राजकुमार शय्या पर आसन लगा कर बैठ गए। बाहर होते कोलाहल का प्रभाव उन पर नही पडा। बाल जन्य चपलता लोप हो गई।

वे पद्मासन पर बैठे थे। उनकी ध्यान-मुद्रा योगियो तुल्य थी।

धात्रियाँ उत्सव देख कर खान-पान मे लग गईं।

धात्रियो को लौटने में विलम्ब हुआ। कुमार चन्दोवे की नीचे एकाकी पद्मासन पर बैठे रहे।

धात्रियो को अकस्मात् राजपुत्र का ध्यान आया। वे सत्वर चन्दोवा के द्वार पर पहुँची। हठात् रुक गई। स्तब्ध हुई कुमार की शान्त योगमुद्रा देख कर।

कुमार वायुहीन दीप-शिखा की तरह अचचल थे। नेत्र अर्ध प्रस्फुटित थे। ध्यान-मुद्रा से थे। हथेली पर हथेली रखे थे। धात्रियो ने कुमार का

अद्भुत रूप देखा। उनके लिए विचित्र चमत्कार था। वे उलटे पैर दौडी। राजा के पास पहुँची।

राजा ने सुना। कौतूहल हुआ। हल त्याग कर दौडे। पुत्र के समीप आए। उन्हे चन्दोवे की ओर जाता देख लोग उनके पीछे दौड पडे।

द्वार पर पहुँच कर राजा रुक गए। उनके नेत्रो ने देखी समाधिस्थ देवोपम सौम्य मूर्त्ति। लोगो की आँखो ने देखा वालयोगी।

सब नीरव थे। सब देखते रहना चाहते थे वह शान्त मुद्रा।

सबको यह रूप अच्छा लगा। सबने शान्ति का अनुभव किया। अनायास लोगो के अजलि-बद्ध हाथ मस्तक से लग गए। सबने मन ही मन बन्दना की उस वालयोगी की। बोधिसत्त्व की।

और पिता शुद्धोधन को काल देवल की भविष्यवाणी याद आई। उनके विमल नेत्र उठ गए गगन की ओर।

जरा

सिद्धार्थ ने एक दिन कानन सबधी गीत सुना। राजकुमार को कानन जाने की इच्छा हुई।

राजा शुद्धोधन ने कुमार का मनोरथ जाना। उद्यान गमन की व्यवस्था की। आदेश दिया। नगर सुचारु ढग से सजाया जाए। अग-प्रत्यग हीन, विकलेन्द्रिय, जीर्ण, आतुर, कृपण जन मार्ग मे न आने पाएँ।

स्वर्णालकृत रथ आया। इसमे चार सैन्धव अश्व योजित थे। सुवर्ण-अलकारो से सज्जित थे। राजा स्वय रथ के समीप आए। राजकुमार का शिर सूंघा। अश्वो को थपथपाया। राजकुमार को रथारूढ होने का सकेत किया। प्रासाद पृष्ठ से विनीत अनुचर उतरे। राजकुमार के रथ के साथ जाने के लिए उद्यत हो गए।

राजपुत्र के चरण स्पर्श द्वारा रथ पवित्र हुआ। सारथी ने राजपुत्र को अजलिबद्ध प्रणाम किया। स्वय आसन ग्रहण किया। अश्व सावधान हुए।

राजपुत्र के उद्यान गमन की सूचना विद्युत् तुल्य फैल गई थी। मार्ग सुसज्जित था। लोगो मे राजकुमार के दर्शन की लालसा थी। उज्ज्वल पुष्प राजपथ पर प्रकीर्ण थे। गध से पथ सुरभित था। भवनो पर, हर्म्यो, पर, प्रासादो पर, दुकानो पर पताकाएँ फहरा रही थी। मालाएँ लटक रही थी। अटारियो पर कुलागनाएँ शोभित थी। नर-नारी राजपथ के पद-पद पर जय-जयकार करते पक्तिबद्ध खडे थे।

रथ राजपथ मे आगे बढता गया। भीड बढती गई। कौतूहलपूर्ण परिगणो से राजपथ भरने लगा।

राजकुमार 'आ रहे है—आ रहे है—'शोर होने लगा। रथ-आगमन-ध्वनि सुनते ही कितनी ही बालाएँ कुछ आभूषण पहने, कुछ न पहने, दौड पडी। प्रासाद सोपान दर्शकेच्छु ललनाओ के असयत पायल ध्वनि से निनादित हो गए।

राजकुमार की दृष्टि अकस्मात् पड़ी जरा जर्जरित एक व्यक्ति पर। वह भग्न दन्त था। वह लकडी के सहारे झुका हुआ चल रहा था। उसकी आकृति अन्य पुरुप से पृथक् थी। राजकुमार उसे निर्निमेप दृष्टि से देखने लगे।

राजकुमार ने सारथी से चकित वाणी मे पूछा 'भणे। यह कौन है?'

'सोम्य। यह वृद्ध है।'

राजकुमार ने उस पुरुष की तरफ ध्यान से देखा। उसके अग ढीले थे। उसकी कमर झुकी थी। दाँत टूटे थे। केश सन की तरह पके थे। बरौनिया युवको को तृपित नेत्रो से देखती थी। स्मृतियाँ उसे विकल करती थी। कहती थी। कभी वह सुन्दर था। तरुण था। सुन्दरता लौटने वाली नही थी। गया तारुण्य आने वाला नही था।

वृद्ध का शरीर विकृत था। शरीर की गाँठे मास छोड चुकी थी। वृक्षो के ठोकर की तरह शरीर पर उभर आई थी। मास पेशियाँ फूल गई थी। अवयव ढेढे हो गये थे। शरीर काँप रहा था। वह जैसे पृथ्वी का भार था। चलता फिरता दया का पात्र था। वायु वेग से श्वेत बरौनियाँ आँखो पर आ जाती थी। आँखो को ढक लेती थी। वृद्ध उन्हे हाथो से उठाता था। उनके मध्य घोसले मे बैठे पक्षी की तरह पुतलियाँ दिखाई दे रही थी। उसका पेट पीठ से लगा था। ठहर-ठहर कर कमर पर हाथ रखता था।

उस पुरुष की त्वचा सूखी थी। उसमे झुर्रियाँ पडी थी। शरीर रस-हीन था। शोभाहीन था। शिराए फूलकर अस्थि पजर पर फैली थी। उन्हे गिना जा सकता था। उगलियो के नख रूक्ष थे। उनमे लबी रेखाए बन गई थी।

वृद्ध-दो-चार पग चलता था। शिथिल हो जाता था। खडा होता था। लकडी के सहारे सीधा होता था। तनने की कोशिश करता था। थकान मिटाने की कोशिश करता था। किन्तु जगत् की समस्त करुणा मिलकर भी उसकी युवावस्थाको वापस कराने मे असमर्थ थी।

कुमार ने इस प्रकार का रूप कभी नही देखा था। राजभवन उनकी दुनिया थी। विलास-प्रसाधन ,उनके दृश्य पदार्थ थे । उनकी प्रसन्नता

निमित्त जो कुछ उपलब्ध हो सकता था उनका संग्रह किया गया था। सारथी से खिन्न मन कुमार ने पूछा·

'सौम्य, यह कैसा लगता है ?'

'राजपुत्र ! यह आप जैसा तरुण था। सुन्दर था।

'झुका क्यो है ?'

'आयु भार से दब गया है।' सारथी ने रास से सकेत किया। अश्वो न शीघ्रतापूर्वक कदम उठाया।

'केश श्वेत क्यो है ?'

'आयु उनका कालापन सोख गई है।' अश्व पूछ उठाकर वेग से चले।

'इसका यह रूप ?'

'वृक्ष कालान्तर मे सूख जाता है। पक्षी तक उसका साथ त्याग देते है। उसमे घोसला नही बनाते। यह तो फिर भी चलता-फिरता है, राजकुमार।'

'यह शरीर ?'

राजकुमार ! इसने भी कभी शिशुतुल्य दूध पिया था। पेट के बल चला था। फिर युवक हुआ। प्रौढ हुआ। अब हुआ है जराग्रस्त।'

'सूत ! क्या इसका शरीर इस दोष से मुक्त होगा ?'

'राजपुत्र' यह शरीर भी इसका साथ त्याग देगा। इसके न चाहने पर भी दिन प्रतिदिन क्षीण होता जाएगा। दुर्बल होता जाएगा। कमर झुकती जाएगी। भूखी बाघनी की तरह जरा इसके न चाहने पर भी इस पर आक्रमण करती जाएगी। उस पर टूटती जाएगी।'

'ओह हम भी ऐसे हो जाएगे, या केवल, यही ऐसा है ?'

'आयुष्मान् ! एक दिन आपकी भी यही अवस्था होगी।'

'क्या कहा ?'

'हाँ राजकुमार आप भी। जरावस्था रूप की हत्या करती है। बल की हत्या करती है। आनद की हत्या करती है। स्मृति का नाश करती है। इद्रियो की शत्रु है। शोक भूमि है।'

'क्यो ?' राजकुमार आश्चर्य चकित हुए।

'युवावस्था प्रत्येक शरीर को त्याग कर चली जाती है। काल आयु पीता रहता है।' सारथी ने कहा।

'ओह!' राजकुमार ने दीर्घ निश्वास लिया। मस्तक नत हो गया। शरीर कम्पित हुआ। दूसरी ओर देखा जनाकीर्ण राजपथ। युवको का उल्लास। युवतियो का उमग। सुन्दर रूप, पुष्ट शरीर। अनायास राजकुमार बोल उठे 'इस जन्म को धिक्कार है। इस शरीर को धिक्कार है। यह इस प्रकार कुरूप होता है। इस प्रकार दु ख का कारण बनता है।'

कुमार उदास हो गए। उन्हे जीवन मे पहला धक्का लगा। मन खिन्न हो गया। सोचकर—यह शरीर विपाद का कारण बनेगा। घृणा का पात्र बनेगा। दूसरो का बोझ बनेगा। अपना बोझ बनेगा। पृथ्वी का बोझ बनेगा। वे बोल उठे 'धिक्कार है। उस मनुष्य जन्म पर जिसने मनुष्य का यह रूप बना दिया है।'

तरुण कुमार को ग्लानि हुई। सारथी से बोले . 'सौम्य! रथ लौटाओ। आगे नही जाऊँगा।'

'आज्ञा-राजपुत्र!'

रथ गया था वेग से। लौटा धीरे-धीरे। रथ गया था उत्साह से। लौटा उदास। राजा ने देखा। वे चकित हुए। दुर्घटना की आशका हुई। राजा चले रथ के समीप। उनके पहुँचने के पूर्व राजकुमार शीघ्रतापूर्वक अन्त पुर मे प्रवेश कर गये।

राजा ने सारथी से जिज्ञासा की। उसने जरा-दर्शन का वर्णन किया। राजा चिन्तित हुए। उदासी का कारण जान लिया। प्रतिहारियों को आदेश दिया

'राजपुत्र के मनोविनोद के लिए सुरुचिपूर्ण नाटक का आयोजन किया जाय।'

प्रतिहारी ने अजलि बद्ध आज्ञा शिरोधार्य की। राजा ने टहलते हुए कहा 'रंगशाला ठीक करो। राजकुमार को प्रसन्न करना चाहिए। युवा काल की यह उदासी, युवाकाल का वैराग्य, सर्वनाश का कारण हो सकता है।'

प्रतिहारी अभिवादन कर चला गया। राजा ने परिचारिका से कहा · 'मत्री को उपस्थित होने के लिये निवेदन करो।'

मंत्री आये। कहा ' 'सौम्य ! राजपुत्र ने जरा-दर्शन किया है। वैराग्य अकुरित हो सकता है। राजभवन से आधे योजन तक किसी भिखारी, किसी जरा-ग्रस्त, किसी वृद्ध, की छाया नही आनी चाहिए।'

राजा ने सोचा—राजकुमार भोग मे भूल जायेगा वैराग्य। स्थूल दृष्टि न कर सकेगी, जरा-दर्शन। न कर सकेगी, दु ख-दर्शन। अदर्शनीय दु ख उनमे उत्पन्न न कर सकेगा संसार से विरक्ति की भावना।

●

व्याधि

तरुण हृदय जिज्ञासु होता है। परिवर्तन का इच्छुक होता है। अदृश्य की ओर आकर्पित होता है। रहस्य के मूल तक पहुँचना चाहता है। उसके लिए सकट का सामना करता है। उसमे उसे रस मिलता है। वह हो जाता है साहसी।

कुमार ने एक दिन उद्यान भ्रमण की इच्छा प्रकट की। इच्छा टाली नही जा सकती थी।

सारथी राजा की आज्ञा से सुसज्जित रथ लाया। रथ पर राजकुमार आरूढ हुए।

तरुण अश्व, शोभा सम्पन्न नवीन रथ, युवक सारथी, और स्वस्थ, पुष्ट शक्तिशाली सिद्धार्थ—सबने मिलकर उत्साह, उमग, नव चेतना, का सयोग उपस्थित कर दिया था। स्वास्थ्यकर खुली वायु, भुवन-भास्कर की जीवनपादपावली ने जीवन को सजीव बना दिया था।

अकस्मात् कुमार की दृष्टि भूमिस्थ एक व्यक्ति पर पडी। वह व्यक्ति दोनो हाथ भूमि पर रखे था। वेदना से कराह रहा था। दो व्यक्ति उसके सम्मुख बैठे थे। वे उसकी वेदना बँटा नही पा रहे थे। समीप एक और व्यक्ति खडा था। वह भी वेदना का मूक दर्शक था।

कुमार ने उस व्याधिग्रस्त व्यक्ति को देखकर कहा 'सौम्य! रथ रोको।'

रथ रुका। झनझनाती घटियो की ध्वनि शान्त हुई। सारथी ने वेग से रास खीची। अश्व खडे हुए। धूल रथ मे प्रविष्ट हुई। रथ धूसरित हो गया। कुमार ने रथ रुकते ही वस्त्र से मुख ढँक लिया। धूल घटी तो राजकुमार ने मुख पोछा।

व्याधिग्रस्त व्यक्ति ने देखा—स्वास्थ्य के प्रतीक राजकुमार को। शक्ति सम्पन्न अश्वो को। सुन्दर परिधान मे पुष्ट युवक सारथी को।

वह रो उठा। वेदना वाणी मे मुखरित हुई।

उसकी शिराएँ सूख कर त्वचा मे लीन हो गयी थी। मुख-मण्डल की अस्थियाँ मरुस्थलीय बालू के टीले की तरह उबड-खाबड हो गयी थी। नेत्रो की ज्योति बुझ चुकी थी। दोनो हाथ देके जैसे कह रहा था—'पृथ्वी तू मेरी व्यथा बँटा ले।' वह पृथ्वी पर टिके हाथों पर पूरा जोर रोकना चाहता था।

दयनीय आँखे चारो ओर घूमती। दया की याचना करती। आकाश की ओर उठती। पुतलियाँ एक कोने से दूसरे कोने पर जाती। फिर लौटती। पलके मिल जाती। मस्तक वेदना से लटक जाता।

तीव्र वेदना मे उसके नेत्र पुन खुलते। ओठो पर जोर देता। दाँतो पर जोर देता। गम्भीर नील गगन की ओर देखता। उसे सहारा न मिलता। निराशा उसे अपनी गोद मे ले लेती। वह कराहता हाथ-पैर पटकता। व्यर्थ किसी को पुकारता। चारो ओर इस आशा से देखता कि कोई उसकी वेदना हर ले। कोई उसे स्वास्थ्यदान कर दे।

उसका श्वास-प्रश्वास वेग से चलता। पुन रुकता। शरीर कम्पित हो उठता। यह प्रक्रिया निरन्तर होती रहती। वह कृश था। उसका स्कन्ध प्रदेश अत्यन्त शिथिल था। भुजाएँ सूखी थी। पेट फूला था। नाखून चीले थे। शरीर का रग पीला पड गया था। करुण स्वर से वह माँ-माँ-माँ पुकार रहा था।

'सौम्य!' राजकुमार ने सारथी से पूछा—'यह पुरुष कौन है ?'

'राजकुमार! दरिद्रता देवी की प्रबल उदर ज्वाला मे वह भस्म हो चुका है।'

'इसके सम्बन्धी ?'

'देव! सम्बन्ध की कडी, रूप, धन, सम्पत्ति, दया, करुणा, सब टूट चुकी है। इस असहाय अवस्था मे यह किसी को कुछ दे नही सकता। कुछ माग ही सकता है। फिर अकारण उस पर कोई दया क्यो करे ?'

'ओह!' राजकुमार ने ललाट पर से पसीना पोछा। फिर पूछा :

'इसका यह रूप कैसे हुआ ?'

'धातु प्रकोप के कारण हुए ज्वर का परिणाम है। शक्तिमान को भी रोग परतन्त्र कर देता है।'

'क्या केवल इसी को धातु प्रकोप और ज्वर हुआ है ?'

'नही कुमार! प्राणी मात्र को होगा।'

'मुझे भी होगा ?'

'हाँ कुमार, आपको भी हो सकता है।'

'क्यो ?'

'शरीर रोग का कारण है। स्वास्थ्य स्वप्न तुल्य है। जीवन मे शाश्वत सुख कौन भोग सकता है ?'

कुमार का चित्त विषण्ण हो गया। जल-तरगो मे चचल चन्द्र-विम्ब तुल्य उनका मन कम्पित हो उठा।

'सौम्य!' कुमार ने सहसा कहा, 'मृत्यु से लोक त्रस्त है। जरा से परावृत्त है। व्याधि से ओतप्रोत है। आयु रात-दिन क्षय हो रही है।'

'देव—रोग, व्यसन, व्याधि, यह देखकर भी प्राणी इस जगत् मे न जाने क्यो निर्भीक भ्रमण कर रहे है ?'

'सौम्य! कितना अज्ञान है। प्राणी रोग भय से अमुक्त होकर भी देखो कितने प्रसन्न है ? कितने आनन्दमग्न है ?'

कुमार ने राजपथ मे प्रसन्न, तरगित प्राणियो की ओर दयार्द्र दृष्टि से देखते हुए कहा 'सारथी, लौट चलो।'

रथ लौटा। सिद्धार्थ उदास थे। सारथी चुप था।

राजा ने रथ की ध्वनि सुनी। रथ इतना शीघ्र लौट आया। राजा विस्मित हुए। रथ के समीप पहुँचे। परन्तु राजकुमार तो राजभवन जा चुके थे।

सारथी रथ घुमा रहा था। राजा ने हाथ से ठहरने का सकेत किया। रथ ठहर गया। सारथी उतरा। राजा ने पूछा : 'सूत! इतने शीघ्र क्यो लौट आये ?'

'देव! मार्ग मे राजकुमार ने एक व्याधि-ग्रस्त पुरुष देखा था।'

'तो ?'

'राजकुमार विकल हो गये। उस रोगी की मलिन कान्ति, मलिन रूप, और मलिन गात्र देखकर। और 'रथ लौटाने का आदेश दिया।' सारथी ने करबद्ध उत्तर दिया।

'हूँ।' राजा की मुद्रा गम्भीर हुई। समीपस्थ दौवारिक को आदेश दिया—'मन्त्री को बुलाओ।'

दौवारिक अभिवादन कर चला गया। राजा ने सारथी की ओर देखा। श्रान्त अश्वो की ओर देखा। नीरव घण्टियो की ओर देखा। धूल से आवृत रथ चक्रो को देखा।

राजा की दृष्टि हटी। राजभवन के कगूरो पर गृद्ध आकर बैठने लगे। पक्षी वहाँ से पलायन कर गये।

असमय राजा का आह्वान मन्त्री ने सुना। चिन्तित मुद्रा मे वह राजा के पास आया। राजा ने क्षितिज की ओर लक्ष्य करते हुए कहा 'मन्त्रिन्! पौन योजन तक राजभवन के चारो ओर पहरा बिठा दो। कोई जराग्रस्त, व्याधि-ग्रस्त इस सीमा मे प्रवेश नही पा सकेगा।'

'आज्ञा शिरोधार्य भगवन्!' मन्त्री ने अजलिबद्ध नमन करते हुए कहा।

❁

मृत्यु

मानव परिवर्तन चाहता है। उसे अपनी स्थिति से सन्तोप नही होता। सुख उसे एक सीमा तक भाता है। फिर उससे भी विरक्ति हो जाती है।

राजभवन के कृत्रिम सुख प्रसाधनो से राजकुमार थक गये थे। एक दिन सारथी से पुन उद्यान जाने का विचार प्रकट किया।

श्वेत अश्व योजित रथ आया। कुमार स्निग्ध शुक्ल परिधान मे थे। मस्तक पर मणि-जटित दिव्य मुकुट था। श्रवणो मे कुण्डल थे। कण्ठ मे मल्लिका माला थी।

प्रशस्त मार्ग श्वेत कर्णिकार, श्वेत कमल, श्वेत कुन्द के फूलो से सजा था। आभरणो मे सज्जित युवक, राजपथ पर विहार कर रहे थे। पुर नारियो का स्निग्ध यौवन धवल अट्टालिकाओ से झॉक रहा था।

कुमार की दृष्टि पडी एक श्वेत वस्तु पर। चार व्यक्तियो के कन्धो पर श्वेत पुष्पो से सजी अर्थी थी। राजकुमार ने शवयात्रा देखी। उनकी रथ यात्रा रुक गयी।

अर्थी को देखते ही लोग आदर से मार्ग दे देते थे। वाहन मार्ग से हट जाते थे।

अर्थी उज्ज्वल फूलो से सजी थी, तथापि उसके साथ जाने वाले शोकाकुल थे। तीव्र दु ख वेदना से वाल नोच रहे थे। रोते थे। शिशुओं को माताएँ मार्ग से खीच लेती थी। राजकुमार ने सारथी से पूछा .

"सौम्य, यह क्या है ?"

'अर्थी।'

'सौम्य, यह व्यक्ति सुसज्जित हैं। हृष्ट-पुष्ट है। तथापि अर्थी पर क्यो सोया है ?'

'देव ! यह मर गया है। फिर नही उठेगा। दूसरे लोक चला गया है। इन्द्रियाँ शान्त हो गयी हैं। शरीर प्राणहीन हो गया है।'

'इसे लेकर कहाँ जा रहे है ?'

'प्रियजन न चाहकर भी इसे सर्वदा के लिए छोडने जा रहे है।'

'क्यो ?'

'वह तृण और काष्ठ के समान हो गया है। प्रयत्नपूर्वक उसका संवर्धन-सरक्षण करने वाले भी उसका त्याग कर रहे है। हम भी इसी तरह एक दिन चले जायँगे।'

'मै भी एक दिन इसी तरह चला जाऊँगा ? मर जाऊँगा ?'

'हाँ।' सारथी ने कटु सत्य कह दिया।

कुमार को धक्का लगा। उन्होने कल्पना नही की थी कि उनका हृष्ट-पुष्ट सुन्दर शरीर एक दिन निश्चेष्ट हो जायगा। कुमार की मुद्रा विचारशील हो गयी। उन्होने रथदण्ड के अग्रभाग का सहारा लेकर पूछा

'इसे कहाँ ले जा रहे है ?'

'श्मशान।'

'वहाँ क्या होगा ?'

'यह शरीर, अग्नि ज्वाला की भेट हो जाएगा।'

सारथी ने रथ चला दिया। धूल उडने लगी।

कुमार बोले, 'शरीर इसी तरह राख होगा ? इस धूल की तरह उडेगा।'

सारथी ने कुछ उत्तर नही दिया। 'क्या मृत्यु सर्वदा होती रहेगी ?' कुमार ने विषाद के स्वर मे पूछा।

'देव ! हाँ।' सारथी का स्वर शान्त था।

सिद्धार्थ ने अपना शरीर देखा। अपनी सुवर्ण-वर्ण त्वचा देखी। पुष्ट, अलंकृत अवयवो पर दृष्टिपात किया। अलकृत अश्वो को देखा। अलकृत सारथी को देखा। अलकृत राजपथगामी नर-नारियो को देखा। और देखा श्वेत वस्त्रो में, श्वेत पुष्पो मे सज्जित शव को। राजकुमार ने कहा . 'सौम्य ! रथ लौटा ले चलो।'

रथ आया। राजा को कौतूहल हुआ। इतने शीघ्र रथ कैसे लौट आया।

राजा को किसी अप्रिय घटना की आशका हुई। राजा ने सारथी से सब वृत्तान्त जाना। पहले की अपेक्षा अधिक चिन्तित हुए। दण्डधर को आदेश दिया 'मन्त्री को बुलाओ।'

दण्डधर के साथ मन्त्री आया।

राजा ने उसकी ओर अनिमेष दृष्टि से देखते हुए कहा 'राजभवन के चारो तरफ एक योजन तक दण्डधरो को नियुक्त करो। कोई जरा-ग्रस्त, व्याधिग्रस्त, मृत्युग्रस्त व्यक्ति इस सीमा का अतिक्रमण न करने पाये।'

मन्त्री ने राज्यादेश करबद्ध ग्रहण किया।

●

प्रव्रजित

राजकुमार प्रासाद उद्यान मे विहार निमित्त चले। कमनीय कामिनियो को राजाज्ञा थी राजकुमार को प्रसन्न करने की। उनके आगे-पीछे काम-पुतलियाँ चली।

कोई पुष्पित तरु छाया मे पालना झूलने चली। जानकर कोई गिर गयी। राजकुमार की ओर देखा। आशा से—उसे उठा लेगे। कोई पुष्प-सज्जिता उनके सम्मुख पुष्प गिराती चली। कोई कटाक्ष करती समीप से निकल गयी। उनके कण्ठ मे माला डालने के व्याज से किसी ने अपने पीन पयोधर का स्पर्श उनके वक्षस्थल से करा दिया।

उन कामिनियो ने देखा अपना प्रयास विफल। वे पराभूत नही हुई। वे निपुण थी, वे कामपण्डिता थी। वे वाचाल थी। वे हाव, भाव, कला मे प्रवीण थी। अपने कटाक्ष बाणो से हरेक को आहत करने की अभ्यस्त थी।

पर गौतम जितेन्द्रिय थे। उनमे राग उत्पन्न नही हुआ। उन कामिनियो पर उन्हे दया आयी।

किन्तु राजाज्ञा थी गौतम को भोग मे फँसाने की। वैराग्य रोग से दूर करने की। काम सहचरी पुन प्रयास मे लगी।

एक मदोद्धत उत्तु ग पीनपयोधरा रूपसी ने उनका स्पर्श किया। मुसकुराई। उनके स्कन्ध प्रदेश पर अपना कपोल रख कर दबाया।

मृदुबाहुलता बाला ने गिरने का बहाना कर उनका आलिगन कर लिया। मदिर गन्ध युक्त मुख उनके श्रवणो के पास ले जाकर, कुछ कहने के व्याज से अपना अधर उनके कपोल से लगा दिया।

एक मुखर कामिनी की स्वर्ण मेखला कटि प्रदेश से जघा पर फिसल आयी थी। मेखला ठीक करती हुई, उसने सूक्ष्माम्वर से अपना स्थूल नितम्ब प्रदर्शित कर दिया।

मंजरी-पूर्ण आम्र शाखा से झूलकर एक गौरागना ने अपना सुवर्ण-कलश सदृश सुन्दर स्तन-युगल और अनावृत वक्ष दिखा दिया।

आम्र मजरी उनके पास किसी ने गिरा कर पूछा—यह मजरी किसकी है। उसे उठाकर उन्हे सकटाक्ष मजरी दिखाने लगी।

लावण्यमयी एक तरुणी आर्द्रलेपन उनके पास लेकर आयी। उनके हाथो पर मल दिया। उनके कपोल पर लेपन छिडक दिया। और फिर खिल-खिला उठी।

उनके समीप पहुँचकर कोई कोकिल-कण्ठी गुन-गुनाने लगी। फिर लगी अभिनय करने।

किसी नीलवसना ने सुरभित उज्ज्वल मालाओ की डोरी वनाई। उन्हे आता देख डोरी से मार्गावरोध कर दिया।

जलाशय के तट पर आम्र पल्लवो मे छिपी कोकिल कूक रही थो। एक उच्छृ खल कोमलागी उनके मुख के समीप मुख लायी। छिपी कोकिल की ओर सकेत किया। उसी व्याज से उसने अपना स्पर्श सुख देना चाहा।

किन्तु राजकुमार मे विकार ने प्रवेश नही किया।

सिद्धार्थ कुमार को उद्यान उत्सव मे सम्मिलित होने की इच्छा हुई। प्रसन्नतापूर्वक वह अपने आडम्बरहीन रथ पर सवार हुए।

रथ राजपथ से चला।

रथ आगमन की बात फैलते ही बालाये वातायनो पर आ गई। उन्होने सोत्साह रथ पर पुष्प वृष्टि की। जय-जयकार किया। कुमार का अभिनन्दन किया।

कुमार ने अकस्मात् देखा उत्तम चीवर से आवृत एक परिव्राजक। शान्त निर्विकार और चिन्ता रहित। हाथ मे भिक्षा-पात्र। सासारिक प्रपचो से दूर अलिप्त और अपने आपमे लीन।

परिव्राजक को देखकर राजकुमार बडे प्रभावित हुए। सारथी से कहा · 'सौम्य, रथ खड़ा करो।'

रथ खडा हो गया। परिव्राजक ने रथ रुकता देखा। पर रथ के समीप आने का प्रयास नही किया। उसे कौतूहल नही हुआ। उसकी गति मे व्यतिक्रम नही आया।

राजकुमार ने पूछा · 'सौम्य, यह व्यक्ति कौन है ? यह जो शान्त है, गम्भीर है, मुडित है, काषाय वस्त्रधारी है, हाथ मे भिक्षा-पात्र लिये है, यह क्या काम करता है ?'

'देव, यह प्रवजित है।'

'प्रव्रजित क्या ?'

'देव, यह द्वन्द्वातीत है। भवप्रपंचो से दूर है, वीतराग है। अतियो से परे है। वह जगत् का है। जगत् उसका नही है।'

कुमार की मुद्रा प्रसन्न हो गयी। कुमार की प्रसन्नता देखकर सारथी ने पुन कहा 'देव, इसने सासारिक सुखो का त्याग किया है। दु खो की वेदना से यह दूर है। शान्त चित्त है। जरा, व्याधि, मृत्यु उसे कष्ट नही पहुँचा सकती। यह अपने आप मे स्थित है।'

कुमार की परिव्राजक के विषय मे रुचि बढी।

राजकुमार का मुख मण्डल तेजोमय हो गया। उन्हे आनन्द का अनुभव हुआ। हर्ष-विषाद दूर हटने लगे। सारथी से बोले 'सौम्य रथ बढाओ।'

'कहाँ चलूँ ?'

'उद्यान।'

रथ राजभवन की तरफ नही लौटा। भोग की तरफ नही लौटा। भोग के अभाव की ओर चला।

उद्यानोत्सव मे बोधिसत्त्व ने अन्य शाक्य कुमारो के साथ सोत्साह भाग लिया। निर्मल सरोवर मे वह उतरे। उनकी जलक्रीडा मे लोगो ने प्रसन्नता का अनुभव किया।

सन्ध्या आयी। राजभवन लौटने का समय आया। कुमार शिला-पट्ट पर बैठ गये। परिचारक तथा परिचारिकाओ ने वस्त्र-आभूषण, अगराग, माल्य, सुगन्ध और सुरभित लेपन से कुमार को सज्जित किया।

बोधिसत्त्व के जीवन का यह अन्तिम राजकीय श्रृगार मानव ने किया।

कुमार का रथ नगर मे प्रविष्ट हुआ। राजकुमार के साथ उनका यश, उनका सौभाग्य और उनकी शोभा नगर मे प्रविष्ट हुई।

कृशा गौतमी क्षत्रिय शाक्य कन्या थी। युवती और सुन्दरी। कुमार के रथ आगमन की बात फिर फैली। बालको का कौतूहल बढा। स्त्रियाँ कुमार को देखने अटारियो मे आ गयी।

कृशा गौतमी ने उस परम रूप को देखा। शोभा को देखा। वह मुग्ध हो गयी। बोल उठी—'वह माता-परम निवृत्ति, है जिसे उनके जैसा पुत्र है। वह पिता परम निवृत्त है, जिसे उनके जैसा पुत्र है। वह नारी परम निवृत्त है, जिसे उनके जैसा पति है।'

निव्वुत्त सुन-सा माता,
निव्वुत्तो सुन सो पिता।
निव्वुत्ता सुन सा नारी।
यस्मायमीदिशो पनीति॥

गौतम ने सुनी कृशा गौतमी की सुनाकर कही जाने वाणी। रथ ठहर गया। गौतम ने देखा उस रूप की प्रतिमा को। परन्तु मन ने प्रश्न किया—'किसके परम निवृत्त होने पर, मन शान्त होता है ?'

उत्तर मिला—रागाग्नि शान्त होने पर दोषाग्नि शान्त होती है। दोषाग्नि शान्त होने पर मोहाग्नि शान्त होती है। मोहाग्नि शान्त होने पर अहकार शान्त होता है। अहकार शान्त होने पर परम शान्ति होती है।

गौतम को कृशा गौतमी की बात रुचिकर लगी। उन्हे जैसे मार्ग दर्शन मिला। उनका विवेक जाग्रत हुआ। अन्तर्ध्वनि ने उत्तर दिया—निर्वाण।

गौतम के ज्ञान चक्षु खुले। कृशा गौतमी का आभार प्रदर्शन की इच्छा हुई।

प्रसन्न मन गौतम ने कण्ठ से मुक्ता माला निकाली। उसे दाहिनी हथेली पर रखकर दो-एक बार उछाला। कृशा गौतमी की ओर देखा। उन पवित्र नेत्रो मे कामिनी ने जैसे देखा काम का रोग। वह खिल गयी।

गौतम ने गौतमी के पास भेजी अमूल्य माला। गौतमी उसे पाते ही नाच उठी। उसकी धमनियाँ झकृत हो उठी। उसने समझा, रति की विजय हुई काम पर।

गौतमी ने समझा, माला आई है गौतम के अनुराग का प्रतीक बनकर। गौतम को देखकर वह मुसकराई। आह्लादित हो गई। उसने तत्काल माला पहन ली। गौतम को प्रसन्न मुद्रा मे हाथ जोडा। अल्हड यौवन अगडाई ले रहा था। काम रोम-रोम मे मुसकुरा उठा।

उसने अपना यौवन सफल समझा। अपना जीवन सफल समझा। अपना रूप सफल समझा। गौतम की अनुरागपात्री बनकर उसने कल्पना की सुखमय, भोगमय, रागमय भविष्य की।

वह आनन्द-विभोर हुई। दोनो हाथो की उगलियाँ एक दूसरे से लपटकर हृदय पर आ मिली। उसने पुन देखा मुग्ध तृषित नेत्रो से गौतम को।

किन्तु गौतम ने उसे समझा गुरु तुल्य। माला को समझा गुरुदक्षिणा तुल्य, एक तुच्छ भेट।

●

महाभिनिष्क्रमण

सिद्धार्थ उनतीस वर्ष के थे। यौवन अपनी गरिमा पर था। शयन कक्ष मे सुगन्धित तेल दीप जल रहा था।

नृत्य-गान-वाद्य निपुण देवोपम कामिनियाँ पर्यंक के सम्मुख विविध वाद्यो सहित बैठी थी। तकिये का सहारा लेकर गौतम पर्यंक पर बैठ गये, कामिनियो ने वाद्यो को सभाला। कोकिल कण्ठी युवतियो की स्वर लहरियाँ लगी ताल-लय पर थिरकने और कामोत्तेजक नृत्य से दिशाएँ विलुलित होने लगी।

किन्तु नृत्य ओर सगीत काम जागृत नही कर सके। नर्तकी के स्थान पर परिव्राजक का शान्त स्वरूप गौतम की आँखो के सम्मुख आने लगा।

कामिनियो का मनोरजन विफल हुआ। गौतम को तन्द्रा प्रभावित करने लगी। पलके मिलने लगी। अगनाओ के झनकते पायल मन्द होते-होते रुक गये।

कामिनियाँ बाहर नही गयी। वे अपने वाद्यो के साथ बैठी रही। गौतम की तन्द्रा शायद टूटे। पुन मनोरजन के लिए कला प्रदर्शित करनी पडे। वे ऊँघने लगी। उसी अवस्था मे सो गयी।

निशा गहरी होती गयी। प्रहरी घण्टा ध्वनि के साथ रात्रि का समय बताता गया। बोधिसत्त्व की निद्रा खुली। वातायन से उन्होने पूर्ण चन्द्र-बिम्ब देखा। चाँदनी खूब खिली थी।

उन्होने देखा, पर्यंक के सम्मुख निद्रा मग्न सुन्दरियाँ। बोधिसत्त्व की दृष्टि शयन कक्ष मे एक ओर से दूसरी ओर घूमी। उन्हे स्थान कच्चे श्मशान जैसा लगा। शय्या पर बैठ गये। उनकी दृष्टि निद्रित कामिनियो पर गयी। किसी कामिनी की वेणी खुल गयी थी। कोई जानुओ पर मस्तक रखे सो गयी थी। किसी का सूक्ष्माम्बर शरीर से हट गया था, केवल कचुकी पीठ प्रदेश पर दिखाई दे रही थी। कोई मृदग का आलिगन कर सो गयी थी।

तरुणियो के इस रूप ने तथागत को तरगित किया। तरगे उठी। किन्तु वे तरगे थी वेगवती विराग सरिता की। कोमलागिनियो के शरीर द्वारा प्रदर्शित विकारो ने बोधि-सत्त्व को कर दिया कामना-मुक्त। उन्हे दृष्टिगत हो रहा था केवल अस्थि मास शिराजाल का विचित्र विन्यास।

बोधि-सत्त्व को कामिनियो के विकृत, सुप्त, जड रूप को देखकर उनसे घृणा नही हुई। उनमे उत्पन्न हुई करुणा। वे पर्यक से उठे। कोई जान न सका। अन्तिम बार उन्होने शय्या त्याग किया था।

वे द्वार पर आये। मृदु स्वर मे प्रश्न किया 'यहाँ कोई है ?''

छन्दक द्वार की ड्योढी पर मस्तक रखकर सो रहा था। उसे आहट लगी। वह उठा।

'देव! मै छन्दक हूँ।'

'छन्दक! मै महाभिनिष्क्रमण करूँगा। रथ योजित करो।'

छन्दक अभिवादन कर चला गया।

सहसा पितृ सुलभ भावना उठी। एक बार पुत्र राहुल को देखने की।

बोधिसत्त्व चले राहुल-माता के शयन-कक्ष की ओर। यत्र-तत्र परिचारिकाएँ सो रही थी। दौवारिक ऊँघ रहे थे। पत्नी यशोधरा के शयन कक्ष पर पहुँचे। द्वार बन्द था। धीरे से कपाट खोला! ड्योढी के बाहर खडे रहे। अर्ध अनावृत कपाट से शयन-गृह का दृश्य देखा।

शय्या पुष्पो से सज्जित थी। सुगन्धित तैल दीप मद्धिम जल रहा था। राहुल सात दिन का था। राहुल-माता पुत्र के साथ सो रही थी। उसका एक हाथ नवजात शिशु के मस्तक पर था। राहुल निद्रा मे था।

यशोधरा जैसे प्रगाढ निद्रा मे स्वप्न देख रही थी---'भयकर तूफान से पृथ्वी उजड गयी है। वह स्वय नगी हो गयी है। विरूपावस्था मे है। सुन्दर अलकार शरीर से गिर-गिर कर साथ छोड रहे है। सूर्य, शशि तथा नक्षत्र परस्पर टकरा रहे है। सुमेरु पर्वत समुद्र मे डूब गया है। [illegible]

ममता ने जोर मारा। पिता ने नवजात शिशु को देखा। प्रियतमा पत्नी को देखा। कुछ समय तक निर्निमेष देखते रहे।

ममता और त्याग का द्वन्द्व चरम सीमा पर पहुँच गया। शयन-कक्ष का कपाट अर्ध खुला रहा। उनका एक पद देहली के अन्दर पड़ा। हठात्

वे रुक गये। दूसरा पद बाहर ही रहा। उनका दाहिना हाथ उठा। कपाट पर लग गया। इच्छा हुई। पूरा कपाट खोल दे। परन्तु खोल न सके।

बोधिसत्त्व ने जानना चाहा इस स्नेह का रहस्य। उन्हे स्मरण आया। वर्षो का लम्बा काल इसी तरह बीत गया। कितनी सुखमय यामिनियाँ बीत गयी।

फिर प्रव्रज्या की तीव्र भावना जागृत हुई। वैराग्य प्रबल वेग से उठा। उनका पद शयन-कक्ष से बाहर निकला। बोधिसत्त्व ने धीरे-धीरे किवाड लगा दिया। जीवन का एक अध्याय समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय खुला। गृहस्थ धर्म का त्याग। राजप्रसाद का त्याग। भोग, विलास, राजपद सबका त्याग।

बोधिसत्त्व द्वार पर आये। श्वेत अश्व कथक खडा था। छन्दक ने उसे अन्तिम बार सुरुचिपूर्ण शैली से सज्जित किया था।

राजकुमार ने कन्थक को देखा। वह हिनहिनाया नही। अपने घोष से किसी को जागृत होने का अवसर नही दिया। गौतम उसकी पीठ पर अन्तिम बार आरूढ हुए।

अर्ध रात्रि थी। अश्वारोही बोधिसत्त्व प्राचीर के महाद्वार पर पहुँचे। महाद्वार अनावृत था। प्रतिहारी निद्राग्रस्त थे। नक्षत्र जागृत थे। साक्षी थे इस महाभिनिष्क्रमण के।

गौतम ने उसी रात्रि मे शाक्य, कोलिय तथा रामग्राम तीन राज्यो को सीमा का अतिक्रमण किया। कपिलवस्तु से तीस योजन दूर अनोमा नदी के तट पर पहुँचे।

बोधिसत्त्व ने निर्मल सलिला अनोमा की ओर देखा। फिर कन्थक की ओर देखा। बोधिसत्त्व ने अपनी एडी से कन्थक के उदर प्रदेश मे सकेत किया। कन्थक नदी पार कर गया।

बोधिसत्त्व कन्थक की पीठ से उतरे। नदी तट रत्न कण तुल्य बालुका से भरा था। तथागत ने छन्दक से कहा 'सौम्य! काल आ गया है।'

'देव! काल?'

'हाँ, प्रव्रज्या का काल। अव मेरे लिए मूल्यवान आभूषण व्यर्थ हैं। यह कन्थक भी अनावश्यक है। अब विना कन्थक के मैं पदयात्रा करूँगा।'

'देव ! मै भी प्रव्रजित हूँगा।' स्वामिभक्त छन्दक ने कहा।

'नही, सौम्य !'

'देव ! मेरी यही इच्छा है।' छन्दक ने आग्रह किया।

'सौम्य ! अभी नही।'

छन्दक शान्त हो गया। वोधिसत्त्व ने अपने आभूषणो को एक-एक कर उतारा। कन्थक की गर्दन थपथपाते हुए बोले : छन्दक ! आभूषण और कन्थक को लेकर कपिलवस्तु लौट जाओ।'

'देव ! आपको त्याग कर कैसे लौटूँगा ?'

'सौम्य ! स्नेह के कारण चाहे आज अलग न हो, किन्तु मृत्यु हमे एक दिन अलग कर देगी।'

'छन्दक ! कपिलवस्तु के पुरजनो से कहना, वन्धु-बान्धवो से कहना—जरा, व्याधि, मृत्यु का क्षय कर लौटूँगा, अन्यथा विफल होने पर मृत्यु मेरा आलिगन करेगी।'

तब गौतम ने वाम हस्त से अपने केश पकडे। दाहिने हस्त से खड्ग उठाया। अपने केश काट डाले।

शरीर पर कौशेय वस्त्र था। उसे उतारा। चीवर धारण किया।

भिक्षु तुल्य कापाय वस्त्र पहन कर वोधिसत्त्व ने छन्दक से कहा : 'सौम्य ! पिता आदि से मेरा कुशल-क्षेम कहना। तुम कन्थक के साथ प्रस्थान करो।'

वे कन्थक के पास आये। उसे प्यार किया। छन्दक ने उसे वापस ले जाने के लिए लगाम पकडी। किन्तु कन्थक वही गिर पडा। नेत्रो से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो चली।

छन्दक स्वामी के वियोग और कन्थक की मृत्यु से शोकाकुल हो गया। वियोग भार से दवा वह लौटा, मुख किया कपिलवस्तु की ओर। और वोधिसत्त्व के चरण उठने लगे वालुका तट से अनुपिया के आम्र वन की ओर।

राजगृह[1]

कामेस्वादीनव दिस्वी नेक्खम्म दट्ठु खेमतो।
पधानाय गमिस्सामि एत्थ मे रञ्जति मनो ति ॥

सुत्तनिपात २७·२०.

विपयो के दुष्परिणाम को देख लिया है। उनका त्याग कल्याणप्रद समझता हूँ। मैं मुक्ति के अन्वेपण मे जाता हूँ। मेरा मन इसी में रमता है।

अनूपिया मल्ल देश मे है। कालान्तर मे अनिरुद्धादि ने यहाँ प्रव्रज्या ली थी। बोधिसत्त्व शाक्य देशीय थे। बोधिसत्त्व ने अनूपिया के सघन आम्र वन मे सात दिन तक विहार किया।

वहाँ से राजगृह की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे भिक्षाटन करते थे। कही ठहर जाते थे।

मार्ग मे उन्हे तीन आश्रम मिले। एक आश्रमवासी पक्षियो के समान खेतो से अन्न बीनते थे। वही उनके जीवन का आधार था। दूसरे आश्रम के लोग पशुओ के समान कोमल शाक पर जीवन निर्वाह करते थे। तीसरे आश्रम मे सर्प के समान वायु पीकर रहते थे।

बोधिसत्त्व चकित हुए। जिज्ञासा की। शरीर को इस प्रकार कष्ट देने से क्या लाभ? उत्तर मिला। इस लोक मे कष्टमय जीवन व्यतीत करने पर परलोक मे सुख मिलेगा। उनकी बातो से प्रभावित नही हुए। उनकी बात तर्क सम्मत नही लगी। पात्र उठाया। चीवर लिया। वे राजगृह के मार्ग पर चल पडे।

बोधिसत्त्व ने कल्लोलिनी गगा पार किया। मगध की राजधानी राजगृह मनोरम लगा। विन्ध्य पर्वत की पच पर्वतीय मालाओ द्वारा नगर परिवेष्ठित था। विभूषित था। श्रीसम्पन्न गृहो से युक्त था। कल्याण-कारी तपोदा नदी से शोभित था। पर्वतो से सुरक्षित था। विन्ध्य कुक्षि मे

था। पुष्पित पुष्करिणियो से युक्त था। वहाँ पर्णशाला थी। धर्मशाला थी। विशाल गोपुर था। प्रशस्त प्राकार से वेष्ठित थी।

पर्वतमाला गुफाओ से गुथी थी। निरापद थी। सुरम्य थी। परिव्राजको को आकर्षित करती थी। साधको की साधना-स्थली थी। पर्वत वास था। एकान्त वास था। प्रकृति का साथ था। योगियो का साथ था। विद्वानो का सत्संग था। अनेक मतमतान्तर का मिलन मन्दिर था। भिक्षाचार निमित्त नगर समीप था।

राजगृह के पुरजनो ने देखा। एक सौम्य मूर्ति। चीवरधारी महापुरुप। हाथ मे लिये भिक्षा-पात्र। उनके भव्य स्वरूप को देखकर, उनके गाम्भीर्य को देखकर, उनको दीप्ति को देखकर, पौरगण विस्मित हुए। बोधिसत्त्व के नेत्र स्थिर थे। युग मात्र दर्शी थे। वाणी निवृत्त थी। मन्दगामी थे। मन नियन्त्रित था। गात्र नियन्त्रित था। चचल चित्त वश मे था।

जो जहाँ था वही ठहर गया। जो ठहरा था उसने उनका अनुकरण किया। जो बैठा था वह उठ गया। शनै शनै चलने वाला वेग से चला। किसी ने करबद्ध पूजा की। किसी ने शिरसा बन्दना की। किसी ने सत्कार किया। किसी ने स्नेह स्वर से बन्दना की। उनको विना पूजा किये कोई नही गया।

उन्हे देखकर बहुभाषी नीरव हो गये। विचित्र मूल्यवान वेश-भूषाधारी लज्जित हुए। उन्हे देखकर किसी की अन्याय बुद्धि नही हुई। ससम्मान उन्हे देखते नर-नारियो की दृष्टि तृप्त नही हुई। बोधिसत्त्व का हस्त, पाद, मुख, ललाट, भौ, नेत्र, आकृति, गति जो जिसने देखा उस पर मुग्ध हो गया। कोई निश्चय नही कर सका। वे देव थे अथवा पुरुप ?

राजा के पास पहुँचे राजपुरुष। उन्होने निवेदन किया—'राजन्! नगर मे एक भिक्षापात्रधारी महापुरुप का आगमन हुआ है। भिक्षा माँग रहा है। चीवरधारी है। शान्त है। गम्भीर है। वह देव है ? नाग है ? गरुड है ? मनुष्य है ? कौन है ? हम कुछ निश्चय नही कर सके है।'

राजा ने राजपुरुपो की कौतूहल पूर्ण मुद्रा देखी। कुछ विचार कर बोले :

'महापुरुष कहाँ है ?'

'पृथ्वीपते ! वह यही नगर मे भिक्षा माँग रहा है।'

'अच्छा—देखूँ ?'

राजा राजभवन के ऊपर चला गया। छत पर से उसने देखा। उस महापुरुष के हाथ मे भिक्षा-पात्र था। वह रूपवान् था। महान् था। पवित्र था। सदाचारी था। वह राजपथ मे गतिशील था। गति मे उद्वेग नही था। वेग नही था। वह युग मात्र देवता था। उनके नेत्र नत थे। किन्तु जागरूक थे। निम्न जाति के मालूम नही पडते थे। अपने आप मे लीन थे।

किसी की ओर आकर्षित नही हो रहा था। लोग उसकी ओर आकर्षित हो रहे थे। राजा उस विमल मूर्ति को देखकर स्वय विस्मित हुआ। उसने उस जैसा प्रव्रजित पुरुष राजगृह मे कभी नही देखा था। स्वयं निष्कर्ष पर नही पहुँच सका। वह महापुरुष देवता था या मनुष्य।

राजा के साथ ही राजपुरुषगण खडे थे। उन्हे देखकर राजा ने कहा :

'यदि वह अमानुष होगा तो नगर से बाहर निकलते ही लोप हो जायगा।'

'यदि देवता हुआ ?' एक राजपुरुष ने प्रश्न किया।

'आकाशगामी होगा।'

'यदि नाग हुआ ?' दूसरे राजपुरुप ने पूछा।

'पृथ्वी मे प्रवेश कर जायगा।'

'यदि मनुष्य होगा ?' तीसरे राजपुरुष ने प्रश्न किया।

'वह प्राप्त भिक्षा शान्तिपूर्वक ग्रहण करेगा।'

'तो हम क्या करे ?' राजपुरुषो ने पूछा।

'उसका अनुकरण कर, मुझे सूचित करो।'

'आज्ञा देव !' राजपुरुपो ने राजा की वन्दना की। अभिवादन किया। वे बोधिसत्त्व का पता लगाने चले। राजा छत पर खडा रहा। बोधिसत्त्व को उस समय तक देखता रहा जब तक वे दृष्टिगोचर थे।

× × ×

बोधिसत्त्व ने उतनी ही भिक्षा द्वार-द्वार माँगी जितनी उनके लिये पर्याप्त थी। संग्रह वृत्ति से वे दूर थे। कल की चिन्ता उनमे प्रवेश नही कर सकी थी। वे भविष्य नही देख रहे थे। वे देख रहे थे वर्तमान।

नगर द्वार से बाहर बोधिसत्त्व निकले। रत्नगिरि अर्थात् पाण्डव[3] पर्वत की छाया मे आये। पूर्वाभिमुख बैठ गये। प्रतीत होता था। जैसे व्याघ्र, वृषभ अथवा सिह अपनी गुफा मे शान्त बैठा हो।

भिक्षा पात्र सम्मुख रखा। प्राप्त प्रतिकूल भिक्षा देखकर उनका मन खिन्न हो गया। इस प्रकार का भोजन उन्होने जीवन मे कभी नही किया था। कभी नही देखा था। उन्होने सर्वदा तीन वर्ष से अधिक पुराने सुगन्धित चावल का भात अनेक प्रकार के सुस्वादु रसो के साथ खाया था।

वे ग्रास मुख मे डाल नही सके। उनकी आँत जैसे उस भोजन को देखकर मुख से बाहर आने लगी। भिक्षा-पात्र मे पडे भोज्य पदार्थ को एकटक देखने लगे। सहसा उन्हे स्मरण आया। कपिलवस्तु के राजपथ पर उन्होने एक प्रव्रजित देखा था। उसके हाथ मे भिक्षा-पात्र था। उससे प्रव्रज्या की प्रेरणा मिली थी। आज वे स्वयं भिक्षुक थे। भिक्षाचार किया था। किसी का श्रद्धा से दिया भोजन कैसे ग्रहण नही करेगे ?

मनोविकारो को तिरोहित किया। चित्तवृत्तियो को सयत किया। शान्त चित्त हुए। दक्षिण हस्त भिक्षापात्र मे गये। ग्रास उठा। शान्तिपूर्वक ग्रास ग्रहण करने लगे। उस अस्वादु भोज्य पदार्थ को देखकर उन्हें अपनी भिक्षुक दशा पर, अपनी स्थिति पर ग्लानि नही हुई। उन्हें अपने इस नियन्त्रण पर, इस मनोभावना के विरोध मे हर्ष का अनुभव हुआ।

राजपुरुष चुपचाप आड से सब क्रिया देखकर लौटे। उन्हें आश्चर्य था। बोधिसत्त्व कितने संयत थे। कितने शांत थे। कितनी निर्विकार भावना से स्वल्पाहार किया था।

× × ×

राजपुरुष गण राजा के पास पहुँचे। बोधिसत्त्व के त्याग, संयम, एवं निर्विकार भाव का वर्णन किया। राजा प्रसन्न हो गये। दर्शन निमित्त राजभवन से चले।

  ×

[4]राजा ने पाण्डव पर्वत पर आरोहण किया। झरने के समीप पहुँचा। उसने देखा। पर्वत तुल्य शरीरवान एक व्यक्ति। एक सरल चित्त महापुरुष। शान्त बैठा एक परिव्राजक। अपने मे लीन एक व्यक्ति। एक तुष्ट मानव।

राजा ने बोधिसत्त्व से उनका धातु साम्य पूछा। मानसिक स्वास्थ्य पूछा। आरोग्य पूछा। अनुमति प्राप्त कर स्वच्छ शिलातल पर बैठा।

राजा ने उनकी वन्दना की। अभिवादन किया। सत्कार किया। राजा ने देखा। उनमे आत्मश्लाघा नही थी। मान नही था। गर्व नही था। वे एक परम सरल व्यक्ति थे।

लोमशभ्रू राजा अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने अंजलिबद्ध निवेदन किया .

'सौम्य' आप युवक है। प्रथम अवस्था प्राप्त तरुण है। (दहर है।) रूप सम्पन्न है। आप क्षत्रिय जाति के मालूम होते है। आपकी क्या जाति है।'

'राजन्!' भगवान् ने कहा। 'सूर्य वंशी, शाक्य जाति है। कोसल निवासी धन पराक्रम सम्पन्न, हिमवन्त के समीप एक जनपद के ऋजु राजा है। मै उनके वंश का हूँ। प्रव्रजित हूँ।

'महात्मन्! यह राज्य आपका है। यह राज वैभव आपका है। सब ऐश्वर्य आपका है। आप इसका भोग कीजिए।' राजा ने प्रसन्नता पूर्वक कहा।

'राजन्!' बोधिसत्त्व की नम्र वाणी मुखरित हुई। 'मुझे किसी वस्तु की कामना नही है। मुझे भोग की कामना नही है। मै उनसे विरत हो चुका हूँ।'

'परिव्राजक!' कान्तिमान शरीर राजा ने निवेदन किया।' आप सुखपूर्वक यहाँ निवास कीजिए। अच्छा, मेरा आधा राज्य लीजिए। यहाँ त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ, काम का सेवन कीजिए।'

'राजन्! यह समस्त जगत् मेरा निवास स्थान है। मै एक स्थान से कैसे बँध सकता हूँ?'

'साधो!' लम्बे नेत्रो वाले राजा ने कहा। 'आप भिक्षा माँगते है। मैं उसकी सुविधा कर देता हूँ।'

'राजन् ! मै परिव्राजक हूँ। भिक्षा मेरा धर्म है। यदि आपके अन्न का आश्रित हूँगा तो फिर गृह त्याग का क्या उपयोग था ?'

'देव ! मेरी कोई सेवा ग्रहण कीजिए।' राजा ने प्रांजलिभूत सानुनय कहा।

'राजन् ! सेवा मेरा धर्म है। मै कैसे दूसरों की सेवा लूँ ? सेवा लेना होता, तो भिक्षा पात्र क्यो उठाता ?'

'भगवन् ! आपको किस वस्तु की इच्छा है ?'

'राजन् ! बोधिसत्त्व ने कहा, 'राजा के लिए एक जोडा वस्त्र, क्षुधा-निवारणार्थ अन्न, और शय्या निमित्त आसन चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा और मनुष्य की अन्य कामनाएँ मद एव मान के लिए है।'

'देव !'

'राजन् ! मैने अभी सम्बोधी निमित्त गृह त्याग किया है। मैने महान् बुद्ध ज्ञान के लिये प्रव्रज्या ली है।'

'देव ! आपको वह मिल सका है ?'

'राजन् ! अभी नही।'

'यदि मिल जाय ?'

'जन्म सफल होगा।'

'मेरा एक निवेदन है देव !'

'राजन् ! कहिए।'

'बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् आपका सर्व प्रथम आगमन यही होना चाहिए शौद्धोदनि !' राजा ने सस्मित निवेदन किया।

'राजन् ! वचन देता हूँ।'

भिक्षा पात्र उठाते हुए बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया। राजा ने उन्हे शिरसा नमामि किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। नगर की ओर प्रसन्न वदन लौटा। और भगवान् ने अपनी यात्रा की ओर पद उठाया।

आधार ग्रन्थ

महावश २ : (पृष्ठ १०)
सुत्त निपात · २७ (पव्वज्जासुत्त)

टिप्पणियाँ

(१) राजगृह—तत्कालीन मगधराज की राजधानी राजगृह था। उसे गिरिवज्र भी कहते थे। पर्वतमाला से घिरी है। उनके नाम, ऋषिगिल, वेपुल्ल वैभार, पाण्डव, और गृद्धकूट पर्वत है। इसके मध्य से तपोदा नदी बहती है।

प्राचीन राजगृह गिरिवज्र पर्वत पर दुर्ग सहित गाथानुसार महागोविन्द की कल्पना पर बना था। दूसरा राजगृह पर्वत मूल में विम्बसार राजा ने बसाया था। यह प्राचीन प्रसिद्ध राजा मान्धाता तथा महागोविन्द की राजधानी था। राजगृह के पर्वत के उत्तर का अचल दक्षिणगिरि कहा जाता था। यहाँ भगवान् के परिनिर्वाण के चार मास पश्चात् प्रथम बौद्ध सगति महाकाश्यप की अध्यक्षता मे हुई थी। उसका स्थान सत्तपर्णी गुहा था।

बुद्धत्व प्राप्ति के बीस वर्ष तक राजगृह भगवान् का एक प्रकार से केन्द्र था। तत्पश्चात् श्रावस्ती हुआ था।

राजगृह मे भगवान् के तीसरा, चौथा, सातवाँ तथा बीसवाँ वर्षावास करने की बात कही जाती है किन्तु अगुत्तर निकाय अट्ठकथा २ ४ ५ के अनुसार दूसरा, तीसरा, चौथा, सत्तरहवाँ, तथा बीसवाँ वर्षावास राजगृह मे किया था। भगवान् के समय मे सात श्रेष्ठ नगरो मे से एक राजगृह भी था।

राजगृह और उसके आस-पास, कनन्दक निवाप, शीतवन, जीवक का अम्बवन, पिप्पली गुफा, उदुम्बरिका राम, मोर निवाप, परिव्राजकाराम, तपोदाराम, इन्द्रशाल गुहा, वेदि गिरि, सत्तपर्णी गुहा, लट्ठिवन, मद्दकुच्छि, सुपतित्थ चैत्य, पाषाण चैत्य, सप्प सोन्दिकायभारा और सरोवर सुमगध था।

नगर के समीप तपोदा तथा साधिनी सरिता बहती थी। भगवान् के परिनिर्वाण के समय अट्ठारह बडे बिहार बने थे।

नगर का द्वार सायकाल बन्द कर दिया जाता था। उसके पश्चात् नगर प्रवेश असम्भव था। आनेवाला चाहे राजा ही क्यो न हो उसे द्वार पर रात्रि व्यतीत करना पडता था। भगवान् के समय में लिच्छवियो के आक्रमण का भय सर्वदा बना रहता था।

नगर के उत्तर-पूर्व दिशा मे अम्बसठ और शालन्दिय ब्राह्मणो का ग्राम था। आसपास उत्पतिस्स ग्राम, कोलित ग्राम, अन्धक विन्दु, सक्खर, चोदना वत्थु ग्राम थे। भगवान् की मृत्यु के पश्चात् राजगृह का ह्रास आरम्भ हो गया। मगध की राजधानी पहले वैशाली (बसाढ) हुआ तत्पश्चात् पाटलीपुत्र (पटना) हुआ।

हुएनत्साग राजगृह आया था। उसके समय यहाँ ब्राह्मणो की आवादी थी। वह खँडहर की अवस्था प्राप्त कर गया था।

(२) अनूपिया—कपिलवस्तु की पूर्व दिशा मे एक निगम था। मल्लदेश मे था। वहाँ के आम्रवन मे भगवान् ने राजगृह प्रस्थान के पूर्व एक सप्ताह अनोमा से आकर विहार किया था। वहाँ उन्होने स्वत प्रव्रज्या ली थी। किसी ने उन्हे प्रव्रजित नही किया था।

बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् कपिलवस्तु से लौटते समय वहाँ अनुरुद्धादि को प्रव्रजित किया था। यहाँ से भगवान् कौशाम्बी गये थे।

देवमल्ल पुत्र का अनूपिया जन्मस्थान था। अनूपिया का आम्र वन मल्ल राजाओ का था। वहाँ उन्होने भगवान् के निमित्त एक बिहार का निर्माण करा दिया था। अनूपिया के समीप परिव्राजक भर्ग गोत्र का उद्यान आश्रम था। भगवान् जब अनूपिया मे बिहार कर रहे थे तो भगवान् उसके यहाँ एक समय गये थे। औदपातिक सुत्त का उपदेश दिया था। अनोपिया किंवा अनूपिया एक ही शब्द है। केवल उच्चारण मे अन्तर है।

(३) पाण्डव पर्वत—वह राजगृह के समीप एक पर्वत है। कथा है कि इसके पूर्वीय ढाल पर साधु रहते थे। हिमालय जाते समय अग्रश्रावक सिवली ने यहाँ विश्राम किया था।

(४) महावश मे दिया गया है। सिद्धार्थ राजा विम्बसार के वाल सखा थे। विम्वसार से पाँच वर्ष बडे थे। उनके पिता भी परस्पर मित्र थे।

तपस्या

राजगृह से बोधिसत्त्व ने उरुवेला[1] की ओर प्रस्थान किया। यात्रा मे भिक्षाचार करते रहे। उनके पास भिक्षा-पात्र तथा चीवर के अतिरिक्त और कुछ नही था।

मार्ग मे एक आश्रम था। [2]आलार कालाम आश्रम के आचार्य थे। कालाम उनका गोत्र था। साख्य दर्शन के विद्वान् थे। साख्य मत के प्रतिपादक थे। आश्रम मे तीन सौ शिष्य निवास करते थे। बोधिसत्त्व वहाँ गये। आचार्य ने उनका स्वागत किया। बैठने के लिये काष्ठ आसन दिया।

आलार कालाम विख्यात साख्यशास्त्रवेत्ता थे। रूपाचर भूमि से ऊपर उठकर उद्दक राम पुत्र के समान अरूपाचर भूमि की समाप्ति प्राप्त कर विहार करते थे। उसे सीख लिया। उसके आगे की भूमिका बोधिसत्त्व को आलार कालाम ने नही बतायी।

बोधिसत्त्व ने आश्रम की गतिविधि का अवलोकन किया। साख्य दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया। मुक्ति निमित्त साख्य मार्ग रुचिकर प्रतीत नही हुआ। आश्रम का त्याग किया। आगे बढे।

मार्ग मे एक और आश्रम मिला। उद्दक रामपुत्र आचार्य थे। उनके सात सौ शिष्य आश्रम मे निवास करते थे। आश्रम पर्वतीय गुफाओ मे था।

[3]उद्दक रामपुत्र वैशेषिक दर्शन के विद्वान् थे। बोधिसत्त्व वहाँ ठहर गये। वैशेषिक दर्शन का अध्ययन किया। उद्दक रामपुत्र ने आश्रम मे निवास करने के लिये आग्रह किया। विद्यार्थियो को शिक्षा देने का अनुरोध किया। बोधिसत्त्व ने विनयपूर्वक अस्वीकार किया। मुक्ति का यह मार्ग रुचिकर प्रतीत नही हुआ। आश्रम का त्याग किया। उरुवेला की ओर बढे। राजर्षि गय की नगरी गया पहुँचे।

बोधिसत्त्व को उरुवेला पसन्द आया। स्थान रमणीक था। छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थी। फलगू[4] नदी समीप थी। नदी का जल वर्षा के पश्चात् प्राय' बालू के नीचे बहता था। कुछ बालू हटा देने पर जल निकल आता था। नदी का पाट काफी चौडा था। नदी के दूसरे तट पर पर्वत-मालाएँ थी। स्थान एकान्त लगा, सुरम्य लगा। तपस्या निमित्त उपयुक्त समझा। आसन लगाया। बोधि प्राप्ति निमित्त महाप्रयास आरम्भ किया।

बोधिसत्त्व, ग्राम मे, पुर मे भिक्षा माँगते थे। जो कुछ रूखा-सूखा, किवा स्वादिष्ट-अस्वादिष्ट मिल जाता था उसी पर जीवन निर्वाह करते थे।

[5]कौण्डिण्य, बप्प[6], भद्दिय[7], महानाम[8] और अश्वजित[9] पचवर्गीय[10] भिक्षु भगवान् के पूर्व वहाँ आ चुके थे। मुक्ति प्राप्ति के तीव्र आकाक्षी थे। वे तपस्या कर रहे थे। वही निवास करते थे।

कौण्डिन्य कपिलवस्तु समीपस्थ द्रोणवस्तु ग्राम निवासी था। ब्राह्मण कुलोत्पन्न था। तीनो वेदो मे पारगत था। वप्प कपिलवस्तु निवासी था। ब्राह्मण के घर मे जन्म लिया था। उन्हे असित की भविष्यद् वाणी स्मरण थी। सिद्धार्थ बुद्ध होगे। अतएव कौण्डिन्य, बप्प तथा अपने तीन अन्य मित्रो के साथ गृह त्याग किया था।

बुद्धत्व प्राप्ति के पवित्र उद्देश्य से बोधिसत्त्व ने तपस्या आरम्भ की। पचवर्गीय भिक्षु भी तपस्या मे रत हुए। धीरे-धीरे छह वर्ष व्यतीत हो गये।

बोधिसत्त्व ने कठिन कष्टसाध्य तपस्या आरम्भ की। सम प्राप्त करने की इच्छा से शरीर को कृश बनाया। एक समय भिक्षा ग्रहण करते थे। तिलतण्डुल मात्र एक आहार रह गया था। अनन्तर निराहार रहने लगे। आहार के अभाव मे शरीर सूख गया। क्षीण हो गया। माँस गल गये। अस्थि पजर पर महीन त्वचा आवरण मात्र शेष रह गयी। पसलियाँ उभड आयी। उनकी गणना की जा सकती थी। वे ढकी त्वचा से गिनी जा सकती थी।

पेट पचक गया। पीठ से लग गया। कण्ठ और स्कन्ध की हड्डियाँ झाँकने लगी। हाथ सूख गये। लकडी हो गये। उँगलियाँ सूख गयी। काँटा हो गयी। नाखून बढ गये। खुरपा की तरह हो गये। सन्धियो की गाँठे उभड़ आयी। शिराये कही फूल गयी। कही त्वचा मे लोप हो गयी।

शक्ति लुप्त हो गयी। कान्ति मलिन पड गयी। सुवर्ण वर्ण शरीर झुलस गया। शरीर पर महापुरुषो के लक्षण थे। वे सूखे शरीर मे सूख गये।

बोधिसत्त्व की तपस्या और उग्र हुई। श्वास हीन ध्यान मे बैठे। काया उनका साथ नही दे सकी। अन्त शक्ति काया को ठीक नही रख सकी। वे बेहोश[11] हो जाते थे। एक समय चारिका करते थे। एक दिन चबूतरे पर गिर पडे। कर्मेन्द्रियाँ दुर्बल हो गयी। ज्ञानेन्द्रियाँ सकुचित हुई। शरीर की दुर्बलता मे तपस्या का फलवती होना दुरूह लगने लगा।

बोधिसत्त्व ने अनुभव किया। दुष्कर, क्लेशकर तपस्या से कोई लाभ नही था। बुद्धत्व प्राप्ति का यह मार्ग बोधिसत्त्व को कठिन लगा। जन-साधारण के लिये अनुपयोगी समझा। असाध्य समझा। निश्चय किया। यह मार्ग श्रेयस्कर नही है।

बोधिसत्त्व ने निराहार व्रत त्याग दिया। ग्रामो मे प्रवेश किया। नगर मे प्रवेश किया। भिक्षाचार करने लगे। स्थूल आहार ग्रहण किया। स्थूल आहार ने प्रभाव दिखाया। क्षीण शरीर मे, सूखे शरीर मे, पुन स्थूलता ने प्रवेश किया। शरीर पुन सुवर्ण वर्ण हो गया। दुर्बलता लोप होने लगी। शरीर मे शक्ति ने प्रवेश किया।

साथी पचवर्गीय भिक्षुओ पर बोधिसत्त्व के कार्यो की विचित्र प्रतिक्रिया हुई। छह वर्ष की घोर तपस्या का अन्त हुआ पुन अन्न ग्रहण मे। जहाँ से तपस्या आरम्भ हुई थी वही लौट कर आ गयी। लम्बी तपस्या के पश्चात् भी बुद्धत्व का दर्शन नही हो सका।

तपस्या से बोधि यदि प्राप्त नही हुई तो भिक्षाचार से कैसे प्राप्त होगी? उनकी समझ मे बात नही आ रही थी। वे गौतम की ओर से विरक्त हो गये।

पचवर्गीय भिक्षुओ ने समझा। गौतम तप भ्रष्ट हो गये। तपस्वियो का सुपथ त्याग दिया। आहार का लोभ सवरण नही कर सके। लोभी हो गये। तपस्या के कष्ट से पराभूत हो गये। परीक्षा मे सफल नही हो सके।

उन्होने बोधिसत्त्व के साथ और अधिक दिन रहना व्यर्थ समझा। वे निराश हो गये थे। उन्होने दृढ निश्चय किया। वहाँ ठहरना ओस से स्नान करने जैसा होगा। किसी प्रयोजन की सिद्धि नही होगी।

पंचवर्गीय भिक्षुओ मे वोधिसत्त्व के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी। विरक्ति उत्पन्न हो गयी। अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी। रोप उत्पन्न हुआ। व्यर्थ छह् वर्प का समय नष्ट किया।

क्रोधपूर्वक भिक्षा-पात्र उठाये। चीवर उठाये। सर्वदा के लिए बोधि-सत्त्व के त्याग का निश्चय किया। वे उरुवेला से वहुत दूर निकल जाना चाहते थे। जहॉ बोधिसत्त्व की छाया तक न पहुँच सके। वे वेग से उठे। झपटते चले। उरुवेला से १८ योजन पश्चिम दूरस्थ ऋपिपत्तन सारनाथ वाराणसी की ओर बढे।

आधार ग्रन्थ

विनय महावग्ग १ १ ˙ १.

थेर गाथा : २४६ म० प्र० ४ ६ . ५२

थेर गाथा ६१

टिप्पणियाँ

(१) उरुवेला—उरु का अर्थ वालू तथा वेला नदी का तट होता है। उरुवेला का शाब्दिक अर्थ वालूका तट होता है।

मै वोधगया सर्व प्रथम सन् १९२२ मे गया था। वह प्रथम जेल-यात्रा के पश्चात् का समय था। गया काग्रेस में भाग लिया था। ब्रह्मयोनि के सम्मुख सडक की दूसरी ओर एक मैदान मे ठहरा था। उन दिनो वहाँ आवादी नही थी। वोधगया का मन्दिर अच्छी हालत मे नही था। तत्कालीन वोधगया के महत्त्व से मन्दिर के सम्बन्ध मे विवाद चल रहा था। स्वर्गीय स्वामी सत्यदेव परिव्राजक इस मत के थे कि मन्दिर वौद्धो को दे दिया जाय। मन्दिर के आसपास उन दिनो आवादी नही थी। जगल था। एक पुष्करिणी थी। वोधि-वृक्ष यथास्थान मन्दिर के पृष्ठ भाग में था। उन दिनो वह छोटा था। उरुवेला का जो वर्णन पाली ग्रन्थो मे प्राप्य है उससे उस समय का प्राकृतिक वर्णन मिलता था। उसके पश्चात् मैं सन् १९४१ मे पुन· गया था। आवादी वढ गयी थी। सन् १९६६ में यात्रा किया तो गया से वोधगया तक आवादी फैल गयी थी। प्राकृतिक दृश्य प्राय नष्टप्राय था। केवल नदियाँ, पर्वत और पहाड़ियाँ यथास्थान थी।

(२) आलार कालाम . ललितविस्तर के अनुसार आलार कालाम का आश्रम वैशाली मे था। सांख्य दर्शन के आचार्य थे। अश्वघोप ने वुद्धचरित

मे आलार कालाम का आश्रम विन्ध्य क‍ेष्ठ दिया है। उनका नाम आडार कालाम देता है। कालाम उसका गोत्र माना है। उन्हे साख्यदर्शन का आचार्य कहा है। आलार कालाम वडे ध्यानी थे। उनके विषय मे बहुत सामग्री बुद्ध साहित्य मे प्राप्त है। उनके शिष्य पुक्कुस ने भगवान् के परिनिर्वाण यात्रा के समय कहा था कि उनके सम्मुख से पाँच सौ गाडियाँ निकल गयी थी। परन्तु उसका उन्हे कुछ ज्ञान नही हुआ। पुक्कुस ने बुद्ध शासन स्वीकार किया था। आलार का उद्देश्य अकिंचनायतन स्थिति प्राप्त करना था।

मिलिन्द प्रश्न से प्रकट होता है कि भगवान् के गुरु बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व आलार कालाम थे। तत्पश्चात् भगवान् ने अपना गुरु किसी को नही कहा है। वोधिसत्व काल मे भगवान् के पाँच गुरुओका उल्लेख मिलिन्द प्रश्न करता है।

(३) **उद्दक रामपुत्र**—वैशेषिक दर्शन के विद्वान् थे। उनका आश्रम राजगृह के समीप था। उनके पिता राम स्वय इस विपय के प्रकाण्ड विद्वान् थे। राजा इलेय्य तथा उसके अनुचर रामपुत्र के अनुयायी थे। उन्हे उद्रक भी कही-कही कहा गया है। वह भगवान् के पाँचवें आचार्य मिलिन्द प्रश्न के अनुसार थे।

(४) **फलगू नदी**—फलगू नदी का पाट बहुत विस्तृत है। यहाँ बालू का पिण्ड-दान देते हुए सन् १९२२ मे लोगो को देखा था। नदा मे गड्ढा कर दिया जाता था। उसमे जल एकत्रित होता था। उस जल से काम चलता था। उसी मे लोग स्नान करते थे। नित्य नैमित्तिक कर्म के लिए जाने वाले लोग नदी मे बैठते थे। वही भूमि खोदकर जल निकालते थे। पानी साथ कम ले जाते थे। मैने भी यही किया था। आज परिस्थितियाँ बदल गयी है।

(५) **कौण्डिन्य**—आयुष्मान् कौण्डिन्य का जन्म शाक्य देश मे हुआ था। जाति के ब्राह्मण थे। कपिलवस्तु के समीप द्रोणग्राम जन्मभूमि थी। कपिलवस्तु निवासी ब्राह्मण थे।

(६) **वप्प**—पचवर्गीय भिक्षुओ मे एक थे। कपिलवस्तु के वशिष्ठ ब्राह्मण का पुत्र था। वप्प भी अन्य पचवर्गीय भिक्षुओ के साथ भगवान् के तपस्या काल मे छह वर्ष साथ था।

(७) भद्दिय—कपिलवस्तु के ब्राह्मण वंशीय थे ।

(८) महानाम—पचवर्गीय भिक्षु मे एक । अर्हत्त्व प्राप्त किया था । इन्हें महानाम शाक्य से नही मिलाना चाहिए । धर्मचक्रप्रवर्तन सुत्त के उपदेश तीसरे दिन श्रोतापन्न हुआ था । अनन्तलक्खणसुत्त के उपदेश के दिन अरहत अन्य पचवर्गीय भिक्षुओ के साथ हुआ था । मक्षिका खण्ड मे भिक्षाचार के समय क्षेत्र गृहपति ने उसे आमन्त्रित किया था । उसका उपदेश सुना था । चित्त उनसे प्रसन्न होकर अम्वटकवन बौद्ध सघ को दे दिया था । वहाँ एक विहार भी निर्माण कराया था ।

(९) अश्वजित—पचवर्गीय भिक्षुओ मे एक था । सारिपुत्र को उपदेश दिया था । कोटागिरि वासी था । कोटागिरि वाराणसी के समीप जौनपुर जिला मे केराकत कसवा है । पचवर्गियो मे इन्होने सबके अन्त मे प्रव्रज्या ली थी । कौण्डिन्य बप्प तथा भद्दिय जव भिक्षाचार के लिये गये थे उस समय भगवान् ने अश्वजित और महानाम को पुन उपदेश दिया था । अश्वजित को राजगृह मे सारिपुत्र ने भिक्षाचार करते देखा था । उस समय उनसे बहुत प्रभावित हुए थे । अश्वजित के कारण सारिपुत्र और मोग्गलायन ने प्रव्रज्या ली थी ।

सारिपुत्र आजन्म उन्हे जिस दिशा मे अश्वजित के रहने का पता मालूम हाता उस ओर मुख कर अश्वजित को नित्य प्रणाम करते थे । रात्रि के शयन के समय भी उस ओर मस्तक कर सोते थे ।

भगवान् स्वय अश्वजित के निवासस्थान कनूदयाराम राजगृह में गये थे । जब उन्हे मालूम हुआ था कि वह बीमार थे ।

अश्वजित ने वैशाली मे निर्ग्रन्थो के प्रसिद्ध पुरुष सच्चक को अनन्तलक्खणगण सुत्त का उपदेश दिया था ।

(१०) पचवर्गीय भिक्षु—बौद्ध साहित्य मे इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है । भगवान् ने सर्व प्रथम उपदेश सारनाथ मे इन्हे दिया था । सभी उपदेश सुनकर भिक्षु बन गये । उनकी सज्ञा पचवर्गीय भिक्षु हुई ।

(११) मूर्छा . भगवान् के बेहोश होकर गिरने की बात फैली । यह घटना कपिलवस्तु मे और रूप मे पहुँची । राजा शुद्धोधन से कहा गया । भगवान् की मृत्यु हो गयी । परन्तु राजा ने विश्वास नही किया । उन्हे काल देवल की भविष्यद् वाणी स्मरण थी । उन्हे उस पर विश्वास था ।

●

सुजाता

रमणीय उरुवेला अचल मे सेनानी एक महाग्राम था। सेनानी ग्राम मे सुजाता कन्यारत्न ने जन्म लिया था। वह सेनानी कुटुम्बिक की पुत्री थी। उसके पिता स्वय बडे गृहस्थ थे। सम्पन्न कुल था। सुजाता सुजात थी। उसे नन्दवला भी कहते थे। उसके केश काले थे। घने थे। सौन्दर्य दिव्य था। शरीर मे ओज था। मधुरभापी थी। प्रियादर्शना थी।

वह तरुणी हुई। कान्ता हुई। वट वृक्ष पर मनौती मानी। यदि प्रथम सन्तान पुत्र होगा तो प्रति वर्ष पूजा करेगी। उसका विवाह हुआ। ससुराल गयी। गर्भ रहा। प्रथम गर्भ से सन्तान पुत्ररत्न हुआ। वह प्रसन्न हुई। मनौती की बात स्मरण आयी। पूजा का आयोजन किया।

उसने एक सहस्र गायों को यष्टि मधु चरने के लिए वन मे भेजा। उनका दूध पॉच सौ गायो को पिलाया। उन पाच सौ गायो का दूध दो सौ पचास गायो को पिलाया। उन दो सौ पचास गायो का दूध एक सौ पचीस गायो को पिलाया। इस प्रकार क्रम से दूध पिलाते-पिलाते उसने अन्त मे सोलह गायो का दूध आठ गायो को पिलाया। उनके दूध से उसने निर्जल खीर बनायी।

वैशाख पूर्णिमा का दिन था। सुजाता ने उषाकाल के पूर्व शय्या त्याग किया। शौचादि नित्यकर्म से निवृत्त हुई। स्नान किया। सुन्दर सूक्ष्म नूतन वस्त्र पहना। शुद्धचित्त, शुद्ध मन, बाह्य एव आन्तरिक शुद्धता के साथ उसने स्वय पूजा-निमित्त खीर बनाना आरम्भ किया।

खीर चुरने लगी। सुजाता ने अपनी दासी को पुकारा·

'पूर्णा ! पूर्णा !!'

'आर्ये ! आयी।' पूर्णा शीघ्रतापूर्वक आयी।

'जल्दी चली जा।' सुजाता खीर मे उठते उफान को दूध उछालकर समन करने लगी।

[२]पूर्णा ने सादर पूछा :

'कहाँ जाऊँ आर्ये !'

'वट वृक्ष के नीचे। पूजा के निमित्त स्थान साफ कर डाल। पूजा के लिए खीर लेकर वहाँ चलूँगी।'

'अच्छा !' पूर्णा ने सुजाता का आदेश ग्रहण किया।

पूर्णा ने प्रसन्नतापूर्वक कलश उठाया। झाड़ू लिया। आसन लिया। वट वृक्ष की ओर सानन्द चली।

× × ×

उस दिन बोधिसत्त्व ने पच महास्वप्न देखा था। दैनिक कर्मो से निवृत्त हुए। भिक्षाटन काल की प्रतीक्षा मे, वृक्ष की छाया मे वृक्ष मूल से उठगकर बैठ गये। उनका मुख प्राची दिशा की ओर था। उनकी कान्ति से स्थान ज्योतिर्मय था।

---

(१) सुजाता का पुत्र यश था। उसने भी प्रव्रज्या ली थी। अर्हत्त्व प्राप्त किया था। उसका पिता उसे खोजते आया था। पिता ने भगवान् का उपदेश सुना। भगवान् को भोजन निमित्त आमन्त्रित किया। भगवान् यश के साथ उसके घर पर गये। भोजन के पश्चात् भगवान् का उपदेश सुनकर सुजाता तथा यश की स्त्री श्रोतापन्न हो गये। उसी दिन सुजाता ने त्रिवचनीय अर्थात् त्रिरत्न—'बुद्ध शरण गच्छामि', 'धर्म शरण गच्छामि' 'और 'संघ शरणं गच्छामि', के साथ भगवान् की शरण ली।

सुजाता नाम के कारण कभी-कभी भ्रम हो जाता है। सुजाता जातक एवं सुजाता सुत्त है। एक सुजाता शोभित बुद्ध की अग्रश्राविका थी। दूसरी सुजाता प्रियदर्शी बुद्ध की अग्रश्राविका थी। एक सुजाता पद्मोत्तर बुद्ध की माता थी। दूसरी सुजाता कोण्डञ्ञ बुद्ध की माता थी। एक अमर स्त्री थी। शक्र की वह स्त्री हुई थी। एक सुजाता नाटिका की उपासिका थी। एक सुजाता नाटिका थी। एक सुजाता विशाख की कनिष्ठ बहन और धनजय श्रेष्ठी की कन्या थी। उसका विवाह अनाथपिण्डक से हुआ था। एक सुजाता वाराणसी की महिला थी। एक सुजाता थेरी थी। साकेत के श्रेष्ठी की कन्या थी। एक दिन वह तमाशा देखकर लौट रही थी। भगवान्

बोधिसत्त्व पद्मासन लगाकर बैठ गये। मुद्रा शान्त थी। निर्विकार थी। विचार वीथियो मे रमने लगे। पूर्णा आयी। उसने देखा—दैवी भव्य मूर्त्ति। कल्पना किया। स्वयं वृक्ष देवता वृक्ष से निकल आये थे। साकार वृक्ष की छाया मे वैठे थे। स्वय पूजा ग्रहण करने आये थे।

पूर्णा आश्चर्यित हुई। किंचित् भयभीत हुई। देवता से कुछ पूछना, कुछ जानना, उचित नही समझा। देवता की योगमुद्रा में विघ्न डालना उचित नही समझा। दबे पाँव पीछे हटी। एक ओर जल-कलश, पूजा सामग्री रख दी। सुजाता को समाचार देने चली।

× × ×

'देवी! देवी!!' पूर्णा ने सुजाता को सम्बोधित किया।

'क्या है पूर्णा ?' सुजाता उसके चचल भयाकुल रूप को देखकर, कुछ चकित हुई।

'वहाँ मै गयी थी।'

'स्थान पूजा योग्य बना दिया ?'

'नही—वहाँ तो स्वय वृक्ष देवता उतरकर वैठे है।'

'वृक्ष देवता!' सुजाता को कौतूहल हुआ।

'हाँ!' पूर्णा ने विश्वास के साथ उत्तर दिया।

अजन वन मे उपदेश दे रहे थे। उसने उपदेश सुना। घर पहुँची। अपने पति से अनुमति लेकर वुद्ध शासन मे प्रवेश किया।

(२) पूर्णा कई पूर्णा का उल्लेख मिलता है। सुजाता की इस दासी के अतिरिक्त एक पूर्णा थेरी थी। वह श्रावस्ती की थी। महाप्रजापति गौतमी के उपदेश सुनकर प्रव्रजित हुई थी। पूर्व जन्म मे चन्द्रभागा नदी के तट पर किन्नरी थी। दूसरी पूर्णा थेरी, अनाथपिण्डक के घर पैदा हुई थी। सिंहनाद सुत्त सुनकर श्रोतापन्न हुई थी। बुद्ध घोष ने इसे अनाथपिण्डक की दासी की कन्या कहा है। नानचन्द जातक मे एक दासी पूर्णा का उल्लेख मिलता है। दूसरी पूर्णा राजगृह की दासी थी। एक दासी पूर्णा का और उल्लेख मिलता है। उसने एक अंशुक स्मशान (अतिमुत्तक सुसान) पर फेंक दिया था। भगवान् ने उसे लेकर चीवर बनाया था। वही चीवर भगवान् ने महाकाश्यप से बदला था।

'तुमने स्वयं देखा है ?'

'निश्चय ! देखकर आ रही हूँ ।'

सुजाता विस्मित हुई । उसकी पूजा ग्रहण करने स्वयं वृक्ष देवता कैसे उतर आये । कभी ऐसी बात सुनी नही गयी थी । किन्तु पूर्णा पर वह अविश्वास नही कर सकी ।

सुजाता प्रमुदित होती बोली : 'पूर्णा ! आज से तू मेरी ज्येष्ठ कन्या तुल्य है । यही निवास करो ।'

पूर्णा खिल गयी । उसने दोनो हाथो से अपना अचल फैलाया । मस्तक से लगाते हुए सुजाता का चरण स्पर्श किया । तीन बार चरण स्पर्श किया । अचल मस्तक से लगाया । सुजाता ने उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया । वही बैठने के लिए कहा ।

सुजाता घर मे चली गयी । पुत्री के अनुरूप वस्त्र आभरण लायी । पूर्णा को दिया । पूर्णा ने उन्हे पहना । सचमुच वह सुजाता की कन्या तुल्य लगने लगी ।

× × ×

सुजाता ने स्वयं अपना शृगार किया । शुद्ध नील वस्त्र धारण किया । दिव्य अलकारो से अलकृत हुई । धोती की चुनन सुडौल कटि प्रदेश से नीचे गिरी । धोती के ऊपर उसने स्वर्ण मेखला पहनी । मेखला रत्नजडित थी । वाम कटि पर लगी थी । वहाँ से वह दक्षिण जघा पर झूल गयी थी । उसमे मुक्ता गुच्छ थे । वे जघन प्रदेश पर लोलित थे ।

उसने स्वर्ण भुजबन्ध पहना । कलाइयो मे रत्नजटित ककण डाला । वक्षस्थल मुक्ता माल से शोभित हुआ । कुण्डल कानो मे डोले । उनमे दीप्ति थी । जूडा मे मोतियो की माला वेष्ठित हुई । केशों मे मुक्ता लगे । भ्रू-मध्य केसर तिलक लगा ।

सुजाता ने पात्र मे खीर रखा । सुवर्ण थाल से ढँका । थाल नवीन वस्त्र से बाँधा ।

पवित्रता के साथ उसने खीर की थाली सुगन्धित मस्तक पर रखी । उसकी श्वेत पंख जैसी भुजाएँ थाल थामे थी । वह वृक्ष देवता की पूजा निमित्त श्रद्धापूर्वक चली ।

सुजाता वृक्ष की छाया में पहुँची । उसने सचमुच वृक्ष देवता तुल्य

शाक्य मुनि को शान्त मुद्रा मे बैठे देखा। उसे सन्तोष हुआ। वृक्ष देवता स्वय पूजा ग्रहण करने आये थे। पूर्णा की बात ठीक निकली।

वृक्ष के नीचे पहुँचकर थाल शिर से उतारा। थाली को खोला। सुवर्ण झारी मे सुगन्धित जल था। उसने दाहिने हाथ मे झारी उठायी। बोधिसत्त्व के सम्मुख श्रद्धाभक्ति के साथ उपस्थित हुई।

बोधिसत्त्व ने सुजाता को देखा। उनकी विमल दृष्टि मे सुजाता साध्वी नारी तुल्य लगी। उनके मन मे किसी प्रकार का विकार नही था। उनके नेत्रो की निर्मलता, उनका भव्य स्वरूप देखकर, सुजाता अत्यन्त प्रभावित हुई।

बोधिसत्त्व ने शिला-पात्र मे जल लेना चाहा। शिला पात्र अदृश्य था। दाहिना हाथ जल निमित्त फैला दिया। स्वर्ण झारी द्वारा प्रदत्त जल से हस्त प्रक्षालन किया। सुजाता ने जल-पात्र एक ओर रख दिया। उसने स्वर्ण पात्र मस्तक से लगाया। भगवान् को प्रणाम किया। पात्र उनके सम्मुख रख दिया।

सुजाता करबद्ध नतमस्तक वन्दना करने लगी। बोधिसत्त्व को उसने सचमुच वृक्ष देवता ही समझा। वह बोली ·

'देव। मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है। आप खीर ग्रहण करे।'

बोधिससत्त्व मुसकराये, सुजाताकी सरलता देखकर। उन्होने उसे अन्धकार मे नही रखना चाहा। उसकी वाणी समाप्त होते बोले ·

'देवी। मै वृक्ष देवता नही हूँ।'

सुजाता स्तम्भित हुई। उसने विस्फारित नयनो से बोधिसत्त्व को देखा। उसे विश्वास नही हो रहा था। बोधिसत्त्व ने पुन· कहा :

'भद्रे। तुम्हारी तरह मनुष्य हूँ।'

विस्मयापन्न सुजाता का हृदय कह रहा था। वह मनुष्य नही थे। देवता थे। वह निर्निमेप दृष्टि से उनको देखती रही। पूर्णा चकित थी। उसे भय हुआ। उसने अपनी स्वामिनी से मिथ्या बात कही थी। बोधिसत्त्व ने उसे नीरव देखा। वह बोले :

'सत्य प्राप्ति मे लगा हूँ। उसे खोज रहा हूँ। जिसे मिलने पर परम शान्ति मिलती है।'

शिरसा प्रणाम करते हुए सुजाता ने कहा—

'देव ! आप खीर ग्रहण करे ।'

'कल्याणी !' बोधिसत्त्व ने कहा—'सत्य अन्वेषण मे तुम्हारी खीर सहायक हुई है । तुम्हारा मगल हो ।'

भगवान्‌ने सुवर्ण थाल देखा । उन्होने थाल को पुराने पत्तल की तरह समझा । खडे हुए ।

सुजाता एक ओर हट गयी । विनत खडी रही । बोधिसत्त्व ने वृक्ष को प्रदक्षिणा की । खीर पात्र उठाया । निरजना नदी के तट की ओर चले । वहाँ उन्होने तट पर खीर रख दिया ।

सरिता जल मे बोधिसत्त्व ने स्नान किया । पूर्व मुख आसन लगाकर बैठ गये । खीर को सामने रख लिया । उस निर्जल पायस को उनचास ग्रासो मे भोजन किया ।

वह आहार बोधिसत्त्व को बोधिवृक्ष मण्डप के निवास काल के उनचास दिनो के लिए पर्याप्त हुआ । उनचास दिनो तक किसी प्रकार का आहार ग्रहण नही किया । मुख प्रच्छालन नही किया । स्नान नही किया ।

भोजनोपरान्त थाल को बोधिसत्त्व ने निरंजना नदी मे जूठे पत्तल की तरह प्रवाहित कर दिया ।

बोधिसत्त्व ने खीर ग्रहण किया । सुजाता धन्य हुई । कृतकृत्य हुई । शिरसा वन्दना की । पूर्णा के साथ लौट गयी । उसने भगवान् को अन्त तक वृक्ष देवता ही समझा । उसे विश्वास न हुआ । वे मनुष्य थे ।

⊙

आधार ग्रन्थ :

J . 1 68
VhA : 1 71
SNA 1 · 125
V 11 : 135
A 1 26
AA · 1 217

बोधिसत्त्व से बुद्ध

बोधिसत्त्व नदी तट से पुष्पित शाल वन मे गये। वहाँ उन्होने शेष दिन समाप्त किया। सायकाल बोधि वृक्ष के नीचे आये। वहाँ आसन नही था। विश्राम के लिए कोई चटाई नही थी।

श्रोत्रिय घसिहारा तृण लिये आया। उसने बोधिसत्त्व के पास आसन नही देखा। आठ मुट्ठी तृण दिया। बोधिसत्त्व ने तृण ले लिया। तृण सहित वे बुद्धगया मन्दिर के वर्तमान मण्डप स्थान मे आये। वृक्ष की प्रदक्षिणा की। पूर्व की ओर गये। पुन पच्छिम मुख करके खड़े हो तृणो को भूमि पर फैलाया। तृण सुन्दर आसन वन गये। तृणासन पर अपराजित आसन लगाकर बैठ गये। पीठ प्रदेश बोधि वृक्ष से लगा था। मुख पूरब की ओर था।

बोधिसत्त्व ने निश्चय किया। जब तक सम्यक् सम्बोधि प्राप्त नहो कर लूँगा इस आसन का त्याग नही करूँगा। वे पूर्वाभिमुख शान्त बैठे।

उनका दृढ निश्चय था। शरीर चाहे सूख जाय। धमनियाँ चाहे सूख जाँय। मास चाहे गल जाय। चाहे अस्थि त्वचा तथा शिराये न शेष रह जाँय। किन्तु जब तक सम्यक् सम्बोधि प्राप्त नही होगा। बोधि वृक्ष का आश्रय नही त्यागेगे।

बोधिसत्त्व शान्त आसनस्थ थे। मार ने प्रयास किया उनके चित्त-वृत्तियो को विक्षुब्ध करने का। उन्हे लोभ, काम, रूप. वैभव, भय, त्रास आदि द्वारा निश्चय से विरत करने का। मन की दूषित भावनाएँ, मन की निर्दोष भावनाएँ, मन की सुखमय, दु खमय, कल्पना, उनको निश्चय से

---

(१) मार = मार का वहुत वर्णन आता है। इस शब्द मे मृत्यु तथा कुविचारो का व्यक्तित्व मिलता है। सारनाथ मूलगन्ध कुटी बिहार मे जापानी कलाकार ने जापान सम्राट् के निर्देश पर अत्यन्त निपुणता से मार का चित्रण किया है। यह मानवो की अनेक प्रकार की दुष्प्रवृत्तियाँ है। वही मार शब्द में व्यक्त होती है।

विरत नही कर सकी। उनकी चित्तवृत्ति शान्त थी। उनका निरोध हो चुका था।

पादपो को झकझोरता झंझावात आया। हुकारती आँधी आयी। अपने साथ धूल उडाती आयी, सूखे पत्ते, तृण, कूडा-करकट उडाती आयी। चारो ओर अन्धकार छा गया। परन्तु बोधिसत्त्व स्थिर आसन पर बैठे रहे।

वर्षा आयी। भूमि आर्द्र हो गयी। भूमि पकिल हो गयी। पक बोधिसत्त्व को निश्चय से विरत नही कर सका। घोर अन्धकार घनीभूत हुआ। उन्हे घेर लिया। रात्रि अपने भयावने रूप मे प्रकट हुई। परन्तु बोधिसत्त्व अपने निश्चय से विरत नही हुए।

शिला वृष्टि हुई। किन्तु बोधिसत्त्व स्थिर बैठे रहे। अस्त्र-शस्त्रों की झनकार सुनायी पडी परन्तु बोधिसत्त्व स्थिर बैठे रहे। कामिनियो के नूपुर बजते सुनायी पडे परन्तु बोधिसत्त्व स्थिर बैठे रहे। ललनाओ की ललचायी आँखे उन्हे काम-ज्वर से पीडित करना चाही। परन्तु बोधिसत्त्व स्थिर बैठे रहे। मार की कामना पूरी नही हो सकी। मार के प्रलोभन कमल नाल की तरह टूट चुके थे। मार की दुष्कृतियो, सुकृतियो ने बोधिसत्त्व पर आक्रमण किया किन्तु उनका कुछ बिगाड न सकी।

मार ने कहा—'गौतम, आप कृश है। विवर्ण है। मृत्यु आपके समीप है। आपका सहस्र अश मृत्यु मे है। एक अश जीवन मे है। आप पुण्य अर्जन कीजिए। निर्वाण मार्ग दुर्गम है। दुष्कर है। दुरारोह है।'

बोधिसत्त्व ने कहा—'प्रमत्त बन्धु ! मुझमे अणुमात्र पुण्य की आकाक्षा नही है। मुझमे श्रद्धा है। वीर्य है। प्रज्ञा है। मुझे जीवन आशा से क्या मतलब ? वायु प्रबल सरिता वेग को सुखा देता है। वह क्या मेरे रक्त को न सुखा सकेगा ? रक्त शुष्क होता है। अनन्तर पित्त सूखता है। कफ सूखता है। मास क्षीण होने पर चित्त शान्त होता है। मेरी स्मृति स्थिर होती है। प्रज्ञा स्थिर होती है। समाधि उत्तरोत्तर स्थिर होती है। वेदना से, काम से दूर हो जाता हूँ।'

मारने अपनी सेना के साथ आक्रमण किया। उसकी प्रथम सेना काम था। आर्ति द्वितीय सेना थी। क्षुधा और पिपासा उसकी तीसरी सेना थी। तृष्णा चौथी सेना थी। स्त्यानमिद्ध (थीनमिद्ध) पाँचवी सेना थी। भीरुता छठी सेना थी। शका (विचकिच्छा) सातवी सेना थी। म्रक्ष तथा पृष्ठता (मक्खो थम्भो) आठवी सेना थी।

बोधिसत्त्व नें चारों ओर देखा। दाहिना हाथ चीवर से निकाला। भूमि स्पर्श किया। वह भगवान् की भूमिस्पर्श मुद्रा हुई। मार सेना पराजित होकर भागी। मेद वर्ण पाषाण को मेद समझ वापस उस पर टूटता है परन्तु पाषाण पाकर निराश होकर लौटता है। उसी प्रकार मार लज्जित होकर लौटा।

बोधिसत्त्व की महान् निष्ठा देखकर, उनका दृढ आग्रह देखकर, उनका दृढ निश्चय देखकर, बोधि वृक्ष प्रसन्न हो गया। वृक्ष द्वारा लाल अंकुरो की वर्षा होने लगी।

भगवान् बुद्ध का चीवर प्रवाल की तरह लाल अकुरो से भर गया। मालूम होता था। जैसे प्रवालो से पूजा की गयी थी।

भगवान् को प्रथम याम मे पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ। मध्यम याम मे दिव्य चक्षु प्रस्फुटित हुए। अन्तिम याम मे भगवान् को प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान हुआ। और गगन मे वैशाख पूर्णिमा के पूर्ण शशि विम्ब ने भगवान् को नमस्कार किया।

—और गौतम सिद्धार्थ शाक्यमुनि बोधिसत्त्व से बुध हुए।

आधार ग्रन्थ :

दीघ निकाय : २ १

संयुक्त निकाय ५३ १ : ८

विनय पिटक . महावग्ग १ . १ : १

बोधि वृक्ष[1]

अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिस ।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जति पुनप्पुन ॥ १५३ ॥
गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेह न काहसि ।
सब्बा ते फांसुका भग्गा गहकूटं विसङ्खित ।
विसखा रंगन चित्तं तण्हानं खयभज्झगा ॥ १५४ ॥

(जन्म जन्मान्तर से मै निरन्तर इस ससार मे दौड रहा हूँ । गृहकारक तृष्णा को खोजता वारवार दु खदायी जन्म शृखला मे पडता रहा हूँ । तृष्णे ! मैने तुझे देख लिया है । तू पुन इस शरीर मन्दिर की रचना नही कर सकेगी । तेरी शृखलायें भग्न हो चुकी है । इस गृह का शिखर टूट चुका है । चित्त ने संस्कारो को त्याग दिया है । तृष्णे ! तेरे क्षय द्वारा मैने अर्हत्व प्राप्त किया है ।)

भगवान् उरुवेला मे थे । नेरजरा[2] नदी के तट पर थे । बोधि वृक्ष की

---

(१) बोधिवृक्ष —अश्वत्थ का वृक्ष अर्थ है । भगवान् ने अपने पूर्व जन्मो मे भी वृक्षो के नीचे आसन लगाया था । प्रत्येक बुद्ध के भिन्न-भिन्न वृक्ष थे । दीपाकर बुद्ध के समय सिरिस, मगल, सुमन, रेवत के समय नाग वृक्ष आदि थे । अन्तिम अर्थात् वर्तमान बुद्ध के समय यह सौभाग्य अश्वत्थ वृक्ष को प्राप्त हुआ था । इस वृक्ष का नाम बुद्ध जगत् मे बोधि वृक्ष हो गया है । बोधि वृक्ष की कलम बुद्ध गया से बुद्ध जगत् मे चारो ओर गयी है । इसकी एक शाखा श्रीलका गयी थी । उस मूल वृक्ष का क्रम चलता रहा । सारनाथ के पुनरुत्थान के पश्चात् अनागरिक धर्मपालने उसी बोधिवृक्ष की शाखा अनुराधपुर से लाकर सारनाथ मे लगायी थी । उस समय मै भी उपस्थित था । यह वृक्ष मूलगन्ध कुटी विहार मन्दिर की पूर्व दिशा मे लगा है । भारत स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार ने अनेक बौद्धराज्यो को बोधि वृक्ष की कलम भेजी थी ।

(२) नेरंजना नदी । नीलाजना नदी · कृपया 'तपस्या' की टिप्पणी देखिए ।

छाया मे थे। उन्होने प्रथम अभिसवोधि प्राप्त की। भगवान् बोधि-वृक्ष के तले एक सप्ताह तक बैठे रहे। एक आसन से बैठे रहे। विमुक्ति का आनन्द लेते रहे।

रात्रि का प्रथम याम था। भगवान् ने प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम से मनन किया।

'संस्कार अविद्या के कारण होते है। संस्कार के कारण विज्ञान होता है। नाम और रूप विज्ञान के कारण होते है। नाम रूप के कारण छह आयतन होते है। स्पर्श आयतन के कारण है। स्पर्श के कारण वेदना होती है। तृष्णा वेदना के कारण होती है। तृष्णा के कारण उपादान होता है। उपादान के कारण भव होता है। भव के कारण जन्म होता है। जन्म के कारण जरा होती है। जरा के कारण मृत्यु, शोक, रुदन, विलाप, दु:ख, चित्त विकार और चित्त खेद होता है।'

भगवान् ने प्रतिलोम से मनन किया:

'अविद्या के नाश से सस्कार का विनाश होता है। सस्कार के नाश से विज्ञान का विनाश होता है। विज्ञान के नाश से नाम और रूप का विनाश होता है। नाम-रूप के नाश से छहो आयतनो का विनाश होता है। छह आयतनो के नाश से स्पर्श का विनाश होता है। स्पर्श के नाश से वेदना का विनाश होता है। वेदना के नाश से तृष्णा का विनाश होता है। तृष्णा के नाश से उपादान का विनाश होता है। उपादान के नाश से भव का विनाश होता है। भव के नाश से जन्म का विनाश होता है। जन्म नाश से, जरा, मरण, शोक, विलाप, दु:ख, चित्त विकार और खेद का विनाश होता है। और विनाश होता है दु:ख पुज का।'

भगवान् ने उदान कहा: 'उत्साही ध्यानियो को धर्म प्रकट होता है तो वह हेतु सहित धर्म का अवलोकन करता है। और उसकी आकाक्षाए शान्त हो जाती है।'

रात्रि के मध्यम याम मे भगवान् ने प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम और प्रतिलोम से मनन किया। भगवान् ने अर्थ समझकर उदान कहा:

'जब ससार मे उत्साही ध्यानियी को धर्म प्रकट होता है तो कर्म के क्षय को समझकर उसकी सब आकाक्षाएँ शान्त हो जाती है।'

रात्रि के अन्तिम याम मे भगवान् ने प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम और प्रतिलोम रूप से मनन किया। उसे जानकर उन्होने उदान कहा:

'जब उत्साही ध्यानियों को धर्म प्रकट होता है तो प्रकाश उत्पन्न होता है। मार सेना कम्पित हो जाती है।'

भगवान् एक सप्ताह बोधि-वृक्ष के मूल मे रहे। तत्पश्चात् अजपाल[1] वट वृक्ष के नीचे आसन लगाया। एक आसन से एक सप्ताह तक बैठे रहे। उसी समय वहाँ एक ब्राह्मण[2] आया। भगवान् का कुशल-मगल पूछा। एक तरफ खडा हो गया। भगवान् का सकेत पाकर विप्र ने पूछा

'गौतम ! मनुष्य ब्राह्मण किस प्रकार होता है ?'

भगवान् ने सस्मित ब्राह्मण के मुख की ओर देखा। उसने पुनः प्रश्न किया :

'गौतम ! कौन-सा धर्म ब्राह्मण बनाता है ?'

'ब्रह्मण !' भगवान् ने उत्तर दिया : 'निरभिमानी, सयत, ज्ञानी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मवादी, ब्राह्मण के समान इस जगत् मे और दूसरा कोई नही है।'

एक सप्ताह बीता। भगवान् ने अजपाल वट वृक्ष का स्थान त्याग दिया। वे उठे। मुचलिन्द वृक्ष के नीचे आये। वहाँ भगवान् एक आसन पर आसीन थे। एक सप्ताह विमुक्ति का आनन्द लिया।

अजपाल वृक्ष के नीचे भगवान् के आते ही एक सप्ताह तक काली घटा उमड़ती रही। महा मेघ बरसता रहा। शीतल वायु चलती रही।

---

(१) अजपाल वृक्ष—एक वट वृक्ष नेरजरा नदी के तट पर था। उरुवेला मे था। बोधि वृक्ष के समीप था। मज्झिम या अट्ठ कथा के अनुसार तपस्सु और मल्लिक के भोजन के पश्चात् ही सहापति ब्रह्मा से भगवान् का वार्तालाप यहाँ हुआ था। भगवान् को जब किसी उपदेशक की आवश्यकता अनुभव हुई तो सहापति पुन प्रकट होकर बोले कि धर्म ही तुम्हारा उपदेशक है। यही पर सुजाता ने भगवान् को खीर अर्पित की थी। पाँचवे सप्ताह भगवान् को मार कन्याओ ने यहाँ लुभाने का प्रयास किया था।

अजपाल नाम पडने के सम्बन्ध मे अनेक कथाएँ है। एक कथा है कि अजपाल यहाँ विश्राम करते थे इसलिए इसका नाम अजपाल पडा। दूसरी कथा है कि एक वृद्ध ब्राह्मण अजपाजप करता था। इसलिए इसका नाम अजपाल पडा था। तीसरी कथा है कि मध्याह्न काल मे अज अर्थात् बकरियाँ और बकरे यहाँ आकर विश्राम करते थे। इसलिए अजपाल नाम पड गया था।

(२) ब्राह्मण . एक मत के अनुसार हुहुक जातिक ब्राह्मण का नाम था।

उस समय मुचलिन्द नाग ने भगवान् के शरीर को लपेट लिया। फण से उनके सर पर छत्र लगाया। सप्ताह पश्चात् वर्षा रुकी। मुचलिन्द नाग ने बालक का रूप धारण कर लिया। एक ओर खडा हो गया। भगवान् ने उदान कहा ·

'श्रुतधर्मा सन्तुष्ट होता है। एकान्त मे सुखी होता है। जिस प्राणी मे सयम है, उसे इस लोक मे निर्द्वन्द्व सुख प्राप्त होता है। कामनाओ के परित्याग और वैराग्य मे सुख है। साधना का यही परम सुख है।'

भगवान् ने एक सप्ताह पश्चात् मुचलिन्द वृक्ष[1] स्थान का त्याग किया। [2]राजयतन वृक्ष के नीचे आसन लगाया। वहाँ विमुक्ति का आनन्द लेते रहे। तपस्सु और मल्लिक का मंठा और मधुपिण्डक खाकर भगवान् ने एक सप्ताह पश्चात् राजयतन वृक्ष का त्याग किया।

भगवान् अजपाल वृक्ष के नीचे पुन आये। वे वहाँ विहार करने लगे। उस समय उनके मन मे वितर्क उत्पन्न हुआ ·

'मुझे धर्म का ज्ञान हुआ है। लोग कामरत है। तृष्णा मे लिप्त है। उनके लिए समुत्पाद दुदर्शनीय है। मेरा धर्म-उपदेश लोग समझ नही सकेंगे। मेरे लिए यह वेदना का विषय होगा।' धर्म-प्रचार की ओर भगवान् की रुचि नही हुई। धर्म-प्रचार का उत्साह प्राय. लुप्त हो गया। सहापति ब्रह्मा ने भगवान् के मन की बात जान ली।

सहापति भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। दक्षिण जानु को पृथ्वी पर रखा। भगवान् की ओर मुख किया। करबद्ध बोले :

'भन्ते! भगवन्! धर्मोपदेश कीजिए। जगत् मे अल्प मत वाले अनेक प्राणी है। धर्म न श्रवण करने के कारण उनके नष्ट होने की शका है। बहुत लोग धर्म जानने के इच्छुक है।'

---

(१) मुचलिन्द वृक्ष—अजपाल न्यग्रोध वृक्ष के समीप यह वृक्ष उरुवेला में था। इस वृक्ष के नीचे भगवान् थे तो भयकर वर्षा हुई थी। मुचलिन्द नागने यही गेडुरी बनाकर भगवान् की वर्षादि से रक्षा की थी।

(२) राजयतन वृक्ष—तपस्सु तथा मल्लिक ने बुद्धत्व प्राप्ति के आठवें सप्ताह मधुपिण्ड तथा मट्ठा भगवान् को यहाँ दिया था। इस वृक्ष के स्थान पर कालान्तर मे एक स्तूप का निर्माण किया गया था।

भगवान् ने ध्यानपूर्वक सहापति की बात सुनी। सहापति ने पुन कहा

'सुगत! मलिन चित्त वालो द्वारा चिन्तित अशुद्ध धर्म मगध मे फैला है। आपके निर्मल धर्म का लोगो को ज्ञान होना चाहिए। पर्वत पर खडा व्यक्ति जैसे अपने चारो ओर देखता है, उसी प्रकार धर्म प्रासाद पर चढकर आप इस लोक को देखिए। सुमेध! उठिये! वीरवर! संग्रामजित! सार्थवाह! उऋण ऋण! आप धर्म का प्रचार कीजिये।'

भगवान् ने बुद्ध चक्षु से जगत् को देखा। उन्हे जगत् मे कुशाग्र बुद्धि, अल्पमत, सुस्वभाव, सुबोध लोग दिखायी पडे। बुराइयो से भयभीत लोगो को देखा। परलोक से भयभीत होनेवाले को देखा। भगवान् ने गाथा द्वारा अपना विचार प्रकट किया।

'उनके लिए अमृत का द्वार खुल गया है जो सुननेवाले है वे मन लगाकर सुने। हे ब्रह्मा! मैने पीडा का ध्यान कर, मनुष्यो को निपुण, उत्तम धर्म को नही कहा है।'

ब्रह्मा प्रसन्न हो गये। उन्होने समझ लिया। भगवान् धर्म का प्रचार करेगे। उन्होने भगवान् का अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। सविनय प्रस्थान किया। भगवान् ने अपने निर्मल धर्म-प्रचार का निश्चय किया।

●

आधार ग्रन्थ :

विनयपिटक महावग्ग १ १ : ५

दीघ निकाय २ १

मज्झिम निकाय १ : ३ , ६

[1]तपस्सु और मल्लिक

जिस प्रकार महाप्रबल जलप्रवाह सरकण्डों के द्वारा निर्मित दुर्बल सेतु को बहा ले जाता है उसी प्रकार विजयी, निर्भय, स्थितप्रज्ञ, दान्त, पूर्णतया शान्त तथागत ने काम की सेना को पराजित किया है।'

थेरगाथा उदान . ७

तपस्सु और मल्लिक[1] उत्कल देश[2] से आये थे। पोक्खरवती[3] मे उनके पिता रहते थे। व्यापारी थे। असितंजन नगर मे उनका जन्म हुआ था। वे गया पहुँचे।

राजयतन वृक्ष की छाया थी। भगवान् एक सप्ताह से एक आसन पर बैठे थे। उन्हे विमुक्ति आनन्द प्राप्त हो रहा था।

मार्ग मे उनकी गाड़ी रुक गयी। वहाँ उन्हे मालूम हुआ। भगवान् आसन पर बैठे है। सात सप्ताहो से भोजन नही किया है। वहाँ भोजन बनाने की सामग्री नही थी। उनके पास मठा और मधुपिण्ड था। उसे लेकर चले।

---

(१) तपस्सु ज्येष्ठ और मल्लिक कनिष्ठ भ्राता थे। थेर गाथा मे उल्लेख मिलता है। उन्हे मित्र तथा साथी कहा गया है। दोनो पाठ मिलता है। एक लेखक ने लिखा है कि भगवान् आठ सप्ताह राजयतन वृक्ष की छाया मे थे। किन्तु भगवान् एक-एक सप्ताह अन्य वृक्षो के नीचे रहकर अन्तिम सप्ताह में पुन राजयतन वृक्ष के नीचे आये थे। अतएव वह आठवाँ सप्ताह था।

बुद्ध केश = कथा है। भगवान् ने अपने केश के कुछ बाल तपस्सु और मल्लिक को दिये थे। उसकी उन्होने पूजा की। वे बाल बरमा मे पहुँचे। उनपर वहाँ स्तूप निर्माण किया गया।

राजगृह मे पुन. तपस्सु और मल्लिक ने भगवान् का उपदेश सुना। वहाँ तपस्सु श्रोतापन्न हुआ। मल्लिक ने प्रव्रज्या ली और अर्हत पद प्राप्त किया। सस्कृत ग्रथो मे तपस्सु का नाम त्रपुस्म मिलता है।

(२) उत्कल = उडीसा या कलिङ्ग।

(३) पोक्खरवती = वह एक नगर था।

दोनो व्यापारियो ने भगवान् का दर्शन किया। सादर अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर खडे हो गये। वे भगवान् के भव्य और शान्त रूप से अत्यन्त प्रभावित थे।

उनके हाथो मे भगवान् की पूजा के लिये मन्थ तथा लड्डू था। उन्होने श्रद्धा के साथ भगवान् को प्रसाद समर्पित किया। वे साधारण व्यक्ति थे। उनके पास अत्यन्त साधारण भोज्य और पेय पदार्थ थे। किन्तु उनके पास एक सबसे बडी चीज थी। वह थी उनका पवित्र हृदय। उन्होने हाथ जोडकर कहा :

'भन्ते! हमारे इस तुच्छ मण्ठा और लड्डू को स्वीकार कीजिए।'

तथागत ने उनकी श्रद्धालु भावुक मुद्रा को लक्ष्य किया। तथागत के पास पात्र नही था। उनकी आँखे पात्र के लिए इधर-उधर दौड़ी। वहाँ एक शिला पात्र था। उसमे मण्ठा और लड्डू ग्रहण किया।

लड्डू खाकर मण्ठा पीया। भोजन समाप्त हुआ। मुख धोया। आसन पर आकर बैठ गये।

तथागत के चरणों मे दोनों उपासको ने मस्तक रखते हुए निवेदन किया .

'भन्ते! हम आपकी और धर्म की शरण लेना चाहते है।'

भगवान् का दक्षिण हस्त वरद मुद्रा मे उठ गया। तथागत के जगत् मे वे प्रथम, द्विवचनीय शिष्य हुए। इस समय तक सघ की स्थापना नही हुई थी। अतएव सघ की शरण आने का प्रश्न नही उठा।

दोनो उपासको ने पवित्र घोष किया—

बुद्धं शरणं गच्छामि।
धर्मं शरणं गच्छामि॥

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओं तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे पचपन तथा छप्पन और उपासको में प्रथम स्थान प्राप्त असितञ्जन[1] नगर कुटिम्विक गृहोत्पन्न तपस्सु और मल्लिक सर्वप्रथम शरण आने वालो में अग्र थे।

---

(१) असितजन नगर = पालि साहित्य मे आता है कि कसकसस (कंसभोज) जनपद उत्तरापथ मे था। असितंजन नगर उसकी राजधानी था। महा-

कसस तथा अन्वक वेणु दास पुत्र राजाओ की राजधानी था। वह भल्ल तथा मल्लिक का जन्म स्थान था। एक और मत है। उसके अनुसार अधिष्ठान नगर को उनका निवास तथा जन्म स्थान माना जाता है। पोक्खरवती तथा असितजन के सम्वन्व मे ऐतिहासिक विद्वानों मे कुछ विवाद है।

आधार ग्रन्थ :

थेर गाथा ७ · उदान ७
विनय पिटक महावग्ग १ १ ४
AA : 1 207, 208,
J 1 80
A 1 26, 111 450
MTu : 111 303
THGA 1 48
Vin : 1 3
Mhv 111 303
UdA 54

●

धर्म-चक्र प्रवर्तन[1]

बुद्धत्व प्राप्ति हुई। तथागत ने विचार किया। अपने ज्ञान, अपने नवीन मत, अपने नवीन धर्म को किसके सम्मुख प्रकट करूँ ?'

तथागत ने कालाम किवा अराड से समाधि शिक्षा ली थी। उनके साख्य मत से तथागत को सन्तुष्टि नही हुई थी। उस धर्म को उन्होने अपूर्ण माना था। यदि बुद्ध का नवीन धर्म सत्य था, पूर्ण था, तो उस मत के विरोधियो मे सर्वप्रथम विश्वास उत्पन्न करना उचित था। अतएव उनका विचार हुआ। सर्वप्रथम धर्म आलार कालाम को सुनाया जाय। वे विद्वान् थे। धर्म के तत्त्व को समझेगे। किन्तु ज्ञात हुआ। आलार कालाम की मृत्यु एक सप्ताह पूर्व हो चुकी थी।

उद्दक राम पुत्र का ध्यान आया। वे पण्डित थे। चतुर थे। मेधावी थे। उनके पास भगवान् धर्म-जिज्ञासा से गये थे। उन्हे आचार्य समझा था। किन्तु उनके मत से प्रभावित नही हुए थे। वे आत्मा को मानते थे। उसके अस्तित्व मे विश्वास करते थे। उनका मत भी उन्हे पूर्ण नही लगा था। तथागत ने विचार किया। जिसने उन्हे उपदेश दिया था। जिनका मत उनके मत का विरोधी था। जिस धर्म को वे पूर्ण समझते थे उस धर्म को अपूर्ण बताया था। उनके सम्मुख अपना पूर्ण धर्म सर्वप्रथम प्रकट करना उत्तम होगा।

किन्तु तथागत को मालूम हुआ। उद्दक राम पुत्र का उसी दिन देहावसान हो चुका था।

---

(१) धर्मचक्र प्रवर्तन भगवान् ने धर्मचक्र-प्रवर्त्तन—प्रथम उपदेश धर्मराजिक स्तूप के स्थान पर दिया था। यह स्तूप समाप्त हो गया है। उसकी नीव तथा आकार शेष है। इसके पास ही अनेक स्तम्भ मिले था। भगवान् का मूलगन्ध कुटी विहार इसी स्तूप के और अशोक स्तम्भ के बीच मे था। ये तीनो स्थान सुरक्षित है।

समस्या उपस्थित हुई। किस के सम्मुख नवीन धर्म प्रकट किया जाय। उन्हे ध्यान आया अपने विरोधी पञ्चवर्गीय भिक्षुओं का। उन्होंने भगवान् को पाखण्डी समझकर त्याग दिया था। विरोधी हो गये थे। तथागत ने निश्चय किया। सर्वप्रथम विरोधियो पर धर्म प्रकट करूँगा। यदि उन्हे प्रभावित नही कर सका तो जन-साधारण में कैसे विश्वास उत्पन्न कर सकूँगा।

तथागत ने पता लगाया। मालूम हुआ। पञ्चवर्गीय भिक्षु वाराणसी[1] मे थे। ऋषिपत्तन[2] मृगदाव अर्थात् सारनाथ मे विहार करते थे। तथागत ने उन विरोधी मित्रो पर धर्म प्रकट करने के लिए प्रस्थान किया।

तथागत बोधिगया और गया के मध्य चारिका कर रहे थे। वाराणसी की ओर उनका मुख था।

उपक आजीवक[3] मार्ग मे मिला। तथागत को गमनशील देखा। भगवान् की मुद्रा से प्रभावित हुआ। समीप आ गया। भगवान् से पूछा :

---

(१) वाराणसी : बनारस अथवा काशी।

(२) ऋषिपत्तन : सारनाथ वाराणसी शहर मे है। यहाँ मूलगन्ध कुटी विहार है। सारनाथ स्टेशन छोटी लाइन का है। वाराणसी कैण्ट स्टेशन से ६ मील पर है।

(३) आजीवक : नग्न साधुओ का एक वर्ग था। मक्खलि गोसाल के अनुयायी थे। बुद्ध मान्यता के अनुसार ये निकृष्ट ढग के हेत्वाभासवादी थे। महासच्चक सुत्त मे विस्तार के साथ उनका उल्लेख किया गया है। वे लज्जाहीन तुल्य चलते थे। भोजन के पश्चात् जीभ से अपना हाथ चाटते थे। वे कभी दूसरे का आदेश नही मानते थे। अपने लिये विशेष रूप से तैयार किये गये भोजन को नही करते थे। भोजन करते हुए मनुष्य द्वारा भोजन नही ग्रहण करते थे। गर्भवती, धात्री से भोजन नही लेते थे। उस स्थान पर वे भोजन नही करते थे जहाँ कुत्ता बैठा रहता था अथवा जहाँ भूखी मक्खियाँ भिनभिनाती थी। अकाल के समय उछ कर्म किंवा शिलवृत्ति अर्थात् बिनाई द्वारा बनाया भोजन नही प्राप्त करते थे। वे कभी मास-मदिरा, मत्स्य स्पर्श नही करते थे। अशोक के अभिलेखो मे तीन बार उनका उल्लेख तथा राजदान प्राप्त करने का वर्णन मिलता है। उनके विचार का केन्द्र ससार शुद्धि भावना प्रतीत होता है। आजीवको के सिद्धान्तो तथा आचरणो का विस्तृत उल्लेख त्रिपिटक ग्रन्थो मे मिलता है।

'आवुस ! आपकी इन्द्रियाँ प्रसन्न है। आपकी कान्ति शुद्ध है। उज्ज्वल है।'

तथागत खडे हो गये। आजीवक ने नग्न शरीर को देखा। वह मक्खलि गोशाल आचार्य के सम्प्रदाय का था। सम्प्रदाय नग्न साधुओ का था। उसके आचार्य मक्खलि गोशाल थे।

आजीवक ने पुन प्रश्न किया

'भन्ते ! आपका गुरु कौन है ? किसने आपको प्रव्रजित किया है ? किस सम्प्रदाय के आप है ?'

आजीवक नगा था। तथागत का शरीर चीवर से ढँका था। हाथ मे भिक्षा-पात्र था। उनकी शोभा अनुपम थी। परिधान रहित और परिधान सहित दो व्यक्ति एक दूसरे के सम्मुख खडे थे। तथागत ने मृदु स्वर मे कहा ·

'आजीवक ! मै सभी धर्मो से निर्लिप्त हूँ। सबका त्याग किया है। मेरी तृष्णा का क्षय हो चुका है। मै विमुक्त हूँ। मै स्वय अपने ज्ञान का उपदेशक हूँ।'

'आश्चर्य !'—आजीवक चकित हुआ।

'आजीवक !—मेरा कोई गुरु नही है। मेरा कोई आचार्य नही है। मेरे समान इस समय कोई दूसरा नही है। मै अर्हन्त हूँ। मै स्वय शास्ता हूँ। सम्यक् सबुद्ध हूँ। शान्त हूँ। शीतल हूँ। निर्वाण प्राप्त हूँ। धर्म चक्र प्रवर्तनार्थ वाराणसी की ओर गमनशील हूँ।'

आजीवक को अपने नग्न शरीर पर लज्जा आने लगी। वह बोला :

'आवुस ! आप जिस प्रकार से दावा करते है। उससे आप जिन हो सकते है।'

'उपक !' तथागत ने कहा, 'आश्रव नष्ट पुरुष मेरे समान सत्त्व जिन होते है। मैने पापो और कर्मो पर विजय प्राप्त की है। अतएव मै जिन हूँ।'

'आवुस ! हो सकते है।'

आजीवक अपने मार्ग पर शीघ्रता से चल दिया। तथागत के पाद शान्तिपूर्वक वाराणसी की ओर उठने लगे।

× × ×

तथागत चारिका करते हुए सारनाथ पहुँचे। पचवर्गीय भिक्षुओ का स्थान खोजा। वे एक वृक्ष की छाया मे बैठे थे। वाराणसी नगर से तीन मील दूर थे। वरुणा नदी से दो मील उत्तर थे। स्थान रम्य था। पुष्प-पादपयुक्त था। भिक्षाचार के लिए सुगम था। मृगो का झुण्ड निर्भय घूमता था। भूमि हरित तृण से भरी थी। जलाशय का सुपास था। फल-फूल से भरा था। आम्र वन युक्त था। वेणु वन युक्त था। स्थान मे नीरवता का बोध होता था। वायुमण्डल मे पवित्रता मुखरित थी। वृक्षो पर तोते विहरते थे। कोकिल कूजती थी। जलाशय मे हंस विचरते थे। सरोवर कमल दल पूर्ण था। पशु-पक्षी मुक्त जीवन व्यतीत करते थे। किसी प्राणी को किसी दूसरे प्राणी से भय नही था। शका नही थी।

सारनाथ के समीप सभी वस्तुओ का सुपास था। एकाध योजन दूर वरुणा-गगा सगम था। तपस्वियो से सेवित था। उसके चारो ओर कुछ पास और कुछ दूर पर निर्मल सरोवरो की शृखला थी। भूमि मे सब कुछ उपजता था। पचवर्गी भिक्षुओ ने स्थान की रमणीयता, नगर का सामीप्य, गगा-वरुणा का पवित्र सगम, कुछ योजन उत्तर गगा-गोमती का सगम, प्राकृतिक दृश्य, वनो की हरियाली, पादपावली देखकर अपना आश्रम बनाया था।

वर्तमान चौखण्डी स्तूप के पास वे एक वृक्ष के नीचे तपस्या रत थे। जगत् मोह मे लिप्त नही हुए थे। किन्तु उनका धर्म अपूर्ण था। उनका मत अपूर्ण था। शुद्ध सम्बोधि की प्राप्ति उन्हे नही हो सकी थी। उन्होने दूर पर देखा। एक प्रव्रजित उनकी ओर पात्र और चीवर लिए धीरे-धीरे मन्द गति से आ रहा था। एक ने दूसरे को दिखाया। संकेत किया। दूर होने के कारण वे भगवान् को पहचान नही सके। उन्हे कौतूहल हो रहा था। असमय, अनायास, कौन परिव्राजक उनके पास आ रहा था। वे ध्यान से देखने लगे।

विमल मूर्त्ति समीप आने लगी। उनका कौतूहल बढता गया। कुछ समीप आने पर वे पहचान गये। उन्होने कल्पना नहीं की थी। गौतम उन्हे ढूँढते वहाँ पहुँच जायेगे। वे विस्मित हुए। कौण्डिन्य[1] बोल उठा :

---

(१) कौण्डिन्य अग्रश्रावको की ८० की तालिका मे जहाँ भगवान् बुद्ध के शरीर के स्थानो की तुलना उनके अग्रश्रावको से की गयी है। कौण्डिन्य को भगवान् की पीठ अर्थात् मेरुदण्ड कहा गया है।

'आवुसो ! यह बाहुलिक है।'

'आवुसो ! यह साधन भ्रष्ट है।' दूसरे ने कहा।

'आवुसो ! यह बाहुल्य परायण है।' तीसरे ने कहा।

'इसका प्रत्युत्थान नही करना चाहिए।' चौथे ने कहा।

'इसका अभिवादन नही करना चाहिए।' कौण्डिन्य ने कहा।

'आगे बढकर पात्र चीवर नही लेना चाहिए।' वप्प ने कहा।

'केवल आसन बिछा देना चाहिए।' भद्दिय ने कहा।

'इच्छा होगी बैठेगा।' महानाम ने कहा।

'उसे अर्घ नही देना चाहिए।' अश्वजित ने कहा।

'उसे आसन नही देना चाहिए।' कौण्डिन्य ने पुन' कहा।

'उसे पाद्य नही देना चाहिए।' वप्प ने कहा।

'उसका तिरस्कार करना चाहिए।' भद्दिय ने कहा।

'तो—।' अश्वजित ने प्रश्न किया।

'ठहरो।' कौण्डिन्य ने कहा।

तथागत और समीप आ गये। पचवर्गीय भिक्षु उन्हे देखने लगे। उनका व्यवहार अपरिव्राजक होता जा रहा था। उपेक्षा उनमे घर करने लगी थी।

भगवान् समीप आने गये। उनका दृढ निश्चय तिरोहित होता गया। तथागत अत्यन्त समीप आ गये। अन्त प्रेरणा हुई। अनायास एक ने उठकर पात्र थाम लिया। चीवर ले लिया। दूसरे ने आसन बिछा दिया। तीसरे ने पादोदक दिया। चौथे ने पादपीठ लाकर रख दिया। पॉचवे ने पाद कठलिका रखी।

तथागत ने कुशल-मगल पूछा। धातु साम्य पूछा। आसन पर बैठ गये। जल से पाद-हस्त प्रक्षालन किया। मुख प्रक्षालन किया। पचवर्गीय भिक्षुओ की उपेक्षा की भावना लोप हो चुकी थी। एक परिव्राजक दूसरे के प्रति जिस आदर-सत्कार भाव की अपेक्षा करता था, उसे करने मे उन्होने किसी प्रकार की त्रुटि नही की।

तथागत ने कहा—'भिक्षुओ ! नाम लेकर मत सम्बोधन करो। आवुस कहकर मत सम्बोधन करो। भिक्षुओ ! तथागत अर्हत है। सम्यक् सम्बुद्ध है।'

पचवर्गीय भिक्षुओ ने विश्वास के साथ कही वाणी सुनी। किंचित् विस्मित हुए। सुनने की मुद्रा मे उन्हे देखकर तथागत ने कहा '

'भिक्षुओ! मैंने अमृत प्राप्त किया है। उस अमृत को तुम्हें देना चाहता हूँ।'

तथागत तूष्णीम् हुए। पचवर्गीय भिक्षुओ की मुद्रा उपदेश की बात सुनकर किंचित् कठोर हुई। वे तथागत को श्रेष्ठ मानने के लिए उद्यत नही थे। तथागत ने उनका आशय उनकी मुद्रा से समझा। वे मृदु स्वर से बोले 'भिक्षुओ! जिन कारणो से सन्यास धर्म ग्रहण किया जाता है। जिन कारणो से कुलपुत्र घर का त्याग करते है। उस उत्तम ब्रह्मचर्य फल को इसी जन्म मे तुम प्राप्त करोगे। उसका साक्षात् करोगे। उसका उपलाभ करोगे।'

पचवर्गीय भिक्षुओ मे कौण्डिन्य ने उपालम्भ किया 'आवुस! गौतम! कठिन तपस्या द्वारा तुम्हे दिव्य शक्ति प्राप्त नही हो सकी। अव क्या पाओगे?'

वप्प वोला—'तुम वाहुलिक हो। तुम्हे कहाँ वह ज्ञान प्राप्त हो सकेगा?'

भद्दिय वोला—'तुम साधन भ्रष्ट हो। तुम्हें दिव्य ज्ञान कैसे मिलेगा?'

महानाम वोला—'तुम बाहुल्य परायण हो। तुम्हे दिव्य शक्ति नहीं मिल सकती।'

अश्वजित वोला—'तुम और आर्य दर्शन की पराकाष्ठा? ऊंह! उत्तर मनुष्य धर्म को तुम क्या प्राप्त कर सकोगे?'

भगवान् ने शान्त स्वर से कहा—'भिक्षुओ! तथागत वाहुलिक नही है। साधन भ्रष्ट नही है। वाहुल्य परायण नही है। तथागत अर्हत है। सम्यक् सम्बुद्ध है।'

पंचवर्गीय भिक्षुओ ने पुन: आरोप दुहराये। तथागत ने अपनी बात दुहराई।

पचवर्गीय भिक्षुओ ने पुन: तीसरी बार आरोप लगाये। तथागत ने तीसरी बार उनके आरोपो का उत्तर दिया। वे बोले—'क्या मैने इसके पूर्व इसी विश्वास के साथ कहा था?'

'नही भन्ते ।'

'भिक्षुओ ! सुनो ।'

भगवान् ने पचवर्गीय भिक्षुओ को अपनी बात सुनने पर राजी कर लिया । तथागत ने उन्हे समझाया । उनकी रुचि देखकर भगवान् ने जगत् मे सर्वप्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन किया ।

'भिक्षुओ ! प्रव्रजितो को दो अतियो का सेवन नही करना चाहिए ।'

'भन्ते ! भिक्षुओ ने पूछा, 'वे कौन-सी दो अतियाँ है ।'

'प्रथम अति हीन, ग्राम्य तथा पृथक्जनो के योग्य, अनार्य, अनर्थो द्वारा सेवित, काम-वासनाओ द्वारा, काम-सुख मे लिप्त होना है ।'

'और दूसरी ?'

'जो दु ख अनार्य अनर्थो से युक्त है । काय क्लेश मे लगाता है ।' वह दूसरी अति है ।'

'तो क्या करना चाहिए ?'

'दो अतियो का त्याग कर मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए ।'

'वह मध्यम मार्ग क्या है ?'

'यह मध्यम मार्ग, प्रज्ञा चक्षु उन्मीलित करता है । ज्ञान देता है । उपशम के निमित्त है । अभिज्ञा के होने के निमित्त है । सम्बोध के निमित्त है । निर्वाण के निमित्त है ।

'भिक्षुओ ! वह अष्टागिक मार्ग सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् जीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एव सम्यक् समाधि है ।'

'भन्ते ! दु ख क्या है ?'

'भिक्षुओ ! दु ख आर्य सत्य है । जन्म दु ख है । जरा दु ख है । व्याधि दु ख है । मरण दु ख है । अप्रिय सयोग दु ख है । प्रिय का वियोग दु ख है । वाछित की न प्राप्ति दु ख है । पाँचो उपादान स्कन्ध दु ख है ।'

'पाँचो उपादान स्कन्ध क्या है भन्ते ?'

'भिक्षुओ ! रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान, यही पाँच उपादान स्कन्ध है ।'

पचवर्गीय भिक्षुओं की अभिरुचि बढी। भगवान् की बातों में तथ्य था। उन्हे सुनने की मुद्रा मे भगवान् ने देखा। भगवान् पूर्वाभिमुख बैठ गये। तथागत के कण्ठ द्वारा अष्ट अगो युक्त घोष उद्भूत हुआ। उनकी वाणी प्रामाणिक थी। विज्ञेय थी। मजु थी। श्रवणीय थी। विन्दु थी। अविसारी थी। गम्भीर थी। और निर्नादी थी।

'दु ख समुदय, दु ख निरोध, एव दु ख निरोध गामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य है।'

'भिक्षुओ ! कहता हूँ। दु ख आर्य सत्य है। यह मैने पूर्व धर्मो मे नही सुना था। अश्रुत पूर्व धर्मो मे मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ है। प्रज्ञा उत्पन्न हुई है। मुझे प्रकाश मिला है। यह दु ख आर्य सत्य है। परिज्ञेय है।

'भिक्षुओ ! दु ख आर्य सत्य है। दु ख समुदय आर्य सत्य है। दु ख निरोध आर्य सत्य है। दु ख निरोधगामिनी प्रतिपद आर्य सत्य है। यही चार आर्य सत्य है आयुष्मानो !

'उस समय तक मैने यह दावा नही किया था। मैने सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर ली है। मैने ज्ञान का अवलोकन किया है।

'भिक्षुओ ! मैने ज्ञान का दर्शन किया है। मेरी विमुक्ति अचल है। यह मेरा अन्तिम जन्म है। इसके पश्चात् मै आवागमन रहित हो जाऊँगा।'

पचवर्गीय भिक्षुओ ने तथागत के ज्ञान का स्वागत किया। कौण्डिन्य ने भगवान् का अभिवादन-अभिनन्दन करते हुए कहा :

'तथागत ! जो समुदय धर्म है वही निरोध धर्म है।'

तथागत बोले 'कौण्डिन्य ! तुमने ज्ञान प्राप्त कर लिया। तुम समझ गये। तुम समझ गये।'

कौण्डिन्य ने भगवान् को प्राजलिभूत प्रणाम किया। तथागत ने कहा : 'आयुष्मान् ! कौण्डिन्य तुम्हारा नाम आज्ञा कौण्डिन्य होगा।'

कौण्डिन्य ने उपकृत होते हुए कहा 'भन्ते ! मुझे प्रव्रज्या मिले। मुझे उपसम्पदा मिले।'

'भिक्षुओ !' तथागत ने कहा, 'धर्म सुआख्यात है। दु ख क्षय निमित्त ब्रह्मचर्य का पालन करो।'

तथागत ने पुन उन पचवर्गीय भिक्षुओ को उपदेश दिया। धार्मिक

कथाएँ कही। अनुशासन किया। उन्हे सुनते ही वप्प तथा भद्दिय ने कहा

'भन्ते! जो समुदय धर्म है वही निरोध धर्म है। कारण स्वभाव ही नाश स्वभाव होता है। हमने जान लिया। हमे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

तथागत ने कहा '—'धर्म सुआख्यात है। दु ख क्षय निमित्त ब्रह्मचर्य का पालन करो।'

भगवान् की दिनचर्या नियमित हो गयी थी। भिक्षुगण भिक्षा माँग कर लाते थे। भगवान् मिलकर भिक्षा ग्रहण करते थे। भगवान् धार्मिक कथाओं द्वारा उपदेश देते थे। तीन भिक्षु प्रतिदिन भिक्षाटन के लिए जाते थे। उससे पाँचो भिक्षुओ और तथागत छह का निर्वाह होता था।

आयुष्मान् पचवर्गीय भिक्षुओ मे महानाम तथा अश्वजित ने भी धर्म का अर्थ समझा। प्रव्रज्या ग्रहण किया।

× × ×

कौण्डिन्य धर्म-पथ पर आरूढ होते चले गये। भगवान् द्वारा नामाकित ७५ अग्रश्रावको, श्राविकाओ, उपासको तथा उपासिकाओ मे उन्हे सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। उन्होने कामासक्त पुरुषो को देखा। उस समय उन्हे उद्बोधित करने के लिए उदान कहा

'इस जगत् मे विविध चित्र है। वे मोहक है। रागयुक्त है। विचारो का मन्थन करते हैं। प्रबल झझावात द्वारा उठती धूल, जिस प्रकार मेघ वर्षा द्वारा शान्त हो जाती है उसी प्रकार प्रज्ञा द्वारा दर्शन करने पर मनोविकारो का शमन हो जाता है। प्रज्ञा द्वारा जब विचार करते है। सस्कार श्रृखला अनित्य है, तो दु खो से निर्वेद प्राप्त होता है। इसी का नाम विशुद्धि मार्ग है। प्रज्ञा द्वारा जब दर्शन करते है। सस्कार श्रृखलाएँ दु:ख है तो सब प्रकार से दु:खों से निर्वेद प्राप्त होता है। यही विशुद्धि मार्ग है। अनात्म है। प्रज्ञा द्वारा जब दर्शन किया जाता है। पचस्कन्ध अनात्म है, तो सब दु:खो से निर्वेद प्राप्त होता है। यही विशुद्धि मार्ग है।

× × ×

एक भिक्षु पथभ्रष्ट था। कौण्डिन्य ने उसे उद्बोधित करते हुए कहा था :

'ओ विक्षिप्त ! ओ अस्थिर भिक्षु !! पापी मित्रो का साथ तुम्हे महाप्रवाह में डुबाकर सरिता के गर्भ मे स्थित कर देगा। विक्षेप-अस्थिरता रहित, कुशल, सयमी, मेधावी और कल्याण मित्र दुःखों के अन्त मे सहायक होता है।

'भिक्षुओ ! उसी का मन अदीन है जिसके अग दन्तिलता के पोर जैसे हो। जो कृश है। जिसका शरीर शिराओ से मढ़ा है। जो अन्न-पान मे उचित मात्रा का ध्यान रखता है।

'भिक्षुओ ! रणक्षेत्र मे जिस प्रकार अग्रगामी हाथी स्मृतिमान होकर चलता है उसी प्रकार महावन मे, अरण्य मे मक्खियो और मच्छड़ो के आक्रमणो को सहन करते हुए स्मृतिमान रहो।'

'भन्ते ! आप— ?'

'मै मृत्यु का अभिनन्दन नही करता भिक्षुओ। मै जीवन का अभिनन्दन नही करता। मै मुक्त तुल्य काल की प्रतीक्षा करता हूँ। मैंने तथागत की सेवा की है। बुद्ध शासन पूर्ण किया है। मैने भव भार उतार फेका है। तृष्णाओ को समूल नष्ट किया है। जिस प्रयोजन के कारण लोग गृहत्याग करते हैं, बेघर होते है, प्रव्रजित होते हैं; मैने उसे प्राप्त कर लिया है।'

'भन्ते ! आपका ज्ञान अद्भुत है। आश्चर्य !'

'भिक्षुओ ! बुद्ध द्वारा मै प्रबुद्ध हुआ था। मै दृढसकल्प के साथ निकला था। मेरा जन्म क्षीण है। मृत्यु क्षीण है। मेरा ब्रह्मचर्य परिपूर्ण है। चाहे प्रबल प्रवाह हो भिक्षुओ ! चाहे पाश हो ! चाहे दृढ कील हो। चाहे दुर्भेद्य पर्वत हो। मैने उनको छिन्न-भिन्न किया है। उनका भेद किया है। मै अपने उद्यम से उत्तीर्ण हुआ हूँ। पार पहुँच गया हूँ। मै भव भार के बन्धन से मुक्त हूँ।

× × ×

कौण्डिन्य का मूल्याकन करते हुए अग्रश्रावक वगीस ने कितना अच्छा उदान कहा है

'कौण्डण्य तथागत के पश्चात् प्रबुद्ध हुए थे। वे महापराक्रमी थे। एकान्त एव सुखवास का अनुभव प्राप्त करते थे। अप्रमत्त रूप द्वारा भगवान् से उनके श्रावको को जो उपदेश प्राप्त था, उन्हे. जो कुछ

अनुसरण करना चाहिए। उसे कौण्डिन्य ने क्रमश' प्राप्त किया था। वे महाप्रतापी थे। त्रैविद्य थे। दूसरे के मनोगत भावनाओं को जानने में कुशल थे। वे भगवान् के उत्तराधिकारी थे। भगवान् की पाद-वन्दना करते थे।'

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावको मे प्रथम स्थान प्राप्त कपिलवस्तु समीपस्थ द्रोण ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न आज्ञा कौण्डिन्य भगवान् के अनुरक्तिज्ञो मे अग्र हुए।

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद
विनय पिटक महावग्ग १ १ ६–७
दीघ निकाय २ १ तृतीय भाणावार
थेरगाथा ६१, २४६; उदान ६१, ६७४-६८८, १२५०-१२५२
मलिन्द प्रश्न १ १ १४
Nin · 13
S · V : 420
J i i : 83
DA· i : 2
AA : i 69
Mtu · iii 330
Mhv : xii 41, : vv : 300
Dhv ; viii 11, : xiv ; 46

यश कुल पुत्र

वाराणसी के श्रेष्ठी का पुत्र यश हुआ था। सुकुमार था। हेमन्त, ग्रीष्म, वर्षा ऋतुओं मे विलास निमित्त उसके तीन प्रासाद थे। वर्षाकालीन चार मासो मे वह वर्षा प्रासाद में विलास करता था। संगीत तथा नृत्यो द्वारा सेवित होता था। कामिनियो द्वारा सेवित होता था। वर्षाकाल मे प्रासाद मे नीचे नही उतरता था।

यश की सुख-शय्या थी। वह निद्राभिभूत था। अकस्मात् एक समय यश कुल पुत्र की निद्रा भग हो गयी। उसने तेल दीप प्रकाश मे देखा अपना शयन कक्ष। उसकी दृष्टि रात्रि मे उमग, उल्लास, उत्साह मे झूमती उन ललनाओ पर पडी जो उसका मनोविनोद कर रही थी। उसको सुलाते-सुलाते स्वयं वही सो गयी थी।

किसी के पास वीणा रखी थी। किसी के गले मे मृदग की डोरी थी। किसी का केश विन्यास खुल गया था। किसी के मुख से जल टपक रहा था। कोई अस्फुट शब्दों का उच्चारण कर रही थी।

उसे अपना सुसज्जित शयन-कक्ष श्मशान तुल्य लगा। प्राणी की सुप्तावस्था मे नग्न घिनौना रूप देखा। विराग हुआ। अनुभव किया। स्वय कितना सतप्त था। स्वय कितना पीडित था।

सुवर्ण रजित पादुका शय्या के समीप रखी थी। उसने पहना। शयन कक्ष के द्वार पर आया। प्रासाद के द्वार पर आया। नगर के द्वार पर आया। द्वार से बाहर निकला।

भोर वेला की सुहावनी जीवनप्रद वायु मिली। निर्मल आकाश मिला। पलायन करता अन्धकार मिला। जगत् को निरन्तर देखते, गगन मे टिमटिमाते नक्षत्र मिले। शीतल भूमि मिली। नीरव वायुमण्डल मिला। कृत्रिमता से बाहर निकला था। चकित हुआ मानवीय और प्रकृति वातावरणो का अन्तर देखकर। जैसे-जैसे उसके पग, प्रासाद से दूर होते जाते थे। जैसे-जैसे मानव-निर्मित ईंटो-पत्थरो के भवनो से दूर होता जाता था। उसमे चेतना आती जाती थी।

इस स्फूर्ति का उसने कभी अनुभव नही किया था। प्रकृति के इस सुन्दर रूप का दर्शन नही किया था। उसके पद अनायास एकान्त, निर्जन स्थान की ओर उठने लगे। वह नगर से जितने दूर, जितती निर्जन मे पहुँचता जाता था, उसके उत्साह का क्रम बढता जाता था। जनाकीर्ण वाराणसी नगर से वह उत्तर की ओर बढता गया। वह पहुँचा मृगदाव।

स्थान की शोभा, मृगो का निर्भय सोना, निस्तब्ध तरु-पल्लवो की शान्ति, उसे पवित्र भावनाओ से भरने लगी। उसने देखा। इस काल मे एक महापुरुष चारिका कर रहा था। उसने कल्पना नही की थी। इस काल मे भी लोग उठते है।

तथागत उपाकाल मे चक्रमण कर रहे थे। स्थान खुला था। विस्मयापन्न यश को महापुरुष के दर्शन की इच्छा हुई। उनके समीप पहुँचा। मन प्रफुल्लित था। तथागत ने उसका आगमन देखा। वह चक्रमण स्थान से आसन पर आकर बैठ गये।

यश कुल पुत्र तथागत के समीप पहुँचा। उस ब्राह्म मुहूर्त्त मे, उस शान्त मूर्ति को देखकर उसने अनुभव किया। वह स्वय कितना सतप्त था। कितना पीडित था। और अब उसमे कितना आह्लाद उत्पन्न हो गया था। प्रसन्नता का बोध किया।

तथागत ने उसे देखा। चिरपरिचित की भाँति मधुर वाणी मे बोले ·

'यहाँ आसन है, बैठो।'

'एक अपरिचित से, इस आत्मीयता की उसने कल्पना नही की थी। उसका हृदय पुलकित हो गया। उसने पादत्राण उतारा। तथागत के समीप गया। उनका अभिनन्दन किया। वन्दना की। सकेत पाकर एक किनारे बैठ गया।

तथागत ने उसे दान, शील, स्वर्ग, काम का दुष्परिणाम, अपकार का दोष, नैष्कर्म का कथा-माहात्म्य सुनाया।

यश ने ध्यानपूर्वक तथागत की बाते सुनी। तथागत ने उसका भव्य चित्त, मृदु चित्त, आच्छादित चित्त, आह्लादित चित्त तथा प्रसन्नचित्त देखा। यश का विषाद दूर हो गया था। भगवान् ने पुन कहा ·

'यश ! धर्म का सम्बन्ध, आभूषण, अलकार एव एव वस्त्रो से नही है। अलकृत काम पर विजय प्राप्त कर सकता है। भोग पर विजय प्राप्त

कर सकता है। विचलित होने पर श्रमण भोग में लग सकता है। काम में लग सकता है। प्रव्रजित और गृहस्थ मे भेद नहीं है। जिसका अहंभाव नष्ट हो गया है वही परिव्राजक है, प्रव्रजित है।'

उज्ज्वल शुद्ध वस्त्र पर जिस प्रकार अच्छा रंग चढता है उसी प्रकार यश पर तथागत के उपदेशों द्वारा सम्यक् सम्बोधि का रंग चढ गया। उसके निर्मल धर्म चक्षु खुले। उसने धर्म का रहस्य समझा। वह बोल उठा

'जो समुदय धर्म है वही निरोध धर्म है।'

× × ×

यश की माता[1] प्रात काल पुत्र के पास प्रासाद में गयी। पुत्र को नहीं देखा। पता लगाया। कुछ पता नही चला। व्याकुल माता अपने पति श्रेष्ठी के पास गयी। उसने कहा :

'गृहपति ! यश का पता नही है।'

श्रेष्ठी घबडाया। उसने सेवको को बुलाया। चारो तरफ अश्वारोही भेजा। सेवको को भेजा। मित्रो के घर परिचायिकाओ को भेजा। यश का पता नही चला।

श्रेष्ठी अस्थिर हो गया। विकल हुआ। स्वयं बाहर निकला। यश की पादुका का चिह्न देखा। उन पदचिह्नों का अनुसरण करने लगा। मृगदाव ऋषिपत्तन पहुँच गया।

---

(१) एक मत है कि यश की माता भगवान् को क्षीरदात्री सुजाता सेनानी दुहिता थी। मुझे वह ठीक नही मालूम होता।

बौद्धग्रन्थ मे सात यश नामक व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। सातो भिन्न व्यक्ति थे। एक यश काकन्दक पुत्र ब्राह्मण आनन्द का शिष्य था। दूसरा यश एक देव था। महासमण सुत्त के उपदेश के समय उपस्थित था। तीसरा यश पोरान्तिका का लेखक था। चौथा यश उनतीस कल्प पूर्व राजा हुआ था। पाँचवाँ यश नाम पद्मोत्तर बुद्ध के समय आता है। एक राज्य-प्रासाद का नाम था। छठवाँ यश एक राज्यप्रासाद का नाम था जिसमे कश्यप बुद्ध ने निवास किया था। सातवाँ यश सुजाता का पुत्र कहा गया है।

श्रेष्ठी तथागत के समीप पहुँचा। अभिवादन किया। वन्दना किया। आदेश पाकर एक ओर बैठ गया। उसने निवेदन किया—

'भन्ते! क्या यश कुल पुत्र यहाँ आया था ?'

'गृहपति! बैठिये। आपका पुत्र यहाँ है।'

गृहपति प्रसन्न हो गया। आसन पर स्थिर बैठ गया। उसकी चिन्ता दूर हो गयी थी। पुत्र मिल गया था। भगवान् ने उसे आनुपूर्वी धर्म कथा सुनायी। गृहपति के प्रज्ञाचक्षु खुल गये। उसे धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। वह बोल उठा

'भन्ते! आश्चर्य!! आश्चर्य!!! सचमुच आश्चर्य!!!!'

भगवान् ने उसका ज्ञानचक्षु खुला देखा। वे मुसकुराये। श्रेष्ठी ने स्वत कहा

'औधे को जैसे कोई सीधा कर दे, ढँके को जैसे कोई उघार दे, भूले को जैसे कोई पथ दिखा दे, अन्धकार मे जैसे कोई ज्योति जला दे। उस ज्योति मे जैसे कोई वस्तुओ का दर्शन कर ले। उसी प्रकार तथागत! आपने अनेक पर्यायो से धर्म प्रकट किया है।'

तथागत यश के पिता की भावमय मुद्रा लक्ष्य करने लगे। श्रेष्ठी करबद्ध भगवान् को प्रणाम करते हुए बोला

'तथागत! मै आपकी शरण जाता हूँ। धर्म की शरण जाता हूँ। भिक्षु सघ की शरण जाता हूँ।'

जगत् मे तीन वचनो वाला श्रेष्ठी प्रथम उपासक हुआ। वह जगत् मे सर्वप्रथम—

'बुद्ध शरण गच्छामि।
धर्म शरण गच्छामि।
सघ शरण गच्छामि।

तीन वचनो के साथ उपासक हुआ।

× × ×

तथागत जिस समय श्रेष्ठी को उपदेश दे रहे थे। उस समय यश कुल पुत्र ने भी उपदेश सुना। उसका चित्त निर्मल हो गया। दोषो से मुक्त हो गया। श्रेष्ठी ने यश से कहा .

'तात ! तुम्हारी माता दुःखी है। शोकाकुल है। तुम जाओ। माँ को सान्त्वना दो।'

यश की प्रश्नपूर्ण दृष्टि तथागत पर उठी। तथागत ने श्रेष्ठी को उत्तर दिया

'गृहपति ! जिस प्रकार अपूर्ण ज्ञान से तुमने धर्म का साक्षात्कार किया है उसी प्रकार यश ने भी धर्म का अर्थ समझा है। उसका चित्त अलिप्त हो गया है। आश्रवों से मुक्त हो गया है। इस अवस्था में क्या वह गृहस्थाश्रम की हीन स्थिति में पुन. प्रवेश करेगा ? तुम्हारा पुत्र यश क्या काम में लिप्त रहने योग्य है !'

श्रेष्ठी ने वात्सल्य भाव से यश को देखा। यश की दृष्टि नत थी। श्रेष्ठी ने पुन भगवान् के दिव्य भव्य स्वरूप की ओर देखा। उसका मस्तक स्वत नत हो गया। वह धीरे से बोला :

'भन्ते ! नही।'

'गृहपति !' तथागत ने कहा 'अपूर्ण ज्ञान द्वारा, अपूर्ण दर्शन द्वारा, यश ने धर्म का दर्शन किया है। प्रत्यवेक्षण द्वारा उसका चित्त अलिप्त आश्रवो से मुक्त हुआ है। श्रेष्ठी ! यश पूर्व का कुलपुत्र यश अब नही है। गृहस्थावस्था की हीन स्थिति, कामोपभोग की हीन स्थिति मे वह पुन' नही प्रत्यावर्तित होगा।'

'भन्ते !' श्रेष्ठी ने कहा। 'यश कुल पुत्र का आपने सुलाभ किया है। उसका चित्त अलिप्त हो गया है। आश्रवों से मुक्त हो गया है। यश को आप अपना अनुगामी बनाइये। भिक्षु धर्म मे दीक्षित कीजिए।'

श्रेष्ठी ने पुत्र की ओर निर्लिप्त भाव से देखा। भगवान् की वन्दना की। अनन्तर बोला—

'भन्ते ! आज आप मेरा भोजन स्वीकार कीजिए।'

तथागत ने मौन सम्मति दी। श्रेष्ठी ने तथागत की अनुमति समझी। प्रसन्न हो गया। आसन से उठा। भगवान् की प्रदक्षिणा की। अभिवादन किया। निर्मल चित्त, शान्त चित्त, अनुद्वेग चित्त, वह वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। उसने अपने पुत्र यश, जिसे खोजने के लिए यहाँ तक आया था, साथ चलने के लिए कहा तक नही। वह रह गया भगवान् के आश्रय में। शायद जिससे बड़ा और कोई आश्रय नही था।

पिता के प्रस्थान के पश्चात् यश ने करबद्ध निवेदन किया :

'भन्ते ! मुझे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले '

तथागत ने अभय मुद्रा मे कहा '

'यश ! धर्म सुआख्यात है। दु ख क्षय निमित्त ब्रह्मचर्य का पालन करो।'

इस समय तक जगत् मे सात भिक्षु हो चुके थे। यश प्रथम गृहस्थ था। जिसने प्रव्रज्या ली थी। शेष पचवर्गीय पॉच भिक्षु थे। छठे तथागत स्वय थे। सातवॉ यश कुल पुत्र था।

पूर्वाह्ण समय था। भगवान् ने काषाय वस्त्र धारण किया। भिक्षापात्र लिया। चीवर लिया। यश कुल पुत्र के निवास स्थान की ओर चले। भगवान् आगे-आगे चल रहे थे। यश पीछे था। यश भिक्षु था। पौरगण देखते थे, पहचानते थे। आश्चर्यचकित हो जाते थे उसके जीवन के अद्भुत परिवर्तन को देखकर।

अलकारो से सुसज्जित, सुगन्धित केशो से युक्त, उत्तम वस्त्रो मे परिवेष्ठित, सुकोमल यश, किस प्रकार केश मुडाकर, अलंकारो को त्याग कर, परिधान को अलग रखकर, प्रव्रज्या ग्रहण कर लिया ? सबकी चर्चा का विषय था।

श्रेष्ठी ने सादे ढग से प्रासाद सजाया। स्थान शीतल किया गया। स्थान साफ किया गया। मार्ग मे पुष्प बिखेर दिये गये। लाजा बिखेर दिये गये। धूप-गन्ध से स्थान सुरभित किया गया। घन स्थान शुद्ध स्थान मे परिणत हो गया।

भगवान् के पहुँचते ही एकत्रित समुदाय ने प्रत्युत्थान किया। भगवान् का स्वागत किया। उनके आगमन से स्थान जैसे दिव्य ज्योतिर्मय हो गया। सबके वार्तालाप के, सबके सवाद के, सबकी दृष्टियो के केन्द्र तथागत थे।

श्रेष्ठी ने भगवान् को उत्तम पवित्र आसन पर बैठाया। आयुष्मान् यश की माता शील भार से झुकी थी। भगवान् के चरणो मे मस्तक रखा। उसके पश्चात् यश कुल पुत्र की पुरानी पत्नी आयी। यश ने उसे

देखा। उसकी दृष्टि मे न काम था। न राग था। न प्रिया के लिए मोह था। न अप्रिय के लिए विषाद था। उसकी दृष्टि निर्लिप्त थी। उसने कल प्रिया को प्रियदृष्टि से देखा था। आज सम्यक् दृष्टि से देखा। भगवान् ने यश पत्नी को बैठने का सकेत किया। वह एक ओर बैठ गयी।

तथागत ने आनुपूर्विक कथा कही। उपस्थित लोगो पर उसका प्रभाव हुआ। तथागत ने उन्हे भव्य चित्त देखा। प्रेरित करनेवाली देशना आरम्भ की। यश की माता तथा पत्नी दोनो ने श्रद्धापूर्वक देशना ग्रहण किया। उसी आसन पर उनके निर्मल धर्मचक्षु खुले। उनकी समझ मे आया—'जो समुदय धर्म था। वही निरोध धर्म था।' उनके मुख से वाणी उद्‌भूत हुई।

'आश्चर्य भन्ते! आश्चर्य भन्ते!!' उन्होने निवेदन किया—'भन्ते! हमे उपासिका स्वरूप ग्रहण करे।'

तथागत ने सम्मति दी। वे वोली—

'बुद्ध शरण गच्छामि।'

'धर्म शरण गच्छामि।'

'सघ शरण गच्छामि।'

वे त्रिवचनीय विश्व की प्रथम उपासिका बुद्ध जगत् मे हुई।

× × ×

उत्तम आहार से श्रेष्ठी ने भगवान् को सन्तृप्त किया। तथागत ने भोजन समाप्त किया। पात्र से हाथ खीच लिया। मुख प्रक्षालन किया। हस्त प्रक्षालन किया। आसन पर पुन आकर बैठ गये।

यश के पिता, माता तथा पत्नी को धार्मिक कथाओं द्वारा सन्दर्शित किया। आसन से उठे। भिक्षापात्र उठाया। चीवर लिया। मृगदाव की ओर बढे।

चीवरधारी भिक्षु यश अनुकरण करने लगा। उसकी पत्नी ने पूर्व पति को जाते देखा। किन्तु कितना अन्तर था दोनो दृष्टियो मे। ज्ञान ने, धर्म ने, उनके विचारो मे, उनके शील मे, उनके आचरणो मे, आमूल परिवर्तन कर दिया था। वे हो गये थे जगत् के निर्लिप्त प्राणी।

यश के चार गृही मित्र थे। उनका नाम विमल,[1] पूर्ण जित[2], सुबाहु[3] और [4]गवाम्पति था। वे वाराणसी नगर के श्रेष्ठी तथा अनुश्रेष्ठियो के पुत्र थे। उन्होने यश को देखा। सखा को देखा। अद्भुत चमत्कार देखा। उस चमत्कार को जानना चाहा। जिसके कारण एक दिन मे उसके जीवन का परिवर्तन हो गया था। उनमे जिज्ञासा हुई रहस्य जानने की।

'मित्रो!' विमल ने कहा। 'यह धार्मिक सम्प्रदाय, यह धर्म, यह विनय, साधारण नही होगा। छोटा नही होगा। जिसने यश जैसे विलासप्रिय, ऐश्वर्यप्रिय, रमणीप्रिय मे परिवर्तन ला दिया है।'

'हॉ।' सुबाहु ने कहा—'यह प्रव्रज्या छोटी नही होगी। यदि छोटी होती तो यश कुल पुत्र जैसा बडा व्यक्ति कैसे उसमे सम्मिलित होता?'

'निश्चय।' पूर्णजित ने कहा—'जिस सम्प्रदाय मे कुलपुत्र यश सर-दाढी मुडाकर प्रव्रजित हो गया, काशी के वस्त्रो के स्थान पर साधारण काषाय वस्त्र धारण कर लिया। वह लघु नही होगा।'

'मित्रो!' गवाम्पति ने कहा—'जिसके कारण यश घर से बेघर हुआ, जिसके कारण अगणित तरुणियो का त्याग किया, जिसके कारण स्वर्ण-

---

(१) विमल विमल नाम के कई भिक्षु हुए थे। कम-से-कम सात विमल नाम के व्यक्तियो का उल्लेख पालि ग्रन्थो मे मिलता है। सब भिन्न-भिन्न थे। अर्हत प्राप्त किया था।

(२) पूर्णजित. यह यश का मित्र था। अर्हत प्राप्त किया था।

(३) सुबाहु वाराणसी के श्रेष्ठी का पुत्र था। अर्हत्व प्राप्त किया था। पालि ग्रन्थ मे पॉच सुबाहु नाम के व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। सब भिन्न-भिन्न थे।

(४) गवाम्पति. वाराणसी के श्रेष्ठी का पुत्र था। वह महानाग पुत्र मधु वसिष्ठ का उपदेशक भा। कथा है कि गवाम्पति सेरिसक्क विमान जिसमे गवाम्पति रहता था। वह चतुर्महाराजिक लोक मे स्थित जबकि उसने उसे छोड़ दिया था। भगवान् की मृत्यु के पश्चात् महाकाश्यप ने उसे सगति मे आने का निमन्त्रण भेजा। उस समय वह सेरिसक्क विमान मे था। उसने अपने भिक्षा पात्र तथा चीवर सघ के लिए दानस्वरूप भेजा। जाने मे असमर्थता प्रकट की क्योकि उसकी मृत्यु आसन्न थी। उसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। पुण्य ने उसका अन्तिम सस्कार किया था।

शय्या के स्थान पर भूमि-शय्या ग्रहण किया, जिसके कारण प्रासाद सुख के स्थान पर वृक्ष की छाया मे रहना स्वीकार किया, उसमे कोई तथ्य होगा।'

'मित्रो!' विमल ने कहा, हमें उस तथ्य को, उस रहस्य को, जानना चाहिए।'

'अवश्य!' सुबाहु ने कहा, 'हमे मृगदाव ऋषिपत्तन की ओर चलना चाहिए।'

'ठीक है!' पूर्णजित ने कहा, 'चले यश के पास। उससे पूछा जाय। रहस्य जाना जाय।'

'ठीक है मित्रो! चलिए ऋषिपत्तन मृगदाव चले।'

चारो मित्र यश से मिलने, वाराणसी नगर के उत्तरीय द्वार से निकले।

× × ×

सघन छाया थी। आम्रवन था। मृगदाव की पवित्र भूमि थी। मृगो की विहार भूमि थी। नगर के दूषित वातावरण से दूर थी। वायुमण्डल मे एक प्रकार का गाम्भीर्य था। मानो तथागत का गाम्भीर्य वायुमण्डल मे व्याप्त हो गया था।

वाराणसी से सारनाथ का मार्ग परस्पर के वाद-विवाद, सवाद मे बीता। धर्म का अर्थ समझने का प्रयास वे करते रहे। अनेक मत-मतान्तरो की चर्चा किये। जैसे-जैसे वे भगवान् के समीप पहुँचते थे उनका मन निर्मल होता गया। उनमे धार्मिक प्रेरणा उठने लगी। उनमे धर्म के प्रति जिज्ञासा बढी।

चारो मित्रो ने आयुष्मान् यश को देखा। वह चीवरधारी था। शान्त बैठा था। अपने में लीन था। जैसे जगत् मे था, किन्तु जगत् से दूर था।

वे यश के पास पहुँचे। उसे अभिवादन किया। यश ने अभ्युत्थान किया। उनका सत्कार किया। मित्रगण एक ओर खडे हो गये। विमल ने स्वस्थ मन से पूछा·

'यश! हम भी यह रहस्य जानना चाहते है। जिससे प्रभावित होकर आपने प्रव्रज्या ली है।'

'मित्रो !' यश ने कहा। मै सुरभित उबटन लगाता था। सुन्दर परिधानो मे वेष्ठित होता था। आभूषणो से अलकृत होता था। अब मैंने तीनो विद्याओ को प्राप्त किया है। बुद्ध शासन पूर्ण किया है। तृष्णाओ ने मेरा त्याग किया है।'

'मित्र ! हम भी यही चाहते है।'

'विमल !' यश ने कहा—'निर्मल धर्म का ज्ञान तथागत ने कराया है। उनके पास चलकर उन्ही से इसका रहस्य जानना उत्तम होगा।'

'चलिए चलें।' सबने स्वीकृति दी।

सब मित्र भगवान् के समीप एक साथ पहुँचे। यश ने भगवान् से से निवेदन किया ·

'भन्ते ! यह विमल, सुबाहु, पूर्णजित तथा गवाम्पति मेरे मित्र है। श्रेष्ठी तथा अनुश्रेष्ठियो के पुत्र है।'

तथागत की निर्मल, विकार रहित दृष्टि उनकी ओर उठी। यश ने कहा :

'भन्ते ! यह उपदेश की आकाक्षा से आये है। आपके अनुगासन की इन्हे जिज्ञासा है।'

भगवान् ने आसनो की ओर सकेत किया। सबने आसन ग्रहण किया। तथागत ने उन्हे आनुपूर्विक कथा कही। उनका मन निर्मल हो गया। धर्म का रहस्य उनकी समझ में आया। वे बोले—

'भन्ते ! हमे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

'भिक्षुओ !' तथागत ने कहा—'धर्म सुआख्यात है। दु ख क्षय निमित्त ब्रह्मचर्य का पालन करो।'

तथागत ने धार्मिक कथा द्वारा उन्हे उपदेश दिया। अनुशासित किया। वे अलिप्त हो गये। उनका चित्त आश्रवो से मुक्त हो गया।

यश के मित्रो ने प्रव्रज्या ली।

जगत् मे इस समय तक ग्यारह भिक्षु हुए थे।

× × ×

यश के जानपद और उसके नगर के रहनेवाले, वंशजो ने सुना। पचास पुत्रो ने सुना। यश पवित्र हो गये थे।

उसके पश्चात् उसके चार मित्र और प्रव्रजित हो गये थे। उन्हे कौतूहल हुआ। इस घटना को सुनकर। स्वत गार्हस्थ्य सुख, रमणी सुख, ऐहिक सुख, दैहिक, सुख, कैसे मनुष्य सबका त्याग करता था। जानने की जिज्ञासा हुई। इच्छा हुई।

वे एकत्रित हुए। ऋषिपत्तन चले। यश के पास पहुँचे। उसके नव प्रव्रजित मित्रो के पास पहुँचे। यश उन्हे साथ लेकर तथागत के पास गया।

तथागत आसन पर बैठे थे। यश की इच्छा समझी। सबको आसन ग्रहण करने के लिए सकेत किया। सबने आसन ग्रहण किया।

तथागत ने आनुपूर्वी कथा कही। धर्मोपदेश दिया। सबने भगवान् से प्रव्रजित होने के लिए निवेदन किया। तथागत ने उन्हे प्रव्रज्या दी।

उस समय तक जगत मे केवल ६१ भिक्षु हुए।

× × ×

यश के मित्र गवाम्पति ने भिक्षु बनने के पश्चात् अर्हत पद प्राप्त किया। साकेत मे अजन वन था। भिक्षुओ के सग वहाँ रहने लगे।

कालान्तर मे भगवान् एक समय भिक्षु संघ के साथ अजन वन मे पधारे। विहार में सबके लिये स्थान का अभाव था। कुछ भिक्षु सरयू तट पर रह गये।

अकस्मात् रात्रि मे नदी मे भयकर बाढ आयी। भिक्षु लोग त्रसित हुए। भयकर कोलाहल हुआ। गवाम्पति ने अविलम्ब नदी की धारा अपने ऋद्धि बल से रोक ली। भगवान् को घटना मालूम हुई। भगवान् ने उदान कहा ·

'अपने ऋद्धि बल द्वारा सरयू की प्रबल वेगवती धारा स्तम्भित करने वाला गवाम्पति, अचचल है, आसक्ति रहित है। आसक्तियो एव भव पार किये इस महामुनि को देवता भी प्रणाम करते है।'

आधार ग्रन्थ .

विनयपिटक महावग्ग १ १ ८

दीघ निकाय २ १ तृतीय भाणावार

थेर गाथा ११७ उदान ११७

थेर गाथा ३८ उदान ३८

भद्र वर्गीय

मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति।
खिप्पं धम्मं विजानीति जिह्वा सूपरसं यथा।

[जिह्वा सूप के रस को जिस प्रकार अविलम्ब जान लेती है उसी प्रकार मुहूर्त मात्र पण्डित के सानिध्य मे विज्ञ धर्म जान जाता है।—ध. ६५]

ऋषिपत्तन सारनाथ मे इकसठ भिक्षुओ का सघ बन गया था। भगवान् ने उन्हे विभिन्न दिशाओ मे धर्म प्रचारार्थ भेजा। सबको धर्मोपदेश का अधिकार दिया। देशना का अधिकार दिया। उपसम्पदा का अधिकार दिया।

भगवान् ने शिष्यो से कहा, 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय, देव तथा मानव के प्रयोजन के निमित्त विचरण करो। दो भिक्षु एक साथ न जाये। आदि, मध्य और अन्त के कल्याणकारी धर्म का उपदेश करो। अर्थसहित पूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का उपदेश करो।

'जगत् मे अल्प दोष वाले प्राणी है। धर्म के श्रवण न करने के कारण उनकी हानि होगी। धर्म के कारण वे दोषो से मुक्त हो जायेगे। धर्मज्ञाता होगे।

'भिक्षुओ! उरुवेला, जहाँ सेनानी गाँव है वहाँ धर्म देशना निमित्त प्रस्थान करूँगा।'

'भिक्षुओ! धर्म प्रचार कर्त्तव्य है। धर्म सुआख्यात है। उसे व्यापक बनाना है। लोगो को उपसम्पदा देने के लिए सर्व प्रथम प्रव्रज्या लेने वाले का सर तथा दाढी मुडवा देना चाहिए। उसे काषाय वस्त्र पहना देना चाहिए। उसके एक स्कन्ध पर उत्तरासग किवा उपरना रखना चाहिए। नवागत भिक्षु वृद्ध भिक्षुओ की पाद वन्दना करे। तत्पश्चात् उसे मुरुकुनिया बैठाना चाहिए। वह तीन बार उच्चारण करे—

'बुद्धं शरणं गच्छामि
धर्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि

'त्रिवचनीय शरण गमनो द्वारा प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा का कार्य समाप्त होता है।'

भगवान् की वन्दना कर साठ भिक्षु एकाकी अपने-अपने गन्तव्य मार्गों की ओर धर्म प्रचारार्थ प्रस्थान किये।

× × ×

वाराणसी मे विहार कर, भगवान् ने उरुवेला की ओर चारिका की।

तथागत मार्ग से हट कर एक वनखण्ड मे आ गये। एक वृक्ष की छाया मे बैठे।

वन मे विचित्र वातावरण उपस्थित था। भद्रवर्गीय तीस जन उस वन मे विलास निमित्त एकत्रित थे। उनकी स्त्रियाँ साथ थी। उनमें एक के पास स्त्री नही थी। उसके लिए एक वेश्या का आयोजन किया गया था।

भद्रवर्गीय जन खूब मद पान किये। मद चढा। सब कुछ भूल गये। वेश्या को अच्छा अवसर मिला। अलकार और बहुमूल्य सामानादि लेकर भाग गयी। भद्रवर्गीय का मद उतरा। घटना का पता चला। उन्हे बड़ा बुरा लगा। वेश्या को वन मे खोजने लगे। उन्हे विश्वास था। वेश्या वन मे छिपी थी।

वे वन छान डाले। वेश्या नही मिली। खोजते-खोजते भगवान् के समीप पहुँचे। उन्होने देखा—एक भव्य मूर्ति। वृक्ष के नीचे बैठी थी। वे उनके अति समीप गये। एक ने पूछा

'भन्ते! आपने किसी स्त्री को इधर देखा है।'

'स्त्री से तुम्हारा क्या प्रयोजन कुमारो ?' तथागत ने तरुण समूह को देखा। सस्मित बोले :

'भन्ते! हम भद्रवर्गीय अपने पत्नियो के साथ विनोद कर रहे थे। एक की पत्नी नही थी। उसके लिये वेश्या का आयोजन किया गया। हम लोग मद प्रभाव मे वन विचरण कर रहे थे। विनोद कर रहे थे।

सुअवसर पाकर वह समस्त अलंकारादि लेकर चम्पत हो गयी। भन्ते। उस मित्र की सहायता निमित्त इस वन को मथ रहे है।'

'कुमारो!' तथागत ने पूछा। 'मेरे एक प्रश्न का उत्तर दोगे?'

कुमार समीप आ गये। वे तथागत की दिव्य कान्ति से प्रभावित हो चुके थे। उन्होने उत्साहपूर्वक उत्तर दिया—'हाँ।'

'कुमारो!' तथागत ने कुमारो के मुख की तरफ स्थिर दृष्टि केन्द्रित करते हुए कहा, 'तुम अपने लिये क्या हितकर समझते हो? स्त्री का अन्वेषण अथवा अपना?'

'भन्ते!' वे बोले। 'उत्तम यही है। हम अपना स्वय अन्वेषण करें।'

'ठीक है कुमारो।'

तथागत ने शान्त स्वर मे कहा। कुमारगण उत्सुक हो गये। तथागत आगे क्या प्रश्न करते है। भगवान् ने पूछा·

'क्या बैठोगे? धर्म की बात सुनाऊँ।'

'भन्ते! हम सुनेगे।' कुमारो ने श्रद्धापूर्वक कहा। उन्होने भगवान् की वन्दना की। एक तरफ बैठ गये।

भगवान् ने उन्हे आनुपूर्वी कथा सुनायी। उनके ज्ञानचक्षु खुले। वासनाओ से मुक्ति मिली। तृष्णा से छुट्टी मिली। उन्होने अजलिबद्ध कहा 'तथागत! आपके करपल्लव द्वारा हमे प्रव्रज्या मिले।'

भगवान् ने उन्हे प्रव्रजित किया।

●

आधार ग्रन्थ

विनय पिटक महावग्ग १ १ · १३ द्वितीय भाणावार

धम्मपद ५ ६

Vin 1 23

Dh A 11 33

Mh V xxx 29

अनुरोधपुर लंका के महायूप कि calic change यह घटना मूर्तियो मे प्रदर्शित की गयी है।

उरुवेल काश्यप

तथागत उरुवेला पहुँचे। वहाँ जटिल[1] साधुओं का भव्य स्थान था। वहाँ तीन जटिल उरुवेल[2], नदी[3] तथा गया काश्यप[4] रहते थे। उरुवेल पाँच सौ जटिलों के नायक थे। नदी काश्यप तीन सौ जटिलों के नायक थे। गया काश्यप दो सौ जटिलों के नायक थे। जटिल साधु जटा रखते थे। ब्रह्मचर्य पालन करते थे। अग्निहोत्र रखते थे। ब्राह्मणों का एक सम्प्रदाय था।

---

(१) जटिल : यह जटाधारी साधुओं का वर्ग था। उन्हें जटिल इसलिए कहते थे कि उनके बाल जटियाय अथवा लटियाय जाते थे। जटा के कारण उनका नाम जटिल पड़ा था। उन्हें प्राय मुनियों तथा ऋषियों की श्रेणी में रखा जाता है।

(२) उरुवेल काश्यप की प्रव्रज्या का दृश्य साँची स्तूप के पत्थरों पर खुदा है। हुएन साग ने अपनी भारत यात्रा के वर्णन में लिखा है कि जहाँ भगवान् ने उरुवेल काश्यप को प्रव्रजित किया था, उस स्थान पर स्तूप बना मौजूद था।

तीनों काश्यपों की वंश परम्परा के विषय में मतवैभिन्न्य है। कुछ लेखक उन्हें भाई मानते हैं। कुछ दो को भाई मानते हैं। कुछ इस विषय पर शान्त हैं। केवल उनका उल्लेख कर छोड़ देते हैं।

(३) नदी काश्यप : एक मत है कि नदी काश्यप उरुवेल काश्यप का भाई था। उसका नाम नदी काश्यप इसलिए पडा था कि वह नेरंजना नदी के तटपर निवास करता था। नदी के ऊर्ध्व भाग में कौण्डिन्य का आश्रम था। नदी के अधोभाग में नदी काश्यप रहता था—Thag 340-344, Thag A : 434

(४) गया काश्यप : यह गयासीस पर दो सौ साधुओं के साथ रहते थे। गया-सीस पर रहने और प्रव्रज्या के कारण गया काश्यप नाम पड़ा था। गया फल्गू पर्व पर वह पाप मार्जन निमित्त तीन बार स्नान करता था।—Uın : 33 Thag U . 345, AA : 165 Thag A : 417, Ah ıı . 379, 583.

तथागत उरुवेल काश्यप के आश्रम पर पहुँचे। उरुवेल काश्यप अभिमानी था। उसे अपनी तपस्या का गर्व था। योग का अभिमान था।

तथागत ने उससे कहा :

'यदि असुविधा न हो तो, आपकी अग्निशाला मे एक रात्रि विश्राम करूँ ?'

'महाश्रमण !' काश्यप ने कहा 'मेरे ऊपर आपके निवास का भार नही पडने वाला है। किन्तु इस अग्निशाला मे एक विषधर नागराज रहता है। उससे आपको हानि पहुँचेगी।'

'मुझे वहाँ रहने की अनुमति दीजिए।' तथागत ने पुन: कहा :

'उसमे महा विषधर नाग है।'

'काश्यप !' तथागत ने कहा, 'नाग मुझे हानि नही पहुँचायेगा। आप मुझे वहाँ रहने की अनुमति प्रदान कीजिये।'

'यदि यही इच्छा है, तो सुख से वहाँ विहार करो महाश्रमण !'

तथागत ने अग्निशाला मे प्रवेश किया। तृण बिछाया। आसन बनाया। पद्मासन पर बैठ गये। उनका शरीर सीधा था। मेरुदण्ड सीधा था। ग्रीवा सीधी थी। स्मृति को स्थिर किया।

अपने निवास स्थान पर विषधर नाग ने मनुष्य देखा। यहाँ मनुष्य ने कभी निवास नही किया था। नाग क्रुद्ध हुआ। उसके मुख से धुँआ निकलने लगा।

भगवान् नाग को कष्ट नही देना चाहते थे। निश्चय किया। अपने तेज से नाग के छाल, चर्म, मास, नस, हड्डी, मज्जा के तेज को खीच लेगे। स्वत वह सरल बन जायगा।

तथागत ने योगबल से धुँआ का सृजन किया। नाग ने धुँआ देखा। नाग कोपाग्नि मे सुलग उठा। प्रज्वलित हो उठा। तथागत तेज महाभूत मे समाधिस्थ हो गये। प्रज्वलित हो उठे। तथागत तथा नाग की प्रज्वलित ज्योति के कारण अग्निशाला प्रज्वलित हो गयी।

अग्निशाला का प्रज्वलित रूप जटिलो ने देखा। वे अग्निशाला घेर कर खडे हो गये। उन्हे विचित्र कौतुक मालूम पडने लगा। किसी का साहस नही हुआ। अग्निशाला मे प्रवेश करे। सबको विदित था। तथागत एकाकी अग्निशाला मे थे। विषधर नाग अग्निशाला मे था। विषधर

तथागत की जीवन-लीला समाप्त कर सकता था। सबको ज्ञात था। तथापि भय के कारण उन्होने तथागत की प्राण-रक्षा का प्रयास नही किया। उन्होने समझा। महाश्रमण की हत्या नाग ने कर दी। वे कृत्रिम शोक प्रकट करने लगे।

'ओह! महाश्रमण परम सुन्दर था। आह! वह नाग द्वारा मारा जा रहा है।'

किसी ने भगवान् के प्राण बचाने की कल्पना तक नही की। किसी का साहस अग्निशाला के समीप जाने का नही हुआ। कोई अपने प्राण की बाजी लगाकर दूसरे की प्राण-रक्षा का विचार नही किया।

जटिल किसी प्राणी का जीवन बचाने के लिए उद्यत नही थे। अपने जीवन की आहुति करने का उन्हे साहस नही हुआ। अग्नि मे काष्ठ की आहुति डालने के आदी थे। सामग्री डालने के आदी थे। सुखी जीवन के आदी थे। कुछ समय तक कौतुक देखने की आशा मे खड़े थे। अग्नि-शाला उसी प्रकार प्रज्वलित रही। जटिल ऊँघने लगे। रात्रि भिनने लगी। वे एक-एक कर चले गये। स्थान जन-शून्य हो गगा।

तथागत ने अपने तेज से नाग के छाल, चर्म, मास, नस, हड्डी, मज्जा को तेजहीन कर दिया। तेज खीच लिया। किसी प्रकार का कष्ट नाग को नही होने पाया।

तेज नष्ट होने पर नाग शक्ति शून्य हो गया। भगवान् ने नाग को उठाया। उसे एक पात्र मे रख दिया।

प्रात काल हुआ। जटिलो को विश्वास था। महाश्रमण मर चुका होगा। अग्निशाला के समीप जटिलो की भीड एकत्रित होने लगी। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। तथागत शान्त बैठे थे। वे मरे नही थे। कुछ जटिल भयभीत हुए। कौतूहल बढा। शकित दृष्टि से तथागत को देखने लगे।

तथागत उठे। पात्र उठाया। अग्निशाला के बाहर आये। उन्हे देखते ही जटिल पीछे हट गये। उनके समीप किसी को आने का साहस नहीं हुआ।

तथागत उरुवेल काश्यप के स्थान की ओर चले। इनके पीछे जटिलों की भीड़ चली। उरुवेल को घटना मालूम हो चुकी थी। उसे स्वयं

आश्चर्य हो रहा था। तथागत को जीवित आता देखकर। तथागत उसके समीप पहुँचकर बोले :

'काश्यप ! यह पात्र है। इसमे अग्निशाला का नाग है।'

भगवान् ने पात्र उसके सम्मुख रख दिया। काश्यप ने देखा। पात्र मे नाग गडुरी लगाये शक्ति हीन सो रहा था। निर्जीव पडा था। नाग को इस दयनीय अवस्था मे देखकर महाकाश्यप ने विचार किया—यह महाश्रमण है। महाअनुभवी है। महादिव्य शक्ति सम्पन्न है। योगी है। अपनी दिव्य शक्ति से घोर विषधर चण्ड नागराज के तेज का हरण कर लिया।

तथागत के इस ऋद्धि प्रातिहार्य अर्थात् चमत्कार को देखकर उरुवेल प्रभावित हुआ। उसने तथागत से कहा :

'महाश्रमण ! आप विहार कीजिये। आपकी भिक्षा, सुविधा नित्य हो जाया करेगी।'

तथागत ने मौन से स्वीकृति दी। वे वहाँ से चले। जटिल टूट पडे तेजहीन नाग को देखने के लिये। उस नाग को देखने के लिये जिसके भय से वे अग्निशाला मे प्रवेश नही कर सकते थे।

तथागत उरुवेल काश्यप की भिक्षा ग्रहण करने लगे। जटिलो के आश्रम के समीपवर्ती एक वनखण्ड मे विहार किया।

× × ×

जटिल उरुवेल काश्यप के आश्रम के समीप एक वनखण्ड था। भगवान् वहाँ विहार करने लगे। एक दिन रात्रि को स्थान ज्योतिर्मय हो गया। वनखण्ड पूर्णतया प्रकाशित हो गया। चारो महाराज अर्थात् देवता वनखण्ड मे उतरे थे। उन्हो का प्रखर प्रकाश था। वे भगवान् के समीप आये।

चारो देवो ने भगवान् को अभिवादन किया। चारो दिशाओ मे स्थित हो गये। चारो दिशाये ज्योतिर्मय हो गयी। जटिलो ने उस प्रकाश को देखा। उन्हे विस्मय हुआ। परन्तु कोई भगवान् के पास रात्रि में आया नही।

प्रात काल उरुवेल काश्यप वनखण्ड मे आया। रात्रि मे उसने भी प्रकाश देखा था। विस्मित हुआ था। उसने भगवान् से निवेदन किया !

'महाश्रमण भोजन का समय है।'

'चलिए।' भगवान् ने पात्र उठाया।

'श्रमण ! कल यहाँ प्रकाश दिखाई पड़ा था।'

'हाँ था' भगवान् ने चीवर ठीक करते हुए उत्तर दिया।

'वह क्या था।'

'काश्यप ! चारों देव आये थे।'

'चलो श्रमण।'

'धर्म जिज्ञासा—।'

जटिल कुछ और पूछ नहीं सका। भगवान् ने उरुवेल काश्यप के साथ भात ग्रहण निमित्त प्रस्थान किया। भगवान् उसी वनखण्ड में विहार करने लगे।

× × ×

एक और रात्रि थी। घोर अन्धकार था। अकस्मात् वनखण्ड ज्योतिर्मय हो उठा। पूर्व कालीन प्रकाश से यह प्रकाश प्रखरतर था। उरुवेल आश्रम के जटिलों ने चकित होकर वनखण्ड से उठते उस प्रकाश को देखा।

महान् अग्नि समूह के समान वह प्रकाश था। प्रकाश भगवान् के समीप शनैः शनैः बढ़ रहा था। वह प्रकाश स्वयं शक्र थे। भगवान् को अभिवादन किया। एक ओर खड़े हो गये।

रात्रि समाप्त हुई। उरुवेल काश्यप दूसरे दिन भगवान् के पास पहुँचा। निवेदन किया

'महाश्रमण' ! भोजन का काल है।'

'अच्छा—'

'भात तैयार है,'।

भगवान् सुआच्छादित होने लगे। अवसर देखकर उरुवेल ने पूछा :

'महाश्रमण ! रात्रि में यहाँ प्रखर प्रकाश था।'

'हाँ—था।'

'महाश्रमण ! वह क्या था।'

'शक्र का आगमन हुआ था।'

क्यो ।'

'धर्म जिज्ञासा—।'

उरुवेल चुप हो गया ।

× × ×

वनखण्ड प्रखरतम प्रकाश पुञ्ज से प्रकाशित हो गया। जटिल आश्रमवासी विस्मयापन्न हो गये। वह प्रकाश अन्य प्रकाशो से अधिक प्रकाशमय था।

सहापति ब्रह्मा स्वय प्रकाशपुज थे। वह प्रकाशपुञ्ज भगवान् के समीप चला। भगवान् को अभिवादन किया। एक ओर खडा हो गया।

दूसरे दिन उरुवेल काश्यप आया। उसने निवेदन किया

'महाश्रमण, काल है।'

'अच्छा काश्यप।'

भगवान् चीवर धारण करने लगे। उरुवेल ने जिज्ञासा की

'कल यहाँ प्रखरतम प्रकाश था।'

'था काश्यप।'

'इस बार क्या था।'

'स्वय सहापति।'

'ब्रह्मा—

'हाँ, उनका आगमन हुआ था।'

'महाश्रमण! कारण ?

'उरुवेल! धर्म जिज्ञासा।'

उरुवेल विस्मित होता चुप हो गया। कुछ बोल न सका। भगवान् ने पात्र उठाया। चीवर लिया। भिक्षा निमित्त अग्रसर हुए। उरुवेल उनके पीछे था। भिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् भगवान् पुन उसी वनखण्ड मे विहार करने लगे।

× × ×

उरुवेल काश्यप के यहाँ महान् यज्ञ का समय उपस्थित हुआ। मगध निवासी वहाँ प्रचुर खाद्य भोजन लेकर आने वाले थे। जटिल ने

विचार किया—'महाश्रमण आश्रम में रहेगा। उसका चमत्कार लोग देखेंगे। उसका सत्कार होगा। मेरा सम्मान घट जायेगा। लाभ भी कम होगा। मुझे मिलनेवाली वस्तु उसे मिल जायगी। श्रमण कल से न आता तो अच्छा था।'

तथागत ने उरुवेल का तात्पर्य अपनी शक्ति से जान लिया। वे उत्तर कुरु चले गये। वही भिक्षाटन किया। अनवतप्त सरोवर तट पर भिक्षा ग्रहण किया। दिन पर्यन्त वहाँ विहार करते रहे।

वही रात्रि व्यतीत की। दूसरे दिन उरुवेल जटिल भगवान् के पास गया। उसने तथागत को यथास्थान पाया। बोला ·

'महाश्रमण ! भात उद्यत है। आप ग्रहण करे। आप कल क्यों नहीं आये ? आपका भोजन लगा रखा है।'

'जटिल ! मै आपके चित्त की बात जान गया था। अतएव नही आया।'

उरुवेल की अहंकार भावना तथागत समझ गये। तथापि उसकी भिक्षा ग्रहण करते रहे। वनखण्ड मे विहार करते रहे।

× × ×

एक समय की बात है। भगवान् को पाशुकूल अर्थात् चिथडे मिले। उसे उन्होने धोने का विचार किया। किस शिलाखण्ड पर उन्हे पछारू ? किसका आलम्ब लेकर पुष्करिणी मे उतरूँ ? पाशुकूलो को सूखने के लिए कहाँ फैलाऊँ ?

तथागत के मन की बात इन्द्र ने जानी। तत्काल वहाँ एक पुष्करिणी खोद दी। एक शिला तट पर रख दी। ककुध वृक्ष की एक शाखा लटका दी। एक बड़ी भारी शारी डाल दी।

रात बीती। दूसरे दिन उरुवेल काश्यप आया। उसने वहाँ पुष्करिणी देखी। वृक्ष की छाया देखी। लटकी शाखा देखी। उसे महान् विस्मय हुआ। उसकी कल्पना मे बात नही आती थी। रातो रात यह सब हो कैसे गया। गम्भीर मुद्रा मे तथागत से कहा :

'महाश्रमण ! भात तैयार है। किन्तु यहाँ पुष्करिणी नही थी। यहाँ छाया के लिये वृक्ष नही था। ककुध वृक्ष मै खडा देखता हूँ। उसकी शाखाएँ लटकी है। यहाँ शिलाखण्ड नही था। वह भी पुष्करिणी तट पर पड़ा है। यह कैसा इन्द्रजाल ?'

तथागत ने पांशुकूल की बात बतायी । उरुवेल चकित हुआ । उसने विचार किया—'महाश्रमण महा दिव्य शक्तिशाली है । महा अनुभवी है । किन्तु वह मेरे जैसे अर्हत नही है ।'

× × ×

उरुवेल काश्यप भगवान् के समीप आया ।

निवेदन किया

'महाश्रमण काल है ।'

'आप पधारिए ।'

'और आप ।'

'मै आता हूँ ।'

'भात तैयार है ।'

'मै पहुँच जाऊँगा ।'

काश्यप उदास चला । उसके आश्चर्य की सीमा न रही । अग्निशाला मे उसने देखा । भगवान् पहले से ही आकर वहाँ पर आसन ग्रहण किये थे । उसने [illegible] साश्चर्य पूछा ।

जटिल

[illegible]ास यह जम्बू फल कैसा है ।'

शान्तचित्त

'काश्यप । जिस जम्बूफल के कारण जम्बूद्वीप नाम पडा है । वही फल है ।'

'किन्तु आप इतने शीघ्र कैसे आ गये ।'

'काश्यप । आपके प्रस्थान के पश्चात् मै जम्बूफल लेने चला गया था । यह उस फलका मधुर रस है । पान करो ।'

'श्रमण, आप इसे लाये है ।'

'तो—।'

'आप ही ग्रहण कीजिए ।'

उरुवेल भगवान् का प्रातिहार्य देखकर दिन-पर-दिन प्रभावित होता जा रहा था ।

× × ×

'महाश्रमण । भात का काल है ।'

'काश्यप ! आप चलिये । मै आता हूँ ।'

उरुवेल वनखण्ड से प्रस्थान किया । उसने अग्निशाला मे देखा । भगवान् बैठे थे । उनके सम्मुख पारिजात पुष्प था । उरुवेल ने जिज्ञासा की :

'आपके पूर्व मै चला था । आप पारिजात पुष्प लेकर लेकर मुझसे पहले यहाँ पहुँच गये ।'

'हाँ ! काश्यप ! यह देखो कितना गन्धयुक्त सुन्दर पारिजात पुष्प है !'

उरुवेल चुप हो गया । परन्तु उसने सोचा । वह जितना बडा अर्हत है उतना महाश्रमण नही है ।'

× × ×

जटिल अग्निहोत्र करते थे । उसके लिये लकडी की आवश्यकता पडती थी । वे लकडी एकत्रित करते थे । फाडकर समिधा बनाते थे ।

एक समय जटिल लकडियाँ फाडने लगे । वे फाड न सके । उनका सब प्रयास विफल हो गया । वे चकित हुए । भयभीत भी हुए । उरुवेल को सन्देह हो गया । महाश्रमण ने अपनी दिव्य-शक्ति के कारण लकडी का फ़ाडना रोक दिया है । अग्निहोत्र बन्द हो गये थे । हताश उरुवेल भगवान् के पास पहुँचा । सादर निवेदन किया

'महाश्रमण ! लकडियाँ नही फट रही हैं ।'

'काश्यप ! लकडियाँ फाडी जायँगी ।'

भगवान् के कहते ही लकडियाँ फटने लगी । रुका अग्निहोत्र प्रज्वलित हो गया ।

× × ×

जटिल अग्नि परिचर्या कर रहे थे । अग्नि जल नही रही थी । सब काम-काज रुक गया था । जटिलो को सन्देह हुआ । भगवान् की दिव्य शक्ति के कारण अग्नि प्रज्वलित नही हो रही थी । उरुवेल काश्यप भगवान् के पास पहुँचा । सादर निवेदन किया :

'महाश्रमण, अग्निशाला मे अग्निहोत्र का सब काम रुक गया है ।'

'क्यो ?'

'अग्नि नही जल रही है ।'

'अग्नि जलेगी काश्यप !'

अग्नि जल उठी। उरुवेल काश्यप ने फिर भी यही विचार किया। महाश्रमण उतना बडा अर्हत नही है जितना वह स्वय है।

× × ×

एक समय प्रज्वलित अग्नि बुझती नही थी। भगवान् के कारण बुझ गयी। जटिल निरंजना नदी मे माघ के अन्त और फाल्गुन के प्रारम्भ वाली चार रातो मे स्नान करते थे। उन्मज्जन करते थे। निमज्जन करते थे। वे जल से निकलकर कॉपते थे। भगवान् ने उनके लिए तट पर अग्नि उत्पन्न कर दी। जटिल भगवान् के कार्यो से अत्यन्त प्रभावित हो गये थे।'

× × ×

अकाल मेघ की एक बार भीषण वर्षा हुई। जल प्लावन का दृश्य उपस्थित हो गया। बाढ आ गयी। किन्तु चक्रमण युक्त भूमि भगवान् के चारों ओर सूखी रह गयी।

जटिल को ध्यान आया। जलप्लावन में महाश्रमण डूब गये होगे। उन्हे बचाना चाहिए। देखना चाहिए। क्या हुआ ?

उसने नाव मँगायी। उस पर कई जटिल बैठ गये। नाव भगवान् के निवास स्थान की ओर चली।

जटिल चकित हो गये। तथागत धूलयुक्त भूमि पर चक्रमण कर रहे थे। शान्तचित्त थे। किन्तु उनके चारों ओर जल था। जटिल ने आवाज दी :

'महाश्रमण। आप है ?'

'उरुवेल ! हॉ, मै यहॉ हूँ।'

कहते-कहते तथागत नाव मे आकर खडे हो गये। जटिल ने समझा-'महाश्रमण दिव्यशक्तिशाली है। परन्तु उसके जैसे अर्हत नही थे।'

जटिल के अहकार को तथागत ने जान लिया। बोले—'जटिल ! उरुवेल काश्यप ! तू अर्हत नही है। अर्हत के मार्ग का अनुगामी नही है। तुममे वह बुद्धि नही है। जिसके कारण मानव अर्हत होता है। जिनके कारण अर्हत के मार्ग का अनुकरण करता है। तुम मूढ मात्र हो।'

जटिल का अहकार खण्डित हो गया। वह भगवान् के चरणो पर गिर पडा। निवेदन किया।

'भन्ते ! मुझे प्रव्रज्या मिले। मुझे आपसे उपसम्पदा मिले।'

× × ×

'उरुवेल !' तथागत ने पूछा, 'पाँच सौ जटिलो के आप नायक है। उनका क्या होगा ?'

'भन्ते ! वे प्रव्रजित होगे।'

जटिलो !' काश्यप ने अपने अनुयायी जटिलों से कहा मैने निश्चय किया है। महाश्रमण के समीप ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करूँगा। आप लोगो की क्या इच्छा है ?

'काश्यप !' जटिल बोले, 'हम महाश्रमण से प्रभावित है। उनसे प्रसन्न है। यदि आप महाश्रमण के पास ब्रह्मचर्य धारण करेंगे तो हम भी आपका अनुकरण करेंगे।'

'मेरा यही निश्चय है।'

'हम लोगो का भी यही निश्चय है।'

जटिलों ने जयघोष किया। उत्साह से उठे। अपनी केश-सामग्री, जटा-सामग्री, झोली, घी-सामग्री, अग्निहोत्र सामग्री सबको उठाया। नदी मे सर्वदा के लिए प्रवाहित कर दिया। उन्होंने अग्निपूजा को सर्वदा के लिए नमस्कार किया।

तथागत के समीप सब एक समूह मे आये। विनम्र निवेदन किये

'हमे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

'भिक्षुओ ! आओ। धर्म सुआख्यात है। दु ख के अन्त निमित्त ब्रह्मचर्य का पालन करो।'

× × ×

नदी काश्यप ने नदी मे बहते हुए जटिलो की सामग्रियो को देखा। उसे आश्चर्य हुआ। शका हुई। शायद उरुवेल काश्यप दुर्घटना-ग्रस्त हो गये। उसने अपने अनुयायियो से कहा :

'जटिलो ! मुझे शका हो रही है। मेरे भाई का कुछ अनिष्ट तो नही हो गया है ?'

जटिलो ने नदी मे सामग्री बहते हुए देखा था। वे भी शकित हुए थे। नदी काश्यप ने कहा

'जटिलो ! भाई के पास चलना चाहिए। देखना चाहिए। वे कुशल से तो है ?'

नदी काश्यप तीन सौ जटिलो के साथ उरुवेल काश्यप के आश्रम में पहुँचा। वहाँ उसने उरुवेल काश्यप को जीवित देखा। सब घटना उसे मालूम हुई। उसने उरुवेल से पूछा

'क्या यह सब अच्छा हुआ है।'

'हाँ।'

'तो ?'

'हमने यही निश्चय किया है। हम सब भिक्षु हो गये है।'

नदी काश्यप ने अपने सम्मुख पाँच सौ भिक्षुओं को चीवर तथा पात्र लिये हुए देखा। उसने कहा ·

'यदि आपका यही निश्चय है, तो हम भी प्रव्रज्या लेंगे। उपसम्पदा लेंगे।'

'इन व्यर्थ के स्वाग को जलार्पण करो नदी काश्यप! इस जटा से, इस रूप से कुछ नही मिलता। शास्ता ने उत्तम मार्ग दिखाया है। उसी का अनुकरण करेंगे।'

नदी काश्यप ने समस्त सामग्री नदी प्रवाह मे फेक दी। उरुवेल काश्यप उन्हे लेकर तथागत के पास गया। वहाँ पहुँचकर सब जटिलों ने नदी काश्यप को आगे कर कहा :

'भन्ते! हमे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

तथागत ने उनकी विनती स्वीकार की।

× × ×

गया काश्यप ने नदी मे केश-सामग्री बहती देखा। वह दोनों काश्यपों के पास दौडा आया। उनसे पूछा :

'क्या यह अच्छा हुआ है ?'

'निश्चय ही। वह सब अच्छा हुआ है। आवुस!'

'तो हम भी प्रव्रज्या स्वीकार करें। उपसम्पदा प्राप्त करें।'

'आयुष्मान् यही उचित है।'

'उरुवेल! तथागत के पास चले।'

'अवश्य।'

तथागत के पास पहुँचकर गया काश्यप को आगे कर उसके अनुयायी दो सौ जटिलो ने भगवान् से प्रार्थना की ·

'भन्ते ! हमे प्रव्रज्या मिले । उपसम्पदा मिले ।'

भिक्षुओ ! धर्म सुआख्यात है। आओ। दुख के अन्त निमित्त ब्रह्मचर्य पालन करो ।'

गया का जटिल सम्प्रदाय अपनो पुरानी रूढि, जडता, बाह्य आडम्बर, त्यागकर सरल धर्म मार्ग का अनुसरण किया ।

× × ×

उरुवेल काश्यप बुद्धधर्म पथ पर निरन्तर विकास करता चला गया। उसने अपने आत्म अनुसन्धान करते हुए कहा

'मै ईर्ष्या मे प्रमत्त था। मै गर्व मे प्रमत्त था। तथागत के प्रातिहार्यो को देखा परन्तु उन्हे प्रणाम नही किया। मेरे दोप का ध्यान न देते हुए, तथागत ने मेरे दोष की ओर मुझसे आकर्षित किया। उस समय मुझमे सवेग उत्पन्न हुआ। मै रोमाचित हो गया। जटिल अर्थात् जटाधारी साधु रूप मे मुझे सम्मान मिलता था। सत्कार मिलता था। मैने उन सत्कारो का, सम्मानो का त्याग किया है। मै तथागत के शासन मे प्रव्रजित हुआ। पूर्व काल मे काम भूमि की आशा से यज्ञ द्वारा सन्तुष्ट था। तत्पश्चात् मैने राग, द्वेष, एव मोह का आमूल नाश किया है।

'मुझे अपने पूर्व जन्मो का ज्ञान है। मै दिव्य चक्षु हूँ। विशुद्ध हूँ। ऋद्धिमान हूँ। दिव्य श्रोत प्राप्त हूँ। अन्य के चित्त का ज्ञान रखता हूँ। जिस प्रयोजन से गृह का त्याग किया था। बिना घर हुआ था। प्रव्रजित हुआ था। मैने उसे पा लिया। बन्धनो से मुक्त हुआ हूँ।'

× × ×

नदी काश्यप ने अर्हत पद प्राप्त किया। उसने उल्लसित होकर उदान कहा।

हमारे अर्थ सिद्धि निमित्त तथागत का नेरजना नदी पर आगमन हुआ था। उनके उपदेश के कारण मैने मिथ्या दृष्टि का त्याग किया है। पूर्वकाल मे मैने अनेक यज्ञो का अनुष्ठान किया था। अग्निहोत्र किया था। मै उस समय मूढ था। अन्तर्दृष्टि हीन था।

'ओह ! मै मतवाद से मोहित था। दृष्टि स्वरूप अरण्य में पडा था। अशुद्धि को शुद्धि मानता था। अज्ञानी था। अन्ध था।

आह ! मेरी उन मिथ्यादृष्टियो का लोप हो गया। भव विदीर्ण हो गया है। अब मै दक्षिणार्ह अग्नि की उपासना करता हूँ। मेरा मोह तिरोहित हो चुका है। भवतृष्णा समाप्त हो चुकी है। जन्म स्वरूप जगत् क्षीण हो चुका है। मेरा पुनर्जन्म नही होनेवाला है।'

× × ×

गया काश्यप भगवान् से प्रव्रज्या प्राप्त करने पर धर्माचरण करने लगे थे। वे अर्हत पद प्राप्त किये। एक दिन आल्हादित होकर उन्होने उदान कहा :

'अहा ! मेरी कैसी विचित्र धारणा थी। स्नान द्वारा पाप कट जाता है। अतएव मै गया की फलगू नदी मे प्रात , मध्यान्ह तथा साय त्रैकालिक स्नान करता था। सोचता था। पूर्व और वर्तमान सब जन्मो का पाप नदी की धारा मे बह गया है।'

मैने तथागत से धर्मोपदेश सुना। मैने विवेक बुद्धि से वचनो का मनन किया। मैने पापो को अब धर्म नदी मे प्रक्षालित कर डाला है। निस्सन्देह मै निर्मल हूँ। पवित्र हूँ। शुद्ध हूँ। विशुद्धि का विशुद्ध अधिकारी हूँ। मैने अष्टागिक मार्ग स्वरूप स्रोत मे उतरा हूँ। उसकी धारा मे अपने पापो को बहा दिया है। मैने तीनो विद्याओ को प्राप्त किया है। मैने बुद्ध शासन को पूर्ण किया। और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको में इकतीसवाँ स्थान प्राप्त काशीदेश वाराणसी नगर निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न उरुवेल काश्यप महापरिषद् वालो मे अग्र हुआ था।

●

आधार ग्रन्थ :

विनय पिटक महावग्ग १ १ १४-१५,
थेर गाथा · २०३ उदान ३७५-३८०,
· २०४ उदान ३४०-३४४,
२१० उदान ३४५-३४९,
थेरा अपदान ५४ ८ २५१-२९५
५६ २ २९-३४
५६ ३ ३५-४१

Vin : i 24

AA i 165, 166

Thag A i 434, 67

A i. 25.

LA i 83

Ah · ii 48, 483

J vi 220

गयासीस

भगवान् ने उरुवेल से राजगृह के लिये प्रस्थान किया। उरुवेल तथा गया के मध्य गयासीस[1] अर्थात् ब्रह्मयोनि पर्वत है। भगवान् के साथ एक सहस्र नवीन प्रव्रजित पुराने जटिलो का भिक्षु समूह था। भगवान् गयासीस पर विहार करने लगे।

भगवान् ने एक दिन भिक्षु सघ को आमन्त्रित किया। आदीप्त पर्याय का उपदेश दिया। भगवान् ने उद्बोधन किया·

---

(१) गयासीस : गया और बोधगया के मार्ग मे यह छोटी सी पहाड़ी गया से दक्षिण पूर्व डेढ़ मिलपर स्थित है। इसे ब्रह्म योनि पर्वत कहते है। शिखर पर एक आदमी के आरपार जाने योग्य स्थान दो पत्थरो के बीच है। इसे पार करने मे दिक्कत होती है। इसके विषय मे अनेक किंवदन्तियाँ कही जाती है। पहाड़ी ऊपर समथर है। हाथी के मस्तक तुल्य लगती है। गजशीश भी इसे किसी समय कहा जाता था।

इस पर्वत के सामने सड़क के पार मै एक कैम्प मे चार दिन तक रहा हूँ। उस समय यहाँ आबादी नही थी। यह बात सन् १९२२ की है।

देवदत्त सघ से अलग होकर यहाँ पर निवास किया था। अजातशत्रु ने उसके निमित्त यहाँ एक विहार निर्माण कराया था।

हुएन साग ने अपनी यात्रा में इस पर्वत के दक्षिण पूर्व तीनो जटिलो के स्तूपो को बना देखा था।

भगवान् ने यहाँ गयसुत्त का उपदेश दिया था।

पालि ग्रन्थो के अनुसार बोधि वृक्ष गया से तीन गव्यूती था। यह दूरी इस समय लगभग ६ मिल है। काशी से १५ योजन था। गया मे गया फाल्गुनी का मेला लगता था। वहाँ गया गया तथा पोक्खरिणी दो स्नान के घाट थे। उसमे स्नान करना पवित्र माना जाता था। गया नगर को ब्रह्म गया कहते थे जबकि बोध गया बोधि वृक्ष के समीप था।

'भिक्षुओ ! सब भस्म हो रहा है।'

'क्या भस्म हो रहा है भन्ते !'

'चक्षु जल रहा है। रूप जल रहा है। चक्षु विज्ञान जल रहा है। चक्षुरपर्ग जल रहा है। चक्षु स्पर्श के कारण वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं।'

'क्या वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं भन्ते !'

'आवुसो ! उनसे सुख, दुःख, न सुख और न दुःख उत्पन्न होता है। वह भी जल रहा है।'

'किससे जलाया जा रहा है भन्ते !'

'आवुसो ! वे रागाग्नि, द्वेषाग्नि, मोहाग्नि, जन्म, जरा, मरण योग, रुदन, विलाप, दुःख, दुर्मनस्कता और उपायास द्वारा जल रहे हैं।'

'और तथागत !'

'भिक्षुओ ! श्रोत्र जल रहा है। शब्द जल रहा है। श्रोत्र विज्ञान जल रहा है। श्रोत्र का सस्पर्श जल रहा है। श्रोत्र संस्पर्श द्वारा उत्पन्न वेदनाएँ जल रही हैं।'

'और भन्ते !'

'घ्राण जल रहा है। गध जल रहा है। घ्राण विज्ञान जल रहा है। घ्राण के सस्पर्ग द्वारा उत्पन्न वेदनाएँ जल रही हैं।'

'और क्या जल रहा है तथागत !'

'जिह्वा जल रही है। जिह्वा का रस जल रहा है। जिह्वा का विज्ञान जल रहा है। जिह्वा का संस्पर्श जल रहा है। जिह्वा सस्पर्श से उत्पन्न वेदनाएँ जल रही है।'

'और पाँचवों ज्ञानेन्द्रिय !'

'भिक्षुओ ! काया जल रही है। काया का स्पर्श जल रहा है। काय विज्ञान जल रहा है। काय सस्पर्श जल रहा है। काय सस्पर्श से उत्पन्न काय वेदना जल रही है।'

'और मन भन्ते !'

'आवुसो ! वह भी जल रहा है ?'

'कैसे भन्ते !'

'भिक्षुओ ! मन जल रहा है। मन का धर्म जल रहा है। मनोविज्ञान

जल रहा है। मन सस्पर्श जल रहा है। मन सस्पर्श द्वारा उत्पन्न वेदनाये जल रही है।'

'भन्ते ! वे कैसे जल रही है ?'

'आवुसो। रागाग्नि, द्वेषाग्नि, मोहाग्नि, द्वारा जल रही है। जन्म, जरा, मरण, योग द्वारा जल रही है। विलाप, दु:ख, दुर्मनस्कता द्वारा जल रही है।'

'अद्भुत भन्ते।'

'भिक्षुओ। धर्म को जो इस प्रकार देखता है। इस प्रकार सुनता है। उसे चक्षु, रूप, चक्षु विज्ञान, चक्षु संस्पर्श से निर्वेद प्राप्त होता है। चक्षु संस्पर्श के कारण जो वेदनाएँ उत्पन्न होती है उनसे भी निर्वेद प्राप्त होता है।'

'आश्चर्य भन्ते !'

'आवुसो। इसी प्रकार श्रोत्र से निर्वेद प्राप्त होता है। शब्द से निर्वेद प्राप्त होता है। श्रोत्र विज्ञान से निर्वेद प्राप्त होता है। श्रोत्र सस्पर्श से निर्वेद प्राप्त होता है। श्रोत्र सस्पर्श के कारण उत्पन्न वेदनाओ से निर्वेद प्राप्त होता है। घ्राण से निर्वेद प्राप्त होता है। गध से निर्वेद प्राप्त होता है। घ्राण विज्ञान से निर्वेद प्राप्त होता है। घ्राण सस्पर्श से निर्वेद प्राप्त होता है। घ्राण सस्पर्श द्वारा उत्पन्न वेदना से निर्वेद प्राप्त होता है। जिह्वा से निर्वेद प्राप्त होता है। रस से निर्वेद प्राप्त होता है। जिह्वा विज्ञान से निर्वेद प्राप्त होता है। जिह्वा संस्पर्श से निर्वेद प्राप्त होता है। जिह्वा सस्पर्श द्वारा उत्पन्न वेदना से निर्वेद प्राप्त होता है। काय से निर्वेद प्राप्त होता है। काय स्पर्श से निर्वेद प्राप्त होता है। काय विज्ञान से निर्वेद प्राप्त होता है। काय सस्पर्श से निर्वेद प्राप्त होता है। काय सस्पर्श द्वारा उत्पन्न वेदनाओं से निर्वेद प्राप्त होता है।'

'और मन भन्ते।'

'आवुसो ! मन से निर्वेद प्राप्त होता है। धर्म से निर्वेद प्राप्त होता है। मनोविज्ञान से निर्वेद प्राप्त होता है। मन सस्पर्श से निर्वेद प्राप्त होता है। मन सस्पर्श के कारण उत्पन्न वेदना से निर्वेद प्राप्त होता है।'

'फिर क्या होता है भन्ते !'

'आवसो ! वह उदास होता है। विरक्त होता है। विरक्त होने पर

मुक्त होता है। मुक्त होने पर उसमें यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि वह मुक्त है। उसे बोध होता है। आवागमन समाप्त हो गया है। ब्रह्मचर्य पूरा हो गया है। जो करणीय था कर चुका है। इस जगत् में और कुछ करने को शेष नहीं रह गया है।'

'साधु भन्ते! साधु भन्ते!'

उपदेश सुनकर भिक्षुओं का चित्त निर्लिप्त हो गया। आवागमन के कारणभूत मलों से मुक्ति मिल गयी।

आधार ग्रन्थ :

विनय पिटक महावग्ग १ . १ १६

Vin : i 34, ii : 199 UaA i · 74
S . iv 19 Ua . i : 9,
J i . 82, 112, 125, 490, 185, 508, ii 38:
AA . i 57, hA i : 72, 121,
PuA : 2, SA iii : 4,

विम्बसार

भगवान् गया मे थे। गया राजर्षि को नगरी मे थे। गयासीस पर्वत पर विहार कर रहे थे। उन्हे स्मरण आया। राजगृह जाने का वचन दिया था।

तथागत ने राजगृह जाने का निश्चय किया। उनके साथ एक सहस्र जटिल भिक्षुओ का सघ चला। भगवान् चारिका करते हुए राजगृह पँहुँचे। मार्ग मे भिक्षुओ के भोजन का प्रबन्ध जनता सोत्साह करती थी।

भगवान् ने राजगृह के लट्ठि अर्थात् जणियाव वन के सुप्रतिष्ठित चैत्य मे विहार किया।

मगधराज विम्बसार के माली ने राजा को सादर सूचित किया—'शाक्य कुलीय शाक्यपुत्र श्रमण गौतम राजगृह मे पधारे है। भिक्षुओ के साथ प्रतिष्ठित चैत्य मे विहार कर रहे है।'

विम्बसार ने भगवान् की मगल-कीर्ति सुनी थी। भगवान् अर्हत थे। सम्यक् सम्बुद्ध थे। विद्या युक्त थे। आचरण युक्त थे। सुगत थे। लोक ज्ञाता थे। सर्वोत्तम थे। देवताओ के शास्ता थे। मनुष्यो के शास्ता थे। वे आदि मे कल्याणकारक थे। मध्य मे कल्याणकारक थे। अन्त मे कल्याणकारक थे। धर्म का अर्थ सहित उपदेश देते थे। केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करते थे।

विम्बसार बारह नियुत मगध निवासी ब्राह्मणो और गृहपतियो के साथ विहार मे पहुँचा। भगवान् को अभिवादन किया। एक ओर जाकर बैठ गया।

विम्बसार के साथियो मे किसी ने नाम-गोत्र से परिचय दिया। किसी ने केवल नाम से परिचय दिया। अभिवादन किया। किसी ने केवल अभिवादन किया। किसी ने कुशल-मगल पूछा। किसी ने करबद्ध प्रणाम किया। और किसी ने चुपचाप एक ओर आसन ग्रहण किया।

विम्बसार भगवान् पर श्रद्धा रखते थे। विम्बसार और गौतम के पिता मित्र थे। विम्बसार और सिद्धार्थ मित्र थे। तथागत विम्बसार से पाँच वर्ष ज्येष्ठ थे।

भगवान् अपनी पैंतीस वर्ष की आयु मे विम्बसार के पास पहुँचे थे। मगधराज तीन सौ योजन विस्तृत था। विम्बसार कोसल राज प्रसेनजित का बहनोई था। अजातशत्रु उसका पुत्र था।

विम्बसार के पिता ने उसका पन्द्रह वर्ष की आयु मे अभिषेक किया था। राज्य-प्राप्ति के सोलह वे वर्ष मे भगवान् ने उसे धर्म का उपदेश दिया था। तथागत के जीवन-काल मे उसने पैंतीस वर्ष राज्य किया था। उसके पुत्र अजातशत्रु ने तेइस वर्षो तक राज्य किया था · भगवान् के जीवन-काल मे अजातशत्रु ने आठ वर्ष राज्य किया था। उसके राज्य के आठवे वर्ष भगवान् ने निर्वाण प्राप्त किया था। निर्वाण के पश्चात् उसने चौतीस वर्ष राज्य किया था। भगवान् की आयु जब बहत्तर वर्ष की थी, उस समय विम्बसार दिवगत हुआ था।

मगधवासियो ने वहाँ उरुवेल काश्यप को देखा। उनके मन मे सन्देह हुआ। महाश्रमण उरुवेल के यहाँ रहते थे। उरुवेल अब महाश्रमण के यहाँ रहता था।

तथागत ने उनके मनोगत भावो को जान लिया। उरुवेल से सबके सम्मुख प्रश्न किया :

'उरुवेल ! किस कारण तुमने अग्नि का त्याग किया। अग्निहोत्र का त्याग किया। अग्नि-पूजा का त्याग किया। जटा का त्याग किया ?'

'भन्ते !' काश्यप ने कहा, 'रागादि उपाधियाँ मल है। यह मैने जान लिया है। कामना से किया गया यज्ञ काम्येष्टि यज्ञ कहा जाता है। इसलिए, मै यज्ञ और हवन से विरत हुआ हूँ।'

'काश्यप !' भगवान् ने पूछा, 'रूप, रस, शब्द मे तुम्हारी रुचि नही हुई। बोलो काश्यप ! देवलोक मे, मनुष्य लोक मे तुम्हारा मन कहाँ रमता है ?'

'भगवन् ! काममद मे अविद्यमान, निर्लेप, शात, रागादि रहित, निर्वाण पद को देखकर मेरा मन यहाँ रमा है। दूसरे के माध्यम से न मिलनेवाले, निर्वाण पद को देखकर, यज्ञ का त्याग किया है।'

आयुष्मान् काश्यप आसन त्याग कर उठे। उत्तरासग एक कन्धे पर रखा। तथागत के चरणो पर मस्तक रख दिया। सविनय बोले :

'भन्ते ! आप मेरे शास्ता है। मै श्रावक हूँ।'

काश्यप ने सबके सम्मुख भगवान् को शास्ता स्वीकार किया। मगधवासियो को विश्वास हो गया। काश्यप भगवान् के पास रहकर ब्रह्मचर्य पालन करते थे।

मगधवासियो, ब्राह्मणो तथा गृहपतियो की मन स्थिति जानकर भगवान् ने आनुपूर्वी कथा कही।

तथागत का उपदेश सुनकर विम्बसार आदि ग्यारह नियुत मगधवासी ब्राह्मणो और गृहपतियो को वही आसन पर जो कुछ समुदय धर्म है, वही निरोध धर्म है, यह निर्मल चक्षुज्ञान उत्पन्न हुआ। वे एक नियुत उपासकत्व को प्राप्त हुए।

× × ×

विम्बसार ने भगवान् से निवेदन किया :

'भन्ते ! कुमारावस्था मे मुझे पाँच अभिलाषाएँ थी। वे पूर्ण हो गयी है।'

'क्या अभिलाषाएँ थी ?'

'मै अभिषिक्त होऊँ। राज्य मिले। यह मेरी पहली अभिलाषा थी। वह पूरी हो गयी।'

'दूसरी अभिलाषा क्या थी ?'

'मेरे राज्य मे अर्हत सम्बुद्ध पधारें। वह भी अभिलाषा आज पूरी हो गयी।'

'तीसरी अभिलाषा क्या थी ?'

'उन सम्यक् सम्बुद्ध की मै उपासना करता। वह भी अभिलाषा आज पूरी हो गयी।'

'चौथी अभिलाषा ?'

'तथागत मुझे धर्म उपदेश करे। वह भो आज पूरी हो गयी।'

'पाँचवी क्या थी राजन् ?'

'मैं उन तथागत को जानता। वह भी आज पूरी हो गयी।'

तथागत तथा विम्बसार का संवाद लोग शान्त मन सुन रहे थे। विम्बसार ने पुन कहा :

'आश्चर्य है, भन्ते! आश्चर्य है। मै बुद्ध की, धर्म की, सघ की शरण लेता हूँ। भन्ते! मुझे साजलि शरण आया उपासक रूप मे ग्रहण करे। भिक्षु सघ सहित मेरे यहाँ कल भोजन कीजिये।'

तथागत ने मौन सम्मति दी। विम्बसार आसन से उठा। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। प्रस्थान किया।

× × ×

'भन्ते! समय हो गया है। भिक्षा ग्रहण करने की कृपा करे।' विम्बसार ने साजलि निवेदन किया।

पूर्वाह्लकाल था। भगवान् सुआच्छादित हुए। भिक्षा-पात्र उठाया। चीवर लिया। एक सहस्र पुरातन जटिल भिक्षुओ के साथ भिक्षा निमित्त प्रस्थान किया।

विम्बसार के निवास-स्थान पर तथागत सघ सहित पहुँचे। आसन बिछे थे। सबने आसन ग्रहण किया।

राजा विम्बसार ने अपने हाथ से उत्तम व्यजन परोसा। सबको सतुष्ट किया। भोजन समाप्त हुआ। भगवान् ने हाथ खीच लिया। एक तरफ बैठ गये।

मगधराज विम्बसार ने विचार किया, 'भगवान् को कहाँ ठहराया जाय ? उनके विहार का स्थान जनस्थान से दूर नही होना चाहिए। बहुत समीप भी नही होना चाहिए। दर्शनार्थियो को जहाँ पहुँचने की सुविधा हो। दिन मे जहाँ अधिक भीड़ न हो सके। रात्रि मे घोष न हो। एकान्त स्थान हो। एकान्तवास के योग्य हो। वही स्थान उपयुक्त होगा।'

विम्बसार को अपना वेणुवन स्मरण आया। उसकी मुद्रा प्रसन्न हो गयी। तथागत से सादर निवेदन किया

'भन्ते! वेणुवन भिक्षु सघ को मै देता हूँ।'

भगवान् ने विम्बसार का दान स्वीकार किया। आराम स्वीकार किया। मगधराज को धार्मिक कथाओ द्वारा उपदेश दिया। समुत्तेजित किया। तत्पश्चात् आसन त्याग कर उठे। चलते हुए भगवान् बोले :

'आराम ग्रहण करने की अनुज्ञा देता हूँ।'

विम्बसार द्वारा प्रदत्त वेणु वन पहली सम्पत्ति थी। पहला दान था। जिसे भिक्षुसघ ने स्वीकार किया था।

आधार ग्रन्थ .

विनय महावग्ग १ १ १७
महावंश २
DhA 1 72 121,
ViN 1 35, ii 199
S iv 19
SA iii 4
J 1 : 82, 142, 425, 490, 185, 508, ii 38
AA 1 57
PuA 21
Ud 1 9
UdA 74

क्षेमा-खेमा[1]

ये रागरत्ता नुपतन्ति सोतं सयं कत म टकोव जाल।
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा अनपेक्खिनो सब्ब दुक्खं पहाय।

[मकडी जिस प्रकार स्व निर्मित जालो मे स्वयं फँस जाती है उसी प्रकार अपने राग द्वारा निर्मित स्रोत मे मानव फँस जाता है। धीर इस स्रोत को छिन्न कर दु खो को त्यागकर आकाक्षा रहित चल देते है।]

—ध० प० ३४७

क्षेमा का जन्म मद्र देश मे हुआ था। वह शाकल अर्थात् स्यालकोट के राजा की कन्या थी। उसका विवाह मगध राज विम्बसार से हुआ था।

वह रूपवती थी। उसे रूप का घमण्ड था। मद्र देश रूप के लिए प्रसिद्ध है। क्षेमा उस रूप प्रदेश की प्रतिनिधित्व करती थी।

उसमे लावण्य था। उसके सौन्दर्य की ख्याति थी। उसका सुवर्ण वर्ण था। विम्बसार का इस भार्या पर बड़ा स्नेह था।

भगवान् का सभी लोग दर्शन करने गये। परन्तु क्षेमा नही गयी। भौतिक रूप का अभिमान उसे किसी श्रमण के दर्शन की ओर रुचि उत्पन्न नही कर सका।

भगवान् पर विम्बसार की अपूर्व श्रद्धा थी। वह उनके उपदेशो को सुनता था। उनका अभिवादन करता था। वन्दना करता था। प्रदक्षिणा करता था। राजगृह मे भगवान् के विहार के समय जागरूक रहता था। भगवान् की प्रत्येक सुविधाओ का ध्यान रखता था।

भगवान् रूप की निन्दा करते थे। क्षेमा रूपवती थी। अतएव भगवान् के समीप वेणुवन मे नही जाती थी।

---

(१) वौद्धधर्म ग्रन्थो मे नव क्षेमा नाम्नी नारियो का उल्लेख मिलता है। वे सभी एक दूसरे से भिन्न है।

एक दिन गायको द्वारा उसने वेणु वन की अनुपम प्रशसा सुनी। वेणुवन देखने की प्रबल इच्छा हुई। वह वेणुवन गयी।

उस समय भगवान् वहाँ उपस्थित नही थे। राजा विम्बसार की उत्कट इच्छा थी। क्षेमा भगवान् का दर्शन लाभ करे। उसने सेवको को आदेश दिया। वे रानी को भगवान् का दर्शन अवश्य करावे। रानी भगवान् का बिना दर्शन किये लौटना चाहती थी। परन्तु सेवको ने रानी को रोक लिया। विवश रानी वेणुवन मे ठहर गयी।

भगवान् ने क्षमा को निर्विकार दृष्टि से देखा। क्षेमा ने अनुभव किया। उसके अनुपम रूप का भगवान् पर किचित् मात्र प्रभाव नही पड़ा। उसे ठेस लगी। भगवान् के प्रति उसमे उपेक्षा भाव उत्पन्न हुआ। वह गर्व से चमक उठी।

भगवान् मुसकराये। उन्होने योग बल से अत्यन्त लावण्यमयी एक अप्सरा तुल्य कामिनी उपन्न किया। वह भगवान् के पीछे खड़ी होकर पखा डुलाने लगी।

क्षेमा ने उस अनिन्द्य देवोपम सुन्दरी को देखा। उसका गर्व हत हो गया। उसने स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी। भगवान् इतनी सुन्दर स्त्री से घिरे होगे। क्षेमा ने अनुभव किया। उसका सौन्दर्य उस देवागना की सुन्दरता के सम्मुख कुछ नही था। वह अपने को इस योग्य नही पा रही थी कि वहाँ खडी रहती। उसे अपने गर्व पर अपनी मनोभावनाओ पर दु ख हुआ।

वह देवागना युवती थी। प्रौढ़ हुई। वृद्धा हुई। रोगग्रस्त हुई। अशोभनीय हुई। दु ख भार से दबी। व्याधि ने उसे ग्रस लिया। उसकी सुन्दर दन्तपक्ति गिर गयी। केश श्वेत हो गये। शरीर की त्वचा झुर्रियो से भर गयी। अस्थियो से लगे मास झूल गये। वह ताल पखा के साथ भूमि पर गिर पड़ी।

भगवान् की योग शक्ति से क्षेमा ने शरीर का, रूप का, यौवन का, मानव जीवन का चढाव, उतराव, जन्म, युवा, जरा, एव अन्त देखा। वह भय से काँप उठी। उसे तत्काल जगत् की निस्सारता का अनुभव हुआ। विना भगवान् का उपदेश सुने ही उसने जीवन का रहस्य समझ लिया।

क्षेमा भगवान् के चरणो पर गिर पडी। भगवान् ने आतुर अशुचि गाथा कही। वह श्रोतापन्न हुई। धर्म मार्ग पर अग्रसर होती गयी। वह आदर्श भिक्षुणी हुई।

× × ×

मार ने रूप से उसे आकर्षित करने का प्रयास किया। परन्तु उसने उल्लास के साथ कहा

'शरीर व्याधि मन्दिर है। घृणित है। क्षण भगुर है। शारीरिक सुख मे मुझे लज्जा का अनुभव होता है। घृणा होती है। मैने काम तृष्णा का मूलोच्छेद कर दिया है। बर्छी की नोक के समान काम तृष्णा भेद करने वाली है। स्कन्द समूह छुरी की तरह काटने वाले है। जिसे भोग कहा जाता है वह मुझे घृणोत्पादक मालूम होता है। मेरी भोग तृष्णाओ का अवसान हो चुका है। अधकार पुञ्ज नष्ट हो गये है। मार! पापिष्ठ!! तू आज पराजित हो गया है। मैने तेरा अन्त कर दिया है। जो मूढगण तुम्हारे यथार्थ रूप से अनभिज्ञ है वही नक्षत्रो को प्रणाम करते है। तपोवन मे अग्नि पूजा करते है। प्रणाम करते है। वृथा इस प्रकार शुद्धि की आशा करते है। मैने अब सम्यक् सम्बुद्ध की वन्दना की है। शास्ता के शासन का पालन करती हूँ। दु खो से दूर हो गयी हूँ।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक श्राविकाओं तथा उपासक उपासिकाओ की तालिका मे तैतालीसवाँ और भिक्षुणी अग्र श्राविकाओ मे द्वितीय स्थान प्राप्त, मद्रदेश स्यालकोट नगर की राजपुत्री, मगधराज विम्बसार की भार्या, महाप्रज्ञा क्षेमा भिक्षुणी श्राविकाओ मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ

पालि थेरी अपदान २ ८ २८९–२८३

थेरी गाथा ५२

धम्मपद अ० २४ ५

सयुत्त निकाय १६ ३ ४

A i 25, 88, ii 164, iv 347,

Dh V xvii 9

Dh A iv 168, 57, iii 113–19;

J i 15, 16, iii 168, iv 423, v 382, vi 68

AA i 187

Thig 139–44

ThigA 126

Ap ii 453

S iv 374, ii 236

सारिपुत्र मौद्गल्यायन

राजगृह के समीप ही एक उपनगर का उसका नाम उपतिष्य था। रूपश्री ब्राह्मणी। सारिपुत्र की माता थी। वही सारिपुत्र का जन्म हुआ था। कोलित भी एक नगर राजगृह के समीप था। वहाँ मोग्गलि ब्राह्मणी के गर्भ से मौद्गल्यायन का जन्म हुआ था। दोनो ही अपने कुटुम्ब के कर्ता के पुत्र थे। अतएव उनका नाम उपतिस्स तथा कोलित पड गया था।

दोनो का लालन-पालन सुखमय समृद्धि पारिवारिक वातावरण मे हुआ था। उन्होने विद्या तथा कार्य कुशलता मे ख्याति प्राप्त की थी।

एक दिन राजगृह पर्वत शिखर पर एक मेला लगा था। उन्होने वहाँ विशाल उत्साहित, उल्लसित, सुसज्जित जन समुदाय देखा। दोनों की बुद्धि परिपक्व थी। उन्होने उस विशाल जन-समूह को देखकर विचार किया। एक ही शताब्दी के अन्दर सभी काल के मुख मे चले जायँगे। उन्हे वैराग्य हुआ। मुक्ति मार्ग अन्वेषण की कामना उत्पन्न हुई। उन्होने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया।

राजगृह मे सजय[1] परिव्राजक दो सौ पचास परिव्राजको के साथ निवास करता था। सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन[2] उसके सघ मे ब्रह्मचर्य चरण करने लगे।

---

(१) बुद्ध साहित्य मे ७ विभिन्न सजय नामक व्यक्तियो का वर्णन आता है। एक सजय वानमृग मे माली था। दूसरा संजय नगर का राजा था। तीसरा सजय वसन्तारा का पिता था। वसन्तारा जातक मे इसका उल्लेख है। चौथा सजय थेर थे। वह एक धनी श्रावस्ती के ब्राह्मण का पुत्र था। पाँचवाँ सजय आकाश गोत्र था। छठवा सजय विधुर ब्राह्मण का पुत्र था। भद्रकारा का कनिष्ठ भाई था। सम्भव जातक मे इसका उल्लेख मिलता है। सातवाँ सजय वेलत्थि पुत्र था।

(२) **सारिपुत्र मोग्गलायन :** अस्सी अग्रश्रावको का जहाँ वर्णन है उसके अनुसार सारिपुत्र को भगवान् का दक्षिण तथा महामोग्गलायन को वाम पार्श्व कहा गया है। अग्रेजी का प्रचलित मुहावरा दक्षिण तथा वाम वाहु का भाव इसमे आ जाता है।

दोनो परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध हुए थे। पहले जो अमृतत्व की प्राप्ति करेगा वह दूसरे को बताएगा। सजय के सिद्धान्त से उन्हे सन्तोप प्राप्त नही हुआ। वे प्रव्रजित, ब्राह्मणो, साधुओ के बीच घूमने लगे।

एक समय आयुष्मान् अश्वजित, पूर्वाह्न समय भिक्षाटन निमित्त निकले। सुआच्छादित थे। उनके हाथ मे पात्र था। चीवर था। आलोकन विलोकन के साथ, सकोचन और प्रसारण के साथ, निम्न दृष्टि के साथ, सयम के साथ, राजगृह मे भिक्षा हेतु प्रवेश किया। वे सुन्दर थे। सहज ही उनकी ओर आकर्षण होता था।

सारिपुत्र ने देखा, अश्वजित की विमल मूर्ति। उनका शील देखा। उनका सयम देखा। उनका गाम्भीर्य देखा। सारिपुत्र ने समझा। लोक मे जो अर्हत है, किंवा अर्हत मार्ग का अनुशीलन करते है, उनमे अश्वजित एक है। उन्हे इच्छा हुई। उनके पास जाने की। जिज्ञासा करने की।

अश्वजित द्वार-द्वार भिक्षा हेतु विचरण कर रहे थे। भिक्षाचार मे तत्पर थे। अतएव सारिपुत्र ने उस समय कुछ जानना उचित नही समझा। तथापि अश्वजित का अनुगमन करने लगे।

अश्वजित ने भिक्षा मागी। राजगृह के बाहर निकले। अपने निवास स्थान पर पहुँचे। पूर्वाभिमुख हुए। भिक्षा ग्रहण किया। हाथ-मुख प्रक्षालन किया। स्वस्थ बैठ गये।

सारिपुत्र समीप आया। कुशल-मगल पूछा। एक ओर खडा हो गया। अश्वजित की प्रश्न पूर्ण दृष्टि सारिपुत्र पर उठी। सकेत से बोलने के लिए कहा। अश्वजित का आशय समझकर सारिपुत्र ने पूछा

'आवुसो! आपकी इन्द्रियाँ प्रसन्न है। आपका स्वरूप एव वर्ण परिशुद्ध उज्ज्वल है।'

अश्वजित मे प्रशसा सुनकर किसी प्रकार का भाव परिवर्तन नही हुआ। वे पूर्ववत् निर्विकार बैठे रहे। सारिपुत्र ने पुन पूछा

'आवुस! आपके शास्ता कौन है? आप किसके द्वारा प्रव्रजित हुए है? आप किस धर्म का पालन करते है?'

अश्वजित ने शान्त स्वर मे उत्तर दिया

'आवुस! शाक्य कुलोत्पन्न शाक्य पुत्र महाश्रमण है। मेरे शास्ता हैं। उनसे मैंने प्रव्रज्या ली है। उन्ही के धर्म का अनुसरण करता हूँ।'

आयुष्मान !' सारिपुत्र ने पूछा : 'शास्ता का सिद्धान्त क्या है ? शास्ता का वाद क्या है ?'

'आवुस ! मै इस धर्म मै नवीन हूँ। मेरी प्रव्रज्या नवीन है। विस्तार पूर्वक मै धर्म का निरूपण नही कर सकता। यदि सक्षेप मे कहे तो बता दूँ।'

'आवुस ! अपनी इच्छानुसार आप बताइये। मुझे केवल अर्थ से प्रयोजन है। मै विस्तार के साथ सुनकर क्या करूँगा।' सारिपुत्र ने सादर उत्तर दिया।

अश्वजित ने धर्म का पर्याय कहा—'हेतु से उत्पन्न होने वाले जितने दु:खादि है, उनका हेतु तथागत बताते है। उसका निरोध बताते है। यही दु ख महाश्रमण का वाद है।'

एधम्मा हेतुप्पभवा हेतु तेस तथा आह।
तेसं चयो निरोधो एवं वादी महासमनो॥

सारिपुत्र ब्राह्मण थे। राजगृह के समीप उपतिष्य ग्राम के निवासी थे। अश्वजित कीटागिर के निवासी थे। मोद्गल्यायन ने राजगृह के समीप कोलित ग्राम मे जन्म लिया था। उन्हे कोलित भी कहते थे।

× × ×

सारिपुत्र अपने साथी मौद्गल्यायन के पास गया। मौद्गल्यायन ने सारिपुत्र को दूर से आते देखा। सारिपुत्र प्रसन्न था। निर्मल था। उनकी प्रसन्नता देखकर मौद्गल्यायन ने पूछा।

'आवुस ! आपकी इन्द्रियाँ प्रसन्न है। आपका रूप, वर्ण परिशुद्ध है। उज्ज्वल है। क्या अमृत तो नही प्राप्त कर लिया ?'

'आवुस !' सारिपुत्र ने कहा, 'हाँ, अमृत मैने प्राप्त कर लिया है।'

'आवुस ! अमृत की प्राप्ति किस प्रकार हुई ?'

'आवुस ! मैने राजगृह मे अश्वजित भिक्षु को भिक्षाटन करते देखा। प्रभावित हुआ। उनसे उनका धर्म पूछा।'

'आवुस ! क्या धर्म बताया ?'

'आवुस !' सारिपुत्र ने कहा 'हेतु से उत्पन्न जितने धर्म है उनका जो निरोध है वही महाश्रमण वाद है।'

मौद्गल्यायन का विमल चक्षु खुला—'जो कुछ समुदय धर्म है वही सब निरोध धर्म है।' रहस्य समझा। उसने सारिपुत्र से कहा :

'सारिपुत्र! भगवान् के पास चलना चाहिए। वह हमारे शास्ता है। हमारे आश्रित, वहाँ दो सौ पचास परिव्राजक विहार करते है। उनसे भी राय लेना उचित है। उन्हे उनकी इच्छा पर छोड देना चाहिए।'

'आवुस! आप ठीक कहते है।'

'तो चले।'

× × ×

दोनो ने आश्रम के परिव्राजको को एकत्रित किया। उन्हे बताया : 'हम तथागत के पास जाते है। वे हमारे शास्ता है।'

परिव्राजक कुछ समय शान्त रहे। तत्पश्चात् बोले : 'हम यहाँ आप लोगो को देखकर विहार करते है। यदि आप लोग महाश्रमण के पास ब्रह्मचर्य चरण करेंगे तो हम लोग इससे क्यो वञ्चित रहे?'

सारिपुत्र मौद्गल्यायन अपने साथी परिव्राजको के साथ सजय परिव्राजक के पास गया। उनसे निवेदन किया :

'हम तथागत के पास जाते है।'

'क्यो?' सजय ने साश्चर्य पूछा।

'हमारे शास्ता है।'

'ठहरो आवुसो! उनके पास मत जाओ। हम तीनो एक साथ मिलकर इस परिव्राजक मण्डल का नायकत्व करेंगे। तथागत के पास जाने से क्या लाभ?'

'सजय!' हमारा निश्चय अटल है। इस निश्चय से हम हट नही सकते।'

'आवुसो! मत जाओ। यही रहो।'

'नही, हम जायेंगे।'

'नही, आवुसो! मत जाओ। आओ, हम मिलकर इस परिव्राजक मण्डल का नेतृत्व करे।'

'नही आवुस! हम जाते है।'

संजय अकेला रह गया। उसे लोगो ने छोड़ दिया। सारिपुत्र, मौद्ग-

ल्यायन दो सौ पचास परिव्राजको के साथ भगवान् के विहार स्थान वेणुवन पहुँचे।

× × ×

तथागत ने उन्हे दूर से आते देखा। तथागत के समीप भिक्षु सघ बैठा था। उन्होने भिक्षुओ से कहा —

'भिक्षुओ! दो मित्र आ रहे है।'

सबकी आँखे गमनशील परिव्राजक मण्डल पर पडी। तथागत ने कहा

'भिक्षुओ! वह देखो कोलित मौद्गल्यायन है। उसके साथ उपतिष्य सारिपुत्र है।'

भिक्षुगण सारिपुत्र मौद्गल्यायन को देख रहे थे। दोनो अग्रश्रावक श्रद्धापूर्वक भगवान् की ओर बढ रहे थे। तथागत ने कहा

'भिक्षुओ! वह अग्रश्रावक युगल होगे। भद्र युगल होगे।'

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन तथागत के पास पहुँच गये। अभिवादन किया। चरणो की वन्दना की। प्रदक्षिणा की। भगवान् का सकेत पाकर विनम्र वाणी से बोले

'भन्ते! हमे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

'भिक्षुओ! आओ!! धर्म सुआख्यात है। दु ख क्षय के लिए सयम से, उत्तमता से, ब्रह्मचर्य का चरण करो।'

●

आधार ग्रन्थ

थेर गाथा २५९, २६३

विनय पिटक महावग्ग १ १ १८

महाकाश्यप और भद्रा

अप्पमत्तो अयं गन्धो यायं तगरचन्दनी।
यो च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो।

[तगर चन्दन की फैलती सुगन्ध अल्प मात्र है। परन्तु शीलवानो की सुगन्ध देवताओ मे फैलती है।] —ध ५६.

[1]पिप्पली नामक एक माणवक था। मगध के महातीर्थ[2] ग्राम का निवासी था। उसका पिता कपिल[3] ब्राह्मण था। उसकी ज्येष्ठ भार्या से उसने जन्म लिया था। काश्यप की माता का नाम सुमना देवी था। महाकाश्यप के[4] शरीर पर महापुरुषो के बत्तीस लक्षणो मे से सात लक्षण थे।

---

(१) पिप्पली . राजगृह मे एक पिप्पली गुहा भी है। वहाँ महाकाश्यप प्राय निवास करते थे। भगवान् स्वयं पिप्पली गुहा मे बीमार महाकाश्यप को देखने आये थे। सम्भव है पिप्पली माणवक जो महाकाश्यप का पूर्व नाम था निवास करने के कारण पिप्पली गुहा नाम पड गया हो।

पिप्पली माणव, पिप्पली कुमार, पिप्पली ब्राह्मण सब महाकाश्यप के पिप्पली नाम के अपभ्रंश है।

पिप्पली विहार श्रीलंका मे सोण गिरि पाद मे एक विहार है।

(२) महातीर्थ मगध मे एक ब्राह्मण ग्राम था। महाकाश्यप का जन्म स्थान।

(३) कपिल बुद्ध साहित्य मे १२ कपिल नामक व्यक्तियो का उल्लेख है। सभी भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे।

(४) महाकाश्यप : भगवान् बुद्ध की मृत्यु के समय काश्यप उपस्थित नही थे। उन्हे मार्ग मे परिनिर्वाण का समाचार मिला। वह कुशीनारा और पावा के बीच जा रहे थे। एक आजीवक से उन्हे समाचार मिला था। काश्यप भगवान् की चिता के पास आये। तीन वार चिता की प्रदक्षिणा की। उन्होने कन्धा पर से चीवर हटा दिया था। गाथा है कि भगवान् के चरण कमल चिता से बाहर निकल आये थे ताकि काश्यप उनकी अन्तिम पूजा कर सके। पूजा के पश्चात् चरण कमल पुन चिता मे समा गये। चिता से स्वय अग्नि उत्पन्न होकर जलने लगी। अजातशत्रु के हिस्से का भगवान् का धातु काश्यप लेकर राजगृह गये थे।

भद्रा[५] कपिल यानी मद्रदेश[६] की थी। शाकल अर्थात् स्यालकोट नगर की थी। कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण की मुख्य भार्या से जन्म लिया था।

काश्यप ने परिनिर्वाण के समय उपस्थित भिक्षुओ के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि भगवान् के उपदेशो का पाठ किया जाय। संघ ने इसका भार उन्ही को सौपा। वर्षा वास काल मे अर्हतो के अतिरिक्त पाँच सौ भिक्षु सुत्त पाठ के लिए चुने गये। प्रथम सगति के अध्यक्ष काश्यप हुए थे। विनय तथा धर्म्म का शुद्ध पाठ सकलन तथा तैयार किया गया।

महाकाश्यप को मौद्गल्यायन, महाकपिल तथा अनुरुद्ध के समकक्ष रखा जाता है। भिक्षुओ के उपदेशकर्ताओ मे भगवान् अपने जैसा मानते थे। काश्यप ने लम्वी आयु पायी थी। एक मत है कि वे एक सौ वीस वर्ष तक जीवित रहे। जातक मे उनके सम्वन्ध मे अनेक बाते कही गयी है। गग्ग जातक के वे पिता थे। कुरुद्धम्म जातक के ब्राह्मण थे। कक्कारु जातक मे देव थे। इन्द्रिय जातक मे विसर थे। पद कुशल मानव जातक मे पिता थे। तित्तर जातक मे शिक्षक थे। विलार कोशिव जातक मे मातली थे। भिस्स जातक के सात भाइयो मे एक भाई थे। पंचु पोसथ जातक मे शूकर थे। हत्थिपाल जातक मे पुरोहित थे। सम्भव जातक मे विधुर थे। शेखपाल जातक मे वृद्ध संत थे। चुल्लसुतसोम जातक मे कुलवर्धन श्रेष्ठी थे। शुद्ध भोजन जातक मे सुरिय थे। महासुत सोम जातक मे वृक्ष के जीव थे। साम जातक मे पिता थे। खण्डहाल जातक मे सूर वाम गोत्त थे।

महाकाश्यप को भगवान् का वाम कान कहा गया है।

बुद्ध ग्रन्थो मे तीन और महाकाश्यपो का वर्णन है। परन्तु इनसे वे भिन्न थे।

(५) **भद्रा कपिलायनी :** भद्रा कपिलायनी तथा थुल्ल नन्दा दोनो भिक्षुणियाँ बुद्ध जगत् मे आदर्श उपदेशिका हुई है। थुल्ल नन्दा ईर्ष्यालु थी। भद्रा कपिलायनी अत्यन्त प्रतिभाशाली थी। अतएव उसकी प्रतिभा के कारण वह ईर्ष्या रखती थी। एक समय भद्रा ने साकेत मे थुल्ल नन्दा के यहाँ सन्देश भेजा कि क्या वह श्रावस्ती मे उसके ठहरने का प्रवन्ध करा सकती थी ? थुल्ल-नन्दा ने स्थान का प्रबन्ध करने का वचन दिया, परन्तु जव भद्रा श्रावस्ती आयी तो उसके लिये इतनी असुविधायें उत्पन्न कर दो कि उसका श्रावस्ती निवास सुखकर नही हुआ।

(६) **मद्रदेश** बुद्ध साहित्य की मान्यता के अनुसार स्यालकोट अर्थात् साकल

पिप्पली बीस वर्ष का युवक हुआ।[7] कपिला १६ वर्ष की हुई। वे दोनो विवाह के योग्य हो गये थे।

पिप्पली के पिता ने एक दिन उससे कहा—'पुत्र! तुम युवक हुए। वश परम्परा को कायम रखने के लिए विवाह करना उचित है।'

'पित!' पिप्पली ने कहा—'आप माता-पिता जब तक जीवित है, मै आप लोगो की सेवा करूगा।'

'अविवाहित रहकर?' पिता ने चिन्तित स्वर मे पूछा।

'हाँ, पिताजी! आप लोगो के पश्चात् प्रव्रज्या लूगा।'

पिता उदास हो गये। विवाद करना उचित नही समझा। समय बीतता गया। एक दिन पिता ने पुत्र से विवाह की चर्चा पुन की। पुत्र ने पूर्ववत् अस्वीकार किया।

सरलहृदया माता ने विवाह का आग्रह किया। प्राय नित्य कहा करती थी। रात-दिन विवाह चर्चा होती देखकर पिप्पली ने एक उपाय निकाला।

उसने एक हजार स्वर्ण मुद्रा (निष्क) से एक युवती की सर्वागीण सुन्दर प्रतिमा बनवायी। उसे सुन्दर वस्त्रो से सजाया। अलकारो से अलकृत किया। पुष्पो से शृगार किया।

माता ने पुन एक दिन विवाह की चर्चा उठायी। पिप्पली ने मुस-करा कर कहा, 'माँ! मैने एक रूपवती युवती चुनी है। उस जैसी युवती से विवाह करूगा।'

माता प्रसन्न हो गयी। बोली—

'कहाँ है?'

'चलो दिखाऊ।'

मद्रदेश की राजधानी था। कुश जातक मे उल्लेख है कि कुशवती के राजा इक्ष्वाकु के पुत्र कुश से मद्र राजकन्या प्रभावती का विवाह हुआ था।

(७) साकल, सागल : वर्तमान स्यालकोट राजा मिलिन्द की राजधानी था। मद्र राजाओ की यह राजधानी था। क्षेमा थेरी तथा भद्रा कपिलायनी की यह जन्म भूमि था। रानी अनोजा भी यही पैदा हुई थी। अनुमान किया जाता है कि विनय पिटक मे उल्लिखित दल्हिक का भी यही जन्म-स्थान था।

पिप्पली ने माता को स्वर्ण प्रतिमा दिखायी। प्रतिमा की सुन्दरता देखकर माँ मुग्ध हो गयी। पिप्पली ने कहा—

'माँ ! ऐसी बहू मिल जाय तो विवाह रच देना।'

पिप्पली की माँ पण्डिता थी. उसने समझ लिया। उसका पुत्र पुण्यशाली था। पूर्व जन्म मे यथेष्ट दान दिया था। उसने एकाकी पुण्य नही किया होगा। उसके साथ सुवर्ण वर्ण पत्नी भी रही होगी। माता ने कहा—'अच्छा ऐसी सुघर कन्या से तुम्हारा विवाह होगा।'

पिप्पली माता का स्नेह देखकर द्रवित हो गया।

पिप्पली की माता ने ब्राह्मणो को आमन्त्रित किया। उन्हे प्रतिमा दिखायी। उनसे बोली—

'इस रूप की कन्या से पिप्पली का विवाह करना चाहती हूँ।'

'प्रतिमा सुन्दर है।' ब्राह्मणो ने प्रतिमा को नख से शिख तक देखते हुए उत्तर दिया।

'इस प्रतिमा के अनुरूप कन्या खोजकर सूचना दीजिए। जहाँ प्रतिमानुरूप कन्या मिले वहाँ स्वर्ण प्रतिमा प्रतिभू स्वरूप रख देना। वही मे पिप्पली का विवाह करूँगी।'

'जैसी आज्ञा।'

'हाँ ! जाति, गोत्र, भोग मे हमारे समान घर होना चाहिए।'

'ऐसा ही होगा।' ब्राह्मणो ने सादर उत्तर दिया।

पिप्पली की माता ने सुवर्ण मण्डित रथ मँगाया। उस पर प्रतिमा रखी गयी। पर्यटन के व्यय आदि का सुप्रबन्ध किया। ब्राह्मणो को रथ पर बैठाया। प्रस्थान करते समय बोली—

'मेरी बात स्मरण है ?'

'हाँ देवी ! यह अब हमारा काम है।'

रथ कन्या अन्वेषण मे निकल पडा।

× × ×

रथ चक्कर लगाता रहा। ब्राह्मणो ने विचार किया। मद्र देश स्त्रियो का आगार है वहाँ चला जाय।

रथ का मुख मद्रदेश की ओर मुडा। साकल नगर में रथ पहुँचा। सब प्रकार का सुपास देखकर जलाशय के तट पर सुवर्ण प्रतिमा रख दी। वे सब कुछ हटकर एक ओर बैठ गये।

सम्पन्न कुटुम्ब की थी। भद्रा धात्री के साथ जलाशय पर आयी। धात्री ने उसे स्नान कराया। अलकृत किया। श्रीगर्भ मे उसे बैठा दिया। स्वय स्नान करने गयी।

तट पर उसने सुवर्ण प्रतिमा देखी। उसे भ्रम हुआ। भद्रा तट पर लौट आयी थी। वहाँ बैठी थी। वह क्रोधित हुई। बोली—'तू कितनी विनय शून्य है। वहाँ खडी क्या कर रही है।'

कहते हुए उसने प्रतिमा की पीठ पर चपत लगाया। उसका हाथ झन्ना उठा। उसने जाना। प्रतिमा स्वर्णमयी है। प्रतिमा को ऊपर से नीचे तक देखा। खिन्न होती बोली 'ऊंह! मैने समझा था भद्रा होगी। यह तो मेरी भद्रा की वस्त्रवाहक दासी तुल्य भी नही है।'

मुख बिचका कर चलने लगी। ब्राह्मणो ने सब घटना देखी। उसे घेर लिया। सप्रेम पूछा—

'क्या आपके स्वामी की पुत्री का ऐसा ही रूप है?'

'ऊह! धात्री ने मुँह मटका कर कहा, 'मेरी स्वामी की पुत्री इससे सौ गुना, हजार गुना, लाख गुना सुन्दर है। यदि वह बारह हाथ विस्तृत कोठरी मे बैठ जाय तो उसकी कान्ति से कोठरी प्रकाशमय हो जाती है।'

'आश्चर्य! क्या सचमुच ऐसा है!'

'हाँ! विश्वास न हो तो चल कर देख लो।'

'हम चलेगे।'

ब्राह्मणो ने सुवर्ण प्रतिमा रथ पर रख ली। कौशिक गोत्र ब्राह्मण के निवास-स्थान पर पहुँचे। धात्री ने उनके आगमन की सूचना ब्राह्मण को दी।

ब्राह्मण वाहर निकला। आगन्तुक ब्राह्मणो का सत्कार किया। आस्वस्थ होने वर पूछा·

'आप लोगो का आगमन किस पवित्र स्थान से हो रहा है?'

'हम लोग मगध से आ रहे है।'

'आपका शुभ नगर—?'

'महातीर्थ ग्राम के निवासी है।'

'ब्रह्मन्! आपके आगमन का प्रयोजन ?'

'कपिल ब्राह्मण के गृह से हम आ रहे है। आपने सुवर्ण प्रतिमा देखी है। कपिल का पुत्र पिप्पल ने कहा था। वह इसी अनुरूप मिलने वाली कन्या से विवाह करेगा।'

'अच्छा ?'—

'हाँ, ब्रह्मन्!' वह आप जैसा ही समृद्धिशाली है। कुलीन है। वैभव आपके समान है। जाति आपके समान है। गोत्र भी ठीक है। समान ही समान मे मिलता है। कितना उत्तम होगा। यदि दोनो कुल सम्बन्ध सूत्र से वँध जॉय।'

ब्राह्मणो की बात ध्यान पूर्वक साकलवासी ब्राह्मण ने सुनी। उत्तर नही दिया। मगध ब्राह्मणो ने कहा .

'हमे आदेश दिया गया है। सम्बन्ध स्वीकृत होने पर यह स्वर्ण प्रतिमा प्रतिभू स्वरूप रख दूँ।'

कौशिक ने कुछ विचार कर कहा

'ब्राह्मण! सम्बन्ध करणीय प्रतीत होता है।'

ब्राह्मण प्रसन्न हो गये। उन्होने अभ्युत्थान कर नव सम्बन्धी का स्वागत किया। अभिनन्दन किया। वन्दना की।

मगध ब्राह्मणो ने कपिल ब्राह्मण को सन्देश भेजा—'कन्या प्राप्त हो गयी है। आगे जो कुछ करना हो कीजिये।'

× × ×

कपिल को पत्र मिला। उन्होने पत्नी को दिखाया। पत्नी के हर्ष की सीमा न रही। उसने पुत्र का मस्तक सूंघा। पीठ पर हाथ फेरती हुई स्नेह प्रदर्शित किया। माणवक ने उपाय निष्फल होता देखा। घर मे सब उत्साहित थे। प्रसन्न थे। वह उदास हो गया। साकल से आया पत्र पढा। दु खी हो गया। उसका तीर खाली गया।

माणवक ने एक पत्र भद्रा को लिखा—'भद्रा! अपने जाति के अनुरूप, अपने गोत्र के अनुरूप, अपने कुल के अनुरूप तुम्हारे योग्य गृह

मिलना चाहिए। उसे प्राप्त कर सुखी हो। मैने प्रव्रजित होने का निश्चय किया है। पत्र लिख रहा हूँ। पश्चात्ताप मत करना। दुःख मत करना। पहले से बात कह देना ठीक होता है।'

भद्रा ने भी अपनी धात्री से सब समाचार सुना। वह विवाह नही करना चाहती थी। वह भी प्रव्रज्या की इच्छुक थी। एकान्त मे जा बैठी। कुछ विचार के बाद निश्चय किया। माणवक को पत्र लिख देना चाहिए। विवाह के पूर्व वास्तविक वस्तुस्थिति का ज्ञान करा देना उसने उचित समझा।

भद्रा ने पत्र लिखा—'आर्य पुत्र! समान जाति, समान गोत्र, समान कुल मे भोगोपयुक्त गृहवास आपको प्राप्त हो। मेरा निश्चय है। मै प्रव्रज्या लूँगी। आपको दुःख न हो। अतएव यह पत्र लिख दिया है।'

दोनो ओर से पत्र लेकर पत्र-वाहक साकल तथा मगध के लिए रवाना हुए।

× × ×

मार्ग मे दोनो पत्रवाहक कही मिले। एक ने दूसरे से पूछा :

'मित्र! कहाँ जा रहे हो?'

'मगध'

'क्या प्रयोजन है?'

'पत्र ले जा रहा हूँ।'

'किसका—भद्रा का?'

'किसके यहाँ।' मगध पत्रवाहक चकित हुआ।

'महातीर्थ ग्रामनिवासी पिप्पली के यहाँ।'

'ओह—!' उसके विस्फारित नेत्र साकल दूत पर फैल गये। वह किंकर्त्तव्य विमूढ हो गया। साकलीय का पत्रवाहक कुछ चकित हुआ। उसने पूछा —

'आपका गन्तव्य स्थान कहाँ है?'

'साकल जा रहा हूँ।'

'किसके यहाँ?'

'कौशिक ब्राह्मण के यहाँ।'

'क्यों ?'

'पिप्पली का पत्र भद्रा को देने।'

दोनो दूत चकित हुए। पुन प्रसन्न हुए। उन्हे कौतूहल हुआ। बिना विवाह हुए दो युवा प्राणियों ने एक दूसरे को क्या लिखा है। जानने की जिज्ञासा हुई। पति-पत्नी की प्रेमलीला देखकर इच्छा हुई पत्र पढने की। दोनो ने एक दूसरे को देखा। दोनो मुसकराए। मन्त्रणा किया। पत्र पढा जाय।

दोनो ने एक दूसरे का पत्र पढा। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। दोनो ने प्रव्रजित होने की बात लिखी थी। उनके कौतुक पर उन्हे हँसी आयी। पूर्व पत्रो को फाडकर फेंक दिया। उनके स्थान पर दूसरा विवाहानुकूल पत्र लिखकर रख लिया। प्रसन्न दोनो ने अपने गन्तव्य स्थान की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

इच्छा न होने पर भी माणवक तथा भद्रा का विवाह हो गया। उन्हे चाहे सन्तोष न हुआ हो परन्तु उनके कुटुम्बी तथा परिजनो को सन्तोष हुआ। परम सन्तोप हुआ माणवक की माता को। उसके सर का जैसे एक भार उतर गया। प्रसन्नतापूर्वक वधू को सुखी रहने के लिए जो कुछ आयोजन हो सकता था किया।

किन्तु नवविवाहित पति-पत्नी की विचित्र अवस्था थी। वे काम की ओर प्रवृत न हो सके। उन्हे रूप आकर्षित नही कर सका। वे हृदय से परिव्राजक थे। ब्रह्मचारी थे। शरीर से भी ब्रह्मचारी रहना चाहते थे।

सुहाग रात थी। माणवक ने एक पुष्पमाला बनवायी। उसके मित्रो ने परिहास किया। माला उसके प्रिया के हृदयस्थल की शोभा बढायेगी। माणवक नीरव था।

भद्रा ने भी एक माला बनवाई। उसकी सखियो ने प्रणय का उत्तम लक्षण देखा। मिलन की उत्कट कामना समझी। वे प्रसन्न हुई। विनोद मे भद्रा को बहुत कुछ कहा। परन्तु भद्रा नीरव थी।

शयन-कक्ष सजा था। पुष्प गन्ध से भरा था। सुगन्धित तैल दीप से प्रकाशित था। मालाओ से शय्या गुथ गयी थी। सुगन्धित जल

दिवालो पर छिडके गये थे। उज्ज्वल शय्या स्थल किसी की आशा मे चारों ओर प्रफुल्लित पुष्पो से घिरा नीरव था।

माणवक ने चुपचाप शयन-गृह मे प्रवेश किया। माला निकाली। शय्या के मध्य भाग मे एक छोर से दूसरे छोर तक सीधी रेखा तुल्य फैला दी। उसने एक निर्भय दृष्टि शय्या पर डाली। नीरव हो उठा। कुछ दृढ निश्चय किया। शयन गृह का द्वार लगाया। बाहर चला गया।

भद्रा आयी। उसने माला निकाली। उसे शय्या मध्य फैली माला देखकर आश्चर्य हुआ। उसने फैली माला के बगल मे अपनी माला फैला दी। शय्या जैसे दो पुष्प मालाओ के मिलन की स्थली हो गयी। भद्रा ने सुसज्जित शयन-गृह देखा। कुछ विचार किया। गम्भीर हो गयी। चुपचाप लौटी। उसकी नीरवता देखकर दीपशिखा स्थिर हो गयी थी।

माता ने दोनो को रात्रि मे भोजन कराया। उसकी प्रसन्नता की सीमा न थी। वह सुन्दर पुत्र और वधू को देखकर प्रसन्नता से फूली न समाती थी। उसकी आँखो मे आनन्दाश्रु आ जाते थे। वे जब शयन-गृह मे प्रवेश किये। माँ ने आँसू पोछ लिये। अपने इष्टदेव को अचल उठाकर स्मरण किया।

शयन-गृह मे माणवक ने प्रथम प्रवेश किया। भद्रा उनकी अनुगामिनी थी। दोनो चुप थे। दोनो मे काम उत्साह नही था। दोनो शान्त थे। उनकी शान्ति, उनकी गम्भीरता देखकर शयन-गृह के पुष्प जैसे शीतल हो गये। दीपशिखा की उष्णता शीतल हो गयी। सारा वायु-मण्डल शीतल हो गया।

माणवक दक्षिण पार्श्व से शय्यारोहण किया। भद्रा वाम पार्श्व से शय्यारूढ हुई। दोनो मालाओ को अपनी सीमा मान कर एक दूसरे से दूर लेट गये। किसी ने किसी के शरीर का स्पर्श नही किया। उनके मिलन का प्रतिनिधित्व उनकी शय्या मध्य रखी मालाएँ जैसे करने लगी।

शरीर स्पर्श भय से प्रतिदिन प्राय वे रात्रि जागकर बिता देते थे। वार्तालाप नही करते थे। दिन मे परस्पर परिहास नही करते थे। एक साथ कभी एकान्त मे नही मिलते थे। नही रहते थे।

वे कामभाव से अलिप्त थे। सासारिक सुख से अलिप्त थे। उनका मन प्रव्रज्या मे लगा था। उनका मन ब्रह्मचर्य मे रमा था।

समय बीतता गया ।

× × ×

काल का शीतल हाथ सबको शीतल करता है । समय आया । माणवक के माता-पिता का देहावसान हो गया । माणवक अपनी अपार सम्पत्ति का स्वामी था ।

साठ तडाक तालो के अन्दर स्वर्ण, रजत एव रत्नो से भरे थे। उसकी कृषि १२ योजन तक विस्तृत थी । अनुराधपुर जैसे आदि दासो के १४ ग्राम उनके पास थे । हाथियो के १४ झुण्ड थे । अश्वो के १४ झुण्ड थे । रथो के १४ झुण्ड थे । उसे सभी महान् ऐश्वर्यशाली, महान् भाग्यशाली, महान् सम्पत्ति शाली और महान् सुखी मानते थे ।

किसी समय वह सुअलकृत अश्व पर आरूढ हुआ । अपने खेतो पर गया । हल चल रहा था । मेड पर खडा हो गया । हल द्वारा विदारित भूमि से कीडे-मकोडे निकल रहे थे । उन्हे खाने के लिए कौए उन पर मडराते थे । झपटते थे । चचु मे दबाकर उड जाते । प्रसन्नता प्रकट करते थे ।

समीपस्थ वृक्ष पर वे बैठ जाते । निरीह कीडो को एक चित्त होकर खाते । खाकर चचु डैनो मे पोछते । पुन उडते आते । कीडो पर टूटते, उन्हे लेकर उड जाते ।

एक प्राणी की हत्या होती थी । क्रूरतापूर्वक होती थी । बिना किसी अपराध के होती थी । और दूसरा प्राणी अपनी हिंस्र वृत्ति की तृप्ति मे उसकी जीवन लीला समाप्त करता था । प्रसन्न होता था । उत्सव मनाता था ।

'तात !' माणवक ने अपने कर्मचारियो से पूछा, 'पक्षी क्या खाते है ।'

'आर्य !' केचुओ को खा रहे है ।'

'पक्षी हिसा करते है ।'

'हॉ'

'पाप करते है ।'

'हॉ ।'

'उनका पाप किसे लगेगा बन्धु ?'

'आर्य ! इस पाप के भागी आप होगे ।'

माणवक गम्भीर हो गया। उसे धक्का लगा। वह हतप्रभ हो गया। उसकी मुद्रा अत्यन्त विचारशील हो गयी। उसने विचार किया—'ओह! मै अनजाने इनके पाप का भागी होता हूँ। खेत मेरा है। मेरे लिये जोता जाता है। स्वामी होने के कारण मै इस पाप का भागी बन रहा हूँ।'

'आह! मेरे पास सतासी करोड धन है? वह मेरा क्या कर सकेगे? क्या वे मुझे इस पाप से मुक्त कर सकेगे? तालो मे बन्द १४ तडाक मेरी क्या सहायता करेगे? क्या वे मुझे इस पाप से बचा लेगे? बारह योजन की यह मेरी खेती क्या करेगी। क्या वह मुझे इन पापो से बचा लेगी। चौदह दास ग्राम मेरा क्या करेगे? क्या मुझे इस पाप से बचा लेगे?'

उसे उत्तर स्वत मिल रहे थे। उसने निश्चय किया—'क्यो न मै इन्हे भद्रा कपिलायनी को सौप दूँ। इस पाप से मुक्त हो जाऊँ।'

माणवक दृढ निश्चय कर खेत से लौटा।

× × ×

भद्रा कपिलायनी ने पति को खेत पर जाते देखा। वह भी गृहस्थी के काम मे लग गयी।

प्रासाद मे उसने तीन घट तिल सूखने के लिए फैला दिया था। तिल मे कीटाणु थे। उन्हे देखकर पक्षियाँ उनके पास आयी। उन्हे चुगने लगी। बडे कीडे छोटे कीडो को खाने लगे थे। भद्रा अपनी दासियो तथा धात्रियो के साथ वहाँ बैठी थी। जीव का जीव द्वारा भक्षण होना देख उसे आश्चर्य हुआ। वह स्तब्ध हो गयी। उसने अपनी धात्रियो से पूछा

'अम्म! पक्षियाँ क्या कर रही है।'

'आर्ये! प्राणी स्वय प्राणी का भक्षण कर रहा है।'

'इनकी हत्या का पाप किसको लगेगा।'

'आपको आर्ये।'

'क्यो?'

'वह आपके लिए हो रहा हे।'

'और—'

'आप इसकी स्वामी है।'

भद्रा चिन्तित हुई। बिना प्राण हत्या किये, वह हत्या की भागी बन रही थी। बिना पाप किये, पाप की भागी बन रही थी। बिना अपराध किये, अपराधिनी बन रही थी। उसे विरक्ति हो गयी। प्राणी सहार करता था प्राणी का। यह विचित्र प्रवचना थी। विचित्र जगत् की गति थी।

भद्रा ने विचार किया। उसे जीवनयापन के लिए किस वस्तु की आवश्यकता है। उसके काम आता है केवल चार हाथ वस्त्र तन ढँकने के लिए। उसके काम आता है केवल एक नाली भर भात पेट भरने के लिए। यदि इनकी हत्या का पाप उसे लगता था, तो उसका प्रायश्चित्त सहस्रो वर्षो मे शायद न हो सकेगा।

भद्रा ने निश्चय किया—आर्य पुत्र को सब कुछ सौप प्रव्रज्या लेगी। इन पापो से बचेगी।

भद्रा की गम्भीर मुद्रा देखकर धात्रियाँ और दासियॉ उदास हो गयी। किन्तु भद्रा के मुख-मण्डल पर अपूर्व तेज था।

खेत से लौटकर माणवक आया। वह अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर था। उसने स्नान किया। नवीन वस्त्र धारण किया। अन्त पुर मे प्रवेश किया। मूल्यवान शय्या पर बेठ गया।

उसके लिये चक्रवर्ती राजाओ जैसा सुस्वादु भोजन परोसा गया। पति-पत्नी ने भोजन किया। भोजनोपरान्त व बातचीत करने की मुद्रा मे हुए। परिचारिकाएँ हट गयी। वे एकान्त मे अनुकूल स्थान पर जाकर बैठ गये। माणवक ने भद्रा से पूछा .

'भद्रे ! ससुराल आते समय अपने साथ कितनो सम्पत्ति लाई थी?'

'पचपन हजार गाड़ी धन लाई थी। आर्य !

'अच्छा, इस घर की समस्त सम्पत्ति मै तुम्हे देता हूँ। तुम इनका सुखपूर्वक उपभोग करो।'

'और आप !'

'मै प्रव्रजित हूँगा।'

भद्रा ने प्रफुल्लित नेत्रो से कहा . 'मै आपके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। मै भी प्रव्रजित हूँगी।'

माणवक ने देखा। भद्रा के मुख पर अपूर्व तेज था। वह चैतन्य थी। भद्रा बोली :

'तीनो लोक भस्म होती फूस की झोपड़ी की तरह लगते हैं। मैं प्रव्रजित हूँगी।'

× × ×

मृत्तिका पात्र और वस्त्र बाजार से खरीद कर मँगाया गया।

पति ने पत्नी के घुँघराले लम्बे सुगन्धित केशो को काटा। भद्रा ने पति के बालो को काटा। वे बोले—'विश्व के अर्हतो को लक्ष्य कर हमारी यह प्रव्रज्या है।'

वे खडे हो गये। एक ने दूसरे को अन्तिम बार देखा। वह दृष्टि निर्मल थी। विमल थी। उनमे पति पत्नी का भाव तिरोहित हो चुका था। उनमे काम नही था। उनमे वासना नही थी। उनमे कामना नही थी। उनके पुरातन सस्कार मलिन होकर गिर गये थे। वे इस समय केवल मानव थे। विरक्त थे। ससार त्यागी थे।

उन्होने कन्धो से झोली लटकायी। पति ने पत्नी की झोली में पात्र रख दिया। पत्नी ने पति की झोली मे पात्र रखा।

वे दोनो भिक्षुक थे। सम्पदा उनकी पीछे रह गयी। वे सम्पदा हेतु नही थे। सम्पदा उनकी नही थी।

उनमे आकर्षण नही रह गया था। वे उनके साथ जाने वाले नही थे। जो जहाँ थे वही रह जाने वाले थे। और दो भिक्षु और भिक्षुणी प्रासाद से उतरे भिक्षा-पात्र के साथ।

वे अपने भवन से निकले। उन्हें निकलते कोई परिचायक अथवा सेवक देख नही सका।

× × ×

वे ब्राह्मण ग्राम से निकलकर दासो के ग्राम-द्वार से जाने लगे। उन्हे दास ग्रामवासियो ने पहचान लिया। उनके चरणो पर गिर पडे। स्त्रियाँ भद्रा के केशविहीन मुड मस्तक देखकर विलखने लगी। रोने लगी। उनके अचल तरल नेत्रो और कपोलो से लगने लगे। कितनो की हिचकी बँध गयी।

उनके हाथो मे रत्न जटित पात्र के स्थान पर मृत्तिका पात्र था।

यह परिवर्तन देखकर ग्रामीण रो पडे। वे धीरे-धीरे अटपटे मार्ग से बढ रहे थे।

उनकी प्रव्रज्या, उनके आगमन का समाचार विद्युत् की तरह चारो ओर फैल गया था। ग्रामीणो ने उन पर पुष्प वर्षा की। लाजवर्षा की। उनके पद-चिह्नों की रजाणु श्रद्धाभक्ति पूर्वक उठाकर माताएँ शिशुओ के मस्तक पर लगाने लगी।

भद्रा के चलने की आदत नही थी। वह कभी-कभी ठीक से चलती थी। कभी ठोकर खाती। गिरती थी। उसे माणवक सहारा अब नही देता था। दोनो को निरावलम्ब अपने बूते इस जगत् मे विचरना था। उनकी इस स्थिति पर कोई ऑसू नही रोक सका। कोई ऐसा पत्थर हृदय नही था जो न पसीज गया हो। कोई ऐसा भोगी नही था जो इस भोग के इस त्याग को देखकर सिहर न उठा हो। सबकी आँखे बिछी थी उनके मार्ग मे। सबकी श्रद्धा गुथ गयी थी उनके चीवर मे। सबकी त्यागवृत्ति छलछला उठी थी उनके हाथो मे देखकर मृत्तिका-पात्र।

ग्रामीणो ने आर्तनाद के साथ कहा—'आर्य ! हम अनाथ हो रहे है।'

'भणो !' माणवक ने कहा, 'हमने तीनो भुवना को जलती हुई फूस की झोपडी की तरह छोडकर प्रव्रज्या ली है। यदि आप मेरे एक-एक को दासता से मुक्त करे तो सौ वर्ष से भी अधिक समय लग जायेगा। आप लोग स्वय अपने शिरो को धोकर दास-बन्धन से मुक्त हो जाइये।

ग्रामीण सिसक रहे थे। और वे दोनो बढ रहे थे आगे।

× × ×

माणवक ने देखा लोगो की दृष्टियाँ उस पर तथा भद्रा पर पडती थी। दृष्टियाँ उसे ठण्ढी लगती थी। उनमे शंका झलकती थी। उनमे उल्लासपूर्ण अभ्यर्थना की भावना नही होती। जिसकी अपेक्षा की जा सकती थी।

माणवक ने विचार किया

'सम्पूर्ण जम्बू द्वीप से भी मूल्यवान भद्रा है। वह मेरे पीछे-पीछे चल रही है। लोग समझेगे। उस प्रव्रज्या लेने के पश्चात् भी मोह हमे विलग करने मे असमर्थ हुआ है। हमने प्रवचना की है। आह ! यह कार्य अशोभनीय है। किसी का मन इस प्रकार की पाप भावना से दूषित होगा

तो वह नरकगामी होगा। उसके भागी हम होगे। अतएव भद्रा का त्याग आवश्यक है।'

माणवक ने पीछे मुडकर देखा। भद्रा नतमस्तक भिक्षुणी तुल्य अनुकरण कर रही थी। विवाहित जीवन मे निश्शक भाव से अनुकरण किया था। भिक्षुणी होने पर भी कर रही थी। उसके मुखमण्डल पर माणवक की दृष्टि पडी। वह शान्त थी। शिथिल थी। उसके कोमल गात्र कुम्हला गये थे। पसीना से भर रहे थे। मुडे मस्तक पर पसीना की बूँदे चुकचुका आयी थी। चलने मे कष्ट हो रहा था। माणवक का हृदय करुणा से भर गया।

किन्तु उसने सयम का आश्रय लिया। अपनी मनोवेदना, मनोविकार पर काबू पाने का प्रयास कर रहा था। धीरे-धीरे पग बढा रहा था। भद्रा को चलने मे कष्ट न हो। वह कहना चाहता था। जिसे वह शीघ्र कह नही सकता था।

चलते-चलते वे पहुँच गये जहाँ दो मार्ग एक दूसरे के विपरीत मे फूटे थे। दो पृथक् मार्ग हो गये थे। माणवक को दिशा ज्ञान हुआ। मार्ग दर्शन हुआ। वह ठहर गया। उसने भद्रा की ओर देखा। भद्रा ने उसकी ओर देखा। माणवक ने दृष्टि हटा ली। दूसरी ओर देखने लगा। भद्रा की भी दृष्टि नत हो गयी। वह स्थिर खडी विशिखा पर थी।

माणवक ने एक पथ की ओर देखा। वह बहुत दूर जा रहा था। क्षितिज मे लोप हो रहा था। उसे देखते हुए माणवक ने भद्रा को सम्बोधन किया

'भद्रे ! तुम स्त्री हो। तुम मुझ मुक्त पुरुष के पीछे चल रही हो। लोग तुम्हे मेरा अनुकरण करते देख कहेगे—

'प्रव्रज्या लेने पर भी, हम विलग नही हो सके है। दु:ख स्वरूप स्नेह बन्धन को तोड नही सके है। अनेक प्रकार की दूषित भावनाएँ लोगो मे उत्पन्न होगी। उन्हे पाप लगेगा। नरकगामी होगे। अपवाद घर करता जायेगा।'

'क्या आज्ञा है। भद्रा बात की भूमिका समझ गयी। उसका हृदय धक्-धक् करने लगा। वह मानवीय दुर्बलता से दबने लगी।

'यह दो मार्ग है। दो तरफ जाते है। एक से तुम जाओ और एक को मै पकडता हूँ।' माणवक ने अपनी समस्त शक्ति एकत्रित कर कटु प्रस्ताव रखा। उसका स्वर मृदु किन्तु दृढ था।

विनत भद्रा ने मृदु स्वर से उत्तर दिया—'आर्य! जानती हूँ। प्रव्रजितो के मार्ग मे स्त्री बाधा होती है। हममे दोप देखा जायेगा। अदोषी होने पर भी जगत् हमे दोपयुक्त देखेगा। मै एक मार्ग से गमन करती हूँ। आप दूसरे मार्ग से पधारिये। भद्रा अपने विकारो पर नियत्रण करती हुई बोली। कहने के साथ ही उसकी मानवीय निर्बल भावना लुप्त हो गयी। एक प्रश्न था। उसे हल करना था। उसका हल निकाल कर उसने जैसे अनिर्वचनीय शान्ति का अनुभव किया। सन्तोष का अनुभव किया।

माणवक नीरव खडा था। उसने भद्रा की बात सुनते ही एक मार्ग की ओर मुख फेर लिया।

भद्रा ने माणवक की तीन बार प्रदक्षिणा की। चार स्थानों मे पॉच अगो से वन्दना किया। उसकी उंगलियो के दसो नाखून समुज्ज्वल अजलि मे बँध गये।

उसने माणवक के चरण-कमलो की ओर देखते हुए कहा '

'अनन्त काल से हमारा आपका चलता आया यह सग आज छूटेगा।'

भद्रा की वाणी सयत थी। मन निर्मल था। उसने सयम कर लिया था। उसमे विकार उत्पन्न नही हो सके। वह पुन बोली

'आप दक्षिण जाति के है। इस दक्षिण मार्ग का अनुसरण कीजिये। हम महिलाएँ वाम जाति की है। अतएव हमारा मार्ग वाम दिशा का है। मै उस मार्ग का अनुसरण करती हूँ।'

भद्रा ने बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये, बिना माणवक की ओर देखे वाम दिशा की ओर मुख फेर लिया। वह शनै शनै चली। उस कोमलागी के शरीर पर सग्रह नाम के लिए केवल चीवर था। मृत्तिका पात्र था। गुण उसका शृगार, त्याग उसका आभूषण। ब्रह्मचर्य उसके शरीर के अगराग बनने लगे। विशाल ओर-छोर हीन जगत् उसका मन्दिर बना। प्रशस्त भूमि उसकी शय्या थी। प्रकृति की देन जल उसका पेय बना। पक्षियो का कलरव उसका सगीत बना। प्राणियो का सयोग-

वियोग बन्धु-बान्धवो का मिलन बने । यह विश्व की थी । विश्व उसका था । उसका सीमित कृत्रिम जीवन प्रकृति मे असीमित जीवन बन गया । वह सब प्रकार के बन्धनो से मुक्त हो गयी थी । वह किसी के बल की, किसी के शक्ति की, किसी के साथ की आकाक्षी नही थी । उसे केवल अपना अवलम्ब स्वय होना था ।

माणवक ने भद्रा को जाते हुए देखा । धूल मे पडते उसके एक के पश्चात् दूसरे चरण चिह्नो को देखा । एक बार देखा । दूसरी बार देखा । तीसरी बार देखा । उसका पीठ प्रदेश उसकी ओर था । उस पर दृष्टि पडती लौट आती थी । वह अपने आप मे लीन थी । वह भूल चुकी थी । उसका पति वहाँ था ।

माणवक ने गम्भीर गगन की ओर देखा । गम्भीर प्रश्वास का परित्याग किया । वह देखता रहा । पथ पर पडे भद्रा के चरण चिह्न । मन्द समीर मे धूल उडने लगी । कोमल पद-चिह्न मिटने लगे । माणवक ने दूसरा मार्ग पकडा ।

उनके इस महान् गुण—इस महान् त्याग को देखकर पृथ्वी काँप उठी । भूकम्प आया तथापि वे निश्चिन्त । जैसे कुछ हुआ नही था । चलते रहे ।

× × ×

भगवान् राजगृह मे थे । वेणुवन महाविहार की गन्धकुटी थी । तथागत वहाँ बैठे थे । भूकम्प आया । लोक चकित हुए । भगवान् शान्त बैठे थे । उन्होने दिव्य दृष्टि से दोनो मार्गो पर भिन्न दिशा मे जाते हुए पिप्पली एव भद्रा को देखा । उन्हे ज्ञान हुआ । अपार सम्पत्ति त्यागकर भद्रा कापिलायनी तथा माणवक ने प्रव्रज्या ली थी । तथागत ने उनके संग्रह का निश्चय किया ।

तथागत स्वय गन्धकुटी के बाहर निकले । पात्र लिया, चीवर लिया । वहाँ महास्थविर थे । किसी से कुछ नही कहा । वे तीन गव्यूति मार्ग आगे गये । उसी मार्ग द्वारा राजगृह और नालन्दा के मध्य से माणवक आ रहा था ।

भगवान् बहुपुत्रक वट वृक्ष की छाया मे आये । वहाँ आसन लगाकर बैठ गये ।

महाकाश्यप ने दूर से देखा । वटवृक्ष के नीचे शास्ता बैठे थे । उनको

लक्ष्य कर उसने प्रव्रज्या ली थी। वह नतमस्तक धीरे-धीरे तथागत के समीप आया। तीन स्थानो मे उसने शास्ता की वन्दना की। उसने करबद्ध निवेदन किया .

'तथागत ! आप शास्ता है। मै आपका श्रावक हूँ।'

अभय मुद्रा मे भगवान् के हाथ उठ गये। माणवक उनके चरणो के समीप आ गया। तथागत ने उसे आसन ग्रहण करने के लिए संकेत किया। उसने आसन ग्रहण किया। तथागत ने उसे उपदेश दिया। उपसम्पदा दी।

तथागत बहुपुत्रक वृक्ष की छाया से उठे। अपना मार्ग पकडा। शास्ता का शरीर महापुरुषो के बत्तीस लक्षणो से चित्रित था। महाकाश्यप के शरीर मे महापुरुषो के सात लक्षण थे।

शास्ता आगे-आगे चल रहे थे। महाकाश्यप महानाव से बधी छोटी नाव की तरह शास्ता के पीछे-पीछे थे।

शास्ता कुछ मार्ग समाप्त कर सके। मार्ग से हट गये। वृक्ष की छाया मे बैठने का सकेत किया।

माणवक ने अपनी रेशमी संघाटी को चौपरत किया। भगवान् के आसन के लिए बिछा दिया। शास्ता ने उस पर आसन ग्रहण किया। चीवर को हाथ से मसलते हुए बोले .

'काश्यप' तुम्हारी सघाटी बहुत कोमल है।'

काश्यप प्रसन्न हो गया। तथागत उसकी सघाटी पहनना चाहते थे। इस कल्पना के साथ बोला

'भन्ते ! सघाटी धारण करे।'

'तुम कन्था धारण करोगे ?'

'यदि आपका वस्त्र मिल जाय तो पहन लूगा।'

'काश्यप ! क्या तुम मेरे पहने-इस पाशुकूल को धारण कर सकोगे ?'

'हाँ भन्ते !'

'यह पहनते-पहनते जीर्ण हो गया है। फट गया है।'

'तथागत ! सहर्ष लूगा।'

तथागत ने अपना फटा-पुराना चीवर माणवक को दे दिया। रेशमी

सघाटी धारण किया। तथागत ने देखा काश्यप के मुख पर किसी प्रकार का विषाद नही था।

वह निर्विकार था। तथागत प्रसन्न हो गये। माणवक प्रसन्न मुद्रा मे बोला

'तथागत का चीवर मैने पा लिया। मेरे लिए और क्या इस जीवन मे शेष रह गया है ?'

माणवक के चीवर को भगवान् ने धारण किया। भगवान् के फटे चीवर को महाकाश्यप माणवक ने पहना। पृथ्वी इस महान् कार्य को देखकर पुन' कॉप उठी। काश्यप चकित हुआ। भूकम्प देखकर भगवान् केवल मुसकरा उठे।

माणवक हत अहकार हो गया था। उसने तेरह धुतागो के गुणो को शास्ता से प्राप्त किया। केवल सात दिन तक वह तत्त्व साक्षात्कार से पृथक् रहा। आठवे दिन प्रतिसविद सहित अर्हत पद प्राप्त किया।

भद्रा ने पॉच वर्ष तक जेतवन श्रावस्ती के तित्थियाराम मे विहार किया। तत्पश्चात् महाप्रजापति गौतमी ने उसे प्रव्रज्या दी। उपसम्पदा दी। और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे चतुर्थ स्थान प्राप्त मगध देशान्तर्गत महातीर्थ ब्राह्मण ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न महाकाश्यप धुतवादियो मे अग्र हुए थे।

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षुश्रावक श्राविकाओ की तालिका मे इक्कानवी और भिक्षुणियो मे दशम स्थान प्राप्त मद्रदेश सागल नगर ब्राह्मण कुलोत्पन्न, महाकाश्यपभार्या भद्रा कापिलायनी पूर्वजन्म अनुश्रमण वालियो मे अग्र हुई थी।

× × ×

भगवान् राजगृह के वेणुवन मे थे। महाकाश्यप भगवान् के पास बैठे थे। भगवान् ने महाकाश्यप की ओर देखकर कहा ·

'आयुष्मान् ! वृद्ध हो गये हो।'

'भन्ते ! यह शरीर का धर्म है।'

'आप रूक्ष पाशुकूल पहनते है। कष्ट होता होगा ?'

'कोई कष्ट नही है भन्ते।'

'आवुस ! पाशुकूल चीवर छोड दीजिए। गृहस्थो के द्वारा प्रदत्त चीवर धारण कीजिए। कबतक इस प्रकार पाशुकूलो को बीनकर चीवर बनाते रहिएगा।'

'भगवान्, मै इसी मे सुखी हूँ।'

'काश्यप ! तुम्हे निमन्त्रण भी स्वीकार करना चाहिए। इस बढती आयु में भिक्षाचार से कष्ट होगा।'

'भन्ते ! शरीर चल रहा है। मुझे भिक्षा ही पसन्द है।'

'काश्यप ! आप हमारे पास रहिए। अरण्य मे रहने से क्या लाभ ?'

'भन्ते ! मै आरण्यक हूँ। आरण्यक होने की प्रशंसा करता हूँ। जिसे मै उपदेश देता हूँ। उसे यदि मै ही अपने उपदेश के अनुसार नही करूँगा तो कौन करेगा ?'

'काश्यप, आप क्यो आरण्यक है ? क्यो आरण्यक होने की प्रशंसा करते हैं।'

'भन्ते ! दो उद्देश्य हैं।'

'वे क्या है ?'

'सुखपूर्वक विहार करने का अवसर मिलता है।'

'दूसरा—?'

'भविष्य की जनता की अनुकम्पा दृष्टि का भी ध्यान रखना है। वह समझ सके

आपके श्रावक वनवासी थे · पिण्डपातिक थे। उत्साही थे। धर्म की ओर लोगो की रुचि होगी।

'काश्यप ! आपका विचार ठीक है।'

× × ×

काश्यप एक बार पिप्पली गुफा मे बीमार पडे। भगवान् स्वय देखने गये। बीमारी सैद्धातिक थी। भगवान् को देखते ही काश्यप ने उनकी वन्दना की। भगवान् ने पूछा ·

'काश्यप ! धातुसाम्य है ?'

भन्ते ! शरीर अपने धर्म का पालन कर रहा है।'

'आयुष्मान् ! तुझे सातो बोध्यग स्मरण है ?'

'हाँ भन्ते !'

'उन्हे स्मरण करो।'

'करूँगा ! भन्ते '

भगवान् वहाँ से लौट आये। काश्यप ने भगवान् के अनुसार कार्य कया। उसके शरीर से व्याधि उसी प्रकार निकलकर गिर पडी जैसे कमलपत्र से जल-बिन्दु गिर पडते है। उसका शरीर अपनी समता प्राप्त करने लगा। शरीर के अग शुद्ध हो गये।

× × ×

सारिपुत्र और महाकाश्यप वाराणसो मे थे। ऋषिपत्तन मे विहार कर रहे थे। एक दिन सारिपुत्र सायकाल उठे। महाकाश्यप के समीप पहुँचे। सारिपुत्र ने पूछा ·

'आयुष्मान् ! इस जीव का अस्तित्व मृत्यु के पश्चात् रहता है ?'

'तथागत ने नही कहा है कि मृत्यु के पश्चात् जीव रहता है।'

'क्या मृत्यु के पश्चात् जोव नही रहता ?'

'भगवान् ने नही बताया। जीव मृत्यु के पश्चात् नही रहता।'

'आपने दोनो बाते कही है। वास्तविकता क्या है ?'

'भगवान् ने नही बताया है।'

'भगवान् ने क्यो नही बताया ?' सारिपुत्र ने आग्रह से पूछा।

'सारिपुत्र ! इस प्रश्न से परमार्थ सिद्ध नहो होता। ब्रह्मचर्य सिद्ध नही होता। इससे निर्वेद नही होता। इससे वैराग्य नही होता। इससे निरोध नही होता। इससे शान्ति प्राप्त नही होती। इससे सम्बोधि की प्राप्ति नही होती। इससे निर्वाण की प्राप्ति नही होती। अतएव भगवान् ने इसे नही बताया।

'भगवान् ने क्या बताया ?

'दु ख है। दु ख समुदय है। निरोध है। निरोधगामिनी प्रतिपद है।

'भगवान् ने इसे क्यो बताया ?'

'यह परमार्थ साधक है। ब्रह्मचर्य साधक है। इससे निर्वेद होता है। निर्वाण होता है।'

'आवुस !'

'आयुष्मान् । यह चार आर्य सत्य है। इसे छोड दो। इस पर विचार करने से कोई लाभ नही है।'

× × ×

महाकाश्यप महान् त्यागी हुए थे। इन्द्रियो तथा मन पर उनका अद्भुत नियन्त्रण था। एक समय वह अपने विहार से निकले। भिक्षाचार निमित्त नगर मे प्रवेश किया।

एक कोढी भोजन कर रहा था। महाकाश्यप उसके पास पहुँचे। भिक्षा माँगा। कोढी चकित हुआ। उसने एक पिण्ड उठाकर महाकाश्यप के पात्र मे रख दिया। उसका हाथ और उगलियाँ गल गयी थी। पिण्ड डालते समय उसकी एक कोढ से गली उगली भी भिक्षा पात्र मे गिर गयी।

महाकाश्यप को किंचित् मात्र घृणा नही हुई। उन्होने उस पिण्ड को प्रसन्नतापूर्वक ले लिया। एक देवालय की छाया मे बैठ गये। उन्होने अति स्वादिष्ट भोजन के समय वह पिण्ड ग्रहण किया। उन्हे न तो ग्लानि उत्पन्न हुई। और न दु ख। उनका मन भी नही बिगडा।

× × ×

महाकाश्यप का जीवन अत्यधिक उज्ज्वल था। उन्हे राग, द्वेष, मोह, आदि स्पर्श तक नही कर पाये थे। वे पर्वतवासी थे। पर्वत वास पर कहते है

'जो खडे-खडे भिक्षा ग्रहण कर लेता है। प्रति सूत्र जिसकी एक मात्र औषधि है। पाशुकूल मय जिसका चीवर है। वह व्यक्ति सब दिशाओ मे विहार कर सकता है।

'मै भिक्षाचार कर लौटता हूँ। पर्वतारोहण करता हूँ। आसक्ति और भय रहित ध्यान करता हूँ। इस जलते ससार के मध्य मै शान्ति पूर्वक ध्यान करता हूँ। मै भिक्षाचार से लौटकर पर्वतारोहण करता हूँ। कृतकृत्य होता हूँ। आश्रव रहित होता हूँ। ध्यान करता हूँ।

'मुझे वह पर्वत प्रिय है, जो गज गर्जन से गुजित रहता है। जहाँ का मनोरम भूखण्ड करेरी पुष्पमाल से आच्छादित रहता है। मुझे वह

सुरम्य पर्वत प्रिय लगता है। जहाँ नील तोयदो तुल्य अभिराम, शीत, स्वच्छ जलाशय है। जहाँ की भूमि इन्द्रगोप कुसुमो से आच्छादित है। मुझे वह पर्वत प्रिय है। जो नील मेघ शिखर तुल्य, भव्य प्रासाद शिखर तुल्य, गज गम्भीर ध्वनि पूर्ण है। वह पर्वत मुझे प्रिय है। जो वर्षा जल द्वारा प्रफुल्लित, ऋषियो द्वारा सेवित, मोर नाद से प्रतिध्वनित सुरम्य है। मुझ, योगरत, निर्माण रत, हितकामना रत, स्मृतिमान भिक्षु के लिये यह पर्याप्त है। मुझे उम्या पुष्प वर्णी मेघमालाच्छादित आकाश तुल्य विभिन्न पक्षिदल सकुल, पर्वत प्रिय है। मृगवृन्दो द्वारा सेवित गृहस्थो द्वारा अनिविशित पर्वत मुझे प्रिय है। लगूरो से युक्त, मृगो से युक्त, निर्मल जल युक्त, विस्तृत शिलायुक्त, शैवाल अच्छादित जलाशय युक्त पर्वत मुझे प्रिय है।'

× × ×

बुद्ध की वन्दना करते हुए महाकाश्यप ने कहा

'वासना रहित निष्काम कर्म की ओर प्रवृत्त, भय निर्लिप्त, गौतम चीवर, शयन, भोजन मे उसी प्रकार लिप्त नही होते जिस प्रकार जल मे रहकर जलद। उस महामुनि की ग्रीवा स्मृति प्रस्थान है। हस्त श्रद्धा है। शीश प्रज्ञा है। वे महाज्ञानी जगत् मे शान्ति पूर्वक विचरण करते है।'

× × ×

भद्रा कापिलायिनी अद्वितीय साधक थी। उसका त्याग अनुपमेय था। उसका इन्द्रिय निग्रह अपूर्व था। काम पर उसका विजय पाना सयम का ज्वलत उदाहरण उपस्थित करता है। उसका जीवन क्रम इतना ज्वलन्त, इतना महान् था कि उस पर गाथाये, काव्य तथा विशाल साहित्य की रचना हो सकती है।

जेत वन श्रावस्ती के समीप तित्थियाराम मे उसने पाँच वर्ष तक विहार किया। क्योकि उस समय तक स्त्रियो को भिक्षुणी नही बनाया जाता था। भिक्षुणी संघ की स्थापना नही हुई थी। महा प्रजापति गौतमी जब प्रव्रजित हुई उसके पश्चात् भिक्षुणियो का सघ सघटित हुआ। धर्म पथ पर अग्रसर होते हुए महाप्रजापति गौतमी से उसने प्रव्रज्या पायी। उपसम्पदा पायी। उसे पूर्व जन्मो का अद्भुत ज्ञान प्राप्त हो गया था। भावाभिभूत होकर उसने एक दिन उदान कहा :

'और महाकाश्यप! आप शान्त है। समाधि निष्ठ हैं। भगवान् के उत्तराधिकारी है। पूर्व जन्मों के आप ज्ञाता है। जन्म एव मृत्यु दोनों का आपको ज्ञान है। आप त्रिविद् है। अभिज्ञा की पूर्णता में स्थित है। आपका आवागमन क्षीण हो गया है। मै भी त्रिविद् हो गयी। मैने भी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। मैने मार की सेना को पराजित किया है। यह मेरा अन्तिम जन्म है। हम दोनों ने जगत प्रपंच के दोषों एव दुष्परिणामों को देखा है। हमने प्रव्रज्या ले ली है। हम दोनों आत्म-विजयी है। सर्वथा निष्पाप है। निर्वाण प्राप्त किया है। परम शान्ति प्राप्त की है। हमने निर्वाण एवं परम शान्ति का साक्षात्कार किया है।'

•

आधार ग्रन्थ :

पालि थेरी अपदानं . ३ ७ २४४-३१३

विनयपिटक चुल्लवग्ग = ११ : १ ४०६

धम्मपद अ० ४ : १०

थेर गाथा २६१ उदान ' १०५६—१०९५

थेरी गाथा ३७ : उदान ६३ ६६

मलिन्द प्रश्न ६ ५ ४२

विनय पिटक

(१) महावग्ग १ ४ ३, २ २ ' ३, ८ ५ ८, १० २ २

(२) चुल्लवग्ग ११ १

दोघनिकाय २ ३

मज्झिम निकाय ३ २ ८

संयुक्त निकाय ' ६ १ ' ५; १३ २ ५, १५ . ५–१२; ४४ २ ७

J २ २४२

भद्रा कपिलायनी	महाकाश्यप
Thig A : 76	M.A i · 347, 357
Ap ii · 578; 582	S · ii . 220, 221
AA ii 93	A i · 23
A · 1 : 25	Ah . ii . 583, 578, : i : 33
Thig vs . 63–66	S.A ii . 130, 135, 133;
Vin iv 227, 268,	iii . 128

महाकात्यायन

यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता।
यहीनमानस्य अनासवस्य देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो।

[जिस प्रकार सारथी अश्वो का दमन कर नियन्त्रण मे रखता है उसी प्रकार जिसकी इन्द्रियाँ शान्त हैं, वशवर्ती है उस अहंकार रहित अनाश्रव की देवता भी स्पृहा करते है।] —ध० ४

अवन्ति देश था। उसमें उज्जैन नगर था। उसमे पुरोहितो का एक कुटुम्ब था। उस कुटुम्ब मे महाकात्यायन ने जन्म लिया था। तीनो वेदो मे पारगत थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् अवन्ती के राजा चण्डप्रद्योत का पुरोहित पद प्राप्त किया था।

उनका गोत्र कात्यायन[1] था। गोत्र के नाम से गौरव प्राप्त किया। वह सक्षिप्त विषय को विस्तार के साथ कहने मे पटु थे।

उज्जैन के राजा चण्डप्रद्योत थे। एक दिन अपने अमात्यो को आमन्त्रित किया। उनके एकत्रित होने पर बोले :

'तातो! बुद्ध लोक मे अवतीर्ण हुए है। उनको सादर उज्जैन लाना चाहिए।'

अमात्यो ने उत्तर दिया : 'तथास्तु राजन्!'

'उन्हे जो लाने मे समर्थ हो वे उनके पास जॉय।'

अमात्यो ने एक दूसरे का मुख देखा। उन्होने मन्त्रणा की। वे बोले :

'राजन्! कात्यायन ब्राह्मण इस कार्य के योग्य है। वही समर्थ है। उन्हे भेजना चाहिए।'

---

(१) कात्यायान : सनातनी मत के अनुसार सवसे पुराने और प्राप्त कात्यायन पालि व्याकरण के रचयिता यही महाकात्यायन थे। मैं कुछ निश्चय इस विषय मे नही कर सकता कि व्याकरणकार ही महाकात्यायन थे।

'अच्छा !'

राजा ने अमात्यो को विदा किया।

× × ×

'ब्राह्मण !' राजा ने कात्यायन को प्रणाम करते हुए कहा।

'आज्ञा राजन् !'

'विशेष प्रयोजन से बुलाया है।'

'सामर्थ्य भर कार्य करूँगा।'

'तात ! दशबल बुद्ध के पास आप जाइये। उन्हे यहाँ सादर लिवा आइये।'

'स्वीकार है राजन् ! किन्तु।'

'किन्तु क्या, कात्यायन।'

'यदि प्रव्रजित होते जाऊँ तो ?'

'तुम्हारी इच्छा ! किन्तु तथागत को लाना होगा।'

'धन्यवाद राजन् !'

× × ×

कात्यायन ने सात साथियो सहित प्रस्थान किया।

मार्ग मे कठिनाइयो का सामना करते हुए तथागत की वन्दना की। अभिवादन किया। धातु साम्य पूछने के पश्चात् तथागत ने आसन ग्रहण करने के लिये कहा। वे एक ओर बैठ गये।

भगवान् ने आनुपूर्वी कथा सुनायी। उपदेश दिया। वे प्रव्रजित हुए। चीवर धारण किया। मृत्तिका पात्र लिया। स्थविर तुल्य हो गये।

कात्यायन ने तथागत से विनती की उज्जैन पधारने के लिये। तथागत ने केवल एक कारण से उज्जैन जाना उचित नही समझा। कात्यायन को आदेश दिया—'आप ही जाइये। राजा आपके दर्शन से प्रसन्न होगा।'

तथागत की उन्होने पूजा की। प्रदक्षिणा की। वन्दना की। उज्जैन लौटे।

मार्ग मे तेलप्पनाली[२] नामक स्थान मे भिक्षाचरण निमित्त सातो भिक्षुओ ने प्रवेश किया।

---

(२) तेलप्पनाली . उज्जैन के समीप एक ग्राम था।

उस नगर में दो श्रेष्ठी थे। एक बहुत धनी था। दूसरा निर्धन। उनकी एक-एक कन्याएँ थी। निर्धन श्रेष्ठी की कन्या बाल्यावस्था मे माता-पिता विहीन हो गयी थी। किन्तु वह सुन्दरी थी। उसके केश लम्बे थे। सुन्दर थे। धात्री ने अभिभावक के अभाव मे उसका लालन-पालन किया था। धनी सेठ की कन्या विशेष सुन्दर नही थी। उसके केश लम्बे और सुन्दर नही थे। वह प्रायः केशहीन तुल्य थी।

धनी कन्या ने अपना रूप बढाने के लिए दरिद्र कन्या से बालों की याचना की। केश के बदले एक सौ अथवा एक हजार मुद्रा देने का सन्देश भेजा। किन्तु दरिद्र कन्या रूप के लिए अपना केश कटाना उसे बेचने के लिए उचित नही समझी !

कात्यायन ने सात स्थविरों सहित चीवर धारण किया। पात्र लिया। सुसज्जित हुए। नगर में भिक्षाटन के लिए गये। उस दिन भिक्षा नही मिली। वे खाली पात्र लौट रहे थे। तथापि उदास नही थे।

दरिद्र कन्या ने देखा। सुवर्ण वर्ण कात्यायन खाली पात्र लौट रहे थे। वह दु खी हुई। भिक्षु भूखे रह जायँगे। उसे वेदना हुई। उन्हे भोजन देने की उसकी इच्छा हुई। किन्तु घर मे सामग्री नही थी। पैसा नही था। जो उनके लिए भिक्षा का प्रबन्ध करती।

उसे पुरानी बात याद आयी। केशो को धनी कन्या खरीदना चाहती थी। उसने सोचा। केश बेचकर भोजन का प्रबन्ध करेगी। इस आशा पर वह बाहर निकली। भिक्षुओं के सम्मुख करबद्ध झुकी खडी हो गयी। वन्दना किया। अभिवादन किया। उन्हे भिक्षा के लिये आमन्त्रित किया। मूक सम्मति प्राप्त की। घर मे सादर लिवा लायी। उन्हे आसन दिया। जल दिया। उन्हे बैठाकर वह घर मे चली गयी। अपनी दासी से कहा ·

'आर्ये! मेरा केश काट कर धनी कन्या के पास ले जा। उसे बेच देना। जो कुछ मिले। भिक्षुओ के भोजन निमित्त खरीद लेना।'

कन्या ने अपने लम्बे घुघराले सुगन्धित बाल काट कर दे दिया।

धात्री सुन्दर केश कटा देखकर बडी दु खी हुई। आँखो मे आँसू आ गये। उसने केश लिया। स्थविर बैठे थे। वे देख न सके। अतएव केश ढँक लिया। बाहर निकल गयी।

धनी सेठ कन्या ने केश देखा। मुसकुरायी। एक दिन उन केशों को धन देकर खरीदना चाहती थी। उसकी उपेक्षा की गयी थी। बदला लेने का अवसर मिला था। बेचने वाला स्वय द्वार पर आया था। समय का सभी लाभ उठाते है। सेठ कन्या ने भी लाभ उठाया। केश कटा था। कोई दूसरा ग्राहक था नही। केवल एकमात्र ग्राहक थी। उसी पर केश का बिकना निर्भर था। उसने अपना पक्ष प्रबल समझा।

सेठ कन्या ने केश खरीदने से इनकार किया। धात्री ने आग्रह किया। वस्तुस्थिति समझायी।

'मै आठ कार्षापण दूँगी।'

धात्री स्तब्ध हो गयी। ग्लानि से उसकी आँखें भर आयी। चकित हो गयी। इच्छा हुई लौट चलें। परन्तु उसे स्मरण आया। घर पर आठ भिक्षु भूखे बैठे थे। उन्हे भोजन येनकेन प्रकारेण देना था। अतएव दासी ने जो भी मूल्य प्राप्त हो सका, लिया। धनी कन्या ने अपने मूल्य पर केश खरीदा।

आठ काषार्पण से आठ भिक्षुओं के लिए निर्धन श्रेष्ठी कन्या ने भोजन बनाया। भोजन धात्री ने स्थविरो को परोसा। स्थविर सेठ कन्या को न देखकर बोले

दासी चुप हो गयी। महाकात्यायन ध्यानपूर्वक प्रत्येक घटना का लक्ष्य कर रहे थे। उनकी समझ मे वस्तुस्थिति आ गयी थी। उन्होने कहा :

'आर्ये। उसे बाहर बुला।'

'आवुस! वह भीतर है। काम कर रही है।'

'आर्ये। उसे यहाँ बुला लाओ।'

केशहीन कन्या लज्जित वाहर आयी। उसको केश रहित शरीर में रूपाकर्षण कम हो गया था। युवती सलज्ज कन्या बिना केश विचित्र लगती थी। उसकी सुन्दरता मुण्डी लगती थी। उसके नेत्रो मे लज्जा से जल आ गये थे।

कात्यायन ने उसका अपूर्व त्याग देखा। वह प्रभावित हुआ। साथी सातो भिक्षु आश्चर्यित हो गये। कात्यायन ने वन्दना की। उनकी वन्दना के साथ ही निर्धन श्रेष्ठी कन्या के केश यथावत् हो गये।

× × ×

महाकात्यायन उज्जैन पहुँचे। कांचन वन में आसन लगाया। माली

ने कात्यायन को पहचाना। उनके आगमन की सूचना राजा को दी। उन्हे सूचित किया। महाकात्यायन प्रव्रज्या ले चुके थे।

राजा चण्डप्रद्योत आनन्दित हुआ। प्रसन्न हो गया। उसने उनके भोजन का प्रबन्ध किया। स्वय उद्यान मे आया। पाँचो अगो से स्थविरो की वन्दना की। एक ओर बैठ गया। सविनय प्रश्न किया : 'भन्ते! तथागत का आगमन कब होगा?'

'राजन्! शास्ता ने मुझे यहाँ भेजा है। वे स्वय नही आ सके है।'

'भन्ते! आप लोगो ने भिक्षा आज कहाँ प्राप्त की?'

कात्यायन ने राजा को दरिद्र सेठ कन्या के अपूर्व त्याग की बात बतायी। राजा चकित हो गये। निर्धन श्रेष्ठी कन्या के प्रति उसमे अनुराग उत्पन्न हुआ।

राजा ने भिक्षुओ के निवास तथा भोजन का उत्तम प्रबन्ध कर दिया। दरिद्र श्रेष्ठी कन्या को बुलवाया।

राजा ने उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा। उसे अग्रमहिषी बनाने का वचन दिया। शीलवती सेठ कन्या लज्जित हो गयी। वह राजा की अग्रमहिषी बनी। उसके सुकृत का उत्तम फल इसी जीवन मे तत्काल मिल गया।

राजा स्थविरो का सत्कार करता था। सेठ कन्या उनके देखभाल का पूरा प्रबन्ध करती थी।

समय आया। उसने गर्भ धारण किया। दस माह पश्चात् पुत्र रत्न प्रसव किया। शिशु का नाम गोपाल[३] रखा गया। निर्धन श्रेष्ठी कन्या के पिता का नाम श्री गोपाल ही था। वह स्वय गोपाल माता नाम से प्रसिद्ध हुई।

गोपाल माता ने राजा से निवेदन किया। काचन वन मे स्थविरो के निमित्त बिहार निर्माण कराया जाय। राजा ने सहर्ष स्वीकृति दी। विहार बन गया।

कात्यायन ने कुछ समय उज्जैन मे विहार किया। राजा उनका

---

(३) गोपाल माता : इनके मूल नाम का पता नही चलता। इनके पिता का क्या नाम था यह भी नही मालूम होता।

अनुरक्त बन गया था। एक दिन राजा चण्डप्रद्योत महाकात्यायन के समीप आया। धर्म चर्चा के प्रसंग मे महाकात्यायन ने राजा से कहा।

'राजन् ! मनुष्य को न तो स्वयं पापरत होना चाहिए और न दूसरों से पाप कराना उचित है।'

'क्यो आयुष्मान् !' राजा ने पूछा।

'मनुष्य अपने कर्मो का उत्तराधिकारी होता है।'

'राजन् ! किसी के कहने से कोई चोर नही होता। किसी के कहने से कोई मुनि नही होता।'

'क्या करना चाहिए आयुष्मान् ?'

'हमे स्वयं अपने का ज्ञान है। देवताओ को भी उसी प्रकार हमारा ज्ञान है।'

'सत्य है आयुष्मान् !'

'राजन्। अनभिज्ञ मनुष्य कभी यह ध्यान नही करते कि उन्हे कभी इस संसार मे नही रहना है।'

'जो इसका ध्यान रखते है आयुष्मान् !'

'उनके सब कलह शान्त हो जाते है। निर्धन होने पर मी प्राज्ञ जीवित रहता है।'

'और धनवान ?'

'अज्ञानी धनवान होने पर भी वास्तव में नही जीवित रहता।'

× × ×

राजा चण्डप्रद्योत एक दिन पुन महाकात्यायन के पास आया। उसने स्वप्न के विषय मे जिज्ञासा की।

'मै स्वप्न के विषय मे जानना चाहता हूँ। आयुष्मान्।'

'राजन् ! मनुष्य श्रवणेन्द्रिय से सब सुनता है। दृष्टि द्वारा सब देखता है। धीर मनुष्यो को सुनी और देखी बातों की उपेक्षा नही करनी चाहिए। चक्षुमान होने पर भी उसे अन्धा की तरह, श्रोतमान होने पर बधिर की तरह, प्रज्ञावान होने पर मूक की तरह अर्थ की बात आने पर मनन करना चाहिए।'

•

आधार ग्रन्थ .

धम्म पद अ० ७ : ५
थेर गाथा २२९ तथा उदान . ४९७-५०५
१३ २ ३, २१ १ १ ३, ४,
सयुक्त निकाय ३४ ३ · ३ · ७
विनय पिटक, महावग्ग ५ ३ १ चुल्ल वग्ग : १
मज्झिम निकाय : १ . २८, ३ . २ . ८, ३ . ४ .
मिलिन्द प्रश्न ४ ८ ७४

A . i : 23, 65, 67, v · 46.
Thag : vss : 494–501.
Apadan ii : 463.
ThagA : i : 483.
Ap ii 465, i . 84.
AA i : 118, iii 314, 321, v · 225.
M iii : 223; ii 83, iii . 192
S . iii 9, iv 116.
Ud v 6
Vin i · 194.
DhA iv 101, i 325, ii 176
MA ii · 854
J ii 381, v 151.

राध

निधिनंव पवत्तारं यं पस्से वज्जदस्सिनं।
निग्गय्हवादिं मेधाविं तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो।

[निधि वक्ताओ तुल्य दोप दिखानेवाले निग्रही तथा मेधावी पण्डितो के संसर्ग मे रहे, उनका साथ कल्याणकारी होता है न कि पाप मय]

—ध. ७६

राध ब्राह्मण था। वृद्ध था। राजगृह निवासी था। अपनी सन्तानों द्वारा उपेक्षित था। भिक्षुओ से निवेदन किया। उसे प्रव्रज्या दी जाय। भिक्षुओ ने प्रार्थना स्वीकार नही की।

राध अत्यन्त दु:खी हुआ। पाण्डु वर्ण हो गया था। ककाल रूप हो गया। दुर्बल हो गया। दुर्वर्ण हो गया। रूक्ष हो गया।

भगवान् से अस्थि पंजर मात्र राध को देखा। प्रव्रज्या आरत ब्राह्मण को देखा। कारुणिक को करुणा आयी। भिक्षुओ को आमन्त्रित किया। उन्हे सम्बोधित किया

'भिक्षुओ! इस ब्राह्मण का उपकार किसी को स्मरण है?'

'भन्ते!' सारिपुत्र ने उत्तर दिया, 'स्मरण है।'

'इसने क्या उपकार किया था?'

'मै राजगृह मे भिक्षाचार कर रहा था। मुझे करछी भर भात दिलवाया था।'

'साधु! साधु! सारिपुत्र!!!' भगवान् ने कहा, 'सत्पुरुष कृतज्ञ होते है।'

राध का मुख खिल गया। उदासी मे चेतना ने प्रवेश किया। भगवान् ने कहा, 'सारिपुत्र! इसे तू प्रव्रजित कर। उपसम्पदा दे।'

'मै ?' सारिपुत्र विस्मित हुआ ।

'हॉ । सारिपुत्र ।'

'किस प्रकार राध को प्रव्रजित करूँ ?' सारिपुत्र ने जिज्ञासा की ।

'भिक्षुओ ! मैने तीन शरण गमन द्वारा उपसम्पदा की अनुज्ञा दी थी । उसे आजसे वर्जित करता हूँ । चार ज्ञप्तीय कर्म द्वारा उपसम्पदा की अनुज्ञा देता हूँ ।'

'भन्ते !' क्या प्रकार होगा ?' भिक्षु सघ ने जिज्ञासा की ।

भिक्षुओ !' भगवान् ने कहा, 'योग्य समर्थ भिक्षु सघ को इस प्रकार ज्ञापित करे ।'

'भन्ते ! सघ मेरी बात सुने । मेरा अमुक नाम है । अमुक नाम से आयुष्मान का उपसम्पदापेक्षी हूँ । यदि सघ को उचित प्रतीत हो तो संघ अमुक नाम को, अमुक नाम के उपाध्यायत्व मे उपसम्पन्न करे ।'

'भिक्षुओ !' भगवान् ने कहा : 'यह प्रथम ज्ञप्ति है ।'

'दूसरी ज्ञप्ति भन्ते !' सघ ने प्रश्न किया ।

'भिक्षुओ ! प्रव्रजित आकाक्षित पुन' ज्ञप्ति करे—भन्ते ! सघ मेरी बात सुने । मै अमुक नाम हूँ । अमुक नाम से आयुष्मान की उपसपदापेक्षी हूँ । संघ अमुक नामक को अमुक नामक के उपाध्यायत्व मे उत्पन्न करे ।

'भिक्षुओ !' भगवान् ने पुन कहा—'जिस आयुष्मान् को अमुक नाम की उपसपदा, अमुक नाम का उपाध्यायत्व स्वीकार हो वह चुप रहे । जिसको स्वीकार न हो वे बोले ।'

'भन्ते ! दूसरी ज्ञप्ति क्या है ?'

'भिक्षुओ ! दूसरी बार भी उपरोक्त प्रक्रिया दुहराना चाहिए ।'

'भन्ते ! तीसरी ?

'भिक्षुओ ! तीसरी बार भी उपरोक्त प्रक्रिया दुहराना चाहिए ।'

भिक्षु सघ के सम्मुख भगवान् ने उपसम्पदा करने की नवीन प्रक्रिया रखी । राध अनुग्रहीत हुआ । भगवान् की बन्दना की । प्रव्रज्या उपसम्पदा के लिए प्रार्थना की । राध सारिपुत्र द्वारा नवीन प्रक्रिया से प्रव्रजित होने वाला प्रथम भिक्षु था ।

× × ×

एक समय राध ने धार्मिक भावावेग मे यह उदान कहा : 'वर्षा काल में जिस प्रकार अच्छी तरह न छाये हुए घर मे वर्षा जल प्रवेश करता है। उसी प्रकार ध्यान भावना रहित चित्त मे राग प्रवेश कर जाता है। किन्तु अच्छी तरह से छाये घर मे वर्षा का जल प्रवेश नही करता। इसी प्रकार ध्यान भावना द्वारा अभ्यस्त चित्त मे राग नही प्रवेश कर पाता।'

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे चालीसवाँ स्थान प्राप्त मगध राजगृह निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न राध भिक्षु श्रावको में प्रतिभाशालियो मे अग्र हुआ था।

•

आधार ग्रन्थ

पालि : थेरा अपदान ५४ ९ २९६-३२६

धम्मपद अ० ६ ऽ १

थेर गाथा . १२७, उदान · १३३-१३४,

संयुक्त निकाय . २१-. २ २ · ९, २२ . १ १-१०,

२२ . २ · १-१२, ३४ २ · ३ ३, ४,

Thag ii : 114

S iii 188, 201

AA · i · 25, 179, 180, 163.

ThagA . 253, 254

SA ii : 246.

Ap'. ii 484

पिता-पुत्र

उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरो।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च।

[उठो—प्रमाद मत करो। सुचरितो के धर्म का आचरण करो। धर्मचारियो को लोक-परलोक दोनों स्थानो मे सुख मिलता है]

—ध १६८

तथागत को कपिलवस्तु का त्याग किये छः वर्ष हो चुके थे। राजा शुद्धोदन को पुत्र दर्शन की प्रबल इच्छा हुई। उस समय तथागत राजगृह के वेणु वन मे विहार कर रहे थे। राजा ने अपने एक अमात्य को बुलाया। उससे कहा .

'भणे ! राजगृह जाइये। वहाँ मेरा पुत्र वेणुवन मे विहार कर रहा है। उससे कहना 'पिता को तुम्हे देखने की लालसा है। एक बार कपिलवस्तु आओ।'

'देव ! आज्ञा पालन करूँगा।'

राजा ने पुत्र के नाम शासन पत्र दिया। अमात्य ने सदलबल प्रस्थान किया। साठ योजन चलकर राजगृह पहुँचा।

राजगृह मे उसने देखा। तथागत भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक तथा उपासिकाओ के चारो परिषदो मे धर्म उपदेश कर रहे थे।

अमात्य ने विहार मे प्रवेश किया। एक ओर खड़ा हो गया। उपदेश सुनने लगा। उपदेश सुना। पत्र देना स्थगित कर दिया। स्वय प्रव्रजित हो गया। वही रह गया।

× × ×

राजा शुद्धोदन चिन्तित हुए। अमात्य को गये बहुत दिन हो गये थे। वे लौटकर नही आये। पत्र का उत्तर भी नही आया। कोई समाचार नही मिला। अस्तु राजा ने दूसरे अमात्य को भेजा।

अमात्य राजगृह आया। अपने पूर्व अमात्य के समान अनुचरों सहित प्रव्रजित हो गया। पत्र उसके पास वहाँ रह गया। तथागत को नही मिला। वह भी लौट कर नही आया।

राजा ने एक के पश्चात् दूसरे नव अमात्यो को भेजा। परन्तु कोई लौट कर नहीं आया। सब वही रह गये। पत्र का उत्तर नही मिला। कोई समाचार नही मिला।

राजा विस्मित हुआ। चिन्तित हुआ। अन्ततोगत्वा कालउदायी[1] को इस कार्य के लिए चुना।

कालउदायी तथागत का सखा था। तथागत और उसका जन्म एक दिन हुआ था। वह शाक्य था। कपिलवस्तु में अमात्य गृह मे जन्म लिया था। उदायी के नामकरण संस्कार के दिन उसके नाम रखने की बात उठी। उसका वर्ण अपेक्षाकृत काला था अतएव उसका नाम काल उदायी रख दिया गया था। वह बोधिसत्त्व के साथ खेलता बडा हुआ था। उनका बाल सखा था। दोनो मित्रो को एक दूसरे के लिये आदर था। स्नेह था। एक साथ पढ़ लिखकर बडे हुए थे।

काल उदायी राजा का अत्यन्त विश्वासपात्र था। राजा को विश्वास था। काल उदायी कार्य सम्पन्न करने मे समर्थ होगा। राजा ने काल उदायी को बुलाया। उससे अपना मतव्य प्रकट किया।

'तात ! नव अमात्य जा चुके है। कोई लौट कर नही आया। उनके साथी लौटकर नही आये। मेरे पत्रों का भी कोई उत्तर नही मिला।'

काल उदायी की मुद्रा गम्भीर हो गई थी। वह चुपचाप सुन रहा था। राजा ने कहा : 'भणे ! उनसे कहना पिता का स्नेह उन्हे बुला बुला रहा है। मृत्यु के पूर्व एक बार देखने की इच्छा है।'

'देव—!' काल उदायी पुत्र स्नेही पिता की करुण बाणी सुनकर स्वय द्रवित हो गया।

---

(१) कालउदायी जिस दिन भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था उसी दिन काल उदासी का भी जन्म हुआ था। उसका उदायी इसलिये पडा था कि जिस दिन उसका जन्म हुआ था। उसदिन कपिलवस्तु के नागरिक वडे प्रसन्न थे। उसका रंग काला का अतएव उदायी के साथ काल नाम जोड़ दिया गया था। भिस्म जातक के सक्क से काल उदायी की समानता की जाती है। काल उदायी भगवान् के वाल सखा एवं अत्यन्त विश्वास पात्र थे।

राजा ने काल उदायी के मुख की ओर देखते हुए उत्सुकता पूर्वक प्रश्न किया—'भणे ! क्या उसे साथ लाओगे ?'

'एक शर्त है।'

'क्या ?' राजा ने प्रसन्न होकर पूछा।

'यदि आप मुझे प्रव्रज्या की आज्ञा दे।'

'तात !' मुझे प्रव्रज्या अप्रव्रज्या से क्या सम्बन्ध। मैं तो केवल पुत्र को देखना चाहता हूँ।'

'आपकी आज्ञा पालन करूँगा।'

काल उदायी ने राजा का शासन ग्रहण किया। अनुचरो सहित राजगृह के लिए प्रस्थान किया। राजा शुद्धोदन का भेजा दसवॉ दूत था।

काल उदायी राजगृह पहुँचा। धर्म देशना का समय था। परिषद के अन्त मे खडा हो गया। धर्म का उपदेश सुना। सपरिवार अर्हत फल प्राप्त किया।

शास्ता बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् प्रथम वर्षावास ऋषिपत्तन सारनाथ मे व्यतीत किया था। वर्षावास समाप्त हुआ। आश्विन पूर्णिमा आयी और गयी। भगवान् उरुवेला गये। वहाँ तीन मास निवास किया। वहॉ तीनो उरुवेला, नदी, गया काश्यपो को प्रव्रजित किया था। वहॉ से पौष पूर्णिमा को राजगृह के लिए प्रस्थान किया। वहॉ पर दो मास निवास किया।

कपिलवस्तु से उदायी को चले पॉच मास व्यतीत हो गये थे। फाल्गुन पूर्णिमा आयी। उदायी ने विचार किया। समय आया है। पिता का शासन तथागत को दिया जाय। फसल कट जाने के कारण मार्ग साफ हो गया था। हरित तृण से मार्ग भर गया था। वनश्री उत्फुल्ल हो गयी थी। पादपो मे फूल लग गये थे। आम्र की मंजरियॉ सुगन्धित थी। नीम के फूलो की भीनी महक फैल रही थी। मार्ग मे किसी प्रकार के कष्ट की सम्भावना नही थी। वसन्त की नव चेतना, प्राणियो मे स्फूर्ति प्रदान कर रही थी। यह समय कपिलवस्तु यात्रा के लिए सर्वथा उपयुक्त था। तथागत के पास काल उदायी पहुँचा। वन्दना किया। अभिवादन किया। तत्पश्चात् अवसर देखकर सनिवेदन किया :

'भन्ते !' पत्ते त्यागकर तरुवर अगारो तुल्य है। सुन्दर है। फल

की खोज मे उन्होने पत्तो का विसर्जन कर दिये है। वे दीपशिखा समान शोभित हो गये है। श्रावको पर अनुग्रह करने का काल आ गया है।

तथागत ने काल उदायी की शब्दावली का अर्थ समझा। उसकी ओर देखा।

काल उदायी ने पुन· कहा·

'पादप प्रफुल्लित है। मनोरम है। दिशाएँ सुरभित है। प्रस्थान काल उपस्थित हो गया है।'

'वसन्त ऋतु है। इसका काल है। द्रुम पल्लव बालो तुल्य लगते है।'

तथागत ने वक्ता का अभिप्राय समझा। कुछ उत्तर नही दिया। उदायी ने पुन कहा

'शीतकाल समाप्त हो गया है। ग्रीष्म ऋतु नही आयी है। वर्षा का अभाव है। ऋतु सुखदायी है। लम्बी यात्रा के अनुकूल है। शीतोष्ण काल चारिका के लिए उत्तम कहा गया है। अन्न हो गये है। कृषकों का घर धन-धान्य से पूर्ण है। मार्ग मे भिक्षा का अभाव नही रहेगा। पश्चिमाभिमुख होइये। रोहिणी सरिता पार करते हुए शाक्य तथा कोलियक आपका दर्शन लाभ करे।'

तथागत ने निर्मल गगन की ओर देखा। काल उदायी ने कहा

'कृषक किसी आशा से हल चलाता है। किसी आशा से बीज बोता है। वणिक् धन आशा से समुद्र पार जाता है। मै भी किसी आशा के साथ यहाँ आया हूँ।'

भगवान् आकाश मे गमन शील पक्षियों की ओर देखने लगे। काल-उदायी ने पुन कहा।

'कृपक बारबार खेत जोतते है। बीज बोते है। इन्द्र बारंबार वर्षा करते है। बारबार देश को धान मिलता है। याचक बारबार भिक्षा याटन करते है। दानी बारबार दान देते है। वे बारबार स्वर्ग लोक प्राप्त करते है।'

शास्ता विचार करने लगे। उदायी ने पुन कहा :

'मार्ग मे धूल नही है। तृणो से भूमि आच्छादित है। यही चारिका का आदर्श समय है।'

'उदायी!' शास्ता ने पूछा, 'मधुर स्वर से यात्रा की प्रशसा का क्या उद्देश्य है?'

'भन्ते ! आपके पिता राजा शुद्धोदन को इच्छा है। वे आपको देखना चाहते है। पिता की ममता पुत्र पर अनायास होती है।'

शास्ता ने दूर क्षितिज की ओर देखा। आकाश और पृथ्वी मिल रहे थे। काल उदायी बोला 'भन्ते ! जाति को भी मिलाना चाहिए।'

'उदायी !' शास्ता ने विनम्र स्वर मे कहा · 'जाति वालो का भी सग्रह करूँगा। समय आ गया है। भिक्षु सघ को यात्रा निमित्त कहो।'

उदायी प्रसन्न हो गया। तथागत विचारशील हो गया।

× × ×

तथागत अग, मगध के कुल पुत्रो, कपिलवस्तु के निवासी तथा अर्हतो के साथ राजगृह से निकले। प्रतिदिन एक योजन की यात्रा होती थी। राजगृह से कपिलवस्तु ६० योजन दूर था। विशाल सघ ने २ मास पश्चात् कपिलवस्तु पहुँचने की योजना बनायी थी। सघ समूह मन्दगति से प्रस्थान किया।

कपिलवस्तु मे शाक्यो ने तथागत के विहार निमित्त सुव्यवस्थित योजना बनायी। तथागत के विहार का स्थान न्यग्रोध आसन चुना गया। सुरुचिपूर्ण ढग से उसकी सजावट की गयी।

तत्कालीन प्रथा के अनुसार कपिलदस्तु के नगरनिवासियो ने अपने बालक तथा बालिकाओ को विविध अलकारो से सुअलकृत किया। उन्हे उत्तम वस्त्रो से विभूषित किया। उन्हे सर्वप्रथम भगवान् के स्वागतार्थ भेजा। उनके पश्चात् राजकुमार तथा राजकुमारियो का दल स्वागतार्थ आया। सबके हाथो माला थी। पुष्प था। तिलक था। तथागत के नगर मे प्रवेश करते ही उन पर धाराबद्ध पुष्प वृष्टि होने लगी। सुगन्धित द्रव्य प्रसारित किये गये। सुगन्धि से स्थान पूरित हो गया। भगवान् का जयघोप करता वह शोभनीय जन-समूह न्यग्रोध आराम की ओर बढा।

न्यग्रोध मे तथागत के पहुँचने के पूर्व नागरिको ने उनकी पूजा गंध, पुष्प तथा चूर्ण से की।

न्यग्रोध में भगवान् पहुँचे। कुशासन ग्रहण किया। उनके साथी क्षीणा-श्रवो ने यथास्थान आसन ग्रहण किया।

× × ×

'ओह ! सुना !! क्या ! अरे सुनो ! सिद्धार्थ कुमार भिक्षा माँग रहे है ।'

'भिक्षा ?'

'हाँ ।'

नगर दौड पडा अपने राजकुमार को भिक्षु रूप में देखने के लिए ।

तथागत ने कपिलवस्तु के एक छोर से भिक्षाटन आरम्भ किया। किसी दिन के अपने प्रिय राजकुमार को भिक्षा माँगते देखकर, उनके हाथ मे भिक्षा-पात्र देखकर लोगो की आँखे भर आयी ।

राजपथ की अटारियाँ, वातायान, अलिन्द पुर-ललनाओं से भर गये । जो जैसी थी, जिस अवस्था मे थी, सुनते ही दौडी । कोई वेणी गुथा रही थो । उसकी आधी वेणी गुथी रह गयी । कोई आँखो मे काजल लगा रही थी । एक ही आँख मे काजल लग पाई थी । कोई जूडा बाँध रही थी । उसका जूडा अधखुला रह गया । कोई कचुकी पहन रही थी । उसके बन्द खुले रह गये । कोई जूडा में पुष्प सजा रही थी । उसकी पुष्पमाला आधी ही केशो में फँस पाई थी ।

किसी के बाहु मे एक ही भुजबन्द था । किसी के दोनो मे था । कोई केवल एक ही कगन पहन पाई थी । कोई नही पहन पाई थी । किसी के कण्ठ मे मुक्तामाला की डोरी पूरी खुली झूल रही थी । उसे फँसा नही पाई थी । उन कमिनियो ने देखा । कमनीय राजकुमार आज काषाय वस्त्रो मे थे । साधारण भिखारी थे । द्वार-द्वार भिक्षा माँग रहे थे ।

समाचार राजप्रासाद मे पहुँचा । राहुल माता विकल हो उठी । प्रासाद पर चढ गयी । वहाँ से देखा । उनका प्रिय पति-वह पति जो इसी राज मे सुवर्ण-शिविका मे, सुवर्ण रथ पर, अलकृत अश्वो पर स्वर्ण रत्न आभूषणो से सज्जित चलते थे । पैदल चल रहे थे । इस देश का राजपुत्र चीवरधारी था । मृत्तिका पात्र धारी था । जिसने अगणित भिक्षुओ को भिक्षा दी होगी वह स्वय भिक्षुक बना था । भिक्षा माँग रहा था । यशोधरा[२] के आँसू रुक न सके तथागत के काषाय वस्त्र को देखकर

(२) यशोधरा देवी यशोधरा का राहुल माता भद्र काचना, भद्रा कात्यायनी, यशोधरा, बिम्बा देवी, बिम्बा सुन्दरी, बिम्बा, आदि नाम आया है । एक स्थान पर भ्रम उत्पन्न होता है । जहाँ उन्हे दण्डपाणि की कन्या कहा गया

वह स्तब्ध हो गयी। उसे धक्का लगा। उसने खिडकी वेग से बन्द कर दिया। उससे पीठ लगा कर खडी हो गयी। उसका मुख ऊपर उठ गया। दोनो हाथो को पीठ के पीछे जोरो से दबा लिया। उसने अधर को दाँत से दवाया। अचल से आँसू पोछती राजा के पास दौड पडी।

'सुनिये! आपका पुत्र भिक्षाचार कर रहा है।'

कहते-कहते वह वेदना भार से बैठ गयी। हिचकियाॅ लेने लगी। राजा उठ खडा हुआ। उसकी धोती खुली थी। उसने एक हाथ से धोती पकडी। धोती सम्हालते-सम्हालते वाहर निकलकर दौड पडा।

राजा को दौडते देखकर भीड पीछे लग गयी। राजा हाँफता पुत्र के सम्मुख खडा हो गया। पुत्र ने पिता को देखा। पिता की आँखे छलछलाई-थी। वात्सल्य से पुत्र की आॅखे शान्त थी। स्थिर थी। निर्मल थी। उनमे प्रकृति ने मानवीय स्वभाव मे दुर्बलता का सृजन नही कर सकी। पिता को देखकर पुत्र मिलने दौडा नही। चुपचाप खडे हो गये। पुत्र पर पितृ प्रेम की प्रतिक्रिया न हुई। पिता विस्मित हुआ। उसे आगे बढने-

---

है। यह ठीक नही है। सम्भव है। कपिलवस्तु मे किसी राज वशीय दण्डपाणि की कन्या का नाम यशोधरा रहा हो। एक मत है, कि भद्र काचना, सुभद्दका यशोधरा आदि नाम विशेषण थे। जिन्होने कालान्तर मे नाम रूप ले लिया। महावश मे माता का नाम अमिता तथा पिता का नाम सुप्रबुद्ध दिया गया है।

पूर्वीय उत्तर प्रदेश तथा विहार मे अव भी प्रचलन है। माता को उसके सन्तान की माता के नाम से पुकारते है। किवा सम्बोधित करते है। मालूम होता है। यह प्रथा उस समय भी प्रचलित थी। अत एव प्राय राहुल माता का प्रयोग देवी यशोधरा के लिये मिलता है। भगवान् के अग्रश्रावको की तालिका मे राहुल माता का नाम भद्रा कात्यायनी दिया है।

बुद्धघोप ने भद्दकचना को राहुल माता कहा है। अगुत्तर निकाय के अनुसार सारिपुत्र, मोग्गलायन तथा बकुल के सदृश ऋद्धिवती राहुल माता थी। उन्होने जनपद कल्याणी नन्दा के साथ प्रव्रज्या महाप्रजापति गौतमी के नियन्त्रण मे ली थी।

यशोधरा के सम्बन्ध मे एक प्रचलित कथा है। राहुल ने प्रव्रज्या ली थी। प्रति दिन माता को देखने आते थे। माता को वात स्फीत किवा आफारा बीमारी हो गयी थी। उन्हे आम का जूस तथा चीनी मिलाकर पीने के लिये बताया गया था। राहुल ने सारिपुत्र से कहा। सारिपुत्र ने राजा प्रसेनजितके यहाॅ से आम का रस मॅगाया। प्रसेनजित को जव बात मालूम हुई तो प्रति दिन जूस और चीनी भेजवाने का प्रवन्ध कर दिया।

का साहस नहीं हुआ। दोनो चुपचाप खडे हो गये। पीछे आता जनसमूह रुक गया। राजा को देखकर सब शान्त हो गये।

पिता-पुत्र आमने-सामने खडे थे। पिता राजा का पुत्र भिक्षुक था। राजा का व्यथा वेग छूटा। पुत्र प्रेम ने प्रबल वेग से उद्वेलित किया। उसने तथागत के हाथो से पात्र छीन लिया। बोल उठे ·

'यह क्या ? अपने राज मे तुम भिक्षुक ?'

तथागत पिता की विकलता देखकर निर्विकार खडे रहे। राजा ने पुन. कहा

'हमे लज्जित करते हो—ओह !'

राजा व्याकुल होकर पुत्र को पकडना चाहा। परन्तु गम्भीर भव्य काया देखकर, सयम देखकर उसका साहस नही हुआ। वह मुट्ठी बाँधकर रह गया। उसकी मनोवेदना आँखो मे आँसू बनकर प्रकट हुई। वह कमर पर झुका। कुछ सोचने लगा। समझ नही पा रहा था। क्या करे। वह किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। तथागत ने कहा

'महाराज ! अपने वश का यही आचार है।'

'नही-नही-नही।'

'क्यो—? ध्वनि हुई।'

'मेरा वश महासम्मत क्षत्रिय वश है। हमारा वश मनु वश है। इक्ष्वाकु वश है। हमारे वश मे, क्षत्रिय कुल मे क्या' कोई भिक्षाचारी हुआ है ?'

पिता ने भावावेश मे पुत्र के हाथ से भिक्षापात्र ले लिया। बोले ·

'चलो—प्रासाद मे चलो। वहाँ भोजन की व्यवस्था है। भिक्षु भी चलें।'

पिता राजा पुत्र पर राजकुमार पर जैसे विजय पा गया। उसका पितृवत्सल हठ रह गया। उसके आँसू सूखने लगे। वह प्रसन्न होने लगा। राजकुमार का हाथ पकडकर मुख राजभवन की ओर कर दिया। उसमे उत्साह आ गया था। उसे अपने पितृ अधिकार पर गर्व हुआ। आनन्दित हुआ। उसकी आँखे चमक उठी थी। कौन पिता के नैसर्गिक अधिकार मे हस्तक्षेप करने का साहस कर सकता है।

और राजा भिक्षु सघ के तथा तथागत के साथ राजभवन की ओर

अग्रसर हुआ। नागरिक प्रफुल्लित हो गये। जयघोष से नगर गूँज उठा।

राजप्रासाद में तथागत ने भोजन किया। सबने आकर तथागत की वन्दना की। केवल राहुल माता देवी यशोधरा अपने पति गौतम के पास नही आयी।

परिजनो ने राहुल माता से वन्दना करने के लिए कहा। परन्तु राहुल माता ने पत्नीजन गर्व से उत्तर दिया—

'मै क्यो जाऊँ ?'

नारी का उसे मान था। उसे त्याग कर पति चले गये थे। प्रव्रज्या ली थी। उससे कुछ कहा नही। उसका ध्यान नही किया। उपेक्षा की। मानवीय गर्व का होना स्वाभाविक वात थी। विशेप आग्रह पर राहुल माता ने पुन कहा :

'यदि मुझमे गुण है तो आर्यपुत्र स्वय पधारेगे। उनके आने पर उनकी वन्दना करूँगी।'

राजा शुद्धोदन ने तथागत को अपनी देवी के पास जाने के लिए आग्रह किया।

देवदह को राजकन्या उस देवी यशोधरा के निवास स्थान की ओर चले जिसे विवाह के पूर्व शाक्य कुमारियो के साथ सर्वप्रथम देखा था। वह आभूपण वितरण उत्सव का दिन था। वे कुमारियो को आभूपण वितरित कर चुके थे। यशोधरा को कुछ नही मिला। उसने विनीत स्वर मे कहा था—'क्या मुझे कुछ नही मिलेगा ?' कुमारी की सरलता पर कुमार मुग्ध हो गये थे। उसे दूसरा आभूपण मँगाकर दिया था। उसने पुन सलज्ज वाणी से कहा था—'क्या मै इन आभूषणो के अनुरूप हूँ।' उस समय वे वोले थे—'आभूपण मेरा मै चाहे जिसे दे सकता हूँ।' उस दिन यशोधरा मे उन्हे अनुराग उत्पन्न हुआ था। राजा शुद्धोदन ने घटना सुनी। देवदह विवाह के लिए दूत भेजा। सोलह वर्प की अवस्था मे देवी यशोधरा का जव भगवान् ने पाणिग्रहण किया था।

उन्होने अपने साथ अपने परम शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को ले लिये। श्रीगृह में प्रवेश करते हुए उनसे वोले :

'भिक्षुओ ! तुम शान्त रहना। राहुल माता को सुरुचिपूर्वक वन्दना करने देना।'

भगवान् ने शयनगृह मे प्रवेश किया। वहाँ आसन बिछाकर बैठ गये। सारिपुत्र मौद्गल्यायन ने एक ओर आसन ग्रहण किया।

यशोधरा पति के युगल चरणपद्म पर गिर पडी। उसने पैरो को पकड़कर वन्दना की। उनके पद को मस्तक पर रखा। लगभग ७ वर्ष के पश्चात् वह पति से मिली थी। सात वर्ष तक देवी ने उनकी प्रतीक्षा की थी। भगवान् की मुद्रा शान्त थी। उनके नेत्रो मे चरणो पर पडी नारी मे स्त्री भाव नही था। पत्नी भाव नही था। काल ने दोनो मे अन्तर पैदा कर दिया था।

राजा ने प्रवेश किया। पुत्र को देखा। पुत्रवधू को देखा। वे बोले :

'भन्ते! यशोधरा ने सुना था। आपने काषाय वस्त्र धारण किया है। उसने भी काषाय वस्त्र धारण कर लिया। उसने सुना। आप एकाहारी है। वह भी एकाहारी हो गयी है। आपने उत्तम पलग पर सोना त्याग दिया है। इसने भी पलग का शयन त्याग दिया है। इसने सुना। आपने माला का त्याग किया है। गन्ध का त्याग किया है। इसने भी उन्हे त्याग दिया है। मायके वाले इसके पास पत्र भेजते है। इसकी सेवा करना चाहते है। परन्तु यह उन्हे नही देखती। उनकी सेवा स्वीकार नही करती। यह्र गुण की मूर्ति है।'

राजा ने सस्नेह यशोधरा की ओर देखा। तथागत अकस्मात् उठे। शयन-कक्ष से बाहर चले गये। यशोधरा तथा राजा दोनो एक दूसरे को देखते स्तम्भित हो गये।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक श्राविकाओ मे बावनवा तथा भिक्षुणी श्राविकाओ मे ग्यारहवाँ स्थान प्राप्त शाक्य कपिलवस्तु, राहुल माता, देवदह वासी, शाक्य पुत्री, क्षत्रिय कुलोत्पन्न, भगवान् की पूर्व भार्या, भद्रा कात्यायनी किवा यशोधरा महा अभिज्ञा प्राप्तो मे अग्र हुई थी। और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षुश्रावको मे बत्तीसवाँ स्थान प्राप्त शाक्य कपिलवस्तु अमात्य गेहोत्पन्न काल उदायी कुल प्रसादको मे अग्र हुआ था।

●

आधार ग्रन्थ

पालि थेरा अपदान ५५ ६ १६५—१९४

थेरी अपदानं ३ ८ ३१४—४१०

धम्मपद १३ २

थेर गाथा २३३ उदान ५२८—५३३,

दीघ निकाय २ १

म० प्र० ५ ४ ४३

Vin i 82

MhV ii 24, 21

J ii 392, vi : 478, xi 54, 58, 62, ii 392 133.

DA ii 422

AA i 204; 168, 211, 212, 235, 351 .

A i 25

DhA iii 44

Ap ii 584, 592

नन्द की प्रव्रज्या

यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठी समतिविज्झति ।
एवं अभावितं चित्त रागो समतिविज्झति ॥

[राग ध्यान भावना रहित चित्त मे उसी प्रकार प्रवेश कर जाता है जिस प्रकार अच्छी तरह न छाये हुए घर मे वर्षा जल ।] —ध० १३

कपिलवस्तु मे तथागत के निवास का तीसरा दिन था। उनका विमातृ भाई नन्द था। उसका अभिषेक था, गृह प्रवेश था। विवाह था। तीन मगल कर्म एक दिन होने वाले थे। शुभ मुहूर्त था। पुरमे जीवन था। उल्लास था। नागरिक प्रसन्न थे। राजप्रासाद प्रसन्न था। महाप्रजापति [1]गौतमीपुत्र नन्द के अभिषेक तथा विवाहोत्सव मे तथागत की उपस्थिति ने उत्साह वृद्धि कर दिया था।

नन्द भगवान् से कद मे चार इञ्च छोटा था। वह बडा सुन्दर था। उसे निरखते ही बनता था। भगवान् की प्रव्रज्या के पश्चात् कपिलवस्तु का वही राज्याधिकारी रह गया था।

भगवान् ने भिक्षा-पात्र उठाया। राजभवन की ओर चले। भिक्षा ग्रहण करने चले। भिक्षा प्राप्त किया। मगलमय वचनो द्वारा सबको उपकृत किया। बाहर चले। नन्द के हाथ मे पात्र थमा दिया।

नन्द के हाथो मे पात्र था। भगवान् द्वार से बाहर निकले। कुमार के हाथो से पात्र नही लिया। कुमार तथागत के गौरव तथा शील के कारण पात्र तथागत को नही दे सका। उसने विचार किया। भगवान्

(१) लगभग पचीस नन्द नामक व्यक्तियो का वर्णन बुद्ध साहित्य मे मिलता है। सभी भिन्न व्यक्ति थे। प्राय उन्हे एक दूसरे से मिलाकर अनेक स्थानो पर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। राजा शुद्धोधन तथा महाप्रजापति गौतमी के पुत्र नन्द है। भगवान् के पश्चात् राज्य के उत्तराधिकारी थे। नन्द को भगवान् के ललाट का तिलक कहा गया है।

सीढी पर उतरेगे उस समय पात्र ले लेगे। भगवान् सीढ़ी उतरे। पात्र नही लिया।

कुमार ने सोचा। सीढी उतरने पर भगवान् पात्र सम्हाल लेगे। सीढी समाप्त हुई। किन्तु तथागत ने पात्र नही लिया। कुमार भद्र था। राज्योचित सस्कारो से परिचित था। ज्येष्ठ भ्राता से पात्र लेने के लिए नही कह सका।

कुमार ने विचार किया। तथागत पात्र प्रागण मे ले लेगे। प्रागण समाप्त हुआ। भगवान् ने पात्र नही लिया। कुमार सकोच के कारण कुछ नही कह सके।

कुमार दुविधा मे था। तथागत ने कुछ कहा नही। पीछे फिर कर देखा भी नही। तथागत आगे चलते रहे। कुमार उनके पीछे चलता रहा।

केवल चीवर का अभाव था अन्यथा नन्द भिक्षु लगता था। वह अब भी सोच रहा था। तथागत कही भी, किसी स्थान पर, किसी समय पात्र ले लेगे। उसे छुट्टी मिलेगी। विवाह की तैयारी मे लगेगा। किन्तु भगवान् ने पात्र नही लिया।

लोगो ने देखा। पात्र सहित कुमार नतमस्तक भगवान् का अनुकरण कर रहा था। सन्देह व्याप्त हुआ। कही भगवान् उसे प्रव्रज्या न दे दे।

लोग दौड गये। जनपद कल्याणी के पास। वह रूप के कारण सुन्दरी थी। हठ एव गर्व के कारण माननीय थी। दीप्ति एव मनस्विता के कारण मायिनी थी।

'देवी ! नन्दराजा भगवान् के पीछे चला जा रहा है।'

'क्यो ?' 'कैसे'—सुन्दरी ने विस्मित होते कहा।

'उसके हाथ मे पात्र है। तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। जनपद कल्याणी तुम नन्द विहीन हो जाओगी।'

जनपद कल्याणी के जीवन का आज सबसे मगलमय दिन था। नन्द से उसका विवाह होनेवाला था। वह रानी बनने की कल्पना मे प्रसन्न थी। वह स्नान कर उठी थी। उसके केश से जल-बिन्दु गिर रहे थे। उसके हाथ मे कघी थी। दूसरे मे दर्पण था। वह केश सँवार न सकी। कघी फेक दिया। दर्पण फेक दिया। दौडती प्रासाद की खिडकी पर

आयी। उसके केश अस्त-व्यस्त थे। उसका शरीर आर्द्र था। वेग से चली थी। पसीना आ गया था। हाँफ रही थी।

खिडकी से उसने सचमुच देखा। नन्द, उसके भावी पति, के हाथो मे पात्र थे। कुमार विनीत थे। भगवान् का अनुकरण कर रहे थे।

खिडकी पर से ही वह चिल्ला उठी—'आर्यपुत्र! आर्यपुत्र!! आर्य-पुत्र!!! शीघ्र लौटिएगा।'

राजप्रासाद ने जनपद कल्याणी का विकल आह्वान सुना। लोग कुमार की ओर देखने लगे। जनपद कल्याणी की ओर कुमार की स्नेह दृष्टि उठ गयी। गति धीमी हो गयी। तथागत कुछ आगे बढ गये थे। उसे कुछ कहने का साहस नही हुआ। दौडकर साथ पकड लिया। भगवान् से पात्र लेने का आग्रह नही कर सका। चलता ही रहा। शील ने, सकोच ने उसे मुख खोलने के लिए प्रेरित नही किया।

भगवान् ने पात्र नही लिया। वे चलते रहे। उनका अनुगमन शिष्य की तरह कुमार करता रहा। जनपद कल्याणी की आँखे अनायास भर आयी।

तथागत विहार मे पहुँच गये। भिक्षुओ ने सादर तथागत का अभ्यु-त्थान किया। सत्कार किया। वन्दना की। अभिवादन किया।

भगवान् ने पात्र नही लिया। नन्द पात्र लिए खडा रहा। तथागत ने कनिष्ठ भ्राता से प्रश्न किया·

'प्रव्रज्या ग्रहण करोगे!'

तथागत के आदर के कारण। शील के कारण। ज्येष्ठ भ्राता होने के कारण, नन्द के मुख से 'नही' नही निकला। वह शान्त था।

'प्रव्रज्या लोगे!' भगवान् ने पुन पूछा।

अनायास वह कह उठा·

'हाँ!'

शास्ता भिक्षुओ की ओर देख गम्भीर स्वर से बोले :

'नन्द को प्रव्रजित करो।'

कपिलवस्तु पहुँचने के तीसरे दिन तथागत का कनिष्ठ भ्राता, राज्य का युवराज, जिसका अभिषेक होने वाला था। जिसका विवाह उस दिन

होनेवाला था। विवाह के सूक्ष्म वस्त्र के स्थान पर काषाय चीवर धारण किया। स्वर्ण जल पात्र के स्थान पर मृत्तिका पात्र धारण किया। सुन्दर केशो पर मुकुट धारण करने के स्थान पर केश विहीन हुआ। सासारिक जीवन के लिए मर गया।

प्रव्रज्या लेना ही पर्याप्त नही था। अभ्यास और उद्योग प्रव्रजित धर्म पालन निमित्त आवश्यक था। यही बात नन्द के साथ हुई। नन्द को अपनी भावी पत्नी स्मरण हो आया करती थी। उदास हो जाते थे। बात छिपी नही रही। भिक्षुओ को नन्द की मनोभावना का ज्ञान हो गया। नन्द को लज्जित करने लगे। निन्दा होने लगी।

नन्द का मन जनपद कल्याणी मे अनुरक्त था। वह चिन्ता ग्रसित रहते थे। स्वास्थ्य गिर गया था। भगवान् एक दिन नन्द के साथ हिमालय यात्रा के लिए चले। मार्ग मे नन्द को भगवान् ने एक जली हुई बन्दरी को दिखाया। उसे दिखाते बोले :

'नन्द ! क्या जनपद कल्याणी इससे अधिक सुन्दर थी।'

'हाँ भन्ते !'

भगवान् शान्त हो गये। उन्होने एक बार नन्द की ओर देखा।

× × ×

भगवान् को नन्द की मनोव्यथा मालूम थी। नन्द को राज्य मिलने वाला था। सर्वांग सुन्दरी मिलनेवाली थी। लेकिन अभिषेक के दिन मिला चीवर, भिक्षापात्र और ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा। भगवान् ने कनिष्ठ भ्राता नन्द को बुलाया। उसपर मृत बन्दरी के उपमा का कोई प्रभाव नही पडा था। भगवान् ने उसके विचारो को बदलने के लिए दूसरा उपाय निकाला।

सकुचित नन्द आया। वह शीलमान था। उसकी दृष्टि अपने ज्येष्ठ और इसे समय के शास्ता के सम्मुख उठती नही थी। वह नतमस्तक खडा हो गया। भगवान् ने कहा

'नन्द ! तू मेरे साथ चल।'

'कहाँ ?'

'जहाँ चलूँ।'

भगवान् चले। नन्द ने अनुकरण किया।

× × ×

भगवान् नन्द के साथ तावतिस भवन में पहुँचे। वहाँ अनिन्द्य अप्सराये थी। उनके रूप से स्थान जैसे भभक रहा था। भगवान् ने कहा

'नन्द ! तू इन्हे चाहता है ?'

'नन्द नीरव था। उसकी दृष्टि न तो अप्सराओ की तरफ उठती थी और न शास्ता की ओर। भगवान् ने कहा :

'नन्द ! यदि तू इन्हे चाहता है तो ब्रह्मचर्य पालन कर।'

नन्द ने उत्तर नही दिया।

'आयुष्मान्' भगवान् ने कहा 'मै अप्सरा तुम्हे दिला दूगा। यह मेरा उत्तरदायित्व है।'

नन्द ने फिर भी कुछ उत्तर नही दिया।

भगवान् तावतिस भवन से नन्द सहित लौट आये।

× × ×

नन्द ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कठोरता से करने लगे। भिक्षुओ ने व्यंग किया :

'आयुष्मान ! नन्द !! अप्सराओ की सेवा कर रहे है।'

'हाँ—! तथागत ने कहा है।'

'अप्सराएँ मिलेगी।'

नन्द ने किसी बात की तरफ ध्यान नही दिया। यद्यपि स्वेच्छया से प्रव्रजित नही हुए थे। मन यत्र-तत्र दौडता था। परन्तु अपनी साधना से रागादि पर नियन्त्रण कर लिया। एक दिन उदान मे कह उठे :

'अज्ञानान्धकार के कारण मै मण्डन के चक्कर मे पड़ा था। मै अभिमानी था। चचल था। काम से व्यथित था। राग से व्यथित था। आदित्य बन्धु बुद्ध के कारण मैने ज्ञानपूर्वक आचरण किया है। इस जगत से चित्त को ऊपर उठाया है।'

किसी ने कहा—आयुष्मान नन्द ने अप्सराओ के हेतु प्रव्रज्या ली है। किसी ने कहा-अप्सराओ ने उन्हे खरीद लिया है।

आयुष्मान नन्द लज्जित हुए। पश्चात्ताप हुआ। ग्लानि हुई। उन्होने विपश्यना किया। शीघ्र ही अर्हत पद प्राप्त किया। एक दिन भिक्षुओ ने तथागत से पूछा :

'भन्ते ! नन्द मे यह परिवर्तन किस प्रकार हुआ ?'

'भिक्षुओ ! भगवान् ने उत्तर दिया 'पूर्व समय मे नन्द का जीवन अच्छी तरह न छाये हुए घर के समान था। किन्तु अब अच्छी तरह छाये हुए घर की तरह हो गया है। जिस प्रकार उत्तमत्ता से छाये हुए घर मे वर्षा जल प्रविष्ट नही करता। उसी प्रकार ध्यान-भावना द्वारा अभ्यस्त चित्त मे राग का प्रवेश नही होता।'

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे सैतीसवा स्थान प्राप्त शाक्य कपिलवस्तु क्षत्रिय कुलोत्पन्न महाप्रजापति गौतमीपुत्र नन्द जितेन्द्रियो मे अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ .

उदान अट्ट कथा ३ . २
अ० नि० अ० क० ' १ ४ ८
म० प्र० ४ ३ २२
विनयपिटक चुल्ल वग्ग ७
थेर गाथा . १३९ उदान १५७, १५८
धम्मपद १ ९
बुद्धचरित ५७
A 1 25, iv 165, ii . 428
AA 1 186, 174
Thag A . 157
J . i : 91, 92
Ud iii : 2
DhA i 96-105, 103
UdA 168
ThagA : i 276, 277
Vin iv , 173

राहुल

अनिमितं च भावेहि मानानुसयमुज्जह ।
ततो मानाभिसमया, पसन्तो चरिस्ससीति ॥

[राहुल—अनिमित्त की भावना करो । मानानुसय का त्याग करो । मान को तिरोहित कर शान्त विचरण करोगे] —सुत्त निपात : २३ : ८.

कपिलवस्तु मे भगवान् के आगमन का सातवा दिन था । नन्द की प्रव्रज्या के कारण राजा शुद्धोदन बहुत दु खी हुए । प्रजा ने शोक किया । जनपद कल्याणी का भाग्य फूटा । माथा थाम कर बैठ गयी । किन्तु कोई भगवान् के विरुद्ध एक शब्द कह नही सका । राहुल माता ने तथागत को अधिक दिन रोक रखने के लिए एक उपाय किया । राहुल को बुलाया । उस समय राहुल की आयु केवल ७ वर्ष की थी । उसे खूब समझाया ।

'तुम पिता के पास जाओगे ?'

'हॉ !' राहुल प्रसन्न हो गया ।

'उनसे क्या कहोगे ?'

'जो बताओ !'

उनसे कहना—'आपके पास बहुत सम्पत्ति थी । आपके चले जाने पश्चात् उसे नही देखा जा रहा है । आप मुझे मेरा दायज दीजिए ।'

'वह कहॉ है ।'

'श्रमणो के मध्य मे बैठे है । उनका वर्ण सुवर्ण है । जाओगे ।'

'जाऊगा ।'

'जो बताया है, स्मरण रहेगा ?'

'हॉ खूब ! कहूँगा—'पिताजी मेरा दायज दीजिए ।'

देवी यशोधरा प्रसन्न हो गयी ।

× × ×

पूर्वाह्न समय तथागत सुआच्छादित हुए। चीवर पहना। पात्र हाथ मे लिया। पिता राजा शुद्धोदन के यहाँ भिक्षा निमित्त पधारे। सुव्यवस्थित ढग से आसन बिछा था। आसन ग्रहण किया।

यशोधरा राहुल को बुला लायी। तथागत की ओर सकेत किया—'देखो, वह तुम्हारे पिता है।'

राहुल ने चीवरधारी पिता का सुवर्ण वर्णमय, भव्य शरीर देखा। वे शान्त बैठे थे।

'हाँ, देखा।' राहुल ने पिता की ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए कहा।

'अच्छा, जा। उनसे अपना दायज माँग।'

'जाता हूँ।'

राहुल सोत्साह पिता के समीप पहुँचा। राहुल भगवान् के सम्मुख खडा हो गया। भगवान् ने देखा, अपने पुत्र को। उन्हे याद हो आया। जब उन्होने अपने पुत्र के जन्म का समाचार सुना था। जो कहा था—राहुल उत्पन्न हुआ। पिता शुद्धोदन ने परिचायक से सुना। तथागत ने नवजात शिशु को राहु शब्द से सम्बोधित किया था। जो उसका नाम राहुल रख दिया।

राहुल ने कहा—'श्रमण आपकी छाया सुखमय है।'

वह कुछ और कह नही सका। भगवान् आसन त्याग कर खड़े हो गये। प्रस्थान किया।

राहुल तथागत के पीछे-पीछे चलने लगा। माता के सिखाये बात को कहने लगा।

'श्रमण' मुझे मेरा दायज दो!

भगवान् चलते रहे।

'श्रमण मेरा दायज दो!'

भगवान् बढते रहे।

'श्रमण मेरा दायज।'

तथागत ने ध्यान नही किया। बालकजन्य चपलता के कारण राहुल 'दायज दो-दायज दो दायज दो–कहने लगा। वह किंचित् व्याकुल हो गया।

तथागत के साथ सारिपुत्र थे। तथागत ने सारिपुत्र से कहा :

'राहुल को प्रव्रजित करो।'

सारिपुत्र राहुल को प्रव्रजित करने लगा।

राहुल ने पूछा, 'यह क्या ?'

'यही तेरा दायज है। पिता यही सम्पत्ति तुम्हें दे सकते है।'

× × ×

राजा शुद्धोदन शाक्य को मालूम हुआ। नन्द पहले प्रव्रजित हो गया था। आज राहुल कुमार भी प्रव्रजित हो गया। वह अनाथ हो गये। पहले ज्येष्ठ पुत्र सिद्धार्थ गये, विवाह, और अभिषेक के दिन नन्द गये और अब राहुल कुमार चला गया। उनकी कमर जैसे टूट गयी।

राजा शुद्धोदन व्यथित हृदय तथागत के विहार में पहुँचे। एक तरफ जाकर बैठ गये। तथागत से बोले

'भन्ते !'

पुत्र ने पिता की ओर देखा। कुमार राहुल पात्र लिये भगवान् के पास बैठा था। वह भिक्षु था। उसी के समीप नन्द बैठा था। अपने दोनो पुत्रो और पौत्र को देखकर शुद्धोदन की आँखे भर आई।

तीनो भिक्षुओ के लिए जैसे शुद्धोदन अजनबी थे। उनके लिए राजा का कोई महत्त्व न रह गया था। उनके लिए एक प्रकार से कुल के इतिहास का अध्याय बन्द हो चुका था। उनके बीच पिता-पुत्र का सम्बन्ध नही रह गया था। पौत्र-पितामह का सम्बन्ध नही रह गया था। उनके बीच कुछ सम्बन्ध बाकी नही रह गया था।

शुद्धोदन ने तथागत को सम्बोधित किया·

'भन्ते !'

तथागत की दृष्टि शुद्धोदन पर उठी।

'मै एक बात कहना चाहता हूँ।'

तथागत ने कहने का संकेत किया।

'मुझे एक वर दो !'

तथागत गम्भीर हो गये। शुद्धोदन चुप थे। तथागत ने कहा :

'मै वर से दूर हूँ !'

'यदि यह उचित हो। यदि अदोष हो ?'

'अच्छा कहो गौतम !' तथागत ने कहा।

'तुम्हारे प्रव्रजित होने पर मुझे हार्दिक दु ख हुआ था।' वेदनामय वाणी से शुद्धोदन बोले · 'नन्द के प्रव्रजित होने पर दु ख और बढ गया। राहुल के प्रव्रजित होने पर वह अत्यधिक बढ गया है।'

नतमस्तक बोलते हुए शुद्धोदन की ओर भगवान् ने देखा। शुद्धोदन ने तीव्र वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर तथागत की ओर देखा। नन्द कुमार को देखा। राहुल को देखा। उसने रुद्ध कण्ठ से कहा

'भन्ते! पुत्र-प्रेम मेरे शरीर की त्वचा भेद रहा है। त्वचा भेदकर मेरे मास को भेद रहा है। मास भेदकर शिराओ को भेद रहा है। शिराओ को भेदकर अस्थिओ को भेद रहा है। मै आहत हो चुका हूँ। मै कष्ट पा रहा हूँ।'

तथागत ने पिता की आँखो मे आँसू देखा। कम्पित गात्र देखा। भर्राई हुई वाणी सुना। उन पर कोई प्रभाव नही हुआ। वह विकारो से दूर हो चुके थे।

नन्दकुमार और राहुल मे आमूल परिवर्त्तन हो चुका था। उनका जीवन समाप्त हो चुका था। उनके जीवन का नवीन अध्याय खुल गया था। पुराना सम्बन्ध सस्कार, मोह-माया, कुल, सब कुछ उनके लिए पुरानी भूली हुई बाते थी। नवीन धर्म मे प्रव्रजित होने पर, जैसे पुराना धर्म, पुराना सस्कार, पुराने सगे-सम्बन्धी, उनके लिए मर चुके थे। महत्त्वहीन थे।

कुछ समय ठहर कर, शुद्धोदन ने कण्ठ साफ करते हुए कहा · 'तथागत! मेरी विनती है। माता-पिता के जीवन-काल मे, बिना उनकी अनुमति के, उनकी सन्तानो को प्रव्रजित न किया जाय।'

तथागत ने शुद्धोदन को धार्मिक कथा सुनायी। राजा का मन भारी था। व्याकुल था। वृद्धावस्था के दुर्बल पदो को उठाता चला गया। उसका मन दु खी था। विषादित था।

उनके प्रस्थान पर, जाने पर, तथागव ने भिक्षु संघ को आमन्त्रित किया। धार्मिक कथा सुनायी। आदेश दिया ·

'भिक्षुओ। भविष्य मे जीवित माता-पिता की बिना अनुज्ञा उनकी सन्तान को प्रव्रजित न किया जाय।'

किन्तु राहुल के पिता तथागत स्वय थे। उन्होने महा मौद्गल्यायन को सकेत किया। उसका शिर मुँडा जाय।

राहुल कुमार का सुगन्धित केश काटा गया। माता ने उसका केश आज सँवारा था। पिता के पास भेजा था। किन्तु कुछ ही घडियो पश्चात् उसके राजकीय वस्त्र उतार दिये गये। माता ने सुरुचि पूर्ण ढग से वस्त्र पहना कर पिता के पास भेजा था। अलकार पहनाया था। सज्जित किया था। किन्तु उसके अलकार उतार लिए गये। उनके स्थान स्थान पर पिता ने दिया—मृत्तिका पात्र। पिता ने दिया—चीवर। और पिता ने दिया सर्वदा के लिए माता का वियोग। महाकाश्यप स्थविर राहुल के उपदेशक आचार्य हुए।

× × ×

राहुल सर्वदा पिता के साथ चारिका करते थे। भिक्षा माँगते थे। भगवान् उन्हे सर्वदा अभिन्नोवादवसेन सुनाया करते थे। राहुल वहुत ही विनम्र तथा विनीत थे। प्रात काल नित्य उठते थे। एक अजुली बालू लेकर भगवान् के पास जाते थे। निवेदन करते थे—'जितने इनमे कण है। क्या उतने शब्द हम सुन पायेगे ?'

राहुल के विनय की, उनके शील की सब प्रशसा करते थे। भगवान् इस प्रसग पर भिक्षुओ को तिपल्लट्ठ मिग तथा तित्तर जातक सुनाया करते थे।

तथागत राजगृह मे थे। कलन्द के निवाप मे विहार कर रहे थे। उस समय आयुष्मान् राहुल, अम्बलट्ठिका मे विहार करते थे। यह स्थान राजगृह के वेणु वन के एक ओर था। राहुल अभी सात वर्ष के थे।

सायकाल था। तथागत अपने आसन से उठे। राहुल के निवास-स्थान पर आये।

राहुल ने तथागत को देखा। आसन बिछा दिया। चरण धोने के लिए जल रख दिया। तथागत आसन पर बैठ गये। राहुल भगवान् का अभिवादन कर एक तरफ़ बैठ गये।

तथागत ने जल-पात्र उठाया। पात्र मे थोडा जल रहने दिया। शेष फेक दिया। पात्र राहुल को दिखाया। भगवान् ने प्रश्न किया :

'राहुल ! पात्र मे जल को देखते हो।'

'हॉ ! भन्ते।'

'राहुल ! ठीक इसी प्रकार उनका स्वल्प श्रमण भाव है, जिन्हे जानकर असत्य बोलने मे लज्जा का अनुभव नही होता।'

तथागत ने पात्र को पुन. उठाया। उसका थोडा जल बाहर फेंक कर कहा :

'राहुल ! तुमने देखा। मैने थोडा जल बाहर फेक दिया।'

'देखा भन्ते !'

'जिनको असत्य बोलने मे लज्जा का बोध नही होता, उनका इसी प्रकार का श्रमण भाव है।'

तथागत ने पात्र को उलट दिया। वे बोले :

'राहुल ! यह पात्र कैसे रखा है।'

'उल्टा रखा है, भन्ते !'

'जिन्हे जानकर झूठ बोलने मे लज्जा नही आती, उनका इसी प्रकार का उलटा श्रमण भाव है।'

तथागत ने पात्र सीधा रख दिया। राहुल से बोले

'राहुल ! यह पात्र तुम्हे सीधा दिखाई देता है ?'

'हॉ, भन्ते !'

'यह उलटा दिखाई दिया था ?'

'हॉ भन्ते !'

'राहुल ! जिन्हे जानकर असत्य भाषण मे लज्जा नही आती। उनका इसी तरह का खाली श्रमण भाव है। इसी प्रकार तुच्छ उनका श्रमण भाव है।'

'हॉ, भन्ते !'

'राहुल !' शास्ता ने कहा, 'सग्राम मे हाथी जाता है। उसका हरिस तुल्य लम्बा दॉत होता है। महाकाय होता है। अच्छी जाति का होता है।'

'हॉ, भन्ते !'

'तुमने सैनिक हाथी देखा है ?'

'हॉ, भन्ते !'

'वह युद्ध मे अपने अगले पैरो से भाग लेता है। पिछले पैरो से भाग लेता है। शरीर के अगले भाग से भाग लेता है। शरीर के पृष्ठ भाग से भाग लेता है। अपने मस्तक से भाग लेता है। शरीर से भाग लेता है। दाँत से भी प्रहार करता है। पूँछ से भी प्रहार करता है। किन्तु अपने सूँड़ को कामो से अलग रखता है।'

'हॉ, भन्ते !'

'राहुल ! हाथी के मुख्य कार्य और युद्ध का, साधन क्या है ?'

'सूँड है।'

'राजा ऐसे हाथी का कैसे विश्वास करेगा ? जिससे काम लेना चाहिए। उससे वह लेता नही। अनुपयोगी अग से लेता है।

'इस प्रकार के हाथी पर तुम्हारी आस्था होगी ?'

'नही, भन्ते !'

'यदि वही हाथी, पूँछ, दॉत, पैर, पीठ, छाती सबके साथ ही साथ सूँड से भी युद्ध करे, काम ले, तो क्या राजा को विश्वास करना चाहिए।'

'निश्चय भन्ते !'

इस प्रकार जिसे जानकर झूठ बोलने मे लज्जा नही आती, उसके लिए ऐसा कोई पाप कर्म नही है, जो अकरणीय होगा।'

'हाँ, भन्ते !'

'राहुल ! विनोद मे, हँसी मे, हास-परिहास में भी असत्य भाषण नही करना चाहिए।'

'हॉ. भन्ते !'

'राहुल ! तुमने दर्पण देखा है ?' तथागत ने पुन · पूछा।

'हॉ, भन्ते !'

'उसका क्या काम है ?'

'वह देखने के काम में आता है।'

'राहुल ! देख-देखकर शरीर से कार्य करना चाहिए। देख-देखकर वचन से कार्य करना चाहिए। देख-देखकर मन से कार्य करना चाहिए।'

'हाँ, भन्ते !'

'राहुल !' तथागत ने कहा . 'यदि तू शरीर से कार्य करना चाहता है, तो शरीर के कार्य पर विचार करो। उस समय विचार करना चाहिए। मेरा यह काय-कर्म अपने लिए दु खदायी तो नही है ? दूसरे के लिए दुख दायी तो नही है ? पर-अपर दोनो के लिए कष्टदायक तो नही है ? क्या यह अकुशल काय-कर्म है ? क्या यह दु ख का हेतु है ?'

'तो क्या करना चाहिए भन्ते ?'

'राहुल ! उस समय प्रत्यवेक्षा कर, विचार करना चाहिए। कर्म कर रहा हूँ। यह बुरा तो नही है ? यदि बुरा लगे, तो उसे नही करना चाहिए। यदि प्रत्यवेक्षा द्वारा तुम्हे ज्ञान हो जाय। जो काया से कर्म करने जा रहे हो, वह अपने लिए, दूसरे के लिए, कष्टप्रद नही है, तो राहुल ! यह कुशल काय-कर्म है। सुख का हेतु है।'

'अच्छा भन्ते !'

'राहुल !' भगवान् ने कहा 'काया से कर्म करते हुए भी अपनी काया से होते कर्म का प्रत्यवेक्षण करना आवश्यक है—जो कर्म मै कर रहा हूँ, यह कर्म अपने लिए कष्टप्रद है ? पीडा दायक है ? यदि राहुल, कर्म तुम्हे अकुशल प्रतीत हो तो, उसे त्याग देना चाहिए। यदि कुशल प्रतीत हो तो उसे करना श्रेयस्कर होगा।'

'उसके पश्चात् भन्ते ?'

'राहुल ! कर्म करने के पश्चात् भी उस कर्म का प्रत्यवेक्षण करना चाहिए। कर्म मैने समाप्त किया है। अपने लिए कष्टप्रद है। पीडादायक है। यह काय-कर्म अकुशल है या नही ? इस प्रकार के काय-कर्म को शास्ता के समीप अथवा सुब्रह्मचारी के समीप निवेदन करना चाहिए। उनसे स्पष्ट कहना चाहिए। भविष्य मे सयम का अवलम्बन करना चाहिए।

'यदि काया के अतिरिक्त वचन से कर्म किया जाय भन्ते।'

'राहुल ! यदि कुशल कार्य सम्पादन करेगा तो तुम प्रमोद से विहार करोगे।'

'यदि मन से करना चाहे ?'

'राहुल ! कुशल मन से कर्म करना चाहिए। यदि मन कर्म प्रत्यवेक्षण से अकुशल हो, तो उससे खिन्न होना चाहिए। उसमे शोक करना चाहिए। उसमे घृणा करनी चाहिए। उसमे शोक एव घृणा कर, भविष्य में सयम से कार्य करना चाहिए। इस प्रकार तुम प्रमोद से विहार करोगे।'

'लोगों ने किस प्रकार किया है भन्ते !'

'राहुल ! जिन भिक्षुओ ने, जिन ब्राह्मणो ने, अतीत काल मे, काय कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म परिशोधित किये है। उन लोगो ने प्रत्यवेक्षण किया है। प्रत्यवेक्षण द्वारा, काय-कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म, परिशोधित किया है। भविष्य काल मे इसी प्रकार प्रत्यवेक्षण करेगे। वर्तमान काल मे भी जिन लोगो ने परिशोधित किये है, उन्होने भी इसी परिक्रिया का अनुकरण किया है।'

'भन्ते !'

'राहुल ! तुम सीखो। तुम काय-कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म का प्रत्यवेक्षण करो। उनका परिशोधन करो।'

राहुल ने शास्ता के चरणो मे शिरसा नमामि किया। भगवान् ने आसन त्याग किया।

× × ×

राहुल की आयु अट्ठारह वर्ष की हुई थी। भगवान् ने राहुल को राहुलोवाद तथा राहुल सुत्त की शिक्षा दी थी। राहुल के विपश्ना निमित्त वह शिक्षा थी। भगवान् ने जब देखा कि राहुल की बुद्धि परिपक्व हो गयी है तो राहुल को एकाकी लेकर अन्धवन मे प्रवेश किये। वहाँ उन्होने राहुल को चुल्ल राहुलोवाद सुत्त का उपदेश दिया।

राहुल की साधना इतनी बढ गयी थी कि राहुल बारह वर्ष तक सोये नही। निद्रा देवी जैसे उसे भूल गयी थी। वह बारह वर्ष चारपाई या शय्या पर शयन नही किया था।

यद्यपि राहुल भगवान् के पुत्र थे परन्तु भगवान् का प्रेम राहुल से कम देवदत्त, अगुलिमाल, धनपाल के लिये नही था। राहुल की भद्रता के कारण उसका नाम राहुल भद्र हो गया था। भगवान् के पुत्र तथा

स्वयं अर्हत होने के कारण राहुल ने स्वय कहा था कि राहुल भद्द की उपाधि के वह योग्य था। राहुल को भगवान् का दाहिना कान कहा गया है।

वह मननशील हो गया। उसे धर्म का वास्तविक ज्ञान होने लगा। निर्वाण पथ की ओर आरूढ हुआ। उसके मुख से उदान निकल गया ·

'धर्मो को मै देख रहा हूँ। मेरे आश्रव क्षीण हो गये है। मेरा पुनर्जन्म नही होनेवाला है। मै अर्हत हूँ। मै दक्षिणार्ह हूँ। मै त्रिविध हूँ। मै निर्वाण का दर्शनकारी हूँ। जगत् कामान्ध है। काम जाल से आवृत है। तृष्णा वस्त्र द्वारा आच्छादित है। मै काम को तिरोहित कर मार के बन्धन को छिन्न कर तृष्णा को आमूल नष्ट कर शात्त हुआ हूँ। निवृत्त हुआ हूँ।'

इस महान् आत्मा की मृत्यु सारिपुत्र तथा भगवान् के महा परिनिर्वाण के पूर्व हो गयी थी।

× × ×

—और भगवान् को पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे बीसवाँ स्थान प्राप्त शाक्य कपिलवस्तु सिद्धार्थ कुमार के पुत्र क्षत्रिय कुलोत्पन्न राहुल श्रद्धाओ से प्रव्रजितो मे अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ

महावग्ग १ ३ : ११
थेर गाथा १९३, उदान २९५-२९८
मज्झिम निकाय २ २ १
मज्झिम निकाय ३ ५ ५
संयुक्त निकाय १७ १ १–१० ३३ ३ . ३ ८
सुत्तानपात २३
म० प्र० ६ ३ २४, २६,

J ı . 62, · ıı 393, 160, · ııı 64, ı 60
AA ı 82, 145; ıı . 547, 141,
A ı 24
Thag vs . 295
Vın ı 82, . ııı 16,
SA . ııı . 26
DhA : ı · 98, 70, 172, 124, : ıv 164, 69,
MA ı . 635, ıı : 722
SAA ı 340, 341, 200,
Apadan ı 60
Mıl 413, 410,
DA ıı . 549, : ııı 736
MA ı 537

अनुरुद्ध,[1] भद्दिय,[2] उपालि,[3] किम्बिल,[4] आनन्द,[5] भृगु, देवदत्त की प्रव्रज्या

यस्सासवा परिक्खीण आहारे च अनिस्सितो।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्नय॥

[परिक्षीण आश्रव, आहार मे अनासक्त शून्य, अनिमित्त तथा विमोक्ष गोचर व्यक्ति की गति गगनगामी पक्षियो तुल्य अज्ञेय (दुरन्नय) है।]

—ध० ९३

भगवान् ने चारिका आरम्भ की। कपिलवस्तु से मल्लो के देश में आये। उस दिन आम्र वन मे विहार किया। वहाँ कुलीन शाक्य कुमार प्रव्रजित हो रहे थे।

---

(१) अनुरुद्ध . भगवान् के परिनिर्वाण के समय अनुरुद्ध कुशीनारा मे उपस्थित थे। आनन्द जव दुखी हुए। विलाप करने लगे। उस समय अनुरुद्ध ने शान्ति तथा अद्भुत धैर्य का प्रदर्शन किया था। प्रथम संगति मे अनुरुद्ध ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। अंगुत्तर निकाय का उत्तरदायित्व उन्हे दिया गया था।

अनुरुद्ध पच्चीस वर्षो तक विल्कुल शयन नही किया था। अन्तिम तीस वर्ष तक केवल अन्तिम पाद मे शयन किया था।
अनुरुद्ध की मृत्यु वेलुगाँव, वज्जिदेश मे हुई थी।

अनुरुद्ध को भगवान् का हृदय कहा गया है।

(२) भद्दिय . नाम के कम-से-कम चार व्यक्तियो का वर्णन बुद्ध साहित्य मे आता है। उनके कारण मुझे स्वय कितनी ही वार भ्रम उत्पन्न हो गया था। लंकुटक भद्दिय, पंचवर्गीय भद्दिय, लिच्छवी भद्दिय, श्रेष्ठीय भद्दिय सभी भिन्न व्यक्ति है। भद्दिय नगर भी अगदेश अर्थात् चम्पा मे था। कभी-कभी भद्र तथा भद्दिय मे भी भ्रम हो जाता है।

शुद्धोदन के कनिष्ठ भ्राता भगवान् के चाचा अमृतोदन के महानाम तथा अनुरुद्ध दो पुत्र थे। अनुरुद्ध सुकुमार था। उसके लिए गर्मी, जाडा, बरसात के लिए तीन प्रासाद बने थे। चार मास वर्षा-काल मे वह प्रासाद के ऊपर ही रहता था। अपुरुषो के वाद्यो द्वारा सेवित होता था।

महानाम शाक्य ने विचार किया। कुलीन शाक्य कुमार प्रव्रज्या ले रहे थे। प्रव्रजित हो रहे थे। अपने कुटुम्ब से मुझे या अनुरुद्ध को प्रव्रजित होना चाहिए।

महानाम कनिष्ठ भ्राता अनुरुद्ध के समीप गये। उससे स्नेह से कहा :

'अनुरुद्ध ! सभी कुलीन कुलो के शाक्य कुमार प्रव्रजित हो रहे है। हमारे घर से कोई प्रव्रजित होना चाहिए।'

'होना चाहिए भाई !'

'हममे से किसी एक को प्रव्रज्या लेनी चाहिए।'

'भाई ! मै सुकुमार हूँ। मुझसे घर छोड़ा नही जायगा। आप ही प्रव्रज्या ले।'

महानाम प्रसन्न हो गया। उसने प्रव्रज्या ग्रहण का निश्चय किया।

× × ×

---

(३) उपालि भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् राजगृह की प्रथम सगति मे महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। विनयपिटक के विषय मे वह उसी प्रकार autsoiug माना जाता था जैसे आनन्द धम्मपिटक के विषय मे था। दोनो का निर्णय एक प्रकार से निर्णायक होता था। भगवान् की जीवित अवस्था मे भी भिक्षु उपालि से विनय की शिक्षा लेते थे। विनयधरो मे वह प्रमुख था। उसकी मृत्यु उदायी भद्र के चतुर्थ राजत्व काल वर्ष मे हुआ था।

उपालि को भगवान् के ललाट का तिलक कहा गया है।

(४) किम्बिल एक और किम्बिल का उल्लेख मिलता है। वह एक श्रेष्ठी का पुत्र था। उसका निवास स्थान किम्बिला था। गगा के तट पर यह नगर आवाद था।

(५) भृगु बालक लोण ग्राम का निवासी था। शाक्य कुल का था। भगवान् ने उसे एक दिन और एक रात एक बार उपदेश दिया था। भृगु नाम के कई व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है।

'अनुरुद्ध ! मै जाऊँगा । गृहस्थी का भार तुम पर पडने वाला है। तुम सुकुमार हो । गृहस्थी की कुछ बाते समझ लेना आवश्यक है।'

'निश्चय !' अनुरुद्ध ने विश्वास के साथ कहा।

'सुनोगे ! गृहस्थी कैसे करनी चाहिए।'

'हाँ !'

'पहले खेत को खूब जोतना चाहिए। तत्पश्चात् उसे सुचारु रूप से पुष्ट बीजो से बोना चाहिए। अकुरित होने पर उसे जल से सीचना चाहिए। सीचने के पश्चात् सूखने पर गोड़ना चाहिए। निराना चाहिए।'

महानाम ने ठहरकर पुन कहा—'खेती पक जाने पर काटना चाहिए। काटकर ऊपर लाना चाहिए। सुखाना चाहिए। सीधा रखना चाहिए। दौरी चलाना चाहिए। मसलने पर दाने अलग हो जायेगे। पुवाल हटाना चाहिए। उसके पश्चात् भूसी फटकवाना चाहिए। भूसी के पश्चात् उसे हवा मे ओसाना चाहिए। भूसे का पुवाल तथा दाने अलग हो जायेंगे। उन्हे पछोरकर एकत्रित करना चाहिए। इस प्रकार खेती की प्रक्रिया पूर्ण होती है।'

'और ?' अनुरुद्ध ने पूछा।

'इसी प्रकार प्रतिवर्ष कृषि करनी चाहिए। उनका प्रकार एक ही है। प्रतिवर्ष इसकी पुनरावृत्ति होती रहेगी।'

'और ?'

'अनुरुद्ध ! आवश्यकताओ का अवसान नही। काम का अन्त नही होता।'

'किन्तु भाई ! इस क्रम का कभी अन्त भी होगा ?'

'तात !' महानाम ने कहा : 'कर्म का अन्त नही होता। उनका अन्त प्रतीत नही होता। कर्मो को बिना समाप्त किए, हमारे पूर्वज दिवगत हो गये थे।'

'और हम—?'

'हमारी भी यही गति होगी।'

'कभी इस चिन्ता का अन्त होगा ?'

'नही भाई !'

'भाई महानाम ! आप ही गृहस्थी सम्हालिये । सीमाहीन, अन्तहीन । इन कर्मो के चक्कर मे आप ही पडिये । आप ही इस चिन्ता की गठरी ढोइये ।'

'और तुम ?'

'मै प्रव्रजित हूँगा ।' महानाम गम्भीर हो गया। वह जैसे अपनी बातो मे स्वय फँस गया था ।

× × ×

कुमार अनुरुद्ध माता के पास गया । माता की वन्दना की । सादर बोला :

'माँ !' गृह-त्याग की मेरी अभिलाषा है । मै प्रव्रजित होना चाहता हूँ । प्रव्रज्या की मुझे अनुमति दीजिये ।'

'प्रिय !' माँ चकित हुई । 'तुम दोनो मेरे प्रिय पुत्र हो । मृत्यु के उपरान्त भी तुमसे अनिच्छुक नही हूँगी । मै अपनी जीवितावस्था मे कैसे तुम्हे गृहत्याग की अनुमति दे सकती हूँ ? कैसे भिक्षु बना देख सकूँगी ?'

'नही माँ, मै प्रव्रजित हूँगा ।'

'मेरी जीवितावस्था मे नही ।'

'माँ—?'

'क्या है ?'

'मै प्रव्रजित हूँगा ।'

'नही ।'

अनुरुद्ध दु खी हो गया । अनुरुद्ध का बाल जन्य हठ माँ ने देखा । उसका सरल हृदय भर आया । वह किसी भी अवस्था मे पुत्र को दु खी नही देखना चाहती थी ।

माँ ने एक उपाय निकाला । भद्दिय शाक्यो का राजा था । अनुरुद्ध का मित्र था । वह राज्य त्याग कर प्रव्रजित नही हो सकता था । माँ ने कहा :

'अच्छा ! शाक्यराज भद्दिय प्रव्रज्या ले, तो तू भी प्रव्रजित हो जाना ।'

अनुरुद्ध प्रसन्न हो गया । माँ पुत्र की प्रसन्नता देखकर मुसकुराई ।

भद्दिय शाक्य अनुरुद्ध का मित्र था । उच्च कुलोत्पन्न था । शाक्यराज

वंश का था। कपिलवस्तु का था। अनुरुद्ध को विश्वास था। उसका काम बन जायगा।

× × ×

'सौम्य !' अनुरुद्ध ने निवेदन किया।

'अनुरुद्ध !' कुशल से तो हो ?'

'सौम्य कृपा है। मै एक प्रयोजन से आया हूँ।'

'कहो सौम्य।'

'मेरी प्रव्रज्या आप पर निर्भर है।'

'मुझ पर ?'

'हाँ'

'कैसे ?'

'माँ ने यही शर्त रखी है। बिना माता-पिता की आज्ञा मै प्रव्रज्या नही ले सकता।'

'अनुरुद्ध ! सौम्य !! यदि तुम्हारी प्रव्रज्या मुझ पर निर्भर है तो मै कहता हूँ। तुम सुखपूर्वक प्रव्रज्या ले लो।'

'हम दोनो क्यो न प्रव्रजित्त हो जायँ।'

अनुरुद्ध ने उत्साह के साथ कहा।

'सौम्य ! मै इस समय असमर्थ हूँ। तुम्हारे लिए और जो कुछ हो सके, कहो। करूँ। तुम प्रव्रज्या ग्रहण कर लो।'

'किन्तु माँ ने शर्त रखी है—?'

अनुरुद्ध उदास हो गया।

'क्या शर्त है—?' राजा मुसकुराया।

'उन्होने कहा है—'यदि आप प्रव्रजित हो जायँ तो वह मुझे भी प्रव्रज्या लेने की अनुमति दे देगी।'

'किन्तु—'

'नही सौम्य ! आपने वचन दिया है। यदि मेरी प्रव्रज्या आपके अधीन है तो वह अधीन मुक्त-होगी।'

'कहा है—?'

'आप वचनबद्ध है। आइए हम दोनों प्रव्रजित हो जायँ।'

'अनुरुद्ध—!'

'आप क्या वचन का पालन नही करेगे ?'

'करूँगा।'

'ओह—!' अनुरुद्ध आनन्दित हो गया।

'अनुरुद्ध ! मै प्रव्रजित हूँगा। किन्तु तुम्हे सात वर्प ठहरना होगा।' शाक्य राजा ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

'सौम्य ! सात वर्प बडा दीर्घ काल है।'

'अच्छा छह वर्ष।'

'वह भी दीर्घ है। मै इतने दिनो कैसे बिना प्रव्रज्या रह सकूँगा ?'

'अच्छा पाच वर्ष !'

'नही।

'अच्छा चार वर्ष '

'नही।'

'अच्छा तीन वर्ष।'

'नही।'

'अच्छा दो वर्ष।'

'नही'।'

'अच्छा एक वर्ष।'

'नही।'

'अच्छा सात मास।'

'नही।'

'अच्छा छ मास।'

'नही।'

'अच्छा पाच मास।'

'नही।'

'अच्छा चार मास।'

'नही।'

'अच्छा तीन मास।'

'नही।'

'अच्छा दो मास।'

'नही।'

'अच्छा एक मास।'

'नही।'

'अनुरुद्ध आध मास मे हम दोनो प्रव्रजित होगे।'

'आधा मास भी सुदीर्घ काल है। कल क्या होगा? कौन जानता है? इतने दिन मै कैसे ठहर सकता हूँ?'

'अच्छा एक सप्ताह ठहर जाओ।'

'क्यो?'

'मै राज्य का कार्यभार अपने पुत्रों और भाइयो को सौप दूँ। उन्हे समझा दूँ।'

'सौम्य! एक सप्ताह का काल अधिक नही होता। मै ठहर जाऊँगा।'

× × ×

सात दिन बीता।

भद्दिय राजा, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त शाक्य कुमार उपालि नापित के साथ चले। उनके साथ चतुरगिणी सेना चली। दूर पहुँचने पर भद्दिय ने सेना लौटा दी। वे दूसरो की राज्य-सीमा मे पहुँच गये।

अपनी सीमा पार करने पर आभूषण आदि राजा ने उतार दिया। उसे उतारने मे बाधा उपालि से भद्दिय राजा बोले

'भणे! उपालि! तुम्हारा लौट जाना उचित है।'

'राजन्! यह क्या?' उपालि ने साश्चर्य जिज्ञासा की।

'उपालि! इन अलकारो को ले लो। तुम्हारे सम्पूर्ण जीवन के व्यय

निमित्त पर्याप्त है।'

'जैसी आज्ञा।'

× × ×

उपालि कुमारो को प्रणाम कर लौटा। मार्ग मे उपालि ने विचार किया।

'शाक्य कुमार क्रोधी होते है। वे समझेगे। मैने कुमारो की हत्या करा डाली है। उनका धन ले लिया है। वे मेरा वध करवा देगे। यह राजकुमार है। प्रव्रजित होगे। मुझे क्या लेना लादना है।'

उसने अलकारो की गठरी खोली। उन्हे वृक्षो पर टाँग दिया। जो देखेगा ले लेगा। निश्चय कर अलकारो का मोह त्याग दिया। उपालि शाक्य कुमारो के समीप लौट आया।

कुमारो ने उपालि को दूर से आते देखा। समीप आने पर पूछ बैठे :

'भणे! तुम क्यो लौट आये?'

'आर्य पुत्रो!' उपालि ने कहा, 'शाक्य क्रोधी होते है। वे मुझे मार डालेगे। इसलिए मैने आभूषणो को वृक्ष पर लटका दिया। लौट आया।'

'भणे उपालि! तुमने उचित कार्य किया। शाक्य क्रोधी होते है। वे सोचते-तुमने हमे मरवा डाला। प्रतिहिसा के वशीभूत होकर वे तुम्हारी हत्या कर डालते।'

'कुमार! हम भी साथ रहेगे।'

'अवश्य।' शाक्य कुमार प्रसन्न हो गये।

× × ×

शाक्य कुमारो ने उपालि को साथ लिया। तथागत की सेवा मे वे उपस्थित हुए। उनकी वन्दना की। एक ओर बैठ गये। भगवान् को सुनने की मुद्रा मे देखकर बोले. 'भन्ते! शाक्य अभिमानी होते है। यह उपालि है। नापित है। बहुत दिनो से हमारी सेवा मे है।'

तथागत ने उपालि की ओर देखा। उपालि ने भगवान् को अजलिबद्ध प्रणाम किया। वन्दना किया :

'भन्ते! उपालि नापित है। हम शाक्य है। आप पहले उपालि को प्रव्रजित करे।'

'क्यो कुमारो ?'

'भन्ते ! उसके प्रव्रजित होने पर हम उसका ,प्रत्युत्थान करेगे। अभिवादन करेगे। उसे करबद्ध प्रणाम करेगे।'

'इससे क्या होगा कुमारो ?'

'भन्ते ! हमारा अभिमान तिरोहित होगा। शाक्यो के शाक्य गर्व का लोप होगा। हम सघ मे एक है। हमारी कोई जाति-पाँति नही है। हम अपने सेवक की वन्दना करेगे। हम सब एक है। स्वामी सेवक का भाव समाप्त।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।' तथागत ने उनके भावो का आदर करते हुए कहा।

शाक्यो के पूर्व उनके सेवक उपालि नापित को तथागत ने प्रव्रजित किया।

शाक्यो ने किसी दिन के सेवक उपालि की प्रदक्षिणा की। अभिनन्दन किया। वन्दना की।

अनन्तर भगवान् ने शाक्य कुमारो को प्रव्राजित किया। जाति-पाँति, भेद-भावहीन सघ मे सब एक जैसे मानव रूप मे प्रविष्ट हुए। —और हो गया मानवकृत मिथ्या गर्व का नाश।

× × ×

एक समय भगवान् उपालि को उपदेश दे रहे थे। उपालि ने सानुनय निवेदन किया

'भन्ते ! मुझे अरण्य निवास निमित्त न भेजिए।'

'उपालि !' भगवान् ने कहा 'अरण्य मे तुम्हारे एक ही विषय का विकास हो सकता है।'

'यदि मै सघ मे रहूँ भन्ते !'

'उपालि ! साथ रहने पर तुम्हारे अनेक गुणो का विकास हो सकता है।'

'क्या विकसित होगा भन्ते !'

'ज्ञान के अतिरिक्त तुम्हारे आभ्यन्तरिक दृष्टि का विकास होगा।'

उपालि ने भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। अपने विहार मे आया।

उपालि ने अभ्यास द्वारा अपनी अन्तर्दृष्टि विकसित की। अरहन्त पद प्राप्त किया।

भगवान् ने उपालि को स्वय सम्पूर्ण विनयपिटक पढाया।

उपालि ध्यान रत रहने लगा। एक दिन उसके कण्ठस्वर से उदान उद्भूत हुआ

'तरुण प्रव्रजित कल्याण मित्र की सगति करे। आलस्यरहित हो शुद्ध जीविका मे लग्न हो। भिक्षु सघ मे निवास के समय विनय का पाठ करे। उसे ग्रहण करे। अभिमानरहित उचित एव अनुचित का निर्णय कर, कार्यरत हो।'

× × ×

शाक्य कुलीय किम्बिल महाधनी था। भगवान् ने अनूपिया मे विहार करते समय किम्बिल की परिपक्व बुद्धि को लक्ष्य किया। उसे और धर्म मे विकसित करने के लिए एक दिन भगवान् ने किम्बिल को बुलाया। किम्बिल आया। भगवान् की वन्दना किया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया।

भगवान् ने अपनी ऋद्धि द्वारा एक अत्यन्त सुन्दरी कामिनी वहाँ उत्पन्न की। वह युवती थी। अत्यन्त रूपवती थी। किम्बिल ने उसे देखा। सहसा वह युवती से प्रौढ हुई। वृद्धा हुई। रूप का वह परिवर्तन देखकर किम्बिल को तीव्र विराग हो गया। उसके अन्तर्चक्षु खुल गये। उसे जगत् की, रूप की, मानव की अनित्यता का ज्ञान हुआ। उसमे धर्म जिज्ञासा और तीव्र हुई। उस दृश्य को स्मरण कर वह कह उठा—'इस प्रहार द्वारा आक्रान्त आयु गिरती जाती है। इस आयु के ढलने के साथ-ही-साथ अपने आपको अन्य ही पाने लगा हूँ।'

भद्दिय अरण्य मे विहार करते हुए; शून्य गृह मे निवास करते हुए, वृक्षो की सघन छाया मे बैठते हुए, सर्वदा स्फुट वाणी से उदान कहा करते थे—अहो! सुख!! आनन्द!! अहो! सुख!! अहो! सुख!!

उसके मित्रो मे शका ने प्रवेश किया। प्रव्रज्या की पृष्ठभूमि मालूम थी। अनुरुद्ध के वचन के कारण प्रव्रजित हुआ था। राज्य सुख भूला नही था। अतएव एकान्त मे वह सुख-सुख ही सुख कहता रहता था।

भद्दिय मन से प्रव्रज्या नही लिया था। उसने प्रव्रज्या लिया था।

इसलिए कि उसने वचन दिया था। अनिरुद्ध के प्रव्रज्या दिलाने के निमित्त प्रव्रज्या लिया था। वह अपना राज्य सुख भूला नही था। भिक्षुओ के मन मे सन्देह घर कर गया।

भद्दिय का आचरण अनेक भिक्षुओं ने देखा। वे तथागत के पास गये। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना किया। एक ओर बैठ गये। भिक्षुओ ने अनुकूल अवसर देखकर निवेदन किया :

'भन्ते! आयुष्मान् भद्दिय—अनमने ब्रह्मचर्य का चरण कर रहे है। राज्य सुख का स्मरण करते है। उनकी तृष्णा शान्त नही हुई है। उनका मन भोग से विरत नही हुआ है।'

'भिक्षुओ!' तथागत ने कहा· 'भद्दिय से जाकर कहना—"आवुस! भद्दिय!! आपको शास्ता स्मरण कर रहे है।"'

भिक्षुओ ने प्राजलि भूत तथागत की आज्ञा शिरोधार्य की।

× × ×

'आवुस!' भिक्षुओं ने भद्दिय के समीप पहुँचकर निवेदन किया—'शास्ता ने आपको स्मरण किया है।'

'आवुस! चलता हूँ।'

भद्दिय भिक्षुओ के साथ तथागत के समीप आये। भगवान् का अभिवादन किया। बन्दना किया। एक ओर बैठ गया।

'भद्दिय! अरण्य मे निवास करते हुए भी तुम उदान कहते हो-अहो! सुख!! अहो सुख!! अहो सुख!!'

'हाँ भन्ते!' भद्दिय ने स्पष्ट कह दिया। उसे किंचित् मात्र सकोच नही हुआ।

'भद्दिय! अरण्य मे क्या अवलोकन करते हुए निवास करते हो?'

'भन्ते! राजकाल मे अन्त पुर मे निवास करता था। वहाँ सुरक्षित था। नगर के भीतर रक्षित रहता था। बाहर रक्षित रहता था। देश के भीतर रक्षित था। बाहर भी रक्षित था। इस प्रकार रक्षित रहने पर भी, भयभीत था। गोपनीय ढंग से रहता था। शंकित रहता था। उद्विग्न रहता था। त्रसित रहता था।'

'और अब—?'

'भन्ते ! एकाकी अरण्य मे रहता हूँ। शून्य गृह मे रहता हूँ। अभय अनुद्विग्न रहता हूँ नि शक रहता हूँ। अत्रासयुक्त रहता हूँ। चिन्ताहीन रहता हूँ—।'

'तो—?'

'इसे देखकर हृदय से अनायास वाणी स्फुट होती है। हा ! सुख ! हा आनन्द !!'

'साधु भद्दिय' भिक्षुसघ ने साधुवाद किया।

× × ×

अनुरुद्ध एक दिन वेणुवन राजगृह मे विहार कर रहे थे। उनका चीवर फट गया था। भिक्षु पाशुकूल अर्थात् चिथडा बीनकर चीवर बनाते थे।

अनुरुद्ध कूडाखानो और घूरो पर चीवर बनाने के लिये चिथडा खोज रहे थे। अनुरुद्ध को एक घूर मे तेरह हाथ लम्बा और चार हाथ चौडा वस्त्र मिल गया। अनुरुद्ध ने उसे ले लिया।

अनुरुद्ध को मालूम नही था। उनकी पूर्व भार्या तावतिस भवन मे जन्म ली थी। उसने अपने पूर्व पति का अत्यन्त फटा चीवर देखा। यह घूर पर वस्त्र ढूँढते थे। अनुरुद्ध के आगमन के पूर्व वह घूर पर आयी। वस्त्र घूर के कतवारो मे इस प्रकार छिपाकर रख दिया कि वह देखा नजा सके।

× × ×

दूसरा दिन था। भिक्षु चीवर सी रहे थे। भगवान् भी वही उपस्थित थे। अनुरुद्ध अपना चीवर सीने लगे।

दूसरी ओर अनुरुद्ध की पूर्व भार्या ने नगर मे घोषणा करना और करवाना आरम्भ किया—'भिक्षुगण आज भिक्षाटन निमित्त नगर मे प्रवेश नही करेगे। विहार मे ही दान स्वरूप भोज्य सामग्री पहुँचा दी जाय।'

मध्याह्न पूर्व विहार मे, यवागू, भात तथा इतना भोज्य पदार्थ एकत्रित हो गया कि खाने से वच गया। भिक्षुओं को नगर मे भिक्षाटन हेतु जाना नही पड़ा।

बात मालूम हो गयी। अनुरुद्ध के किसी सम्बन्धी के कारण भोज्य पदार्थ आया था। भिक्षु ईर्ष्या बस कहने लगे :

'यह दिखाना चाहता है।'

'हाँ, उसके कितने सम्बन्धी यहाँ है।'

'देखो—कितना अधिक मँगा लिया।'

'ओह—फेकना पडेगा।'

भिक्षुओ की यह काना-फूसी भगवान् को नही रुची। वे बोले :

'आवुसो ! क्या अनुरुद्ध ने इसे मँगाया है।'

'हाँ।' एक आवाज सुनायी पडी।

'नही आवुसो ! अनुरुद्ध ने उन्हे नही मँगाया है।'

'हमने यही सुना है—।'

'आयुष्मानो ! क्षीणाश्रव आहार सम्बन्धी बात नही करते।'

'तो यह कहाँ से आया ?'

'एक देवता के अनुभाव द्वारा आया है।'

भिक्षु शान्त हो गये। भगवान् अपने विहार मे जाने लगे। संघ ने भगवान् को अजलिबद्ध प्रणाम किया।

× × ×

अनुरुद्ध निरन्तर धर्मपथ की ओर बढते गये। उन्होने उदान कहा :

'मै पाँच काय गुणो तथा माता, पिता, भगिनी, भ्राता और बन्धुओ को त्यागकर ध्यानरत हुआ हूँ। मै आपके शब्द के साथ, नृत्य के साथ, गान के साथ, पूर्वकाल मे शय्या त्याग करता था। किन्तु शुद्धि से दूर रहा। विषय मे रत रहा। मैने उनका त्याग किया है। बुद्ध शासन मे रत हूँ। मै समस्त प्रवाहो से अलग होकर ध्यान रत हूँ। रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श इन्द्रिय कर्मो को त्याग कर ध्यान रत हूँ। भिक्षा के पश्चात् एकाकी पांशुकुल का अन्वेषण करता हूँ। मै उन पाशुकूलो को प्रक्षालित करता हूँ। उन्हे रँगता हूँ। धारण करता हूँ। मै आश्रवो से रहित हो गया हूँ। अनन्त इच्छाचारी, असन्तोषी, विक्षिप्त चित्त जनो के साथ रहनेवालो मे अशुद्ध एवं पापयुक्त विचारो का उदय होता है।

'जिनकी इच्छाए सीमित है। जो स्मृतिमान है। सन्तोषी है।

अविक्षिप्तचित्त है। एकान्त प्रिय है। प्रमुदित है। उद्योगी है। वे आश्रव रहित होते है। उनमे कुशल बुद्ध प्रतिपादित धर्म का उदय होता है।

'मै अपने पचपन वर्ष के सुदीर्घ काल मे कभी शयन नही किया। पैतीस वर्ष तक निन्द्रा को समूल नष्ट किया है।'

× × ×

'अनुरुद्ध! वृद्धा वस्था घेरे आ रही है। दूसरा जन्म ग्रहण कर सुख प्राप्त करो।' एक देवता ने अनुरुद्ध के उद्‌बोधित किया। अनुरुद्ध ने उत्तर दिया

'मै देवलोक मे निवास नही करना चाहता। मेरी जन्म परम्परा क्षीण हो गयी है। मै पुर्नजन्म के क्रमो से दूर हो गया हूँ, देव!'

'आयुष्मान्! देवता किनको देखते है।' भिक्षुओ ने अनुरुद्ध का उदान सुनकर प्रश्न किया।

'आवुसो।' अनुरुद्ध ने कहा 'ऋद्धि बल पूर्ण, जन्म एवं मृत्यु काल विज्ञ, भिक्षु को देवता देखते है। वह स्वयं मुहूर्त मात्र मे सहस्रो रूप से ब्रह्म लोक सहित अन्य लोको को देखता है।'

'आयुष्मान्!' भिक्षुओ ने प्रश्न किया। 'आपको पूर्व जन्म की बाते स्मरण है?'

'भिक्षुओ! स्मरण है।' अनिरुद्ध ने कहा, 'मै पूर्व जन्म मे सर्व प्रथम अन्नहार नामक दरिद्र था। अपनी जीविका निमित्त घोर परिश्रम करता था। मैने अपनी उस दरिद्रावस्था मे दुवरिट्ठ श्रमण को दान दिया था। अतएव उस पुण्य के कारण शाक्य कुल मे जन्म ग्रहण किया है। मुझे अपने पूर्व जन्मो का ज्ञान है। मुझे उसका भी ज्ञान है। जहाँ मै अपने पूर्व जन्मो मे निवास करता था। तावतिस देवताओ के मध्य मैने सात बार जन्म लिया है। मानवो मे सात बार जन्म लेकर मैने राज्य सूत्र ग्रहण किया है। मैने चारो दिशाओ का विजय किया था। खड्ग एव शस्त्र रहित मै जम्बूदीपेश्वर बनकर शासन किया है। मै अपने चौदहो जन्मो को जानता हूँ। पाच अगो युक्त समाधि का मैने अभ्यास किया है। मैने शान्त होकर, एकाग्र होकर, चित्त प्रश्रब्धि को प्राप्त किया है। मेरे दिव्य चक्षु विशुद्ध हो गये है।'

'और ध्यान आयुष्मान!' भिक्षुओ ने प्रश्न किया।

'आवुसो ।' अनुरुद्ध ने कहा 'मै पांचो अंगो से युक्त ध्यान में स्थिर हूँ। मै जन्म, मृत्यु, आवा—गमन, प्राणियों को जानता हूँ। मरे आखो के सम्मुख मानव एव मानवेतर जन्मो की शृंखलाये है।

'आयुष्मान ! आपका भविष्य क्या हम जान सकेगे ?' भिक्षुओ ने निवेदन किया।'

'आवुसो।' अनुरुद्ध ने कहा।' मैने शास्ता की सेवा किया है। वुद्ध शासन को पूर्ण किया है। मैने इस भवका महान् बोझ उतार कर फेक दिया है। भव तृष्णए समूल नष्ट हो गयी है। मै अपने इस जीवन की अन्तिम घडी वज्जियो के वेलु ग्राम मे, वेणु वन मे, आश्रव हीन निर्वाण प्राप्त करूगा।'

भद्दिय धर्म पथ पर निरन्तर अग्रसर हो रहे थे। एकदिन उनके मुख से उदान निकल गया

'ओह ! मे कभी सूक्षाम्बर धारण करता था। हाथी पर आरूढ होता था। स्वादिष्ट मास सहित भात खाता था। आज मृत्तिका पात्र मे तुरन्त प्राप्त भिक्षा ग्रहण करता हूँ। मै आसक्ति रहित हूँ। ध्यान शील हूँ। मै अपने पाशुकूल मय चीवर से सन्तुष्ट हूँ। भिक्षा से सन्तुष्ट हूँ। तीन चीवरो से सन्तुष्ट हूँ। सपदान चर्या से सन्तुष्ट हूँ। एका हार से सन्तुष्ट हूँ। भिक्षा पात्र के भोजन से सन्तुष्ट हूँ। उसमे भोजन करने से सन्तुष्ट हूँ। मै केवल एक समय भोजन करता हूँ। पुन आहार के समीप नही जाता। मै वन मे सन्तुष्ट हूँ। वृक्ष भूत के निवास मे सन्तुष्ट हूँ। विशाल खुले स्थान मे रहने से सन्तुष्ट हूँ। स्मशान मे रहने मे सन्तुष्ट हूँ। कही भी किसी स्थान मे रहने मे सन्तुष्ट हूँ। मै विना लेटे ही विश्राम करने मे सन्तुष्ट हूँ। मेरी आवश्यकताएँ अत्यन्त परिमित है। मै उसी से सन्तुष्ट हूँ। मै एकान्त मे निवास करता हुँ। एकाकी रहता हूँ। उद्योगी हूँ। तुरन्त अपने पात्र मे प्राप्त दिक्षा से सन्तुष्ट हूँ। मैने वह मूल्य कासे और स्वर्ण पात्र का त्याग कर दिया है। मृत्तिका पात्र लिया है। यही मेरा द्वितीय अभिषेक है। उत्तु ग वृत्ताकार प्राकारो से परिवेष्टित दृढ प्रासादो एव कोठो से युक्त खर्ग हस्त रक्षको से सुरक्षित होने पर भी मै भय ग्रस्त रहता था। आज मै भय रहित हूँ। त्रास रहित हूँ। वन मे निर्भय एकाकी रहता हूँ। ध्यान करता हूँ। शील नियमो मे प्रतिष्ठित हूँ। स्मृति एवं प्रज्ञा के अभ्यास मे रत हूँ। क्रमश मै सब बन्धनो का उच्छेदन किया है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षुश्रावको मे पाँचवाँ स्थान प्राप्त शाक्य देशीय कपिलवस्तु नगर निवासी भगवान् के चाचा अमृतोदन शाक्य पुत्र क्षत्रिय कुलोत्पन्न अनुरुद्ध दिव्य चक्षु वालो मे अग्र हुए थे।

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे, भिक्षु श्रावको मे छठवाँ स्थान प्राप्त शाक्य देशीय कपिलवस्तु नगर निवासी क्षत्रिय कुलोत्पन्न कालि गोधा पुत्र भद्दिय उच्च कुलीनो मे अग्र हुए थे।

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे पैतीसवाँ स्थान प्राप्त शाक्य कपिलवस्तु निवासी नापित कुलोत्पन्न उपालि विनय-धरो मे अग्र हुआ था।

●

आधार ग्रन्थ :

चुल्लवग्ग ७ १
अ० नि० अ० कथा। १. १ ५
म० प्र० १ ४, ६ ५ ४९
धम्मपद. ७ ४
थेर गाथा (आनन्द). २६०
थेर गाथा (अनुरुद्ध) २५६ उदान ८९१–९१८
,, ,, (भद्दिय) २५४ उदान ८४१–८६४
,, ,, (उपालि). १८० उदान २४९–२५१
,, ,, किम्बिल ११८ उदान. ११८
A I 23
Thag vs 842–65
UdA II 10
Vsm I. 183, II · 183
AA I · 109
DhA · II. 155, II. 316

आनन्द[1]

दुल्लभो पुरिसा जञ्जो न सो सब्बत्थ जायति ।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति ॥

[उत्तम पुरुष सर्वत्र नही जन्म लेते । वे दुर्लभ है । वे धीर जिस कुल मे जन्म ग्रहण करते है वहाँ सुख वृद्धि होती है ।]

—ध० १९३

शाक्य अमृतोदन भगवान् के सगे चाचा थे । उनके पुत्र आनन्द थे । भगवान् के चचेरे भाई थे । उनके जन्म दिन से अमृतोदन के कुल में आनन्द का प्रवेश हुआ । अतएव शिशु का नामकरण संस्कार आनन्द नाम से किया गया । कपिलवस्तु मे ज्येष्ठ भ्राता भगवान् का उन पर वहुत प्रभाव पडा था । उन्होने अनुरुद्ध, भद्दिय आदि शाक्य कुमारो के साथ अनूपिया मे भगवान् से प्रव्रज्या ली थी ।

उसने धर्म का प्रथम चरण मैत्रायणी पुत्र पुण्य के उपदेशो द्वारा समाप्त किया था । वह गम्भीर था । उसकी धर्म की ओर तीव्र रुचि थी । वह धर्म-पथ की ओर वढता गया ।

भगवान् की प्रव्रज्या की प्रथम बीस वर्षो तक उनका कोई एक निश्चित उपस्थाक नही था । कभी कोई और कभी कोई हो जाता था । भगवान्

---

(१) आनन्द ने कव प्रव्रज्या ली यह विषय वहुत विवादास्पद है । एक मत है कि भगवान् के बुद्धत्व प्राप्त करने के दूसरे वर्ष आनन्द ने प्रव्रज्या ली थी । दूसरा मत थेर गाथा पर आधारित है। इसमे आनन्द कहते है कि वह बीस-पचीस वर्ष तक शाक्य रहे । इसके अनुसार भगवान् के बुद्धत्व प्राप्त करने के बीस वर्ष पश्चात् उनका प्रव्रजित होना कहा जाता है । पचीस वर्ष का समय सम्भवतः आनन्द के उपस्थाक समय के लिये कहा है ।

आनन्द को भगवान् का दाहिना कान कहा गया है ।

बौद्ध धार्मिक ग्रन्थो मे कम-से-कम १७ आनन्द नामक व्यक्तियो का उल्लेख किया गया है । सभी विभिन्न व्यक्ति थे ।

की आयु भी साठ वर्ष की हो चली थी। आयु का प्रभाव स्पष्ट प्रकट होना था। उपस्थाक सर्वदा बदलते रहते थे अतएव भगवान् की रुचि के अनुसार काम नही होता था। नवीन भिक्षु जब सीख जाता था तभी उसके जाने का समय भी हो जाता था।

किसी दिन नाग समाल, किसी दिन नागित, किसी दिन उपवान, सुनक्खत्त, चुन्द, सागत तथा मेघिय भगवान् का पात्र और चीवर लेकर अनुगमन करते थे। भगवान् किसी के प्रति पक्षपात नही दिखाते थे। किसी को अपने साथ निरन्तर रहने के लिये कहते नही थे।

एक दिन भगवान् गन्धकुटी के अलिन्द मे बैठे थे। भिक्षु सघ बैठा था। भगवान् ने उनसे कहा

'भिक्षुओ ! मै वय प्राप्त कर गया हूँ। वृद्धावस्था चली आ रहा है। मै चलता हूँ। किसी भिक्षु से कहता हूँ कि अमुक पथ से चलो तो वह दूसरे पथ से चलने लगता है। कोई मेरे पात्र भूमि पर गिरा देता है। कोई चीवर गिरा देता है। क्या आप किसी ऐसे भिक्षु का नाम बता सकते है जो निश्चित रूप से मेरा उपस्थाक हो ?'

भिक्षु एक दूसरे की तरफ देखने लगे। प्रश्नपूर्ण आँखे एक दूसरे की से मिलने लगी। सारिपुत्र करबद्ध खडे हो गये। निवेदन किया :

'भन्ते ! मै आपकी सेवा करूँगा। आपका उपस्थाक हूँगा।'

'नही सारिपुत्र ! तुम नही।'

'भन्ते ! मै उद्यत हूँ।'—मोग्गलायन ने अजलिवद्ध कहा।

'नही मोग्गलायन ! तुम्हारे अनुरूप यह काम नही है।'

वहाँ उपस्थित सभी भिक्षुओ ने क्रम से विनमित्त मस्तक द्वारा अपनी सेवाएँ भगवान् को अर्पित की। भगवान् ने सभी को अस्वीकार किया।

केवल आनन्द नही उठा। उसने अपनी सेवाएँ अर्पित नही की। भिक्षुओ ने कहा :

'आनन्द ! आप अपनी सेवा क्यो नही अर्पित करते ?'

'आवुस ! मै क्या कहूँ। यदि भगवान् की इच्छा होगी तो वह स्वयं मेरी सेवा लेगे।'

'भिक्षुओ ! आनन्द से आप लोग मत कहिये। यदि वह स्वयं विचार करते है तो मेरे उपस्थाक हो सकते है।'

'आनन्द !' भिक्षुओ ने कहा · 'खडे हो जाइये। भगवान् से कहिये। आप उनके उपस्थाक होना चाहते है।'

'आनन्द ने संघ की ओर देखा। भगवान् की ओर देखा। सबको नीरव देखकर आनन्द खडे हो गये। सबकी दृष्टि आनन्द पर केन्द्रस्थ हो गयी। सब उत्सुक थे। आनन्द क्या कहते है।'

आनन्द ने भगवान् को अंजलिबद्ध प्रणाम किया। भिक्षुसघ को नमन किया। मृदु स्वर से बोले :

'मै उद्यत हूँ किन्तु—।'

भगवान् की प्रश्नपूर्ण दृष्टि आनन्द के मुख पर स्थिर हुई। भिक्षुसंघ आनन्द का 'किन्तु' सुनकर चकित हुआ। भगवान् ने शान्त स्वर से पूछा :

'किन्तु क्या आयुष्मान् !'

'मै भन्ते का उपस्थाक होना चाहता हूँ। परन्तु क्या लाभ होगा।'

'लाभ !'

'हाँ। और, कुछ शर्तें भी है।'

'शर्तें— ।' भिक्षुसंघ से चकित आवाज उठी।

'हाँ !'

'आवुस ! कहो।' भगवान् ने कहा।

'मेरी चार शर्तें है।'

'कहो।'

'यदि उन्हे आप स्वीकार करे तो आपकी सेवा के लिये मै सर्वदा तत्पर रहूँगा।'

'नि सकोच कहो आयुष्मान्।'

'आप मुझे चुना हुआ अच्छा चीवर नही देगे।'

'और— ।'

'आप अपने भोजन मे से मुझे भोजन नही देगे।'

'और— ।'

'मुझे आप अलग गन्धकुटी नही देगे।'

'और— ।'

'आपके साथ आमन्त्रित भोजन स्थान मे नही जाऊँगा।'

भगवान् मुसकराये। भिक्षुसघ से प्रश्न हुआ·

'ऐसा क्यो आनन्द ?'

'बात सरल है। स्पष्ट है। मै वस्त्र इसलिये नही लूँगा कि कोई यह न समझे कि वस्त्र के लोभ के कारण मै तथागत की सेवा करता हूँ।'

'और भोजन—'

'वह भी इसलिए नही ग्रहण करूँगा कि लोग यह न समझे कि भोजन के लोभ से सेवा करता हूँ।'

'और कुटी—।'

'मै उपस्थाक होने के कारण उत्तम कुटी मे रहता हूँ इसकी भावना लोगो मे उत्पन्न न हो।'

'और आमन्त्रण—'

'भगवान् के साथ आमन्त्रण मे जाकर स्वादिष्ट भोजन करता हूँ इसका लोभ मुझे है यह लोगो की धारणा न हो।'

'और लाभ—।'

'क्या भगवान् का आमन्त्रण मुझे मिलेगा। मेरे द्वारा आमन्त्रण स्वीकार होगा।'

'और यदि मेरे द्वारा स्वीकार किये आमन्त्रण मे भगवान् नही जायँगे तो मुझ पर विश्वास कौन करेगा ?'

'क्या मुझे भगवान् के पास लाने की छूट होगी उन लोगो को जो बहुत दूर से थके माँदे दर्शन के लिये आए होगे।'

'यह क्यो ?'

'इसलिये कि जिन्हे मैने मिलने की स्वीकृति दी है यदि वे नही मिल सकेगे तो मुझ पर विश्वास कौन करेगा ? लोग कहेगे। तथागत मेरी बातो पर ध्यान नही देते।'

'स्वीकार है आनन्द।'

'क्या जब मै चिन्ता मे हूँ, द्विविधा मे हूँ तो मुझे तथागत के समीप आने की अनुमति होगी।'

'हाँ—स्वीकार है, आवुस।'

'क्या मेरी अनुपस्थिति मे भगवान् जो उपदेश करेगे उसे मुझे सुनायेगे ?'

'क्यो।'

'लोग कहेगे तुम चाहे परछाई की तरह तथागत के पीछे लगे रहो परन्तु तुम कुछ जानते नही कि उन्होने क्या उपदेश दिया ?'

'स्वीकार है आनन्द !'

'यह बाते क्यो कही हैं आवुस !' भिक्षु सघ से प्रश्न उठा।

'इसलिये कि मुझे सेवा करने का यह लाभ मिल रहा है। दूसरे इसे जाने और समझे।'

'तो—'

'भन्ते ! यदि आप मेरी यह आठ बाते स्वीकार करें तो आपकी सेवा के लिये तत्पर हूँ।'

'आनन्द ! तुम्हारी बाते मुझे मान्य है।'

आनन्द ने भगवान् को शिरसा नमामि किया। भिक्षुसघ से आनन्द के लिए साधुवाद का उद्घोष उठा।

× × ×

दूसरे दिन से दशवल भगवान् की सेवा मे लग गया। जल लाता था। दातुन लाता था। पद धोता था। गधकुटी मे झाडू लगाता था। भगवान् के साथ छाया की तरह लगा रहता था। भगवान् के प्रत्येक आदेशो का अक्षरश पालन करता था।

रात्रि मे वह हाथ मे लाठी और दीप लिये नव बार भगवान् की कुटी की परिक्रमा करता था। यदि तथागत को कोई काम हो तो बुला लें। और वह स्वय निद्राभिभूत न हो जाय। पचीस वर्षो तक आनन्द भगवान् की सेवा एक मन से उनके परिनिर्वाण काल तक निरन्तर करता रहा।

× × ×

देवदत्त ने सघ मे फूट डालने का अथक प्रयास किया था। उन्हे उद्बोधित करते हुए देवदत्त से कहा।

'आवुसो ! क्रोधी, मितव्ययी, जुगुप्सु तथा दुष्ट का साथ त्याज्य है। उनकी सगति पाप है।'

'किसकी सगति करनी चाहिए आयुष्मान् !' विद्रोही भिक्षुओ ने पूछा।

'प्रज्ञामान, श्रद्धालु, प्रिय, शील सम्पन्न, बहुश्रुत तथा ज्ञानियो-सत्पुरुषो की सगति श्रेयस्कर है। आवुसो !'

× × ×

आनन्द राजवशी थे। हृष्ट-पुष्ट थे। सुन्दर थे। ब्रह्मचर्य के कारण उनका सौन्दर्य और निखर आया था। उत्तरा उपासिका उनके रूप पर मोहित हो गयी थी। उसकी अनुचित भावना देखकर आनन्द ने उसे उद्‌बोधित किया '

'उत्तरे ! इस चित्रित काया को देखो। यह व्रणो से भरी है। फूली है। पीडित है। सकल्पो के जालो मे परिवेष्टित है। क्या इसका अस्तित्व ध्रुव है ?'

उत्तरा की दृष्टि भूमिष्ठ थी। आनन्द ने पुन कहा—

'उपासिके ! यह शरीर मणि एव कुण्डलो से सज्जित है। यह असुन्दर अस्थि पजर त्वचा से ढका है। सुन्दर रगीन परिधानो मे शोभनीय है। पद अलता से रजित है। मुख मण्डल पर चूर्ण पुता है। यह रूप मूर्ख को आकर्षित करने के लिये पर्याप्त है। पार गवेषक उनकी इस कृत्रिम सौन्दर्य मे नही फँसता।'

उत्तरा ने अपनी काया की ओर देखा। वह लज्जाभिभूत हुई। आनन्द ने कहा :

'उपासिके गुम्फित केश कलाप, अजन रजित नेत्र, नवीन चित्रित अजन, नलिका तुल्य मल युक्त यह अलकृत शरीर सुन्दर लगता है ?'

उत्तरा को ग्लानि हुई। आनन्द ने शान्त स्वर मे कहा

'उपासिके : व्याध ने जाल लगाया है। चतुर मृग इस पाश मे नही पडता। वह तृण चरता है। व्याध हताश होता है। रोता है। मृग चल देता है। मृग पाश मे नही फँसता। पाश तोड़ देता है। चारा खाता है। सुख से गमन करता है। और व्याध रोता रह जाता है।'

× × ×

एक समय गणक मोग्गलान नामक ब्राह्मण ने आनन्द से जिज्ञासा की :

'आयुष्मान् ! आपने भगवान् के उपदेशों को सुना है ?'

'हाँ, ब्रह्मन् ! सुना है ।'

'भगवान् के उपदेशों को आप कहाँ तक समझ सके है ।'

'ब्रह्मन् ।' आनन्द ने कहा . 'मैने भगवान् के बयासी सहस्र उपदेश सुने है । उन्हे सीखा है ।'

और सघ से ?'

'ब्रह्मन् ! सघ से मैने दो सहस्र उपदेश सुने है । सीखे है ।'

'कितने उपदेशो का आपको ज्ञान है आवुस ?'

'ब्रह्मन् !' आनन्द ने विनयपूर्वक कहा : 'कुल चौरासी सहस्र उपदेशो का ।'

× × ×

मानव प्रकृति है । मान मनुष्य की सबसे बडी दुर्बलता है । वह पद-पद पर मान करना चाहता है । मान प्राप्त करना चाहता है । बहुश्रुत भिक्षुओ को अपने ज्ञान का गर्व था । मान था । वे अल्पश्रुत भिक्षुओ की अवज्ञा करते थे । अवहेलना करते थे । आनन्द ने बहुश्रुतो को एक दिन उद्‌बोधित किया ।

'जो विद्वान् अपने विद्या गर्व मे अविद्वान् की अवहेलना करता है वह स्वय दीपक धारण करने वाले अन्धे के समान है । ब्रह्मचर्य का मूल है–विद्वान् की सेवा तथा विद्या की उपेक्षा न की जाय । जो पूर्व को जानता है । जो उत्तर को जानता है । जो अर्थ को जानता है । जो निरुक्ति मे कुशल है । जो व्याख्या मे कुशल है । वही व्यक्ति ग्राह्य को ग्रहण करने की क्षमता रखता है । अर्थ समझने की क्षमता रखता है । वह सहिष्णुता द्वारा अपना उद्देश्य प्राप्त करता है । उत्साह द्वारा अपने निश्चय पर पहुँचता है । वह सुअवसर प्राप्त कर उद्योग करता है । अध्यात्म को शान्त कर देता है ।

'भन्ते ! क्या करणीय है ?' भिक्षुओ ने पूछा ।

'आवुसो ! उन भिक्षु श्रावको का साथ करो जो बहुश्रुत है । धर्म-धर है । प्रज्ञायुक्त है । धर्म ज्ञान के आकाक्षी है ।' जो धर्म मे रमण

करते है। धर्म मे रत है। धर्मानुसार चिन्तन करते है। वें धर्मानुसारी भिक्षु सद्धर्म से पतित नही होते।'

'भन्ते! सुख कैसे मिलेगा ?'

'आयुष्मानो! जो भिक्षु इस अनित्य शरीर पर विशेष ध्यान नही देता, जीवन क्षय होता देखकर भी उद्योग करता है। शरीर सुख मे आसक्त नही होता। वह श्रमण निश्चय ही सुख प्राप्त करता है।'

× × ×

धर्म सेना पति सारिपुत्र का परिनिर्वाण हो गया था। आनन्द ने समाचार सुना। उनके मनोभाव उदान मे प्रकट हो गये

'दिशाये मुझे दिखायी नही देती है। मुझे धर्म नही सूझता है। कल्याण मित्र, सारिपुत्र के परिनिवृत होने पर मुझे अन्धकार प्रतीत होता है। उनके परिवृत्त होने पर कायगत स्मृति भावना का जैसे कोई साथी नही रह गया है। पुराने साथी चले गये। नवीन से मेल नही खाता। मै आज एकाकी वर्षाकालीन पक्षी तुल्य घोसले मे बैठा ध्यान कर रहा हूँ।'

× × ×

एक बार भिक्षुओ ने जिज्ञासा की .

'आयुष्मान्! भगवान् के उपस्थाक रूप मे आपने क्या अनुभव किया ?'

'आवुसो।' आनन्द ने कहा। 'मुझे मे पचीस वर्षो के उपस्थाक काल मे काम मय विचार उदय नही हुए। मुझ मे द्वेष युक्त विचार नही उदय हुए। मै सग न त्यागने वाली छाया के समान भगवान् के साथ रहा। उनकी सेवा की। मैत्रीपूर्ण वाक् कर्म द्वारा मैने भगवान् की सेवा की। भगवान् जब जघा विहार करते थे तो मै भी छाया को तरह उनके साथ लगा रहता था। और उनके उपदेश काल मे, उपदेश ग्रहण करते समय मुझ मे ज्ञान चक्षु उदय हुआ है।'

× × ×

भगवान् के सभी प्रिय शिष्य, श्रावक, भिक्षु उपासक आदि उपस्थित थे। भगवान् के परिनिवृत्त होने पर आनन्द ने उदान कहा

'मै सकरणीय हूँ। शैक्ष हूँ। मैने अर्हत पद प्राप्त नही किया है। मुझ पर

अनुकम्पा करने वाले शास्ता परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उस समय मुझे भय उत्पन्न हुआ। रोमाच हुआ। जब सम्बुद्ध परिनिर्वाण प्राप्त किये।'

× × ×

आनन्द ने अपने परिनिर्वाण के पूर्व उदान कहा .

'मैने तथागत की सेवा की है। बुद्ध शासन पूर्ण किया है। मैने इस जीवन पर लदे हुए भारी बोझ को उतार दिया है। अब मेरा पुनर्जन्म नही होगा।'

× × ×

आनन्द के परिनिवृत्त होने पर सगीत कारक भिक्षुओ ने गीत गाया :

'आनन्द ससार चक्षु थे। धर्मधर थे। शास्ता के कोषरक्षक थे। बहुश्रुत थे। अन्धकार को तिरोहित करने वाले थे। गतिमान थे। स्मृतिमान थे। धृतिमान थे। सहृदय धारक थे। थेर रत्नाकर थे। उन्होने परिनिर्वाण प्राप्त किया है।'

× × ×

भगवान् के जीवन काल मे वह उपस्थाक बना रहा। प्रथम सगीत के पूर्व भगवान् के निर्वाण के पश्चात् उसने अर्हत पद प्राप्त किया।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षुश्रावको मे तीसवाँ स्थान प्राप्त शाक्य, कपिलवस्तु, अमृतोदन पुत्र क्षत्रिय कुलोत्पन्न आनन्द, बहुश्रुतो, स्मृतिमानो, गतिमानो, धृतिमानो तथा सेवको मे अग्र हुए थे।

❁

आधार ग्रन्थ :

थेर गाथा १६०
मज्झिम निकाय ३ २५, १ १३९
अगुत्तर १ २४
संग्राम निकाय १ १९९
धम्मपद ' ११ ८, १४ ४, ७, २६ . ५
सुप्रमत्त ' दीघ निकाय १ १०
उदान . १००७-१०५५.

नोट —आनन्द से सम्बन्धित इतने उद्धरण तथा घटनाएँ बौद्ध साहित्य मे कही है कि उन्हे यहाँ देना सम्भव नही है। उनका सन्दर्भ मात्र एक पुस्तक का रूप ग्रहण कर लेगा। यदि मै स्वयं सक्षिप्त मे लिखूँ तो वह तीन सौ पृष्ठो से कम न होगा।

Pası 349
V · ıı 2, ııı 373, ıı 238 , ,
J ıı 288 ı 8,

नलकपान[1]

कोसल देश था। नकलपान स्थान था। पलाशवन था। भगवान् विहार कर रहे थे। अनेक सुकुमार कुलीन कुलपुत्र घर त्याग चुके थे। प्रव्रजित हो चुके थे। भगवान् के चरणो मे भिक्षु बने थे। उपासक बने थे। उनमे आयुष्मान अनिरुद्ध, नन्दिय, किम्बिल, भृगु, कुण्डधान, रेवत, आनन्द आदि उपस्थित थे।

भगवान् प्रांगण मे आसन पर बैठे थे। भिक्षु-परिषद् समवेत थी। निर्मल आकाश था। चीवरधारी भिक्षु पक्तिबद्ध बैठे थे। उपदेश के इच्छुक थे। भगवान् ने सम्बोधित किया :

'भिक्षुओ। क्या कुलपुत्रगण स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य पालन मे प्रसन्न है?'

भिक्षु सघ ने मस्तक नत कर लिया।

'भिक्षुओ!' भगवान् ने पुन. पूछा : 'जिन कुलपुत्रो ने श्रद्धा के साथ प्रव्रज्या ली है। क्या वे ब्रह्मचर्य मे प्रसन्न है?'

भिक्षु सघ मौन था।

'भिक्षुओ!' भगवान् ने तीसरी बार पूछा, 'श्रद्धा से प्रव्रजित कुलपुत्र क्या ब्रह्मचर्य पालन मे प्रसन्न है?'

भिक्षु सघ मौन था।

'अनुरुद्ध!' भगवान् ने कुलपुत्रो से प्रश्न पूछा ' आप लोग ब्रह्मचर्य पालन मे प्रसन्न तो है?'

---

(१) नलकपान : कोसल मे एक ग्राम था। भगवान् यहाँ ठहरे थे। नलकपान सुत्त का उपदेश दिया था। इसका नलकपान नाम नलकपान पुष्करिणी के कारण पडा था। नलकपान जातक मे विस्तृत रूप से इस पर प्रकाश डाला गया है। नलकपान के समीप केटक तथा पलास दो वन थे। यहाँ पर सारिपुत्र ने भी दो बार उपदेश दिया था।

'भन्ते ! हम लोग बहुत प्रसन्न है। कुलपुत्रो ने अजलिबद्ध प्रणाम करते हुए निवेदन किया।

'साधु ! अनिरुद्धो ! साधु !! श्रद्धा से प्रव्रज्या ली है। आप लोगो के यह अनुरूप है। ब्रह्मचर्य मे प्रसन्न रहिये। आप युवक है। उत्तम यौवन है। केश कृष्ण है। कामोपभोग मे रत थे। सासारिक सुख मे सुखी थे। सुख माया की तरह प्रिय लगता था। किन्तु आप लोगो ने स्वेच्छा से प्रव्रज्या ली है। राजा के प्रभाव से प्रव्रजित नही हुए है। भय से प्रव्रजित नही हुए है। तस्कर भय से प्रव्रजित नही हुए है। ऋण के कारण प्रव्रजित नही हुए है। शक्ति के कारण प्रव्रजित नही हुए है। बिना अपनी सम्मति के प्रव्राजित नही हुए है।

प्रव्रजित कुलपुत्र भिक्षुओ ने भगवान् के श्रीमुख द्वारा अपनी प्रशसा सुनी। मस्तक नमा कर शिरसा प्रणाम किया। भगवान् ने पुन. कहा : 'आप लोग प्रव्रजित हुए है। जन्म, जरा, मरण, शोक, विलाप, दु ख, दुर्बलता, उपायास के दु ख मे घिरे थे। दु ख मे लिपटे थे। दु ख स्कन्ध से त्राण पाने की आप मे उत्कट अभिलाषा थी। दु:ख से निवृत्त होने के लिये प्रव्रज्या ली है।'

'भन्ते ! यथार्थ कहते है।' कुलपुत्रों ने भगवान् को नमन करते हुए उत्तर दिया।

'कुलपुत्रो !' भगवान् ने कहा, 'आप लोगो को बताऊँ। आपको क्या करना उचित है ?

'भन्ते ! कहो' कुलपुत्रो ने कहा।

'आप लोगो को काम-भोग से विरत होना चाहिए। अकुशल धर्मो से विरत होना चाहिए। अविद्या से विरत होना चाहिए। अविद्या मे पडे रहेगे तो विवेक की प्राप्ति नही होगी। सुख की प्राप्ति नही होगी। व्यापाद, चित्त मे स्थान पाता है। औद्धत्य, चित्त को पकडता है। कौकृत्य चित्त को पकडता है। विचिकित्सा चित्त को पकड़ती है। अरति चित्त को पकड लेती है। और फिर आलस्य चित्त को पकड लेता है।'

भिक्षुसघ ध्यानपूर्वक भगवान् की बात सुन रहा था। भगवान् ने पुन. कहा :

'अनिरुद्धो ! मुझ तथागत के विषय में आपके क्या विचार है। क्या

मैने चित्त मल, क्लेश, आवागमन, भविष्य के दु ख, फलोत्पाद, जन्म-जरा-मरण दायक मलो का त्याग किया है ?'

'भन्ते ! आपने त्याग किया है।'

'साधु ! अनिरुद्धो ! साधु ! जिन आश्रयो से क्लेश होता है उन्होने मेरा त्याग किया है। वे नष्ट मूल हो गये है। भविष्य मे उनकी उत्पत्ति नष्ट हो गयी है। ताल का वृक्ष यदि शिर पर काट दिया जाय तो वह पुन नही हरा होता। पुन नही पनपता। ठूँठ हो जाता है। उसी प्रकार आश्रवो के नष्ट होने पर भविष्य मे पुन नही पनप पाते।'

भिक्षुओ ने भगवान् को शिरसा नमन किया। वन्दना किया। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा किया। परिषद् समाप्त हुई।

कुण्डधान

सचे नेरेसि अत्तान कसो उपहतो यथा।
एस पत्तोसि निब्बान सारम्भो ते न विज्जति॥

[यदि टूटे काँसे के समान तुम निश्शब्द बन जाओगे तो निर्वाण प्राप्त करोगे। तुम्हारे प्रतिवाद की आवश्यकता नही होगी।]

—ध० १३४

श्रावस्ती मे एक कुलीन ब्राह्मण का पुत्र कुण्डधान था। उसे बाल्यावस्था मे ध्यान कहते थे। उसने तीनो वेदो को कण्ठस्थ कर लिया था। वह प्रौढ़ हुआ। उसका दिन सुखपूर्वक व्यतीत होता था।

भगवान् का उसने एक दिन उपदेश सुना। उसे गृह त्याग की तीव्र इच्छा हुई। प्रव्रज्या ली। उपसम्पदा पाया।

कुण्डधान का अनुकरण करती एक रमणी को लोग सर्वदा देखते थे। परन्तु कुण्डधान को इसका ज्ञान नही था। कुण्डधान की जनता तथा भिक्षुओ मे निन्दा होने लगी। भिक्षाचार के समय उसके भिक्षा पात्र मे दो टुकडा डालते थे। कहते थे—एक आपके लिए है और दूसरा आपके साथ वाली रमणी के लिये है। भिक्षु उसका उपहास करते थे। व्यग बोलते थे। कहते थे—'हमारे महान् भिक्षु 'कोण्डा' हो गये है।' उनका नाम कोण्डा हो गया। पूर्वनाम और वर्तमान नाम मिलाकर कुण्डधान नाम से लोग उसका मजाक कुण्डधान कहकर किया करते थे।

बात राजा के कानो तक पहुँची। बात बुरी थी। राजा वास्तविकता जानने स्वय जेतवन आया। उसने सर्वांगीण परीक्षा की। उसे कुण्डधान मे कोई दोष नही मिला। राजा ने उसे अदोष घोषित किया।

राजा प्रसेनजित की कुण्डधान पर कृपा हो गयी। राजा ने उसकी भिक्षा का प्रबन्ध कर दिया। उसके जीवन की आवश्यकताये उसे अपने स्थान पर प्राप्त हो जाती थी। उसे भिक्षाचारादि करने का परिश्रम नही

उठाना पडता था। वह नित्य राजा के यहाँ आमन्त्रित होता था। भोजन करता था।

भिक्षुओ को बात मालूम हुई। कुण्डधान का अपवाद होने के स्थान पर स्वागत हुआ था। वे कुण्डधान और राजा दोनो पर कुपित हो गये। उनके सम्मान मे अशोभनीय वचनो का उच्चारण करने लगे। कुण्डधान भी प्रतिवाद करता था।

भिक्षुओ ने भगवान् से कहा। भगवान् ने कुण्डधान को बुलाया। कुण्डधान से सब बाते मालूम हुई। कुण्डधान ने भगवान् से स्वय जिज्ञासा की। क्या कारण था। वह स्वयं अपनी अनुवर्ती को नही जानता किन्तु दूसरे उसे देखते थे।

भगवान् ने उत्तर दिया : 'भिक्षु पूर्व जन्म की दूषित दृष्टि के कारण इस अपवाद का पात्र हुआ है।'

'भन्ते! मुझे लोग फिर दोष क्यो लगाते है?'

'आवुस! तुम भिक्षुओ को स्वयं कुछ मत कहो। तुम्हे उन्हे बुरा-भला कहना अच्छा नही लगता।'

'मै क्या करूँ भन्ते!'

'निन्दा सुनकर चुप रहो। प्रतिवाद मत करो। यही निर्वाण का मार्ग है।'

अनाथपिण्डिक की कन्या शुभदा[1] ने भगवान् के साथ उसे एक दिन पिण्डपात के लिये आमन्त्रित किया। उस समय कुण्डधान के ज्ञान तथा शक्ति का परिचय मिला।

कुण्डधान आध्यात्मिक बिकास की शैली का वर्णन करते है

'उसने ससार प्रवाह को पार कर लिया है। जिसने पाँचो अवर भागीय बन्धनो को छिन्न किया है। जिसने पाँचो ऊर्ध्वभागीय बन्धनो का त्याग किया है। जिसने प्रथम पाँचो इन्द्रियो का अभ्यास किया है। जिसने पाँचो आसक्तियो को पार किया है।'

× × ×

(१) शुभदा : अनुमान लगाया जाता है कि शुभदा अनाथपिण्डिक की कन्या थी। वह साकेत मे निवास करती थी।

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे बाईसवॉ स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती ब्राह्मण कुलोत्पन्न कुण्डधान प्रथम शलाका ग्रहण करने वालो मे अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ .

धम्मपद १० ' ४
थेर गाथा १५, उदान १५
मज्झिम निकाय : २ ' २ ' ८
अगुत्तर निकाय १ २४
मिलिन्द प्रश्न २ ३०८
AA 1 146
Ap 1 : 81
DhA : III : 52
M 1 : 462
Thag : 15
ThagA 1 . 262

अनाथपिण्डिक

भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति ॥

[पुण्यात्मा भी पुण्य को उस समय तक बुरा समझने लगता है। जबतक उसका फल नही मिलता। जब फल प्राप्त करने लगता है तो उसे पुण्य दिखाई देने लगता है।]

—ध० १२०

तथागत राजगृह के शीत वन मे विहार कर रहे थे। अनाथपिण्डिक गृहपति श्रावस्ती[1] के सुमन[2] श्रेष्ठी का पुत्र था। उसका नाम सुदत्त था। अनाथो को दान देता था। अतएव नाम अनाथ[3]पिण्डिक पड गया था। एक समय राजगृह आया। राजगृह मे एक नवीन महान् आत्मा का नाम सुना। वह थे बुद्ध।

अनाथपिण्डिक राजगृह के श्रेष्ठी का बहनोई था। श्रेष्ठी ने भगवान् को भिक्षुसघ के साथ दूसरे दिन के लिए आमन्त्रित कर रखा था।

अनाथपिण्डिक के आगमन पर श्रेष्ठी स्वागत मे सब कुछ लगा देता था। सोत्साह अभिनन्दन करता था। सुख के लिये चिन्तित रहता था। आराम के लिये व्यग्र रहता था। छोटी-से-छोटी बात का ध्यान रखता था। उसकी महत्ता का अनुभव करता था।

---

(१) श्रावस्ती के स्थानो का एक मानचित्र श्री राहुल साकृत्यायन ने अपने पुस्तक विनयपिटक के हिन्दी अनुवाद मे दिया है।

(२) सुमन अनाथपिण्डिक तथा सुभूति का पिता कहा गया है।

(३) पुण्यलक्षणा अनाथपिण्डिक की स्त्री का नाम था। उसके पुत्र का नाम काल था। उसे तीन कन्यायें थी। उनका नाम महा सुभद्रा, सुभद्रा तथा सुमना था। उसकी पतोहू का नाम सुजाता था। वह धनजय की कन्या तथा विशाखा की कनिष्ठ बहिन थी।

अनाथपिण्डिक ने उसके भाव मे परिवर्तन देखा। उसके स्थान पर अन्य की महत्ता हो गयी थी। उसका स्वागत सत्कार औपचारिक मात्र रह गया था। विस्तार के साथ किसी के स्वागत की तैयारी हो रही थी। अनाथपिण्डिक की समझ मे नही आया। विवाह होगा। आवाह होगा। या राजा बिम्बसार का स्वय आगमन होगा। या कुछ और होगा। उसे देखने के लिए श्रेष्ठी पूर्वकाल मे बारबार दिन मे आता था। इस बार नही आया।

राजगृह श्रेष्ठी कर्मकारो, सेवको, सेविकाओं को काम सहेज दिया। निरीक्षण किया। निवृत्त हुआ। अनाथपिण्डिक से मिलने आया।

अनाथपिण्डिक के पास आकर श्रेष्ठी ने प्रतिसम्मोदन किया। कुशल-मगल पूछा। एक ओर बैठ गया। अनाथपिण्डिक ने उपालम्भ करते हुए कहा ·

'पूर्वकाल मे मै आता था। उस समय और आज के व्यवहार मे कितना अन्तर देख रहा हूँ।'

'हूँ—।' गृहपति ने नतमस्तक केवल हुँकारी भर दी। आसन पर किंचित् झूमे। फिर स्थिर हो गया।

'क्या आवाह है? विवाह है? अथवा मगधराज बिम्बसार का आगमन हो रहा है?'

'गृहपति! मेरे यहाँ आवाह नही है। विवाह नही है। मगधराज बिम्बसार का निमन्त्रण नही है।' श्रेष्ठी ने किंचित् आगे झुकते हुए नतदृष्टि से कहा।

'तो क्या है?'

'मै कल एक महायज्ञ करूँगा।'

'कैसा यज्ञ?'

'सघ सहित बुद्ध का भिक्षा के लिए आगमन होगा।'

श्रेष्ठी का मुख अनाथपिण्डिक की ओर उठा।

'बुद्ध?' अनाथपिण्डिक चकित हुआ।

'हाँ, बुद्ध!' श्रेष्ठी ने शब्द पर बल दिया।

'बुद्ध?' अनाथपिण्डिक और चकित हुआ।

'हाँ, बुद्ध !' श्रेष्ठी के स्वर मे श्रद्धा के साथ गाम्भीर्य था।

'बुद्ध !' अनाथपिण्डिक का स्वर मन्द हो गया।

'हाँ, बुद्ध !' श्रेष्ठी ने विकल मुद्रा से मन्द स्वर में कहा।

'श्रेष्ठी ! लोक मे बुद्ध शब्द दुर्लभ है।'

'हाँ अनाथपिण्डिक !'

'क्या मै उनका दर्शन कर सकता हूँ।' अनाथपिण्डिक ने श्रेष्ठी के मुख पर दृष्टिपात करते हुए प्रश्न किया।

'यह समय नही है। विलम्ब हो गया।'

अनाथपिण्डिक चुप हो गया। श्रेष्ठी ने पूछा : 'किस चीज की आवश्यकता हे।'

'सब कुछ पर्याप्त है।' अनाथपिण्डिक ने साधारण स्वर मे कह दिया। उसका मन कही और था।

अनाथपिण्डिक को श्रेष्ठी ने विमन देखा। श्रेष्ठी ने बात चलाना उचित नही समझा। घर लौट आया। अनाथपिण्डिक की सुविधा की समुचित व्यवस्था कर दी।

× × ×

अनाथपिण्डिक को तथागत के दर्शन की तीव्र इच्छा हुई। वह रात पर्यन्त दर्शन की बात सोचता रहा। रात्रि मे तीन बार उठा। उसे भ्रम हो गया। प्रत्यूष हो रहा है।

वह उठा। नगर के शिविक[1] द्वार पर गया। द्वार खुला था। नगर से बाहर निकला। प्रकाश समाप्त हो गया। अँधेरा छा गया। भय उत्पन्न हुआ। जडता उत्पन्न हुई। रोमाच हुआ। लौट जाने का विचार करने लगा।

अकस्मात् अन्धकार हटने लगा। दूसरी बार प्रकाश हुआ। पुन अन्धकार छा गया। वह पुन भयभीत हुआ। रोमाचित हुआ। लौट जाने की इच्छा हुई। पुन अन्धकार हटने लगा। प्रकाश हुआ।

(१) शिविक कथा है कि अनाथपिण्डिक को शीत वन पहुँचाने मे शिविक यक्ष ने सहायता पहुँचायी थी।

वह आगे बढा। अकस्मात् पुन अन्धकार छा गया। उसे भय लगा। कम्पित हुआ। लौटना चाहा। पुन प्रकाश फैल गया।

वह आगे बढा। शकित था। पुन: अन्धकार होगा। किन्तु प्रकाश स्थिर रहा। उषा मुसकुराने लगी। वह अग्रसर होता गया। भय तिरोहित होता गया। वह शीतवन पहुँचा।

तथागत प्रत्यूष काल मे चक्रमण कर रहे थे। अनाथपिण्डिक को देखा। आसन पर बैठ गये। अनाथपिण्डिक श्रद्धा के साथ आया। विनम्र आया। विस्मय के साथ आया। पास आते ही तथागत ने कहा:

'सुदत्त! आइये!'

अनाथपिण्डिक चकित हुआ। तथागत ने नाम लेकर पुकारा था। वह हृष्ट मन हो गया। तथागत के समीप गया। उनके चरणो पर मस्तक रख कर कहा:

'भन्ते! आपको निद्रा सुख से आयी?'

'अनाथपिण्डिक!' भगवान् ने कहा। 'सुख मे कौन सोता है?'

'भन्ते! कहिए।'

'निष्पाप और विमुक्त सुख से सोता है।'

'और—।'

'काम से अलिप्त, वासनाओ से अलिप्त, दोषों से अलिप्त सुख से सोता है।

'भन्ते!'

'वह सुख से सोना है। आवुस! जिसने अपनी आसक्तियों को चूर्ण चूर्ण कर दिया है। जिसके हृदय देग मे अभय व्याप्त है।'

'भन्ते!'

'अनाथपिण्डिक!' तथागत ने कहा, 'जिसका चित्त शान्ति प्राप्त कर लिया है। उपशात हो गया है। वही सर्वदा सुख से सोता है।'

अनाथपिण्डिक भगवान् के सकेत पर एक ओर आसन पर बैठ गया। भगवान् ने उसे आनुपूर्वी कथा सुनायी। वस्त्र धुलने पर वस्त्र शुद्ध हो जाता है। उज्ज्वल होने पर उस पर रग सरलता से चढ जाता है। निखर जाता है। अनाथपिण्डिक का मन निर्मल हो गया। शुद्ध हो गया।

उसे उसी आसन पर जो कुछ समुदय धर्म था वही निरोध धर्म था। बात समझ मे आयी। विमल धर्म चक्षु खुले।

'तथागत ! मुझे साजलि शरण आये उपासक रूप मे ग्रहण कीजिए।' उसने भगवान् से निवेदन किया

भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार किया। उसने पुन: निवेदन किया : 'तथागत ! भिक्षु सघ के साथ कल मेरा भोजन स्वीकार कीजिए।'

भगवान् ने मौन रहकर भिक्षा स्वीकार की। उसने भगवान् का अभिवादन किया। प्रदक्षिणा किया। वन्दना किया। राजगृह श्रेष्ठी के घर की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी के गृह पहुँचा। श्रेष्ठी की जिज्ञासा पर उसने कहा 'भगवान् के यहाँ गया था। उन्हे कल भिक्षा के लिए आमन्त्रित किया है।'

'उचित किया। किन्तु—?'

'किन्तु क्या ?'

'तुम मेरे अतिथि हो। राजगृह के अतिथि हो। अतएव भिक्षा का सारा व्ययभार मै वहन करूँगा।'

'गृहपति ! धन्यवाद। किन्तु मेरे पास व्यय-भार के लिए यथेष्ठ धन है। भिक्षा का पूरा प्रवन्ध हो जायेगा।'

श्रेष्ठी चुप हो गया।

× × ×

'अनाथपिण्डिक !' राजगृह के नैगम ने अनाथपिण्डिक को बुलाकर पूछा।

'आपने भिक्षु सघ को निमन्त्रित किया है।'

'हाँ।'

'इस व्यय का भार वहन निगम करेगा।'

'क्यो ?'

'आप नगर के अतिथि हो।'

'आर्य, मेरे पास धन है। धन्यवाद।'

नैगम चुप हो गया।

× × ×

'मैने सुना है। आपने भिक्षुसघ और तथागत को आमन्त्रित किया है।' राजा ने अनाथपिण्डिक से प्रश्न किया।

'आपकी कृपा से।'

'इसका व्यय राजा देगा।'

'क्यो ?'

'आप अतिथि है। बाहर से आये है।'

'देव! मेरे पास धन है। अन्यथा कोई बात नही थी। अनाथपिण्डिक ने विनयपूर्वक कहा।

राजा चुप हो गया।

× × ×

अनाथपिण्डिक ने राजगृह श्रेष्ठी के निवास-स्थान पर भोजन की व्यवस्था की। भोजन का काल आया। भगवान् से भिक्षा ग्रहण निमित्त निवेदन किया।

भगवान् सुआच्छादित हुए। भिक्षा-पात्र उठाया। चीवर लिया। भिक्षु सघ के साथ राजगृह श्रेष्ठी के निवास-स्थान पर पहुँचे। पूर्व से बिछाये आसन पर तथागत बैठ गये। भिक्षु सघ ने भी आसन ग्रहण किया।

अनाथपिण्डिक ने स्वादिष्ट व्यजन अपने हाथो से परोसा। सघ और तथागत को समर्पित किया। भोजन समाप्त हुआ। भगवान् ने भोजन से हाथ खीच लिया। एक ओर बैठ गये।

सबने आसन ग्रहण किया। गृहपति अनाथपिण्डिक ने तथागत से निवेदन किया,

'भन्ते! नम्र निवेदन है। वर्षावास सघ के साथ श्रावस्ती मे कीजिए।'

'क्या शून्य आगार मे ?'

'नही भगवन् !'

'तथागत कहाँ विहार करेगे ?'

'समझ गया ! समझ गया ! तात्पर्य समझ गया !'

भगवान् ने मौन स्वीकृति श्रावस्ती जाने की दी ।

× × ×

अनाथपिण्डिक प्रसन्न था । भगवान् के श्रावस्ती आगमन की योजना बनाने लगा । समय पर श्रावस्ती के लिए प्रस्थान किया । मार्ग मे पडते नगरो, ग्रामो, जनपदो मे प्रचार करता गया । लोगो को सहेजता गया—'आराम निर्माण कीजिए । विहार प्रतिष्ठित कीजिये ।'

'क्यो क्या बात है ?' जनता पूछती थी ।

'सुनो !' अनाथपिण्डिक कहता था । 'लोक मे बुद्ध का आगमन हो चुका है । उन्हे श्रावस्ती आने के लिए निमन्त्रित किया है । वे इसी मार्ग से पधारेगे ।'

अनाथपिण्डिक ने स्वागत आन्दोलन खडा कर दिया । जनता को जागृत किया । भगवान् के प्रति रुचि उत्पन्न की । तथागत के धर्म के विषय मे लोगो को उत्कण्ठित किया ।

भगवान् के भव्य स्वागत की तैयारी मार्ग मे होने लगी ।

× × ×

अनाथपिण्डिक श्रावस्ती पहुँचा । सुगम स्थान खोजने लगा । जो नगर से दूर न हो । बहुत समीप न हो । जाने वालो के लिए जहाँ आसानी हो । जहाँ दिन मे भीड कम हो । निशाकाल मे अल्प शब्द हो । विजन वात अर्थात् मनुष्यो से दूर एकान्त निवास लायक हो ।

उसे जेत राजकुमार का उद्यान पसन्द आया । वह आबादी से दूर नही था । उसकी योजना के अनुकूल था । जेत राजकुमार के पास पहुँचा ।

'आर्यपुत्र !' अनाथपिण्डिक ने निवेदन किया ।

'कहिए गृहपति !'

'आराम निर्माण निमित्त उद्यान देने की कृपा कीजिएगा ।'

'गृहपति ! वह कोटि सथार से भी अदेय है ।'

'आर्यपुत्र ! आराम मेरा हो गया ।'

'नही ।'

'ले लिया ।'

'कैसे ?'

'आपने मोल भाव किया । मैने उसे खरीद लिया ।'

'नही ! गृहपति, नही !' राजपुत्र ने जोर से कहा ।

'राजकुमार ! आपने मोल किया । ले लिया ।'

'विवाद मत करो गृहपति !'

'राजकुमार ! लिया या नही, इसका निर्णय व्यवहार अमात्य करेंगे ।'

'मैने नही दिया ।'

'मैने लिया है ।'

'विवाद का निर्णय कौन करेगा ?'

'मै क्यो कराने जाऊं ?'

'मै कराऊगा ।'

'कौन करेगा ?'

'व्यवहार अमात्य ।'

'मै नही जाता ।'

'मै जाता हूँ ।'

× × ×

विवाद व्यवहार अमात्य अर्थात् न्यायकर्ता के सम्मुख उपस्थित हुआ । उभय पक्षो की बात सुनकर न्यायकर्त्ता ने कहा . 'आर्यपुत्र ! आपने मोल किया !'

'हाँ'

'आपने मोल किया । गृहपति ने ले लिया ।'

'इसका मूल्य ?'

'गृहपति देगा—बोलो गृहपति !'

'दूगा।'

'पूरी भूमि हिरण्य से भर दी जाय। वही इसका मूल्य होगा।'
राजकुमार ने सोचा गृहपति इतना धन नही दे सकेगा। भाग जायगा।

'दिया—राजकुमार।' प्रसन्न होकर अनाथपिण्डिक ने कहा। राजकुमार बाजी हार गया। लज्जित हो गया। उदास हो गया। न्यायकर्त्ता ने कहा : 'उद्यान अनाथपिण्डिक ने खरीद लिया।'

गाडियो मे श्वेत बैल योजित थे। उसमे हिरण्य लदा था। जेतवन मे एक छोर से दूसरे छोर तक दो व्यक्ति हिरण्य बिछाने लगे। समस्त भूमि सुवर्णमयी दिखायी देने लगी। राजकुमार जेत दौड आये। नर-नारी दौड आये। अनाथपिण्डिक का अनोखा कार्य देखकर चकित हो गये। उद्यान के चारो ओर कौतूहल पूर्ण जनता की भीड एकत्रित होने लगी।

भूमि पूरी सुवर्ण से आच्छादित हो गयी थी। उद्यान के कोठे के चारो ओर का कुछ स्थान हिरण्य ढँकने से बच गया था। अनाथपिण्डिक ने और हिरण्य लाने के लिए आदेश दिया—शेष स्थान भी हिरण्य से भर दिया जाय।

राजकुमार को कार्य की महत्ता का ज्ञान हुआ। अनाथपिण्डिक की लगन, उसकी उदारता से प्रभावित हो गया। उसने कहा

'गृहपति! यह खाली जगह मुझे दे दीजिए। उसे हिरण्य से मत आच्छादित कराइये। यह मेरा दान होगा।'

'सहर्ष राजकुमार।'

वह स्थान हिरण्य से नही आच्छादित किया गया। राजकुमार ने उस स्थान पर कोठा बनवाया।

अनाथपिण्डिक ने जेत वन मे विहार निर्माण कराया। परिवेण निर्माण कराया। कोठरियाँ निर्माण कराया। उपस्थान निर्माण कराया। अग्निशाला निर्माण करायी। कल्पिक कुटिया, पुरीषालय, मूत्रालय, चक्र-मणशालाएँ, प्याऊ, जनताघर, शालाएँ, पुष्करिणियाँ, मण्डप आदि निर्माण कराया।

× × ×

तथागत ने राजगृह से श्रावस्ती के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे वैशाली गये। महावन की कूटागार शाला मे विहार किया।

वैशाली से श्रावस्ती के लिए प्रस्थान किया। मार्ग मे छः वर्गीय भिक्षुओ के शिष्य, भिक्षु प्रमुख सघ के आगे पहुँचकर स्थान आदि चुनकर ले लेते थे।

वे अपने आचार्यो, अपने उपाध्यायो और स्वयं अपने लिए उन पर अधिकार करते थे। भगवान् को बात उचित नही लगी। श्रेष्ठोको प्रथम स्थान देने का आदेश किया। भिक्षुओ से कहा ·

'भिक्षुओ ! सबसे पहले आसन, जल तथा परोसा भोजन, खाने का कौन अधिकारी है ?'

'क्षत्रिय कुल मे प्रव्रजित भिक्षु।' एक ने कहा।

'ब्राह्मण कुल मे प्रव्रजित भिक्षु।' दूसरे ने कहा।

'गृहपति कुल में प्रव्रजित भिक्षु।' तीसरे ने कहा।

'सौत्रांतिक अर्थात् सूत्रधारी भिक्षु।' चौथे ने कहा।

'विनयधर।' पाँचवे ने कहा।

'धर्म कथिक।' छठे ने कहा।

'प्रथमध्यान का लाभी भिक्षु।' सातवे ने कहा।

द्वितीय ध्यान का लाभी भिक्षु।' आठवें ने कहा।

'तृतीय ध्यान का लाभी भिक्षु।' नवे ने कहा।

'चतुर्थ ध्यान का लाभी भिक्षु।' दसवे ने कहा।'

'जो श्रोतापन्न है।' किसी ने कहा।

'जो सकृदागामी है।' एक ध्वनि आई।

'जो अनागामी है।' किसी ने कहा।

'जो अर्हत है।' सघ से ध्वनि उठी।

'जो त्रैविद है।' सरल ध्वनि सुनाई पड़ी।

'जो षड अभिज्ञ है।' कहते-कहते ध्वनि शान्त हुई।

सवका बात भगवान् ने सुनी। एक उपाख्यान संघ को सुनाया .

'पूर्व काल मे हिमालय के समोप एक वट वृक्ष था। तीतर, बन्दर

तथा हाथी तीन मित्र वहाँ रहते थे। उनमे एक दूसरे के प्रति गौरव की भावना नही थी। सहायता की भावना नही थी। जीविका की भावना नही थी। एक साथ विहार करने की भावना नही थी।

'उनमे एक बार भावना उठी। हममे ज्येष्ठ कौन है। जिसे हम जन्म से बडा जाने! उसका सत्कार करे! गौरव करे! मान करे! पूजा करे! उसकी शिक्षा मे रहे!'

'भिक्षुओ!' भगवान् ने कहा। 'तीतर और बन्दर ने हाथी से पूछा - सौम्य आपको क्या पुरानी बात स्मरण है?'

'सौम्यो! हाथी बोला, 'मै शिशु था तब इस न्यग्रोध को अपनी जाघों के मध्य कर लाँघ जाता था। इसकी फुनगी हमारे उदर का स्पर्श करती थी।'

'तीतर और हाथी ने बन्दर से पूछा '—सौम्य! तुम्हे कौन-सी पुरानी बात याद है?'

'सौम्यो! मै शिशु था। इस बरगद के अकुरो को बैठकर खाता था।'

'हाथी और बन्दर ने तीतर से पूछा —'तुम्हे अपनी कौन-सी पुरानी बात याद है?'

'सौम्यो! दूसरी जगह महान् वटवृक्ष था। मैने उसका फल खाया। यहाँ पर मैने विष्टा किया। उससे यह वट वृक्ष पैदा हुआ। उस समय मेरी काफी उम्र हो चुकी थी।'

'तीतर की बात सुनकर हाथी और बन्दर ने कहा : 'तू जन्म से बडा है। हम तुम्हारा सत्कार करेगे। गौरव करेगे। मान करेगे। पूजा करेगे। तुम्हारी शिक्षा मे रहेगे।

'तत्पश्चात् तीतर ने हाथी और बन्दर को पचशील ग्रहण कराया। स्वय पचशील ग्रहण किया। वे एक दूसरे का गौरव करने लगे। सत्कार करने लगे। एक साथ जीवन यापन करने लगे। विहार करने लगे। इस नश्वर काया को त्याग कर वे सुगति प्राप्त किये।'

'भिक्षुओ!' तथागत ने कहा, 'वे तिर्यग् योनि के प्राणी थे। तथापि एक दूसरे का आदर करते थे। क्या भिक्षुओ को यह शोभा देगा? वे सुआख्यात धर्म मे, विनय मे, प्रव्रजित होकर, एक दूसरे का आदर, सत्कार, गौरव, सम्मान न करे?'

'भिक्षुओ ! वृद्धावस्था के अनुसार, अभिवादन, प्रत्युत्थान, प्रणाम, कुशल प्रश्न, प्रथम आसन, प्रथम जल, प्रथम परोसा भोजन, करने की अनुज्ञा देता हूँ ।'

× × ×

भगवान् चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँचे। अनाथपिण्डिक ने उनका स्वागत किया। उन्हे जेत वन मे ठहराया। भगवान् से दूसरे दिन भोजन करने के लिए निवेदन किया। प्रदक्षिणा किया। चला गया।

दूसरे दिन अनाथपिण्डिक ने भगवान् को सघ सहित भोजन कराया। भोजन के पश्चात् करबद्ध निवेदन किया ·

'जेत वन का क्या करूँ भन्ते ?'

'गृहपति !' तथागत ने कहा, 'जेत वन को आगत, अनागत, चातुर्दिश सघ के लिए दे दो ।'

'भगवान् की जैसी आज्ञा ।'

अनाथपिण्डिक ने जेत वन भिक्षु सघ को दे दिया ।

× × ×

अनाथपिण्डिक का एक पुत्र था। उसका नाम काल था। उसे भगवान् के धर्म मे रुचि नही थी। वह कभी भगवान् के समीप नही जाता था। अनाथपिण्डिक ने एक उपाय निकाला।

उसने पुत्र को प्रलोभन दिया—

'वत्स ! मै तुम्हे एक सौ कार्षापण प्रतिदिन दूँगा ।'

'क्या करना होगा ?'

'तुम्हे प्रति रात्रि जेतवन जाना होगा ।'

'वहाँ क्या करूँगा ?'

'कुछ नही। रात मे सोना, प्रात काल उठकर चले आना ।'

'बस ?'

'हाँ ।'

'जाऊँगा ।'

× × ×

काल रात्रि मे जेतवन गया। वह सोया। प्रात काल लौट आया। उसने एक सौ कार्षापण माँगा। जबतक उसे कार्षापण नही मिला उसने भोजन नही किया।

अनाथपिण्डिक ने उसे एक सौ कार्षापण देते हुए कहा : 'मै एक सहस्र कार्षापण तुम्हे प्रति दिन दूँगा।'

'क्या करना होगा ?'

'भगवान् जो उपदेश देते है। उसमे से कुछ स्मरण कर मुझे सुना दो।'

'बस ?'

'हाँ।'

'मै सुनाऊँगा।'

काल भगवान् का उपदेश सुनने के लिए उद्यत हो गया।

× × ×

काल ने उपदेश सुना। उस पर विचित्र प्रभाव पडा। श्रोतापत्ति फल उसने प्राप्त किया।

अनाथपिण्डिक ने भगवान् को भिक्षा ग्रहण के लिए आमन्त्रित किया था। भगवान् अनाथपिण्डिक के निवास-स्थान पर आये। उनके साथ काल भी था।

काल का मुख खिला था। वह प्रसन्न था। उसमे आमूल परिवर्तन हो गया था। भोजनोपरान्त अनाथपिण्डिक ने सहस्र कार्पापण काल को दिया। काल ने स्वीकार नही किया। अनाथपिण्डिक ने भगवान् से कहा :

'भन्ते ! प्रथम दिन बिना कार्पापण लिये इसने भोजन नही किया था। और आज लेने से अस्वीकार करता है।'

'श्रेष्ठी ! समस्त पृथ्वी का एक मात्र राज्य प्राप्त करने, चक्रवर्ती होने, स्वर्गमन किंवा सब लोगो के स्वामी होने की अपेक्षा श्रोतापत्ति फल श्रेष्ठ है।

× × ×

अनाथपिण्डिक भगवान् की सेवा मे लगा रहता था। भगवान्

उसके जेतवन मे विहार करते थे। समय आया। अनाथपिण्डिक बीमार पडा। उसने अपने एक पुरुष से कहा :

'पुरुष! भगवान् के पास जाओ। भगवान् के चरणो मे सिर से वन्दना कर कहना—'भन्ते! अनाथपिण्डिक बीमार है। वह आपके चरणो मे शिर से वन्दना करता है।'

'अच्छा—'

'उसके पश्चात् सारिपुत्र के पास जाना। उन्हे मेरे वचन से शिर से वन्दना कर कहना—भन्ते! अनाथपिण्डिक गृहपति बीमार है। यदि अवकाश हो तो दर्शन देने की कृपा करे।'

'अच्छा भन्ते!'

× × ×

सारिपुत्र ने चीवर धारण किया। पात्र लिया। गृहपति के निवास स्थान पर आया। आसन ग्रहण करने पर सारिपुत्र ने कहा

'गृहपति! ठीक से यापन हो रहा है? दु ख वेदना हट रही है? दु ख वेदना पुनरावर्तित तो नही हो रही है? व्याधि का हटना अनुभव कर रहे है? उसका लौटना तो नही अनुभव कर रहे है?'

'भो सारिपुत्र!' अनाथपिण्डिक ने कहा—'मुझे ठीक यापन हो रहा है। भारी दु खमय वेदनाएँ घेर रही है, हटती नही है। पीडा का आना मालूम हो रहा है। जाना प्रतीत नही हो रहा है। वेगशील हवा मेरे सिर को ताड़ित कर रही है। मालूम होता है। किसी शक्तिशाली पुरुष ने रस्सी से कठोरता पूर्वक मेरा सिर बॉध दिया है। बडे जोर से सिर मे पीड़ा हो रही है। वायु मेरे पेट मे भर कर उसे काट रही है। मुझे कोई आग पर तपा रहा है। मेरे शरीर मे अत्यन्त दाह हो रहा है।'

'गृहपति!' सारिपुत्र ने कहा 'चक्षु उपादान नही करूगा। मेरा विज्ञान चक्षु मे निश्चित नही होगा। इसी प्रकार गृहपति! श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, मन, रूप, गध, रस मे अभ्यास करो। अभ्यास करो परलोक का उपादान नही करूगा। मेरा विज्ञान परलोक मे निश्चित नही होगा। यह भी अभ्यास करो जो कुछ भी तुम्हारा दृष्ट, श्रुत, स्मृत, विज्ञात, प्राप्त पर्वेक्षित अनुपर्वेक्षित, मन द्वारा अनुचरित है उसका भी उपादान नही करूँगा। मेरा विज्ञान उसमे निश्चित न होगा।

सुनते ही अनाथपिण्डिक रोने लगा। उसकी आर्त स्थिति देखकर आनन्द ने कहा ·

'गृहपति ! क्या घवडाहट मालूम होती है। मन छोटा हो रहा है ?'

'भन्ते ! आनन्द !! घवड़ा नही रहा हूँ। दिल छोटा नही कर रहा हूँ। मैंने वहुत दिनो तक सत्सग किया है। किन्तु आज जैसी वाते इसके पूर्व नही सुनी थीं।'

'गृहपति !' सारिपुत्र ने कहा 'श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थो की समझ मे ये वाते नही आ सकती। इन्हे समझने मे प्रव्रजित कुशल होते है।'

भन्ते ! सारिपुत्र !! गृहस्थो को इस प्रकार की धार्मिक कथा सुनने से वञ्चित नही रखना चाहिए। भन्ते ! अन्य मत वाले भी कुल पुत्र हैं। धर्म न श्रवण करने पर धर्म से वे वचित रहेगे। उन्हे सुनकर धर्म के ज्ञाता होगे।'

सारिपुत्र और आनन्द गृहपति को उपदेश देकर अपने विहार की ओर चले और अनाथपिण्डिक ने अन्तिम श्वास लिया।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ तथा उवासक-उपासिकाओ मे सत्तावनवाँ तथा श्रावक उपासको मे तृतीय स्थान प्राप्त कोमल श्रावस्ती सुमन श्रेष्ठि पुत्र अनाथपिण्डिक सुदत्त गृहपति दायको मे अग्र हुआ था।

●

आधार ग्रन्थ

अगुत्तर निकाय १ १४, २ ४ ५

थेरगाथा धम्मपद ९ ४, १३ ११

सुत्त निपात उ० व० १ ६

विनयपिटक महावग्ग १ . ३ . १२, १४, : ३ २ १, . ५ २ १२, ५ ३ · १, ६ १ : १, . १० १ · ९

विनयपिटक चुल्लवग्ग . १ . १, १ ४, १ . ७ १, २ . २६, ३ १, . ४ . १, . ६ : २, ३ ३, . ८ . १, · १० . ३

मज्झिम निकाय . ३ . ५ : १

सयुक्त निकाय २ २ १०, ३ २ ६, ७ २ : १२, ८ ४, ११ १ ८, १२ ३ ५–१०, १२ ७ १–५, १२ ७ ९, । १३ २ ४, १५ १०; २१ १, २१ १; २१ २ ४ १, ३१ ५ ८, २७ १, ३४ १ १, ३४ ३ २ ७, ८, ३४ ४ ४ १, ३८ १, ३८ १०, ४० १, ४२ १, ४३ १ १ ४५ २ ३, ५० १ १, ५३ १ ४, ५३ २ ३

Thag A 1 23

AA · 1 : 288

सुभूति

अनाथपिण्डिक का कनिष्ठ भ्राता सुभूति था। सुमन श्रेष्ठी के कुटुम्ब मे जन्म लिया था। अनाथपिण्डिक का जेत वन वनकर तैयार हुआ। उसे भगवान् को दान देने की विधिवत् तैयारी की।

दान सस्कार हो रहा था। सुभूति अनाथपिण्डिक के साथ मगल उत्सव मे सम्मिलित था। उसने भगवान् का धर्म उपदेश सुना। उसने प्रव्रज्या पायी। उपसम्पदा पायी।

सुभूति वन मे चला गया। उसको अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई। उसके प्रज्ञा चक्षु खुले। उसने अर्हत पद प्राप्त किया।

× × ×

वह एक वार राजगृह आया। विम्वसार को मालूम हुआ। सुभूति आ रहे थे। उसने आगे जाकर सुभूति का स्वागत किया। विम्बसार ने निवेदन किया

'आयुष्मान्! मै आपके विहार का प्रवन्ध कर देता हूँ। आप वही निवास कीजिए।'

किन्तु वहाँ से लौटने पर वह भूल गया।

सुभूति को कोई आश्रय नही मिला। खुले आकाश के नीचे विहार करने लगा।

× × ×

---

(१) भिक्षा वौद्ध परम्परा है। भिक्षा माँगी नही जाती। भिक्षु द्वार पर मौन खडे हो जाते हैं। जिन्हे देना होता है वे पात्र मे डाल देते है। मैने थाई-लैण्ड, वर्मा तथा कम्वोडिया मे भिक्षुओ को भिक्षा लेते देखा है। मुझे यह भिक्षा की शैली वहुत ही आकर्षक तथा पसन्द लगी। कथा है। सुभूति भिक्षा को जाते थे। उन्हे समाधि लग जाती थी। मैत्री भावना की समाधि से भिक्षा लेते थे।

भयकर अवर्पण हुआ। प्रजा राजा विम्बसार के द्वार पर पहुँची। उसने गोहार दिया। आर्तनाद किया। राजा ने प्रश्न किया

'क्या कारण है ? देव वर्षा नही कर रहे है ?'

'राजन् ! सुभूति आकाश के नीचे पडे है।'

'तो—'

'यही कारण है वृष्टि नही हो रही है। यदि वर्पा होगी तो सुभूति को कष्ट होगा। वह भीग जॉयगे। अतएव वृष्टि रुक गयी है।'

'अच्छा ! प्रजाजन ! प्रबन्ध होगा।'

'साधु ! राजन्।'

× × ×

विम्बसार सवेग सुभूति के पास आया। वन्दना किया। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा किया। विस्मरण के लिये दु ख प्रकट किया। सुभूति के लिए एकपर्ण कुटी बनवा दिया।

कुटी मे तृण बिछा था। सुभूति ने कुटी मे प्रवेश किया। पद्मासन लगाकर बैठ गया।

मेघ उमडता आया। काली घटा आयी। आकाश मेघमय हो गया। जनता प्रसन्न हुई। परन्तु केवल बूँदा-बॉदी ही हुई। मूसलाधार पानी नही बरसा।

× × ×

प्रजा का कष्ट सुभूति तक पहुँचा। उसने मेघ देव को सम्बोधित किया

'मुझे कोई कष्ट नही होगा ? देव ! खूब बरसो।'

'मेरी यह छोटी पर्णकुटी खूब अच्छी तरह छाई है। सुखदायी है। वात से सुरक्षित है। हे ! देव !! खूब बरसो।'

'मेरा चित्त समाधिस्थ है। शान्त है। मेरा चित्त विमुक्त है। मैं उद्योगी हूँ। विहार करता हूँ। हे देव ! खूब बरसो !!'

वृष्टि हुई। पृथ्वी आर्द्र हुई। नर-नारी अन्न की आशा से प्रसन्न हो गये।

श्रावस्ती था। अनाथपिण्डिक का जेत वन था। भिक्षु परिपद् एकत्रित थी। भगवान् मुमुक्षु की चर्चा कर रहे थे। भगवान् ने कहा

'भिक्षुओ ! सरण और अरण धर्म है ।'

'भन्ते ! उनकी व्याख्या करेंगे ?'

'आयुष्मानो ! चक्षु खोलनेवाले मध्यम मार्ग को मैने खोजा है । यह धर्म दुःख रहित है । उपघात, उपायास परिदाह सहित है । उचित मार्ग है । अतएव यह धर्म अरण है । उत्सादन अप्रसादन, धर्म देशना, यह धर्म दुःख सहित है । मिथ्या मार्ग है । यह सरण धर्म है । उत्पादन रहित, अप्रसादन रहित, धर्म देशना यह धर्म दुःख रहित है । उचित है । अरण है । काम सुख, मृद्ध सुख, पृथग्जन सुख, अनार्य सुख है । यह धर्म दुःख सहित है । मिथ्या मार्ग है । सरण धर्म है ।

निष्कामना सुख सम्बोधि सुख है । यह धर्म अदुःख है । उचित मार्ग है । अरण है । जो धर्म रहोवाद, अभूत, अनर्थ युक्त है । वह धर्म दुःख सहित है । मिथ्या मार्ग है । सरण है । और जो धर्म रहोवाद है, अभूत, अनर्थ युक्त है वह धर्म है ।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे तेरहवॉ स्थान प्राप्त, कोसल श्रावस्ती, वैश्य कुलोत्पन्न, सुभूति, क्लेश मुक्तो दान के पात्रो मे अग्र हुए थे ।

●

आधार ग्रन्थ

अगुत्तर निकाय ३ ३७

अगुत्तर निकाय १ १४

मज्झिम निकाय ३ ४ ९ (सुत्त स० १३९)

थेर गाथा १ उदान १

मिलिन्द प्रश्न ६ ३ २५ ६ ३ ३०

अपादान १ ६७

A 1 24

Ud vi 7

AA · 1 124

ThagA , I 17

UdA 348

Ap 1 67

लकुण्टक भद्दिय

श्रावस्ती के एक सम्पन्न कुल मे भद्दिय ने जन्म लिया था। उसका कद छोटा था। कुबडा था। नाटा था। अतएव उसका नाम लकुण्टक भद्दिय पड गया था। यद्यपि उत्तम कुल मे भद्दिय ने जन्म लिया था, परन्तु कुरूप था।

कोकिल काली होती है। कुरूप होती है। किन्तु उसे कोकिलकण्ठा कहते है। कुरूप होने पर भी, भद्दिय का स्वर मधुर था। भापण शैली हृदयग्राही थी। उनके सुनने मे सुख मिलता था।

भगवान् का उपदेश ग्रहण किया। प्रव्रज्या ली। वाणी वल के कारण बौद्ध जगत् का प्रतिभा सम्पन्न उपदेशक हुआ।

× × ×

एक समय की बात है। उत्सव था। एक उमगवती युवती थी। एक ब्राह्मण के साथ रथ मे सुसज्जित वैठी थी। उत्सव मे सम्मिलित होने जा रही थी। भद्दिय का भद्दा रूप देखा। युवा अन्ध अल्हडपन के साथ, उसको चिढाने के लिए, दाँत निकाल कर, हँस दिया। उसके रूप की उपेक्षा किया।

कामिनी की दन्त पक्ति भद्दिय ने देखी। उसका दाँत दिखाना भूल न सका। मनन करने लगे। उन दाँतो का ध्यान करते हुए वे अनागामी हो गये।

× × ×

भद्दिय से सव लोग विनोद करते थे। उनकी युवक प्रवृत्ति थी। कारण उन्हे उपासक मात्र समझते थे। गम्भीर नही मानते थे।

एक समय की वात है। जेत वन मे भद्दिय विहार कर रहे थे। उनके नाक तथा कान को पकड कर श्रमण उपहास करते थे। नाना प्रकार का विनोद करते थे। कहते थे .

'ओ ! छोटे पिताजी ! आप अच्छी तरह विहार तो करते है ?'— कहते-कहते श्रमण वृन्द हँस उठता था। खूब मजाक होता था। वे हास, परिहास, उपहास की सामग्री हो गये थे।

भद्दिय क्रोध नही करते थे। श्रमण मुँह बनाकर उनसे पूछा करते थे·

'शासन मे आपका मन तो लगता है।'

भद्दिय प्रतिवाद नही करते थे। केवल मुसकरा देते थे। यह सब प्रतिदिन होता था।

× × ×

एक दिन धर्मसभा एकत्रित थी। भगवान् उपस्थित थे। कुछ भिक्षुओ ने चर्चा उठायी

'भद्दिय का श्रामण उपायास करते है।' भिक्षुओ मे से एक ने भगवान् से कहा।

'और वे कुछ बोलते भी नही।' सभा से ध्वनि उठी।

'क्रोध नही करते।' एक ध्वनि और सुनायी पडी।

'उनके नाक-कान बचे है। यही आश्चर्य है ' सभा मे एक हँसी उठी। भगवान् ने कहा,

'भिक्षुओ ! क्षीणास्रव क्रोधरहित होते है। वे ठोस पर्वत तुल्य अचल होते है।'

भगवान् ने पुन कहा

'जिस प्रकार ठोस पर्वत वायु से नही कम्पित होता उसी प्रकार पण्डित निन्दा एव स्तुति से नही विचलित होते।'

× × ×

जेत वन मे एक दिन अरण्य से तीस दर्शनेक्षु भिक्षु पधारे। वे भगवान् की वन्दना करने आ रहे थे। मार्ग मे भद्दिय को देखा। ध्यान नही दिया। भगवान् के समीप पहुँचे। अभिवादन किया। वन्दना किया। एक ओर खडे हो गये।

भगवान् ने जिज्ञासा की—'क्या आपने मार्ग मे एक स्थविर को गमनशील देखा था ?'

'भन्ते। स्थविर नहीं एक श्रामणेर को अवश्य देखा था।' भद्दिय की भद्दी शकल याद कर, उन्हे कुछ हँसी आयी।

'भिक्षुओ! वह श्रामणेर नही था।'

'क्या था भन्ते?'

'स्थविर है।'

'किन्तु वह तो, बहुत नाटा था भन्ते!'

'भिक्षुओ! वृद्धावस्था के कारण, कद के कारण, स्थविर आसन पर बैठने के कारण, कोई स्थविर नही होता।'

'भन्ते! उसकी क्या पहचान है?'

'आवुसो! जिसने आर्य सत्य का ज्ञान प्राप्त किया है। अहिंसक है। वही स्थविर है।'

'भन्ते—!'

'सुनो भिक्षुओ! केश श्वेत होने के कारण कोई स्थविर नही होता। परिपक्व आयु के कारण कोई स्थविर नही होता। उन्हे क्या कहेगे जानते हो?'

'भन्ते! कहे—।'

'उन्हे तुच्छ वृद्ध कहा जाता है, आवुसो!'

'भद्दिय—!'

'आयुष्मानो! मै कहता हूँ—सुनो। जिनमे सत्य है। धर्म है। संयम है। दम है। जो विगतमल है। धीर है। वे यथार्थ मे स्थविर है।'

× × ×

श्रावस्ती थी। भगवान् विहार कर रहे थे। भिक्षु सघ समवेत था। भगवान् आसनस्थ थे। भगवान् ने नाटे, छोटे, कुरूप भद्दिय को आते देखा। भिक्षु सघ से भगवान् ने कहा

'भिक्षुओ! देख रहे हो? कौन आ रहा है?'

'हाँ, भन्ते।—लकुण्टक भद्दिय।'

'देखते हो? वह कुरूप है। मन मारे है। उसने जिन समापत्तियो को प्राप्त कर लिया है, वे सरलता से सुलभ नही हो सकती। उसने इसी जन्म मे ब्रह्मचर्य के अन्तिम फल को प्राप्त कर लिया है।'

भगवान् ने भद्दिय के समीप आ जा जाने पर कहा ·

'भिक्षुओ ! हस, क्रौच, मयूर, हाथी एव चितकबरे मृग के शरीरो में किसी प्रकार का साम्य नही होता। सबका रूप भिन्न-भिन्न होता है। तथापि वे सिह से भयभीत रहते है। आवुसो ! मनुष्यो के शरीर मे साम्य है ?'

'हॉ है, भन्ते !'

'आवुसो ! मनुष्य अल्पायु होने पर भी कोई प्रज्ञामान है तो महान् है। शरीर से कोई बालक नही होता।

× × ×

भगवान् जेत वन मे विहार कर रहे थे। अनेक आगन्तुक भिक्षु भगवान् की वन्दना कर रहे थे। उनके समीप बैठे थे। भगवान् ने देखा। लकुण्टक भद्दिय कुछ दूर पर चले जा रहे थे। भगवान् ने उनकी ओर सकेत किया

'भिक्षुओ ! उस गमनशील भिक्षु को देखते हो ?'

'हॉ, भन्ते !' भिक्षुओ की दृष्टि भद्दिय की ओर उठ गयी।

'भिक्षुओ !' भगवान् ने सम्बोधित किया। 'वह माता-पिता को मारकर, दु खरहित गमनशील है।'

भिक्षु विस्मित हुए। सबकी प्रश्नपूर्ण दृष्टि एक दूसरे पर उठ गयी। भद्दिय के प्रति घृणा भावना ने सबमे प्रवेश किया। उन्हे शका हुई। सन्देह हुआ। उन्होने निवेदन किया ·

'भन्ते ! क्या यह सच है ?'

'भिक्षुओ !' भगवान् ने शान्तिपूर्वक कहा · 'माता तृष्णा है। पिता अहकार है। दो क्षत्रिय राजा, शाश्वत तथा उच्छेद दृष्टियाँ है। उनके अनुचर समस्त आपत्तियॉ है। उन्हे समाप्त कर ब्राह्मण दु ख रहित होता है।'

'भन्ते !'

'सुनो आवुसो ! माता-पिता, दो श्रोत्रिय है। शाश्वत और उच्छेद दृष्टियॉ है तथा पॉचवॉ व्याघ्र पच नीवरण है। उन्हे मार कर ब्राह्मण दु·खरहित होता है।

× × ×

'भद्दिय धर्म पथ पर विकसित होते चले गये। उसने एक दिन उदान कहा :

'सौभाग्यशाली भद्दिय अम्बाटकाराम से परे, वन प्रदेश मे तृष्णा का आमूल नाश कर, ध्यानस्थ वैठा है।'

'कितने ही लोग वीणा, मृदग तथा धमनियो से आकर्पित होते है। किन्तु मै वृक्षमूल मे बैठा, बुद्ध शासन मे रमता हूँ। यदि भगवान् मुझे कोई वर देना चाहे, तो मै यही वर माँगूँगा, समस्त जगत् कामागता स्मृति का सफल अभ्यास करे। मुझे वे छन्दराग रत लोग क्या पहचानेगे, जो मेरे रूप की अवहेलना करते है। किन्तु मेरी वाणी का अनुकरण करते है। वे व्यक्ति जो अन्तर की बात नही जानते, वहाँ नही देखते, वे समस्त दिशाओ से आवृत है। वे केवल बाह्य परिणाम को देखते है। वे शब्द प्रवाह मे वह जाते है। वे जो अन्तर की बाते जानते है। देखते है। वे अनावरणदर्शी शब्दो मे नही बह पाते।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भगवान् के भिक्षु श्रावको मे सातवाँ स्थान प्राप्त कोसल देश, श्रावस्ती नगर, महाभोगकुलोत्पन्न, लकुण्टक भद्दिय मजु स्वर वालो मे अग्र हुए थे।

आधार ग्रन्थ

थेरगाथा २२५ उदान ४६८–४७३

धम्मपद ६ ६, १९ ४, २९ ४

संयुक्त निकाय . २० ६ (पृष्ठ ३१४)

थेरा अपदान ५५ १ १–३३

अंगुत्तर निकाय १ . १४

Udan ii 1–2
ThagA i 469
Ap ii 489
AA i 110
A i 25
DhA iii 387
S ii 279
Ud . vi 5
J 2 142
Thag vss 466–472
Avs ii 152–60

महाप्रजापति गौतमी

यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं ।
संवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

[मै उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने काया, वाचा, मनसा से दुष्कृत नही किया है । और इन तीनो संस्थानो मे सवर युक्त है ।]

—ध० प० ३९१

एक समय कपिलवस्तु मे भगवान् न्यग्रोधाराम मे विहार कर रहे थे । महाप्रजापति[1] गौतमी ने दो नवीन घुस्से अपने हाथ से कातकर बनाये थे । उन्हे लेकर भगवान् के पास गयी । भगवान् को अभिवादन कर एक तरफ बैठ गयी ।

'भन्ते !' महाप्रजापति गौतमी ने कहा, 'इस घुस्से का सूत मैंने स्वय काता है । अपने हाथ से बीना है । यह जोडा मै आपको अर्पित करती हूँ ।'

---

(१) महाप्रजापति गौतमी भगवान् जब वैशाली मे थे । उस समय महाराज शुद्धोदन की मृत्यु हो गयी थी । महाप्रजापति विधवा होने के पश्चात् भिक्षुणी हुई थी । उनके पुत्र नन्द थे । महाप्रजापति ने भगवान् के भिक्षुणी सघ का सघटन किया था । उनका प्रबन्ध करती थी । भिक्षुणियो को प्रव्रज्या देती थी ।

एक गाथा है देवी महामाया तथा उनकी कनिष्ठ वहन महाप्रजापति गौतमी मे चक्रवर्तियो के लक्षण देखकर विवाह किया था । यह भी गाथा है कि देवी ने अपने पुत्र नन्द को पालन-पोषण के लिये धात्रियो को दे दिया था । भगवान् का स्वय लालन-पालन किया था । क्योकि देवी महा-माया की मृत्यु भगवान् के जन्म के सात दिन पश्चात् हो गयी थी । प्रजा-पति एकमत के अनुसार एक सौ बीस वर्ष तक जीवित रही । महाप्रजापति की अन्त्येष्टि क्रिया भगवान् के पश्चात् प्रव्रज्या दूसरे नम्बर मे आँकी जाती है ।

भगवान् ने घुस्सा देखा ।

'भन्ते ! इसे आप स्वीकार करे ।' महाप्रजापति गौतमी ने कहा ।

'गौतमी !' भगवान् ने कहा, 'इसे सघ को अर्पित कर दीजिए। सघ को यदि मिल गया तो मुझे मिल गया। सघ को देने से मै भी पूजित हूँगा। सघ भो पूजित होगा।'

'तथागत इसे स्वीकार करे।' गौतमी ने आग्रह किया।

'गौतमी ! इसे सघ को दे दीजिए।'

'नही भन्ते ! यह मैने आपके लिए बनाया है।'

'गौतमी ! इसे सघ को दे दीजिए।'

आनन्द समीप बैठे थे। वे बोले : 'भन्ते ! महाप्रजापति गौतमी का घुस्सा भगवान् स्वीकार करे।'

भगवान् ने आनन्द की ओर देखा।

'भन्ते !' आनन्द ने कहा —'गौतमी आपकी आपादिका थी। पोषिका थी। धात्री थी। आपकी क्षीरदायिका थी। आपकी मौसी है। आपकी विमाता है। उपकारी प्रवृत्ति की है। परोपकारक है। आपकी, धर्म की, तथा सघ की, शरण आयी है। आपके कारण प्राणातिपात अर्थात् हिसा से विरत हुई है। अदत्तादान से विरत हुई है। मिथ्याचार से विरत हुई है। सुरा मैरेय से विरत हुई है। प्रमाद स्थान से विरत हुई है।'

भगवान् ने अपनी मौसी प्रजापति गौतमी की ओर एक बार देखा। आनन्द ने पुन पूछा

महाप्रजापति बीमार पडी। वहाँ कोई भिक्षु श्रावक एव श्राविका उनकी सेवा करने के लिए उस समय नही था। बुद्ध शासन के अनुसार भिक्षुओ को भिक्षुणी सघ मे जाना एक प्रकार से वर्जित था। भगवान् ने नियम मे सशोधन किया। स्वयं विमाता के पास सेवा निमित्त गये। उन्हे उपदेश दिया।

महाप्रजापति भाष्यकारो के अनुसार चूलनन्दिय जातक मे वन्दरो की माता थी। चन्दा चुल्ल धम्मपाल जातक और भिक्षुदासिका काशी राजा किकी की कन्या थी।

'भन्ते ! आपके कारण, आपमे श्रद्धा युक्त हुई है। धर्म मे अत्यन्त प्रसाद युक्त हुई है। सघ मे अत्यन्त प्रसाद युक्त हुई है। आर्य कान्त शीलो से युक्त हुई है।'

'आनन्द ! व्यक्तिगत दक्षिणा की अपेक्षा, सघ दक्षिणा को मै फलप्रद मानता हूँ।'

'क्यो भन्ते ?' आनन्द ने उत्सुकता पूर्वक पूछा।

'आनन्द ! सघ की प्राथमिकता है।'

'भन्ते ! प्रकाश डालेगे ?' आनन्द ने जिज्ञासा प्रकट की।

'आनन्द ! चार दक्षिणाएँ शुद्ध होती है। कतिपय दक्षिणाएँ दायक से परिशुद्ध होती है। प्रतिग्राहक से परिशुद्ध नही होती है। कतिपय दक्षिणाएँ प्रतिग्राहक से परिशुद्ध होती है। कतिपय दक्षिणाएँ प्रतिग्राहक तथा दायक दोनो से शुद्ध नही होती। कतिपय दक्षिणाएँ दायक तथा प्रतिग्राहक दोनो से शुद्ध होती है। यह घुस्सा सघ को देना ही श्रेयस्कर है मुझे नही।' भगवान् ने कहा। आनन्द और प्रजापति गौतमी दोनो भगवान् का तर्क सुन चुप हो गये।

'आनन्द जो सघ को देता है। वह मुझी को देता है।'

महाप्रजापति गौतमी ने भगवान् की वन्दना की। प्रदक्षिणा किया। अभिवादन किया और प्रस्थान किया। भगवान् तथा आनन्द वहाँ मनन-शील मुद्रा मे बैठे रहे।

× × ×

महाप्रजापति गौतमी एक दिन [२]न्यग्रोधाराम मे तथागत के समीप पहुँची। वन्दना कर एक ओर खडी हो गयी। उन्होने भगवान् से पूछा :

'भन्ते ! उत्तम होगा यदि स्त्रियाँ भी प्रव्रज्या ग्रहण करे।'

'नही गौतमी नही ! महाप्रजापति !!'

'क्यो भन्ते !' प्रजापनि ने मृदु स्वर से पूछा।

---

(२) न्यग्रोधाराम यह कपिलवस्तु मे एक उद्यान था। बोधि प्राप्ति के प्रथम वर्ष पश्चात् कपिलवस्तु मे आये तो यही पर विहार किया था। यह एक शाक्य निग्रोध का था। अतएव उसका नाम निग्रोधाराम रख दिया गया था। उसने इसे सघ को दान कर दिया था। यहाँ भगवान् ने

'यह तुम्हे रुचिकर न हो तो अच्छा है।'

प्रजापति दु:खी हुई। दुर्मना हुई। अश्रुपूर्ण नेत्रो से राजभवन की ओर लौट आयी।

× × ×

कपिलवस्तु नगर से तथागत ने वैशाली की ओर प्रस्थान किया। तथागत वैशाली[३] के कूटागार शाला मे विहार कर रहे थे। वहाँ महाप्रजापति गौतमी पहुँची।

उनके सुन्दर लम्बे घुंघराले, सुगन्धित तैल से पोषित, रत्नो से सुसज्जित, केश कटे हुए थे। सूक्ष्म वस्त्र त्याग दिया था। काषाय वस्त्र पहने थी। अनेक शाक्य स्त्रियो के साथ वे कपिलवस्तु से चलकर आयी थी।

चलने के कारण उनका कोमल पैर फूल गया था। शरीर धूल से भर गया था। दुर्मना थी। अश्रु-मुखी थी। द्वार कोष्ठक के बाहर आकर खडी हो गयी।

यमक प्रातिहार्य किया था। उस चमत्कार के पश्चात् जब वर्षा अत मे हुई तो वही लोग जल मे भीग सके जो भीगना चाहते थे। वेसत्तर जातक यहाँ पर उन लोगो से भगवान् ने कहा था। यही पर प्रजापति गौतमी भिक्षुणी होना चाहती थी। जहाँ पर उन्हे शासन मे स्वीकार करने से भगवान् ने अस्वीकार कर दिया था। यहाँ पर भगवान् ने कई बार विहार किया था। कालिगोधा को यही पर रहते हुए भगवान् देखने के लिये गये थे। शाक्य और कोलिय मे रोहिणी नदी के विषय मे विवाद हुआ था तो भगवान् यही थे। यहाँ पर रहते हुए मध्याह्न काल भगवान् महावन मे व्यतीत करते थे। यहाँ एक सन्त कन्ह रहते थे। यही पर भगवान् ने कन्ह जातक कहा था। कहा जाता है कि चरिया पिटक तथा बुद्ध वश भगवान् ने सारिपुत्र को यही पर कहा था। यहाँ पर अनुरुद्ध की बहन ने दो मजिला भवन सघ के लिये निर्माण कराया था। बुद्ध घोष का कहना है कि काल क्षेमक शाक्य ने एक विशेष विहार का निर्माण कराया था।

(३) वैशाली लिच्छवियो की राजधानी थी। बुद्धत्व प्राप्त करने के पाँचवें वर्ष सर्व प्रथम भगवान् का वैशाली आगमन हुआ था। भगवान् जब वैशाली मे थे अनुमान लगाया गया है कि उसी समय उनके पिता शुद्धोदन का स्वर्गवास

आनन्द ने प्रजापति गौतमी को देखा। उनकी कष्टप्रद स्थिति देखकर पूछा :

'गौतमी! आपका यह पैर कैसे फूल गया है? आपका यह धूल धूसरित रूप?'

'आनन्द! कपिलवस्तु से हम आ रही है।'

'प्रयोजन देवी?'

'तथागत हम स्त्रियो को प्रव्रज्या नही देना चाहते। यही हमारे कष्ट का कारण है। यही हमारे आगमन का कारण है।'

'गौतमी! आप यही निवास कीजिये। मै तथागत से स्त्रियो को प्रव्रज्या देने के लिये निवेदन करूगा।'

× × ×

हुआ था। अन्तिम बार कुशीनगर जाते समय भगवान् का यहाँ आगमन हुआ था। बिहार के मुजफ्फरपुर जिला बसाढ गाँव प्राचीन वैशाली का स्थान कहा जाता है।

वैशाली मे चापाल चैत्य, उदेन चैत्य, गौतमक चैत्य, सत्तम्बल चैत्य, बहुपुत्र चैत्य, सारनन्दद चैत्य थे। भगवान् के समय वे वर्तमान थे। भगवान् प्राय कूटागार शाला तथा कभी इन चैत्यो मे विहार करते थे।

वैशाली निग्रन्थो का शक्ति केन्द्र था। भगवान् महावीर ने स्वय अपने ४२ वर्षा वासो मे १२ वर्षा वास वैशाली मे व्यतीत किया था।

भगवान् बुद्ध के समय वैशाली विशाल नगर थी। धनधान्य से पूर्ण थी। वहाँ पर ७७०७ मनोविनोद के स्थान ये। उतना ही पद्म पूर्ण पुष्करिणियाँ थी।

नगर तीन प्राकारो से वेष्ठित था। प्रत्येक दिवालो के मध्य एक गव्यूती का अन्तर था। दिवालो मे तीन स्थानो पर महाद्वार थे। उन पर गुम्बज बने थे। उनमे प्रहरी रहते थे।

इसके समीप गोसिग साल वन भी था। द्वितीय बौद्ध परिपद अथवा सगीत यहाँ पर हुई थी।

नगर का नाम विशाला भी था। नाग लोग वैशाली मे रहते थे। उन्हे वैशाला कहते थे।

'भन्ते !' आयुष्मान् आनन्दने तथागत के समीप पहुँच कर वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर जाकर बैठ गये।

'आनन्द !' तथागत ने प्रश्न किया, 'क्या है आनन्द ?'

'तथागत ! महाप्रजापति गौतमी आयी है। उनका पैर चलते-चलते फूल गया है। मार्ग के धूल से शरीर भर गया है। कापाय वस्त्र-पहने है। केश कटवा दिया है।'

'यहाँ है ?' भगवान् ने विस्मय से पूछा।

'हाँ भन्ते ! दु खी है। दुर्मना है। अश्रुमुखो है। द्वार कोष्ठक के बाहर खडी है।'

'क्या चाहती है ?' भगवान् ने जिज्ञासा की।

'स्त्रियो को प्रव्रज्या का अधिकार।'

'आनन्द ! तुम्हे यह बात नही कहनी चाहिए।'

'भन्ते ! स्त्रियो को प्रव्रज्या मिले।'

'तथागत के प्रवेदित धर्म मे स्त्रियो की प्रव्रज्या का स्थान नही है। उन्हे घर त्यागना उचित नही है।'

'भन्ते ! वे भी प्राणी है। उन्हे भी पुरुषो की तरह प्रव्रज्या मिलनी चाहिए।'

आनन्द ने अपना निवेदन असफल होते देखकर दूसरे ढग से बात कही 'भन्ते ! क्या स्त्रियाँ तथागत के प्रवेदित धर्म मे प्रव्रज्या लेकर, श्रोतापत्ति फल, सकृदागामि फल, अनागामि फल तथा अर्हत्त्व फल का साक्षात्कार नही कर सकती ?'

'आनन्द ! वे साक्षात् कर सकती है।'

'यदि भन्ते ! साक्षात् कर सकती है, तो भगवान् को स्मरण होगा। माता महामाया की मृत्यु के पश्चात् प्रजापति गौतमी ने आपको दूध पिलाया था। आपकी वही वास्तविक माता है। ऐसी महान् विदुषी को क्यो न प्रव्रज्या दी जाय ?'

'आनन्द ! क्या गौतमी देवी आठ गुरुधर्मो को स्वीकार करेगी ?'

'वे आठ गुरुधर्म क्या है भन्ते !'

'प्रथम है आनन्द ! यदि कोई भिक्षुणी एक सौ वर्ष की उपसम्पदा

प्राप्त की हो तो, उसे भी उसी दिन हुई, भिक्षुणी के लिए, अभिवादन, प्रत्युत्थान, करबद्ध प्रणाम, सामीची कर्म करना होगा। उसे जीवन पर्यन्त सत्कार, गौरवपूर्वक, मानकर, पूजकर, करना होगा।'

'भन्ते! दूसरा—?'

'धर्म श्रवणार्थ उन्हे आना चाहिए।'

'भन्ते! तीसरा ?'

'प्रति मास का अर्ध भाग भिक्षुणी को भिक्षु सघ मे पर्येषण करना चाहिए।'

'भन्ते! चौथा ?'

'वर्षावास के पश्चात् भिक्षुणी को दोनो सघो मे देखे, सुने और जाने। तीनो स्थानो से प्रवारण करनी चाहिए।'

'भन्ते! पाँचवाँ ?'

'भिक्षुणियाँ जिन्होने गुरुधर्म स्वीकार कर लिया है, उन्हे दोनो सघो मे पक्ष मानना करनी चाहिए।'

'भन्ते! छठा ?'

'आक्रोश न करे, भिक्षु को अपशब्द न कहे।'

'सातवाँ भन्ते ?'

'आज से भिक्षुणियों का भिक्षुओ से वार्तालाप का मार्ग बन्द होता है।'

'आपका भन्ते!'

'किन्तु भिक्षुओ का मार्ग खुला है। वे भिक्षुणियो को कह सकते है।'

'यदि महाप्रजापति गौतमी इन्हे स्वीकार कर ले तो ?'

'उन्हे उपसम्पदा मिले।'

× × ×

'गौतमी! देवी!!'

आनन्द ने प्रजापति गौतमी के समीप आकर निवेदन किया :

'यदि आप लोग आठ शर्तो को स्वीकार करे, तो स्त्रियो को प्रव्रज्या का अधिकार मिल जायगा।'

'वे कौन है ।'

आनन्द ने सविस्तार आठो बातो को समझाया । उन्हे सुनकर गौतमी बोली :

'भन्ते !' गौतमी ने कहा, 'तरुण किंवा तरुणी शौकीन जिस प्रकार स्नान कर, उत्पल की माला, जूही की माला, अतिमुक्तक की माला, अपने मस्तक पर धारण करते हैं उसी प्रकार हम आठो गुरु धर्मो को शिरोधार्य करती है ।'

'धन्य ! देवी ! !'

आनन्द ने उनकी प्रशसा की । भगवान् के पास लौट आये ।

× × ×

'भन्ते !' आनन्द ने भगवान् का अभिवादन किया । वन्दना की । एक ओर बैठ गये ।'

'आनन्द ! गौतमी ने क्या कहा ?'

'तथागत ! गौतमी ने यावज्जीवन, अनुल्लघनीय आठो गुरुधर्मो का पालन करना स्वीकार कर लिया है ।'

'आनन्द ! यदि मेरे प्रवेदित धर्म मे, विनय मे, स्त्रियाँ प्रव्रज्या न पाती तो, यह ब्रह्मचर्य, चिरस्थायी होता । सद्धर्म सहस्र वर्ष तक स्थिर रहता ।'

'अब— ?' आनन्द ने साश्चर्य पूछा ?

'स्त्रियाँ प्रव्रजित हुई है । ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नही रहेगा । सद्धर्म केवल पाँच सौ वर्षो तक स्थायी रहेगा ।'

'भन्ते !'

सद्धर्म का पाँच सौ वर्ष केवल स्थायी रहना सुनकर आनन्द उदास हो गया ।

'आनन्द !'

'भन्ते !'

जिस धर्म मे, जिस विनय मे, स्त्रियाँ प्रव्रज्या पाती है, वहाँ ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नही होता ।'

'भगवन् !'

'आनन्द !' लहलहाते धान के खेत मे सेतट्ठिका रोग जैसे पकड लेता है। शाली का वह खेत चिरस्थायी नही रहता। उसी प्रकार स्त्रियो की प्रव्रज्या के कारण ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नही होगा।'

'तथागत— ।'

'सुनो आनन्द ! सम्पन्न ऊख के खेत मे जैसे माजेष्ट्रिका रोग लग जाता है। ऊख लाल हो जाती है। ऊख का खेत चिरस्थायी नही रहता। उसी प्रकार स्त्रियो के प्रव्रज्या लेने पर ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नही रहेगा।'

'भगवन् !'

'आनन्द ! जिस प्रकार जल रोकने के लिए, विशाल सरोवर के जल को बाँधने के लिए, मेड बनायी जाती है। उसी प्रकार रोक-थाम के लिए, मैने जीवनपर्यन्त भिक्षुणियो के लिए आठ गुरुधर्मो को स्थापित किया है। वे मेड का काम करेगे। मेड टूटने पर जल बाहर जाता है। वही स्थिति ब्रह्मचर्य की, विनय की होगी।'

× × ×

एक दिन प्रजापति गौतमी तथागत के समीप गयी। तथागत वैशाली के महावन[४] के कूटागार शाला मे विहार कर रहे थे। भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गयी।

भगवान् की प्रश्नपूर्ण दृष्टि गौतमी पर पडी। गौतमी ने कहा

'भन्ते ! उत्तम होगा। यदि तथागत धर्म का सक्षेप मे उपदेश करे। उसे सुनकर एकाकी प्रमादरहित होकर आत्म सयमित हूँगी। विहार करूँगी।'

'प्रजापति गौतमी !' तथागत ने कहा, 'जो धर्म सराग के लिए है। विराग के लिए नही है। जो धर्म सयोग के लिए है। विसयोग के लिए नही है। जो धर्म सग्रह के लिए है। विनाश के लिए नही है। जो धर्म इच्छा वृद्धि के लिए है। इच्छाओ की कमी के लिए नही है। जो धर्म असन्तोष के लिए है। सन्तोष के लिए नही है। जो धर्म भीड के लिए

---

(४) महावन कम से कम चार महावनो का उल्लेख मिलता है। यह महावन वैशाली के समीप था। इसका कुछ अंश मानवकृत तथा शेप प्राकृतिक था। दूसरा महावन कपिलवस्तु में था। तीसरा महावन उरुवेल कप्प के वाहर था। चौथा महावन नेरजना नदी के तट पर था।

है। एकान्त के लिए नही है। जो धर्म अनुद्योगित के लिए है। उद्योग के लिए नही है। जो धर्म दुर्भरता के लिए है। सुभरता के लिए नही है—वह धर्म नही है। वह विनय नही है। वह शास्ता का शासन नही है।'

'धर्म क्या है भन्ते !'

'गौतमी !' तथागत ने कहा, 'जो धर्म विराग निमित्त है। सराग के लिए नही है। वियोग के लिए है। विसयोग के लिए है। सयोग के लिए नही है। उद्योग के लिए है। विनाश के लिए नही है। इच्छाओ को स्वल्प करने के लिए है। वृद्धि के लिए नही है। सुभरता के लिए है। दुर्भरता के लिए है—यह धर्म है। यह विनय है। यह शास्ता का शासन है। गौतमी आपको यही समझना चाहिए।'

यद्यपि महाप्रजापति भगवान् की विमाता थी तथापि संघ मे प्रविष्ट होने के पश्चात् जैसे पूर्व जीवन का अध्याय बन्द हो गया था। भगवान् मे पुत्र भावना न होकर गुरु भावना हो गयी थी। सम्पर्क दृष्टि, तथा अष्टागिक मार्ग का विचारो तथा जीवन पर कितना प्रभाव पडता है यह इसी से स्पष्ट हो जाता है। महाप्रजापति ने भिक्षुणी सघ सघटित किया था। भगवान् जिस दार्शनिक क्रान्ति को लेकर भारत मे भ्रमण कर रहे थे। धर्म प्रचार कर रहे थे। उस जीवन के एक नारी क्षेत्र मे महाप्रजापति का सर्व प्रथम तथा महत्त्वपूर्ण योग दान था। महाप्रजापति ने अपने उदान द्वारा कितना उदात्त विचार प्रकट किया है

'बुद्ध ! तुम्हे नमस्कार है। वीर ! तुम्हे नमस्कार है। सर्वोत्तम प्राणी ! तुम्हे नमस्कार है। आपने मुझे तथा अनेक प्राणियो का दु ख से उद्धार किया है। दु ख के कारण का मुझे पता चल गया है। दु.ख के मूल कारण वासनाओ का मैने उच्छेदन कर दिया है। मै दु ख निरोध गामी आर्य अष्टागिक मार्ग मे विचरण करती हूँ।'

'ओह ! पूर्वजन्मो मे मै अनेक बार माता, मातामही, पुत्र, पिता, भाई बनती रही हूँ। मै सत्य ज्ञान से दूर थी। मै निरन्तर जगत् जाल मे फँसी भ्रमण करती रही हूँ।'

'धन्य हुई। मैने इस जन्म मे बुद्ध का दर्शन किया है। निस्सन्देह यह मेरा अन्तिम जीवन है। मेरा आवागमन क्षीण हो गया है। मुझे पुन जन्म नही लेना है।'

'भगवान् की सबसे बडी वन्दना पुरुषार्थ, रत, सयमी सर्वदा दृढ पराक्रम मे लग्न सघ के भिक्षुओ का अवलोकन करना है।'

'देवी महामाया की कोख से सबके कल्याण निमित्त भगवान् ने जन्म लिया है। उन्होने व्याधि एव मरण द्वारा त्रस्त प्राणियो के दु ख पुजको छिन्न कर दिया है।'

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक एव श्राविकाओ की तालिका मे बयालीसवॉ तथा श्राविकाओ मे प्रथम स्थान प्राप्त देवदह क्षत्रिय कुलोत्पन्न शुद्धोदन भार्या भगवान् की रक्तज महाप्रजापति गौतमी अग्र हुई थो।

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद २६ ८
मज्झिम निकाय ३ ४ १२
विनय पिटक चुल्ल वग्ग १० १—६
थेरी गाथा ५५
उदान १५७—१६२
Ap ii 538, 529-43
MhU . ii · 18
DpU · xviii 7
DhA i 97
A iv 274, 149,
Vin ii 253, iv 56
A i 25
Thig A 140, 75
J · ii 202, iii 182, vi 481,
MA ii 1001
AA i 185, . iii 774
M iii 253

नन्दा

अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो॥

[यह शरीर नगर, अस्थियो की रचना है। मास और रक्त का इस पर लेपन किया गया है। उसमे जरा, मृत्यु, मान, मत्सर निवास करते है]

–धमपद १५०

कपिलवस्तु राज्यकुल था। भगवान् का वश था। उसमे नन्दा[1] ने जन्म लिया था। ज्येष्ठ भ्राता नन्द थे। अनुपम रूप के कारण उसे सुन्दरी नन्दा कहते थे। उसे जनपद कल्याणी कहते थे। अर्थात् वह नगर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी।

भगवान् का कपिलवस्तु आगमन हुआ। उसने देखा। राहुल और नन्द दोनो ने प्रव्रज्या ले ली थी। राजा शुद्धोदन की मृत्यु हो चुकी थी। महाप्रजापनि गौतमी ने भी प्रव्रज्या ले ली थी।

नन्दा ने विचार किया। उनकी विमाता के पुत्र तथा उसके ज्येष्ठ

---

(१) नन्दा के अन्य नाम सुन्दरी नन्दा, रूप नन्दा, जनपद कल्याणी नन्दा है। अभिरूप नन्दा, क्षेम शाक्य की पुत्री थी। एक ही नाम होने के कारण प्रारम्भ मे ही बौद्ध साहित्य मे नामो का सम्भ्रम रहा हे। बौद्ध धार्मिक ग्रन्थो मे कम से कम पन्द्रह नन्दा नामकी महिलाओ का उल्लेख है। किन्तु सभी भिन्न है। उनके नामो की एकरूपता के कारण सर्वदा घटना तथा कथाओ के सम्बन्ध मे भ्रम उत्पन्न होता रहा हे। मै भी इसका अपवाद नही हूँ।

श्रीलका, बरमा तथा अन्य बौद्धमतानुयायी देशो मे वैशाख कृष्ण पूर्णिमा को धूमधाम से नन्दापर्व मनाया जाता है। बिजली की खूब रोशनी की जाती है। नन्दा का रूप बनाया जाता है। यह उत्सव वहाँ के जीवन मे बडा महत्त्वपूर्ण होता है।

भ्राता सिद्धार्थ ने प्रव्रज्या ले ली। बुद्ध हो गये। उन्होने अपना राज्य त्याग दिया। सुख त्याग दिया।

इसी प्रकार राहुल ने राज-सुख त्याग कर प्रव्रज्या ले ली। उसके ज्येष्ठ भ्राता नन्द ने राज त्याग कर प्रव्रज्या ले ली। मेरी माता महा-प्रजापति गौतमी ने राजसुख त्यागकर प्रव्रज्या ले ली। माता ने प्रव्रज्या ले लिया।

उसने देखा। सभी कुटुम्बियो ने प्रव्रज्या ले ली थी। वह एकाकी रह गयी थी। उसे घर पर कोई काम नही रह गया था। उसने निश्चय किया। उसके सगे-सम्बन्धी कुटुम्बी जहाँ गये थे। वही वह भी जायेगी।

नन्दा ने प्रव्रज्या का निश्चर्य धर्म आकर्षण के कारण नही अपितु कुटुम्ब और कुल रक्त स्नेह के कारण किया। प्रव्रज्या ली।

उसे अपने रूप का अभिमान था। भगवान् के सम्मुख नही जाती थी। भगवान् उसके रूप की निन्दा करेगे। रूप को अनित्य, दु ख तथा अनात्मक कहेगे। अभिरूप नन्दा तुल्य वह भगवान् के सम्मुख जाने मे सकोच करती थी।

किन्तु यौवन ढलता है। तारुण्य नष्ट होता है। नन्दा ने रूप ढलता देखा उसे विराग हुआ। उसके प्रज्ञा चक्षु खुलने लगे।

हिचक दूर हो गयी। उपदेश सुनने भगवान् के सम्मुख गयी। भगवान् ने ऋद्धि बल से एक अनिन्द्य तरुणी बनाया। वह नन्दा से भी सुन्दर थी। भगवान् के पीछे खडी थी। पखा झल रही थी। सब लोग उसकी ओर देखने लगे। नन्दाकी ओर कोई नही देखता था। उसे बडा आश्चर्य हुआ। वह ललना युवती हुई। वृद्धा हुई। जराजीर्ण हुई। व्याधिग्रस्त हुई। वही मर गयी। नन्दा को शरीर की दुर्गति देख विराग हुआ। भगवान् ने उससे कहा

'नन्दा! सुनो!! शरीर व्याधि मन्दिर है। अशुचि है। एकाग्र एव स्थिर चित्त समाधि मे स्थिर कर। उनमे स्थिर कर जो दृष्टि को अच्छे नही लगते।

'नन्दा! जैसे मेरा शरीर वृद्ध हो गया है। उसी प्रकार तुम्हारा शरीर वृद्ध होगा। इस शरीर के सौन्दर्य का यही परिणाम है। यही तुम्हारे सौन्दर्य का परिणाम होगा।

'नन्दा यह शरीर दुर्गन्धमय है। अपवित्र है। केवल अज्ञानी जन इसे

अभिनन्दनीय समझते है। इस प्रकार विचार करती हुई, तुम सौन्दर्य के मोह से विमुक्त होगी। सत्य का तुम्हे साक्षात्कार होगा।'

नन्दा के प्रज्ञाचक्षु खुले। उसने भगवान् को शिरसा नमन किया।

× × ×

एक समय नन्दा मनन कर रही थी। उस समय उसने उदान कहा :

'अहा! भगवान् के उपदेश द्वारा मुझे इस अनित्य काया का ज्ञान हो गया। इसके वास्तविक रूप को जान लिया। मैने अतन्द्रित होकर मनन किया। बाह्य एव अभ्यान्तर रहस्य समझ लिया। मुझे उपदेश द्वारा इस शरीर के प्रति निर्वेद उत्पन्न हुआ है। इस शरीर के अपनेपन की भावना नष्ट हो गयी है। राग मुक्त हो गया हूँ। मै उद्योगरत, अनासक्त, उपशात निर्वाण जन्य, परम शान्ति का अनुभव कर रही हूँ। मै निस्सन्देह निर्वाण प्राप्त हूँ। परम शान्त हूँ।'

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षुणी श्रावक श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे सैतालीसवॉ तथा भिक्षुणी श्राविकाओ मे छठवॉ स्थान प्राप्त, शाक्य कपिलवस्तु, महाप्रजापति गौतमी की पुत्री नन्दा, ध्यान करने वालियो मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद ११ ५
थेरी गाथा ५ ४१
अगुत्तर निकाय १ . १४
मि० प्र० ४ ६ ५४
पालि थेरी अपदान २ ७ ९७-२८८
उदान ८२-८६
A . 1 . 25
SNA 1 241
ThigA . 80
EGAA . 198
DhA . 111 113

उग्र गृहपति

वैशाली के निवासी उग्र[1] गृहपति थे। उग्र का मूल नाम क्या था पता नही चलता। उसे उग्र गृहपति कहा जाने लगा। वह लम्बा था। उत्तम आचरण का था। व्यक्तित्व आकर्पक था।

उसने भगवान् का दर्शन किया। प्रथम दर्शन काल मे श्रोतापन्न हो गया। कुछ समय पश्चात् उपदेशो द्वारा अनागामी हो गया।

× × ×

वह वृद्ध हुआ। उसके मन मे एक दिन विचार उठा :

'मै भगवान् को सबसे मूल्यवान् आकर्षक वस्तु दूँगा। क्या दूँ ? वह दूँगा जो मुझे सबसे अधिक प्रिय होगी। मैने सुना है। इस प्रकार के दान को भगवान् कुशल मानते है। मेरी इच्छा है। भगवान् मेरे तुच्छ निवास-स्थान पर पधारे।'

× × ×

भगवान् को उग्र की मनोभावना का अनुभव हुआ। उसके निवास-स्थान पर भिक्षुओ के साथ पधारे। भिक्षु सघ के साथ उग्र का भोजन ग्रहण किया। भोजनोपरान्त उग्र ने निवेदन किया

'भन्ते ! आप तथा सघ को मै वह देना चाहता हूँ, जो वे लेना चाहे। इस दान से मुझे असीम प्रसन्नता का बोध होगा।'

भगवान् ने कुछ उत्तर नही दिया। सघ के साथ चिहार मे लोट आये।

× × ×

---

(१) सयुक्त निकाय वैशाली उग्र के साथ हुआ भगवान् का सलाप यहाँ उद्धृत करता है जो उग्र हस्तिग्राम के साथ हुआ था। दोनो मे सक्कसुत्त सिद्धात को दुहराया गया है। अगुत्तर निकाय में एक उत्तम वस्तुओ की तालिका दी गयी है जो उग्र को पसन्द थी। कथा है कि यह सब भगवान् तथा संघ को उग्र ने अर्पित किया था।

भिक्षु उपदेश देते हैं। मै ध्यान पूर्वक सुनता हूँ। यदि भिक्षु उपदेश नही देते, तो मै स्वय धर्मोपदेश देता हूँ।'

'सातवाँ—आवुस ?'

'मुझे कभी गर्व का अनुभव नही होता।'

'किस प्रकार का गर्व आयुष्मान् ?'

'देवताओं से वार्तालाप मैने किया है।'

'आठवाँ आवुस ?'

'मैने भगवान् द्वारा वर्णित औरम्भागीय सयोजनो (निचले बन्धनो) को दूर भगा दिया है।'

भिक्षु वन्दना, प्रदक्षिणा कर विहार मे लौट आया।

× × ×

दूसरे दिन भगवान् भिक्षु सघ के साथ बैठे थे। भिक्षु ने उग्र के साथ हुए सलाप का वर्णन किया। भगवान् ने कहा

'मेरे मन मे यही बाते थी जब मैने उग्र की प्रशसा की थी।'

× × ×

भगवान् वैशाली मे थे। महावन की कूटागार शाला मे विहार कर रहे थे। उग्र एक दिन भगवान् के पास आया। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना किया। एक ओर बैठ गया। सुअवसर देखकर भगवान् से निवेदन किया

'भन्ते! क्या कारण है। कुछ लोग इसी जीवन काल मे मुक्त हो जाते है। और कुछ नही होते ?'

भगवान् ने शक्र के साथ इसी प्रसंग मे हुए संलाप का वर्णन किया।

'उग्र! चक्षु विज्ञेय रूप अभीष्ट है। सुन्दर है। आकर्षक है। भिक्षु उनका अभिनन्दन करता है। उनकी प्रशसा करता है। उनमे लिप्त होता है। इस प्रकार उसमे लिप्त उपादान युक्त विज्ञान होता है। उपादान युक्त वह भिक्षु निर्वाण नही प्राप्त करता। यही कारण है। इस जीवन मे लोग परिनिर्वाण प्राप्त नही करते।'

'भन्ते!'

'उग्र !' भगवान् ने कहा। 'इसी प्रकार श्रोत्र विज्ञेय शब्द अभीष्ट होता है। भिक्षु उनका अभिनन्दन करता है। उनमे लिप्त होता है। उसमे उपादान युक्त विज्ञान उत्पन्न होता है। उपादान युक्त वह भिक्षु परिनिर्वाण प्राप्त नही करता।'

'भन्ते !'

'उग्र !' भगवान् ने कहा। मनोविज्ञेय धर्म अभीष्ट होता है। भिक्षु उनका अभिनन्दन करता है। उनमे लिप्त होता है। उपादान युक्त विज्ञेय उत्पन्न होता है। उस उपादान से युक्त भिक्षु निर्वाण प्राप्त नही करता।'

'आयुष्मान् !' भगवान् ने कहा। 'यही कारण है। कुछ लोग जीवन-काल मे निर्वाण नही प्राप्त करते।'

'भन्ते ! किसे निर्वाण इसी जीवनकाल में मिल जाता है?'

'आवुस ! जो भिक्षु इन चक्षु विज्ञेय, शब्द मनोविज्ञेय, धर्मादि-विज्ञेयो मे लिप्त नही होता। उनका अभिनन्दन नही करता। उसे उपा-दान युक्त विज्ञान नही उत्पन्न होते। उपादानो रहित भिक्षु, निर्वाण प्राप्त करता है। यही कारण है। इस जीवन मे ही अनेक व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर लेते है।'

× × ×

भगवान् वज्जियो के हस्तग्राम मे थे। उग्र गृहपति ने वही प्रश्न पुन उठाया।

'भगवान् !' गृहपति ने पूछा 'क्या कारण है? कुछ लोग अविलब निर्वाण प्राप्त कर लेते है। और कुछ नही कर पाते?'

भगवान् ने पूर्व जैसा ही उत्तर दिया

'गृहपति ! चक्षु विज्ञेय रूप अभीष्ट है। सुन्दर है। जो भिक्षु उनका अभिनन्दन नही करता। उनमे लिप्त होकर जीवन यापन नही करता। इस प्रकार उसमे लिप्त उपादान वाला विज्ञान नही होता। उपादान रहित वह भिक्षु निर्वाण प्राप्त कर लेता है।'

× × ×

उग्र की शीघ्र ही मृत्यु हो गयी। उसका मनोमय देव स्वर्ग मे जन्म हुआ। वह देव लोक से भगवान् के पास आया। उसने भगवान् से निवे-

दन किया— वह अर्हत्त्व चाहता था। प्राप्त कर लिया है।'

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भगवान् के भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ मे इकसठवॉ तथा उपासको मे सातवॉं स्थान प्राप्त, वज्जीदेश, वैशाली निवासी, श्रेष्ठि कुलोत्पन्न, उग्र गृहपति प्रियदायको मे अग्र हुआ था।

आधार ग्रन्थ :

पालि एवं हिन्दी

सयुक्त निकाय ३४ ३ २ ५ (सक्क सुत्त)

३४ . ३ . ३ . १,२ (वेसालि सुत्त)

अंगुत्तर निकाय १ १४

A : i 26, iii . 49–51, v i : 208, 212, 451

SA iii 26, iv · 109

AA i . 212–214; ii : 602

सकुला

श्रावस्ती कोसल की राजधानी थी। एक ब्राह्मण कुल मे सकुला[1] ने जन्म लिया था। वह अनाथपिण्डिक के जेत वन मे आयी। भगवान् का उपदेश सुना। धर्म के प्रति रुचि हुई। अनन्तर एक क्षीणास्रव अर्हत् का उपदेश श्रवण किया। धर्म के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई। धर्म के रहस्य को समझा। उद्योग तथा अभ्यास द्वारा उसके अन्तर्चक्षु खुले। उसने प्रव्रज्या पायी। उपसम्पदा पायी। उसके प्रज्ञा चक्षु खुले। उसने उदान कहा

'गृहस्थावस्था मे एक अर्हत् का मैने उपदेश सुना था। मैने विमल, अच्युत पद निर्वाण का दर्शन किया था। मैने पुत्र, कन्या, सम्पत्ति आदि सबका त्याग कर दिया। गृह त्याग दिया। केशो को कटा दिया। राग, द्वेष तथा सब प्रकार के चित्त मलो को त्याग दिया।

मैने उपासिका बनकर, उत्तम मार्ग का अनुसरण किया है। मैने उपसम्पदा प्राप्त किया है। मुझे पूर्व जन्म का ज्ञान हुआ है। मुझे ध्यान के उत्थान मे विमल, दिव्य दृष्टि, प्राप्त हुई है। सब सस्कारो को मैने अनित्य जाना है। दु:ख जाना है। उन्हे हेतुओ द्वारा उत्पन्न जाना है। शान्त हुई हूँ। निर्वाण की परम शान्ति का दर्शन किया है।'

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे उनचासवाॅ तथा श्राविकाओ मे आठवाॅ स्थान प्राप्त, कोसल श्रावस्ती, कुल गृहोत्पन्न सुकुला, दिव्य चक्षु वालियो मे अग्र हुई थी।

---

(१) एक सकुला का और वर्णन मिलता है। वह दूसरी सकुला है। सोमा की बहन है। दोनो ही राजा प्रसेनजित की बहन थी।

आधार ग्रन्थ .

पालि थेरी अपदान ३ २४६

थेरी गाथा ४४

अगुत्तर निकाय १ १४

A I 25

M II 125

MA II 157

चित्र

सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसमप्पितो ।
यं यं पदेसं भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥

[श्रद्धा, शील, यश एवं भोग से युक्त व्यक्ति जहाँ-जहाँ जाता है, वहीं उसकी पूजा होती है ।]

—ध० प० ३०३

चित्र गृहपति मच्छिका सण्ड[1] के निवासी थे । वहाँ के श्रेष्ठी थे । जिस दिन उनका जन्म हुआ था । उस दिन समस्त नगर मे विविध रंग के कुसुमों से नगर चित्र सदृश प्रतीत होता था । अतएव उसका नाम चित्र रख दिया गया था ।

महानाम एक समय अम्वाटिकाराम मे पधारे । उन्हे देखकर चित्र अत्यन्त प्रभावित हुआ । उनके निमित्त उसने एक विहार निर्माण करा दिया था । वहाँ महानाम ने चित्र को महापतन विभत्ति सुनाया था । चित्र अनागामी हुआ था ।

ईशादत्त[2] भी अम्विका सण्ड पधारे । वह चित्र के पूर्व परिचित थे । उन्होने जब देखा कि वे पहचान लिये गये तो स्थान त्यागकर चले गये । भिक्षुगण अपना पूर्व परिचय गोपनीय रखते थे ।

सुधर्मा[3] भिक्षु स्थायी रूप से अम्वाटिकाराम मे निवास करते थे ।

---

(१) मच्छिका सण्ड—काशी जनपद मे एक निगम था । यह वर्तमान मछली शहर जौनपुर उत्तरप्रदेश मे है ।

(२) ईशादत्त . पत्र-व्यवहार से वह मित्र का मित्र हो गया था । एक वार मित्र ने भगवान् का उल्लेख करते हुए वडा अच्छा पत्र उन्हे भेजा । उस को पढ़कर बुद्ध शासन स्वीकार किया । अम्वाटक वन मच्छिका सण्ड मे विहार करने लगा था ।

(३) सुधर्मा मच्छिका सण्ड के निवासी थे । मित्र ने उनके लिये एक

उनके सब प्रबन्ध का भार चित्र के ऊपर था। एक समय कुछ भिक्षु आये। उन्हे चित्र ने पहले भोजन के लिये आमन्त्रित किया। सुधर्मा को पीछे बुलाया। सुधर्मा अत्यन्त रुष्ट हो गया। उसने अपना अपमान माना। चित्र को अनेक प्रकार से निन्दक वचनो से आहत किया। भगवान् को मालूम हुआ। भगवान् ने भिक्षु से चित्र के पास जाकर क्षमा माँगने के लिये कहा।

× × ×

मच्छिका सण्ड भूमि खण्ड था। उसमे अम्बाटक वन था। अम्बाटक वन के पृष्ठ भाग मे मृगपत्थक ग्राम था। चित्र गृहपति का वह गॉव था। एक समय किसी काम से गॉव पर वह आया हुआ था।

भिक्षाटन समाप्त हो चुका था। भिक्षुगण सभागृह मे एकत्रित थे। चित्र ने सुना। वे एक ही अर्थ बताने वाले दो शब्दो की चर्चा कर रहे थे। चित्र ने सभागृह मे प्रवेश किया। एक ओर बैठ गया। सुअवसर देखकर उनसे सविनय प्रश्न किया .

'भिक्षुओ ! क्या आप लोग एक ही अर्थ बताने वाले दो शब्दो की चर्चा कर रहे थे ?'

'गृहपति ! हॉ, कर रहे थे।'

'भन्ते ! सयोजन तथा सयोजनीय धर्म भिन्न अर्थ प्रतिपादक है। उनके अक्षर भी भिन्न है।'

विहार निर्माण करा दिया था। वह चित्र के निवास स्थान पर भिक्षा प्राप्त करने को सारिपुत्र एक समय मच्छिका सण्ड मे आये। वहॉ उनका उपदेश सुनकर उन्हे आमन्त्रित किया। उसके पश्चात् सुधर्मा को आमन्त्रित किया। सुधर्मा ने निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया क्योकि वह बाद मे आमन्त्रित किया गया था। दूसरे दिन प्रात मित्र के यहाँ देखने गया कि क्या भोजन बना है। सब देख कर कहा कि तिल सागुलिका नही है। मित्र ने उसे कौआ कहकर चिढ़ा दिया। सुधर्मा क्रोधित होकर स्थान त्याग दिया। भगवान् के पास श्रावस्ती पहुँचा। भगवान् ने सुधर्मा का ही दोप पाया और उसे मच्छिका सण्ड लौटा दिया। चित्र से क्षमा माँगा। चित्र ने पहले उसे क्षमा नही किया। भगवान् ने एक और आदमी साथ भेजा। सुधर्मा ने क्षमा याचना की। चित्र ने उसे क्षमा कर स्वयं क्षमायाची हुआ।

'हॉ है ।'

'मै एक उपमा देना चाहता हूँ ।'

'कहिए ।'

'उज्ज्वल तथा काला बैल यदि एक रस्सी से बॉध दिया जाय, तो क्या यह कहना उचित होगा । काले बैल का उज्ज्वल और उज्ज्वल बैल का काला बैल बन्धन है ।'

'नही । दोनो का बन्धन रस्सी है ।'

'भन्ते ! इसी प्रकार चक्षु रूप का बन्धन चक्षु नही है । रूप चक्षु का बन्धन नही है ।'

'तो क्या है ?'

'भिक्षुओ !' चित्र ने कहा । 'दोनो के कारण छन्द राग पैदा होता है । वही बन्धन होता है । श्रोत बन्धन शब्दो का नही है । शब्द श्रोत का बन्धन नही है । मन धर्मो का बन्धन नही है । धर्म मन के बन्धन नही है । उन दोनो को बन्धन में बॉधनेवाला छन्द राग है ।

× × ×

मच्छिका सण्ड था । अम्बाटक वन था । चित्र गृहपति ने भिक्षुओ को भोजन निमित्त निमन्त्रित किया था । भिक्षुसघ आसनो पर बैठे थे । चित्र ने उन्हे अभिवादन किया । एक ओर बैठ गया ।

चित्र ने आयुष्मान् स्थविर से निवेदन किया

'भन्ते ! धातु नानात्व क्या है ?'

'चित्र !' आयुष्मान् ऋषिदत्त ने उत्तर दिया । 'चक्षु धातु, रूप विज्ञान धातु, मनो धातु, धर्म धातु, मनोविज्ञान धातु, यही सब भगवान् के शब्दो मे धातु नानात्व है ।'

चित्र प्रश्न का यथार्थ उत्तर सुनकर प्रसन्न हो गया । उसने भिक्षुओ को भोजन अपने हाथो से परोसा । उन्हे खिलाकर सन्तुष्ट किया ।

× × ×

एक समय चित्र ने भिक्षुओ को भोजन निमित्त आमन्त्रित किया । भिक्षुओ का आगमन हुआ । आसन ग्रहण किया । चित्र ने उनका अभिनन्दन किया । एक ओर बैठ गया । सरल भाषा मे प्रश्न पूछा

'भन्ते ! वासठ मिथ्या दृष्टियाँ है। वे किनके कारण उत्पन्न होती हैं ?'

'गृहपति !' ऋषिदत्त ने उत्तर दिया 'सत्काम दृष्टि के कारण उनकी उत्पत्ति होती है। उसके अभाव मे उनका लोप होता है।'

'सत्काम दृष्टि किस प्रकार होती है भन्ते ?'

'गृहपति ! पण्डित आर्य श्रावक रूप को आत्मा नही समझता। आत्मा को रूपवान नही समझता। आत्मा मे रूप नही देखता। इस प्रकार सत्काम दृष्टि नही उत्पन्न होती।'

'भन्ते ऋपिदत्त ! आपका गमन कहाँ से हुआ है ?'

'गृहपति ! मेरा आवास अवन्ती है।'

'भन्ते ! अवन्ती मे मेरा मित्र ऋपिदत्त एक कुल पुत्र रहता था। उसे हमने वहुत दिनो से नही देखा है। प्रव्रजित हो गया है। उसे आपने देखा है ?'

ऋपिदत्त चुप रहे।

'क्या आप ही ऋपिदत्त है ?'

'हाँ, गृहपति।'

'आर्य ऋपिदत्त ! आप मच्छिका सण्ड में सुख से विहार कीजिए। अम्वाटक वन अत्यन्त रमणीय है। मैं सेवादि की व्यवस्था कर दूँगा।'

'अच्छा।'

गृहपति ने सवको अपने हाथो से परोस कर भोजन कराया।

× × ×

भिक्षुओ को भोजन निमित्त चित्र ने गौशाला मे उन्हे आमन्त्रित किया था। भिक्षु मच्छिका सण्ड के अम्वाटक वन मे विहार कर रहे थे। भोजन समाप्त हुआ। वचा भोजन वाँट दिया गया। भिक्षु लौट चले। उनके पीछे चित्र भी चला।

भीपण गर्मी पड रही थी। लोग कष्ट से जा रहे थे। उनमे सवसे युवक आयुष्मान् महक[४] भिक्षु था। महक ने आयुष्मान् स्थविर से कहा :

(४) महक दो महक नामक व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। एक उपानन्द के शिष्य थे। उनसे सम्वन्धित महक सुत्त है।

'भन्ते ! क्या ही उत्तम होता। शीतल मरुत बहता। गगन मेघा-च्छन्न हो जाता। कुछ फुहार पडती।'

'आवुस ! महक !!' स्थविर ने कहा, 'निस्सदेह अच्छा होता।'

आयुष्मान् महक ने ऋद्धि दिखायी। शीतल वायु बहने लगी। आकाश मेघाच्छन्न हो गया। फुहार पडने लगी।

भिक्षु सघ आराम पहुँच गया। स्थविर ने कहा .

'महक इतना ऋद्धि दर्शन पर्याप्त है।'

भिक्षुगण अपने विहारो मे चले गये। गृहपति चित्र आयुष्मान् महक के स्थान पर गया। अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। सकेत पाकर चित्र ने निवेदन किया

'भन्ते ! आपकी कुछ अलौकिक ऋद्धि देखने की इच्छा है।'

'आवुस ! अलिन्द मे चादर बिछा दो।'

चित्र ने अलिन्द मे चादर बिछा दी।

'उस पर तृण रख दो।'

चित्र ने तृणादि रख दिया।

आयुष्मान् महक विहार मे चले गये। भीतर से किवाड बन्द कर लिया। अग्नि ज्वाला उठी। चादर पर घास-फूस तृणादि जल गये। किन्तु चादर अछूती रही।

गृहपति चित्र ने अपनी चादर उठा ली। झाडकर कन्धे पर रख ली। ऋद्धि देखकर चकित खडा रहा।

आयुष्मान् महक ने शयनाशन लपेट लिया। पात्र उठाया। आसन लिया। वे चल पडे। वे मच्छिका सण्ड मे पुन लौटकर नही आए।

× × ×

आयुष्मान कामभू[५] मच्छिका खण्ड मे थे। अम्बाटक वन मे विहार कर रहे थे। चित्र उनके पास गया। अभिवादन किया। आस्वस्त होने कामभू ने कहा

(५) कामभू कोशाम्बी के घोषिताराम मे विहार करते थे। वह मच्छिका सण्ड के अम्बिका सण्ड मे चित्र गृहपति से मिला था।

'आवुस ! निर्दोष श्वेत आच्छादन वाला होता है। एक आरा वाला रथ चलता है। दु ख रहित को आते हुए देखो। स्रोत रुक गया है। जो बन्धनो से मुक्त हो चुका है।

कामभू ने ठहर कर गृहपति से पूछा :

'आवुस सक्षेप मे कहे इसकी क्या व्याख्या है ?'

'भन्ते ! क्या भगवान् ने यह कहा है ?'

'हॉ !'

गृहपति विचार करने लगा। कुछ समय पश्चात् बोला :

'श्वेत आच्छादन' का तात्पर्य विमुक्ति से है। 'आरा' स्मृति है। 'चलता' से आगे बढना और पीछे 'हटना' से अभिप्राय है। 'रथ' शरीर है। दु खरहित क्षीणाश्रव 'भिक्षु' है। 'दु ख' राग है। दु ख द्वेप है। दु ख मोह है।

'आरे !' का अर्थ अर्हत है। 'स्रोत' तृष्णा है। क्षीणाश्रव भिक्षु छिन्न स्रोत है। वन्धन का अर्थ राग, द्वेप, मोह है। क्षीणाश्रव भिक्षु वन्धनहीन हो जाता है।'

'गृहपति !' कामभू ने कहा। 'आप भाग्यमान है। भगवान् ने तुम्हारी प्रज्ञा चक्षु खोल दी है। आप भगवान् के गम्भीर धर्म को समझते है।

× × ×

'भन्ते!' चित्र ने आयुष्मान कामभू से पूछा 'सस्कार कितने है ?'

'गृहपति ! काय, वाक् तथा चित्त तीन सस्कार है।'

'काय सस्कार क्या है भन्ते !'

'श्वास-लेना और छोडना काय सस्कार है।'

'वाक्—?'

'वितर्क विचार वाक् सस्कार है।'

'चित्त—?'

'संज्ञा और वेदना चित्त संस्कार है।'

'श्वास प्रश्वास क्यो काय सस्कार कहा गया है ?'

'काया के वे प्राकृतिक धर्म है। प्रथम वितर्क किया जाता है। पुन विचार किया जाता है। तत्पश्चात् वाक् उन्हे प्रकट करता है। इसे वाक् सस्कार कहा जाता है। इसी प्रकार सज्ञा और वेदना चित्त के धर्म है। अतएव उन्हे चित्त सस्कार कहा जाता है।

भन्ते !' सज्ञा वेदयति-निरोध समापत्ति किस प्रकार होती है ?

'गृहपति ! जिन्हे उनके प्राप्ति की आकाक्षा रहती है उनका चित्त भावित रहता है। उन्हे आगे बढाता है। वहाँ तक ले जाता है। उन्हे यह भावना नही होती। वेदयति निरोध को प्राप्त करूँगा, करता हूँ अथवा किया था।'

'पहले किस धर्म का निरोध होता है ?'

'सर्वप्रथम वाक् सस्कार निरुद्ध होता है। पुन काय सस्कार निरुद्ध होता है। अन्त मे चित्त सस्कार निरुद्ध होता है।'

'मृत और सज्ञा वेदयति निरोध जन मे क्या अन्तर होता है ?'

'गृहपति ! मृत का काय सस्कार, वाक् सस्कार, चित्त सस्कार निरुद्ध हो जाता है। प्रश्रब्ध हो जाता। कहा जाता है। आयु पूरी हो चुकी है। श्वास स्तब्ध हो गया है। इन्द्रियाँ अव्यवस्थित हो गयी है। किन्तु निरोध प्राप्त भिक्षु का काय, वाक्, चित्त सस्कार निरुद्ध हो जाता है। किन्तु इन्द्रियाँ विप्रसन्न रहती है।'

'भन्ते !' सज्ञा वेदयति निरोध प्राप्ति निमित्त क्या प्रयत्न किया जाता है ?'

गृहपति ! उसे प्राप्त करने वाले जन को इस प्रकार का ज्ञान नही होता। वह उसके लिए प्रयत्न करेगा। प्रयत्न कर रहा है। प्रयत्न कर चुका है। उसका चित्त पहले से ही भावित रहता है। उसे वहाँ तक ले जाता है।'

'इस प्रयत्न मे सर्वप्रथम किस धर्म की उत्पत्ति होती है ?'

'सर्व प्रथम चित्त सस्कार उत्पन्न होता है।'

'उसके पश्चात्—?'

'काय संस्कार—'

'अन्त मे ?'

'वाक् संस्कार उत्पन्न होता है।'

'प्रयत्नशीलो को कितने स्पर्शो का अनुभव होता है ?'

'गृहपति ! तीन स्पर्शो का अनुभव होता है।'

'वे क्या है ?'

'गृहपति ! शून्य से स्पर्श, अनिमित्त से स्पर्श, अप्रणिहित से स्पर्श, का अनुभव होता है।'

'उसका चित्त किस ओर प्रवृत्त रहता है ?'

'गृहपति ! कामभू ने कहा, 'विवेक की ओर प्रवृत्त होता है।'

'उसके प्रयत्न मे कौन धर्म साधक होते है ?'

'गृहपति ! उन्हे समथ और विदर्शना कहते है।

× × ×

एक समय की वात है। आयुष्मान् गोदत्त मच्छिका सण्ड मे थे। अम्बाटक वन मे विहार कर रहे थे। चित्र वहाँ पहुँचे। अभिवादन किया। वन्दना किया। एक ओर वैठ गये। गोदत्त ने अवसर देखकर गृहपति चित्र से पूछा

'गृहपति ! अप्रमाण चेतो विमुक्ति, अकिंचन चेतोविमुक्ति, शून्यता चेतोविमुक्ति, अनिमित्त चेतोविमुक्ति, क्या इन धर्मो के विभिन्न अर्थ है ? विभिन्न अक्षर है ? किवा एक ही अर्थ करनेवाले एक ही शब्द है ?'

'भन्ते ! एक दृष्टि से धर्म तथा अक्षर भिन्नार्थक है।'

'और दूसरी दृष्टि से गृहपति !'

'एकार्थक है।'

'किस प्रकार वे भिन्नार्थक और एकार्थक है ?'

'भन्ते !' गृहपति चित्र ने कहा, 'मैत्री सहगत चित्त द्वारा एक दिशा को पूर्ण कर विहार करता है। उसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊर्ध्व अधो दिशाओ मे सरल, वक्र होकर विहार करता है। समस्त लोक को अप्रमाण मैत्री सहगत चित्त, करुणा सहगत चित्त, मुदिता सहगत चित्त, मुदिता सहगत चित्त, से विहार करता है। 'अप्रमाण चित्त' से विमुक्ति इसी को कहते है।

'अकिंचन चेतोविमुक्ति क्या है गृहपति ?'

'भन्ते ! भिक्षु सर्व प्रकार के विज्ञानानन्त्यायतन का -अतिक्रमण करता है। कुछ नही है ? इस प्रकार की आकिचन्यायतन स्थिति प्राप्त करता है। विहार करता है। इसी को अकिचन चेतोविमुक्ति कहते है।'

'गृहपति ! शून्यता चेतोविमुक्ति क्या है ?'

'भन्ते ! भिक्षु अरण्य मे, वृक्ष मूल मे, शून्य गृह मे, स्थिर होता है। विचार करता है। यह आत्मा किवा आत्मीयता से शून्य है। यही शून्यता चेतोविमुक्ति है।'

'गृहपति ! अनिमित्त चेतोविमुक्ति क्या है ?'

'भन्ते ! मन को सर्व प्रकार के निमित्तो से दूर भिक्षु रखता है। इस प्रकार अनिमित्त चित्त की समाधि प्राप्त करता है। समाधि मे विहार करता है। इसी को अनिमित्त चेतोविमुक्ति कहते है।'

'भन्ते !' गृहपति ने पुन कहा, 'यह एक दृष्टि जिसके कारण धर्म भिन्नार्थक तथा भिन्नाक्षर है।'

'गृहपति !' एक ही अर्थ को बतानेवाले किस प्रकार ने भिन्नाक्षर है ?'

'भन्ते ! राग, द्वेष, मोह प्रमाण करने वाले है। वे क्षीणाश्रव भिक्षु के उच्छिन्न होते है। अप्रमाण चेतोविमुक्तियो मे अर्हत फल चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है। राग, द्वेष, मोह से शून्य है। भन्ते ! राग, द्वेष और मोह किचन है। क्षीणाश्रव भिक्षु के वे उच्छिन्न होते है। अकिचन चेतोविमुक्तियो मे अर्हत्व फल चेतोविमुक्त श्रेष्ठ है। भन्ते ! राग, द्वेप और मोह निमित्त कारण है। वे क्षीणाश्रव भिक्षु के उच्छिन्न होते है। अनिमित्त चेतोविमुक्तियो मे अर्हत्व फल चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है। भन्ते ! इस दृष्टि से एक ही अर्थ प्रकट करने वाले भिन्न-भिन्न शब्द है।'

× × ×

निग्गण्ठ नातपुत्र मच्छिका सण्ड मे अपने समाज के साथ पहुँचा था। गृहपति चित्र कुछ उपासको के साथ उसके पास गया। कुशल क्षेम पूछा। एक ओर बैठ गया। नातपुत्र ने चित्र से पूछा

'गृहपति ! क्या तुम्हे विश्वास है ? गौतम को अवितर्क और विचार रहित समाधि लगती है ? क्या उसके वितर्क और विचार का निरोध होता है ?'

'हाँ !'

'क्यों—?'

'मै केवल श्रद्धा से ऐसा विश्वास नही करता हूँ।'

नातपुत्र मण्डली सहित प्रसन्न हो गया। बोला —'गृहपति कितना सरल है। निष्कपट है।'

'भन्ते ! ज्ञान बडा है या श्रद्धा ?' गृहपति ने पूछा।

'गृहपति श्रद्धा से ज्ञान बडा है।'

'भन्ते ! अपनी इच्छानुसार मै प्रथम से चतुर्थ ध्यान तक विहार करता हूँ। मै उसे अपने ज्ञान से जानता हूँ। किसी ब्राह्मण को किसी श्रमण की श्रद्धा से नही जान सका हूँ।

'ओह ! तुम तो बडे कपटी हो ? कितने शठ हो ?'

'भन्ते !' गृहपति ने पूछा, 'अभी आपने कहा मै सरल हूँ। पुन आप कहते हे मै शठ हूँ। कपटी हूँ। यदि आपका प्रथम विचार ठीक है तो, दूसरा मिथ्या है। यदि दूसरा सत्य है तो, प्रथम मिथ्या है।'

नातपुत्र गृहपति की ओर देखने लगा। मण्डली चुप हो गयी। गृहपति ने प्रश्न किया

'भन्ते ! मै इन प्रश्नो को पूछता हूँ। क्या आप उत्तर देगे ? अपनी इस वृहत् मण्डली को वतायेगे ?'

नातपुत्र चुप था।

'भन्ते !' गृहपति ने कहा, 'जिसका प्रश्न तथा उत्तर एक हो। जिसका प्रश्न दो और उत्तर दो का हो। जिसका प्रश्न तीन तथा उत्तर तीन का हो। जिसका प्रश्न चार हो और उत्तर चार का हो। जिसका प्रश्न पॉच हो और उत्तर पॉच का हो। जिसका प्रश्न छ हो और उत्तर भी छ का हो। जिसका प्रश्न सात हो और उत्तर भी सात का हो। जिसका प्रश्न आठ हो और उत्तर भी आठ का हो। जिसका प्रश्न नव हो और उत्तर भी नव का हो। जिसका प्रश्न दस हो और उत्तर भी दस का हो।'

गृहपति प्रश्न पूछकर आसन से उठ गया। मण्डली उसकी ओर देखती रह गयी।

× × ×

मच्छिका सण्ड में अचेल काश्यप का आगमन हुआ था। गृहपति चित्र अचेल के निवास स्थान पर पहुँचे। अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। कुशल-मगल के पश्चात् गृहपति ने पूछा :

'भन्ते ! काश्यप ! आपको प्रव्रजित हुए कितने वर्ष बीत चुके हैं ?'

'तीस वर्ष।'

'इस लम्बे काल में किसी अलौकिक श्रेष्ठ ज्ञान का आपने दर्शन किया है ?'

'नही।'

'आपने क्या किया ?'

'मैं केवल नग्न रहा। सर मुड़ाता रहा। झाड़ू लगाता रहा।'

'गृहपति, आप कितने दिनो से उपासक हैं ?'

'तीस वर्ष।'

'आपने अलौकिक ज्ञान का दर्शन किया है ?'

'भन्ते ! मैंने वह सब प्राप्त किया है। जो चाहता हूँ। प्रथम ध्यान से चतुर्थ ध्यान प्राप्त करता हूँ। विहार करता हूँ। मैं मुक्त हूँगा। इस प्रकार मैं पुन नही लौटूँगा।'

'आश्चर्य है !' अचेल ने विस्मय से कहा। 'आप जैसे उज्ज्वल वस्त्र पहनने वाले भी इस प्रकार के श्रेष्ठ ज्ञान का दर्शन करते हैं ?'

'भन्ते ! भगवान् का धर्म ऐसा ही है।'

गृहपति ! मैं भी क्या इस धर्म मे, विनय मे, प्रव्रज्या पा सकता हूँ। उपसम्पदा प्राप्त कर सकता हूँ ?'

'निश्चय—सबके लिए द्वार खुला है। मेरे पुराने मित्र!'

चित्र गृहपति अचेल काश्यप को लेकर भगवान् के पास गया।

× × ×

चित्र गृहपति बीमार था। आराम, वन, वृक्ष, औषधि, तृण, वनस्पति के देवगण चित्र के पास आये।

'गृहपति !' वे बोले, 'आप जीवित्त रहिये।'

'जी कर क्या होगा देव ?'

'चक्रवर्ती राजा होगे ।'

'देव ! चक्रवर्ती राजत्व अनित्य है । अध्रुव है । त्याज्य है ।'

देवता उदास हो गये । चित्र गृहपति ने उन्हे नमस्कार करते हुए कहा 'धन्यवाद ।'

× × ×

'गृहपति !' बन्धु-बान्धव बोले, 'आप स्मृतिमान होइये । व्यग्र मत होइये ।'

'आप लोग इस प्रकार मुझसे क्यो बाते करते है ?'

'आपने कहा था—'अनित्य है, अध्रुव है, त्याज्य है ।'

'मैने उन देवताओ से चक्रवर्ती राज्य के सम्बन्ध मे कहा था ।'

'गृहपति ! क्या उन देवताओ ने आपसे कहा था । आप चक्रवर्ती राजा होइये ।'

'हाँ ।'

'आर्य हमे उपदेश दे ।'

'आवुसो ! आपको बुद्ध मे दृढ श्रद्धा होनी चाहिए। बुद्ध अर्हत है। भगवान् ने धर्म उत्तमता से बताया है। धर्म मे श्रद्धा होनी चाहिये। सघ मे दृढ श्रद्धा होनी चाहिये। भगवान् का श्रावक सघ उत्तम मार्ग पर आरूढ है। शीलवान धार्मिक भिक्षुओ को दान दीजिए। यही आप लोगो के लिए करणीय है। यही आप लोगो को सीखना चाहिए।'

गृहपति शान्तिपूर्वक शान्त हो गया । परिनिवृत्त हो गया ।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे श्रावक-श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे अट्ठानब्बे तथा श्रावक उपासको मे चतुर्थ स्थान प्राप्त, मगध मक्छिका सण्ड निवासी, श्रेष्ठी कुलोत्पन्न, चित्र गृहपति धर्म श्रावको मे अग्र हुआ ।

●

आधार ग्रन्थ

विनय पिटक चुल्ल वग्ग १ ४ . १—१०

सयुक्त निकाय ३९ ९-१०

अंगुत्तर निकाय १ १४,

धम्मपद ,' २१ ७

पिण्डोल भारद्वाज

पिण्डोल भारद्वाज उज्जैन के राज पुरोहित के पुत्र थे। उनका गोत्र भारद्वाज था। वेदाध्ययन के पश्चात् अध्यापन करते थे। उनका मन उस काम मे नही लगा। वह राजगृह चले आये।

राजगृह मे पिण्डोल भारद्वाज़ ने देखा। भिक्षुओ का बडा सम्मान होता था। उन्हे खूब भोजन मिलता था। पिण्डपात से उनका पात्र भर जाता था। उन्हे राजा भी आदर की दृष्टि से देखता था।

पिण्डोल कुछ लोभी स्वभाव के थे। उन्होने विचार किया। यदि भिक्षु हो जायँगे तो उन्हे.भी यथेष्ट भोजन मिलेगा। आदर सत्कार प्राप्त होगा। वह भिक्षु हो गये।

पिण्डोल के पास एक बडा पात्र था। बडा पात्र इस लोभ से रखा था कि अत्यधिक भिक्षा वह पा सकेंगे। वह पात्र सूखे *Gourd* का बना था। उसे रात्रि मे वह अपने शय्या के नीचे रखकर सोते थे। उसे स्पर्श करने से उसमे से ध्वनि उत्पन्न होती थी।

इस 'पिण्ड' लोभ के कारण उसका नाम पिण्डोल पड गया था। भगवान् ने उन्हे लोभ त्याग का उपदेश दिया। कम खाने का उपदेश दिया। जिह्वा नियन्त्रण का उपदेश दिया।

पिण्डोल राजा उदयेन के राजोद्यान मे विहार करने के अभ्यस्त हो गये थे। एक दिन राजा उदयेन अपनी स्त्रियो तथा दासियो के साथ उद्यान मे आये। उन्हे निद्रा आ गयी। स्त्रियाँ पिण्डोल का उपदेश सुनने उसके पास चली गयी।

राजा की नीद खुली। स्त्रियाँ गायब थी। उन्हे खोजने वह चला। पिण्डोल के पास उन्हे देख कर बडा क्रोधित हुआ। उसने पिण्डोल के ऊपर लाल चीटियाँ फेकने की आज्ञा दी। किन्तु पिण्डोल वहाँ से गायब हो गये। भगवान् के पास श्रावस्ती आये। भगवान् ने उन्हे महानाग जातक तथा गुहत्थक सुत्त सुनाया। किन्तु पिण्डोल अपने ऋद्धि प्रदर्शन

से विरत नही हुए ।

एक समय की बात है । राजगृह के श्रेष्ठी को चन्दन का एक महा कुन्दा मिला । चन्दन का एक पात्र बनवाया । पात्र उसने दान करने का निश्चय किया । चन्दन का बचा भूरा अपने काम मे लाया ।

श्रेष्ठी ने पात्र को एक बास के ऊपर रखवा दिया । उसने घोषणा की । ऋद्धिमान जो श्रमण चाहे वह पात्र अपनी शक्ति से उतार ले ।

पूर्ण काश्यप ने चन्दन पात्र की बात सुनी । श्रेष्ठी के पास जाकर चन्दन पात्र माँगा । उसने कहा ।

'आपके किस गुण के लिए पात्र दूँ । '

'मै ऋद्धिमान हूँ । अर्हत हूँ । '

'भन्ते! ' श्रेष्ठी ने विनोद से कहा, 'पात्र तो मैने दान दे दिया है । आप स्वय उसे उतार ले । '

'यह तो ऊँचाई पर है । कैसे हम उसे लेगे ?'

'आपकी ऋद्ध शक्ति कब काम आयेगी ?'

पूर्ण काश्यप पात्र नही पा सके । यही अवस्था मक्खली गोशाल, अजित केश कम्बली, प्रक्रुध कात्यायन, सजय वेलट्ठि पुत्र की हुई ।

नगर मे चन्दन पात्र की चर्चा थी । कौन अर्हत है । कौन वास्तव मे ऋद्धि सम्पन्न है । इसकी चर्चा थी । वह सबके मान का प्रश्न हो गया था । भिक्षुओ पर लोग व्यग बोलने लगे—उन्हे देखते ही पात्र की बात करते थे । भिक्षुओं को लज्जा लग रही थी । उनके बडे से बडे स्थविर पात्र उतारने मे असफल हो चुके थे । ऋद्धि का दभ भरने वालो का गर्व अभिमान मर्दन हो चुका था। भिक्षुओ को चारो ओर लज्जित होना पडता था । उनकी प्रतिष्ठा मे ठेस लगी थी ।

एक समय आयुष्मान् मौद्गलायन और आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज पूर्वाह्ण समय भिक्षा के लिए राजगृह मे प्रवेश किये । आयुष्मान् भारद्वज ने राजगृह मे ब्राह्मण के घर जन्म लिया था । वे सुआच्छादित थे । उनके हाथो चीवर था । पात्र था । पात्र की बात उन लोगों ने भी सुनी । आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज ने मौद्गलायन से कहा—

'आवसु ! आप अर्हत है । वुद्धिमान है । आपके लिए यह पात्र रखा है । उसे उतार लीजिए ।'

मौद्‌गलायन ने कहा .

'आवसु ! आप अर्हत है। ऋद्धिमान है। पात्र उतार लाइये।'

आयुष्मान् पिण्डोल योग शक्ति से आकाश में उडे। पात्रको उतार लिया तीन वार आकाश मे फेरा लगाया।

उस समय पात्र का दाता राजगृह श्रेष्ठी ने पुत्र, स्त्री, सहित हाथ जोडकर, अपने घर से ही प्रार्थना की

'भन्ते ! भारद्वाज !! कृपया मेरे ही निवास-स्थान पर आकाश से पधारिए।'

भारद्वाज पिण्डोल श्रेष्ठी के गृह उतरे। श्रेष्ठी ने पात्र उनके हाथ स श्रद्धापूर्वक ले लिया। पात्र भिक्षा भर दिया। भक्ति के साथ दिया। पिण्डोल भारद्वाज आराम से भिक्षा लेकर चले गये।

वात विजली की तरह राजगृह नगर मे फैल गयी। भारद्वाज ने पात्र उतार लिया। पक्षी के समान आकाश मे तीन वार उडे। राजगृह की परिक्रमा की।

इस चमत्कार को जनता ने देखा। उमड पडी। कोलाहल हुआ। कौतूहलपूर्ण नागरिक चन्दन के पात्र तथा भारद्वाज को देखने के लिए टूट पडे।

भारद्वाज के पीछे जन-समूह लग गया। वालक शोर करते थे। जय-जयकार करते थे। युवक पात्र देखने के लिए टूट पडते थे। वृद्धो ने यह चमत्कार देखकर भारद्वाज को ऋद्धि सम्पन्न समझा। अर्हत समझा। भिक्षुओ के प्रति जनता मे जिज्ञासा फैली। उन्हे देखने लोग दौड पडे।

कोलाहल वढता गया। भगवान् ने सुना। आनन्द से पूछा—'यह क्या कोलाहल है।'

'भन्ते ! आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज ने चन्दन-पात्र ऊचे वास से उतार लिया है।'

'तो क्या हुआ ?'

'इस आश्चर्यजनक घटना के कारण लोगो मे कौतूहल उत्पन्न हो गया है। वहुत वडो भीड पिण्डोल भारद्वाज के पीछे लगी है। उन्हे घेरकर घोष कर रही है।'

कोलाहल शान्त होने पर भगवान् ने भिक्षु सघ को एकत्रित किया। आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज भी वहाँ उपस्थित थे। एक ओर आसन पर बैठे थे। 'भारद्वाज !' तथागत ने जिज्ञासा की, 'क्या तुमने राजगृह श्रेष्ठी का पात्र उतारा है ?'

'हाँ, तथागत !' भारद्वाज ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

'भारद्वाज !' तथागत ने धिक्कारते हुए कहा, 'यह कार्य श्रमण धर्म के प्रतिकूल है। अनुचित है।'

भारद्वाज का मस्तक नत हो गया।

'भारद्वाज ! मृत काष्ठ चन्दन पात्र के लिए तुमने मानवी शक्ति के परे की बात दिखायी ? गृहस्थो को तुमने पात्र के लिए ऋद्धि प्रातिहार्य दिखाया है। तुमने ऋद्धि प्रदर्शन तुच्छ पात्र के लिए किया है ? धिक्कार है, तुम्हे।'

भिक्षुओ मे मर्मर ध्वनि उठी। भारद्वाज ने अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन तुच्छ पात्र के लिए किया। अपने शक्ति प्रदर्शन का मूल्य लगाया। पिण्डोल भारद्वाज लज्जित हो गये।

'भिक्षुओ !, तथागत ने कहा,' 'गृहस्थो को उत्तर मनुष्य धर्म ऋद्धि प्रातिहार्य, नही प्रदर्शित करना चाहिए। जो दर्शित करते है। दुष्कृति करते है।'

सबकी घृणापूर्ण दृष्टि भारद्वाज की ओर उठी। भगवान् ने कहा

'भारद्वाज' पात्र कहाँ है ?'

'भन्ते ! यह है।'

लज्जित भारद्वाज ने पात्र भिक्षु-सघ के सम्मुख रख दिया। तथागत ने कहा, 'भिक्षुओ ! इस पात्र को तोड दो। टुकडा-टुकडा कर दो। भिक्षुओ को अजन पीसने के लिए दे दो।'

भिक्षु सघ प्रसन्न हुआ। तथागत ने पुन कहा, 'भिक्षुओ ! काष्ठ नही धारण करना चाहिए।'

'तो क्या पात्र ले !' प्रश्न हुआ।

'लोहा या मिट्टी का पात्र भिक्षु धारणा करे।'

× × ×

मगधराज विम्बसार ने यह बात सुनी। दूसरी तरफ तैर्थिको ने भग-

वान् तथा भिक्षु सघ के विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया। उन्हे एक अवसर मिला। वे नाना प्रकार की मिथ्या वार्ता मे राजगृह के राजपथो, वीथियो तथा बाजारो मे फैलाने लगे। वे प्रसन्न थे। शास्ता ने भिक्षुओ को चमत्कार प्रदर्शन से रोक दिया। तैर्थिक चमत्कार प्रदर्शन करेगे। उनका प्रयोजन सिद्ध होगा।

राजा विम्बसार भगवान् के समीप गया। निवेदन किया

'भन्ते! आपने भिक्षुओ को ऋद्धि प्रातिहार्य प्रदर्शन का निषेध किया है।'

'हाँ—किया है। राजन्!'

'तैर्थिक कह रहे है। आप प्रातिहार्य करेगे।'

'सुना है।'

'क्या आप करेगे?'

'यदि वे कहेगे, तो करूँगा, राजन्।'

'भन्ते! आपने शिक्षापद बना दिया है। निषेध किया है।'

'किन्तु मैने अपने लिए नही बनाया है। सघ के लिए बनाया है।'

'यह कैसा भेद तथागत! यह शिक्षापद आप कर लागू नही होगा। केवल दूसरो पर होगा? आश्चर्य—?'

'राजन्! मेरे प्रश्न का उत्तर दीजियेगा?'

'भन्ते—!' राजा ने करबद्ध प्रणाम किया।

'आपके राज्य मे उद्यान है।'

'हाँ है।'

'उसका स्वामी कौन है।'

'मै हूँ।'

'राजन्! यदि आपके उद्यान से कोई आम का फल तोड ले तो आप क्या करेगे?'

'मै अपराधी को दण्ड दूँगा।'

'क्यो?'

'यह अपराध है। दण्डनीय है।'

'उसका फल आप तोड़ सकते है? राजन्!'

'हाँ।'

'किन्तु वह दण्डनीय है। अपराध है।'

'मेरे लिए नही। मै उसका स्वामी हूँ।'

'मगधराज तीन सौ योजन विस्तृत है। उसमे आपकी आज्ञा चलती है। फलादि खाने मे आपको दण्ड नही मिलेगा। इसी प्रकार सौ हजार कोटि चक्रवाल पर्यन्त मेरी आज्ञा चलती है। मै शिक्षापद निर्धारण करता हूँ। मुझे उसके अतिक्रमण करने मे दोष नही है। किन्तु दूसरो को है।'

'तो—?'

'मै प्रातिहार्य करूँगा।'

× × ×

तैर्थिको ने सुना। भगवान् प्रातिहार्य करेगे। उन्हे धक्का लगा। उनके विरोधी प्रचार मे ठेस लगी। वे चिन्तित हुए। विचार विमर्ष करने लगे।

राजा विम्बसार भगवान् के समीप आये। वन्दना किया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गये। निवेदन किया

'भन्ते! आप प्रातिहार्य करेगे।'

'चार मास पश्चात्।'

'कब ?'

'आषाढ पूर्णिमा को।'

'कहाँ करेगे ?'

'श्रावस्ती मे राजन्।'

× × ×

बात फैल गयी। तैर्थिको को एक और मौका मिल गया। उन लोगो ने विरोधी प्रचार यन्त्र सवेग चलाया।

'ओह! श्रमण गौतम भाग रहा है। चार मास पश्चात् प्रातिहार्य करेगा। यहाँ नही करेगा। यहाँ से सैकडो योजन दूर श्रावस्ती मे करेगा। उसका निरन्तर पीछा करना चाहिए। लोग पूछेगे। हम उसके पीछे क्यो लगे है। हमे उत्तर देना है—'हमने प्रातिहार्य करने के लिए कहा था। वह राजगृह से भाग गया। हम उसे किसी प्रकार भाग निकलने नही देगे। उसका पीछा करते रहेगे।'

भगवान् भिक्षाचार के लिए निकलते। तैर्थिक उनके पीछे चलते। जहाँ भगवान् भिक्षाचार करते, वहाँ वे भी भोजन करते। निवास करते। निवास स्थान पर दूसरे दिन कलेवा करते। उनसे पूछते—'आप लोग यह क्या कर रहे है।' वे मनगढन्त उत्तर दे देते थे।

प्रातिहार्य का प्रचार हो गया। भगवान् राजगृह से श्रावस्ती की ओर चले। तैर्थिक उनके पीछे प्रचार करते चलने लगे। लोग प्रातिहार्य की बात सुनकर चमत्कार देखने की लालसा से अनुकरण करने लगे। तैर्थिक यही चाहते थे। उनकी बन गयी। उन्होने समझ लिया। पाखण्ड का भण्डा फूटेगा।

शास्ता श्रावस्ती पहुँचे। वहाँ तैर्थिक पहुँच चुके थे। उन्होने अपने शिष्यो और भक्तो को सूचित किया। एकत्रित किया। भ्रामक प्रचार यन्त्र जोरो से चला। तैर्थिको ने खैर के स्तम्भो का मण्डप बनाया। नील कमल से उसे छवा दिया। वे बैठ गये। बोले—'यहाँ तथागत प्रातिहार्य करेगे।'

× × ×

कोसल के राजा प्रसेनजित श्रावस्ती पहुँचे। तैर्थिक की बाते उन्हे मालूम हुई। वे तथागत के पास पहुँचे। वन्दना किया। अभिनन्दन किया। एक ओर बैठ गये। भगवान् की सुनने की रुचि देखकर बोले '

'तैर्थिको ने मण्डप निर्माण कराया है।'

'सुना है राजन्।'

'मै भी आपके लिए मण्डप बनवाऊँ ?'

'नही राजन्।'

'क्यों भन्ते ?'

'मेरा मण्डप बनाने वाला कोई दूसरा है।'

'मेरे अतिरिक्त यहाँ और कौन निर्माण करा सकेगा ?'

'देवराज शक्र।'

राजा प्रसेनजित इन्द्र का नाम सुनकर चुप हो गये। बोले '

'आप प्रातिहार्य कहाँ करेगे ?'

'गण्डब्ब-रुक्ख के नीचे। महाराज।'

राजा प्रसेनजित चिन्तित हुए।

× × ×

तैर्थिकों ने सुना। भगवान् आम वृक्ष के नीचे प्रातिहार्य करेंगे। उन्होने अपने भक्तो को एकत्रित किया। एक योजन पर्यन्त जितने आम के वृक्ष और अमोले थे सब नष्ट कर दिये गये। शास्ता को बात मालूम हुई। वे उद्विग्न नही हुए। शान्त थे।

× × ×

आषाढ पूर्णिमा के दिन तथागत ने नगर मे प्रवेश किया। नगर के पुरजन उत्सुक थे। भगवान् का प्रातिहार्य देखने के लिए। तैर्थिकों के प्रचार के कारण काफी भीड बाहर से आ गयी थी।

राजा के उद्यानपाल का नाम गण्ड[1] था। उसने पिगल किपिल्लक (माटा) के समीप एक पका आम देखा। सुगन्धित रस लोभ के कारण पक्षियो से रक्षा करने लगा। राजा को भेट करने का विचार किया। आम लेकर राजा के पास चला।

मार्ग मे तथागत को देखा। उसने कल्पना की। राजा आम लेकर अधिक-से-अधिक उसे सोलह कार्षापण देगे। उससे क्या समस्त जीवन का निर्वाह हो जायगा? यदि वह आम शास्ता को अर्पण कर दे, तो अपरिमित काल के लिए हितकर होगा।

उद्यानपाल मार्ग से लौट पडा। आम तथागत के पास ले गया। सादर उनके चरणो मे रखा। तथागत ने आनन्द की ओर देखा।

आनन्द ने चीवर बिछा दिया। शास्ता बैठ गये। स्थविर ने जल छाना। पके आम के रस को गारा। रस गारकर शास्ता को दिया।

शास्ता ने आम का रस पीया। गण्ड से बोले, 'आम के बीज को वही पर भूमि खोदकर गाड दो।'

गण्ड ने भूमि खोदी। आम की गुठली को वही पर रोप दिया। शास्ता ने गडे हुए स्थान पर हाथ धोया। जल गिरते ही वृक्ष निकल आया। विशाल वृक्ष हो गया। वृक्ष होते ही हरित पल्लवो से भर गया। फल

---

(१) गण्ड कोसलराज प्रसेनजित का माली था। अपादान मे इसे गण्डव्व कहा गया है। दिव्यावदान मे उसे गण्डक कहा गया है।

एव पुष्प से लद गया। भिक्षुओ ने आम खाया। गण्ड ने आम दिया था। आम रोपा था। उसका नाम[२] गण्ड रुक्ख पड गया।

राजा को वात मालूम हुई। उन्हे तैर्थिको के उत्पात का ज्ञान था। आम पर पहरा बैठा दिया। कोई उसे क्षति न पहुँचा सके।

गण्डरुक्ख अर्थात् गण्ड का आम वृक्ष सुन्दर था। भव्य था। विशाल था। किन्तु तैर्थिको का मण्डप हवा मे उड गया। भूमि पर कूडे की तरह गिर गया। सूर्य किरणे विकट उष्णता सृजन करने लगी। तत्पश्चात् भयकर आँधी आयी। गर्मी से तैर्थिको का शरीर पसीना-पसीना हो गया। आँधी की उडी धूल उनके शरीर पर बैठ गयी। कीचड की तरह धूल की परते जम गयी। उनका शरीर ताम्र-पत्र जैसा हो गया। घोर वर्षा हुई। तैर्थिको का शरीर कवरी गाय जैसा हो गया। अपनी भयकर दुर्दशा से लज्जित होकर, वे निर्ग्रन्थ श्रावस्ती से भाग खडे हुए। उनका मिथ्या प्रचार तिरोहित हो गया। उन्ही के विपरीत पडा।

भागने वालो मे पूर्ण काश्यप थे। वे भी भागे। मार्ग मे उन्हे उनका एक भक्त कृषक मिला। वह कूट और जोते को लिये था। प्रातिहार्य देखना चाहता था। काश्यप को भागता देख पूछा

'भन्ते! आप कहाँ जा रहे है। मै तो आर्यो का प्रातिहार्य देखने जा रहा था।'

'प्रातिहार्य से तुमसे क्या सम्बन्ध? जोत और कूट मुझे दो। भाग जा।'

पूर्ण काश्यप जोत और कूट लेकर चले। दह के तट पर पहुँचे। कूट के जोत को गले मे बाँधा। दह मे कूद पडे। डूब गये। कुछ बुल्ले उठे। उसने जैसे अपना स्वय प्रातिहार्य मृत्यु-मुख मे जाते हुए देख लिया।

दूसरी ओर पिण्डोल भारद्वाज दिन-प्रतिदिन धर्मपथ की ओर अग्रसर होते जा रहे थे। एक समय की बात है। भारद्वाज के एक पुराने मित्र थे। वह उनसे मिलने आये। मित्र अत्यन्त लोभी थे। उसने उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। भारद्वाज ने यथाशक्ति उपदेश दिया। दान की प्रशसा की। मित्र को भ्रम हुआ। उसने समझा। भारद्वाज स्वय

---

(२) गण्ड रुक्ख गण्ड द्वारा रोपे गये रुक्ख अर्थात् वृक्ष को गण्डरुक्ख की सज्ञा दी गयी है। वह आम का वृक्ष था।

दान माँग रहे थे। उसके भ्रम को दूर करने के निमित्त भारद्वाज ने यह उदान कहा ·

'जीवन एक नियम से चलता है। मुझे आहार प्रिय नही है। किन्तु शरीर आहार पर स्थित है। अतएव भिक्षाचार निमित्त जाता हूँ। कुलो मे जो पूजा तथा वन्दना की जाती है। उसे ज्ञानियो ने पक कहा है। सत्कार स्वरूप सूक्ष्म बाण को पतितो द्वारा निकालना कठिन है।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे अष्टम स्थान प्राप्त मगध, राजगृह, ब्राह्मण कुलोत्पन्न पिण्डोल भारद्वाज सिह नादियो मे अग्रसर हुए थे।

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ १४
अ० अ० क० २ ४ ५
मज्झिम निकाय ३ २ ६२३–१२४
सयुक्त निकाय ४६ ५, ९ ३४ ३ ३ ४,
थेर गाथा १२२, उदान १
म० प्र० ६ ४ ३९, ६ ५ ४६ ५ २१
A 1 23
AA 1 · 112, 111,
DhA 111 201, · 1 244
Apadan 11 444
J 1v 375, 263,
Thag A 1 445
UdA 252

सोणा

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं धम्ममुत्तमं।
एकाह जीवितं सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमं॥

(धार्मिक का एक दिन का जीवन, अधर्मदर्शी के शत वर्षीय जीवन से उत्तम है।)

–धम्मपद ११५

सोणा का कुलीन गृह मे जन्म हुआ था। श्रावस्ती निवासिनी थी। विवाह हुआ। धन-धान्य सन्तान पूर्ण हुई। दस सन्ताने हुई। स्नेहमयी माँ थी। उसे पुत्र तथा कन्या थी। अतएव उसका नाम बहुपुत्रिका रख दिया गया था।

उसके पति ने श्रावस्ती मे भगवान् का उपदेश सुना। उसने प्रव्रज्या पायी। उपसम्पदा पायी। घर त्याग दिया। सोणा अपने पुत्रो के साथ रह गयी।

पति के गृह त्याग पश्चात् जीवन मे कुछ आकर्षण नही रह गया था। सन्ताने बडी हो चुकी थी। उस पर आश्रित नही थी। सोणा भी पति के साथ पूर्व समय मे भगवान् का उपदेश सुनती रही। पति के प्रव्रज्या लेने पर उसमे वैराग्य अकुरित होने लगा।

× × ×

पति के अभाव मे पत्नी की अवस्था घर मे खराब हो जाती है। सन्तान का प्रेम पाती थी। परन्तु दूसरे घरो से आयी हुई बहुओ का स्नेह पाने मे असमर्थ रही। पति काल का घर मे मान भूत की स्मृति मात्र रह गया था।

पति के गृह त्याग के थोडे ही दिनो पश्चात् घर मे उपेक्षित हो गयी। कभी घर की स्वामिनी थी। अब बहुओ की मुखापेक्षी थी। निरादर होने लगा। अपमान होने लगा। घर मे रहना असह्य हो गया। एक

दिन उसने अपनी पूरी सम्पत्ति सन्तानो मे बाँट दी। अपने लिए कुछ नही रखा। खाली हाथ घर से निकल आयी।

× × ×

सोणा ने भिक्षुणी सघ मे प्रवेश किया। वह काफी वृद्ध हो चुकी थी। वृद्धावस्था के कारण उद्योग तथा अभ्यास आश्रवो से निवृत्ति के लिए करना पडा। चचल चित्त शान्ति निमित्त, उसने अथक परिश्रम किया।

अभ्यास, उद्योग तथा परिश्रम द्वारा उसने सफलता प्राप्त की। भगवान् ने उसे देखकर कहा था—'इस प्रकार एक दिन का जीवन शत वर्ष की सुदीर्घ आयु वर्ष से अधिक महत्त्व रखता है।'

एक स्थान पर उल्लेख आता है। अर्हत पद प्राप्त करने के पश्चात् वह चाहती थी। भिक्षुणियाँ इसे जान ले। उसे अर्हत मान ले। भिक्षुणियाँ उसके हर काम मे कुछ न कुछ दोष निकाला करती थी। उनका यह काम सोणा को पसन्द नही था। वह जानती थी। इस प्रकार के कार्यो द्वारा भिक्षुणियाँ पाप कर रही थी।

× × ×

उसने एक दिन पात्र मे जल भर दिया। अपनी ऋद्धि शक्ति से जल गरम किया। किसी प्रकार की अग्नि अथवा लकडी का प्रयोग नही किया।

भिक्षुणियो ने गरम जल माँगा। सोणा ने उनसे कहा—'यदि गरम जल चाहती हो, तो रखे पात्र से जल ले लो।' उन्होने पानी गरम पाया। सोणा की शक्ति का अनुभव किया। उसे अर्हत मान लिया। क्षमायाचना की।

× × ×

अर्हत पद प्राप्त कर उसने उदान कहा ·

शरीर, रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान का मिलन स्थान है। इस शरीर से दस पुत्रो को मैने प्रसव किया है। मै दुर्बल जीर्ण हुई। एक भिक्षुणी की सेवा मे गयी। उसने स्कन्ध, आयतन एवं धातुओ का ज्ञान कराया। उसके उपदेश के कारण मेरे दु खो का नाश हो गया। मै प्रव्रजित हुई। मै उसकी शिष्या बनी। साधन द्वारा चक्षुओ का शोधन

किया। वे दिव्य हो गये। मुझे अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो गया। मैने कहाँ-कहाँ जन्म ग्रहण किया था।

'मै एकाग्र हूँ। समाधि निष्ठ हूँ। जगत् के पदार्थो को अनित्य, दुःख एव अनात्म रूप मे देखती हूँ। अनासक्त एव आश्रवो से हीन होकर, मैने निर्वाण पद मे प्रवेश किया है। पच स्कन्धो का मूल मैने उखाड दिया है। उनकी परम्परा न हो गयी है। मै अचल हूँ। पुनर्जन्म रहित हूँ। मेरा दूसरा जन्म नही होगा।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक श्राविकाओ तथा उपासक उपासिकाओ मे अडतालीसवॉ तथा भिक्षुणी श्राविकाओ मे सातवॉ स्थान प्राप्त, कोसल श्रावस्ती, कुलगृहोत्पन्न सोणा, आरब्धवीर्य्यो मे अग्र हुई थी।

आधार ग्रन्थ .

पालि

थेरी अपदान ३ ६ २५२

थेरी गाथा ४५

उदान १०२-१०६

नोट धम्मपद ८ १४ मे वर्णित वहुपुत्तिका से यह भिन्न प्रतीत होती है।

A i 25

Thig vss 102-106

Thig A 95

Ap ii 579

Dh A ii 276

A A i 199

मागंदिय

[1]कुरु देश था। [2]कल्माष दम्य निगम था। उसका एक वन खण्ड था। किसी वृक्ष की छाया मे तथागत बैठे थे। सुवर्ण प्रभा शरीर द्वारा प्रभासित थी।

---

(१) कुरु बौद्ध मान्यताओ के अनुसार यह जनपद सूरसेन तथा मच्छ (मत्स्य) जनपद के उत्तर, पचाल जनपद के पश्चिम था। पचाल तथा कुरु का इतना अधिक पारस्परिक सम्बन्ध था कि उसका नाम एक साथ कुरु पचाल लिया जाता था। एक मत है कि इसमे मेरठ, मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, सहारनपुर, दिल्ली, कुरुक्षेत्र तथा थानेश्वर अचलो को सम्मिलित किया जा सकता है। इसका विस्तार ३०० सौ योजन बताया गया है। यहाँ के लोगो के विषय मे कहा गया है कि वे स्वस्थ तथा प्रसन्न रहते है। यहाँ के लोगो का जीवन अध्यात्म मे आप्लावित था। धूमकारि तथा दस ब्राह्मण जातक मे उल्लेख मिलता है कि कुरुदेश के राजा युधिष्ठिर गोत्र के थे। यहाँ के कुरु राजा धनजय का भी उल्लेख मिलता है। कुण्डा किवा कुण्डिया किवा कुण्डिकोल, होलीपुर, यह महाभारत मे कुरुजागल मे बताया गया है। इसे हस्तिनापुर से मिलाने का प्रयास किया गया है। वारणवती नगर इसी जनपद मे था। इसे श्रीउपाध्याय मेरठ से उत्तर १९ मिल स्थित वरनावा ग्राम मानते है। एक मत उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले को प्राचीन वरण नगर मानता है।

(२) कम्मास दम्म कल्माष दम्य . महानिदान सुत्त से प्रतीत होता है भगवान् कुरु देश के कुरुओ के निगम कल्माष दम्य मे विहार किये थे। महासति पठान सुत्त मे इस निगम का उल्लेख मिलता है। मज्झिम निकाय के निदान सुत्त, सम्यसन सुत्त, सतिपट्ठान सुत्त, मागन्दिय सुत्त, आनञ्जस प्याय सुत्तो मे इस निगम का उल्लेख मिलता है। कुरुदेश मे कम्मास दम्य तथा थुल्ल कोट्ठित दो प्रसिद्ध निगम थे। कुरुदेश की राजधानी जातक कथाओ के अनुसार इन्द्रप्रस्थ, जिसे पाली मे इन्दपट्ट कहते है, थी। कुरु जनपद का

[3]मागदिय उस वनखण्ड मे हाथ-मुँह धोने के लिए गया। उसने स्वर्ण प्रभास देखा। चकित हुआ। प्रभास पुज के समीप गया। तथागत को देखा। अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।

राजा कौरव्य था। बुद्ध घोष का मत है कि भगवान् के जीवनकाल में कुरुदेश मे किसी विहार की स्थापना नही हुई थी। भगवान् प्राय वन अथवा उद्यान मे ठहरते थे। भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण का आश्रम कम्मास दम्य के समीप था। नन्दुत्तरा तथा मित्त काली भिक्षुणियोका कम्मासदम्य जन्म स्थान था। जय दिम्स जातक से प्रतीत होता है। कम्पिल के राजा जयदिस्स के पुत्र रूप मे वोधिसत्त्व ने जन्म लिया था। उमका एक और पुत्र था। उस पुत्र को एक यक्षिणी उठा ले गयी थी। वह नर द्रोही हो गया था। उसका पाद आहत हो गया था। उसके कारण कल्मास अर्थात् धब्बा वाला कल्माप पाद नाम पड गया था। भगवान् ने इसका दमन किया था। उस स्थान का नाम कम्मास दम्य पड गया। इस जातक मे स्थान का नाम चुल्ल कम्मास दम्य दिया गया है। किन्तु महासुत सोम जातक मे स्थान का नाम महाकम्मास दम्य दिया गया है।

रामायण मे राजा रघु के एक पुत्र कल्मापपाद का नाम आता है। महाभारत आदि पर्व मे कल्मापपाद को इक्ष्वाकु वशीय कहा गया है। नारद पुराण मे भी कल्माषपाद राजा का उल्लेख मिलता है। कल्मास दम्य के समीप एक वनखण्ड था। भगवान् सम्भवत इसी वन मे विहार करते थे। श्रीभरत सिह उपाध्याय का मत है कि मेरठ जिला के वागपत निगम से सात आठ मील दूर यमुना पार पजाव मे कमासपुर अथवा कुमासपुर निगम वह स्थान हो सकता है। उनके अनुसार भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण यहाँ कुछ रहते है।

(३) मागदिय . इस समय भगवान् की आयु ४३ वर्ष की थी। मागदिय तथा उसकी धर्मपत्नी दोनो ने प्रव्रज्या ले ली। मागदिया कन्या चुल्ल मागदिय के नियन्त्रण मे रख दी गयी। कालान्तर मे मागदिया का विवाह कोशाम्वी के राजा उदयन के साथ हुआ। वह भगवान् की अत्यन्त द्वेपी थी। सामावती और उदयन प्रसग मे उसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

मागदिया को एक स्थान पर अनुपमा भी कहा गया है।

एक मागदिय का और उल्लेख इस प्रसग मे आया है। बुद्ध घोप के

उसकी एक कन्या थी। सुवर्ण वर्ण थी। उस कन्या के रूप से अनेक कुमार आकर्षित हुए थे। विवाह करना चाहते थे। किन्तु ब्राह्मण मागदिय का निश्चय था। सुवर्ण वर्ण श्रमण को कन्या देगा।

तथागत की भव्य मूर्ति से ब्राह्मण प्रसन्न हो गया। कन्या के अनुरूप वर्ण पा गया था। सुन्दर रूप देखा था। उसने निश्चय किया। कन्या का दान श्रमण को करेगा।

वह घर लौटा। प्रसन्नतापूर्वक बोल उठा–'भवती ! भवती !!'

'क्या है ?' ब्राह्मणी पति की उतावली देखकर बोली।

'मैने तुम्हारी कन्या के समान वर्ण वाला पुरुष देख लिया है।'

'कहाँ ?'

'यही वन खण्ड मे। कन्या को सुअलकृत करो हम वहाँ चलेंगे।'

ब्राह्मणी कन्या का शृगार करने उठी।

× × ×

ब्राह्मणी ने कन्या को सुगन्धित जल से स्नान कराया। उत्तम सूक्ष्म वस्त्र पहनाया। अलकारो से अलकृत किया। केशो को पुष्पो से सुशोभित किया।

तथागत के भिक्षाचार का समय हो गया था। वह भिक्षाचार के लिए निकले। कल्माष दम्य मे पिड पात के लिए प्रवेश किया।

ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी कन्या के साथ वनखण्ड मे पहुँचे। तथागत

अनुसार दूसरा मागदिय पहले मागदिय का भतीजा था। कथा इस प्रकार चलती है।

भगवान् कम्यास दम्य मे भारद्वाज गोत्र की अग्निशाला कुटी मे ठहरे थे। मागदिय उस कुटी के पास आया। उसने तृण चटाई वहाँ पडी देखी। उसे मालूम हुआ। भगवान् ने रात्रि मे उस पर शयन किया था। वह बहुत विगडा। भगवान् को 'भुनहु' कहा। भारद्वाज ने अपशब्द व्यवहार का विरोध प्रदर्शन किया। मागदिय ने उत्तर दिया कि वह भगवान् के मुख पर वही शब्द कहने के लिए प्रस्तुत है। भगवान् सायकाल कुटी मे प्रवेश किये। मागदिय आया। उससे धर्म की चर्चा हुई। उसने प्रव्रज्या ले ली। अर्हत हुआ।

आसन पर नही थे । ब्राह्मणी चारो ओर देखने लगी । उसने भगवान् के आसन को देखा । तृण बिछा था । तृणो को देखती हुई बोली :—

'ब्राह्मण ! यही उस सुवर्ण वर्ण व्यक्ति का तृणासन है ?'

'हाँ भवती।'

'ब्राह्मण !' स्त्री ने कहा । 'आना असफल हुआ।'

'भवती ! कारण ?'

'तृण सस्तर किंचित् मात्र इधर-उधर नही हुआ है । '

'इससे क्या होता है ?'

'आसन सयत है । बताता है । इसपर बैठनेवाला काम से दूर है। काम जीत लिया है ।'

'क्या अमगल की बात करती हो।'

'ना, मै ठीक कहती हूँ ।' स्त्री ने कहा ।

'ऊँह ।' मागदिय ने उपेक्षा की ।

स्त्री ने आसन पर दृष्टि जमाते हुए कहा—'आसन अछूता जैसा पडा है । उसमे सिकुडन नही है। वह इस बात को प्रकट करता है। आसन लगाने वाला सयमी है । उसकी काया अनायास हिलतो-डुलती नही है । तृण अस्त-व्यस्तता के कारण सकुचित नही होते है। उस पर बैठने वाला आसन को जैसे सिद्ध कर लिया है ।'

मागदिय चकित दृष्टि से आसन देखने लगा। वास्तव मे आसन अछूता जैसा था।

ब्राह्मणी इधर-उधर देखने लगो। कन्या चुपचाप माता-पिता का वार्तालाप सुन रही थी । लज्जित थी । शील भार से दबी थी ।

स्त्री ने भगवान् के पदचिह्नो को भूमि मे देखा। चिह्नो के पास गयी। रेतीली भूमि मे खडे चिह्न उभडे थे। उन्हे देखकर ब्राह्मणी बोल उठी :

'देखो ! देखो ! यह पद के चिह्न है ।'

'तो इससे तुमने क्या निष्कर्ष निकाला ?'

'यह सत्त्व काम से परे है । अलिप्त है ।'

'भवती ! तुमने यह कैसे जान लिया ?'

'सुनो ! रागयुक्त का पदचिह्न भूमि मे उकडू उभडता है । द्वेषी व्यक्ति का पद निकला होता है । मोहग्रस्त का पद दबा होता है ।'

'और यह— ।'

'मलरहित निर्मल पुरुष का पदचिह्न ऐसा होता है जैसा तुम देख रहे हो ।'—स्त्री ने पदचिह्नो पर आँख गडाते कहा ।

× × ×

पति-पत्नी मे वाद-विवाद हो रहा था । भगवान् ने वन मे प्रवेश किया । ब्राह्मणी की दृष्टि भगवान् के भव्य रूप पर पडी । उसने अपने पति से जिज्ञासा की

'क्या आपने इन्ही महान् पुरुष को देखा था ?'

'निश्चय ही ।'

'ठीक कहते हो ?'

'हाँ ।'

'तो हमारा प्रयोजन सिद्ध नही होगा ।'

'क्यो ?'

'इस रूप का पुरुप कामो से दूर रहता है ।'

कन्या ने तथागत को देखा । उसमे पति-भाव नही उत्पन्न हुआ । राग नही उत्पन्न हुआ । काम नही उत्पन्न हुआ । उसमे निर्मल भाव उठे । श्रद्धा भाव से वह स्वय जैसे निर्मल होने लगी । उसमे पवित्रता अकुरित हुई । शुद्धता की भावना उठी ।

किन्तु ब्राह्मण उतावला था । वह कन्यादान कर, अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होना चाहता था ।

तथागत तृण आसन पर बैठ गये । ब्राह्मण ने एक हाथ से कन्या को पकडा । दूसरे हाथ से कमण्डल का जल उठाया । भगवान् के पास पहुँचा । पहुँचते ही आतुरतापूर्वक बोला .

'प्रव्रजित ! आपका वर्ण सुवर्ण है । मेरी कन्या भी सुवर्ण वर्ण है ।'

तथागत की शान्त दृष्टि ब्राह्मण के उतावले मुख पर पडी । ब्राह्मण बोला :

'कन्या आपके अनुरूप है। आपके योग्य है। आप इसे भार्या स्वरूप स्वीकार करे।'

कन्या लज्जित हो गयी। तथागत ने गम्भीरतापूर्वक ब्राह्मण को देखा। ब्राह्मण ने कहा ·

'आप जल सहित इस कन्या को ग्रहण कीजिए।'

ब्राह्मण सकल्प जल डालने के लिए व्यग्र था। कन्यादान का कार्य समाप्त करना चाहता था। ब्राह्मणी निर्विकार रूप से शास्ता का पवित्र रूप देख रही थी। उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। दामाद की कल्पना किवा भाव मन मे उठा ही नही।

तथागत निर्लिप्त बैठे थे। विकार रहित थे। उन्होने बिना किसी को सम्बोधन किये कहा :

'तृष्णा, अ-रति और राग को अवलोकन कर भी मैथुन के लिए मन मे कभी विचार उत्पन्न नही हुआ। मल, मूत्र पूर्ण इस शरीर को मेरे पैर भी स्पर्श करना नही चाहेगे।'

'ओह!' ब्राह्मण बोला, 'अनेक राजाओ ने इसके लिए याचना की। अनेक कुलीन पुरुषो ने इस कन्या रत्न से विवाह करना चाहा। और आप श्रमण ?'

'मागन्दिय! धर्मो के अनुसन्धान के कारण यह धारणा मुझमे नही हुई है। जिसे मैने कहा है।'

'किन्तु कन्या— ?'

'सुनो मागन्दिय! मैने आत्म शान्ति प्राप्त की है।'

'किन्तु प्रकृति कैसे चलेगी ? प्रचलित सिद्धान्तो के विरुद्ध आप बाते करते है। आध्यात्मिक शक्ति को आपने किस प्रकार जान लिया है। अदृष्टि, अश्रुति, अज्ञान, अशील को त्याग कर, इनका न ग्रहण कर केवल इस जन्म की आकाक्षा न की जाय। तथागत— !'

'सुनो मागन्दिय! सज्ञा से विरक्त हुए को वन्धन नही होता। विमुक्त हुए को मोह ग्रसित नही करता। मागन्दिय! स्मरण रखो। जिन्होने सज्ञा एव दृष्टि ग्रहण की है वे इस लोक मे धक्का खाते है।'

भगवान् तृष्णीम् हुए।

मागन्दिय ने भगवान् को शिरसा वन्दना किया। ब्राह्मणी ने भगवान् का चरण-कमल स्पर्श किया और विस्मयापन्न कन्या ने उस पवित्र रूप को देखकर, निर्विकार भाव से, चरणो मे मस्तक रख दिया।

आधार ग्रन्थ

सुत्त निपात ४ ९ (४७)
सयुक्त निकाय · २१ १ ३
मज्झिम निकाय २ ३ ५
मि० प्र० ४ ८ ८०
DhA iii 193, i. 202, 205, 210
SNA ii 542
AA i 235
UdA 383

नकुल माता

एक समय की बात है। [1]सुसुमार गिरि का सुरम्य अचल था। सुसुमार गिरि विन्ध्य पर्वत का चरण है। वह चरण गगा की पवित्र धारा से आर्द्र रहता है। उसका नाम चरणाद्रि है। चुनार है। गगा की पवित्र धारा विन्ध्य पर्वत का प्रथम और अन्तिमवार यहाँ स्पर्श करती है। हिमालय से चलकर केवल इसी स्थान पर गगा की धारा पर्वत का दर्शन करती है। स्पर्श करती है। प्राचीन काल से चरणाद्रि दुर्ग ऐतिहासिक रहा है। प्रसिद्ध रहा है। समीप ही वन है। गुफा है। प्रपात है। समतल भूमि है। महा नदी गगा है। अनेक छुद्र सरिताएँ है। पर्वत है। प्रकृति ने सभी प्राकृतिक दृश्यो को यहाँ एकत्रित कर दिया है।

गगा और पर्वत के मध्य का सकीर्ण भू-खण्ड पूर्व और पश्चिम भारत को मिलाता है। सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। पूर्व मे काशी है। पर्वत शिखर से दिखाई देती है। पश्चिम मे प्रयाग है। गगा और यमुना का सगम है। गगा यमुना का सम्मिलित जल इस रमणीय भूमि को आर्द्र करता है। मृग वृन्द स्वच्छन्द विचरते दिखाई पड जाते है। मै यहाँ प्राय आया करता हूँ। बगाल विभाजन के पूर्व यह बगालियो का स्वास्थ्य केन्द्र रहा है। भगवान् के समय चुनार भर्ग राज्य की राजधानी था।

---

(१) सुंसुमार गिरि यह चुनार की पहाडियाँ है। वायुयान से देखने पर मकडो की तरह यहाँ का दृश्य दिखाई देता है। यहाँ भगवान् ने मज्झिम निकाय के १५, ५०, ८५ सुत्तो का उपदेश दिया था। नकुल पिता सुत्त का यहाँ उपदेश दिया था। उदयन के पुत्र वोधि राजकुमार ने सुसुमार गिरि मे कोकनद राजप्रासाद निर्माण कराया था। भगवान् को उसने इस प्रासाद मे आमन्त्रित किया था। मोगल सराय स्टेशन के पश्चात् चुनार जंकशन स्टेशन पडता है। मोगल सराय तथा मिर्जापुर के मध्य मे है।

भगवान् इस सुरम्य-स्थान के [२]भेस कला वन मृगदाव मे थे । विहार कर रहे थे । पूर्वाह्न काल आया । सुआच्छादित हुए । पात्र लिया । चीवर पहना । नकुल पिता गृहपति का यहाँ निवास था । भगवान् भिक्षाचार निमित्त उसके स्थान पर पहुँचे ।

आसन बिछा था । भगवान् ने आसन ग्रहण किया । नकुल पिता और नकुल माता दोनो पूर्ण श्रद्धा विश्वास के साथ भगवान् की सेवा मे लग गये । उन्होने भगवान् का अभिवादन किया । वन्दना किया । सकेत पाकर एक ओर वैठ गये ।

'भन्ते !' नकुल पिता गृहपति ने निवेदन किया

'जिस समय मै और नकुल माता दोनो वहुत छोटे थे । हमारा विवाह कर दिया गया था ।'

नकुल माता मे नारीसुलभ लज्जा आ गयी । भूमि की ओर देखने लगी । नकुल पिता ने कहा

'भन्ते ! नकुल माता ने शरीर से करना तो दूर रहा । उसने मानसिक कल्पना मे भी विरुद्ध आचरण के विपय मे विचार न किया होगा ।'

---

(२) भेसकला वन मृगदाव भगवान् ने आठवाँ वर्पा वास यहाँ किया था । यह स्थान सुसुमार गिरि के समीप होना वताया जाता है । मृगदाव का स्पष्ट उल्लेख किया गया है । हमने यहाँ अपनी वाल्यावस्था मे मृगो का झुण्ड घूमते हुए देखा है । हमारे निवास स्थान वाराणसी से २० मील दूर है । चुनार का किला काशी से दिखाई पडता है । मै प्राय वर्प मे दो वार इस स्थान पर आता रहा हूँ । उस समय मालूम भी नही था कि भगवान् का का इस स्थान से कोई सम्वन्ध रहा है । यहाँ पर अनेक झरने है । खोह है । स्थान अत्यन्त रमणीय है । अपनी वाल्यावस्था मे मैं चुनार से गगाजी मे तैरकर काशी तक आया था । यह वात सन् १९२३ की है । उन दिनो तैराकी का वहुत रिवाज था । चुनार मे काशी तथा काशी मे चुनार नाव से जाना साधारण वात है । यहाँ पर स्थविर सिरिमण्ड की प्रव्रज्या हुई थी । महामोद्गल्लायन ने यहाँ पर मार को पराजित किया था । यहाँ पर रेलवे जंकशन तथा आवादी वढ जाने के कारण मृगो का स्वच्छन्द घूमना प्राय लुप्त हो गया है । वन कट गये है । खेत वन गये है ।

भगवान् ने नकुल माता की ओर देखा। वह किंचित शील भार द्वारा दब गयी। नकुल पिता ने पुनः कहा :

'भन्ते! हमारी इच्छा होती है। इस लोक मे आजीवन परस्पर एक दूसरे को देखते रहे। एक साथ रहे।'

नकुल पिता तूष्णीभूत हुआ। नकुल माता ने अत्यन्त मृदु स्वर मे नत दृष्टि करते हुए कहा

'भन्ते! मै बहुत छोटी थी। उस समय मै यहाँ विवाह के लिए लायी गयी। उस समय से आज तक मै नही जानती। कभी नकुल पिता ने मनसा वाचा कर्मणा, विरुद्ध आचरण किया है।'

भगवान् ने नकुल पिता की ओर देखा। भगवान् के चरणो में उसकी दृष्टि थी। दृष्टि नत थी। नकुल माता ने कहा :

'भन्ते! हमारी इच्छा है। इस लोक मे जीवन पर्यन्त हम एक दूसरे से विलग न हो। देखते रहे। मृत्यु के पश्चात् भी एक साथ रहे। एक दूसरे को देखते रहे।'

'गृहपति जनो! इस इच्छा पूर्ति के लिये, इस जीवन और मृत्यु के उपरान्त जीवन मे भी एक साथ रहने के लिए, कुछ करना होगा।'

'भन्ते! हम करेगे।' पति-पत्नी एक साथ बोल उठे।

'गृहपति जनो! आपको समान श्रद्धाशील, त्यागी तथा प्रज्ञावान होना होगा।'

'होगे भन्ते!' पति-पत्नी प्रसन्न हो गये।

'गृहपति!' भगवान् ने पुनः कहा :

'इस प्रकार आचरण करने पर इस लोक और परलोक दोनो स्थानो मे तुम लोग विलग नही होगे। एक दूसरे को देखते रहोगे।'

पति-पत्नी ने भगवान् के चरणो मे शिरसा प्रणाम किया। भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की।

भिक्षा ग्रहणोपरान्त भगवान् ने प्रस्थान किया। पति-पत्नी ने देखा। सुन्दर वनश्री। सुन्दर प्रकृति। सुन्दर गगा की धारा। उनमे उन्हे जैसे एक नवीन जीवन दिखाई दिया। उनमे नवीन स्फूर्ति आ गयी थी। वे दोनों जगत् के समप्राणी तुल्य सुसुमार गिरि की कुक्षि मे विहरने लगे।

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक श्राविकाओ तथा उपासक उपासिकाओ की तालिका मे चौहत्तरवाँ तथा श्रावक उपासिकाओ मे नवाँ स्थान प्राप्त [३]भर्ग देश सुसुमार गिरि नकुल पिता गृहपत्नी भार्या विश्वासिकाओ मे अग्र हुई थी।

---

(३) भग्गदेश यह गणतन्त्र था। सुसुमार गिरि के आस-पास था। यह राज्य गगा के दक्षिण सम्भवत अहरौरा रोड स्टेशन से चुनार के समीपवर्ती अचल तक था। इस अचल मे अनेक ऐतिहासिक सामग्री दुर्ग, मन्दिर तथा खोहो के रूप मे विखरी है। पुरातत्त्व विभाग की तरफ से अभी कोई कार्य इस तरफ नही हुआ है।

आधार ग्रन्थ

अगुत्तर निकाय १ १४, २ ४
(पृष्ठ ६२ भ० आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)
सयुक्त निकाय ३४ ३ ३ ८
A i 26, 216, : ii 61, iii 295, 465, : iv : 348
AA i 216, 246, : ii : 514,
S iii : 1, iv : 116;
SA ii , 182

सुप्रवासा

कोलिय जनपद था। उसमे सज्जनेल[1] निगम था। भगवान् विहार कर रहे थे। पूर्वाह्ण काल था। भगवान् सुआच्छादित हुए। चीवर पहने। पात्र उठाये। भिक्षाचार निमित्त चले।

सुप्रवासा कोलिय कन्या के निवास स्थान पर पहुँचे। आसन विछा था। भगवान् ने आसन ग्रहण किया।

कोलिय दुहिता ने अपने हाथो द्वारा प्रणीत भोजन परोसा। भोजन समाप्त हुआ। भगवान् ने पात्र से हाथ खीच लिया। हस्तादि प्रच्छालन किया। भगवान् आसन पर वैठ गये। कोलिय दुहिता एक ओर सविनय वैठ गयी। कोलिय कन्या उपदेश निमित्त उत्सुक हुई।

'सुप्रवासा!' भगवान् ने कहा 'आर्य श्राविका भोजन कराती है। वे भोजन के साथ भोजनकर्ता को चार चीजो का और दान देती है।'

'भन्ते? वे क्या है?'

'आयु का दान करती है।'

'भन्ते! दूसरा?'

'वर्ण का दान करती है।'

'भन्ते! तीसरा?

'सुख का दान करती है।'

'भन्ते! चौथा?'

'वल का दान करती हैं?'

'आयु:का दान किस प्रकार भन्ते?'

---

(१) सज्जनेल कोलिय जनपद मे एक निगम था। भगवान् का यहाँ एक वार आगमन हुआ था।

'आयु का दानकर्त्री उपासिका, दिव्य तथा मानुषी आयु की अधि-कारिणी होती है।'

'वर्ण का ?'

'वर्ण की दात्री दिव्य अथवा मानुषी वर्ण को अधिकारिणी होती है।'

'सुख—?'

'सुख की दात्री उपासिका दिव्य किवा मानुषी सुख की अधिकारिणी होती है।'

'भन्ते—!'

'सुप्रवासा! भोजन दानकर्त्री उपासिका भोजनकर्ता को चारो चीजो का दान करती है।'

सुप्रवासा ने भगवान् के चरणो पर शिरसा प्रणाम किया। भगवान् ने प्रस्थान किया। सुप्रवासाने प्रसन्न मन अपने गृह मे प्रवेश किया।

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे इकहत्तरवाँ तथा भिक्षु उपासिकाओ मे सातवाँ स्थान प्राप्त शाक्य, कुण्डिया[२] सीवली माता क्षत्रिय कुलोत्पन्न, सुप्रवासा कोलिय कन्या प्रणीत, दायिकाओ मे अग्र हुई थी।

●

---

(२) कुण्डिया यह एक नगर था। कुण्डधान वन इसी मे था। एक और कुण्डी या कुण्डि किवा कुण्डि कोल जनपद कुरु प्रदेश मे भी था। यह कुण्डिया कोल जनपद मे थी। इसके समीप कुण्डधान बन था। उसके समीप साण वासि नामक पर्वत था।

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ १४
२ ४ (६४ पृष्ठ)
A i 96, ii 62, iv 348
AA i 244,
Ap . ii 494,
DhA i 339, iv 193
J i 407

सीवली

> यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा ।
> तिण्णो पारगतो, झायी अनेजो अकथंकथी ।
> अनुपादाय निब्बुत्तो तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥

[मै उसे ब्राह्मण कहता हूँ जिसने इस दुर्गम ससार के चक्कर मे डालनेवाले विपरीत मार्गीय मोह का त्याग किया है । पारगत है । ध्यानी है । और तीर्ण है ।]

—ध० ४१४

कोलिय राज दुहिता सुप्रवासा भगवान् की श्राविका उपासिका थी। वह प्रणीत दायिकाओ मे अग्र थी । शाक्य थी । क्षत्रिय कुल थी ।

सीवली[1] माता की गर्भ मे आया । सुप्रवासा उसे सात वर्ष नक गर्भ

---

(१) सीवली गर्भ धम्मपद अट्ठ कथा मे सात वर्प और थेर गाथा मे सात दिन का समय दिया गया है ।

धम्मपद के अनुसार गर्भ ७ वर्प था । थेर गाथा के अनुसार ७ दिन का समय दिया गया है । सीवली नाम से भ्रम होता है । यह शब्द स्त्रीलिंग है । सीवली नाम की एक भिक्षुणी हुई है । वह आमदगामणि की कन्या थी । चुलाभव की बहन थी । उसने लका मे चार मास तक राज्य (सन् ३९ ई०) मे किया था । वह इलनाग द्वारा सिहासन च्युत की गयी थी । महाथूप की स्थापना के समय उपस्थित थी । वरमा मे सिहल सघ के सस्थापक भी एक सीवली हुए है ।

सीवली उत्सव सीवली को भगवान् के ललाट पर का तिलक कहा गया है ।

सीवली का श्रीलका तथा वर्मा आदि बौद्ध देशो मे वडा महत्त्व दिया जाता है । उनकी पूजा गणेश के समान की जाती है ।

भारत मे चटगॉव जहाँ बौद्ध मतानुयायी रहते है । वहाँ सीवली की पूजा धूम-धाम से की जाती है । उनके पूजा के कारण सर्वदा लाभ होनेकी मान्यता है । गणेश जैसे लाभ और शुभ के देवता है उसी प्रकार की मान्यता उनकी है । कहा जाता है । 'सीवली नामतेजेन लाभ ते भवतु सर्वदा ।

मे लिये रही। सीवली ने समय से जन्म नही लिया। माता को अत्यन्त कष्ट उठाना पडा। सात वर्ष तक उसे गर्भ मे लिये घूमती रही। पालती रही। सात दिनो तक उसे असह्य प्रसव वेदना हुई। सुप्रवासा ने अपने पति से निवेदन किया

'मै वेदना से त्रस्त हूँ।'

'आर्ये ! क्या करूँ ?'

'मृत्यु से पूर्व मेरी एक इच्छा है।' सुप्रवासा ने अपने पति से निवेदन किया।

'कहो आर्ये !'

'सचमुच। कहूँ ?'

'हाँ'

'आर्य ! तथागत की सेवा मे जाइये।'

'उनसे क्या कहूँगा आर्ये ?'

'मेरी अवस्था बताइएगा। उन्हे आमन्त्रित कीजिएगा।'

'फिर—?'

'वह जो कुछ उत्तर दे। अक्षरश मुझसे कहिएगा। आपको कष्ट तो होगा।'

'नही आर्ये ! मै जाऊँगा।'

× × ×

'भन्ते !' सुप्रवासा के पति ने भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया।

'आयुष्मान् ! क्या है ?'

'भन्ते ! सुप्रवासा कोलिय कन्या ने भगवान् की सेवा मे निवेदन किया है।'

'कहो सौम्य !'

'वह गर्भवती है। समय वीत गया। प्रसव पीडा से व्यथित है। मृत्यु जैसे समीप आती जा रही है।'

'सौम्य ! जाओ। वह प्रसन्न होगी। स्वस्थ होगी। उसे पुत्र रत्न प्राप्त होगा। पुत्र स्वस्थ होगा। हृष्ट-पुष्ट होगा।'

राजा ने भगवान् की प्रदक्षिणा की। वन्दना की। अभिवादन किया। प्रसन्न मन लौटा।

× × ×

राजा के घर पहुँचने के पूर्व ही सुप्रवासा को पुनरत्न हो चुका था। उसे घेर कर, जो लोग आँसू बहाते खड़े थे, प्रसन्न हो गये। लोग उसके जीवन से निराश हो गये थे। आनन्द मनाते घर लौट चले।

राजा ने मार्ग मे प्रमुदित जन समूह को देखा। उसे विश्वास हो गया। दशवल भगवान् ने जो कहा था। सत्य हुआ।

वह प्रसन्नता के बीच, नारियो के मगल-गान के बीच, राजपुत्री के पास गया। भगवान् ने जो कुछ कहा था। उसने अक्षरश' कह दिया। सुप्रवासाने पति से निवेदन किया। भगवान् के सम्मान मे सात दिन तक उत्सव मनाया जाय।

कुटुम्बियो के हृदयो को प्रसन्नता से पूरित करता पुत्र उत्पन्न हुआ था। अतएव उसका नाम 'सिवली' अर्थात् शुभ रखा गया।

× × ×

सारिपुत्र सीवली के घर पर आये। पुत्र सात ही दिन मे बढ गया था। सब काम-काज करने लगा था। सारिपुत्र ने उसे देखकर कहा

'आयुष्मान् ! क्या उसके लिए यह उचित नही है, जिसने इतना दु.ख उठाया है, इस ससार माया-जाल का त्याग करे ?'

'निश्चय ?'

'आप प्रव्रजित होगे।'

'मै गृह त्याग करूँगा।'

× × ×

सुप्रवासा ने वार्तालाप सुन लिया। सारिपुत्र के समीप आयी। सारिपुत्र से पूछा

'आयुष्मान् ! बालक क्या कह रहा था ?'

'आर्ये ! मै उसके लम्बे दु'ख के विषय मे वार्तालाप कर रहा था।'

'उसने क्या कहा ?'

'वह प्रव्रजित होने के लिए उद्यत है।'

'माँ चुप हो गयी ।'

'देवी ! यदि आप आज्ञा दे, तो मै उसे प्रव्रजित करूँ ?'

'प्रसन्नता पूर्वक आयुष्मान् । उसे प्रव्रजित कीजिये ।'

× × ×

सारिपुत्र ने सीवली को प्रव्रजित कर कहा . 'आयुष्मान् ! तुम्हे विशेष उपदेश की आवश्यकता नही है ।'

'मै क्या करूँ ?'

'तुम यही विचार करो—तुम्हे यह लम्बे काल का दु ख क्यो भोगना पडा था ?'

'वस—!'

'हाँ—इसी मे धर्म का सब रहस्य छिपा है ।'

'आयुष्मान् !' बालक ने कहा : 'आपका काम मुझे प्रव्रजित करना था । आगे क्या करना होगा । इसका विचार मै स्वय करूँगा । मै क्या कर सकने योग्य हूँ ।'

× × ×

सीवली का प्रथम मुण्डन हुआ । वह श्रोतापन्न हुआ । दूसरा मुण्डन हुआ । सकदागामी हुआ । इसी प्रकार प्रत्येक मुर्ण्डनो पर एक ध्यान से दूसरे ध्यान को प्राप्त करता गया ।

प्रव्रज्या के पश्चात्, उसी दिन, एकान्त कुटी मे चला गया । वहाँ विचार करने लगा । उसका जन्म इतने विलम्ब से क्यो हुआ ? उसका क्या हेतु था ! उसका विचार परिपक्व होने लगा । बुद्धि परिपक्व होने लगी । उसके अन्तर्चक्षु खुले । उसे ज्ञान प्राप्त हुआ । वह, हो गया, अर्हत ।

भिक्षुओ मे एक दिन सीवली के गर्भ विलम्ब की चर्चा चली । सघ एकत्रित था । भिक्षुओ ने शका प्रकट की ·

'भन्ते ! आश्चर्य है । सीवली इतने दिनो तक गर्भ मे कैसे रहा ?'

'भन्ते !' दूसरा बोला, 'आश्चर्य है । अर्हत प्राप्ति के उपनिश्रय पुण्य होने पर भी किस प्रकार वह माता के गर्भ में दु ख भोगता रहा ।'

'भिक्षुओ! सीवली दुःखों से निवृत्त हो चुका है। निर्वाण का उसने साक्षात्कार किया है। विहार कर रहा है।'

× × ×

सीवली ने उदान कहा 'जिस सकल्प के साथ मैंने कुटी मे प्रवेश किया था, वे पूरे हो गये हैं। मैंने विद्या तथा विमुक्ति को खोजा है। मैंने पूर्णतया अभिमान को त्याग दिया है।'

× × ×

भगवान् बुद्ध खदिर वनिय रेवत के यहाँ अरण्य मे गये। सीवली को साथ लेते गये। मार्ग दुरूह था। सामान की कमी थी। सीवली हिमालय पर भी पाँच सौ भिक्षुओ के साथ अपनी भाग्य परीक्षा करने गया था। वहाँ देवताओ ने उनका प्रवन्ध किया था। गन्धमादन पर्वत पर एक देवता ने सात दिन तक, खीर खिलाकर सीवली का सत्कार किया था।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे अट्ठारहवाँ स्थान प्राप्त शाक्य कुडिया क्षत्रिय कुलोत्पन्न कोलिय दुहिता सुप्पवासा पुत्र सीवली लाभियो मे अग्र हुआ था।

•

आधार ग्रन्थ :

पालि थेरा अपदान ५५ . ३ ५४-९५

बुद्ध चर्या ४७०

धम्मपद २६ ३२

अंगुत्तर निकाय १ १४

थेर गाथा ६० उदान ६०

Thag vs 60

Thag A : 1 · 135–138

Ap 11 492–495

A 1 24

AA 1 139

पारिलेय्यक

तथागत कोशाम्बी मे थे। घोषिताराम मे विहार कर रहे थे। उपासक, उपासिका, राजा, महामात्यो, एव तैर्थिको द्वारा स्थान जनाकीर्ण था। कही एकान्त नही मिलता था। लोग घेरे रहते थे। शान्ति मे विघ्न होता था। वातावरण अनुकूल नही था।[1]

तथागत ने भीड-भाड से, गण से, दूर विहार करने का विचार किया।

पूर्वाह्ण काल मे भगवान् सुआच्छादित हुए। पात्र लिया। चीवर लिया। भिक्षा निमित्त कौशाम्बी मे प्रवेश किया। वहाँ पिण्डपात किया। पुन लौटे।

आसन समेटा। पात्र लिया। चीवर लिया। उपस्थाक से कुछ नही कहा। भिक्षु सघ को ओर नही देखा। एकाकी पारिलेय्यक[2] की ओर चल पडे।

---

(१) भिक्षुकलह कौशाम्बी मे भगवान् को भिक्षुओ के परस्पर कलह की वात मालूम हुई। उन्होने स्थान त्याग किया। वालकोणकारगाम तथा पच्छिम वशदाय ग्रामो से होते हुए पारिलेय्यक पहुँचे थे। भगवान् ने पारिलेय्यक मे भद्रशाल मूल रक्षित वन खण्ड मे विहार किया था। वहाँ से वह श्रावस्ती गये थे। आनन्द पाँच सौ भिक्षुओ के साथ भगवान् को श्रावस्ती ले जाने के लिये आये थे। पारिलेय्यक में भिक्षुओ के भोजन की व्यवस्था की गयी थी।

हाथी का नाम पारिलेय्य कहा जाता है। भीसा जातक के हाथी से इस हाथी की समानता की जाती है।

(२) पारिलेय्यक दसवाँ वर्षा वास भगवान् ने पारिलेय्यक वन मे बिताया था। यह वन खण्ड रक्षित था। पारिलेय्यक नगर कौशाम्बी के समीप था। पारिलेय्यक वन इसी नगर के समीप था।

पारिलेय्यक मे भगवान् पहुँचे। वहाँ रक्षित वन खण्ड था। उसमें भद्रशाल तरुवर था। उसकी छाया मे भगवान् ने आसन लगाया। विहार करने लगे।

स्थान यद्यपि जनाकीर्ण नही था तथापि एक महागज वहाँ था। विहार करता था। हथिनी, उसके कलभ, के साथ विहार करता था। तृणो का आहार करता था। शाखाओ को तोड कर आहार करता था। मलिन जलपान करता था। अवगाह मे उतरता था। स्नान करता था। हथिनियाँ उसके शरीर का स्पर्श करती थी। साथ चलती थी। वह जीवन से ऊब गया था।

गज एकान्त स्थान मे जाना चाहता था। एकान्त सेवन की इच्छा हुई। गण से गज अलग हो गया।

महागज यूथ से बाहर निकला। पारिलेय्यक रक्षित वन की ओर चला। भद्रशाल के समीप पहुँचा।

वनखण्ड मे गज हरित तृण चरता था। भगवान् के लिए सूँड मे पानी भर कर लाता था। पीने के लिए पात्र मे जल रखता था। एकान्त मे स्वेच्छा पूर्वक घूमता था। उसे एकान्त प्रिय था।

भगवान् ने उदान कहा—'इस हरीश तुल्य दाँतवाले हाथी का चित्त और उनका चित्त समान है। दोनो चित्तो को एकान्त प्रिय है।'

आधार ग्रन्थ .

विनय पटक महावग्ग १० १ ९

सयुक्त निकाय २१ २ ३ ९

DhA i 48, iv 26,

J iv 314, iii 489

M i 320

Ud iv 5,

UdA . 250

यवतण्डुल

तथागत वेरंजा मे वर्षा वास कर रहे थे। वेरंजा मे दुर्भिक्ष था। अकाल और अवर्षण से वेरजा त्रस्त थी। खेती सूख गयी थी। खेतो मे श्वेत अस्थियो तुल्य डाढे लगी थी। उनमें दाने नही थे। सभी कुछ सूख गया था। भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह कठिन था।

उसी समय उत्तरापथ के अश्व के सौदागर वेरजा मे पाँच सौ अश्वो के साथ वर्षा वास कर रहे थे। उन्होने भिक्षुओ के लिए एक-एक यव-तण्डुल प्रस्थ[1] बाँध दिया था।

पूर्वाह्ण काल मे भिक्षाचार के लिए भिक्षु वेरंजा मे जाते थे। वहाँ कुछ नही मिलता था। अनन्तर अश्वो के सौदागर के पास आकर एक-एक यवतण्डुल प्रस्थ पाते थे। वे उसके साथ आराम से लौटते थे। उन्हे ओखल मे कूटते थे। वही उनके जीवन निर्वाह का साधन था।

आनन्द भी यवतण्डुल लाते थे। उसे सील पर पीसते थे। सबकी तरह वही चावल भगवान् भी खाते थे। सघ के खान-पान मे भेद नही था।

भगवान् ने ओखल का शब्द सुन कर आनन्द से पूछा

'आनन्द ! यह शब्द कैसा है ?'

'भन्ते ! यह ओखल का शब्द है।'

'क्या कूटा जा रहा है ?

'चावल !'

---

(१) प्रस्थ अनेक बौद्ध विद्वान् लेखको ने प्रस्थ का अर्थ एक पसर धान किया है। यह ठीक नही मालूम होता। यहाँ मूल पालि मे यवतण्डुल शब्द आया है। व्यापारी उत्तर पश्चिम से घोडा लेकर आये थे। घोडो को जब दिया जाता है न कि धान। पजाब की तरफ गेहूँ तथा जब ज्यादा होता है। अतएव यहाँ यवतण्डुल ही दिया गया है।

'साधु ! आनन्द ! तुम सत्पुरुषों ने जीत लिया है। किन्तु भविष्य की जनता तो शालिमाष ओदन की आकांक्षा करेगी।'

●

आधार ग्रन्थ :

बुद्ध चर्या १४१
पाराजिका १

जूठन मत बनो

वाराणसी मृगदाव मे भगवान् विहार कर रहे थे। पूर्वाह्न समय सुआच्छादित हुए। पात्र उठाया। चीवर लिया। पिण्डचार निमित्त वाराणसी मे प्रवेश किया।

भिक्षा लेकर भगवान् एक पाकड वृक्ष के नीचे बैठ गये। भिक्षा ग्रहण किया।

वहाँ उन्होने एक शून्य हृदय, बहिर्मुख चित्त, मूढस्मृति, सप्रजन्य रहित, असमाधान चित्त, प्राकृत इन्द्रिय, एक भिक्षु को देखा।

'भिक्षु' तथागत ने उसे सम्बोधित किया

भिक्षु समीप आ गया।

'भिक्षु!' तथागत ने कहा, 'तू अपने को जूठन मत बन। जूठन पर मक्खियाँ भिनकती हैं। मैला कर देती है। क्या तुम्हे यह शोभा देता है?'

भिक्षु के मन मे बात बैठ गयी। तथागत के उपदेश से उपदिष्ट हुआ। वैराग्य को प्राप्त हुआ। भगवान् ने वाराणसी मे पिण्डचार कर भिक्षुओ को सम्बोधित किया

'भिक्षुओ! मैने पूर्वाह्न मे एक भिक्षु देखा। उससे मैने कहा। जूठन मत बनो। सवेग को प्राप्त हुआ।'

'भन्ते! एक भिक्षु ने कहा, 'जूठन क्या है?'

'आवुस! लोभ और राग जूठन है।'

'दुर्गन्ध क्या है।'

'आवुस! व्यापाद अर्थात् द्रोह आमगध है।

'मक्खियाँ क्या है ?'

'पाप अकुशल तर्क मक्खियाँ है ।'

आधार ग्रन्थ

अ० नि० ३ ३ ६

बुद्ध चरित १४५

सुदिन्न[1]

कलन्दक[2] एक ग्राम था। वैशाली से बहुत दूर नही था। वहाँ सुदिन्न रहता था। कलन्दक का पुत्र था। सेठ था।

एक समय वह बहुत लोगो के साथ वैशाली गया। तथागत एक विशाल परिषद् के साथ बैठे थे। धर्मोपदेश कर रहे थे।

तथागत उपदेश देते है सुन रखा था। उसकी इच्छा हुई। तथागत का उपदेश सुने। वह परिषद् मे गया। एक ओर जाकर, बैठ गया।

उपदेश सुनने के पश्चात् परिषद् ने तथागत की प्रदक्षिणा की। करबद्ध प्रणाम कर चली गयी। तथागत एकान्त मे रह गये। सुदिन्न ने अच्छा अवसर पाया। तथागत के समीप गया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। भगवान् के सकेत पर बोला

'भन्ते ! मै प्रव्रजित होना चाहता हूँ।'

'तुम्हारे माता-पिता जीवित है ?'

'हाँ'

'उनसे तुमने गृह त्याग की अनुज्ञा ली है ?'

'नही।'

'सुदिन्न ! अननुज्ञात व्यक्ति को प्रव्रज्या नही मिलती।'

'क्यो ?'

---

(१) सुदिन्न नाम के दो व्यक्ति और हुए है। एक प्रियदर्शी बुद्ध (जातक १ ३९) के पिता थे। दूसरे एक प्रसिद्ध भाष्यकार हुए है। उनका उल्लेख बुद्ध घोप ने किया है।

(२) कलन्दक वैशाली के समीप यह एक ग्राम था।

'तुम्हारे माता-पिता का उत्तरदायित्व कौन लेगा ? उनके प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य है ।'

'भन्ते ! मै अनुज्ञा लेने का प्रयास करूँगा ।'

× × ×

सुदिन्न घर लौट आया । गृहत्याग की भावना उसमे प्रवल होने लगी । गृह बन्दीगृह तुल्य प्रतीत होता था । वह इस बन्धन से शीघ्राति-शीघ्र छूटना चाहता था । पिता को निश्चिन्त बैठा देखा । उनके पास गया ।

'पिता ! सुदिन्न ने पिता से निवेदन किया, 'मुझे प्रव्रज्या की आज्ञा दीजिए ।'

'प्रव्रज्या ?'

'हाँ । मैने तथागत का उपदेश सुना है ।'

'अरे सुना ।' उसके पिता ने अपनी स्त्री को पुकारा ।

'क्या है ?'

'तुम्हारा पुत्र प्रव्रज्या लेगा ।'

'नही ?'

माता दौडी आयी । सुदिन्न के मुख को गोद मे ले लिया । उसे प्यार करने लगी ।

'सुदिन्न ! तुम हमारे एकमात्र पुत्र हो । प्रिय हो । सुख मे तुम पले-पोषे । सुख मे रहे । तुम्हे दु ख का ज्ञान नही है । मरने पर भी तुमसे अनिच्छुक नही हूँगी । जीवित रहने पर तो प्रश्न ही उपस्थित नही होता ।'

'नही माँ, मै प्रव्रज्या लूँगा ।'

माँ की आँखे भर आयी । पिता ने जोर देकर कहा .

'नही ।'

'माँ — ।' सुदिन्न ने हठ किया ।

माँ की आँखो मे आँसू आ गये । पिता ने कहा :

'नही, हमारे जीवित रहने तक नही ।'

सुदिन्न ने दृढ निश्चय कर लिया था। वह भूमि पर बैठ गया। उसने कहा :

'मै या तो प्रव्रजित हूँगा। अन्यथा यहाँ प्राण दे दूँगा।'

× × ×

सात दिन बिना अन्न-पानी सुदिन्न भूमि पर बैठा रह गया। पिता ने उससे कहा

'प्रिय! तुम हमारे एकमात्र पुत्र हो। मरते दम तक तुमको हम नही छोडेगे। तुम उठो। खा-पीकर सुखी रहो। सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करो। हम तुम्हे प्रव्रज्या की आज्ञा नही देगे।'

सुदिन्न अनशन करता रहा। उसकी स्थिति पर उसके मित्रो को दया आयी। मित्र उसके पास जाकर बोले .

'मित्र! तुम अपनी माता के एकमात्र पुत्र हो। मरने पर भी तुम्हारे माता-पिता तुम्हे प्रव्रज्या की अनुज्ञा नही देगे। सौम्य! खाओ-पीओ, आनन्द करो। पुण्य करते हुए जगत् मे रमण करो।'

'नही मित्रो! मै प्रव्रज्या लूँगा।'

मित्रो ने तीन बार वही बाते दुहरायी। तीनो बार सुदिन्न ने अस्वीकार कर दिया। हताश—मित्रगण सुदिन्न के माता-पिता के पास गये।

'सौम्य! सुदिन्न भूमि पर पडा है। कहता है। प्रव्रज्या लूँगा। अन्यथा मरूँगा। यदि आप लोग प्रव्रज्या की आज्ञा नही देगे, तो उसका प्राणान्त हो जायगा। प्रव्रजित होने पर आप पुत्र को देख सकेगे। यदि प्रव्रज्या मे वह असफल रहा तो लौट आयेगा। मरने पर सदा के लिए उसे खो देगे।

माता-पिता की समझ में बात आ गयी। दोनो ने परस्पर सलाह किया। वे बोले

'तातो! हम उसे प्रव्रज्या की अनुज्ञा देते है।'

मित्रगण प्रसन्न हो गये। वे सुदिन्न के पास समाचार देने चले।

'सुदिन्न !' मित्रगण उसके पास पहुँचकर बोले, 'तुम्हें अनुज्ञा मिल मिल गयी। तुम प्रव्रज्या ले सकते हो।'

सुदिन्न प्रसन्न हो गया। उसने अनशन तोड दिया। अपने शरीर का धूल जाडा। खडा हुआ। उसने कुछ दिनो तक अन्न-जल ग्रहण किया। शक्ति आने लगी। शक्ति लौटने पर तथागत की शरण मे पहुँचा।

भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। सुदिन्न कलन्दक पुत्र ने भगवान् का सकेत पाया। करबद्ध निवेदन किया '

'भन्ते ! प्रव्रज्या निमित्त माता-पिता द्वारा अनुज्ञात हूँ।'

तथागत की करुण दृष्टि सुदिन्न पर उठी। सुदिन्न ने शिरसा नमामि करते हुए कहा

'तथागत ! मुझे प्रव्रज्या देने की कृपा करे।'

सुदिन्न ने भगवान् के बुद्धत्व प्राप्त होने के बारह वर्ष पश्चात् प्रव्रज्या पायी। उपसपदा पायी। अवधूत गुणो से युक्त हुआ। बज्जियो के एक उद्यान मे विहार करने लगा। आरण्य तुल्य वन मे रहने लगा। पिण्डपात करने लगा। पाशु-कुलिक पहनने लगा। और स-पदानचारी बनकर निरन्तर चलता रहा। कही अपना निवास स्थान नही बनाया।

× × ×

वज्जीदेश[३] मे भयकर दुर्भिक्ष था। आयुष्मान् सुदिन्न ने विचार किया—'जीवन यापन कठिन था। वैशाली मे उसकी जाति के लोग थे। धनी थे। विलासी थे। स्वर्ण-रजत भण्डार से युक्त थे। अनेक वित्त उपकरण से युक्त थे। धनधान्यपूर्ण थे। उसने जाति वालो मे चलकर, विहार का निश्चय किया।

'जाति के लोग उसे दान देगे। पुण्य करेगे। भिक्षुओ का लाभ उन्हे मिलेगा। उसे भी पिण्डपात करने मे कष्ट नही होगा'—विचार करता, सुदिन्न ने शयनासन लपेटा। पात्र लिया। चीवर लिया। वैशाली की ओर प्रस्थान किया।

---

(३) वज्जिदेश . सोलह महा जनपदो मे वज्जि भी एक जनपद था।

सुदिन्न वैशाली पहुँचा। महावन[४] मे विहार करता था। जाति वालो ने आगमन सुना। वे साठ स्थालीपाक लाये। सुदिन्न ने उन्हे स्पर्श नही किया। भिक्षुओ को भिक्षा निमित्त दे दिया।

पूर्वाह्ण समय सुदिन्न स्वय उठा। भिक्षा पात्र उठाया। चीवर लिया। कलन्द ग्राम मे पिण्डचार करते हुए अपने पिता के निवास-स्थान पर आया।

घर पर उसने देखा। दासी बासी दाल घूरकर फेकना चाहती थी। आयुष्मान् सुदिन्न ने उस ज्ञाति दासी से निवेदन किया

'भगिनी! यदि उसे फेकना चाहती हो, तो मेरे पात्र मे डाल दो।'

दासी ने भिक्षु को देखा। सहसा उसे पहचान न सकी। सुदिन्न को घर त्याग किये आठ वर्ष हो गये थे। आठ वर्षो मे रूप एव आकार मे प्रकृति अन्तर पैदा कर देती है। दासी भी उसे पहचान न सकी। किन्तु वाणी सुनकर अचानक सहमी। कुछ स्मरण करने लगी। सुदिन्न ने पात्र आगे बढा दिया। दासी ने दाल पात्र मे छोडते समय सुदिन्न का हाथ-पैर और स्वर पहचाना। वह कुछ बोली नही। भिक्षा देकर भीतर दौडी गयी। सुदिन्न की माँ से बोली

'अम्मा! अम्मा! मैने आर्यपुत्र सुदिन्न को देखा है।'

---

(४) महावन कई है। वैशाली, कपिलवस्तु तथा उरुवेल मे महावनो का उल्लेख है। काशी मे भी महावन एक ग्राम है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है। अपनी बाल्यावस्था मे जमीन्दारी जाना था। मैने देखा कि प्रत्येक ग्राम के साथ एक वन होता था। इस तरफ पलास के वन ज्यादा होते थे। उनमे अन्य वृक्ष भी होते थे। पलास का पत्ता पत्तल, दोना तथा अन्य कामो मे आता था। इसी प्रकार ग्राम के बाहर आम का वन अथवा बारी होती थी। पलास वन अब समाप्त हो गये है। प्रत्येक ग्रामो मे वन तथा गोचर रखने की प्रथा थी वह भी समाप्त हो गयी है। सब काटकर खेत बना लिये गये है। आम के बगीचे अभी शेष है। महावन इसी प्रकार बडा वन होता था। यह मीलो तक फैला होता था। कपिलवस्तु का महा-वन हिमालय के समानान्तर वैशाली तक फैला था। वैशाली के महावन मे कूटागार शाला थी। कूट का अर्थ शिखर होता है। शिखर युक्त स्तम्भो पर बने भवन को कूटागार कहते थे।

'कहाँ?'

'यही, अभी—इसी द्वार पर।'

'यदि सत्य कहती है, तो मै तुझे दासी-वृत्ति से मुक्त करूँगी।'

माता पुत्र को देखने के लिए आतुर हो गयी।

सुदिन्न ने भिक्षा ली। दीवाल की छाया मे बैठ गया। भिक्षा ग्रहण करने लगा। उसका पिता काम समाप्त कर घर लौट रहा था। मकान की छाया मे एक भिक्षु को भिक्षा ग्रहण करते देखा। उसे आश्चर्य हुआ। सुदिन्न के पास पहुँचा। पिता ने उसे पहचान लिया। सप्रेम बोला ·

'सुदिन्न! दाल खा रहे हो?'

'हाँ भन्ते!'

'क्या अपने गृह नही चलेगे?'

'गया था।'

'अरे—?'

'वही से बासी कुल्माष मिला है।'

पिता व्यथित हो गया। सुदिन्न का हाथ पकड लिया। सस्नेह बोला ·

'तात! अपने घर घर चलो।'

सुदिन्न पिता के साथ घर की ओर चला। घर पहुँचा। सुदिन्न आसन पर बैठ गया। पिता ने सस्नेह कहा :

'भोजन करो।'

'गृहपति मैने भिक्षा पा ली है।'

किन्तु—।'

गृहपति! हम एकाहारी है। बारम्बार नही खाते।'

'अच्छा सुदिन्न कल यहाँ भोजन करना।'

सुदिन्न ने मौन सम्मति दी। उठकर चला गया।

× × ×

माता प्रसन्न थी। प्रफुल्लित थी। उसने घर की भूमि हरित गोबर

से लिपवायी। उसने दो पुंज लगवाया। एक हिरण्य का था। दूसरा सुवर्ण का था। वे पुंज इतने बड़े थे कि एकतरफ खड़ा व्यक्ति दूसरी तरफ खडे व्यक्ति को नही देख सकता था। उन पुजो को तृण चटाई से आच्छादित करा दिया। मध्य मे उसने अपने पुत्र सुदिन्न के लिए आसन लगा दिया। वस्त्र स्थान घेर दिया गया।

माता ने सुदिन्न की स्त्री से कहा : 'वधू ! सुदिन्न जिन अलकारो मे तुझे देखकर प्रसन्न होता था। उन्ही अलकारो से आज अलंकृत हो।'

वह लज्जित हो गयी। आठ वर्ष पश्चात् भिक्षु पति को देखा था। अपने ही घर के स्वामी का अतिथि रूप मे पुन दर्शन करेगी। उसका मन अन्यमनस्क हो उठा।

× × ×

पूर्वाह्ण काल मे सुदिन्न ने पात्र उठाया। चीवर लिया। भिक्षा निमित्त घर की तरफ चला। घर पहुँचा। विछे आसन पर बैठ गया। तत्पश्चात् उसका पिता वहाँ आया। उसने तृण चटाई से ढँके हिरण्य और सुवर्ण पुजो को खोल दिया। वे चमकने लगे। गृहपति ने कहा :

'तात ! यह तुम्हारी माता का स्त्री धन है। तुम्हारे पिता तथा पितामह का धन इसके अतिरिक्त है।'

सुदिन्न ने अनिच्छापूर्वक स्वर्ण पुजो को देखा। गृहपति ने पुन कहा

'गृहस्थ धर्म मे भोग मिलता है। साथ-ही-साथ पुण्य भी मिलता है।'

सुदिन्न दूसरी ओर देखने लगा। गृहपति ने कहा · 'सुदिन्न ! गृहस्थ धर्म मे पुन प्रवेश करना उचित होगा। उसमे तुम्हे भोग-योग की प्राप्ति होगी। पुण्य की प्राप्ति होगी।'

'तात ! मै उन्हे लेकर क्या करूँगा। मै भोग से विरत हूँ। मै ब्रह्मचर्य मे चरण करता हूँ।'

'पुत्र ! यह अपार धनराशि तुम्हारे लिए है।'

'नही गृहपति ! मेरे लिए व्यर्थ है।'

'सुदिन्न ! जीवन का यही सुख है। इनसे विरत होना ठीक नही है।'

'तात ! मैने सबका त्याग किया है। प्रव्रजित हूँ।'

'सुदिन्न— !'

'गृहपति ! आप अप्रसन्न न होगे। मै कुछ कहूँ ?'

'अवश्य पुत्र ! अवश्य कहो।'

'गृहपति ! इस सुवर्ण राशि को बोरो मे भरकर गगा की धारा मे छोड दीजिये।'

'क्या कहते हो— ?'

'हाँ, गृहपति ! इसकी रक्षा के भय से आपको रोमाच होता है। जड़ता होती है। उससे आपको छुट्टी मिल जायगी।'

गृहपति दु खी हुआ। उसे पुत्र से इस प्रकार के उत्तर की आशा नही थी। उसने सोचा था। सुवर्ण के मोह मे, भोग के मोह मे, पुत्र भिक्षु धर्म त्याग देगा।

पिता की योजना असफल हो गयी। उसने अपनी स्त्री की योजना का प्रभाव देखना चाहा। उसने दासी से कहा ·

'वहू कहाँ है ?'

'आती है भणे।'

बहू सुअलकृत तैयार वैठी थी। उसने अपने भिखारी पति को देखा। सुदिन्न की आँखो ने उसे पत्नी रूप मे नही देखा। गृहपति ने बहू के अत्यन्त समीप आने पर कहा

'बहू ! मैने समझाया। नही मानता। तू ही कुछ समझा।'

पत्नी अपने किसी दिन के पति के चरणो पर गिर पडी। सुदिन्न के चरण आँसुओ से तरल हो गये। भरे कण्ठ से बोली :

'आर्यपुत्र ! वे अप्सराएँ कैसी है जिनके लिए आपने ब्रह्मचर्य धारण किया है।'

'बहन !'—सम्बोधन सुनते ही गृहपति दो कदम पीछे हट गया। माता हतप्रभ हो गयी। पत्नी को काठ मार गया।

सुदिन्न बोला—'मैने अप्सराओ के लिए ब्रह्मचर्य नही धारण किया है।'

'बहन' सम्बोधन सुनते ही पत्नी मूर्छित हो गयी। उसकी दुनिया जैसे सूनी हो गयी। प्रकाश अचानक अन्धकार मे बदल गया।

मूर्छित पत्नी की ओर एक बार सुदिन्न ने देखा। उसकी शान्त मुद्रा में परिवर्तन नही हुआ। उसने अपने सम्मुख पडी किसी दिन की प्रिय पत्नी को देखकर, पुन· गृहपति की ओर देखा। उसने दीन स्वर मे कहा

गृहपति ! यदि भिक्षा देना हो तो दीजिए।'

गृहपति मूक हो गया। उसकी समझ मे नही आ रहा था। सुदिन्न ने उसे तुष्णीम् देखकर, पुन कहा .

'गृहपति ! निरर्थक कष्ट देने से क्या लाभ ?'

गृहपति कष्ट की बात सुनकर जैसे चैतन्य हो गया। उसका हृदय भर आया। उसने भोजन लाने का सकेत किया।

× × ×

भिक्षा प्राप्ति के पश्चात् माता सुदिन्न को पुत्र भाव से देखती हुई बोली —

'तात ! तात !! सुदिन्न ! सुदिन्न !! गृहस्थ धर्म ग्रहण करने पर भी मनुष्य भोग कर सकता है। पुण्य करो। तुम्हे कोई कुछ करने और न करने से कौन रोकता है ?'

'मॉ !' सुदिन्न ने माता से निवेदन किया, 'मै गृहस्थ जीवन नही चाहता। मै उसमे नही पार पा सकता। मै ब्रह्मचर्य मे रत हूँ।'

'नही सुदिन्न ! तुम्हे यहॉ रहना होगा।'

'नही मॉ, मैने उसे त्याग दिया है। जिस ब्रह्मचर्य को ग्रहण किया है। उसे कैसे छोड़ सकता हूँ।'

'सुदिन्न ! यह जीवन गृहस्थ सुख के लिए है। भोग के लिए है। पुण्य के लिए है।'

'मॉ ! मैने दोनो को देखा है। दोनो का सुख लिया है। ब्रह्मचर्य का सुख मुझे प्रिय है।'

'सुदिन्न !' माता ने कहा, 'तुम मेरे पुत्र हो। तुम मुझे अपना पुत्र दो। नही तो हमारी यह अपार शक्ति लिच्छवी उठा ले जायेगा।'

माँ ने वशगत परम्परा तथा शत्रुता का लक्ष्य कर प्रहार किया।

लिच्छवी समस्त सम्पत्ति ले लेगे। वह कैसे सहन करेगा। उसका

सुप्त राग जाग उठा। उसका मन चिल्ला उठा—नही यह नही होगा। वह बोला

'माँ ! मै सम्भवत: यह कर सकूँगा।'

माता प्रसन्न हो गयी। पत्नी प्रफुल्लित हुई। माँ ने पूछा .

'इस समय तुम कहाँ विहार करते हो।'

'महावन मे।'

सुदिन्न भारी मन से उठा। आसन त्यागा। प्रस्थान किया।

× × ×

वहू ऋतुमती हुई। उसने अपनी सास से कहा ·

'अम्मा, काल आ गया है।'

'अच्छा। तू उन अलकारो को धारण कर जो सुदिन्न को प्रिय थे।'

'अच्छा ! अम्मा।'

वहू सुअलकृत होने चली गयी। उसने अपनी वेशभूषा अत्यन्त आकर्पक वनायी। रुचिकर शृङ्गार किया। रति तुल्य लगने लगी।

माता ने उसे साथ लिया। महावन मे गयी। आयुष्मान् सुदिन्न आसन पर वैठे थे। वहू सहित सुदिन्न के पास पहुँची। माँ वोली .

'तात ! तुम हमे जीवन दो। इस वश का नाश न हो। हमारी सम्पत्ति सन्तान हीन होने के कारण लिच्छवी न ले सके।'

'अच्छा !' सुदिन्न ने अन्यमनस्क होते हुए कहा।

माता ने वहू को महावन मे छोड दिया। घर लौट आयी। सुदिन्न उठा और वाला

'आ सुदिन्ने !'

पत्नी लज्जित थी। सहज लज्जा के कारण पति की ओर अग्रसर नही हो सकी। सुदिन्न आसन से उठा। पत्नी की वॉह पकडा। महावन मे चला गया। वह कामातिरेक मे भूल गया प्रव्रज्या के समय की गयी प्रतिज्ञा।

सुदिन्न ने तीन वार सहवास किया। स्त्री गर्भिणी हुई।

समय पर एक पुत्र हुआ। सुदिन्न के मित्रो ने उसका नाम बीजक

रखा। पत्नी का नाम बीजक माता पडा। सुदिन्न का नाम बीजक पिता हुआ।

× × ×

बात फैल गयी। भिक्षुओ ने सुदिन्न को अनेक प्रकार से धिक्कारा। उसकी भर्त्सना की ·

'भिक्षुओ! इस प्रकार का मैथुन कर्म चाहे जहाँ किया जाय, जिस अवस्था मे किया जाय। वह व्यक्ति पाराजिक होता है। भिक्षुओ के सहवास के अयोग्य है।

आधार ग्रन्थ

बुद्धचर्या, १४५–१४७, ३१२–३१६, ५४९,
पाराजिका १
मि० प्र० ४ ३ २३
Vin iii 11, 21
Sp i 276

कुण्डल केशा

उसका नाम भद्रा था। राजगृह के एक श्रेष्ठी की कन्या थी। उसका लालन-पालन सम्पन्न कुलीन परिवार की कन्या तुल्य हुआ था। वह सेविकाओ से परिवृत रहती थी। उसे किसी वस्तु का अभाव नही था। वय प्राप्त किया। युवती हुई। सुन्दर थी। यौवन ने सौन्दर्य मे सुगन्धि सचारित किया।

राजपुरोहित का एक पुत्र था। उसका नाम सत्थुक था। उसने चोरी की थी। राजा ने वध का दण्ड दिया। वधिक उसे अन्य रक्षको के साथ वध निमित्त ले जा रहे थे।

भद्रा की दृष्टि युवक सत्थुक पर पडी। वह युवक था। सुन्दर था। हृष्ट था। पुष्ट था। युवक के प्रति उसके हृदय मे अनुराग बीज अकुरित हुआ।

उसने अन्न जल त्याग दिया। प्रतिज्ञा की—या तो वह उस अपराधी के साथ विवाह करेगी अथवा प्राण त्याग अवश्यभावी था। भद्रा का पिता राजकोषाध्यक्ष था। वह चिन्तित हुआ। उसने एक उपाय निकाला।

श्रेष्ठी ने वधिक तथा प्रहरियो को अत्यधिक घूस दिया। सत्थुक छूट गया। मुक्त बन्दी को सुगन्धित जल से स्नान कराया गया। उसे अलकृत किया गया। श्रेष्ठी ने सुअलकृता कन्या का विवाह सत्थुक से कर दिया।

सत्थुक का मन अपनी स्त्री के अमूल्य अलंकारो को देखकर डोल गया। उसकी पाप बुद्धि जागृत हो गयी। अलकारो को हथियाने का उपाय सोचने लगा।

एक दिन सत्थुक ने भद्रा से सस्नेह कहा—'प्रिये! मै जिस समय वध स्थान पर्वत शिखर पर ले जाया जा रहा था तो उस स्थान के देवता से मनौती माना था। यदि मेरी प्राण रक्षा हो जायगी तो मै पूजा करने यहाँ आऊँगा।'

'देवता प्रसन्न हो गये।' भद्रा ने अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा।

'हाँ भद्रे ! मेरा प्राण बच गया ?'

'तो क्या करूँ।'

'चलो वहाँ पूजा कर आऊँ।'

'अवश्य।'

'तुम खूब सुअलकृत हो। बहुमूल्य से मूल्यवान आभूपण धारण कर लो।'

'अच्छा।'

भद्रा प्रसन्न-प्रसन्न शृगार करने चली गयी।

× × ×

पति पत्नी सेवको सहित रथ से चले। पूजा की सामग्री साथ थी। भद्रा प्रसन्न थी। सत्थुक अपनी मनोभावना जैसे छिपाता गम्भीर था।

पर्वत मूल मे रथ पहुँचा। सत्थुक ने सेविकाओ से कहा

'तुम लोग यही रुक जाओ। हम पूजा कर आते है।'

'साथ क्यो न चले ?'

'ओह ! देवता कही असन्तुष्ट न हो जाय। हमारा तुम्हारा ही एकान्त पूजा करना ठीक होगा।'

भद्रा हिचकी। सेविकाओ ने भद्रा की ओर देखा। सत्थुक पूजन सामग्री लेकर आगे वढ गया। भद्रा कुछ उपाय न देखकर बोली।

'अच्छा, तुम यही ठहरो।'

भद्रा दौडकर पति के साथ हो चली। दोनो साथ पर्वतारोहण करने लगे।

× × ×

मार्ग मे सत्थुक बडा गम्भीर था। एक भी स्नेह किंवा प्रेम की बात नही की। भद्रा को सन्देह हुआ। उसने कुछ अशुभ की कल्पना की।

वे शिखर पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचे जहाँ से चोरो को प्राणदण्ड देने के लिये शिखर से नीचे गिराया जाता था। वे गिरते और मर जाते

थे। भद्रा की शका बढ गयी। उसने अद्भुत आत्म-सयम का परिचय दिया।

सत्थुक ने शिखर से नीचे की ओर देखते हुए कहा·

'भद्रा! तुम अपना सब आभूषण उतार दे।'

'क्यो?'

'मै कहता हूँ। उतार कर एक गठरी बाँध दो। केवल एक साडी पहने रहो।'

'अये—!' भद्रा कम्पित हुई।

'मै कहता हूँ। सुनो— ?'

'मैने क्या अपराध किया ?'

'मूर्खे! तुम क्या समझती थी। मै यह यहाँ पूजा करने के लिये आया हूँ।'

'तो— ?'

'तुम्हारे अलकारो को लेने के लिये आया हूँ।' सत्थुक की वाणी कर्कश थी।

'स्वामी! किन्तु! मै किसकी हूँ ?' यह आभूषण किसके है ?'

'ओह—!' सत्थुक का अपराधी मन प्रमत्त हो रहा था।

'दोनो ही तो आपके है।'

'मै उन भेदो को नही जानता भद्रे! तुम आभूपणो को उतारो।'

भद्रा व्युत्पन्नमति थी। उसे एक उपाय सूझा। वह मुसकुरायी। सत्थुक उसका इस अवस्था मे मुसकुराना देखकर किचित् चकित हुआ। भद्रा ने प्रेम प्रदर्शित करते हुए कहा

'स्वामी! एक कार्य करोगे।'

'बोलो—।'

'मुझे एक बार आलिगन कर लेने दो।'

'फिर— ?'

'सब आपका है।'

'वाह!' सत्थुक क्रूर हास कर उठा। उसने कहा 'ठीक है।'

'हाँ ! आइये ।'

बन्दी जहाँ से ढकेले जाते थे। उस स्थान तक भद्रा खिसक आयी। अलकारो का लोभी आतुर सत्थुक भद्रा के पास आया। भद्रा उसका आलिगन करने बढी। ज्योही वह आलिगन मे आया भद्रा ने उसे धक्का दिया। सत्थुक लडखडाया। भयकर आर्तनाद किया। दूसरे ही क्षण वह शिखर से गिर पडा। उसके प्राण पखेरू उड गये।

× × ×

उसे मृत देखकर भद्रा दु खी हुई। वह उससे प्रेम करती थी। किन्तु वह प्रेम शरीर का आकर्षण था। राग पर आश्रित था। मिथ्या था। उस मृत काया को देखकर भद्रा को विराग उत्पन्न हुआ।

उस शिखर से उसने राजगृह का विहगम दृश्य देखा। उनमे उसके जैसे कितने ही प्राणी थे। उसने निश्चय किया। इस घटना के पश्चात् घर लौटकर जाना उचित नही है।

× × ×

प्रश्न था। भद्रा कहाँ आश्रय ले। वह निर्ग्रन्थो के आश्रम मे पहुँची। वहाँ आश्रय पाना चाहा। उपासिका बनना चाही। ससार त्यागी बनना चाही। उससे प्रश्न किया गया।

'कस श्रेणी की उपासिका बनना चाहती हो।'

'आपके सबसे ऊँची श्रेणी क्या है ?'

'क्या तुम्हे स्वीकार है।'

'हाँ।'

'लुचन क्रिया की जायगी।'

'ठीक है।'

भद्रा के केशो का लुचन किया गया। उसके केश उखडे। उसे शारीरिक कष्ट चाहे हुआ हो परन्तु उसने अत्यन्त सयम का परिचय दिया। केश सब उखाड लिये गये परन्तु उसके मुख से किसी ने एक सी की आवाज भी नही सुनी।

उसके केश पुन उगे। उगने पर वे घुँघराले हो गये। घुँघराले केशो

के कारण उसका नाम कुण्डल केशा निर्ग्रन्थो[1] ने रख दिया।

× × ×

आश्रम में उसने शास्त्रो का अध्ययन किया। तर्क तथा न्याय की पण्डिता हुई। उनके समस्त ग्रन्थो किंवा शास्त्रो का अध्ययन किया। उसकी बुद्धि कुशाग्र थी। वह वाद विवाद तथा शास्त्रार्थ करने मे निपुण हो गयी थी। उसे उसके शास्त्र से सन्तोष नही हुआ। एक सीमा तक वे जाते थे। उसके पश्चात् मार्ग अवरुद्ध हो जाता था। वह नगरो मे पण्डितो तथा विद्वानो के पास जाती थी। शास्त्रार्थ करती थी। तर्क करती थी।

× × ×

कुण्डल केशा मगध, राजगृह मे एक जामुन की शाखा लिये घूमती थी। उसका नाम जम्बू पड गया था। वह जामुन की शाखा लिये नगर मे, ग्राम मे, जनपद मे भ्रमण करती थी। उस शाखा को हाथ मे लेकर लोगो से प्रश्न पूछती थीं।

---

(१) निर्गन्थ वौद्ध साहित्य मे निग्गन्थ अर्थात् निग्रन्थ शब्द की सज्ञा जैन लोगो को दी गयी है। वे निर्गन्थ नाथपुत्र के अनुयायी थे। अचेल से वे इस अर्थ मे भिन्न थे कि केवल एक वस्त्र अगो को ढँकने के लिए प्रयोग करते थे। इस सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र उस समय वैशाली तथा नालन्दा मे था। यद्यपि प्रसिद्ध शहर जैसे राजगृह के समान अन्य नगरो मे भी उनकी आवादी थी। तत्कालीन इस सम्प्रदाय के मुख्य व्यक्ति दीर्घ तपस्वी, सच्चक तथा महिलायें सच्चा, लोला, अववादका और पटाचादा थी। इस सम्प्रदाय के उपासक तथा उपासिकाये श्वेत वस्त्र धारण करते थे। उन्हे निर्गन्थ इसलिये कहा जाता था कि वे हर प्रकार के वन्धनो से मुक्त थे। मत है कि उनका मत उच्छेद तथा सस्सत अर्थात् शाश्वतवाद था। भगवान् के जीवन के पूर्व ही यह सम्प्रदाय प्रचलित था। श्री लका मे इस सम्प्रदाय के लोग अति पूर्व काल से अपना अस्तित्व रखते थे। कुणाल जातक से प्रतीत होता है। वे लोग श्वेताम्बर थे। श्री लका मे अनुराधपुर मे उनका अस्तित्व था। उनके मुख्य व्यक्ति जोतिय, गिरी, कुम्भण्ड थे।

जम्बू भिक्षाटन निमित्त नगर मे प्रवेश करती थी। उस समय शाखा नगर के बाहर गाड देती थी। उसके प्रश्नो का उत्तरदाता ही उसे उखाड सकता था। किन्तु प्रश्नो का कोई उत्तरदाता मिल नही सका। वह सात दिन तक शाखा एक स्थान पर गडी रहने देती थी। जब कोई शास्त्रार्थ करनेवाला नही मिलता था तो शाखा लेकर दूसरी जगह चल देती थी।

एक समय की बात है। भ्रमण करती, श्रावस्ती पहुँची। भिक्षाटन का काल आया। नगर के बाहर द्वार देश पर शाखा गाड दिया। वहाँ आदमी तथा बालक थे। सहेज दिया उसके प्रश्नो के उत्तर देने की जो प्रतिज्ञा करेगा वही शाखा उखाड सकता था।

जम्बू ने नगर प्रवेश भिक्षाटन निमित्त किया।

× × ×

अकस्मात् सारिपुत्र जहाँ शाखा गडी थी पहुँचे। बालक शाखा के आसपास थे। बालको से सारिपुत्र ने पूछा

'भो! यह शाखा कैसी गडी है?'

'जम्बू ने गाडा है।'

'क्यो गाडा है?'

'सहेजा है, इसे कोई न उखाडे।'

'क्यो ?'

'उसके प्रश्नो का उत्तर जो दे सके वही उखाडने का साहस कर सकता है।'

'अच्छा !'

'हाँ, वह नगर मे भिक्षाटन निमित्त गयी है।'

'यदि मै उखाड दूँ ?'

'आपको प्रश्नो का उत्तर देना होगा।'

'अच्छा, तुम लोग उखाड दो। फेक दो। मै उसकी बातो का उत्तर दूँगा।'

बालको ने उत्साह ओर हल्ला के साथ शाखा उखाड दिया। बालको ने पूछा :

'हम जम्बू से क्या कहेगे ? वह हमसे पूछेगी।'

'कह देना। सारिपुत्र ने शाखा उखडवा दिया है।'

'आप कहाँ विहार करते है ?'

'जेत वन मे।'

'उसके प्रश्नो का उत्तर देगे ?'

'हाँ' दूँगा।'

सारिपुत्र जामुन की शाखा, हाथ मे छडी की तरह, हिलाते-डुलाते, टेकते जेतवन की ओर चल पडे। बालक जम्बू के आसरे मे वही बैठ रहे।

× × ×

'अरे! शाखा कौन उखाड़ ले गया ?' जम्बू ने बालको से पूछा।

'सारिपुत्र !'

'कहाँ रहते है ?'

'जेतवन मे।'

'क्या नाम कहा ?'

'सारिपुत्र !'

'प्रश्नो का उत्तर देगे ?'

'हाँ !'

जम्बू ने अविलम्ब जेतवन की ओर प्रस्थान किया। बालक घर लौटे।

× × ×

कुण्डलकेशी अर्थात् जम्बू ने शास्त्रार्थ करने का निश्चय कर लिया। वह श्रावस्ती के राजपथो और गलियो मे घोपणा करने लगी—'क्या आप लोग शाक्यो और मेरे शास्त्रार्थ को सुनना चाहते है ? देखना चाहते है।'

लोगो का कौतूहल वढा। भीड एकत्रित होने लगी। उसने कहा

'आओ! चलो! जेतवन चलो! वहाँ हमारा और शाक्यो का शास्त्रार्थ सुनो और देखो।'

कुण्डलकेशा के साथ वहुत वडी भीड एकत्रित हो गयी। वह भीड के साथ जेतवन पहुँची।

सारिपुत्र एक वृक्ष के मूल मे बैठे थे। कुण्डल केशा वहाँ पहुँची। कुशल-मगल के पश्चात् पूछा ·

'आपने मेरी शाखा उखाडी है ?'

'हाँ, भगिनी।' सारिपुत्र ने मुस्कराकर उत्तर दिया।

'मेरे प्रश्नो का उत्तर देगे ?'

'अवश्य।' सारिपुत्र ने विश्वास के साथ कहा।

जम्बू ने अनेक प्रश्न किये। सारिपुत्र ने सबका यथोचित उत्तर दे दिया। सारिपुत्र ने अन्त मे पूछा .

'भगिनी। एक वह क्या है ?'

जम्बू उत्तर देने मे असमर्थ रही। कुछ विचार करने के पश्चात् उसने पूछा ·

'आपही अपने प्रश्न का कृपया उत्तर दीजिए।'

'भगिनी। पहले प्रव्रज्या लेना होगा।'

'क्यो ?'

'बिना प्रव्रजित हुए मै इस प्रश्न का उत्तर नही दे सकता।'

'प्रव्रज्या कैसे मिलेगी ?'

'मै प्रबन्ध करता हूँ।'

सारिपुत्र ने जम्बू को भिक्षुणियो के पास प्रव्रज्या निमित्त भेज दिया।

× × ×

प्रव्रज्या लेने के पश्चात् जम्बू का नाम कुण्डल केशा पडा। वह कुशाग्र वुद्धि थी। उद्योगी थी। उसने ध्यान भावना किया। कुछ समय पश्चात् प्रति सम्पदाओ के साथ उसने अर्हत्त्व पद प्राप्त कर लिया। उसने अग, मगध, काशी और कोसल मे पचास वर्ष का भिक्षुणी जीवन भिक्षा मागकर व्यतीत किया था।

एक समय धर्म सभा मे कुण्डल केशी चर्चा का विषय वन गयी। भगवान् ने कहा .

'भिक्षुओ। अनर्थ पदो युक्त सहस्रो गाथाओ की अपेक्षा धर्म का एक पद श्रेष्ठ है। जिसे श्रवण कर मनुष्य उपशान्त होता है।'

कुण्डल केशा धर्म पथपर उत्तरोत्तर आरूढ होती चली चयी। उसने एक दिन अनायास उदान कहा

'मै केशरहित पको से सनी एक वस्त्र पहने भ्रमण करती थी। त्याज्य कर्मो को करती थी। करणीय को नही करती थी। एक दिन था। मैने विश्राम किया। गृद्धकूट पर्वत शिखर पर गयी। वहाँ मैने देखा। भिक्षु सघ द्वारा पूजित भगवान् बुद्ध की विमल मूर्ति को। अजलिबद्ध मै अपने जानुओ पर वैठी भगवान् की पूजा की।

'भगवान् ने कहा—'ओ! भद्रा आओ। वही मेरी उपसम्पदा हुई। उस समय से अग, मगध, वज्जी, काशी, कोसल के प्रदेशो मे निरन्तर पचास वर्षो से चारिका कर रही हूँ। किसी को मुझे कुछ देना नही है। मैने देश का अन्न खाया है।

ज्ञानी उपासक अत्यन्त पुण्य के भागी हुए है। जिन्होने मुझे चीवर दिया है। मै भद्रा! अब सब मलिन गन्धो से मुक्त हो गयी हूँ।'

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ ने पचासवाँ तथा श्राविकाओ मे नवाँ स्थान प्राप्त मगध राजगृह श्रेष्ठी कुलोत्पन्न भद्रा कुण्डल केशा क्षिप्रा भिज्ञाओ मे अग्र हुई थी।

आधार ग्रन्थ

धम्मपद ८ ३
अगुत्तर निकाय १ १४
थेरो गाथा ४६ उदान १०७–१११
A ı 25
AA ı 200
Thıg A : 99, \ss 107–111
Ap ıı 560
DhA ııı 217

कंखा रेवत[1]

श्रावस्ती के एक श्रेष्ठी कुल मे कंखा रेवत का जन्म हुआ था। मध्याह्नोत्तर भिक्षाचार के पश्चात् भगवान् का उपदेश सुनने वालो की अन्तिम पक्ति मे जाकर बैठ गया।

भगवान् का उपदेश सुना। उसके विमल चक्षु खुल गये। उसने प्रव्रज्या ली। उपसम्पदा पायी। अर्हत्त्व प्राप्त करने के पूर्व उसका मन सर्वदा इस तर्क-वितर्क मे लगा रहता था। क्या करने की अनुमति है अथवा क्या करने की नही है। उसके इस 'क्या' के कारण उसके नाम के साथ कखा शब्द जोडकर उसका नाम कखा रेवत पड गया।

उसने ध्यान द्वारा अर्हत्त्व प्राप्त किया था। एक मत है। कखा रेवत भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् तक जीवित था।

एक समय उल्लसित होकर उसने उदान कहा ·

'घोर तिमिराच्छन्न रात्रि मे प्रज्वलित अग्नि शिखा तुल्य तथागत की प्रज्ञा दिखाई देती है। वे आलोक देते है। ज्ञान चक्षु देते है। समीपवर्ती की शका समाधान करते है।'

× × ×

---

(१) रेवत अपदान मे उल्लेख है कि कंखा रेवत ने कपिलवस्तु मे भगवान् का उपदेश सुना था।

कंखा रेवत के कखा नाम पडने की एक और गाथा है। कखा रेवत अत्यन्त सकोची थे। विनय पिटक द्वारा विहित वस्तुओ किंवा पदार्थों को लेना चाहिए या नही इसमे भी सकोच करते थे। लेने के पहले साथी भिक्षुओ से पूछते थे। अमुक वस्तु लेना चाहिये या नही, इस संकोच मनोवृत्ति तथा शका के-क्यो के-कारण उनका नाम कखा रेवत पड गया था।

और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावको मे पन्द्रहवाँ स्थान प्राप्त, कोसल श्रावस्ती निवासी, महा भोग कुलोत्पन्न, कखा रेवत ध्यानियो मे अग्र हुए थे।

•

आधार ग्रन्थ :

थेर गाथा . ३
उदान ३
अपदान २ ४९१
Apadan II 491
A I 24
UD V 7
AA I : 129
UDA 314

शोमित[1]

श्रावस्ती मे शोमित का जन्म हुआ था। वह ब्राह्मण कुल के थे। भगवान् का उपदेश श्रावस्ती मे सुना। उसे अपने पूर्व जन्म का ज्ञान हो गया था। पूर्व जन्मो का स्मरण करने मे निपुण थे। उनके जैसा पूर्व जन्मो का वृत्तान्त कम लोगों को स्मरण था।

शोमित ने एक दिन उदान कहा

'मै स्मृतिमान हूँ। प्रज्ञावान् हूँ। उद्योगी हूँ। भिक्षु हूँ। मैने चार स्मृति स्थान का अभ्यास किया है। मैने सात बोध्यंग का अभ्यास किया है। मैने अष्टागिक मार्ग का अभ्यास किया है। मैने पाच सौ कल्पो का एक ही रात्रि मे स्मरण किया है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे चौतीसवाँ स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न शोमित पूर्व जन्म स्मरणकर्ताओ मे अग्र हुए थे।'

---

(१) शोमित शोमित नाम के कई भिक्षुओ का वर्णन बुद्ध साहित्य मे मिलता है। एक शोमित जम्बूद्वीप के भिक्षु थे। एक खुज्ज शोमित थे। एक और शोमित अर्हत हुए हैं। हसावती मे शोमित एक आराम था।

शोमित को भगवान् के केश का पृष्ठ भाग कहा गया है।

आधार ग्रन्थ :

थेर गाथा १४३

उदान १६५-१६६

अंगुत्तर निकाय १ १४

A · 1 26

Thag vss : 165, 166

AA : 1 : 172

ThagA : 1 · 288

Ap 11 421

Vin : 111 109

अम्बष्ट[1]

इच्छा नगल[2] कोसल मे था। ब्राह्मणों का ग्राम था। इच्छा नंगल वनखण्ड मे भगवान् पाँच सौ भिक्षुओ के साथ विहार कर रहे थे।

पौष्करसादि ब्राह्मण कोसलराज प्रसेनजित द्वारा दत्त, राज भोग्य राज दायज और ब्रह्मदेय का स्वामित्व करता था। वह उकट्ठा[3] मे निवास करते थे।

---

(१) अम्बष्ट एक गोत्र भी है। त्रिपिटक साहित्य से नही मालूम होता कि अम्बष्ट ने प्रव्रज्या ली थी। बुद्ध घोष का मत है कि भगवान् जानते थे कि अम्बष्ट बुद्ध शासन मे प्रविष्ट नही होगा। अम्बष्ट सूत्र कहने का उद्देश्य मालूम होता है कि पौष्करसादि से वह कहा जाय।

उम्मग जातक के विदेह राज के पार्षद काविन्द से इस अम्वष्ट की समानता की जाती है।

एक दूसरे अम्बष्ट राजा थे। शूर अम्वष्ट इस अम्बष्ट से भिन्न है।

(२) इच्छा नगल कोसल देश मे एक ब्राह्मण ग्राम था। वहाँ वनखण्ड मे रहते हुए भगवान् ने अम्बष्ट सुत्त का उपदेश दिया था। मालूम होता है कि ग्राम पौष्करसादि के शासन मे उकट्ठा राज्य मे था। वह महाशाल ब्राह्मण का निवास स्थान था। सुत्त निपात मे इच्छा नगल इसे कहा गया है। वहाँ के चेकी, तारुक्ष, पौष्करसादि, जानुस्सोणी तेदेय्य आदि प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। वशिष्ठ तथा भारद्वाज माणवक यही के थे। बुद्ध घोष का मत है कि इच्छा नगल मे कोसल के ब्राह्मण निश्चित समय पर एकत्रित होकर वेद पाठ करते थे। वेद भाष्य पर चर्चा चलाते थे।

भगवान् एक समय तीन मास तक यहाँ के वन मे निवास किये थे। केवल एक भिक्षु उन्हे भोजन लाता था।

(३) उकट्ठा . कोसलराज मे हिमालय के समीप एक नगर था। राजा कोसल ने ब्रह्मदेय्य कह कर पोक्करसाती को दिया था। यह खूब घना आबाद था। यहाँ खूब घास युक्त भूमि, वन तथा अन्न उत्पन्न होता था। इच्छा नगल वन इसके समीप था। वहाँ से एक सडक सेतव्य तथा वैशाली को जाती थी।

उसे मालूम हुआ। भगवान् इच्छा नगल में विहार कर रहे थे। उसने अपने शिष्य अम्बष्ट वंशीय अम्बष्ट माणवक से कहा :

'तात ! अम्बष्ट !! जिसका ज्ञान मुझे है। उसका तुम्हे है। जिसका ज्ञान तुझे है। उसका मुझे है। गौतम का यहाँ आगमन हुआ है। उनसे जाकर मिलो। ज्ञान प्राप्त करना अच्छा होगा।'

'भो ! मै कैसे उन्हे पहचान सकूँगा ?' अम्बष्ट ने जिज्ञासा की।

'तात ! शास्त्रो मे उल्लिखित बत्तीस महापुरुषो के लक्षण है। तुम जानते हो। मै मन्त्रों का ज्ञाता हूँ। तुम मन्त्रो के गृहीता हो।'

'हाँ भो !' अम्बष्ट ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की।'

अम्बष्ट ने गुरु का अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। घोडी योजित रथ पर आरूढ हुआ। अनेक माणवको के साथ इच्छा नगल की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

अम्बष्ट रथ से उतरा। आराम में गया। उसने भिक्षुओ को जंघा विहार करते देखा। उनसे पूछा .

'भो ! गौतम कहाँ विहार कर रहे है। मै उनके दर्शन के लिए आया हूँ।'

भिक्षुओ ने कुलीन, प्रसिद्ध अम्बष्ट माणवक को पहचान लिया। उन लोगो ने उत्तर दिया

'अम्बष्ट ! भगवान् का द्वार बन्द है। अलिन्द मे जाओ। वहाँ खाँसो। जजीर खटखटाओ। ताले को हिलाओ। भगवान् द्वार खोल देगे।'

अम्बष्ट अलिन्द मे पहुँचा। द्वार पर खडा हो गया। धीरे-धीरे खासा। द्वार खटखटाया। भगवान् ने द्वार खोल दिया। अम्बष्ट साथी माणवक सहित विहार मे प्रवेश किया। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना किया। एक ओर बैठ गया।

अम्बष्ट भगवान् के बैठने के समय, उठने के समय, टहलने के समय, कुछ न कुछ बात करता रहा। उसे वार्तालाप के समय का ज्ञान नही था। प्रसग का ज्ञान नही था। अशिष्ट था। भगवान् ने पूछा '

'अम्बष्ट ! क्या वृद्ध आचार्य प्राचार्य ब्राह्मणो के साथ, कथा सलाप, इसी प्रकार किया जाता है !'

'गौतम ! वैठे के साथ बैठ कर, सोये के साथ सोकर, खडे के साथ खडे होकर, चलते के साथ चलते हुए, वार्तालाप करना चाहिए।'

'अम्बष्ट ! आप यहाँ अर्थी स्वरूप आये है। जिस प्रयोजन निमित्त आपका आगमन हुआ है। उसी की चिन्ता करना उचित है। आपने गुरुकुल मे निवास नही किया है। बिना गुरुकुल मे निवास किये, गुरुकुल वास का, आपको अभिमान हो गया है।'

भगवान् की बात अम्बष्ट को सुखकर नही लगी। वह मन ही मन कुढ गया। निन्दा की। ताना दिया। विचार किया। यह श्रमण गौतम पापिक होगा। अम्बष्ट कठोर स्वर मे शाक्यो पर रम्भवाद किया। प्रथम आक्षेप उसने किया

'गौतम ! शाक्य जाति चण्ड है। लघुक है। रभस है। इब्भ समान होने के कारण शाक्य, ब्राह्मणो का सत्कार नही करते। उनका गौरव नही करते। उनकी पूजा नही करते। अपचय नही करते।'

'अम्बष्ट ! शाक्यो ने आप का क्या अपराध किया है ?' भगवान् ने शान्त स्वर मे पूछा।

'गौतम ! एक समय आचार्य पौष्करसादि के साथ मै कपिलवस्तु गया। शाक्यो के सस्थागार मे गया। वे परस्पर परिहास कर रहे थे। किसी ने मुझे आसन ग्रहण करने के लिए नही कहा।'

'अम्बष्ट —'

भगवान् के वाक्य पूरा करने के पूर्व ही अम्बष्ट ने कहा

'गौतम ! यह कार्य अच्छन्न है।' अम्बष्ट ने शाक्यो पर इभ्य वाद का आक्षेप किया।

'अम्बष्ट ! छोटी-छोटी चिडिया भी अपने घोसलो मे स्वच्छन्द आलाप करती है। कपिलवस्तु शाक्यो का घर है। इस छोटी बात के लिये अमर्ष करना उचित नही है।'

'नही गौतम ! ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र चार वर्ण है। ब्राह्मण श्रेष्ठ है। उनके साथ यह व्यवहार अनुचित है।' अम्वष्ट ने शाक्यो पर तीसरा इभ्यवाद का आक्षेप किया।

'अम्बष्ट ! आपका गोत्र क्या है ?'

'कृष्णायन ! अम्बष्ट ने गर्व से कहा।

'अम्बष्ट ! तुम शाक्यों के दासीपुत्र हो ।'

'हम—?' अम्बष्ट ने बिगडकर कहा ।

'हाँ ।' भगवान् ने सस्मित कहा ।

'गोतम—! यह अपमान—?'

'नही ! सुनो । हम इक्ष्वाकु वंशीय है । इक्ष्वाकु की दिशा नामक दासी थी । उसे कृष्ण पुत्र उत्पन्न हुआ । जन्म लेते ही उस नवजात शिशु ने कहा

'अम्मा ! मुझे धोओ । मुझे स्नान कराओ । इस अशुचि से मुझे मुक्त करो । उस समय पिशाचो को कृष्ण कहा जाता था । जन्म लेते ही वह बात करने लगा । अतएव लोग कह उठे—पिशाच पैदा हुआ । वही कृष्णायनो का पूर्व पुरुष था । वही तुम्हारे पूर्व पुरुष थे । और शाक्य आर्य पुत्र है । बोलो अम्बष्ट तुम्हे अब क्या कहा जाय ?'

अम्बष्ट लज्जित हो गया ।

'गौतम !' उसके साथी माणवको ने कहा, 'आप इसे दासीपुत्र कह कर लज्जित मत कीजिये । यह सुजात है । कुलपुत्र है । बहुश्रुत है । सुवक्ता है । पण्डित है ।'

'अच्छा ! आप लोग ठहरिये । इस विषय मे अम्बष्ट को मुझसे वाद करने दीजिये ।'

'ठीक है । अम्बष्ट सुजात है । हम चुप रहेगे । वह अकेला आपसे वाद करेगा ।'

'अम्बष्ट ! बोलो । कृष्णायन का पूर्व पुरुष कौन था । कबसे कृष्णायन हुए है ।'

अम्बष्ट ने उत्तर नही दिया ।

भगवान् ने पुन पूछा ।

अम्बष्ट ने उत्तर नही दिया ।

'अम्बष्ट !' भगवान् ने कहा । यह मुख बन्द करने का समय नही है । यदि मेरे प्रश्न का उत्तर नही दोगे तो तुम्हारे मूर्धा का सात टुकडो मे विस्फोट हो जायगा ।'

अम्बष्ट भयभीत हो गया । उद्विग्न हो गया । रोमाञ्चित हो गया ।

उसने मन्द स्वर से पूछा ·

'गौतम ! पुन· कहिएगा ?'

'मैने जो कहा है। तुमने सुना है। क्या कृष्णायन दासी पुत्र नही थे ?'

'गौतम ! आपने ठीक कहा है। वही कृष्णायन के पूर्व पुरुष थे।'

अम्बष्ट के साथी उन्नाद कर उठे। कोलाहल करने लगे—'अम्बष्ट दुर्जात है। कुलपुत्र नही है। दासी पुत्र है। अम्बष्ट कुछ मुहूर्त पूर्व पूज्य तुल्य समझनेवालो की दृष्टि मे अपवित्र हो गया। अपूज्य हो गया।'

'माणवक !' भगवान् ने अम्बष्ट के साथी माणवको से कहा—'अम्बष्ट को दासीपुत्र कहकर मत लज्जित कीजिए। कृष्ण महान् ऋषि थे। अनुपम विद्या आचरण सम्पदा को जातिवाद नही कहते। गोत्रवाद नही कहते। मानवाद नही कहते। जो जाति, गोत्र, मान, आवाह-विवाह मे बँधे है, वे अनुपम विद्याचरण सम्पदा से दूर है। इन वादो को त्यागकर अम्बष्ट ! अनुपम विद्याचरण सपदा ली जाती है। अम्बष्ट क्या इस अनुपम विद्या चरण सपदा की चर्चा अपने आचार्य के साथ करते हो ?'

'नही। हम उससे दूर है।'

'क्या तुम आचार्य सहित वनवास निमित्त वन मे प्रवेश करते हो ?'

'नही।'

'चौराहे पर चार द्वार वाला आगार बनाकर चारो दिशा से आनेवाले श्रमण या ब्राह्मणों का सत्कार करने का प्रयास करते हो ?'

'नही।'

'तो अम्बष्ट अपने आचार्य सहित इस विद्या संपदा से तू हीन है।'

भगवान् विहार से निकल आये। चक्रमण स्थान पर खडे हो गये। अम्वष्ट भगवान् के पीछे-पीछे आया। उनमें बत्तीस महापुरुषो के लक्षण खोजने लगा। अम्वष्ट को तीस लक्षण स्पष्ट दिखाई पडे। उसने कहा :

'भन्ते ! हमे आज्ञा दे। हम जायेगे।'

'अम्वष्ट ! तू जिसका काल समझ, कर।'

अम्बष्ट भगवान् का अभिवादन कर प्रस्थान किया।

× × ×

पौष्करसादि[४] ब्राह्मण मण्डली के साथ आराम मे बैठा था। अम्बष्ट के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। अम्बष्ट ने सबको अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। पौष्करसादि ने पूछा

'गौतम को देखा ?'

'हॉ। गौतम को देखा।'

'उनके विषय मे जो गौरव व्याप्त है, क्या वह यथार्थ है ?'

'भो ! यथार्थ है। वे महापुरुषो के लक्षणो से समन्वित है।'

'तुम्हारा कुछ उनसे कथा सलाप हुआ था ?'

'हॉ।'

'वह कथा सलाप कैसा था ?'

अम्बष्ट ने घटना का वर्णन किया। बाते सुनकर पौष्करसादि आचार्य को क्षोभ हुआ। अम्बष्ट ने शील का पालन नही किया। शिष्टता प्रदर्शित नही किया। आचार्य उस पर कुपित हुए। असन्तुष्ट हुए। अम्बष्ट को वहॉ से तत्काल हट जाने के लिये कहा। अम्बष्ट के व्यवहार से दु:ख हुआ।

उसने निश्चय किया। वह अविलम्ब भगवान् के दर्शनार्थ जायेगा। किन्तु उपस्थित ब्राह्मणो ने कहा—'आज विकाल है। कल चला जाय।'

तथापि पौष्करसादि दण्ड दीपिका के साथ भगवान् के पास चला। मशाल से इच्छा नगल वनखण्ड प्रकाशमय हो गया। उसने साथ मे नाना प्रकार के पकवान भगवान् के साथ सम्मोदन कर, एक ओर बैठ गया। उसने भगवान् से निवेदन किया

'क्या हमारा अन्तेवासी अम्बष्ट माणवक यहॉ आया था ?'

'हॉ।'

'क्या कुछ सलाप हुआ था ?'

'हॉ।'

---

(४) पोक्खर साती यह महाशाल महाधनी ब्राह्मण था। वह विद्वान् था। उकत्था मे निवास करता था। भगवान् जब इच्छा नंगल मे थे तो उसने उन्हे आमन्त्रित किया। भगवान् का उपदेश सुनकर स्वयं श्रोतापन्न हो गया था।

'किस प्रकार हुआ था ?'

भगवान् ने सब सुना दिया। पौष्करसादि ने कहा

'अम्बष्ट बालक है। भगवान् उसे क्षमा करे।'

'अम्बष्ट सुखी हो ब्राह्मण !' भगवान् ने निर्विकार भाव से कहा। शान्त मुद्रा से कहा।

पौष्करसादि ने भगवान् के शरीर मे महापुरुषो के बत्तीस लक्षणो को ढूढा। उन्हे पाया। उसने सादर निवेदन किया·

'भगवान् कल हमारा भोजन स्वीकार करे।'

भगवान् ने मौन रह कर स्वीकार किया।

× × ×

भोजन काल का निवेदन किया गया। भगवान् ने पात्र उठाया। चीवर लिया। पौष्करसादि के स्थान पर गये। आसन ग्रहण किया। पौष्करसादि ने भगवान् को स्वय परोसा। अन्य माणवको ने भिक्षुओ को परोसा।

भोजन पश्चात् भगवान् ने आनुपूर्वी कथा कही। पौष्करसादि के विमल धर्म चक्षु उसी स्थान पर खुले। उसे समझ मे आया—'जो कुछ समुदय धर्म है, वही निरोधधर्म है।'

पौष्करसादि ने निवेदन किया 'भन्ते ! मै पुत्र सहित, भार्या सहित, आपकी शरण जाता हूँ। धर्म की शरण जाता हूँ। भिक्षु सघ की शरण जाता हूँ। आप हमे बद्धाजलि उपासक समझिये।'

आधार ग्रन्थ .

दी० नि० १ ३ (अम्बट्ठ सुत्र)

बुद्धचर्य्या ११०-२२१

V 87,91, 96, 97

V A II 278, 274

J. VI 478

कुटदन्त

[1]खाण्डमत मगध ब्राह्मणो का ग्राम था। उसमे आम्रयष्टिका था। भगवान् भिक्षु सघ के साथ वहाँ विहार कर रहे थे।

कुटदन्त ब्राह्मण था। उस पर राजा विम्बसार की कृपा थी। वह राजा द्वारा प्रदत्त राजदाय, ब्रह्मदेय, जनाकीर्ण, ग्राम मे निवास करता था। तृण, काष्ठ, उदक, धान्य, सम्पन्न था। राज भोग राजा से प्राप्त किया था। ग्राम का स्वामी था। स्वय राजा तुल्य जीवन व्यतीत करता था।

कुटदन्त ने महायज्ञ का आयोजन किया। सात सौ वृषभ, सात सौ बछडे, सात सौ बछडियाॅ, सात सौ अज, सात सौ मेष, यज्ञ यूप से बाधे गये। उनका वध होने वाला था।

भगवान् के आगमन की बात ग्राम मे फैली। ब्राह्मण मण्डली दर्शनार्थ चली। कुटदन्त अपनी अटारी पर था। ब्राह्मण मण्डली को [2]अम्बयष्टिका की ओर जाते देखा। उसे आश्चर्य हुआ। उसने अपने क्षत्ता अर्थात् महामात्य से पूछा .

'क्षत्ता! यह मण्डली कहाॅ जा रही है?'

'भो! शाक्य कुलीय भगवान् गौतम के दर्शनार्थ जा रहे है।'

'क्षत्ता! तुम ब्राह्मण मण्डली के पास जाओ। उनसे कहो। मैं भी उनके साथ चलूँगा। किचित् ठहर जाय।'

---

(१) खाण्डमत मगध मे एक ब्राह्मण ग्राम था। राजा विम्बसार ने उसे कुटदन्त ब्राह्मण को दान दिया था। भगवान् वहाँ एक दिन अम्वयट्ठिका मे विहार किये थे और कुटदन्तसुत्त को उपदेश दिया था।

(२) अम्बयट्ठिका खाण्डमत ग्राम मे आम का एक वाग था। बुद्ध घोप का मत हे कि यह उद्यान राजगृह और नालन्दा के मध्यवर्ती इसी नाम के उद्यान की तरह।

'भो ! अच्छा।'

क्षत्ता शीघ्रतापूर्वक ब्राह्मणो के पास गया। कुटदन्त का सन्देश सुनाया। उस समय सैकडो ब्राह्मणो का यज्ञ दर्शनार्थ गॉव मे आगमन हुआ था। उन्हे कुटदन्त का मन्तव्य मालूम हुआ। वे शीघ्रता-पूर्वक कुटदन्त के निवास स्थान पर पहुँचे। कुटदन्त को देखकर बोले

'भो ! क्या आप स्वय वहाँ जायेगे ?'

'हाँ।'

'क्यो ?'

'आप वहाँ जाने योग्य नही है। यश क्षीण होगा। गौतम की प्रसिद्धि होगी। आप जैसे महापुरुष ने उसका दर्शन किया है। बात फैलेगी। श्रमण गौतम का गौरव बढेगा। श्रमण गौतम को आपके पास आना चाहिए।'

'यहाँ क्यो आयेगे ?'

'आपके दार्शनार्थ ! आप आचार्य है। आप प्राचार्य है। आप तीन सौ माणवको को वेद शिक्षा देते है। आपकी सेवा मे अनेक देशो से माणवक मत्र पढने, मन्त्रो का अर्थ जानने आते है।

'हूँ—!' कुटदन्त विचार करने लगा।

'आप वृद्ध है। महल्लक है। अध्वगत है।'

'और—।'

'श्रवण गौतम आपकी अपेक्षा तरुण है। तरुण साधु है।'

कुटदन्त गम्भीर हो गया। ब्राह्मण मण्डली ने पुन कहा .

'आप राजा द्वारा सत्कृत है। पूजित है। गुरुकृत है। मानित है। पोष्करसादि द्वारा सत्कृत है। खाण्ड्मत ग्राम के स्वामी है। श्रमण गौतम को आपके यहाँ आना चाहिए।'

'भो !' कुटदन्त ने कहा। 'श्रमण गौतम सुजात हैं। महाजाति सघ का त्याग किया है। प्रव्रजित है। शीलवान् है। आर्यशील युक्त हैं। कुशल शील युक्त है। सुवक्ता हैं। आचार्य है। प्राचार्य है। काम रहित हैं। राग रहित है। चापल्य रहित हैं। कर्मवादी है। क्रियावादी है। अमिश्र उच्च क्षत्रिय कुल से प्रव्रजित हैं। महाधनी कुल से प्रव्रजित है। महाभोगवान् कुल से प्रव्रजित है।'

कुटदन्त ने ब्राह्मण मण्डली को पुन सम्बोधित किया :

'बत्तीस महापुरुषो के लक्षणो से युक्त है। सबका स्वागत करते हैं। समोदक है। अकुटिल भ्रू हैं। उत्तान मुख है। पूर्व भाषी है। चारो परिषदो से सत्कृत है। गुरुकृत है। सघी है। गणी है। गणाचार्य है। तीर्थ करो मे प्रधान है।'

'उनका यश अनायास नही हुआ है। अनुपम विद्याचरण संपदा गौतम का यश व्याप्त हुआ है। राजा विम्बसार सकुटुम्ब सआमात्य उनका शरणागत हुआ है। राजा प्रसेनजित उनका शरणागत हुआ है। पौष्करसादि उनका शरणागत हुआ है। उनसे सत्कृत हुआ है। हमारे गाँव मे आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति हमारा अतिथि है। सत्करणीय है। माननीय है। पूजनीय है।'

'क्या वे इतने गुणी है ?'

'हाँ ! ब्राह्मणो।'

'आप जायेगे ?'

'हाँ, जाऊगा।'

'हम भी चलेगे।' ब्राह्मण मण्डली कह उठी।

× × ×

कुटदन्त विशाल ब्राह्मण मण्डली के साथ अम्बयष्टिका पहुँचा। भगवान् जा अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। सुअवसर देखकर कुटदन्त ने कहा

'भो ! गौतम ! मै यज्ञ करना चाहता हूँ। कितना उत्तम होगा। यदि आप सोलह परिष्कारो सहित, त्रिविध यज्ञ सम्पदा का मुझे उपदेश करे।'

'ब्राह्मण ! क्या वास्तव मे आप उपदेश सुनना चाहते है ?'

'हाँ, भो !'

'सुनो ! एक कथा कहता हूँ।'

'कहिए गौतम।'

'पूर्वकाल में' भगवान् ने कहना आरम्भ किया, 'महाविजित नामक राजा था। महा धनी था। महा भोगवान था। स्वर्ण-रजत भण्डार पूर्ण था। वित्त उपकरण सम्पन्न था। धन-धान्य पूर्ण था। कोश पूर्ण था।

कोष्ठागार युक्त था। विपुल भोग तथा राज्याकाक्षा निमित्त उसने यज्ञ आयोजन का विचार किया। ब्राह्मणो को आमन्त्रित किया। मन्तव्य प्रकट किया। ब्राह्मणो ने कहा ·

'राजन्! आपका देश सकटापन्न स्थिति मे है। उत्पीडित है। ग्राम घात फैला है। आप इस स्थिति मे जनता से कर लेते है। इस देश के आप अकृत्यकारी है। क्या आप विचार करते है। दस्युकील को आप इस प्रकार निर्मूल कर देगे? परन्तु इस प्रकार यह नही हो सकता।'

'दस्युकील का उन्मूलन कैसे होगा ब्राह्मण?'

'आपके जनपद मे गोपालन तथा कृषि मे लोग उत्साह रखते है। उन्हे आप बीज और भोजन दीजिए। वाणिज्य करना चाहते है। उन्हे प्राभृत दीजिये। राज कर्म मे उत्साह रखते है। उन्हे आप भत्ता और वेतन दीजिए। यदि वे लोग कामो मे लग जायेगे, तो जनपद उत्पीडित नही होगा। जनपद कटक रहित होगा। सकट रहित होगा। आपको महान् धन-धान्य की प्राप्ति होगी। लोग प्रसन्नता पूर्वक शिशुओ को खिलाते-पिलाते विहार करेगे।'

'भो! करूँगा।'

'साधु राजन्!'

ब्राह्मण लोग विदा हो गये। राजा उनके कथनानुसार कार्य सम्पादन मे लग गये। जनपद धन-धान्य पूर्ण हो गया। लोगो मे उत्साह उत्पन्न हो गया। लोग प्रसन्न हो गये।'

'उसके पश्चात् क्या हुआ?' कुटदन्त ने उत्सुकता पूर्वक कहा।

'राजा ने ब्राह्मणो और पुरोहितो को पुन आमन्त्रित किया। महायज्ञ करने की बात उठायी। उसने जानपद, महाशाल, नैगम गृहपति, नेचयिक, अनुयुक्त क्षत्री, अमात्यादि, पारिषद्य गृहपति नेचयिक को आमन्त्रित किया। उनसे मन्तव्य प्रकट किया। सबने कहा—'यज्ञ का काल है। राजन्! यज्ञ का आयोजन कीजिये।'

राजा महाविजित सुजात थे। अभिरूप थे। शीलवान थे। धनवान थे। चतुरंगिणि सेना युक्त थे। श्रद्धालु थे। बहुश्रुत थे। पण्डित थे। आठो अगो से युक्त थे।

'कुटदन्त !' भगवान् ने कहा, 'यह आठ अग उस यज्ञ के आठ परिष्कार थे।'

'भो !' कुटदन्त ने पूछा, 'और ब्राह्मण पुरोहितगण गौतम ?'

'पुरोहित गण चार अगो से युक्त थे।'

'वे अग क्या थे, गौतम ?'

'कुटदन्त !' भगवान् ने कहा, 'पुरोहित दोनो ओर से सुजात थे। मत्रधर थे। त्रिवेद पारगत थे। शीलवान थे। पण्डित थे। यह चार अग उस यज्ञ के परिष्कार थे।'

'भो ! तत्पश्चात् क्या हुआ।' ब्राह्मण मण्डली ने जिज्ञासा की।

'पुरोहितो ने राजा को तीन विधियो का उपदेश दिया।'

'वे विधियाँ क्या थी गौतम ?'

'कुटदन्त ! भगवान् ने कहा।' पुरोहितो ने राजा से कहा, 'यज्ञ मे धनराशि व्यय होगी। इसका आपको दु ख नही करना चाहिए। यज्ञ करते समय आपको दु ख नही होना चाहिए। धन का व्यय हो रहा है। यज्ञ समाप्ति पर आपको दु ख नही होना चाहिए। व्यय हो गया।'

'यज्ञ के पूर्व पुरोहितो ने प्रतिग्राहको के प्रति दश विप्रतिभार की बाते राजा से कही।'

'वे क्या थे ? गौतम !' कुटदन्त ने प्रश्न किया।

'कुटदन्त !' भगवान् ने कहा। पुरोहितो ने कहा—'राजन् ! आपके यज्ञ मे प्राणातिपाती और प्राणातिपात विरत दोनो का आगमन होगा। आपके यज्ञ मे अदिन्नदायी और अदिन्नदान विरत आयेगे। व्यापन्न यज्ञ मे काम मिथ्याचारी और अव्यभिचारी आयेगे। मृपावादी और अमृपावादी आयेगे। पिशुनवाची तथा अपिशुनवाची आयेगे। परुपवाची और परुप वचन विरत आयेगे। सप्रलापी तथा सप्रलायी विरत आयेगे। व्यापन्न चित्त और अव्यापन्न चित्त आयेगे। मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टिवान आयेगे। राजन् ! आप अदिन्ना दान विरत, अव्यभिचारी, मृपावाद विरत, पिशुन वचन विरत, परुप वचन विरत, सप्रलाप विरत, अभिध्या विरत, अव्यापन्न चित्त, सम्यक् दृष्टि वालो के लिये आप यजन करे। मोदन करे।'

'कुटदन्त !' भगवान् ने कहा। 'पुरोहित ब्राह्मणो ने सोलह प्रकार के सन्दर्शन, समादयन, समुत्तेजन, सप्रहर्षण किया।'

'गौतम ! वे सोलह प्रकार क्या थे ?'

'कुटदन्त !' भगवान् ने कहा। पुरोहितो ने राजा महाविजित से कहा—'राजन् ! आपसे लोग कहेगे आमन्त्रित करने योग्य कुछ को आपने आमन्त्रित किया है। इसके अतिरिक्त कितने ही अनुपयुक्तो को आमन्त्रित किया है। नैगम, जानपद, अमात्यो, पारिषद्य, ब्राह्मण, महाशालो, नैचयिक गृहपतियो को आपने आमन्त्रित नही किया है। कोई कहेगा। आप दोनो ओर सुजात नही है। कोई कहेगा। आप अभिरूप नही है। कोई कहेगा। आप शीलवान नही है। तथापि आप चित्त प्रसन्न रखकर यज्ञ कीजिए। इसी प्रकार कोई कहेगा। आप धनवान् नही है। बलवती चतुरगिणी सेना युक्त नही है। श्रद्धालु दायक, बहुश्रुत और पण्डित नही है। आपके पुरोहितो के विषय मे कहेगे। पुरोहित दोनो ओर से सुजात, अध्यायक, मन्त्रवर, शीलवान, पण्डित नही है। परन्तु आप अपने चित्त को अन्तर से प्रसन्न रखिये। आप यजन करे। मोदन करे।'

'गौतम ! उस यज्ञ मे हुआ क्या ?' कुय्दन्त ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

'यज्ञ मे गोमेध नही हुआ। अज मेध नही हुआ। मेष मेध नही हुआ। कुक्कुट मेध नही हुआ। वाराह मेध नही हुआ। किसी प्रकार के प्राणियो का वध नही किया गया।'

'ओह—आश्चर्य !' ब्राह्मण मण्डली चकित हुई। कुटदन्त को यज्ञ के लिए एकत्रित पशुओ का ध्यान आया।

'ब्राह्मण ! भगवान् ने कहा, उस यज्ञ मे यूप के लिए वृक्ष नही काटे गये। पर हिसा के लिए दर्भ नही काटे गये। राजा के दास, प्रेष्य, कर्मकर दण्ड तर्जित, भय तर्जित, अश्रुमुख, सेवा नही किये। प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छया कार्य किया। घृत, तैल, मक्खन, दही, मधु, फणित (खॉड) द्वारा ही उस यज्ञ मे आहुति दी गयी।'

पशु मेध के समर्थक, पशुमेध के दर्शक, आगत ब्राह्मणो का मुख लटक गया। कुटदन्त ने पूछा

'गौतम ! उसके पश्चात् क्या हुआ ?'

'ब्राह्मण ! राजा के अमात्यों, मित्रो और नागरिको ने बहुत यज्ञोपयोगी सामग्री लाई थी। वे राजा को देना चाहे। राजा ने लेना अस्वीकार कर दिया। उनके सम्मुख समस्या उपस्थित हो गयी। यज्ञ निमित्त लायी सामग्री कैसे वे वापस ले जायेगे ?'

'ठीक ही उन्होने सोचा गौतम !'

'हाँ ! कुटदन्त !' भगवान् ने कहा, 'उन लोगो ने परस्पर मन्त्रणा की। यज्ञवाट के पूर्वाभिमुख क्षत्रियो ने अपना दान स्थापित किया। यज्ञवाट के दक्षिण तरफ अमात्यो और पार्षदो ने अपना दान स्थापित किया। पश्चिम तरफ ब्राह्मण महाशालो ने स्थापित किया। उत्तर तरफ नेचयिक वैश्यो ने स्थापित किया।

'उनके यज्ञो मे क्या किसी प्रकार का मेध किया गया ? प्राणी हत्या की गयी ?'

कुटदन्त ने जिज्ञासा की।

'भणे ! नही। उस यज्ञ मे भी घृत, तैल, मक्खन, दही, मधु, खाँड का ही प्रयोग किया गया।'

ब्राह्मण मण्डली गम्भीर हो गयी। भगवान् ने पुन कहा

'ब्राह्मण ! चार अनुमति पक्ष, आठ अग युक्त, राजा महाविजित[३] तथा चार अगो युक्त पुरोहित ब्राह्मण, इस प्रकार सोलह परिष्कार तथा तीन विधियाँ हुई। कुटदन्त ! इसी को त्रिविध यज्ञ सम्पदा तथा सोलह परिष्कार कहते है।'

कुटदन्त मौन हो गया। ब्राह्मण मण्डली उन्माद करने लगी। वे महाशब्द करने लगे ·

'कुटदन्त ! आप भगवान् के सुभाषित को सुभाषित तुल्य क्यों नही अनुमोदित करते ? आप मूक क्यो बैठे है ? अहो यह यज्ञ ! यह यज्ञ सम्पदा !! अद्भुत !! अद्भुत !!!'

'गौतम !' कुटदन्त ने जिज्ञासा की।

'क्यो उक्त सोलह परिष्कारो तथा त्रिविध यज्ञ सम्पदा से भी कम सामग्री वाला यज्ञ होता है ?'

---

(३) महाविजित एक प्राचीन राजा।

'होते है ।'

'क्या वे वैसे ही महाफलप्रद होते है ?'

'होते है ।'

'वे कौन यज्ञ है ?'

'प्रत्येक कुल मे सदाचारी प्रव्रजितो को जो नित्य दान किया जाता है वह इन यज्ञो से अधिक फलप्रद होता है ।'

'उसका क्या कारण है, गौतम !'

'ब्राह्मण ! इस प्रकार के यज्ञो मे मुक्त पुरुष, किवा अर्हन्त पथारूढ नही आते । वहाँ दण्ड प्रहार तथा गल प्रहार होता है । किन्तु नित्य दान यज्ञ मे अर्हत आते है । वहाँ दण्ड प्रहार तथा गल प्रहार नही होता । अतएव वह महाफलप्रद होता है ।'

'गौतम ! क्या सोलह परिष्कार, त्रिविध यज्ञ से अधिक फलप्रद इस नित्यदान अनुकूल यज्ञ से अल्प सामग्री, अल्प समारम्भ वाला महा फलदायी तथा महामाहात्म्य वाला कोई और यज्ञ है ?'

'है कुटदन्त ।'

'क्या हम उसे जान सकते है गौतम ?'

'ब्राह्मण ! चतुर्दिशा मे सघ हेतु विहार निर्माण—यह उनसे अधिक फलप्रद यज्ञ है ।'

'क्या कोई और यज्ञ इनसे अधिक फलप्रद है ?'

'है ब्राह्मण ?'

'क्या हम जान सकते हैं, गौतम !'

'प्रसन्न चित्त बुद्ध की शरण, धर्म की शरण तथा सघ की शरण जाना उक्त यज्ञो से अधिक फलप्रद है ।'

'भन्ते ! क्या इससे भी स्वल्प सामग्री, स्वल्प समारम्भ वाला और कोई यज्ञ है ?'

'है ब्राह्मण ।'

'कौन-सा यज्ञ है गौतम ?'

'ब्राह्मण ! प्रसन्नचित्त जो शिक्षा पदग्रहण करता है । प्राणातिपात विरमण, अदिन्नादान विरमण, काम मिथ्याचार विरमण, मृषावाद

विरमण, सुरा मैरेय, मद्य, प्रमाद-स्थान विरमण, शरणागतो से भी अधिक फलप्रद है। महामाहात्म्यवान है।'

'इन शिक्षापदो से भी कोई यज्ञ अधिक फलप्रद है, गौतम !'

'हाँ, है।'

'क्या कहिएगा गौतम ?'

'ब्राह्मण ! लोक मे तथागत उत्पन्न होते हैं। ब्राह्मण शीलसम्पन्न होते है। प्रथम ध्यान प्राप्त करते है। विहरते है। यह पूर्व यज्ञो से भी अधिक फलप्रद है। महामाहात्म्य है।'

'इस प्रथम ध्यान से भी उत्तम क्या कोई यज्ञ है ?'

'है ब्राह्मण।'

'क्या हम जान सकेंगे गौतम !'

'ब्राह्मण ! प्रथम से द्वितीय, द्वितीय से तृतीय और तृतीय से चतुर्थ ध्यान मे जो लगता है, ज्ञान दर्शन हेतु चित्त को लगाता है। झुकाता है। वह उक्त यज्ञो से भी अधिक फलप्रद है। महामाहात्म्य है।

'ओर—?'

'ब्राह्मण ! इस यज्ञ सम्पदा से उत्तम, प्रणीततर अन्य कोई सम्पदा नही है।'

'गौतम ! आश्चर्य ! आश्चर्य !! आश्चर्य !!! मै बुद्ध धर्म तथा सघ की शरण जाता हूँ। मै आज से आपका अजलिबद्ध उपासक हूँ।'

'और—एकत्रित इन बलि पशुओ का क्या होगा ?' ब्राह्मण मण्डली कह उठी।

'वे मुक्त है। प्राणी तुल्य मुक्त है। वे हरित दूर्वा दल चरे। शीतल जल पान करे। सुगन्धित समीर मे स्वच्छन्द विचरण करे।'

कुटदन्त ने भगवान् के चरणो मे शिरसा नमन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। एक ओर आसन ग्रहण किया।

भगवान् ने आनुपूर्वी कथा कही। कुटदन्त को वही उसी आसन पर विमल धर्म चक्षु उत्पन्न हुए। उत्पत्ति धर्म ही विनाश धर्म है। उसने समझा। उसने निवेदन किया।

'भन्ते ! भिक्षु संघ सहित आप मेरे निवास-स्थान पर भिक्षा ग्रहण करें।' भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार किया।

आधार ग्रन्थ :

दी० नि० १ . ५ (कुटदन्त सुत्त)

बुद्ध चर्या २३२–२४०

सलोकता

भगवान् कोसल देश मे चारिका कर रहे थे। साथ पाच सौ भिक्षुओ का सघ था। कोसल ब्राह्मणो का [1]मनसाकट ग्राम था। भगवान् वहाँ पहुँचे। मनसाकट के उत्तर मे अचिरवती नदी थी। उसके तट पर आम्र वन था। भगवान् ने वही विहार किया।

उन दिनो वहाँ अनेक अभिज्ञात जन तथा अभिज्ञात ब्राह्मण निवास करते थे।

वाशिष्ठ[2] और भारद्वाज ब्राह्मण थे। माणवक थे। वेद के विद्वान् थे। जघा विहार करने निकले। मार्ग मे वाशिष्ठ माणवक ने कहा

'पौष्करसादि[3] ब्राह्मण द्वारा निर्देशित मार्ग से ही ब्रह्म सलोकता प्राप्त की जा सकती है।'

'नही कदापि नही।' भारद्वाज माणवक ने कहा।

---

(१) मनसाकट कोशल देश मे एक ब्राह्मण ग्राम था। अचिरवती नदी के तट पर था। वह एक अत्यन्त रमणीय स्थान पर आवाद था। यहाँ पर ब्राह्मण एकत्रित होकर मन्त्रोच्चार करते थे।

(२) वाशिष्ट बुद्धघोष का मत है। वाशिष्ठ पौष्करसादि का प्रधान शिष्य था। वाशिष्ट तथा भारद्वाज वाशिष्ठ सुत्त के उपदेश के समय प्रथम बार भगवान् के पास आये थे। उस समय भगवान् को अपना शास्ता स्वीकार किया था। दूसरी बार वे भगवान् के पास पुन आये। भगवान् ने उन्हे तेविज्ज सुत्त का उपदेश दिया था। उन्होने बुद्ध शासन स्वीकार किया था। अग्गञ्ञ सुत्त के उपदेश के समय अर्हत्व प्राप्त किये थे। दोनो ही उच्चकुल के थे।

बौद्ध साहित्य मे सात वाशिष्ठ और भारद्वाज नामक व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। सभी व्यक्ति भिन्न थे।

(३) पौष्करसादि अम्बष्ट की टिप्पणी द्रष्टव्य है।

'नही से समस्या का निराकरण नही होगा। तुम क्या कहते हो ?'

'मै! मेरा मत स्पष्ट है। [४]तारुक्ष ब्राह्मण का मत पूर्ण है।'

दोनो माणवकों मे विवाद होने लगा। एक दूसरे को समझाने मे असक्त थे। अनन्तर वाशिष्ठ माणवक ने कहा

'भारद्वाज! श्रमण गौतम अचिरवती के तट पर विहार करते है। वहॉ हम अपने सिद्धान्त का निर्णय करा ले।'

'भो! ठीक है—चलो।' भारद्वाज ने वाशिष्ठ का प्रस्ताव मान लिया।

× × ×

दोनो माणवक भगवान् के समीप पहुँचे। भगवान् का समोदन किया। एक ओर वैठ गये। वाशिष्ठ माणवक ने निवेदन किया।

'भो! गौतम! हममे विग्रह है। विवाद है। नाना वाद है।'

'क्या मत है माणवक!'

'गौतम! पौष्करसादि का मत ठीक है या तारुक्ष का ? यही हमारे विवाद का कारण है।'

'और—'

'गौतम! ब्राह्मण नाना मार्ग वताते है। किन्तु सब ब्रह्म सलोकता तक पहुँचाने की वातो का प्रतिपादन करते है। कहते है। सभी मार्ग ब्रह्म सलोकता प्राप्त कराते है।

'अच्छा—?'

'हाँ गौतम! जैसे एक ही ग्राम मे, एक ही निगम मे, दूर से आने के अनेक मार्ग होते है। परन्तु पहुँचते सब ग्राम और निगम मे है। उसी प्रकार ब्राह्मणो द्वारा नाना मार्गो के बावजूद, सभी ब्रह्म की सलोकता तक पहुँचाते हैं।'

'वाशिष्ठ!' भगवान् ने पूछा, 'पहुॅचाते है तुमने कहा है ?'

'हॉ गौतम।'

---

(४) तारुक्ष : भगवान् के समकालीन, एक महाशाल ब्राह्मण थे। मनसाकट तथा इच्छा नगल के ब्राह्मण समाज मे यह उपस्थित थे। भारद्वाज तथा वाशिष्ठ माणवक के शिक्षक थे।

'क्या ऐसा कोई त्रैविद्य ब्राह्मण है। जिसने ब्रह्म को अपने नेत्रो से देखा है ?'

'नही गौतम !'

'क्या त्रैविद्य ब्राह्मणो का कोई ऐसा आचार्य प्राचार्य है, जिसने ब्रह्म को देखा है ?'

'नही गौतम !'

'वाशिष्ठ क्या उनके सात पीढी तक किसी ने ब्रह्म को देखा था ?'

'नही गौतम ।'

'वाशिष्ठ ! जिनके मंत्रो को पढते हो, क्या उन ऋषियो ने कहा था ? जहाँ ब्रह्म है। जिनके साथ ब्रह्म है। जिसके विषय मे ब्रह्म है। यह वे जानते थे। उन्होने देखा था ?'

'नही गौतम !'

'जिसको देखा नही है। जिसे जाना नही है। उसकी सलोकता के लिये, बोलो वाशिष्ठ उन्होने कैसे उपदेश दिया ?'

'गौतम—!'

'माणवक ! कैसे कहते हो ? सभी मार्ग ब्रह्म सलोकता तक ले जाते है ? क्या उनका यह कथन तर्क सम्मत माना जायेगा ?'

'नही गौतम ! शायद कुछ ऐसी बात है।'

'वाशिष्ठ ! यह तो अन्धो की पक्ति तुल्य है।'

'क्यो गौतम ?'

'उस पक्ति मे आगे वाला अन्धा व्यक्ति मध्य वाले को नही देख पाता। मध्यवाला अन्तिम को नही देख पाता। अन्तिम वाला प्रथम को नही देख पाता। अन्ततोगत्वा एक दूसरे को नही देख पाते। फिर भी कहते है। एक पक्ति मे है।'

'ओह—!'

'वाशिष्ठ ! पहले वालो ने ब्रह्म को नही देखा था। मध्य वालो ने ब्रह्म को नही देखा था। इस शृखला के वर्तमान अन्त वालो ने भी उसे नहीं देखा है। तथापि वे कहते चले आये है। कहते है। कहते चले जायेंगे।'

'श्रमण गौतम !'

'माणवको ! वे नही जानते । सूर्य और चन्द्र कहाँ से उदय होते है । कहाँ विलय होते है । तथापि उनकी प्रार्थना करते है । स्तुति करते है । उन्हे घूमते हुए नमस्कार करते है ।'

'किन्तु उन्हे देखते है ?'

'वाशिष्ठ ! सूर्य-चन्द्र की उपासना करने वाले, जो उन्हे देखते है, क्या वे चन्द्र सूर्य लोक की सलोकता के लिये उपदेश कर सकते है ? क्या कह सकते है—'उनका ही एकमात्र सरल मार्ग है ?'

'नही गौतम ।'

'तो जिसे उन्होने कभी देखा नही, जाना नही, सुना नही, उस ब्रह्म की सलोकता के लिये उपदेश देना क्या तर्क सम्मत होगा ?'

'नही गौतम ।'

'अच्छा सुनो माणवक ।'

'कहो, गौतम ।'

'नगर मे जनपदकल्याणी होती है ?'

'हाँ गौतम ।'

'अनेक विशिष्ट पुरुष कहे—वे उसे चाहते है । यदि उनसे कोई पूछे—जिसे तुम नही जानते, जिसे तुम नही देखते, उसे कैसे चाहते हो । कैसे कामना करते हो । और उसका उत्तर यदि हाँ मे मिले, तो क्या वाशिष्ठ ! उसका कहना अप्रामाणिक नही ठहरेगा ?'

'अवश्य अप्रामाणिक होगा ।'

'त्रैविद्य ब्राह्मणो ने ब्रह्म को स्वय नही देखा । तथापि कहते है । ब्रह्म से सलोकता होगी । कैसी आश्चर्यजनक बात है । जिसे नही जानते उसकी सलोकता के लिये उपदेश करते है । क्या उनका कहना प्रामाणिक माना जायेगा ?'

'नही गौतम ।'

'माणवक ! वह उसी प्रकार युक्त नही है जैसे चौराहा पर कोई पुरुष महल बनाये । उस पर चढने के लिए सीढी का निर्माण करे ।'

'हाँ गौतम ।'

'माणवक ! तुम अचिरवती नदी देखते हो ?'

'हाँ गौतम !' वाशिष्ठ ने अचिरवती नदी की प्रवाहित धारा की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

'वत्स ! मैं एक उपमा देता हूँ। इस अचिरवती के इस तट पर एक व्यक्ति खडा हो जाय। उस पार जाने की कामना करे। वह इस तट से उस तट का आह्वान करे—'ओ तट ! यहाँ आ जाओ। इस पार आ जाओ। मुझे पार उतरना है', तो क्या वह तट इस पार आ जायगा ?'

'नही गौतम।'

'इसी प्रकार लोग, ईशान, प्रजापति, ब्रह्मा, महर्द्धि, यम का आह्वान करते है। इसी प्रकार ब्रह्म के साथ सलोकता की बाते है। मृत्यूपरान्त सलोकता मिलेगी। यह असम्भव है।'

'हाँ गौतम।'

'माणवक ! एक उपमा और देता हूँ। अचिरवती की धारा जलपूर्ण है। तुम देख रहे हो ?'

'हाँ गौतम।'

'माणवक ! इस तट पर एक व्यक्ति आये। उस पार जाना चाहे। यदि उसका हाथ मजबूती से पीठ पर बाँध दिया जाय, तो क्या वह तैर कर, उस पार जा सकेगा ?'

'नही गौतम।'

'इसी प्रकार वत्स ! पाँच काम आर्य विनय के बन्धन है।'

'गौतम ! वे बन्धन क्या है ?'

'वत्स ! चक्षु द्वारा विज्ञेय, श्रोत्र द्वारा विज्ञेय, घ्राण द्वारा विज्ञेय, जिह्वा द्वारा विज्ञेय, काय द्वारा विज्ञेय। इन काम गुणो से मनुष्य लिप्त है। मूर्छित है। अपरिणामदर्शी है। इन बन्धनो से बँधा व्यक्ति कैसे, ब्रह्म की सलोकता प्राप्त करेगा ?'

'हूँ।' माणवक विचार करने लगे।

'वत्स ! सुनो, इस अचिरवती के शीतल सुरम्य तट पर कोई व्यक्ति आये। उस पार जाना चाहे। परन्तु इस तट पर सो जाय। क्या वह सोये साये उस पार पहुँच जायगा ?'

'नही गौतम ।'

'वाशिष्ठ ! आर्य धर्म के पाँच नीवरण आर्य बन्धन है ।'

'वे क्या है गौतम ?'

'वाशिष्ट ! उन्हे कामच्छन्द, व्यापाद, स्त्यानमृद्ध, औद्धत्य—कौकृत्य, विचिकित्सा, परिअवनाह अर्थात् बन्धन है ?' इन्हे आवरण भी कहते है। इन पाँचो आवरणो से, बन्धनो से, बँधा व्यक्ति कैसे ब्रह्म लोक जायगा। कैसे ब्रह्म की सलोकता प्राप्त करेगा ?'

'माणवक विचारशील हो गये। भगवान् ने पुन कहा।

'वाशिष्ठ ! आचार्यो से तुमने क्या सुना है ? ब्रह्म सपरिग्रह है अथवा अपरिगह ?'

'गौतम ! ब्रह्म अपरिग्रह है ।'

'सवैरचित्त है या अवैर ?'

'अवैर चित्त है ।'

'सव्यापाद चित्त है या व्यापाद रहित ?'

'व्यापाद रहित है ।'

'सक्लेश चित्त है या असक्लिष्ट ?'

'असंक्लिष्ट चित्त है ।'

'वशवर्ती है या अवगवर्ती ?'

'वशवर्ती है ।'

'ओ वागिष्ठ ! वोलो ! त्रैविद्य ब्राह्मण सपरिग्रह है, और ब्रह्म अपरिग्रह है। क्या सपरिग्रह का अपरिग्रह से मिलन हो सकता है ?'

'नही गौतम ।'

'वाशिष्ठ। वोलो ! सपरिग्रह कैसे अपरिग्रह के साथ सलोकता प्राप्त कर सकता है ? क्या यह सभव है ?'

'नही ।'

'सवैर चित्त का अवैर चित्त, सव्यापाद का असव्यापाद, सक्लिष्ट का असक्लिष्ट, वशवर्ती का अवगवर्ती के साथ कैसे मेल होगा ? उनकी सलोकता क्या सम्भव है ?

'हूँ।' वाशिष्ठ माणविक गम्भीर हो गया।

'वाशिष्ठ! जो विपरीत सोचते हैं वे सूखी भूमि पर तैर रहे है।'

'किन्तु आपकी सलोकता का मार्ग क्या है?'

'मनसा कट जनस्थान यहाँ से समीप है या दूर?'

'समीप है।'

'एक व्यक्ति है। उसका जन्म मनसा कट मे हुआ है। वही बडा हुआ है। वही पला है। वही रहता है। यदि उससे पूछा जाय। मनसा कट का मार्ग किस ओर है, तो क्या उसे उत्तर देने मे विलम्ब लगेगा?'

'नही गौतम!'

'क्यो वाशिष्ठ?'

'वह वही जन्मा है। उसे वहाँ के सब मार्ग विदित है। किसी के बताने की आवश्यकता नही है।' माणवक ने उत्तर दिया।

'वाशिष्ठ! ब्रह्म लोकगामिनी प्रतिपद को मै जानता हूँ।'

'ब्रह्म की सलोकता का फिर आप ही हमे मार्ग बताइए।'

'भो! बताऊगा।'

'गौतम! कृपा होगी।'

'वाशिष्ठ! भिक्षु चीवर और भोजन से सन्तुष्ट होता है। शील सम्पन्न होता है। पाँचो नीवरणो से मुक्त होता है। प्रमुदित होता है। प्रमुदित भिक्षु प्रीति प्राप्त करता है। उसका मन शान्त होता है। काया शान्त होती है। प्रश्रब्ध काया युक्त सुख अनुभव करता है। उसका चित्त सुखी होता है।'

'अच्छा—!'

'हाँ वाशिष्ठ! वह मित्र भाव युक्त होता है। एक दिशा पूर्ण करता है। दूसरी दिशा पूर्ण करता है। तीसरी दिशा पूर्ण करता है। चौथी दिशा पूर्ण करता है। ऊर्ध्व दिशा पूर्ण करता है। अधो दिशा पूर्ण करता है। सब दिशाओ मे विहार करता है।'

'माणवक भगवान् की ओर चकित देखने लगे। भगवान् ने कहा:

लोक में, मित्र भाव युक्त विपुल, महान् अप्रमाण, वैर रहित, द्रोह रहित, चित्त द्वारा स्पर्श करते विहार करता है।

'गौतम !—'

'सुनो वाशिष्ठ ! शखध्मा, अपने शख घोष द्वारा सब दिशाओ को प्रतिध्वनित करता है। उसी प्रकार मित्र भावना द्वारा भावित चित्त की विमुक्ति द्वारा जितने प्रमाण मे काम किया है, वह वही अवशेष नही होता। यह ब्रह्म सलोकता का मार्ग है।'

'और—?'

'वाशिष्ठ ! ब्रह्मा की सलोकता का और मार्ग है। करुणा युक्त चित्त द्वारा, मुदित-युक्त चित्त द्वारा, उपेक्षा युक्त चित्त द्वारा, दिशाक्षो को भिक्षु पूर्ण करता है। समस्त लोक को उपेक्षा युक्त, विपुल, महान्, अप्रमाण, वैर रहित, द्रोह रहित, चित्त द्वारा स्पर्श करता है। विहरता है। जिस प्रकार बली शख घोषक के घोष द्वारा, दिशाएँ व्याप्त हो जाती है। उसी प्रकार उपेक्षा द्वारा भावित चित्त की विमुक्ति द्वारा, जितने प्रमाण मे कार्य किया गया है, वह, वही नही समाप्त होता। यह भी सलोकता का एक मार्ग है।'

वाशिष्ठ और भारद्वाज माणवक गम्भीर हो गये। भगवान् ने उनकी ओर देखकर पूछा

'बोलो ! इस प्रकार विहार युक्त भिक्षु सपरिग्रह है या अपरिग्रही ?'

'अपरिग्रह है।'

'सवैर चित्त है या अ-वैर ?'

'अ-वैर—।'

'व्यापाद चित्त है या अव्यापाद चित्त है ?'

'अव्यापाद चित्त।'

'सक्लिष्ट है या असक्लिष्ट।'

'असक्लिष्ट चित्त है।'

'जितेन्द्रिय अर्थात् वशवर्ती है या अवशवर्ती ?'

'वशवर्ती चित्त है।'

'वाशिष्ठ ! ब्रह्म अपरिग्रही है। भिक्षु अपरिग्रही है। उनका परस्पर मेल है या नही ? समानता है या नही ?'

है।'

'काया त्याग के पश्चात्, क्या यह सम्भव नही है कि अपरिग्रह, के साथ अपरिग्रह, और अवैर के साथ-अवैर, मिल जाय। ब्रह्म की सलोकता प्राप्त कर ले ?'

'आश्चर्य ! आश्चर्य !! गौतम ! हमें अंजलिबद्ध अपना उपासक ग्रहण करे।'

माणवको ने भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की।

●

आधार ग्रन्थ :

दी० नि० १ : १३

बुद्धचर्य्या २०३-२०९

DA ii 399 406, iii 860, 872

S N A ii 116

वत्सगोत्र[1]

भगवान् वैशाली मे थे। कूटागार शाला मे विहार करते थे। एक गोत्रीय परिव्राजक पुण्डरीक परिव्राजकाराम मे विहार करता था।

एक दिन भगवान् पूर्वाह्ण काल मे सुआच्छादित हुए। चीवर पहना। पात्र उठाया। वैशाली महानगरी मे पिण्डचार निमित्त प्रवेश किया। भगवान् कुछ पहले चले आये थे। समय पर पिण्डचार करना अच्छा होगा। भगवान् ने समय बिताने के विचार से पुण्डरीक परिव्राजकाराम मे कुछ समय ठहर जाना उचित समझा।

वत्सगोत्र परिव्राजक ने भगवान् को आते देखा। प्रसन्न हो गया। आसन त्याग कर उठा। भगवान् की ओर बढते हुए बोला

---

(१) वत्सगोत्र . का स्पष्ट उल्लेख नही मिलता कि उनका जन्मादि कहाँ हुआ था। अनुमान के आधार पर थेर गाथा ११२ मे वर्णित वत्सगोत्र से इन्हे मिलाया जाता है। तीन वत्सगोत्र सूत्र का उल्लेख मिलता है। तेविज्ज वत्सगोत्र मे भगवान् के उपदेश को ग्रहण कर प्रसन्न हुआ था। अग्गि वत्सगोत्र सुनकर भगवान् से राजगृह मे प्रव्रज्या निमित्त प्रार्थना की थी। चार मास पश्चात् उसे प्रव्रज्या प्राप्त हुई थी। भगवान् के पास दो सप्ताह के पश्चात् पुन लौटकर आया। उसने और कुछ जानना चाहा। भगवान् ने उसे एकान्त मे अन्तर तथा छ हो अभिज्ञाओ का अध्ययन कर, तत्पश्चात् वह अर्हत हुआ।

थेर गाथा के अनुसार वत्सगोत्र परिव्राजक एक सम्पन्न ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। उस समय चार भिक्षु वत्स नाम के थे अतएव उसका नाम गोत्र पड गया। उसने उदान कहा था—

अगुत्तर निकाय मे एक वत्सगोत्र परिव्राजक का और उल्लेख है। वह वेनागपुर मे भगवान् का दर्शन किया था। इससे वत्सगोत्र कपिलवस्तु का निवासी था।

'पधारिए ! भन्ते ! पधारिए ! स्वागत है भन्ते । स्वागत है । बहुत दिनो के पश्चात् भन्ते ! दर्शन लाभ हुआ है ।'

परिव्राजक ने भगवान् को आसन दिया । सत्कार किया । भगवान् बैठ गये । परिव्राजक ने आसन ग्रहण किया । कुछ वार्तालाप चलाने की दृष्टि से कहा

'भन्ते मैने सुना है ।'

'क्या सुना है, आयुष्मान् ?'

'आप सर्वज्ञ है । निखिल ज्ञानदर्शी है ।'

'हूँ ।' भगवान् ने वत्स की बात सुनकर हुंकारी भर दिया ।

'भन्ते ! क्या यह सत्य है ?'

'वत्स ! जो कहते है : मै सर्वज्ञ हूँ । वे यथार्थवादी नही है । असत्य वचनो से मेरी एक प्रकार से निन्दा करते है ।'

'भन्ते ! वास्तविकता क्या है ?'

'वत्स ! यथार्थवादी केवल वे होगे । जो कहेगे—गौतम त्रैविद्य है ।'

'किस प्रकार भन्ते ?'

'मुझे पूर्व जन्मो का स्मरण है । मै कर्मानुसार प्राप्त सत्त्वो को इच्छानुसार जान सकता हूँ ।'

'और—?'

'आश्रवो से विमुक्त हूँ । आश्रव रहित, चित्त विमुक्ति द्वारा, विमुक्ति को इसी जीवन मे साक्षात्कार करता हूँ । विहार करता हूँ ।'

'गौतम ! क्या कोई गृहस्थ सयोजनो (बन्धनो) का बिना त्याग किये, इस काया को त्याग कर, दु ख के तिरोहित करनेवाले, निर्वाण को प्राप्त करता है ?'

'नही वत्स !'

'गौतम ! क्या कोई गृहस्थ सयोजनो का बिना त्याग किये, मृत्यूपरान्त स्वर्ग प्राप्त कर सकता है ?'

'अनेक गृहस्थ है । मृत्यूपरान्त स्वर्गगामी होते है ।

'क्यो कोई आजीवक मृत्यूपरान्त दु ख का अन्त करता है ?'

'नही वत्स।'

'क्या कोई आजीवक मृत्यूपरान्त स्वर्गगामी होता है ?'

'वत्स ! मै आज एककानवे कल्प तक स्मरण करता हूँ। कोई भी स्वर्गगामी नही हुआ है।'

'इसमे कोई अपवाद है गौतम ?'

'केवल एक वह कर्मवादी था। क्रियावादी था।'

'यदि गौतम ! वह बात है तो यह तीर्थायतन शून्य है। स्वर्गगामियों के लिये भी शून्य है।'

'वत्स ! ऐसा जब तक है तब तक यह तीर्थायतन शून्य ही है।'

वत्सगोत्र परिव्राजक सन्तुष्ट हो गया। भगवान् के भाषण का अनुमोदन किया।

आधार ग्रन्थ .

मज्झिम निकाय २ ३ १ (तेविज्ज वच्छगोत्त सुत्त)

बुद्ध चर्या २४८

थेर गाथा ११२

उदान ११२

Ap i 177

m i 493-97

Thag A i 221

s iii 257 iv . 391,

शाक्य कोलिय विवाद

सुसुख वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥

[अहो ! वैरियो के बीच अवैरी रहकर हम सुखपूर्वक जीवन विता रहे है । वैरियो के वीच अवैरी होकर विहार करते है ।]

—ध० १९७

कपिलवस्तु के निवासी शाक्य थे । शाक्य देश मे कपिलवस्तु, द्रोण-वस्तु, कुडिया तथा देवदह थे । कोलिय नगर के निवासी कोलिय[1] थे । शाक्य राज्य के आगे कोलिय राज, राम गाम था । कोलिय राज के पश्चिम नदी पार शाक्य राज्य था । पूर्व मे राम गाम था । दोनो के मध्य

---

(१) कोलिय वौद्ध कालीन गणतन्त्र राज्य था । उनके दो मुख्य स्थान—रामगाम और देवदह थे । कोलिय के सम्वन्ध मे एक कथा है । एक काशीराज का नाम राम था । उन्हे कुष्ठ हो गया था । अपना राज्य ज्येष्ठ पुत्र को देकर वे वन मे चले गये । वहाँ फल फूल खाकर रहते थे । कालान्तर मे उनका कुष्ठ अच्छा हो गया ।

वह घूमते हुए इक्ष्वाकु की पाच कन्याओ मे सबसे ज्येष्ठ कन्या से मिले । उसे भी कुष्ठ हो गया था । राम ने उसे अच्छा किया । उससे विवाह कर लिया । उससे वत्तीस पुत्र उन्हे हुए । काशी राजा की सहायता से उन पुत्रो ने कोल वृक्षो को साफ कर एक नगर वन मे वसाया । उसका नाम कोल नगर पडा । नगर व्याघ्र पथ पर था इसलिये उसे व्याघ्र पज्जा कहा जाता था । उनके वशज कोलिय कहे गये । कुणाल जातक मे शाक्य लोग कोलियो को ताना मारते थे—तुम लोग कोल वृक्ष के नीचे वन्य पशुओ के साथ रहते थे । शाक्य और कोल राज्य की सीमा के मध्य रोहिणी नदी थी । भगवान् के परिनिर्वाण पर भगवान् के धातु का आठवाँ भाग राम गाम के कोलियो को प्राप्त हुआ । उस पर उन्होने स्तूप वनाया । काशी राज्य मे एक कोलिय किंवा कोइल ग्राम है । वह मेरे निर्वाचन क्षेत्र मे था ।

रोहिणी नही बहती थी। रोहिणी का जल दोनो मिलकर बाध देते थे। उस जल से शाक्य और कोलिय दोनो जातिया खेतो को सीचती थी।

ज्येष्ठ मास था। खेती सूखने लगी थी। दोनो जनपदो के कर्मकार एकत्रित हुए। कोलिय नगरवासियो ने कहा ·

'यह पानी हमे ले लेने दो।'

'यह कैसे होगा ?' कपिलपस्तु वालो ने विरोध किया।

'दोनो यदि पानी लेगे तो हमारी खेती सूख जायेगी। न हमे पूरा पानी मिलेगा, न आप लोगो को।'

'लेकिन हमारी खेती सूख जायेगी। हमारा काम कैसे चलेगा ?'

'हमारी खेती एक पानी से हो जायेगी। हमे जल ले लेने दो।'

'हमारी खेती भी एक ही पानी से हो जायेगी। हमे पानी ले लेने दीजिए।'

'वाह—! पानी हमे चाहिए।'

'आप चाहते है। आपका घर धान्य से, अन्न से पूरा हो जाय और हम रत्न, सुवर्ण, नीलम; कार्षापण आपके पास लेकर आये। आपके द्वार-द्वार, पीछे-पीछे, अन्न के लिए घूमते रहे।'

'लेकिन हमे पानी चाहिए।'

'हम नही देगे।'

'तो हम भी नही देगे।'

बात बढी। कोलाहल हुआ। वाद-विवाद मे डण्डावाद की नौबत आ गयी। एक ने उठकर दूसरे पर हाथ छोड दिया। उसने भी मार का जवाब मार से दिया। परस्पर सघर्प बढा। अन्त मे शाक्य और कोलिय के बीच भयकर सघर्ष की नौबत आ गयी।

× × ×

कोलिय कर्मकारो ने ताना मारा —

'कपिलवस्तु वाले—ओह! कितने अच्छे हो। तुमने तो कुत्ते, विल्लियो के समान अपनी वहनो के साथ सवास किया था। तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र हमारा कुछ विगाड़ सकेगे ?'

शाक्य कर्मकार बोले —

'तुम कोढियो के लडके हो। अनाथ नि शरण पक्षियों के समान कोल (वैर) के वृक्ष पर निवास करते हो। ऊंह—तुम्हारे हाथी-घोडे हमारा क्या कर सकेंगे ?'

× × ×

दोनो पक्षो ने अमात्यो से जाकर घटना का वर्णन किया। अमात्यो ने राजकुलो से सब बात बताई।

तनातनी बढी। पारा चढ गया। क्रोध सीमा पार कर गया। दोनो देशो की सेनाएँ युद्धार्थ निकल पड़ी।

रोहिणी नदी पर सेनाएँ एकत्रित हुईं। रक्तपात मे विलम्ब नही था।

× × ×

प्रात काल का समय था। शाक्यो ने देखा। तथागत रोहिणी नदी के मध्य मे स्थित है। शास्ता ने अपनी जातिवालो को देखा। अपने कुल वालो को देखा। शाक्यो ने भगवान् की वन्दना की।

'राजन् !' शास्ता ने शान्त स्वर मे पूछा।' 'कलह का क्या कारण है ?'

'भन्ते ! हमे नही मालूम।'

'कौन जानता है।'

'सेनापति जानता है।'

'सेनापति' विवाद का मूल क्या है ?'

'उपराजा जानता है।' सेनापति ने कहा

झगडने वाले, रक्त बहानेवाले को मूल कारण नही ज्ञात था। वे अपने राजाओ के आदेशो पर सघर्ष करने आये थे। रक्त बहाने आये थे। भगवान् ने कर्मकारो से पूछा

'कर्मकारो ! तुम्हे मालूम है।'

'भन्ते ! पानी का झगडा है।'

तथागत ने महाराजाओ से पूछा · 'बोलो महाराजो ! पानी का क्या मूल्य है ?'

'भन्ते ! कुछ नही ।'

'क्षत्रियो ! तुम्हारे जीवन का क्या मूल्य है ?'

'जीवन अनमोल है भन्ते ।'

'मूल्यहीन पानी के लिए अमोल जीवन का नाश क्या उचित होगा ?'

दोनो पक्ष नीरव थे । शास्ता ने कहा .

'आवुसो ! शत्रुओ मे शून्य भाव रहित होकर सुख से जीवन व्यतीत किया जाता है । शत्रुओं मे अशत्रु स्वरूप हम विहार करते है ।'

दोनो सेनाएँ संघर्ष से विरत हो गयी । विवाद शान्ति से शान्त हो गया ।

आधार ग्रन्थ

धम्मपद १५ १

A ii 62, iv 281,
Ap ii 491
D · ii 161,
DA iii 254
DA 1 262, ii, 672.
S iv 391, v 115
S A i 819
M i . 387
J v 413

एकाहार

काशी जनपद मे भगवान् विशाल भिक्षु सघ के साथ चारिका कर रहे थे। भगवान् ने भिक्षुओ को एक दिन निमन्त्रित किया।

'भिक्षुओ! मै रात्रि भोजन से विरत होता हूँ।'

'कारण भन्ते!'

'रात्रि मे भोजन नही करने से आरोग्य लाभ होता है। उत्साह होता है। बल होता है। सुख होता है।'

'हम क्या करे—?'

'भिक्षुओ! रात्रि मे भोजन से विरत हो। तुम वही अनुभव करोगे जो मै अनुभव करता हूँ।'

'जैसा आदेश भन्ते!'

भिक्षुओ ने एकाहारी होना स्वीकार किया।

× × ×

तथागत काशी में चारिका कर रहे थे। काशी निवासियो के निगम [1]कीटागिरि मे पहुँचे। वहाँ विहार करने लगे।

कीटागिरि मे भिक्षु अश्वजित और पुनर्वसु थे। वही उनका जन्म तथा निवास-स्थान था। अनेक भिक्षु उनके स्थान पर गये। उनसे बोले

'तथागत और भिक्षु सघ रात्रिकाल के भोजन से विरत हो गये हैं।'

'आवुसो! आप भी रात्रि भोजन से विरत होइये।'

उन्हे कुछ आश्चर्य हुआ। वे बोले

'आवुसो! हम सायकाल भोजन करते है। प्रातःकाल भोजन करते

---

(१) कीटागिरि पूर्व काल मे काशी जनपद का एक निगम था। इस समय जौनपुर जिला का केराकत कसेवा है।

है। मध्याह्न काल भोजन करते है। तथापि देखो—हम आरोग्य है। हम इस प्रत्यक्ष आरोग्यता का त्याग कर क्यो कालान्तर के पीछे पडे।'

'आवुसो—!'

'नही! हम प्रात भोजन करेगे। मध्याह्न भोजन करेगे। साय भोजन करेगे। और त्रिकाल मे भोजन करेगे।'

भिक्षु मे विफल मनोरथ रहे। वे तथागत के पास पहुँचे।

तथागत का अभिवादन किया। वन्दना किया। एक ओर बैठ गये। तथागत के सकेत पर वे बोले

'रात्रिभोजनविरत की वात हमने पुनर्वसु और अश्वजित को समझाया। परन्तु वे नही समझ सके। यही भन्ते! आपसे निवेदन करने आये है।'

भगवान् ने सुनकर एक भिक्षु को सम्बोधित किया .

भिक्षु! उनके पास जाकर उन्हे मेरा सन्देश देना—'उन्हे मैने

भिक्षु ने वन्दना कर प्रस्थान किया।

× × ×

'आवुसो!' तथागत का सन्देश वाहक भिक्षु अश्वजित और पुनर्वसु के पास पहुँचा। उन्होने पूछा '

'आवुस! क्या प्रयोजन है।'

'आयुष्मानो! आपको शास्ता बुलाते है।'

'आवुस! हम चलते है।'

वे सन्देश वाहक भिक्षु के साथ चल पडे।

× × ×

अश्वजित तथा पुनर्वसु भगवान् के समीप आये। उनकी वन्दना किये। अभिवादन किये। एक ओर बैठ गये।

'आयुष्मानो!' शास्ता ने पूछा, 'भिक्षुगण आपके पास गये थे। आप लोगो से कहा था। रात्रिभोजन से विरत होना चाहिए।'

'भन्ते! ठीक है।'

'आवुसो! क्या आपने सुना है। मैने ऐसा उपदेश दिया है। जिससे

कुशल धर्म नष्ट हो जाता है। अकुशल धर्म बढता है।'

'ऐसा कभी नही हुआ भन्ते।'

'साधु!' शास्ता ने कहा। 'मैंने अनुभव किया है। मैंने उसे जाना है। अकुशल धर्म इससे नष्ट होते हैं। कुशल धर्म बढ़ते हैं। इसलिए मैंने इसे कहा है।'

आधार ग्रन्थ :

मज्झिम निकाय २ २ १०
कीटागिरि सुत्त
धम्मपद २३ ४

दीर्घायु

(दिघिति-दिघाती)

'मा दिघम् यस्स मा रस्सम'

(बहुत दूर मत देख, बहुत पास मत देख।)

भगवान् कोशाम्बी मे विहार कर रहे थे। भिक्षु सघ मे कलह था। भगवान् कलह दूर करना चाहते थे। किन्तु उसके लिये लोकतन्त्रीय परम्परा का अनुसरण किया। अपने विचारो को लादना नही चाहा। मनुष्य के हृदय परिवर्तन और उसकी सुबुद्धि पर अधिक विश्वास रख भूत को समाधि देकर, मानव को जाज्वल्यमान, रूढियो से दूर वर्तमान मे खडा कर देना चाहा। उज्ज्वल भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करना चाहा।

भगवान् ने भिक्षु सघको आमन्त्रित किया। सघ ने आसन ग्रहण किया।

भगवान् ने कहा

'भिक्षुओ ! मै एक कथा सुनाना चाहता हूँ।'

'भन्ते ! कहिए।' सघ ने निवेदन किया।

प्राचीन समय मे काशी मे एक राजा था। उसका नाम ब्रह्मदत्त था। वह महाधनी था। महा भोगवान था। महा वाहनयुक्त था। महा सैन्य, युक्त था। महा राज्ययुक्त था। पूर्ण कोष्ठागारयुक्त था।

कोसलराज दीघिति थे। दुर्बल थे। सेना अल्प थी। धन अल्प था। वाहन अल्प था। अल्प राज्य था। अल्प शक्ति राजाओ की घातिनी शत्रु होती है। यह कोसल राज के साथ हुई।

काशीराज ने विचार किया। अच्छा सुअवसर था। कोसल पर आक्रमण किया जाय। कोसल का राज काशीराज मे विलय कर दिया जाय।

काशिराज ने कोसल राज पर आक्रमण किया। चतुरंगिणी सेना पूर्ण सुसज्जित थी। सेना ने प्रयाण किया। राजधानी का पतन आसन्न था। काशीराज की सेना बढी जा रही थी।

कोसलराज ने व्यर्थ समझा। उसे विश्वास हो गया था। पराजित हो जायगा। राजमहिपी को साथ लिया। चुपचाप राजधानी का त्याग किया। काशीराज ने कोसलराज का राज्यादि सब कुछ सरलता पूर्वक विना किसी प्रकार अवरोध के हरण कर लिया।

कोसलराज महिपी के साथ काशी की ओर चला। उसे जीवनभय था। उसने निश्चय किया। काशी मे परिव्राजक होगा। एकाकी निवास करेगा। किसी को सन्देह नही होगा। चिराग तले अन्धेरा होता है। राजधानी मे उस पर कोई अविश्वास नही करेगा। कही और रहने पर वन्दी वन सकता था। अन्य राजा उसे शरण शायद ही दे पाते।

× × ×

कोसलराजा काशी आये। कुम्भकार के घर मे ठहर गये। परिव्राजक वन गये। अज्ञातवास करने लगे।

कोसलराज की महिषी अचिर मे ही गर्भवती हुई थी। उसे दोहद हुआ। सूर्योदय काल मे चतुरगिणी सेना क्रीडा क्षेत्र मे सुसज्जित देखे। खग धोवन का पात्र करे।' राजा के लिए यह सभव नही था। रानी ने हठ किया।

कोसलराज का मित्र काशीराज का पुरोहित था। राजा पुरोहित के पास गया। निवेदन किया। मित्र के स्त्री की गर्भ की वात सुनकर, पुरोहित प्रसन्न हो गया। उसने मित्र भार्या के दर्शन की कामना की।

राजा अपनी महिषी के साथ पुरोहित के पास गया। पुरोहित ने महिपी को आते देखा। उसने तीन बार गर्भस्थ शिशु को प्रणाम किया। महिषी समीप आ गयी। पुरोहित अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने कहा

'देवि! आप प्रसन्न हो। प्रात.काल चतुरगिणी सेना क्षेत्र मे आप देखेगी। खग धोवन पान करेगी।'

× × ×

पुरोहित ने काशीराज से निवेदन किया :—

'राजन्! चतुरंगिणी सेना सन्नाह तथा वर्मयुक्त, कल प्रात काल क्रीडा क्षेत्रमे खडी करने का योग है। खग भी धोये जॉय।'

'पुरोहित! मुहूर्त का पालन किया जायगा।'

राजा ने सेनापति को आज्ञा दी। दूसरे दिन प्रात:काल सन्नाह तथा वर्म सहित चतुरगिणी सेना क्रीडा-स्थल मे खडी की गयी। खग धोये गये। रानी ने सेना देखी। खग धोवन पान किया।

× × ×

समय पर गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ। कोसलराज ने उसका नाम दीर्घायु रखा।

कोसलराज पुत्र की प्राण-रक्षा निमित्त विशेष सतर्क था। पुत्र कुछ बड़ा हुआ। माता-पिता से विलग रह सकता था। कोसलराज ने उसके रहने की व्यवस्था, नगर के बाहर कर दी। कुमार स्वल्प समय मे सभी शिल्पो मे पारगत हो गया।

कोसलराज दीधित का एक नाई था। राज्य पतन के पश्चात् काशि-राज की सेवा मे आ गया था। एक समय नाई ने अपने पूर्व स्वामी को देखा। कोसलराज को महिषी को देखा। कुम्भकार के घर मे उन्हे रहते हुए देखा। उनका परिव्राजक रूप, नाई की ऑखो को धोखा नही दे सका।

नाई ने काशिराज से रहस्य बताया। राजा कोसलराज तथा महिषी की प्रारम्भ से ही खोज मे था। प्रसन्न हो गया। आदेश दिया—'राजा और रानी दोनो बन्दी बनाकर उसके सम्मुख उपस्थित किये जाय।'

दीधित अपनी स्त्री सहित बन्दी बना लिया गया। उनकी भुजाये पीठ पर कसी गयी। बॉध दी गयी। उनका सर मुडवा दिया गया।

नगाडा वजाया गया। नगर के सडको पर, विशाख पर, राजा-रानी अत्यन्त दीन रूप मे घुमाये जाने लगे। अपमानित किये जाने लगे। उनके शत्रुओ की ऑखे भी उनकी इस दुर्दशा पर भर आयी।

× × ×

दीर्घायु को माता-पिता के देखने की इच्छा हुई। वह नगर मे आया। उसने भीड देखी। कोलाहल सुना। उसकी ऑखो ने देखा विचित्र दृश्य।

नगरवासी उसके बन्दी माता का अपमान कर रहे थे। ताना मार रहे थे। पुत्र का मन बिगड गया। प्रतिशोध की भावना उग्र हो उठी। माता-पिता के समीप आया।

दीधित ने प्रिय पुत्र को समीप आते देखा। उसने सप्रेम कहा

'तात ! तुम छोटा और बडा देखो। वैर से वैर शान्त नही होता। अवैर से ही वैर शान्त होता है।'

बन्दियो ने कोसलराज का कहना प्रलाप समझा। वे कहने लगे—

'दीर्घायु उसका कौन होता है ? मृत्यु भय का यह प्रलाप मात्र है।'

'भणे !' कोसलराज ने शान्त स्वर मे कहा —मेरी बात वही समझ सकेगा जो विज्ञ होगा। यह मेरा वृथा प्रलाप नही है।'

कोसलराज ने पुत्र को सकेत किया। जो कह रहा था। पुत्र उसका पालन करे। वन्दियो ने दीधित को आगे बढा दिया। उसके पीछे-पीछे बालको की भीड शोर करती चली। कुछ नर-नारी दु खी हुए। कुछ ने मुख बिचका दिया। किसी को कौतूहल हुआ। लेकिन किसी दिन के कोसलराज को इस दयनीय स्थिति मे देखकर शायद ही कोई सदय हृदय वहाँ था, जो द्रवित नही हुआ।

कोसलराज कहते जाते थे—'मै उन्मत्त नही हूँ। मै कहता हूँ। वैर को अवैर से जीतो। शत्रुता को अशत्रुता से जीतो। बैर से बैर उत्पन्न होता है। मैत्री से मैत्री होती है।'

× × ×

पुत्र दीर्घायु पिता का छिपते हुए से अनुसरण करता रहा। राज्य कर्मचारी बन्दी कोसलराज तथा राजमहिषी को लेकर नगर के दक्षिण ओर चले। दक्षिण दिशा गमन देखते ही लोग समझ गये। वध-स्थल जा रहे थे। राजा का वध होगा।

राजा और रानी वध-भूमि मे पहुँचे। उनका वध कर दिया गया। पति-पत्नी ने एक शब्द काशीराज के विरुद्ध नही कहा। दण्ड सहर्ष स्वीकार किया। पति-पत्नी के छिन्न मस्तक लुण्ठित हो गये। दीर्घायु ने देखा। उसने सयम का परिचय दिया। आँसू मूक रहे। हृदय धडक कर रह गया। जिह्वा डोली नही। कण्ठ फूटा नही। और पति-पत्नी का, उसके माता पिता का रक्त एक मे मिलकर भूमि पर सूखने लगा।

रक्त जड थे। और दोनो रक्तो का प्रतीक चेतन दीर्घायु दूर छिपा था।

राजाज्ञा के अनुसार उनके शरीर चार भागो मे काटे गये। चारो दिशाओ मे चारो भाग रख दिये गये। उन पर पहरा बैठा दिया गया।

× × ×

दीर्घायु वध-भूमि मे आया। वाराणसी से मदिरा लाया था। प्रहरियो को मदिरा खूब पिलाया। मदिरा पान कर वे बेहोश हो गये। वही लोट गये।

दीर्घायु ने शवो के खण्डित अगो को एकत्रित किया। लकडी एकत्रित की। चिता बनायी। चिता मे अग्नि दी। दाह किया। पुत्र धर्म का पालन किया। जिसके लिये माता-पिता ने उसे जन्म दिया था। पाला था। पोषा था। उसने चिता की अजलिबद्ध तीन बार प्रदक्षिणा की।

× × ×

काशीराज चतुर शासक था। प्रत्येक घटना का सूक्ष्मतापूर्वक अनुकरण कर रहा था। वह जानना चाहता था। राजा के कितने शुभचिन्तक नगर मे थे।

काशीराज प्रासाद पर चढ गया। जलती चिता की ओर देखा। उसने दीर्घायु को क्रिया करते देखा। उसे अपने गुप्तचरो पर क्रोध आया। उसके नगर मे कोसलराज का रक्तज सम्बधी रहता था। उसकी सूचना उसे नही दी गयी थी। अपने ऊपर झुँझलाया। शासन व्यवस्था पर झुँझलाया। उसने दीर्घायु को अग्नि देता देखा था। अपने लिये अनर्थ समझा।

× × ×

दीर्घायु निवृत्त हुआ। राज-भवन के पास आया। हस्तिशाला मे गया। महावत के पास पहुँचा। निवेदन किया। शिल्प सीखना चाहता था। महावत ने उसे होनहार युवक समझा। रख लिया। महावत का माणवक बन गया। राजा के समीप रहता हुआ, राजा की दृष्टि से बच गया।

दीर्घायु वीणावादक था। दिन भर हाथियो की सेवा करता। हाथी शिल्प सीखता। प्रत्यूष काल मे उठता। वीणा पर मजु स्वर से गाता।

राजा ने एक दिन जिज्ञासा की। प्रत्यूष काल मे कौन मंजु स्वर मे वीणा वादन करता था। कौन वीणा पर गोत गाता था।

उसे मालूम हुआ। माणवक वीणा वादन करता था। राजा ने उसे बुलाया। दीर्घायु को देखा। उसके शरीर मे शुभ लक्षण थे। वह माणवक से प्रभावित हुआ। उसने सस्नेह पूछा .

'माणवक ! क्या प्रत्यूप काल में तुम वीणा वादन करते हो ?'

'हाँ, देव !' दीर्घायु ने सविनय कहा।

'गाओगे।'

'देव ! आज्ञा'

'भणे ! मै तुम्हारा मजु स्वर सुनना चाहता हूँ।'

'देव ! वीणा लाऊँ।'

'माणवक ! लाओ।'

माणवक की वार्ता से राजा आकर्पित हो गया। राजा के सम्मुख वह किंचित् मात्र भयभीत नही हुआ था। राजा और अपनी विपरीत स्थिति के कारण हीनता ग्रन्थि की भावना नहीं हुई। समान स्थिति के व्यक्ति सदृश बात कर रहा था। युवक का यह भाव देखकर राजा प्रसन्न हुआ। उसे अच्छा लगा।

× × ×

राजा ने माणवक का वीणा वादन सुना। गीत सुना। मजु स्वर मे विचित्र आकर्षण था। सुनते रहने का मन करता था। राजा उसकी कला से सन्तुष्ट हो गया। उसने स्नेह से कहा ·

'भणे ! तुम यहाँ रहोगे ?'

'देव की आज्ञा।'

'यही मेरी सेवा मे रहो।'

'देव !'

दीर्घायु ने शिरसा नमन कर आभार प्रकट किया।

× × ×

दीर्घायु की सेवा से राजा प्रसन्न हो गया। दीर्घायु राजा के उठने

के पूर्व उठता था। राजा के सो जाने पर सोता था। प्रियचारी था। प्रियवादी था। प्रिय सेवक था।

कालान्तर मे दीर्घायु ने राजा का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया। राजा ने उसे अन्तरग विश्वसनीय स्थान पर नियुक्त किया। माणवक ने शनै शनै अपनी कार्य-कुशलता का परिचय दिया। शिष्ट व्यवहार से सबको मोह लिया।

× × ×

मृगया निमित्त काशीराज का कार्यक्रम निश्चित हुआ। सेना तैयार हुई।

राजा ने दीर्घायु से कहा :

'भणे। रथ योजित करो।'

'देव !'

'मृगया निमित्त चलेंगे।'

'देव। जिसका काल समझे।'

दीर्घायु ने शिरसा नमन किया।

× × ×

रथ चला जा रहा था। वेग से जा रहा था। सारथी दीर्घायु था। राजा अकेले रथ पर थे। रथ ने सेना का साथ त्याग दिया। बढता गया। सेना पीछे रह गयी। केवल सारथी, रथ, तथा राजा थे। रथ सेना मार्ग से विपरीत दिशा की ओर चला। राजा को ज्ञान नही था। रथ किस ओर जा रहा था। दीर्घायु नीरव था। रथ वेगशील था। राजा बैठे-बैठे शिथिल हो गये। राजा ने कहा ·

'भणे। रथ रोको।'

'देव !'

'मै थक गया हूँ।'

'देव।' दीर्घायु ने रथ रोका।

'लेटूंगा।' राजा ने शिथिल स्वर मे कहा।

'देव आज्ञा।' दीर्घायु रथ से उतर गया।

राजा ने देखा। घोर जगल था। सेना का कही पता नही था। राजा

रथ से उतरा। कुछ हटकर छाया मे बैठ गया। अश्वों को दीर्घायु ने रथ से खोल दिया। रास एक वृक्ष से बाँध दिया। अश्व हरित दूर्वादल चरने लगे। राजा ऊघने लगा। दीर्घायु बैठ गया। राजा ने दीर्घायु के पालथी पर मस्तक रख दिया। उसे सुख मिला। निद्रा आयी। वह सो गया। अस्त्र-शस्त्र बगल मे पडे रहे।

दीर्घायु ने राजा के सुप्त मुख की ओर देखा। उसके उस ओष्ठ की तरफ देखा जिसने माता-पिता के वध का आदेश दिया था। उस कण्ठ को देखा। जिससे वध की वाणी निकली थी। उस मूर्धा को देखा। जिसमे वध का विचार उठा था। उन गुप्त नेत्रो को देखा। जो माता-पिता के शव के चार दिशाओ मे फेकते देखकर प्रसन्न हुए थे। श्मशान भूमि मे उसे देखकर चकित हुए थे। शायद मिल जाने पर उनका कोप भाजन हुआ होता। मारा जाता। उन कानो को देखा। जो कोसलराज के राज्य, धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य को काशीराज्य मे विलीन होने का शुभ समाचार सुने थे। उन हाथो को देखा। जो शस्त्र धारण कर कोसलराज की ओर से सेना मे प्रयाण किये थे। और देखा उस समस्त शरीर को। जिनके कारण वह राजपुत्र होकर सेवक बना फिरता था। बेघर बना था। बिना माता-पिता के बना था।

उसने सोचा। सुअवसर था। शत्रु से बदला लिया जाय। प्रतिहिसा की भावना जागृत हो गयी।

प्रतिशोध की लहरियाँ हृदय मे उठने लगी। उसने बगल मे रखा खड्ग उठाया। म्यान से निकाला। पिता की करुण वन्दी दशा उसे याद आयी। माता की दयनीय अवस्था याद आयी। और याद आया पिता का अन्तिम वचन। उसने कृपाण पुन' म्यान मे रख दी। उसका हृदय भर आया।

काशीराज अकस्मात् जाग उठा। उद्विग्न बैठ गया। उसके नेत्रो मे भय था। त्रस्त था। शकित था। दीर्घायु ने मृदु स्वर मे पूछा

'देव ! आप जाग उठे ?'

'हा माणवक !'

'देव ! आपकी मुद्रा भयाकुल है !'.

हाँ माणवक ! मैने भयकर स्वप्न देखा है !'

'क्या स्वप्न था देव ?'

मैने देखा जैसे कोसलराज के कुमार दीर्घायु ने मेरी हत्या खड्ग से कर दी है।'

'ओह!'

दीर्घायु उठ खडा हुआ। उसने खड्ग निकाल लिया। राजा के सर को पकड लिया। राजा चकित हुआ। राजा ने अनुभव किया। युवक दीर्घायु उससे अधिक बली था। राजा काँप उठा। मृत्यु उसके सम्मुख नग्न रूप से नाचने लगी। स्वप्न की बाते जैसे सच्ची होने जा रही थी। राजा कातर हो गया। दीर्घायु ने कहा .

'राजन्! मै कोसलराज दीधित का पुत्र दीर्घायु हूँ।'

राजा सिहर गया। चारो ओर अन्धकार छा गया। शरीर मलिन हो गया। मस्तक झुक गया। साहस टूट गया। सेवक की ओर आँख उठाकर नही देख सका। कण्ठ सूखने लगा। जिह्वा तालू से लग गयी। नेत्रो की पुतलियाँ श्वेत हो गयी। ललाट स्याह पड गया। गात्र कम्पित हो गया। दीर्घायु ने कहा

'देव! आप हमारी विपत्ति के कारण है। आपने हमारा राज्य लिया। प्रासाद लिया। वैभव लिया। सुख लिया। हम भिखारी बने। माता-पिता ने ससार त्यागा। प्रव्रजित हुए। आप उसे भी नही देख सके। उनका वध करा दिया। उनके शरीर के चार खण्ड करा दिये। चारो दिशाओ मे फेकवा दिये। क्या यह समय नही है ? मै अपनी पुरानी शत्रुता का प्रतिशोध लू ?'

राजा का शरीर उसकी कटि पर झुक गया। वह अपने कर्म पर लज्जित था। पश्चात्ताप उसे घेरने लगा। विपत्ति ने, जीवन भय ने, कातर बना दिया। राजोचित वीर्य, राजोचित ओज, राजोचित गाम्भीर्य, राजोचित साहस, सबने उसका साथ त्याग दिया।

राजा इतना कातर हो गया कि सेवक दीर्घायु के चरणो पर मस्तक रख दिया। उसकी आँखो से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। वह आर्तनाद कर उठा।

'मुझे जीवन दान दो। तात! मुझे जीने दो। मत मारो, मत मारो, मत मारो।'

राजा के आर्तनाद से नीरव जगल किंचित् गूँज उठा। पक्षियाँ

शाखाओं मे फड़फडाने लगी। भयभीत हुई। कुछ दूर पर विहरते मृग प्राण भय से सचेत हुए। भाग खडे हुए। दीर्घायु ने कहा ·

'देव! जीवन दान दूँगा।'

'दीर्घायु, दीर्घायु-तुम-तुम ओह—।'

राजा प्रसन्न हो गया। उसकी जीवनश्री पुन: लौटने लगी।

'एक शर्त है।'

'कहो दीर्घायु! कहो। मै सब कुछ करूँगा। जल्दी कहो!'

'मुझे भी जीवनदान आप दीजिये।'

'ओह—निश्चय।'

दीर्घायु ने राजा का मस्तक छोड दिया। राजा भूमि पर गिरते-गिरते बचा। खडा हो गया। उसने खड्गधारी दीर्घायु को ऊपर से नीचे तक एक बार देखा। दीर्घायु की आँखो मे क्रोध नही था।

'देव! शपथ लीजिये।'—दीर्घायु ने खड्ग को नीचे करते हुए कहा:

'क्या?'

'हम परस्पर द्रोह नही करेगे।'

'लेता हूँ बस इतना ही? दीर्घायु तुम कितने अच्छे हो?'

राजा और दीर्घायु ने शपथ लिया। दोनो मित्र होगे। काशिराज ने कहा

'भणे! रथ योजित करो।'

दीर्घायु नि शक खड्ग म्यान मे कर लिया। भूमि पर राजा के सम्मुख रख दिया। निहत्थ रथ जोतने लगा। राजा का साहस नही हुआ। शपथ भग करे। दीर्घायु पर आक्रमण करे।

दीर्घायु रथ लाया। राजा रथारूढ़ हुआ। वह गम्भीर था। मार्ग पर्यन्त कुछ बोला नही। दीर्घायु चुप रहा। दोनो अपने विचारो मे लीन थे।

रथ सेना से मिल गया। राजा ने सेना सहित नगर मे प्रवेश किया।

× × ×

राज परिषद एकत्रित थी। अमात्यगण एकत्रित थे। राजकुल पुरुष

एकत्रित थे। राजा ने उन्हे सम्बोधित किया :

'भणे ! यदि कोसलराज के पुत्र दीर्घायु को आप पा जायँ तो क्या करेगे ?'

लोग कृत्रिम, अकृत्रिम क्रोध से बोलने लगे '

'उसका पैर काट लेगे ?'

'हाथ पैर काट लेगे ?'

'हाथ काट लेगे।'

'हाथ-पैर दोनो काट लेगे।'

'कान काट लेगे।'

'नाक-कान दोनो काट लेगे।

'सिर काट लेगे।'

दीर्घायु राजा के समीप सविनय खड़ा था। बाते सुन रहा था। उसे हँसी आ रही थी। राजा ने सबकी बात सुनी। लोगो की बातो की कोई प्रतिक्रिया राजा पर नही हुई। वह क्रोधित नही हुआ।

'तात ! यह दीर्घायु है।'

राजा ने दीर्घायु की ओर सकेत किया। लोग माणवक को देखकर स्तब्ध हो गये। किसी का साहस आगे बढने का नही हुआ। अग-भग की बात करने वाले बगल झांकने लगे। राजा ने कहा

'तातो ! मैने उसे जीवन दान दिया है।'

'तो—!'

'उसने मुझे भी जीवन दान दिया है।'

'अच्छा—!'

'हाँ ! आप उसका कुछ अनिष्ट नही कर सकेंगे। हम मित्र है।'

सबका मस्तक नत हो गया। बढ-बढकर बोलने वाले लज्जित हुए। भयभीत हुए। सोचकर कही दीर्घायु मे प्रतिहिंसा की भावना उदय न हो जाय। जिन्होने कोई विचार नही प्रकट किया था। वे प्रसन्न थे।

राजा ने दीर्घायु से पूछा '

'तात ! दीर्घायु !! तुम्हारे पिता ने अन्तिम समय तुमसे जो कुछ कहा

था। उसे हम विस्तार से सुनना चाहते है। तुमने उसका क्या अर्थ समझा था।'

दीर्घायु चुप था।

' 'मत बडा' का क्या अर्थ था।' राजा ने पूछा।

'पिताजी के कहने का अर्थ यह था कि चिर कालतक वैर मत करो।'

' 'मत छोटा' कहा था।'

'देव ! उसका अर्थ था। मित्रो से जल्दी बिगाड मत करो।'

'माणवक ! तुम्हारे पिता ने कहा था—वैर से वैर शान्त नही होता। अवैर से ही वैर शान्त होता है—इसका क्या अर्थ था ?'

पिता के कहने का अर्थ था देव। यदि अपने पिता की प्रतिहिसा भाव से प्रेरित होकर आपको मारता तो आपके हितचिन्तक मुझे प्राण से मार डालते। और मेरे हितचिन्तक मुझे मारने वाले को प्राण से मार डालते। यह मारने की शृखला कभी टूटती नही। अतएव देव ! अवैर से वैर शान्त होता है।'

'आश्चर्य ! दीर्घायु आश्चर्य !! पिता ने अत्यन्त सक्षेप मे तुमसे वाते की थी। उसका तुमने इतना उत्तम ठीक अर्थ समझा।'

दीर्घायु ने राजा को प्रणाम किया।

× × ×

काशीराज ने अपनी कन्या का विवाह दीर्घायु से कर दिया। उसका राज्य लौटा दिया। उसकी सेना, सम्पत्ति सब कुछ लौटा दिया और अवैर से वैर दोनो राज्यो का शान्त हो गया।

●

आधार ग्रन्थ :

विनय पिटक महावग्ग १० १ ७

दीधिति कोसल जातक

सघभेदक जातक

कोशम्वी जातक

उपक्किलस सुत्त
Vin I 342
J III 211; 487

नोट धम्मपद मे यह कथा दूसरी तरह से दी गयी है।—एक ब्राह्मण अपने शिशु के साथ दीघलम्बक विहार मे भगवान् के पास आया। पिता तथा माता ने भगवान् को प्रणाम किया। भगवान् ने उन्हे दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया। शिशु के प्रणाम करने पर मौन हो गये। कारण पूछने पर बताया। शिशु का जीवन केवल एक सप्ताह मात्र का है। उपाय पूछने पर रात-दिन परित्राण सूत्र का पाठ करने को कहा। आठवें दिन लेकर माता-पिता पुन भगवान् के पास आये। भगवान् ने शिशु के प्रणाम कहने पर उसे 'दीर्घायु' का आशीर्वाद दिया। पूछने पर उत्तर दिया 'शिशु की आयु १२० वर्ष होगी।' अतएव शिशु का नाम दीर्घायु रखा गया।

दीधिति कोसल जातक (न० ३७१) में इस कथा का उत्तरार्व अग किसी रूप मे मिलता है। सघ भेद जातक मे कहा जाता है। यह कथा है। यदि कोसम्बी जातक से तात्पर्य है तो यह एक तरह से ठीक माना जायगा।

उपक्किलस सुत्त मे इसका स्वल्पाश मिलता है।

शृगाल[1]
(सिगाल)

एक समय भगवान् राजगृह मे थे। वेणु वन मे थे। वेणु वन के कलन्द निवाप मे विहार कर रहे थे।

राजगृह वासी सिगाल गृहपति पुत्र वहाँ का वासी था। राजगृह से प्रत्यूष काल मे निकला। प्रात काल स्नान किया। उसने तरल शरीर, तरल वस्त्र, तरल केश से दोनो हाथ जोडकर, पूर्व दिशा को नमस्कार किया। दक्षिण दिशा को नमस्कार किया। पश्चिम दिशा को नमस्कार किया। उत्तर दिशा को नमस्कार किया। अपने पैरो पर कुम्हार के चाक की तरह पूर्व से उत्तर की तरफ घूमा। तत्पश्चात् उसने छहो दिशाओ को नमस्कार किया। ऊर्ध्व दिशा को नमस्कार किया। सभी दिशाओ को उसने करबद्ध नमस्कार द्वारा वन्दना किया।

× × ×

पूर्वाह्ण काल आया। तथागत सुआच्छादित हुए। चीवर लिया। पात्र लिया। राजगृह मे प्रवेश किया। सिगाल को नाना दिशाओ को नमस्कार करते हुए देखा। ठहर गये। मृदु स्वर मे बोले·

'गृहपति पुत्र! क्या प्रात काल सर्वदा तू नमस्कार करता है?'

'हा भन्ते!'

'क्यो आवुस?'

'मेरे पिता ने अपनी अन्तिम इच्छा यही प्रदर्शित की थी। मै

---

(१) सिगाल सुत्त उपासक, गृहस्थ और सामाजिक जीवन के सम्बन्ध मे, कर्त्तव्य पथ की ओर इगित करता है। बौद्ध साहित्य मे गृह विनय अर्थात् ग्रह-विनय नाम से प्रसिद्ध है।

अपदान के अनुसार सिगाल माता इस सिगाल की माता थी।

दिशाओ को नमस्कार करूँ। वन्दना करूँ। पूजा करूँ।'

'तुम नित्य उसका पालन करते हो ?'

'हाँ, भन्ते!' मै अपने पिता के दिये गये वचनो का सत्कार करता हूँ। गुरुकार करता हूँ। सम्मान करता हूँ।'

'गृहपति! आर्य धर्म मे इस प्रकार ६ दिशाओ को नमस्कार करने का विधान नही है।'

'भन्ते! आर्य धर्म मे किस प्रकार दिशाओ को नमस्कार किया जाता है। कृपा कर बताइये।'

'सुनोगे, कहूँ ?'

'हाँ, भन्ते!'

'गृहपति पुत्र! आर्य श्रावक के चारो कर्म क्लेशो का तिरोधान हो जाता है। चारो स्थानो से वह पाप कर्म से विरत हो जाता है। भोगो को विनाश करने वाले छह अपाप के मुखो का सेवन नही करना। चौदह पापो से रहित वह छठो दिशाओ को आच्छादित कर लेता है। दोनो लोको पर विजय निमित्त सलग्न हो जाता है। वह इस लोक को आराधित करता है। और परलोक को आच्छादित करता है।'

'और मरने पर ?'

'इस काया के विसर्जन पर सुगति स्वर्गलोक मे जन्म लेता है।'

'वे चारो क्लेश क्या है भन्ते ?'

'सौम्य! वे है—प्राणातिपात हिंसा, अदत्तादान, मृषावाद, और काम मिथ्याचार।'

'भन्ते!'

'सौम्य! पण्डित इन चारो हिसा, चोरी, झूठ और परस्त्रीगमन की प्रशसा नही करते।'

'पाप कर्म के कौन चार स्थान है भन्ते ?'

'सौम्य! छन्द अर्थात् राग भगई में मार्ग स्थान मे जाकर पाप करता है। द्वेष के मार्ग मे जाकर पाप कर्म करता है। मोह मार्ग मे जाकर पाप कर्म करता है। भय के मार्ग मे जाकर पाप करता है।'

'भन्ते—!'

'सौम्य ! इन मार्गो से जो जाकर पाप कर्म करता है कृष्णपक्ष के शशि तुल्य उसका यश क्षय होता जाता है।'

'और जो नही करता—'

'सौम्य ! वह शुक्ल पक्ष के चन्द्र को कला के समान नित्य बढता जाता है।'

'भन्ते ! कौन-से छह भोग विनाश के कारण है ?'

'सौम्य ! मद सेवन, विशिखा चर्या अर्थात् विकाल मे चौरास्ते का प्रभाव समज्या अर्थात् नृत्य तथा तमाशो का सेवन, जुआ, पाप मित्रों की मैत्री और आलस्य।'

'उन छओ के सेवन से क्या होता है भन्ते ?'

'सौम्य ! उनसे छह दुष्परिणाम निकलते है। तत्काल धन की हानि होती है। कलह की वृद्धि होती है। व्याधियाँ घर कर लेती है। लज्जा का नाश होता है। बुद्धि दुर्बल होती है।'

'और भन्ते।'

'आवुस ! मित्र अमित्र को पहचानना चाहो।

'भन्ते ! मित्र कौन है ?'

'आवुस ! मित्र रूप मे अमित्र होते है। शत्रु है।'

'किस प्रकार ?'

परधनहरण, वकवादी, खुशामदी, नाश मे सहायक इस प्रकार के व्यक्ति मित्र होकर भी शत्रु होते है।'

'और मित्र ?'

'आवुस !' जो उपकारी है। समान सुख-दुःखी है। हितवादी है। अनुकम्पक है। इस प्रकार के मित्र, व्यक्ति माता-पिता तथा पुत्र की भाँति सेवा करता है। सदाचारी पण्डित मधुमक्खी के समान भोगो का सचय करता है। प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाश युक्त होता है। वह भोग को चार भागो मे विभक्त करता है। एक का स्वय भोग करता है। दो भोगों को काम मे लाता है। चौथे भाग को आपदकाल के लिए रख छोड़ना चाहिए।'

'और दिशायें—?'

'गृहपति पुत्र ! माता-पिता आचार्य, पत्नी, मित्र, सेवक तथा साधुओ की सेवा करना ही छह दिशाओ को नमस्कार करना है।'

'माता-पिता आदि की क्या दिशा है भन्ते ?'

'आवुस ! माता-पिता पूर्व दिशा है। आचार्य दक्षिण दिशा है। पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा है। मित्र और मन्त्री उत्तर दिशा है। दास कर्मकार अधो दिशा है। श्रमण ब्राह्मण ऊर्ध्व दिशा है।'

भगवान् ने विस्तार के साथ उनकी व्याख्या की। उसे समझाया। वह चकित होकर बोल उठा :

'आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत !!! भन्ते !!!!

●

आधार ग्रन्थ :

दीघ निकाय ३ ८
(सिगाली वाद सुत्त)
D III 180-93
Ap II 604

सिगाल माता

राजगृह मे एक श्रेष्ठिकुल था। सिगाल माता उस कुल की थी। उनका विवाह हुआ। विवाह के पश्चात् उसे एक पुत्ररत्न हुआ। उसका नाम सिगाल था।

सिगाल माता ने भगवान् का एक दिन उपदेश सुना। श्रोतापन्न हुई। ज्ञान चक्षु खुले। बुद्ध शासन मे प्रवेश किया। भगवान् का उपदेश सुनने जाती थी। भगवान् के भव्य व्यक्तित्व एवं सौन्दर्य को निरखती रहती थी।

भगवान् ने उसकी चित्त-वृत्तियो का लक्ष्य किया। उन्होने उसे उपदेश दिया। कालान्तर मे वह अर्हत पद प्राप्त की।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे, भिक्षु श्रावको-श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे चौवन्नवा तथा भिक्षुणी श्राविकाओ मे तेरहवां स्थान प्राप्त, मगध, राजगृह, श्रेष्ठी कुलोत्पन्न, सिगाल माता, श्रद्धावानो मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ :

पालि थेरी अपदान ४ ४ ८२-११०

अगुत्तर निकाय १ १४

A I 25

A A I 206

Ap II 603

वक्कुल

राजगृह था। वेणु वन था। कलन्दन निवाप था। आयुष्मान् वक्कुल वहाँ विहार करते थे। अस्सी वर्ष की आयु मे प्रव्रजित हुए थे। सात दिन तक उन्हे ज्ञान नही हुआ था। आठवे दिन उनके ज्ञान चक्षु खुले। वे अर्हत हो गये।

वक्कुल जब गृहस्थ थे। उस समय उनका एक मित्र था। उसका नाम अचेल काश्यप था। अचेल नग्न था। एक समय अचेल काश्यप भिक्षु वक्कुल के समीप आया। समोदन कर एक ओर बैठ गया। अचेल[1] काश्यप ने वक्कुल से पूछा

'आयुष्मान्! आपको प्रव्रज्या लिये कितना समय हुआ ?'

'आवुस! अस्सी वर्ष।'

'इस दीर्घ काल मे आपने कितनी बार मैथुन सेवन किया है ?'

'आवुस! इस प्रकार प्रश्न नही पूछना चाहिए ?'

'किस प्रकार पूछूँ आवुस!'

'भद्रतापूर्वक पूछ सकते है। कितनी बार काम सज्ञा हुई है ?'

'यही सही आवुस!'

'एक बार भी नही ?'

'आश्चर्य।'

'इस अस्सी वर्ष के काल मे द्वेष सज्ञा क्या है ? मै नही जान सका।'

'अद्भुत आपका धर्म है।'

---

(१) अचेल यह एक नग्न अर्थात् दिगम्बर साधु थे। वह भगवान् से उजुञा स्थान कन्न कत्थल मृगदाव मे मिले थे। उनके विचार तथा सवाद कश्यप सिहनाद सुत्त मे लिपिबद्ध है। वह वक्कुल के पुराने मित्र थे। इन्होने बुद्ध शासन स्वीकार किया था।

'मै विहिसा सज्ञा भी नही जानता। काम वितर्क सज्ञा नही जानता। व्यापाद वितर्क नही जानता। विहिसा वितर्क नही जानता।

'गृहस्थो द्वारा दिया नवीन वस्त्र धारण किया यह भी नही जानता। अस्त्र द्वारा (कैची से) चीवर काटना नही जानता। सुई से चीवर सीना नही जानता। वर्षान्ति मे प्राप्त चीवर सीना नही जानता। सब्रह्मचारियो के चीवर को बनाना नही जानता।

'निमन्त्रणो मे जाना नही जानता। मै निमन्त्रित किया जाऊँ। इस प्रकार की भावना चित्त मे उत्पन्न नही होती। अन्तर्गृह (गृहस्थ के घर) मे बैठना नही जानता। अन्तर्गृह मे भोजन करना नही जानता। मातृ-ग्राम (नारियो) के आकार प्रकार को ध्यान मे लाना नही जानता। मातृग्राम को चार पद की गाथा तक उपदेश धर्म को नही जानता।

'भिक्षुणियो के उपाश्रय (निवास) मे जाना नही जानता। भिक्षुणियो को धर्म उपदेशने को नही जानता। श्रामणेरी के धर्म उपदेशने को नही जानता। प्रव्रज्या, उपसम्पदा, निश्रय, को नही जानता। श्रामणेर से कभी सेवा लिया है। नही जानता। जन्तागृह (स्नान गृह) मे स्नान करना नही जानता। चूर्ण से स्नान करना नही जानता। सब्रह्मचारियो से मालिश कराना नही जानता।

'क्षण मात्र के लिये व्याधि की उत्पत्ति नही जानता। हड मात्र औषधि कभी ग्रहण किया है। नही जानता। अप्रश्रपण (चारपाई) बिछाना नही जानता। शय्या पर सोना नही जानता। वर्षा वास मे ग्राम के अन्दर निवास करना नही जानता।'

'आश्चर्य! वक्कुल! अद्भुत आवुस!'

'आवुस! केवल मैने सात दिनो तक चित्तमल युक्त अनर्हत रहकर राष्ट्रपिण्ड खाया था।'

'तत्पश्चात्—?'

'आवुस! आठवे दिन आज्ञा (अर्हत्व) उत्पन्न हुई। इसे भी मै नही जानता।'

'आयुष्मान् वक्कुल! मै इस विनय मे प्रव्रज्या पाऊँ। उपसम्पदा पाऊँ।'

'धन्यवाद—अचेल !'

× × ×

अचेल काश्यप ने प्रव्रज्या पायी। उपसम्पदा पायी। एकाकी, एकान्तवासी, प्रमाद रहित, उद्योगी, आत्मसयमी, होकर विहरते रहे। आयुष्मान् काश्यप अर्हतो मे एक हुए।

× × ×

एक समय वकुल्ल शान्त बैठे थे। उनके मुख से अनायास उदान निकला

'वे सुख स्थान से वचित होते है, जो प्रथम करणीय को पश्चात् करना चाहते है। उन्हे पश्चात्ताप होता है। जो कर्म किया जाय, उसे कहना उचित है। जिसे न किया जाय, उसका कहना अनुचित है। जो बिना कर्म किये बात करता है। उसका ज्ञानियो को ज्ञान हो जाता है। सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा निर्देशित निर्वाण सुखकर है। शोक रहित है। रज रहित है। वह क्षेम है। वहाँ दु ख का निरोध हो जाता है।'

समय बीतता गया। एक समय आयुष्मान् वक्कुल अपापूरण (कुजी) लेकर एक विहार से दूसरे विहार मे भ्रमण करने लगे। वे घोषित करते थे ·

'आयुष्मानो ! बाहर निकलो। बाहर निकलो। आज मै परिनिर्वाण प्राप्त करूगा।'

× × ×

आयुष्मान् वक्कुल भिक्षु सघ मे बैठे थे। वही बैठे-बैठे उन्होने परिनिर्वाण प्राप्त किया।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे तैतीसवा स्थान प्राप्त वत्सदेश, कौशाम्बी निवासी, वैश्य कुलोत्पन्न, वक्कुल निरोगो मे अग्र हुए थे। ●

आधार ग्रन्थ

थेर गाथा १७२ उदान २२५-२२७

मज्झिम निकाय ३ ३ ४

मि० प्रश्न ४ ५ ४४

Ap I 328-9
PsA 491
DA II 413
EGAMA I 348
A 1 25
pA I 168, II 569.
MA II 928, III : 125
ThagA I 434

नोट वक्कुल के विषय मे एक कथा और बौद्ध साहित्य मे प्रचलित है। कौशाम्बी मे धात्री उन्हे स्नान कराने यमुना नदी मे ले गयी। वह नदी मे फिसल गये। एक मछली उन्हे निगल गयी। मछली को एक मछुए ने बनारस मे पकड लिया। वाराणसी के श्रेष्ठी के हाथ मछली बेच दिया। मछली काटी गयी। वक्कुल उसमे से जीवित निकला। श्रेष्ठी की स्त्री ने उसे अपना पुत्र बना लिया। विवाद निपटाने के लिए राजा ने कहा दोनो कुल उसे अपना पुत्र मानेंगे। अतएव उसका नाम 'वाकुल' पडा था।

वर्तमान और कालान्तर

भगवान् सुह्म[1] देश मे थे। शिलावती मे विहार कर रहे थे। भगवान् के स्थान से कुछ हट कर अनेक अप्रमादी, उद्योगी, सयमी विहार कर रहे थे।

मार ने ब्राह्मण का वेश बनाया। वृद्ध बन गया। कमर झुकी थी। मूर्धा पर बडी-बडी जटा थी। लटिया गयी थी। मृग-चर्म पहने था। टुकुर-टुकुर देखता था। गूलर दण्ड हाथ मे लिये था। भिक्षुओ के पास पहुँचा। उनसे बोला .

'ओह ! आप लोग प्रव्रजित है। अत्यन्त तरुण है। आपके केश काले है। आप प्रथम यौवन से युक्त है। भद्र है। ससार के कामो से अनभिज्ञ है। ससार सुख से अनभिज्ञ है।

'तो—।' भिक्षुओ ने पूछा।

'युवको ! भद्रो !! आप लोग मनुष्य योग्य कर्मों को करिये। आप क्यो कालान्तर के चक्कर मे पड़े है। पहले वर्तमान को देखिए। भविष्य मे क्या है ! कौन जानता है ?'

'ब्राह्मण !' भिक्षुओ ने उत्तर दिया। हम कालान्तर के पीछे नही भाग रहे है। हम वास्तव मे कालान्तर को त्याग कर वर्तमान के पीछे धावित है।'

'क्यो—?'

'तथागत ने कामों को दु:खदायी बताया। उन्हे दुष्परिणामो का मूल बताया है। उन्हे कालिक अर्थात् कालान्तर कहा है।'

'ओह—वर्तमान मे क्या होगा ?'

'ब्राह्मण ! यह धर्म वर्तमान मे फलप्रद होता है। यह भविष्य के

---

(१) सुह्म देश हजारीबाग और सथाल परगना के कुछ भूखण्ड। शिलावती एवं सेत कण्डिक निगम उक्त भूखण्ड मे थे।

लिए नही है। कालिक नही है। इसे हम अपनी आँखो वहाँ देख सकते है। इसके पास पहुँच सकते हैं। इस शरीर मे पण्डितो द्वारा अनुभव करने योग्य है।'

वृद्ध ब्राह्मण ने सर हिलाया। लकडी टेकता, कमर पर उठता झुकता, श्वेत सन जैसे बालो को हवा मे उडाता, जीभ बाहर निकालता, भीतर करता, चला गया।

× × ×

श्रावस्ती थी। अनाथपिण्डक का जेत वन था। भगवान् आराम मे विहार कर रहे थे। भिक्षु परिषद् समवेत थी। भगवान् ने भिक्षुओ को सम्बोधन किया

'भिक्षुओ !'

'भदन्त !'

'भद्रेकाक्त की बात करूँगा।'

'भन्ते ! कहिए।'

'अतीत के पीछे मत दौडो। भविष्य की चिन्ता मे मत पडो। अतीत नष्ट हो चुका है। भविष्य निकट भविष्य में नही आ सकेगा। वर्तमान धर्म को सब स्थान पर देखना चाहिए। कर्त्तव्य-पथ मे अविलम्ब आज ही आरूढ होना चाहिए। कौन कह सकता है। कल मृत्यु हो जाय। मृत्यु महासेना के आगमन का कोई समय निश्चित नही है। आलस्यहीन दिवा-रात्रि उद्योगी इस प्रकार विहरता है। वह शान्त मुनि भद्रेकाक्त कहा जाता है।

'अतीत का अनुगमन व्यक्ति करता है। अतीत काल में उसका सुन्दर रूप था। उस रूप के कारण उसमे राग उत्पन्न होता है। वेदना उत्पन्न होती है। सज्ञा उत्पन्न होती है। सस्कार उत्पन्न होता है।'

'भन्ते ! किस प्रकार अतीत का अनुगमन नहीं किया जा सकता ?'

'भिक्षुओ ! अतीत मे क्या रूप था। इस विचार का त्याग उसमे राग उत्पन्न करता। वह अतीत के वेदना, संज्ञा, सस्कार, विज्ञान का अनुगमन नही करता।'

'और भविष्य भन्ते !'

'आवुसो ! वह अनागत की चिन्ता नही करता । यदि भविष्य की कल्पना करेगा तो उसमे राग उत्पन्न होगा । किन्तु यदि उसकी चिन्ता नही करेगा, तो राग का अस्तित्व नही होगा । राग नही होगा । वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान का स्वत' लोप हो जायगा । इस प्रकार वह अनागत की चिन्ता नही कर सकेगा ।'

और वर्तमान भन्ते !'

'आवुसो ! वर्तमान की चिन्ता करनेवाला प्रत्युत्पन्न धर्मो मे अनुरक्त होता है ।'

'किस प्रकार अनुरक्त होता है भन्ते ।'

'वह विज्ञान को आत्मा के रूप मे, किवा रूप मे आत्मा नही देखता ।' भिक्षुओ ने शिरसा नमामि शास्ता को किया ।

आधार ग्रन्थ :

सयुक्त निकाय ४ ३ १

सम्वहुल सुत्त

मज्झिम निकाय ३ ४ १-४

जीवक

गतद्धिनो विसोकस्य विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।
सब्बगन्थप्पहीनस्य यदि लाहो न विज्जति ॥

(जिसने मार्ग समाप्त कर लिया है । विशोक है । सर्वथा विमुक्त है । सब ग्रन्थिया प्रहीण कर लिया है । उसे कोई कष्ट नही होगा ।)

—ध० ९०७

उन दिनो वैशाली समृद्धशाली थी । जनाकीर्ण थी । खान-पान से पूर्ण थी । उसमे सात हजार सात सौ सतहत्तर प्रासाद थे । कूटागार थे । सात हजार सात सौ सतहत्तर आराम थे । सात हजार सात सौ सतहत्तर पुष्करिणियाँ थी ।

उसमे गणिका अम्बपाली निवास करती थी । परम रूपवती थी । दर्शनीय थी । नृत्य, वाद एव सगीत मे निपुण थी । प्रेमियो के पास एक रात्रि पचास कार्षापण लेकर रहती थी । वैशाली उसके कारण शोभित थी । प्रसन्न थी ।

राजगृह नैगम वैशाली मे किसी प्रयोजन से आया । उसने वैशाली का वैभव देखा । अपना काम समाप्त किया । राजगृह लौट गया ।

राजा विम्बसार से उसने वैशाली के वैभव का वर्णन किया । उसकी आँखो के सम्मुख अम्बपाली का रूप था । अम्बपाली के कारण वैशाली की ख्याति थी । विम्बसार ने कहा ·

'राजगृह भी कैसे वैशाली के समान समृद्धशाली होगी ।'

'देव ! यहाँ गणिका का अभाव है । अम्बपाली की तरह यहाँ भी गणिका होनी चाहिये ।'

'भणे ! कुमारी ढूढ डालो । तुम भी अम्बपाली जैसी गणिका राजगृह मे रखो ।'

'देव की आज्ञा ।'

नैगम ने राजा की वन्दना की। अभिवादन किया। अपने काम पर चला गया।

× × ×

सालवती तरुण थी। कुमारी थी। अभिरूप थी। दर्शनीय थी। नैगम ने उसे देखा। वह अम्बपाली जैसी गणिका हो सकती थी।

सालवती को नैगम ने चतुर गणिका बनाया। स्वल्पकाल मे वह नृत्य, गान, वाद्य, सगीत मे निपुण हो गयी। राजगृह की शोभा बढी। नाम बढा। ख्याति फैलने लगी।

अम्बपाली पचास कार्षापण लेकर एक रात्रि किसी के यहाँ व्यतीत करती थी। सालवती ने एक सौ शत कार्षापण अपनी फीस रखी। वह पुरुषो के पास एक रात्रि एक शत कार्षापण लेकर रहती थी।

अकस्मात् गर्भवती हो गयी। वह घबडायी। भयभीत हुई। गर्भिणी स्त्रियो को पुरुष नही चाहते। यदि बात फैल गयी, तो मान-प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी। सत्कार समाप्त हो जायगा। पुरुष कुमारी खोजते है। उनका मूल्य होता है। गर्भिणी की कोई बात भी नही पूछता। उसे एक उपाय सूझा। उसने बीमारी का बहाना बनाया। उसने दौवारिक को आदेश दिया

'भणे! यदि कोई पुरुष मेरे पास आना चाहे, तो कह देना मै बीमार हूँ।'

'अच्छा आर्ये!' दौवारिक ने आदेश ग्रहण किया।

सालवती प्रासाद मे वन्द हो गयी। उससे कोई मिलने नही पाता था। गर्भ परिपक्व होने लगा।

× × ×

समय आया। पुत्र उत्पन्न हुआ। वह घबड़ाई। परन्तु सम्हल गयी। उसने अपनी दासी को आदेश दिया·

'हन्द! इस शिशु को सूप मे रख ले।'

दासी चकित हुई। उसने प्रश्नपूर्ण दृष्टि से सालवती की ओर देखा।

'बाहर कूड़े पर रख दे।'

'आर्ये!' दासी कुछ कहना चाहती थी।

सालवती ने तीक्ष्ण स्वर मे कहा ·

'जा ! मै जैसा कहती हूँ कर ।'

सालवती को शिशु से घृणा हो गयी थी । उसके कारण उसे सुखहीन दिन बिताना पडा था । गृह कारागार मे अपराधी तुल्य पडी रही । व्यर्थ गर्भ मे पालती रही । कष्ट उठाती रही ।

दासी नवजात शिशु को सूप मे रख कर चली । सालवती ने सर से बला ढलती देखा । किञ्चित् प्रसन्न हुई । फिर कुछ सोचकर दु खी हुई । द्वार पर आई । अपने शिशु को सूप मे रोते देखा । सूप पर पैर उछालते देखा । सर्वदा के लिये आँखो से ओझल होते देखा । सालवती ने कपाट बन्द कर दिया । शैय्या पर गिर पडी । माता जन्य ममता ने उसमे प्रवेश किया था । उसकी आँखे भर आयी ।

× × ×

प्रात काल था । अरुण वेला थी । पशु-पक्षी जाग गये । अभय राजकुमार राजा के दर्शन निमित्त राजभवन जा रहा था ।

उसने एक घूर पर कौओ को चक्कर लगाते देखा । कौवे कॉव-कॉव करते, मडरा रहे थे । कुछ सूप को घेर कर वैठे थे । उसे कौतूहल हुआ । घूर के पास आया । उसने देखा सूप मे बच्चा उतान पडा था । रो रहा था । कौवे उसे जीवित जानकर स्पर्श नही कर रहे थे । इस वाट मे थे । कब शिशु मरे । कब वे उस पर टूटे । उसने अपने साथियो से पूछा

'भणे ! यह क्या है ? कौओ ने इसे घेर रखा है ।'

'देव ! नवजात परित्यक्त शिशु है ।'

लोगो की अतीव घृणा शिशु जननी के प्रति परिलक्षित होने लगी । जिसने यह दुष्कृत्य किया था । पाप-कर्म किया था ।

'देव ! जीता है ।' राजकुमार के साथियो ने कहा ।

'शिशु को उठा लो ।' राजकुमार ने आदेश दिया ।

सेवक ने शिशु सूप सहित उठा लिया । अभय राजकुमार ने देखा । नवजात शिशु सुन्दर था । हृष्ट-पुष्ट था । उसे करुणा उत्पन्न हुई । उसने सेवक को आदेश दिया ·

'मेरे अन्त पुर मे इसे पहुँचा दे ।'

सेवक चलने लगा। कौवे भाग गये। सेवक शिशु को चुमकारने लगा। राजकुमार इस पुण्य कार्य को कर, जैसे प्रसन्न हो गया था। उसने कहा

'भणे!' दासियो को सहेज देना। इसका लालन-पालन करे। मै थोडी देर मे आऊगा।'

'देव! जैसी आज्ञा।'

× × ×

शिशु जीवित मिला था। इसलिए उसका नाम जीवक रखा गया। कुमार के कारण उसकी जीवन-रक्षा हुई थी। कुमार ने उसे पाला-पोषा था। अतएव उसका नाम कौमार भृत्य हुआ। उसका पूरा नाम हुआ जीवक कौमार भृत्य।

वह बडा हुआ। एक दिन उसके मन मे अनायास भावना उठी। उसके माता पिता कौन थे। जिज्ञासा करे।

कौमार भृत्य राजकुमार के पास गया। उनकी वन्दना कर पूछा

'देव! हमारे माता-पिता कहाँ है? कौन है?'

राजकुमार ने स्नेह से जीवक की ओर देखा। उसने उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा

'पुत्र! मै तेरा पिता हूँ।'

'और माता!'

'मै उसे नही जानता।'

'देव—?'

'पुत्र! मैने तुम्हारा भरण पोषण किया है। क्या कुछ कष्ट है?'

'नही।'

जोवक माता का पता न पाकर दु खी हुआ। उदास हो गया। वहाँ से उठा, भारी मन से। भारी उठते पावो से। राजकुमार ने एक नि श्वास लिया। पुन पक्षियो को नील गगन में उडते देखने लगा। सोचने लगा।

× × ×

जीवक ने राज-दरवार देखा था। अनेक लोगो से मिलने का सौभाग्य मिला था। उसने समझ लिया। राजा के यहाँ मानी की प्रतिष्ठा होती थी। विना जीविका रहना ठीक नही था। कब तक यहाँ पडा रहेगा। उसने शिल्प ज्ञान प्राप्त करना उचित समझा। शिल्प से जीविका निर्वाह करना उचित समझा।

× × ×

उन दिनो तक्षशिला विद्यालय की ख्याति थी। लोग शिक्षा निमित्त वहाँ जाते थे। आयुर्वेद विद्या का केन्द्र था। वहाँ के वैद्यो की चारों ओर धूम थी। दिशा प्रमुख वैद्यो की नगरी मे उसने जाने का निश्चय किया।

जीवक ने अपने पोष्य पिता राजकुमार से कुछ नही कहा। उनसे जाने की अनुमति भी नही ली। वह किसी से विना पूछे, विना कुछ कहे, तक्षशिला की ओर चल पडा।

× × ×

तक्षशिला पहुँचा। दिशा प्रमुख वैद्यो के यहाँ गया। उन्हे गुरु स्वरूप स्वीकार किया। वैद्यो से बोला

'आचार्य !' मुझे शिल्प ज्ञान प्राप्त करने की कामना है।'

'भणे ! तुम उसे सीखो।'

'गुरु कृपा—।'

'भणे। परिश्रम से, अप्रमाद से, शिल्प शिक्षा ग्रहण करो।'

जीवक महान् मेधावी था। परिश्रमी था। बहुत पढता था। जो कुछ पढता था। याद हो जाता था। समझ लेता था। भूलता नही था। गुरु उसके परिश्रम से प्रसन्न थे। उसे सब कुछ सिखाया। सात वर्ष इस प्रकार बीत गये।

× × ×

'आचार्य !' जीवक ने वैद्य के पास पहुँच कर निवेदन किया 'सात वर्ष हो गये। इस शिल्प का अन्त नही मालूम होता।'

'हूँ !' दिशा प्रमुख वैद्य ने मुसकुरा कर हुकारी भर दी।

'आचार्य ! कब तक इस शिक्षा का अन्त होगा ?'

'भणे ! एक काम करोगे ?'

'आज्ञा आचार्य ?'

'खनिग ले लो। तक्षशिला के चारो ओर एक योजन पर्यन्त भ्रमण करो। अभेषज औषधि यदि मिले तो लेते आना।'

'आचार्य का जैसा आदेश—।'

जीवक ने आचार्य को प्रणाम किया। लौट गया।

× × ×

जीवक ने तक्षशिला के एक योजन पर्यन्त चारो ओर अन्वेषण किया। उसे एक भी वनस्पति ऐसी नही मिली, जो औषधि न हो। वह आचार्य के पास खनिज हाथ मे लिये आया

'आचार्य ! मै घूम चुका।'

'भणे ! अभेषज कुछ औषधि मिली ?'

'नही देव ! मुझे कुछ भी अभेषज नही मिली।'

'भणे ! तुम्हारी जीविका चल जायगी। इतना ज्ञान पर्याप्त है।'

'राजगृह लौट जाऊ ?'

'भणे ! अवश्य जाना चाहिए। तुम्हे यहाँ बहुत दिन हो गये।'

जीवक चलने लगा। वैद्य ने कहा

'मार्ग-व्यय के लिए कुछ है।'

जीवक का मस्तक नत हो गया।

'भणे ! यह पाथेय है। मार्ग मे तुम्हारा कुछ काम चल जायगा।'

जीवक ने गुरुप्रदत्त स्वल्प पाथेय वन्दना कर ले लिया। गुरु के चरणो की पूजा की। घर लौटा।

कुछ पुस्तक, कुछ औषधि लेकर, वह राजगृह के लिए शुभ मुहूर्त मे प्रस्थान किया।

× × ×

जीवक का पाथेय साकेत पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो गया। साकेत पहुँच कर उसने निश्चय किया। मार्ग वन पूर्ण है। दुष्कर है। अन्न-पान रहित अरण्य मार्ग से विना पाथेय चलना सुखकर नही है। उसने

पाथेय निमित्त कुछ अर्जन करना उचित समझा ।

साकेत के नगर श्रेष्ठी की भार्या सात वर्ष से व्याधि ग्रस्त थी । मस्तक मे भयकर शूल होता था । दिगत के विख्यात वैद्य साकेत आये । किसी को सफलता नही मिली । हिरण्य भण्डार लेकर चले गये ।

जीवक ने साकेत मे प्रवेश किया । पता लगाने लगा, रोगी का । लोगो से मालूम हुआ । श्रेष्ठी की स्त्री सात वर्ष से बीमार थी ।

जीवक श्रेष्ठी के निवास स्थान पर पहुँचा । दौवारिक से सन्देश भिजवाया 'भणे ! श्रेष्ठी भार्या से कहो एक वैद्य आया है ।'

दौवारिक ने जीवक को ऊपर से नीचे तक देखा । बहुत लोग इस प्रकार आ चुके थे । वह विमन था । जीवक ने उसकी मुद्रा देखकर कहा

'भणे ! मै तक्षशिला से आ रहा हूँ ।'

दौवारिक को बहुत दूर से वैद्य को आने के कारण दया आ गयी । अनिच्छापूर्वक श्रेष्ठी की भार्या के पास गया । निवेदन किया । श्रेष्ठी की भार्या ने पूछा

'वैद्य है कैसा ?'

'आर्ये ! वह युवा है ।'

'भणे ! युवा वैद्य मेरा क्या करेगा । कितने वैद्य आ चुके ।'

'तक्षशिला से आया है ।'

'बहुत से, बहुत स्थानो से, आ चुके है । मै नही दिखाऊगी ।'

'तो मै क्या कहूँ ?'

'कह दो । मुझे नही दिखाना है ।'

दौवारिक बाहर आया । उसने जीवक से कहा ·

'आचार्य ! भार्या कहती है ! वैद्य तरुण है । वह क्या औषधि करेगे ।'

'भणे ! एक बार और जाओ । पहले कुछ न दे । अच्छी हो जाने पर इच्छानुसार चाहे दे दे ।'

'वह अनिच्छुक है—।'

'भणे ! एक बार जा । इसमे हानि क्या है । मै कुछ लेता नही हूँ । मागता नही हूँ । कुछ व्यय नही होता है ।'

'अच्छा—।' दौवारिक जीवक के विनय से प्रभावित हो गया था।

पुन भार्या के पास जाकर निवेदन किया

'आर्ये !'

'अब क्या है ?'

'वह कहता है। हम कुछ लेगे नही। कुछ देना नही पडेगा। केवल औपधि ले ले।'

'और—।

'अच्छा होने पर जो इच्छा हो दे दीजिएगा।'

'बुलाओ।'

'आज्ञा आर्या!'

× × ×

जीवक ने श्रेष्ठी की भार्या को देखा। उसने निदान स्थिर कर लिया। बोला—'एक पसर घी चाहिए।'

वाछित घी आया। औपधियो से घी पकाया गया। औषधि तैयार हुई। सेठानी को शय्या पर उतान सुला दिया। उसकी नासिका मे घी नाश दिया। घी मुख मे आ गया।

भार्या ने घी पीकदान मे थूक दिया। अपने दासी से बोली

'हन्दजे! इसमे घी आ गया है। इसे किसी पात्र मे रख ले।'

दासी ने पीकदान उठा लिया। जीवक का मन बिगड गया। उसे भार्या की कृपणता पर घृणा हुई। उसने विचार किया। अनेक मूल्यवान औषधिया घृत मे पडी हैं। पता नही उनके मूल्य का क्या होगा। उदास हो गया।

भार्या ने जीवक की उदासीन मुद्रा देखी। वह चतुर थी। मनोभाव समझ गयी। बोली

'आचार्य! आप क्यो उदास हो गये ?'

'मुझे लगता है—।'

'समझ गयी आचार्य। हम गृहस्थ है। सयम का हमे ज्ञान है। यह घृत बरबाद करने से क्या लाभ। दासो के पैरो मे मलने अथवा दीप जलाने के काम आ जायगा।'

जीवक की मुद्रा और उदास हो गयी। उसने सोचा। मुख से थूका पदार्थ भी यह उपयोग करना चाहती थी। भार्या जीवक के मन की बात समझकर बोली .

'आचार्य ! मुझे जो कुछ देना होगा। हम उसे देगे। सग्रह करने से ही आदमी धनी होता है। किसी वस्तु को बरबाद करना, सारवर्ची करना नही है। उसका उपयोग करने मे ही चतुरता है।'

सेठानी एक ही नास मे अच्छी हो गयी। श्रेष्ठी की भार्या ने प्रसन्न होकर उसे चार हजार दिया। पुत्र ने माता को नीरोग समझा। जीवक को चार हजार दिया। सास ने पतोहू को अच्छी हुई जाना। उसने चार हजार दिया। श्रेष्ठी ने भार्या को अच्छी हुई देखकर, चार हजार दिया। साथ ही एक दास, एक दासी और एक अश्वयोजित रथ दिया।

सत्कृत होकर जीवक रथ, दास, दासी और मुद्रा लेकर राजगृह की ओर प्रस्थान किया। उसे यथेष्ठ पाथेय मिल गया था।

× × ×

'देव !' जीवक अपने पिता अभय राजकुमार के पास उपस्थित हुआ। उनकी वन्दना की। पिता ने पुत्र को देखा। जीवक को हृदय से लगा लिया। कुशल-मगल पूछा। इतने दिनो तक लुप्त रहने का रहस्य जाना। प्रसन्न हुआ।

'देव ! यह सोलह हजार मुद्रा है। दास है। दासी है। रथ है। यह मेरा प्रथम पोसावनिक है।'

'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।'

'देव !' जीवक ने मुद्राएँ पिता के सम्मुख बढाते हुए कहा ' आप इन सबको स्वीकार कीजिये।'

'भणे !' अभय राज जीवक की विनय पर प्रसन्न हो गया। 'वह तेरा अर्जन है। तेरे पास रहेगा। तुम यही अन्त पुर मे मकान बनवाकर निवास करो।'

'जैसी आज्ञा देव !'

जीवक ने अन्त पुर मे एक मकान बनवाया। वहा सुखपूर्वक रहने लगा।

× × ×

राजा बिम्बसार को भगन्दर रोग हो गया था। उनकी साढक अर्थात् धोती रक्त से तर हो जाती थी। स्त्रिया उनका परिहास करती थी—'राजा रजस्वला हो गये है।' देव ऋतुमती हो गये है। रक्तस्राव बन्द होने पर कहती थी—'देव शीघ्र ही प्रसव करेगे। मासिक बन्द हो गया है।'

बिम्बसार ने औषधि की। परन्तु भगन्दर अच्छा नही हुआ। अच्छा होता। फिर रक्तस्राव होता। वेदना होती। जीवन दूभर हो गया। सबसे अधिक मनोव्यथा उन्हे स्त्रियो के व्यग के कारण होती थी।

राजा ने एक दिन अभय राजकुमार से कहा .

'भणे। भगन्दर के कारण मुझे भयकर कष्ट हो रहा है। सबसे बडा कष्ट मानसिक और तरुणियो के व्यग का है।'

'देव। मेरे यहाँ एक तरुण वैद्य है।'

'तरुण वैद्य क्या करेगा ? कितने अनुभवी वैद्य असफल हो गये है।'

'देव। वह तक्षशिला से शास्त्र पढकर आया है। कुशल चिकित्सक है।'

'उसका नाम क्या है ?'

'जीवक उसका नाम है। मेरा ही ज्येष्ठ पुत्र है।'

'अभय ! जीवक को आदेश दे। मेरी चिकित्सा करे।'

'देव। जैसी आज्ञा।'

अभय ने जीवक से कहा। जीवक राजा बिम्बसार की सेवा मे उपस्थित हुआ। निवेदन किया

'देव। आज्ञा हो तो व्याधि को देखू।'

'देखो जीवक।'

जीवक ने रोग देखा। उसने एक लेप दिया। एक ही लेप के कारण राजा का दु ख दूर हो गया।

राजा ने जीवक को दूसरे दिन बुलवाया। राजा ने स्त्रियो को अलकृत किया। पुन उनका अलकार उतरवाया। उनकी गठरी बनवायी। जीवक के सम्मुख गठरी रक्खी गयी। राजा ने कहा :

'जीवक यह सब आभूषण तुम्हारे है।'

'देव। मेरे लिए इतना यथेष्ट है कि देव अच्छे हो गये। मेरे उपकार को स्मरण रखे।'

'भन्ते। आज से तुम मेरा, अन्त पुर तथा बुद्ध भिक्षु सघ का भी उपस्थान करो।'

'देव के आदेश का पालन करूँगा।'

× × ×

राजगृह के श्रेष्ठी को सात वर्ष से सिर मे शूल था। वैद्यो ने जवाब दे दिया था। कहा था—पाचवे दिन श्रेष्ठी दिवगत हो जायगा। तिथि भी निश्चित कर दी थी। विख्यात वैद्य आकर लौट चुके थे। हिरण्य का भण्डार काफी व्यय हो चुका था।

राजगृह के नैगम ने रोग असाध्य देखकर सलाह दिया ·

'जीवक को दिखाना चाहिए।'

जीवक राजवैद्य हो चुका था। नैगम ने राजा से निवेदन किया

'राजन्। यह गृहपति श्रेष्ठी निगम के लिए सर्वदा उपयोगी रहा है। सभी वैद्यो ने इसे जवाब दे दिया है। यदि आप जीवक को चिकित्सा के लिए आज्ञा दे तो कृपा होगी।'

राजा ने जीवक कौमार भृत्य को बुलवाया। उससे कहा ·

'जीवक श्रेष्ठी को जानते हो ?

'हाँ देव!'

'उसका रोग असाध्य हो गया है।'

'सुना है देव।'

'वह नैगम के लिए उपयोगी है। हमारे लिए उपयोगी है। उसका वचित होना ठीक नही होगा।'

'देव आज्ञा।'

'उसकी चिकित्सा करो।'

'देव की आज्ञा।'

× × ×

जीवक हर्षित श्रेष्ठी के निवास-स्थान पर पहुँचा। उसने व्याधि का निदान किया। रोग समझ गया। उसे विश्वास हो गया। अच्छा कर देगा। उसने कहा

'गृहपति ! यदि मै तुम्हे नीरोग कर दूँ तो तुम क्या दोगे ?'

'आचार्य ! मेरा सब धन आपका होगा। मै स्वय आपका दास बन जाऊँगा।'

'अच्छा—तुम एक करवट से सात मास तक लेट सकते हो ?'

'आचार्य ! इस जीवन के लिए लेट सकता हूँ ?

'दूसरी करवट से सात मास लेट सकते हो ?'

हाँ आचार्य !'

'क्या उतान भी सात मास लेटे रह सकते हो।'

'आचार्य ! लेट सकता हूँ।'

'अच्छा, मै तुम्हारी औषधि करूँगा।'

श्रेष्ठी को अपने जीवन की एक क्षीण रेखा दिखाई दी।

× × ×

जीवक ने गृहपति को चारपाई पर बाँध दिया। सिर का आपरेशन किया। उसमे से दो कीडे निकाल कर उपस्थित लोगो को दिखाया।

उन जन्तुओ मे एक बडा था। दूसरा छोटा था। उसे दिखाते हुए कहा

'आचार्यो ने ठीक कहा था। गृहपति पाच दिन मे मर जायगा। बडा कीड़ा मस्तिष्क को खा जाता। उन लोगो ने बडे कोडे को जानकर निदान किया था।

'और जिन्होने कहा था सात दिन मे मर जायगा।'

'उन आचार्यो ने छोटे कीडे का निदान किया था। उसे खाने मे विलम्ब लगता। इसलिए दो दिन का समय और बढाया था।'

जीवक निपुण शल्य चिकित्सक साबित हुआ। उसने खोपडी पुन सीकर उस पर लेप लगा दिया।

एक सप्ताह बीत गया। गृहपति ने जीवक से कहा

'आचार्य ! मैं अब और अधिक दिन इस करवट नहीं लेट सकूँगा। भयंकर व्यथा हो रही है।'

'आपने प्रतिज्ञा की थी। सात मास एक करवट लेटूँगा।'

'आचार्य ! सच्चा स्वीकार है, परन्तु अब मैं अधिक दिन एक करवट नहीं लेट सकता।'

'अच्छा, दूसरी करवट लेट जाओ।'

सात दिन तक गृहपति लेटा रहा। उसे असीम कष्ट होने लगा। उसने जीवक को बुलाया। निवेदन किया।

'आचार्य ! मैं मृत्यु स्वीकार करूँगा किन्तु अब और अधिक समय इस करवट लेट न सकूँगा।'

'ठीक है। आप उतान सात मास लेटिये।'

सात दिन बीत गया। श्रेष्ठी गृहपति ने जीवक को बुलाया। उससे निवेदन किया

'आचार्य ! मुझसे लेटा नहीं जा रहा है। मैं मृत्यु पसन्द करूँगा। परन्तु लेट नहीं सकूँगा।'

'गृहपति तुमने क्यों प्रतिज्ञा की थी। सात मास तुम उतान लेटे रहोगे।'

'आचार्य। मेरे लिए अब लेटना असम्भव है।'

जीवक ने मुसकराकर कहा .

'गृहपति ! मैं जानता था। आप तीन सप्ताह मे निरोग हो जायेंगे।'

'तो आपने सात मास की बात क्यों कही थी ?'

'यदि मैं सात मास न कहता तो आप सात दिन नहीं सो सकते थे।'

'मैं नीरोग हो गया।' गृहपति प्रसन्नता पूर्वक बोला।

हाँ। उठो।' जीवक ने मुसकराकर कहा।

गृहपति उठकर बैठ गया। उसके कुटुम्बी, सेवक सब प्रसन्नता से उछलने लगे। लोगों ने उसे घेर लिया। जीवक अपनी दक्षिणा के चक्कर में था। उसने समीप आकर कहा

'गृहपति ! आपको स्मरण होगा। आपने मुझे क्या देने की प्रतिज्ञा की थी ?'

'हाँ स्मरण है।'

'तो—'

'सब धन आपका है। मै आपका दास हूँ।'

'गृहपति ! मै तुम्हे अपना दास बनाकर क्या करूँगा ?'

'और धन—?'

'वह भी सब लेकर क्या होगा। एक लाख राजा और एक लाख मुझे दे दो।'

गृहपति प्रसन्न हो गया। वह एक लाख राजा और एक लाख जीवक को देकर उऋण हो गया।

× × ×

वाराणसी के नगर श्रेष्ठी का एक पुत्र था। वह युवक एक दिन मक्खचिका (सिर के बल कूदना) खेल रहा था। वह शीर्षासन लगाकर समस्त शरीर का चक्कर मार ही रहा था कि उसे व्यथा हुई। गिर पडा। उसकी आतो मे गाठे पड़ गयी। उसकी अवस्था सोचनीय हो गयी। उसे निर्जल दूध का पायस नही पच सकता था। खूब गला भात भी नही पचा पाता था। उसके मल-मूत्र का क्रम बिगड गया था। वह क्षीण होता गया। ककाल मात्र रह गया।

श्रेष्ठी ने जीवक की प्रसिद्धि सुनी थी। उसने राजगृह जाने का विचार किया। राजा की आज्ञा से जीवक को काशी लाने की बात सोची।

× × ×

'देव !' श्रेष्ठी ने करबद्ध राजा विम्बसार से निवेदन किया।

'क्या है श्रेष्ठी ?'

'राजन् ! मै वाराणसी निवासी हूँ।'

'स्वागत है भणे।'

'मै वाराणसी का नगर श्रेष्ठी हूँ।

'आगमन का कारण भणे ?'

'देव ! मेरा पुत्र बीमार है।'

'क्या बीमारी है ?'

'प्रख्यात वैद्य श्रेष्ठी ने देखा। कोई निदान नही हो सका। कोई औषधि उसे नही लग रही है।'

'तो मैं क्या करूँ—तुम्हारे पुत्र के लिए ?'

'देव! आप जीवक को वाराणसी जाने की आज्ञा दे दीजिए।'

'भणे! जीवक से कहूँगा।'

श्रेष्ठी ने शिरसा राजा को प्रणाम किया।

× × ×

राजा विम्बसार ने जीवक को काशी जाने की आज्ञा दी। श्रेष्ठी के साथ जीवक वाराणसी पहुँचा।

उसने श्रेष्ठी के पुत्र के व्याधि का निदान किया। शरीर विकार को समझा।

उसने भीड को हटा दिया। एक कनात घेर कर हाता वना लिया। उसने खम्भो को ठीक से जडवा दिया। उसकी भार्या को सम्मुख वैठा लिया।

श्रेष्ठी के पुत्र के पेट को चीरा। आँत मे पडी गाठ भार्या को दिखायी। वोला

'अपने पति की व्याधि देखी ? इसी के कारण उसे भोजन नही पचता था।'

उसने अतडी की गाठ को सुलझा दिया। अंतडी भी ठीक स्थान पर रखा। पेट मे टाका लगा दिया।

वह कुछ दिनो मे नीरोग हो गया। श्रेष्ठी ने उसे मुद्रा दी। जीवक राजगृह लौट आया।

× × ×

उज्जैन का राजा चण्ड प्रद्योत था। उसे पाण्डु रोग हो गया था। विख्यात वैद्यो से भी वह अच्छा न हो सका। राजा ने मगधराज विम्बसार के के पास सन्देश भेजा जीवक को चिकित्सा के लिए कृपया भेज दिया जाय।

राजा विम्बसार ने आदेश दिया। जीवक उज्जैन पहुँचा। राजा के रोग का निदान किया। उसने राजा से पका घृत पीने के लिए कहा।

'भणे! मै घृत नही खाता। इसके अतिरिक्त और कुछ बताओ।'

जीवक ने समझ लिया। राजा को घृत के प्रति अरुचि है। उसने घृत को कषाय वर्ण, कषाय गध तथा कषाय रस मे पकाया।

राजा की प्रकृति का जीवक ने अध्ययन किया। उसे मालूम हुआ। राजा चण्ड है पता लगने पर उसकी हत्या करवा सकता था।

जीवक राजा के पास गया। उससे निवेदन किया

'देव! औषधियो को उखाडने और तोडने का विशेष काल होता है। विभिन्न मुहूर्तो मे वे उखाडी जाती है।'

'भणे! तुम्हारी इच्छा क्या है?'

'देव! वाहनशाला को आज्ञा देने की कृपा कीजिए। जिस वाहन से मै चाहूँ और जिस समय चाहूँ, उनका उपयोग कर सकूँ।'

'अच्छा भणे।'

'एक बात और है।'

'क्या?'

'देव! जिन द्वारो से मैं चाहूँ और जिस समय चाहूँ, बाहर निकल सकूँ। इसी प्रकार अपनी इच्छानुसार नगर मे प्रवेश कर सकूँ।'

'भणे! तुम्हारी इच्छा की पूर्ति होगी।'

राजा ने वाहनागारो तथा द्वारो पर यथाविधि आज्ञा भेज दी।

राजा के पास भद्रवतिका नाम की एक हथिनी थी। वह ५० योजन चलती थी। जीवक ने उसे लेने का निश्चय किया।

जीवक भागने की योजना बनाया। राजा के पास गया। घृत उन्हे दिया। राजा उसे औषधि समझ कर पी गया।

जीवक ने हस्तिशाला से भद्रवतिका हथिनी लिया। नगर से बाहर भाग गया।

राजा को कुछ समय पश्चात् मालूम हुआ। उसने घृत पी लिया था। उसे क्रोध आया। उसने आज्ञा दी।

'दुष्ट जीवक को बुलाया जाय।'

जीवक बाहर जा चुका था। उसके सेवको ने आकर करबद्ध निवेदन किया :

'देव ! वह भद्रवतिका हथिनी पर बाहर चला गया है।'

राजा का एक दास था। उसका नाम काक था। वह भी भद्रवतिका के समान दिन मे साठ योजन चल सकता था। राजा ने दास को आज्ञा दी।

'भणे ! काक !! जीवक को पकड कर लौटा लाओ।'

'देव आज्ञा।'

'किन्तु उसके हाथ का कुछ खाना मत। वैद्य चतुर होते है। मायावी होते है।'

× × ×

काक राजा की अनुमति पाकर नगर से बाहर निकला। जीवक का पीछा करने लगा। जीवन को कौशाम्बी मे देखा। वहाँ वह प्रात काल जलपान कर रहा था। काक जीवक के पास पहुँचा। कुशल-मगल के पश्चात् बोला

'भणे ! राजा ने आपको लौटने के लिए कहा है।'

'भणे काक ! मै जलपान कर लू। तुम भी कर लो।'

'आचार्य ! राजा का आदेश है। आपका दिया मै कुछ न खाऊँ।'

जीवक आँवला खा रहा था। अपने नख मे औषधि लगा लिया था। खाकर जल पीता था।

'भणे काक ! आँवला खाकर जलपान करो।'

काक ने विचार किया। जीवक स्वय आँवला खा रहा है। जल पी रहा है। उसे खाने मे क्या दोष ? उसने कहा

'भणे ! आँवला खा लूँगा।'

जीवक ने उसे आधा आँवला दिया। उसने आँवला खाकर जल पीया। किन्तु आँवला वही निकल गया। काक चकित हुआ। पूछा

'भणे ! जीवक !! क्या मै जीवित रह सकूँगा।'

'हाँ काक ! तुम्हारा राजा आरोग्य प्राप्त करेगा। तुम भी आरोग्य प्राप्त करोगे।'

'भणे ! तुम भाग क्यो आये।'

इसलिए कि तुम्हारा राजा मुझे मार डाले। अपने जीवन भय से भाग आया। मुझे भय था। राजा घृत खाने के कारण मेरा वध करवा देगा।'

'ओह ! मै समझा।'

'भणे ! यह हथिनी लो। उज्जैन लौट जाओ।'

काक उज्जैन और जीवक राजगृह की ओर प्रस्थान किया।

राजगृह पहुँचकर जीवक ने सब वृत्तान्त राजा बिम्बसार से सुनाया। राजा ने जीवक के कार्य की प्रशसा करते हुए कहा—'जीवक ! अच्छा किया। अन्यथा प्रद्योत तेरा वध करवा देता।'

× × ×

प्रद्योत नीरोग हो गया। उसने जीवक के पास दूत भेजा। दूत ने निवेदन किया

'भणे ! जीवक ! राजा ने स्मरण किया है।'

'क्यो मित्र ?'

'वह नीरोग हो गया है। आपको धन देना चाहता है।'

'नही दूत ! राजा मेरा उपकार माने यही बहुत है। मै जा नही सकूँगा।'

राजा प्रद्योत ने शिवि देश का बना एक जोडा दुशाला जीवक के पास भेजा। जीवक ने उसे ले लिया।

दुशाला लेकर जीवक ने विचार किया। इतना श्रेष्ठ दुशाला केवल राजा बिम्बसार अथवा तथागत रख सकते थे। वह लेकर क्या करेगा ?'

× × ×

तथागत का शरीर अस्वस्थ था। उन्होने आनन्द से कहा

'आवुस ! मुझे रेचक लेने की इच्छा है।'

'भन्ते ! जीवक के पास जाता हूँ।'

आनन्द जीवक के पास आया। जीवक ने कहा

'आवुस ! तथागत का शरीर पहले स्निग्ध किया जाय।'

आनन्द लौट आया। तथागत का शरीर स्नेहित किया गया। तेल

लगाने से शरीर की रूक्षता नष्ट हो गयी। आनन्द लौटकर जीवक के पास आया। जीवक ने समाचार जानकर एक उत्पल हस्त (चम्मच) औषधि दी। उसने आनन्द को समझाया—तथागत प्रथम एक उत्पल हस्त का नाश ले। उसके कारण दस बार रेचन होगा। दूसरी बार सू घने पर दस वार होगा। तीसरी बार सू घने पर पुन. दस बार होगा। इस प्रकार भगवान् को तीस रेचन होगा।

आनन्द औषधि लेकर वाहर निकले। जीवक ने विचार किया—'भगवान को तीस रेचन की औषधि दिया है। उनका शरीर व्याधिग्रस्त है। उन्हे केवल उनतीस रेचन होगा। स्नान करने पर भगवान् को एक और रेचन होगा। इस प्रकार तीस रेचन पूरा होगा।'

तथागत जीवक के मन की बात समझ गये। आनन्द से बोले

'आनन्द गर्भ जल का प्रवन्ध करो।'

तथागत ने स्नान किया। उन्हे पूरे तीस विरेचन हुए। जीवक ने तथागत से निवेदन किया

'व्याधि रहते समय मै भगवान् को रस पिण्डपात दूँगा।'

'भणे ! ठीक है।'

तथागत का शरीर स्वस्थ हो गया। जीवक दुशाला लेकर यथागत के पास पहुँचा। बोला

'भन्ते ! वह शिवि देश का बना उत्तम दुशाला है। आप इसे स्वीकार कीजिये।'

तथागत ने दुशाला स्वीकार किया। भिक्षु सघ को आमन्त्रित किया। बोले

'भिक्षुओ ! गृहपति चीवर की अनुज्ञा देता हूँ। इच्छानुसार पासुकलिक अथवा गृहपति चीवर धारण करे।'

× × ×

काशी के राजा ने जीवक को पाँच सौ मूल्य का कम्बल भेजा। जीवक ने उसे भगवान् को अर्पित किया। उस समय भगवान् ने भिक्षुसघ को आमन्त्रित कर कहा ·

'भिक्षुओ ! चीवर ६ प्रकार के होगे। उनकी मै अनुज्ञा देता हूँ। वे

होगे, क्षौम, कार्पासिक, कौषेय, कमल, सेन तथा भग ।

भिक्षु लोग उस समय तक बिना सिला वस्त्र पहनते थे। बिना जुडे हुए काषाय वस्त्र को पहनते थे ।

× × ×

भगवान् राजगृह मे विहार कर, दक्षिण गिरि पहुँचे । चारिका कर रहे थे । खेतो को तथागत ने अंचिबद्ध अर्थात् क्यारी, पालिबद्ध अर्थात् मेड बधा और श्रृगाटकबद्ध देखा । उन्होने आनन्द से कहा :

'आनन्द ! इन मेडो को देखते हो। इन क्यारियो को देखते हो। इन मिले कोने को देखते हो ।'

'हाँ—भन्ते ।'

'आनन्द ! भिक्षुओ का चीवर इसी प्रकार का बना सकते हो ?'

'भन्ते ! बना सकता हूँ ।'

× × ×

दक्षिण गिरि से विहार कर तथागत राजगृह पुन. लौट आये । आनन्द ने सिला हुआ अर्थात् छिन्नक चीवर दिखाया। चीवर देखकर भगवान् प्रसन्न हुए । भगवान् ने भिक्षुओ को आमन्त्रित कर कहा

'भिक्षुओ ! आनन्द बुद्धिमान् है । मैने सक्षेप मे बाते बताई थी । उसने समझ लिया। उसने कुसी बनाया है। आधी कुसी बनाया है। मण्डल भी बनाया है। अर्ध मण्डल भी बनाया है। विवर्त बनाया है। अनुविवर्त बनाया है। ग्रैवेयक बनाया है। जघियक भी बनाया है। वाहन्त भी बनाया है । सिन्नक अर्थात् खण्ड-खण्ड जोडकर सत्वल चीवर बनाया है । श्रमणो के अनूकूल होगा । तस्करो के प्रतिकूल होगा ।'

भगवान् ने पुन कहा

'भिक्षुओ ! छिन्नक सघाटी, छिन्नक उत्तरासग, छिन्नक अन्त वास की अनुज्ञा देता हूँ ।

× × ×

भगवान् राजगृह मे थे । जीवक कौमारभृत्य के आम्रवन मे विहार कर रहे थे । जीवक भगवान् के समीप गया । उनका अभिवादन किया ।

वन्दना की। एक ओर बैठ गया। सुअवसर देखकर जीवक ने निवेदन किया ·

'भन्ते ! मैने सुना है। सत्य है किन्तु मै उसे नही जानता। आपके लिए लोग पशु हिसा करते है। यह जानकर कि पशु आपके लिए मारा गया है। आप उस मास को खाते है।'

'हाँ !' भगवान् ने हु कारी भर दी।

'क्या आप पर किया गया यह दोषारोपण ठीक है ? यदि लोग इस प्रकार कहते है तो वह निन्दा का विषय तो नही होगा ?'

'जीवक ! सत्य बात यह नही है। यह मुझ पर मिथ्या दोषारोपण किया जाता है।'

'क्यो भन्ते ?'

'जीवक ! मै तीन प्रकार के मास को अभोज्य मानता हूँ।'

'हम जान सकेगे भन्ते ?'

'वे अदृष्ट, अश्रु त, तथा अपरिशकित है।'

'सुनो जीवक ! कोई श्रद्धालु किसी भिक्षु को एक दिन पूर्व दूसरे दिन के पिण्डपात निमित्त आमन्त्रित करता है। वह भिक्षु सुआच्छादित होता है। चीवर पहनता है। पात्र उठाता है। वह गृहपति अथवा उसके पुत्र के निवास-स्थान पर जाता है। बिछा आसन ग्रहण करता है। गृहपति किवा उसका पुत्र अपने हाथ से भोजन परोसता है।'

'किन्तु—?'

'जीवक ! कहता हूँ। उस भिक्षु को यह भावना नही होती। गृहपति उत्तम भोजन उसे परोसे। वह यह भी नही कामना करता कि भविष्य मे उसे पुन इसी प्रकार का खाद्य पदार्थ प्राप्त हो। वह अलोलुप, अनासक्त भाव से भोजन ग्रहण करता है। केवल अवग्रहण न हो इसका ध्यान रखता है। निस्तार वुद्धि रखता है। क्या उस समय वह भिक्षु, उस समय आत्म पीडा, पर पीडा किवा उभय पीडा की बात का ध्यान रखता है ?'

'भन्ते ! नही रख सकता।'

'जीवक ! क्या उस समय वह निर्दोप आहार नही ग्रहण करता ?'

'भन्ते ! इसीलिये मैने निवेदन किया था।'

'जीवक! मेरे लिए जो हिसा करता है, वह पाँच प्रकार का पाप करता है।'

'भन्ते! पहला प्रकार क्या है?'

'पहला वह व्यक्ति पाप करता है जो कहता है कि जीव को वध के लिए लाओ।'

'दूसरा भन्ते!'

'जो पशु के गले मे रस्सी बाँध कर लाता है।'

'तीसरा भन्ते।'

'जो जीव को मारने का आदेश देता है।'

'चौथा भन्ते!'

'जो जीव को मारते समय दु ख का अनुभव करता है। तथागत तथा श्रावको को अविहित खिलाता है!'

'पाँचवाँ भन्ते!'

'जो जीव को तथागत तथा श्रावको के लिए मारता है।'

'भन्ते! बात समझ गया। अद्भुत—भन्ते! आश्चर्य भन्ते!

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओकी तालिका मे चौसठवाँ तथा उपासक श्रावको मे दशम स्थान प्राप्त पुग्दलप्रसन्नो मे मगध राजगृह निवासी अभय राजकुमार द्वारा पालित सातवतिक गणिका द्वारा उत्पन्न जीवक कौमारभृत्य अग्र हुआ था।

आधार ग्रन्थ

अगुत्तर निकाय १ १४

अ० नि० अ० क० ३ ४ ५

विनय पिटक महावग्ग ८ १–५

धम्मपद ७ १, १३ ४

मज्झिमनिकाय २ १ ५

दीध निकाय १ २, २ ३

खदिर विनय रेवत

गामे वा यदि वारञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।

पत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥

[वह भूमि रमणीय है। जहाँ अर्हत विहार करते है। चाहे वह ग्राम, वन, नीची तथा ऊंची भूमि क्यो न हो।]

—घ० ९८

मगध देश है। राजगृह उसमे नगर है। उस नगर के निकट ही नही उपतिष्य[1] ग्राम था। उसे नालक ग्राम भी कहते थे। उसमे एक ब्राह्मण कुल रहता था। उस कुल मे सारिपुत्र अर्थात् उपतिष्य तथा खदिर वनिय रेवत[2] ने जन्म लिया था। खदिर वनिय रेवत आयुष्मान् सारिपुत्र के कनिष्ठ भ्राता थे।

१—उपतिष्य, उपतिस्स ग्राम : नालक ग्राम राजगृह के समीप यह वर्तमान नालक ग्राम है। सारिपुत्र का जन्म स्थान है। यही सारिपुत्र ने जन्म लिया और परिनिवृत हुए।

नालक ग्राम को नाल, नालक किंवा नालिका भी कहते हैं। सारिपुत्र का पूर्व नाम उपतिष्य किंवा उपतिस्स था अतएव उनके नाम पर इस ग्राम का सम्बोधन कितने स्थानो मे उपतिस्स नाम से किया गया है। सुनाग, महागवच्छ उपसेन वगतपुत्र, खदिर वनिय रेवत आदि का यह जन्म स्थान है। एक मत आधुनिक सारिचक ग्राम को नालक ग्राम मानता है।

२—खदिर वनिय रेवत : नाम विनय रेवत था। खदिर वन मे रहने के कारण खदिर विशेषण नाम के साथ जुड गया था। संस्कृत मे रेवत एकादश रुद्रो में एक रुद्र का नाम है। शर्याति वशीय एक रेव राजा का नामान्तर रेवत था।

सारिपुत्र ने प्रव्रज्या ली थी। घर की सम्पत्ति त्याग कर चल दिये थे। उनके जाने के पश्चात्, खदिर वनिय की रुचि गृह-त्याग की ओर हो गयी थी। उन्होने उगली हुई सम्पत्ति को पुन निगलना उत्तम नही समझा।

खदिर की आयु केवल सात वर्ष थी। उनकी माता ने देखा। उनका कनिष्ठ पुत्र गृहत्याग करना चाहता था। गृहस्थी मे फँसाने का उपाय ढूढ निकाला। उसका विवाह करने का निश्चय कर लिया। विवाह ठीक हो गया। धूमधाम से बारात विवाह निमित्त गयी।

विवाह के समय सबने आशीर्वाद दिया—'अपनी प्रपितामही की इतनी आयु जीवित रहो।' उसने अपने प्रपितामही को देखने की इच्छा प्रकट की। उसे लोगो ने १२० वर्ष की वृद्धा को दिखाया। उसमे भावना उठी। एक दिन उसकी युवती स्त्री की भी वही जीर्ण अवस्था होगी। उसमे वैराग्य अकुर उत्पन्न हुआ।

बारात लौटी। गृहस्थ बन्धन वनिय रेवत को रुचिकर प्रतीत नही हुआ। बन्धन से दूर रहना चाहते थे। विमुक्ति पद के आकाक्षी थे। माता-पिता उन्हे गृहस्थी मे फँसाना चाहते थे। उन्हे घेर रखे थे। विवाह किया। सोचा था। स्त्री मोह, काम मोह, उन्हे गृहस्थी मे बाध लेगा।

बारात मार्ग मे थी। लौट रही थी। रेवत ने अच्छा सुअवसर पाया। वारात-मण्डली से खिसक गये। कोई देख न सका[३]। खदिर ने वन मे प्रवेश किया। उनकी खोज हुई। कोई पा न सका। बारात निराश लौट आयी।

सारिपुत्र को मालूम हुआ। उन्होने भिक्षु सघ को आदेश दिया। बिना माता-पिता की आज्ञा के भी जब वनिय आये तो प्रव्रजित कर लिया जाय।

खदिर वनिय भिक्षुसघ मे पहुँचे। वहाँ उन्होने अपना परिचय

३—खदिर वन खदिर खैर को कहा जाता है। उसे अगार भी कहते है। कत्था भी कहा जाता है। पूर्वीय उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी विहार मे खैर के जगल वहुत होते है। खैर की लकडी सख्त होती है। उसका मृदंग; तवला तथा मूसल अच्छा वनता है। खैर के छाल से खाने का कत्था अथवा खैर वनाया जाता है।

दिया। प्रव्रजित कर लिये गये।

सारिपुत्र कनिष्ट भ्राता के पास जाना चाहते थे। परन्तु भगवान् के दर्शन निमित्त चले। खदिर वन मे पहुँचे। वही उन्हे अर्हत्त्व प्राप्त हो गया।

खदिर (खैरा) वन मे रहने के कारण उनका नाम खदिर वनिय पड गया। वे वन मे निवास करने लगे। अत्यन्त उद्यमी थे। अपने उद्योग के कारण धर्म पथ पर बढते गये। अर्हत पद प्राप्त करने के पश्चात् वे श्रावस्ती गये। वहाँ जेतवन मे अपने भ्राता सारिपुत्र के साथ कुछ दिनो तक विहार किया।

× × ×

वर्षावास समाप्त हुआ। भगवान् ने सारिपुत्र, शीवली और पाँच सौ भिक्षु सघ के साथ खदिर-वन के लिए प्रस्थान किया। कटकाकीर्ण मार्ग था। तीस योजन दूर था। खदिर रेवत को भगवान् के आगमन की बात ज्ञात हुई। वह ऋद्धि बल युक्त थे।

ऋद्धि शक्ति द्वारा घोर खदिर वन मे रेवत ने आसनादि का प्रबन्ध किया। भगवान् का शुभागमन हुआ। खदिर वन मे भगवान् ने दो मास विहार किया। ऋद्धि बल से खदिर वनिय ने सब प्रबन्ध कर दिया था। किसी को किसी प्रकार का कष्ट नही हुआ। सबका वही भोजन तथा निवास होता था। भगवान् सुप्रसन्न थे। खदिर की वन्दना, अभिवादन तथा प्रदक्षिणा स्वीकार कर वन से उन्होने भिक्षुसघ के साथ प्रस्थान किया।

× × ×

प्रशस्त मार्ग मे पहुँचने पर ज्ञात हुआ। जलपात्र, उपानह तथा तेल की फोफो खदिर वन मे छूट गयी थी। आदेश दिया गया। दो भिक्षु उन्हे जाकर लाये।

भिक्षुओं के आश्चर्य की सीमा न रही। लौटते समय जो मार्ग सुन्दर सरल, सुगम्य था। वहाँ काटो की झाडियाँ थी। उन्हे विस्मय हुआ। इतने शीघ्र काटे किस प्रकार वहाँ लग गये। सरल मार्ग कैसे दुर्गम हो गया था। सुन्दर वनश्री कैसे कटकाकीर्ण हो गयी थी।

× × ×

श्रावस्ती में विशाखा का निवास स्थान था। दोनो भिक्षु विशाखा के यहाँ यवागू ग्रहण करने गये। विशाखा ने उनका पूरा सत्कार किया। यवागू देकर जिज्ञासा की·

'भन्ते ! आर्य रेवत के स्थान पर गये थे ?'

'हाँ ! भगिनी।'

स्थान कैसा था भन्ते ?'

'खदिर वन था।'

'रुचिकर था ?'

'आह ! कॉटों से भरा था। दुर्गम था। उपासिके !'

× × ×

विशाखा ने अन्य भिक्षुओ को भिक्षा निमित्त आमन्त्रित किया। उसने जिज्ञासा की।

'भन्ते ! आप तथागत के साथ खदिर वनिय रेवत के विहार स्थान पर गये थे।'

'हॉ उपासिके !'

'स्थान देखा था भन्ते !'

'हाँ उपासिके !'

'स्थान कैसा था आयुष्मन् ?'

'उपासिके ! वर्णनातीत है। वह तो सुधर्मा के देव सभा तुल्य प्रतीत होता था।' विशाखा चकित हुई। एक ही स्थान के विषय मे दो विपरीत बाते मालूम हुईं।

× × ×

कुछ समय पश्चात् भिक्षुसघ के साथ भगवान् का विशाखा के निवास-स्थान पर आगमन हुआ। विशाखा ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। भगवान् भिक्षुसघ के साथ आसन पर बैठ गये। विशाखा एक ओर बैठ गयी। सुअवसर देखकर विशाखा ने निवेदन किया :

'भन्ते ! आपका शुभागमन आर्य रेवत के स्थान पर हुआ था ?"

'हाँ, उपासिके।'

'भन्ते ! स्थान आपने देखा था ?'

'हॉ, उपासिके ।'

'भन्ते ! क्षमा करे, वहॉ के विषय मे भिन्न-भिन्न मत भिक्षुओ ने प्रकट किये है ।'

'आयुष्मानो ने क्या विरोधी बाते कही थी ?'

'भन्ते ! किसी ने कहा, 'स्थान कँटीला है । दुर्गम है ।' किसी ने कहा, 'स्थान अत्यन्त रमणीय है ।'

'उपासिके ! ग्राम हो, वन हो, जहॉ भी, किसी अवस्था मे, अर्हंत विहार करते है वह स्थान सर्वत्र रमणीय होता है ।'

× × ×

एक समय रेवत अपने ग्राम मे पहुँचे । उनकी तीन बहिने थी । उनके नाम चाला[४], उपचाला तथा शिशूपचाला थे । उनके तीन पुत्र थे । उनके नाम क्रमश चल, उपचल तथा शिशूपचल थे । उन्हे भी उसने भिक्षु बना दिया । कालान्तर मे चाला, उपचाला तथा शिशूपचाला भी प्रव्रजित हो गयी ।

× × ×

एक समय खदिर वनिय रेवत बीमार पडे । सारिपुत्र ने कनिष्ठ भ्राता की बीमारी का समाचार सुना । भ्राता को देखने चले । खदिर वनिय ने ज्येष्ठ भ्राता को दूर से आते देखा । तीनो भाजो से कहा ·

'ओ ! चल !! उपचल !!! शिशूपचल !!!! स्मृतिमान हो । ध्यान रखो । अपने को रक्षित रखो । जो आ रहा है । वह बाल-भेदी है ।'

तीनो भगिनो ने सारिपुत्र का स्वागत किया । नतमस्तक उनकी अभ्यर्थना की । अभिवादन किया । वन्दना की । उन्हें खदिर रेवत के पास लाये । सहोदर भ्राताओ का मिलन अपूर्व था । अतुलनीय था ।

सारिपुत्र ने भानजो से सस्नेह पूछा :

'प्रसन्न हो ?'

४—चाला, उपचाला, शिशूपचाला इनका वर्णन थेरी गाथा क्रम संख्या ५९, ६० तथा ६१ मे किया गया है । इनके किंचित् उदानो की क्रमसंख्या १६२-१८८, १८९-१९५-१८८ तथा १९६-२०३ है ।

'भन्ते ! कृपा है।'

'किस विहार में विहार करते हो ?'

'एक विहार मे।'

सारिपुत्र ने अपने भगिनियो को शिक्षा देते हुए कहा ·

'मेरे कनिष्ठ भ्राता ने तुम लोगों को धर्म सम्बन्धी छोटी बातो को समझाया है।'

भागिनेय तूष्णी हो गये। और सारिपुत्र कनिष्ठ भ्राता का कुशल-मगल पूछने लगे। वे आसन पर बैठ गये। अपने भाई का वन निवास देखकर सारिपुत्र ने कहा ·

'रेवत ! ग्राम मे, अथवा, वन में, ऊँचे अथवा नीचे स्थान में जहाँ अर्हत विहार करते है वह भूमि रमणीय है। रमणीय वन मे सर्वसाधारण व्यक्ति रमण नही करते। वहाँ रमण करते है वीतराग, कामभोगो की इच्छा न करने वाले।'

× × ×

खदिर वनिय को एकान्त प्रिय था। एक समय अतुल भिक्षु ने सुना। खदिर वनिय श्रावस्ती मे आये थे। वह पाँचसौ भिक्षुओं के साथ उनके पास पहुँचा। उनकी वन्दना कर निवेदन किया

"आयुष्मान् ! हमे उपदेश दे।"

"उपदेश—?"

"हाँ ! हम इसी प्रयोजन से आये है।"

' नही आवुस ! मै एकान्त प्रिय हूँ। मै उपदेश नही देता।"

× × ×

खदिर वनिय का एकान्त सेवन कभी-कभी भ्रम उत्पन्न कर देता था। उन्हें लोग आलसी मान लेते थे। भिक्षु स्मुजनि झाडू लगाते थे। सर्वदा देखते थे। रेवत पद्मासन लगाये वैठे रहते थे। उन्होने रेवत को आलसी समझा। रेवत ने उनके मन की वात जान ली। उनका भ्रम दूर किया।

× × ×

रेवत खदिर वन मे विहार करते थे। समय-समय पर वे भगवान्

तथा सारिपुत्र के दर्शन निमित्त आते रहते थे। एक समय वे नगर के समीप एक वन मे ठहर गये।

नगर मे एक बडी चोरी हुई थी। चोर सामान लेकर भाग रहे थे। राज कर्मचारियों को पता लगा। उन्होने चोरों का पीछा किया। चोर सामान के साथ जान बचाकर भाग नही सकते थे। अतएव खदिर वनिय, जिस वन मे ठहरे थे वही सामान फेककर भाग गये। पीछा करते हुए सैनिक वहाँ पहुँचे। चोरी का सामान पडा देखा। उन्होने रेवत से पूछा—'सामान कहाँ से आया है।' रेवत ने अनभिज्ञता प्रकट की। सैनिको को सन्देह हो गया। रेवत को बन्दी बना लिया।

× × ×

राजा ने रेवत से प्रश्न किया। खदिर वनिय रेवत ने अपने को अनेक पदो मे निर्दोष प्रमाणित करने का प्रयास किया। प्रश्नोत्तर काल मे उसने राजा को धर्म का ज्ञान करा दिया। अपने भाषण के अन्तिम-काल मे वह आकाश मे पद्मासन लगाकर बैठ गया। उसके शरीर से स्वत· अग्निशिखा निकली। और वह भस्म हो गया।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको में चौदहवाँ स्थान प्राप्त मगध नालक ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न खदिर वनिय रेवत अरण्यको मे अग्र हुए।

●

आधार ग्रन्थ :

मुनि सुत्त :

सम्मुजनि .

धम्मपद दाह कथा · ७-९

थेर गाथा : ४२ उदान ९९०-९९१

सागत (स्वागत)

स्वागत भगवान् के उपस्थाक थे। आनन्द के उपस्थाक होने के पूर्व भगवान् के अनेक भिक्षुगण उपस्थाक हुए थे। उनमें नागित, उपवाण, सुनक्षत्र, चुन्द, श्रमणोद्देश, राघ, मेघिय और कभी सागत किंवा स्वागत उपस्थाक का कार्य कर दिया करते थे

× × ×

आयुष्मान् स्वागत भगवान् के उन दिनो उपस्थाक थे। गृध्रकूट[1] पर्वत पर स्वागत थे। विम्बसार ने अस्सी हजार मुखियो तथा सोण कोटि विंश को भगवान् के उपदेश श्रवणार्थ भेजा था। ये गृध्रकूट पर्वत पर स्वागत के पास आये। उन्होने भगवान् के दर्शन की आकाक्षा प्रकट की। स्वागत ने प्रसन्नतापूर्वक कहा .

'सौम्य ! आप लोग मुहूर्त मात्र यहाँ ठहरे।'

'क्यो ? आयुष्मान् !'

'मै भगवान् से पूछ आऊ भणे !'

स्वागत उनके सम्मुख अर्द्धचन्द्र पाषाण मे लुप्त हो गये। भगवान् के सम्मुख प्रकट हुए। निवेदन किया :

'भन्ते ! अस्सी हजार मुखिया भगवान् के दर्शन निमित्त आये हैं।' आपके दर्शनेच्छु हैं।'

'आवुस ! विहार की छाया मे आसन लगा दो।'

'अच्छा भन्ते।'

× × ×

१—गृध्रकूट, गृद्धकूट पर्वत : राजगृह मे एक पर्वत है। इसका शिखर गृद्ध तुल्य है। अतएव इसकी संज्ञा गृद्धकूट पर्वत पड़ गयी। भगवान् ने यहाँ बहुत विहार तथा उपदेश दिया है।

स्वागत अन्तर्ध्यान हो गये थे। पुनः प्रकट हुए। मुखियों तथा सोण के विस्मय की सीमा न रही।

वे विहार की छाया में स्वागत के साथ चले। भगवान् का दर्शन किया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गये। मुखिया स्वागत के चमत्कार से प्रभावित थे। उसे ही भगवान् की अपेक्षा अधिक ध्यान देकर देखते थे। भगवान् मुखियों के मन की बात समझ गये। भगवान् ने स्वागत से कहा :

'स्वागत ! आगत लोगों को तुम अपनी दिव्य शक्ति से और प्रातिहार्य दिखाओ। वे उसे देखकर प्रसन्न होंगे।'

'अच्छा भन्ते !'

× × ×

आयुष्मान् स्वागत आकाश में उड़ गये। वहाँ वे जघा विहार करने लगे। खड़े हो जाते। बैठ जाते। सो जाते।

आगत मुखिया और स्वर्ण विस्मयापन्न विस्फारित नेत्रों से आकाश-गामी स्वागत का चमत्कार देखकर चकित होने लगे।

स्वागत ने और अद्भुत कार्य किये। आकाश में उनके शरीर से धुआँ निकलने लगा। तत्पश्चात् वे जल उठे। आकाश में प्रज्वलित अग्निशिखा दिखाई देने लगी। वह आकाश मे देखते-देखते लोप हो गये। स्वागत अचानक भगवान् के सम्मुख प्रकट हो गये। उनके चरणों पर मस्तक रख दिया। वन्दना की :

'भन्ते ! आप मेरे शास्ता है। मै आपका श्रावक हूँ।'

मुखियो ने स्तम्भित होकर स्वागत को देखा। उन्हे बोध हुआ। जिसका शिष्य इतना प्रतिभाशाली ऋद्धि सम्पन्न है, वह स्वय कितने शक्तिशाली होंगे। उन्होने श्रद्धा के साथ भगवान् को प्रणाम किया।

× × ×

भगवान् भद्दवतिका[२] में गये। वहाँ स्वागत भगवान् के साथ थे।

२—भद्दवतिका : यह भद्दवतिका किंवा भद्दावती कसबा था। कौशाम्बी के समीप था। कौशाम्बी और इसका सम्बन्ध एक सडक से जुडता था। माया-वती का पति भद्दवतिय श्रेष्ठी यहाँ का निवासी था। मायावती से कौशाम्बी नरेश उदयन ने विवाह किया था। एक मत है कि यह चेदि राज्य मे था।

भद्दवतिका के समीप जटिल साधुओं का एक आश्रम था। अम्बतित्थ[१] में था। उसमे एक महा विषधर सर्प रहता था। भगवान् को वहाँ आते लोगों ने देखा। नाग से सावधान रहने की चेतावनी दी।

स्वागत महा ऋद्धिसम्पन्न थे। नाग स्थान पर चले गये। वही निवास करने लगे। नाग क्रुद्ध हुआ। परन्तु स्वागत के ऋद्धि बल के कारण कुछ बिगाड़ नही सका। स्वागत नाग पर विजय प्राप्त कर अम्ब-तित्थ लौट आये।

× × ×

भगवान् कौशाम्बी गये। स्वागत भगवान् के साथ थे। स्वागत के ऋद्धि बल एव चमत्कार की प्रसिद्धि देश मे फैल चुकी थी। उनके आग-मन की बात बिजली की तरह जनपद में फैल गयी। उपासक, नर-नारी, समूह के समूह, उन्हे देखने आने लगे। उन्होने स्वागत से जिज्ञासा की। उनके कुछ उत्तर नही दिया। शान्त रहे। किन्तु छब्बगिय ने सुझाव दिया। स्वागत के लिए एक श्वेत कापोलिका का प्रबन्ध अविलम्ब किया जाय।

× × ×

कौशाम्बी में दूसरे दिन स्वागत भिक्षाचार निमित्त गये। लोग उन्हे देखने निकल पडे। अनेक प्रकार से प्रसन्न करने का प्रयास किया। अनेको ने उन्हे आमन्त्रित किया। स्वागत को लोगो ने भोजन के साथ ही मादक पेय का सेवन करा दिया। वे इतना अधिक पी गये थे कि नगर के बाहर विहार के द्वार पर पहुँचते-पहुँचते शराबियों के समान लुढ़क गये।

मद्यपावस्था मे स्वागत को कुछ ज्ञान नही हुआ था। भिक्षुओं ने उसे देखा। उठाकर विहार में लाये। उसका मस्तक बुद्ध के चरणो पर रखा। परन्तु वह नशे में इतना चूर था कि भगवान् की तरफ पांव करके पड़ रहा।

भगवान् को स्वागत पर दया आयी। उन्होने एकत्रित भिक्षुओं की ओर देखा। कुछ उनमें स्वागत का उपहास कर रहे थे। कुछ उस पर

१—अम्बतित्थ : कोशाम्बी के समीप एक भद्दवती अथवा भद्दवतिका कसबा था। अम्बतित्थ स्थान भद्दवतिका में था।

दया प्रदर्शित कर रहे थे। कुछ ईर्ष्यालु उसकी ईर्ष्या के कारण प्रसन्न हो रहे थे।

भगवान् ने एकत्रित भिक्षुओ को स्वागत की दर्शनीय अवस्था इगित करते हुए मद्यपान से उत्पन्न होने वाले उत्पातों की तरफ ध्यान आकर्षित किया। उन्हे चेतावनी दी। मद्यपान के कारण स्वागत जैसा ऋद्धि-सम्पन्न साधक अचेत हो सकता है। विक्षिप्त हो सकता है। सयम खो सकता है। उन्होने उस दिन यह नियम बना दिया भिक्षु श्रावक-श्राविका एवं उपासक-उपासिका के लिये मद्यपान वर्जित रहेगा।

× × ×

दूसरे दिन स्वागत को होश आया। उसे सब घटना मालूम हुई। वह अत्यन्त दु खी हुआ। पश्चात्ताप करने लगा।

भगवान् के सम्मुख नत-मस्तक लज्जित आया। अपराधो का ज्ञान हुआ। भयकर भूल का ज्ञान हुआ। मद्यपान के दोष का ज्ञान हुआ।

भगवान् का उसने अभिवादन किया। वन्दना की। अपने अपराधो के लिए क्षमा याचना की। पश्चात्ताप किया। भगवान् उस पर क्रोधित नही हुए। उसे कटु वचन नही कहे। उसे आसन दिया। बैठने का सकेत किया। स्वागत एक ओर बैठ गया। उसके विमल चक्षु खुले। अन्तर्ज्ञान हुआ। कालान्तर मे अर्हत्व प्राप्त किया।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको में उनतालीसवाँ स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती ब्राह्मण कुलोत्पन्न सागत तेज धातु कुशलो में अग्र हुए।

●

आधार ग्रन्थ :

विनय पटक महावग्ग ५ १ १

सुरापान जातक.

थेर गाथा मे स्वागत का उल्लेख नही मिलता। अपदान में कुछ स्वागत द्वारा कहे गये पदो का उद्धरण मिलता है ।

धनिय

धनिय ने राजगृह में एक कुम्भकार के घर जन्म लिया था। उसका नाम धनिय रखा गया था। वह कुम्भकार शिल्प मे पटु हो गया था।

एक समय तथागत धनिय के घर आये। वहाँ[1] पुक्कुसाति बीमार पडे थे। भगवान् ने पुक्कुसाति को धातु विभग सुत्त का उपदेश दिया। उस उपदेश को सुनकर पुक्कुसाति ने अर्हंत पद प्राप्त किया। उसका निर्वाण हो गया।

१—पुक्कुसाति : पुक्कुसाति युवक परिव्राजक था। राजगृह के कुम्भकार के गृह अतिथिशाला मे वह ठहरा था। भगवान् का वहाँ आगमन हुआ। भगवान् ने अतिथिशाला मे रहने के लिए कहा। पुक्कुसाति तैयार हो गया। भगवान् के साथ अतिथिशाला मे रह गया। भगवान् को वह नही जानता था। भगवान् ने उसे धातु विभंग सुत्त का उपदेश दिया। उपदेश के अन्त मे भगवान् को पुक्कुसाति ने पहचाना। भगवान् से न जानने के लिए क्षमा माँगी। उसने उपसम्पदा देने की प्रार्थना की। भगवान् ने उसे एक भिक्षापात्र तथा चीवर लाने के लिए कहा। मार्ग मे एक गाय ने उसे पटक दिया और वह दिवगंत हुआ। भगवान् ने पूछने पर कहा कि उसे निर्वाण प्राप्त हुआ है।

बुद्धघोष ने पुक्कुसाति का एक लम्बा वर्णन किया है। वह तक्षशिला के राजा थे। विम्वसार के समकालीन थे। सम आयु थे। व्यापारियो के द्वारा दोनो राजाओ में स्वस्थ सम्वन्ध स्थापित हो गया था। दोनो राजाओ ने एक दूसरे को नही देखा था। तथापि स्नेह हो गया था। एक समय पुक्कुसाति ने आठ अमूल्य वस्त्र राजा विम्वसार के पास भेजा। विम्वसार ने राजसभा मे पूरे सम्मान के साथ उसे स्वीकार किया।

वदले में राजा विम्वसार ने कुछ भेजने का विचार किया। कुछ जँचा नही। अन्त में यही निश्चय किया कि 'त्रिरत्न' पुक्कुसाति के पास भेजा जाय।

धनिय अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने देखा। एक ही रात के बुद्ध शासन और उपदेश मे एक व्यक्ति निर्वाण प्राप्त कर लेता था। दुःख से मुक्ति पाता था। पुनर्जन्म से छूट जाता था। उसने निश्चय किया। वह प्रव्रज्या लेगा। उसने प्रव्रज्या ली। किन्तु वह खपड़ा बनाता रहा।

तथागत राजगृह मे गृद्धकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। वहाँ अनेक सम्भ्रान्त भिक्षु ऋषि गिरि के पार्श्व मे तृणकुटी बनाकर वर्षावास करते थे।

आयुष्मान् धनिय कुम्भकार का पुत्र था। उसने भी तृणकुटी[२] बनायी। वर्षावास करने लगा। वर्षावास के पश्चात् भिक्षुओं ने कुटी उजाड दी। जनपद मे चारिका निमित्त चले गये।

धनिय वर्षा, हेमन्त तथा ग्रीष्म तीनों ऋतुओं में उसी कुटी मे निवास करता था। वह पिण्डपात निमित्त ग्रामो मे जाता था। उसकी अनुपस्थिति

राजा ने एक चौडे स्वर्ण पत्र पर त्रिरत्न तथा अष्टाग मार्ग सति पत्थानादि खुदवा कर भेज दिया। एक शोभायात्रा के साथ स्वर्णपत्र बिम्बसार की राज सीमा के बाहर तक हाथी पर पहुँचाया गया।

पुक्कुसाति ने स्वर्णपत्र पर अकित बुद्ध उपदेश पढा और राज त्याग दिया। अकेला राज्य से निकला। वह १९२ योजन की यात्रा कर श्रावस्ती पहुँचा। बिम्बसार के पत्र मे लिखा था कि भगवान् राजगृह मे थे। वह जेतवन मे जाँच भी नही किया कि भगवान् वहाँ थे या नही। राजगृह की ओर प्रस्थान किया। वह ४५ योजन और चलकर राजगृह पहुँचा। पुक्कुसाति ने कुम्भकार के घर मे आश्रय लिया। समय पर भगवान् स्वय वहाँ आये। उसे उपदेश दिया।

२—कुटी : कुटी निर्माण की एक वैज्ञानिक प्रक्रपा वहाँ दी गयी है। पक्के ईंटो की कुटी बनायी जाती है। कि वह पानी में गल न सके। मजबूत वनी रहे। और नोना न लगे। यहाँ पर धनिय ने कच्ची मिट्टी की कुटी वनाया। कच्ची ईंट तथा मिट्टी का कच्चा बरतन जैसे आवा मे पकाया जाता है। उसी प्रकार सारी कुटी धनिय ने एक विशाल आवा बनाकर पका डाला था। इसका अनुसन्धान तथा प्रयोग करना चाहिए। यह वर्णन तर्क सम्पन्न मालूम पड़ता है।

का लाभ उठाकर, तृण हारिणिग्रॉ तथा काष्ठ हारिणियॉ ने तृणकुटी को उजाड़ दिया। तृण तथा काष्ठ लेकर चली गयी।

उसने पुन. तृणकुटी बनायी। उसकी भी वही दुर्दशा हुई। उसकी कुटी पुन: उजड गयी। तृण तथा काष्ठ लुप्त हो गये। तीसरी बार उसने पुन: अपनी कुटी बनायी। इस बार भी उसकी वही दशा हुई।

धनिय विचार करने लगा। इस प्रकार कब तक वह कुटी बनाता रहेगा। कब तक कुटी बिगडती रहेगी। उसने निश्चय किया। अपनी शिल्प कला का परिचय कुटी निर्माण में देगा। कर्म से कुम्भकार था। अतएव उसे मिट्टी का ज्ञान था।

उसने मिट्टी का मर्दन किया। मिट्टी की कुटी बनायी। तृण, गोबर, लकडी एकत्रित की।

सारी कुटी को आवा रूप मे परिणत कर दिया। आवा मे पकते कच्चे बर्तन की तरह कुटी भी पक गयी। वह सफल कुम्भकार साबित हुआ।

कुटी पक जाने पर लाल रग को हुई। उसका रग वीरवहूटी की तरह था। मिट्टी के बर्तन ठोकने पर जैसे किंकणी जैसा शब्द होता है। उसी प्रकार उस कुटी के ठोकने पर शब्द होता था।

भगवान् ने गृद्ध कूट से उतरते समय कुटी देखी। जिज्ञासा की :

'भिक्षुओ ! यह वीरवहूटी तुल्य क्या है ?'

'भन्ते ! यह धनिय भिक्षु की कुटी है।'

भगवान् पर्णकुटी के स्थान पर पक्की सुन्दर कुटी देख कर बोले :

'भिक्षुओ ! यह श्रमण आचरण के विरुद्ध है। अकरणीय है। उस मोघ धनिय ने सर्व प्रथम मृत्तिका मय कुटी बनायी है। उसे पकाया है। भिक्षुओ ! कुटी को तोड़ दो। भिक्षुओ को सर्व मृत्तिकामय कुटी नही बनानी चाहिए।'

'भन्ते ! आज्ञा।'

भिक्षु कुटी को नष्ट करने लगे। आयुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्र बाहर से आया। अपनी कुटी को नष्ट होती देखकर, भिक्षुओ को सम्बोधित किया :

'आवुसो ! आप इसे क्यों नष्ट करते है ?'

'तथागत की आज्ञा है।'

'आवुसो ! इसे नष्ट कर दें यदि तथागत की यही इच्छा है।'

तृणकुटी नष्ट हुई। मृत्तिका कुटी नष्ट हुई। धनिय ने विचार किया। दारु कुटी बनायी जाय। उसने निश्चय किया। काष्ठ कुटी की वह रचना करेगा।

दारु गृह का राजगणक धनिय का परिचित था। उसने गणक से निवेदन किया :

'आवुस ! मै कुटी बनाना चाहता हूँ। मुझे लकड़ी चाहिए।'

'भन्ते !' गणक ने कहा। 'यहाँ राजकीय काष्ठ है। मै कैसे दे सकता हूँ।'

'इनका क्या उपयोग यहाँ है ?'

'भन्ते ! नगर की मरम्मत के लिए रखे गये है।'

'कौन देगा ?'

'राजा के आदेश से मिल सकेगा।'

'आवुस !' धनिय ने कहा, 'राजा ने हमे दे दिया है।'

गणक विचारशील हो गया। 'वह धनिय को मिथ्याभाषी नही कह सकता था। उसने समझा। 'भिक्षु धर्मचारी है। समचारी है। ब्रह्मचारी है। सत्यवादी है। शीलवान है। राजा इस पर प्रसन्न है। यह अदिन्न को दिन्न नही कह सकता।' उसने धनिय से कहा :

'भन्ते ! आपकी वात का विश्वास है। ले जाइये।'

धनिय ने काष्ठ लिया। उन्हे कटवाया। गाड़ियों से ढुलाकर ले गया। उन काष्ठो से कुटी की दिवाल बनायी।

× × ×

मगध का महामात्य वर्षकार ब्राह्मण था। वह राजगृह आया। कर्मान्तों का निरीक्षण करने लगा। दारुक गृहगणक के गोदाम पर पहुँचा। उसने काष्ठ नही पाया। गणक से पूछा :

'राजकीय कार्य के लिए यहाँ काष्ठ रखे गये थे ?' वे कहाँ गये ?'

'उसे धनिय भिक्षु ले गये।'

'गणक' महामात्य ने कहा, 'वे नगर की मरम्मत के लिए रखे गये थे! आपत्ति काल के लिए रखे गये थे।'

'महामात्य! देव ने उन्हे धनिय कुम्भकार को दे दिया।'

'यह कैसे हुआ?' महामात्य वर्षकार[3] कुपित हुआ। 'कैसे राजा ने नगर निमित्त रखे काष्ठ को धनिय को दे दिया?'

'वह तो राजा जाने स्वामी?'

'वही जाता हूँ।'

महामात्य चिन्तित राजा के पास चला।

× × ×

'राजन्!' महामात्य बोला, 'आपने कृपाकर क्या नगर की मरम्मत के लिए रखी राजकीय लकड़ियाँ धनिय को दे दी है?'

'नही तो?' राजा चकित हुआ।

'दारु गृह गण ने कहा है?'

'क्या कहा है?'

'देव की आज्ञा थी। काष्ठ धनिय को दिया जाय। अतएव आपत्ति काल के लिए रखा काष्ठ गणक ने धनिय को दे दिया।'

'नही, मैने कभी आज्ञा नही दी थी।'

राजा ने ठहर कर कहा :

'गणक को राजाज्ञा दो।'

'देव की आज्ञा।'

महामात्य ने दारुगृह गणक की गिरफ्तारी की आज्ञा दी।

× × ×

'गणक! यह क्या?' धनिय ने गणक को वन्दियो की तरह जाते देख कर आश्चर्य किया।

३—वर्षकार . राजा विम्वसार का अमात्य ·

'भणे ! मैने आपको राजकीय काष्ठ दिया था ?'

'किन्तु काष्ठ मैने लिया था।'

'दिया मैने था।'

'यह कैसा अन्याय ?'

'अपराध मैने किया। बिना राजाज्ञा के आपको दे दिया।'

'तुम्हारा अपराध नही है ! गणक मैं भी चलता हूँ।'

'भन्ते ! मेरे वहाँ पहुँचने के पूर्व पहुँच जाना ?'

'समझता हूँ।'

× × ×

धनिय राजा विम्वसार के यहाँ पहुँचा। धनिय ने गणक को वन्दी वनाये जाने की वात उठाई। राजा ने गम्भीरता पूर्वक कहा :

'भन्ते ! मैने राजकीय काष्ठ आपको दिया है ?'

'हाँ राजन् !'

'सत्य ?'

'हाँ राजन्।'

राजा स्मरण करने लगा। उसे कुछ याद नही आया। उसने विनय पूर्वक कहा :

'भन्ते ! राजकार्य बहुकृत्य होता है। बहुत वाते स्मरण नही रहती।'

'स्वाभाविक है राजन् !'

'भन्ते ! क्या मुझे कृपया स्मरण दिलायेगे। मैने कव उन्हे दिया था ?'

'राजन् ! प्रथम अभिषेक के समय आपने कहा था—'श्रमण, ब्राह्मणो को तृण, जल, काष्ठ देता हूँ। वे उसका परिभोग करे।'

'भन्ते !' राजा ने मुसकरा कर कहा, 'श्रमण और ब्राह्मण। लज्जालु होते हैं। उन्हे किंचित् बात में भी सन्देह उत्पन्न हो जाता है। इस दृष्टि से मैने कहा था। जगल मे जिस तृण, काष्ठ, उदक का कोई स्वामी नही है। उसका वे उपयोग करें।'

'राजन् !'

'सुनो धनिय ! आपने अदिन्न काष्ठ को दिन्न मान लिया ।'

धनिय किंचित् लज्जित हुआ । उसे अपने अपराध का ज्ञान हुआ । वह कुछ बोल न सका । उसका मस्तक नत हो गया । राजा ने कहा :

'मेरे इस राज्य मे किसी श्रमण या ब्राह्मण का वध नही हो सकता । वे बन्दी नही किये जा सकते । उनका देश निकाला नही हो सकता ।'

धनिय और लज्जित हो गया । राजा ने मुसकराकर कहा :

'भन्ते ! जाइये । आप बाल-बाल बच गये । पुनः ऐसा कार्य मत कीजियेगा ।'

धनिय लज्जा से गड़ गया ।

× × ×

नगर मे चर्चा हुई । चारो तरफ यही बात थी । धनिय ने राजा के साथ उचित व्यवहार नही किया । राजा ने क्षमा की । उदारता का परिचय दिया ।

बुद्ध धर्म विरोधी लोग कहने लगे—'ओह ! यह श्रमण इसी प्रकार के होते है । व्यर्थ वे दावा करते है कि वे शील चारी हैं । धर्मचारी हैं । समचारी हैं । ब्रह्मचारी है । सत्यसादी है । कल्याण धर्मी है ।'

लोगो ने कहा—'उनमे न तो श्रमणत्व है और न ब्राह्मणत्व । इनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है । श्रमणत्व नष्ट हो गया है । राजा को भी ठगते है । राजा को ठगने वाला मनुष्य दूसरो को सरलता से ठग सकता है । इसमे क्या किसी को सन्देह हो सकता है ।'

भिक्षुओं पर लोग आवाज कशी करते थे । उन्हे धिक्कारते थे । व्यग्य करते थे । उनका मार्ग चलना दूभर हो गया । मुख दिखाना कठिन हो गया । उन्हे धनिय पर क्रोध हुआ । उस पर सभी कुपित हुए । तथागत के समीप उपस्थित होकर निवेदन किया । भगवान् ने भिक्षुसघ एकत्रित किया । उनका उद्घोप करते हुए, धनिय से प्रश्न किया .

'धनिय ! क्या यह सत्य है । तुमने राजा के अदत्त काष्ठ को ग्रहण किया है ।'

'सत्य है भन्ते !'

धनिय ने अपना अपराध स्वीकार किया । भगवान् ने कहा :

'मोघ पुरुष ! तुमने अयोग्य, अकरणीय कार्य किया है।'

धनिय का मुख लटक गया। भिक्षुओं की दृष्टि उस पर केन्द्रस्थ हुई। भगवान् ने कहा :

'मोघ पुरुष ! राजकीय अदत्त काष्ठ को तुमने कैसे लिया है ?'

धनिय लज्जित था। भिक्षुओ की आँखे चमक उठी। भगवान् ने कहा :

'मोघ पुरुष ! जो हमसे अप्रसन्न है, उन्हे प्रसन्न करने के लिए यह नही किया गया है। जो प्रसन्न है, उनकी प्रसन्नता की इससे वृद्धि नही हुई है।'

भिक्षुगण चिन्तित हो गये। सभी की अप्रतिष्ठा हुई थी। धनिय अपने आप मे गडता जा रहा था। भगवान् ने कहा :

'मोघ पुरुष ! तुम्हारे इस कार्य से जो लोग हमसे अप्रसन्न है। उन्हे अप्रसन्न किया है। जो हमसे प्रसन्न है। उन्हे विपरीत किया है।'

तथागत कहकर चुप हो गये। भिक्षु सघ नीरव था। धनिय अति लज्जित था। भगवान् के पार्श्व मे एक परिव्राजक बैठा था। वह पूर्वकाल मे व्यवहार अमात्य अर्थात् न्यायाधीश का कार्य करता था। उस भिक्षु से भगवान् ने पूछा :

'आवुस ! कितने अपराध के लिए तस्करों को पकड़कर बन्दी बनाया जाता है। ताड़ित किया जाता है। देश निकाला किया जाता है।'

'पाद[४] के बराबर भूल होने पर ही दण्ड दिया जाता है।'

'उससे कम करने वाला ?'

'वह अदण्डनीय है।'

'भिक्षुओ ! जितने अदत्त दान से राजा दण्ड दे सकता है, उतने अदत्त दान के आदान से भिक्षु पाराजिक अर्थात् (साथ मे रहने योग्य) होता है।'

४—पाद . उस समय राजगृह में बीस माशा का एक कार्पापण होता था। उसके चौथे भाग को पाद कहा जाता था। कार्पापण तत्कालीन रुपया था।

धनिय ने अपने को सुधारने का अथक प्रयास किया। उसने अपना पुराना मार्ग बदल दिया। धर्म पथ का अनुसरण किया। अर्हत हो गया। यह प्रश्न प्रथम बुद्ध संगीत में पाराजिक के प्रसग मे उठाया गया था। धनिय ने एक समय उदान कहा था :

'सुखी एवं साधु जीवन की आकाक्षा हो तो सघ के चीवर, पात्र तथा भोजन की अवहेलना नही करनी चाहिए। जिस प्रकार सर्प चूहे के विवर में चुपचाप पड़ा रहता है उसी प्रकार आसक्ति रहित निवास करना चाहिए। जो कुछ प्राप्त हो जाय उस पर सन्तोष कर श्रमण धर्म का अभ्यास करना उचित है।'

आधार ग्रन्थ

विनय पिटक चुल्ल वग्ग ११ १ : २

थेर गाथा १७३, उदान २२८-२३०

पाराजिका २

मज्झिम निकाय ३ : ४ . १०

धातु विभंग सुत्त

५७

दारु चीरिय

सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता ।
एकं गाथपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥

(यदि एक गाथा पद श्रवण द्वारा उपसम्मति प्राप्त होती है तो वह सहस्रो अनर्थ पद समन्वित गाथाओ से श्रेष्ठ है ।)

ध० ८.२.१०१

समुद्र तट पर एक सुप्पारक[1] पत्तन था । पश्चिमी भारतीय तट का अत्य-न्य समृद्धिशाली बन्दरगाह था । वहाँ पर चीन, अरब, ईरान के जहाज आते थे । भारतीय जहाज माल लादकर पूर्वी अफ्रीका तथा पश्चिमी एशिया के देशो मे व्यापार के लिए जाते थे । आयात-निर्यात का प्रसिद्ध केन्द्र था । यहाँ से रोम तथा चीन तक व्यापार होता था । वर्तमान बम्बई से ३७ मील उत्तर तथा वसीन से चार मील दक्षिण स्थित था ।

१—सुप्पारक . पश्चिमी समुद्र तट पर प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत का यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था । सुप्पारक पत्तन भी इसे कहा जाता था । अरब नाविको ने इसको सोपारा नाम से व्यवहृत किया है । वर्तमान सोपारा ही प्राचीन सुप्पारक बन्दरगाह था । यह बम्बई से ३७ मील उत्तर तथा थाना जिला में वसीन स्थान से चार मील उत्तर पश्चिम है ।

उज्जैन से सोप्पारक तथा एक मार्ग प्रचलित था । श्रावस्ती तथा राजगृह, काशी तथा भारत के सभी भूमि खण्डीय प्रसिद्ध व्यापारिक-नगरों से इसका सम्बन्ध है । अत्यन्त समृद्धि शाली बन्दरगाह था । श्रावस्ती से १२० योजन दूर सोप्पारक को बताया गया है । इसका उल्लेख द्वीप वंश, महावंश, उदान, धम्मपदट्ठकथा में मिलता है । अश्वघोष भगवान् के सोप्पारक आने का उल्लेख करते हैं । परन्तु इसका कोई आधार नही मिलता ।

वाहिय दारु चीरिय का वाहिय कुल था। अतएव उसका नाम वाहिय दारु चीरिय पड़ा था। उसने सात बार सिन्धु पार कर व्यापार किया था। एक समय वह स्वर्ण भूमि जहाज से जा रहा था। उसका जहाज दुर्घटना ग्रस्त हो गया। वह सुप्पारक प्रदेश के तट पर आकर लगा। उसका सब कुछ नष्ट हो गया था। वस्त्र भी नही था। उसने वल्कल वस्त्र पहन लिया। मृत्तिका पात्र लिया। भिक्षा माँगते नगर मे गया। लोगों ने उसे वल्कल वस्त्र धारण किये देखा। लोगो की दृष्टि मे वह ऊपर उठ गया था।

जनता ने उसे उत्तम वस्त्र, स्थान तथा भोजन देना चाहा। परन्तु उसने सब अस्वीकार कर दिया। उसे अपना साधारण जीवन अधिक पसन्द था। वृक्षो की छाल पहनता था। अतएव दारु अर्थात् काष्ठ के नाम पर उसे लोग दारु चीरिय कहने लगे। अर्थात् लकड़ी का वस्त्र पहनने वाला। उसे ध्यान आया कि उसने स्वयं अर्हत्त्व प्राप्त कर लिया था। परन्तु देवताओं ने उससे कहा उसे श्रावस्ती जाना चाहिए। वहाँ भगवान् की शरण मे जाने पर अर्हत्त्व प्राप्त होगा। वाहिय श्रावस्ती जाने का विचार करने लगा। साधु-जीवन कारण के उसका देश विदेश में नाम हो गया था।

× × ×

वह जेतवन श्रावस्ती पहुँचा। भगवान् के विषय में जिज्ञासा की। उसे ज्ञात हुआ। भगवान् श्रावस्ती नगर मे भिक्षाटन के लिए गए हुए थे। भिक्षुओ से भगवान् का गन्तव्य स्थान पूछा। भगवान् को खोजता नगर मे प्रवेश किया।

उसने एक गली में देखा। भगवान् भिक्षाटन कर रहे थे। उसे आश्चर्य हुआ। जिसका नाम सुनकर आया था। वे एक साधारण भिक्षु की तरह द्वार-द्वार भिक्षा माँग रहे थे। भगवान् के सम्मुख गया। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। नम्र निवेदन किया.

'भन्ते ! उपदेश दे।'

'आवुस ! यह समय नही है।'

'भन्ते! उपदेश दें। मै बहुत दूर से आया हूँ।'

'आवुस ! यह समय नही है।'

'भन्ते ! मुझ पर अनुग्रह करें।'

भगवान् ने उसकी जिद पर अत्यन्त संक्षेप में उपदेश दिया। खड़े-खड़े ही उपदेश दिया। दारु चीरिय ने खड़े ही खड़े उपदेश ग्रहण किया। उसका चित्त मलरहित हो गया। उसके प्रज्ञा चक्षु खुल गये। विमुक्त हो गया। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। जेत वन की ओर चला। और भगवान् पुनः द्वार-द्वार पर भिक्षाटन करने लगे।

× × ×

दारु चीरिय लौट रहा था। मार्ग में एक गाय ने उसे आहत कर दिया। वह गिर कर मर गया।

भगवान् भिक्षाटन समाप्त कर जेतवन लौट रहे थे। उन्होने दारु चीरिय का मृत शरीर देखा।

भगवान् ने भिक्षुओं द्वारा चिता रचवायी। उसका शरीर चिता पर रखा गया। भस्म हो गया। अवशेष धातु पर स्तूप का निर्माण किया गया।

जेतवन में भगवान् ने भिक्षु संघ की जिज्ञासा पर कहा :

'भिक्षुओ ! व्यर्थ के पदों से युक्त सहस्रों गाथाओं की अपेक्षा एक गाथा का पद श्रेष्ठ है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावको में सताईसवाँ स्थान प्राप्त वाहिय[२] राष्ट्र उत्पन्न वाहिय दारु[३] चीरिय[४] क्षिप्रभिज्ञों में अग्र हुआ था।

२—वाहिय . पालि में उठाकर ले जाना, पहुँचाना, के अर्थ में वाहि शब्द का प्रयोग किया जाता है। वाहिय एक स्थान मालूम होता है। एक मत है ये वाहिय दारु चीरिय भरुकच्छ अर्थात् भड़ौंच में जन्म लिया था।

३—दारु . शाब्दिक अर्थ लकडी होता है। पालि में खण्ड, करवन्ध, भण्ड, मय तथा संघात के अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। दारु प्रतिमा अर्थात् लकडी की वनी मूर्ति के अर्थ संस्कृत में इस शब्द का प्रयोग किया गया है। एगकोट वाट में भगवान् भी दारु प्रतिमा मैंने वहुत वड़ी संख्या में सग्रहीत देखा था। जगन्नाथ जी की मूर्ति भी दारु प्रतिमा है।

४—दारु चीरिय . लकड़ी चीरने वाला का अर्थ होता है।

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद ८ : २

अगुत्तर निकाय १ . १४

(१) यह कथा धर्म्मपद अट्टकथा तथा अन्य स्थानों मे कुछ पाठ भेद तथा घटना भेद के साथ लिखी गयी है। किन्तु मूल विषय प्राय. समान है। पुक्कुसाति की भी कथा इस कथा के संदर्भ मे देखनी चाहिए।

पटाचारा

यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयव्वयं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयव्वयं ॥

(पंच स्कन्धो के उत्पत्ति एवं विनाश का मनन न करने वाले के शत वर्षों के जीवन से उत्पत्ति एवं विनाश का मनन करने वाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।)

ध० ११३

कोसल जनपद में श्रावस्ती नगर था । उसमें एक श्रेष्ठी कुल था । उस श्रेष्ठीकुल की कीर्ति पटाचारा थी । उसका पटाचारा नाम प्रव्रज्या के पश्चात् पड़ा था ।

पटाचारा का विवाह माता-पिता ने निश्चित किया । परन्तु पटाचारा का स्नेह गृह के एक सेवक के साथ हो गया था । उसने कुछ सामान लिया । उसके साथ घर से नगर के मुख्य द्वार द्वारा पलायन कर गयी । दोनो एक साथ एक गाँव मे निवास करने लगे ।

वह गर्भवती हुई । पितृगृह जाने की इच्छा हुई । प्रसव का प्रबन्ध नही था । पति ने उसे जाने की अनुमति नही दी । आज और कल कहता समय टालता रहा ।

पति की बिना अनुमति उसने पितृगृह के लिए प्रस्थान किया । समझ गयी थी । पति उसे नही जाने देगा । पति उस समय घर मे नही था । उसने पड़ोसियों को सूचित कर दिया था । पति के आने पर उसके गमन की बात कह दे ।

पति आया । उसे घटना मालूम हुई । उसे दुःख हुआ । उसके कारण पटाचारा इस दयनीय अवस्था को प्राप्त हुई थी । उसे अकेला गयी जान, पति उसके पीछे दौड़ पड़ा ।

मार्ग में पटाचारा से पति की भेंट हुई। दोनों साथ चले। कुछ दूर चलने पर पटाचारा को प्रसव वेदना हुई। सन्तान उत्पन्न हुआ। पति-पत्नी प्रसन्न हुए। वे पुनः घर लौट आये।

× × ×

वह पुनः गर्भवती हुई। प्रसव काल समीप आया। पटाचारा मातृ-गृह जाने पर जोर देने लगी। पति ने पहले की तरह हीला हवाली की। वह घर से चल पडी। पति दौड़कर साथ आया। पति के साथ पितृगृह की ओर चलने लगी।

एक जंगल पडा। वे चले जा रहे थे। आँधी आयी। भयकर आँधी के पश्चात् वर्षा होने लगी। वन मे कही आश्रय स्थान नही था। उसे इसी समय प्रसव वेदना उठी। पति को सकेत किया। कुछ छाया करना आवश्यक था। वर्षा से वह शिशु की रक्षा करना चाहती थी। पति लकड़ी काटने चला गया।

जहाँ वह लकड़ी काट रहा था। एक झाड़ी थी। उसमें साँप था। साँप ने उसे काट लिया। उसने चीत्कार किया। कोई सुनने वाला नही था। वहीं मर गया।

× × ×

रात्रि बीती। पटाचारा एकाकी थी। प्रसव वेदना बढी। उसे सन्तान हुई। रात्रि पर्यन्त शिशुओ को दबकाये रही। आंधी का झोंका खाती रही। उसने पति को खोजा। उसे मरा पाया। उसके शोक की सीमा न रही। विलाप करने लगी। उसे मार्मिक वेदना हो रही थी। उसके कारण पति की मृत्यु हुई थी। वह रात भर उसी स्थिति में पड़ी रही। उसका विलाप केवल मात्र अरण्य रोदन साबित हुआ।

प्रात काल उसने अपने छोटे शिशु को साथ लिया। नवजात को कोख मे दबकाया। मातृगृह की ओर कलपती प्रस्थान किया। दोनों बच्चो को काख में दबकाये वह चली जा रही थी। शिशु रो रहे थे। उसका वस्त्र भीगा था। शरीर शिथिल था। तथापि शिशुओ की रक्षा भावना ने उसमे जीवन तथा शक्ति उत्पन्न कर दी थी।

मार्ग मे नदी थी। वर्षा के कारण उफन गयी थी। दो शिशुओं को

एक साथ लेकर पार उतरना कठिन था। इसने बड़े लड़के को तट पर बैठा दिया। सोचा था। छोटे को उस पार रखकर पुनः बड़े को ले जायगी।

समझाकर बड़े शिशु को तट पर बैठा दिया। छोटे को लेकर नदी पार उतरी। कुछ पत्ते तोड़े। उस पर शिशु को सुला दिया। कपड़े में लपेट कर तट पर रख दिया। बड़े बच्चे को लेने के लिए नदी पार करने चली।

एक बाज मंडराता आया। उसने नवजात शिशु को मांस पिण्ड समझा। माँ पटाचारा का ध्यान दोनों शिशुओं की ओर था। दोनों की ओर देखती नदी पार कर रही थी।

उसने बाज को झपटते देखा। शोर किया। ताली बजायी। पक्षी भाग जाय। परन्तु बाज झपटा। नवजात शिशु उठा ले गया। वह हाथ उठाकर शोर करने लगी।

बड़े लड़के ने समझा माँ उसे हाथ उठाकर बुला रही है। वह नदी की धारा में उतरा। जल गहरा था। वह चिल्लाया। वह गया। पटाचारा वेग से बढ़ी। परन्तु शिशु नदी के गर्भ मे पहुँच चुका था। वह विलाप करने लगी। कोई सुनने वाला नही था। सहायता करने वाला नही था। वह जल से निकली। श्रावस्ती की ओर बढ़ी। मार्ग मे एक पथिक मिला। वह श्रावस्ती से आ रहा था। उसने अपने माता-पिता का कुशल समाचार पूछा।

पथिक उसके पिता को जानता था। उसकी आँखें भर आयी। पटाचारा भयभीत हुई। शोक घटना सुनने की जैसे भूमिका थी। वह काँप उठी। पथिक से कुछ पूछने का साहस नही हुआ।

पथिक ने दुःख प्रकट करते हुए स्वत. कहा : 'श्रेष्ठी का मकान गिर गया। श्रेष्ठी अपनी भार्या तथा पुत्र के साथ सो रहा था। चारों दब कर मर गये। मै जब वहाँ से चला तो उन्हें मशान में ले जा रहे थे।' उसने नगर के दक्षिण की ओर उठते धुएँ को ओर सकेत किया।—'शायद उनकी चिता का धुआँ है।'

सुनते ही पटाचारा दुःख विह्वल होकर गिर पड़ी। बेहोश हो गयी।

पटाचारा स्मशान की ओर रोती चली। दुर्भाग्य एक साथ नही आता। उसका पति मर गया। दोनों पुत्र भी मर गये। माँ मर गये। पिता मर गया। उसके भाई मर गये। उन्हे एक ही चिता पर उसने जलते हुए देखा। उस भयकर दृश्य एवं वेदना से वह पागल हो गयी। उसके वस्त्र गिर गये। उसे पता नही था। वह नगी थी। पागलो के तुल्य प्रलाप करती थी।—'मेरे दोनो शिशु मर गये। पति झाड़ी मे मरा पड़ा है। एक ही चिता पर माता-पिता और भाई जल गये।'

वह गली-गली घूमने लगी। प्रलाप करती थी। लोग उस पर ढेले फेंकते थे। चिढ़ाते थे। उसे अपने शरीर की सुध न रही। नंगी रहने के कारण उसका नाम पटाचारा पड़ गया।

× × ×

एक दिन वह श्रावस्ती के जेतवन मे प्रवेश करने लगी। लोगों ने उसे रोका। भगवान् ने उस प्रमत्ता नारी को देखा। लोगो को मना किया। उसे आने का सकेत किया। भगवान् के पास वह पहुँची। भगवान् के दर्शन से उसमें जैसे परिवर्तन हो गया। उसने भगवान् को सुआच्छादित देखा। भिक्षु संघ को सुआच्छादित देखा। वातावरण का उस पर विचित्र प्रभाव पड़ा। उसे अनुभव हुआ। जैसे वह नंगी है।

उसकी चेतना लौटी। उसने अपना शरीर देखा। उसे अपनी नग्नावस्था का ज्ञान हुआ। लज्जित हुई। अपना तन छिपाने की दृष्टि से लज्जित होकर उकड़ूँ बैठ गयी। उसे लज्जा का बोध होता लोगो ने देखा। एक व्यक्ति ने उसे वस्त्र दे दिया। उसने वस्त्र धारण किया। भगवान् के चरण-कमल पर अपना मस्तक रख दिया। पचाग प्रणाम किया। भगवान् ने कहा :

'पुत्रादि परलोक गमन के समय सहायक नही होते। रक्षा नही करते। उनका होना और न होना उस स्थिति मे बराबर है। शील का विशोधन कर निर्वाण पथ की ओर अग्रसर होना ही बुद्धिमानो के लिए श्रेयस्कर है।'

पटाचारा के मल तिरोहित होने लगे। उसके ज्ञानचक्षु खुलने लगे। भगवान् ने पुनः कहा :

'भगिनी ! पुत्र रक्षा नहीं करता। पिता रक्षा नही करता। बन्धु-

ब्रान्धव रक्षा नही करते। जाति गण रक्षा नही कर सकते। जिस समय मृत्यु मनुष्य को स्पर्श करती है।'

पटाचारा प्रबुद्ध होने लगी। भगवान् ने पुनः कहा :

'भगिनी !' बुद्धिमान इसे जानने का प्रयास करते हैं। शीलवान होते हैं। निर्वाण मार्ग की ओर गमन करते है।'

वह स्रोतापन्न हुई। उसने स्रोतापत्ति फल प्राप्त किया। प्रव्रजित होने की इच्छा प्रकट की।

पटाचारा ने भगवान् से शोकाभिभूत अश्रुपूर्ण नेत्रो से कहा :

'भगवन्, मेरे एक पुत्र को बाज उठा ले गया। एक पानी मे डूबकर मर गया। वन मे मेरा पति मरा पड़ा है। मेरे माता-पिता और भाई घर गिरने से मर गये। वे एक चिता पर भस्म हो गये।'

'पटाचारा, तुम्हारी सहायता के लिए कोई आने वाला नही है। जिस प्रकार आज तुम अपनी सन्तान तथा बन्धुओ के मरने पर आँसू बहा रही हो, इससे कही अधिक अपने अगणित पूर्व जन्मो मे बहा चुकी हो। समस्त समुद्रो के जल से अधिक अब तक मनुष्य अपने सन्तानो तथा बन्धुओ की बिदाई पर आँसू बहा चुके हैं।

'भगिनी !' भगवान् ने पुन कहा · चारो समुद्रो से भी अधिक लोग आँसू बहा चुके है। हाहक शोक करने वाला दु.ख को आमन्त्रित करता है। शरीर कष्ट मे पडता है। अतएव अपने जीवन को शोकवशीभूत होकर क्यो नष्ट कर रही हो।'

भगवान् ने उसे भिक्षुणियो के पास भेज दिया। उसके ज्ञानचक्षु खुल गये थे। उसने प्रव्रज्या ली। उसका नाम प्रव्रजित होने पर पटाचारा पड़ गया।

× × ×

किसी समय पटाचारा अपना पद धो रही थी। पैर धोते समय वह मनन कर रही थी। पच स्कन्धो की किस प्रकार उत्पत्ति होती है। उनका विनाश किस प्रकार होता है। उसके पद धोये जल को एक बार फेका। वह कुछ गिरकर सूख गया। दूसरी बार फेका। वह कुछ अधिक दूर पड़ सूख गया। उसने तीसरी बार फेका। वह कुछ और दूर जाकर पड़ा सूख गया। उसने सोचा। इसी प्रकार प्राणी प्रथम, मध्यम तथा

अन्तिम वयस में मरते है। शरीर अनित्य है। भगवान् अपनी कुटी में आसनस्थ थे। पटाचारा की चित्त वृत्ति को समझ गये। उन्होने कहा :

'पटाचारे! पंच स्कन्धो के उत्पत्ति एव विनाश का मनन करने वाले का एक दिन का जीवन शतवर्ष के अमनन शील से उत्तम होता है।'

× × ×

'मनुष्य हल से खेत जोतकर बीज बोते है। धन उपार्जन करते है। वे अपने कुटुम्ब का लालन-पालन करते है। मै भी क्यों न समाधि का उपार्जन करूँ? निर्वाण प्राप्त करूँ? मै शीलसम्पन्न हूँ। शास्ता के शासन का पालन करती हूँ। अप्रमादिनी हूँ। अचचल हूँ। विनीत हूँ। एक दिन मै पाद प्रक्षालक जल को ऊँचे से नीचे की तरफ जाते देखा। मैने उस पार विचार किया। अपने चित्त को उत्तम कोटि के अश्वो की सवारी में शिक्षित करने के समान समाधि मे लगाया। मै एक दिन दीपक लेकर अपने विहार मे गयी। दीपक दीपस्तम्भ पर रख दिया। शयनासन पर बैठ गयी। दीप-शिखा का जलना देखने लगी। उसका ध्यान करने लगी। ज्योति मद्धिम होने लगी। प्रकाश स्थिर रखने के लिए उठी। सुई लिया। वत्ती को उकसाने चली। उसे तेल मे डुबाने के लिए ज्यो ही सुई का अग्र भाग लगाया। दीपक बुझ गया। दीप निर्वाण हो गया। मेरे चित्त का भी निर्वाण हो गया। तृष्णा शिखा का सर्वदा के लिये निर्वाण हो गया।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावक श्राविकाओं तथा उपासक उपासिकाओ में पैतालीसवा तथा भिक्षुणी श्राविकाओ मे चौथा स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती श्रेष्ठि कुलोत्पन्न पटाचारा विनयधारियों मे अग्र हुई थी।

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ : १४

धम्मपद ८ . १२

२० : १२

थेरी गाथा ४७, उदान ११२-११६

एक मत है कि वह तटीय शिशु को जव लेकर नदी की मध्य धारा में पहुँची तो दूसरे तट पर रखे शिशु पर वाज झपटा। बाज उडाने के लिए उसने दोनो हाथ उठाकर आवाज किया। शिशु कोख से गिर गया। जल में डूबकर मर गया। वह छटपटाती रह गयी।

एक पटाचारा का और वर्णन वौद्ध ग्रन्थो मे आता है। वह वैशाली निवासिनी थी। पटाचारा के आदर्श कन्याओ की शिक्षा के लिए रखने का भगवान् ने सुझाव दिया था।

किशा गौतमी (कृशा गौतमी)

तं पुत्तपसु सम्मतं व्यासत्तमनसं नरं ।

सुत्तं गामं महोघो व मच्चु आदाय गच्छति ॥

'पुत्र और पशु में लिप्त आसक्त जनो को मृत्यु उसी प्रकार ले जाती है जैसे सोये ग्राम को बाढ बहा ले जाती है ।'

ध० २८

कृशा गौतमी श्रावस्ती के अतिनिर्धन कुल मे जन्म ली थी। उसका मूल नाम गौतमी था। वह अत्यन्त कृश थी। उसकी कृशता के कारण लोग उसे कृशा गौतमी कहने लगे थे।

उसका कुल नष्टप्राय था। दुर्गति प्राप्त हो चुका था। दरिद्रता देवी की कुल पर असीम कृपा थी। तथापि वह सुन्दर थी। युवती हुई। उसका विवाह एक सम्पन्न कुल में हो गया।

निर्धन एव दरिद्र कुटुम्ब की समझ कर उसका ससुराल में निरादर होता था। तिरस्कार होता था। वह चुपचाप सुनती थी। कोई और चारा नही था।

समय लौटता है। समय लौटा। वह गर्भवती हुई। ससुराल मे आदर का अकुर अंकुरित हुआ। उसे पुत्र रत्न हुआ। उसका मान बढा। सबकी प्रिय हो गयी।

उसका पुत्र कोमलाग था। सुन्दर था। सुख में उसका लालन-पालन होने लगा। वह बढ़ने लगा। सबका प्रिय हो गया। गौतमी का वह सर्वस्व था। भविष्य था। प्राण था।

अकस्मात् वह बीमार हुआ। काल के शीतल स्पर्श से वच न सका। उसके अन्तिम स्वास के टूटते ही गौतमी का भौतिक भविष्य जैसे घनघोर अँधियारी लुप्त हो गया। वह विक्षिप्त हो गयी।

उसके पुत्र को श्मशान उठा ले जायेगे। उस भय से उसने पुत्र शव को गोद मे उठा लिया। उसे विश्वास नही होता था। उसका पुत्र मर गया था। वह अव भी आशा करती थी। कोई उसे जिला देगा। वह फिर वोलने लगेगा।

वह नगर में शव लिये घूमने लगी। सवसे संजीवनी माँगती। अपने पुत्र का जीवन माँगती। लोग देखते। उदास होते। दु:खी होते। उसे पगली समझते। उसके साथ सहानुभूति दिखाते। परन्तु कोई मृत की काया मे प्राण सचारित नही कर सका।

यदि कोई उससे कहता। वालक मर चुका है। उसे श्मशान ल जा। तो वह घवराती। भाग खड़ी होती। उसकी विक्षिप्तता वढ़ती गयी। विलाप वढ़ता गया।

× × ×

'ओ! किशा!' एक सहृदय व्यक्ति ने उसे देखकर पुकारा।

'आप औपधि देगे!' किशा आशा से उस व्यक्ति के पास आ गयी।

'कृशा! वुद्ध के पास जा।'

'वहाँ क्या करूँगी?'

'वे कारुणिक है।'

'क्या करेंगे?'

'तुम पर करुणा करेंगे। तुम्हारा शिशु जो जायगा।'

'वे कहाँ मिलेगे?'

'चली जा, जेतवन मे।'

किशा गौतमी वेग से जेतवन की ओर झपटी।

× × ×

भगवान् के समीप पहुँचते ही गौतमी का विलाप बढ़ गया। भगवान् ने अभय मुद्रा में कहा:

'देवी! पुत्र मर गया है।'

'भगवन्! मर गया—जिला दीजिये।'

'जिसने जन्म लिया है। वह मरेगा किशा।'

'नही-नही इसे जिला दीजिये ।'

'गौतमी—!'

'आप भगवान् है । लोग कहते है। आप जिला देंगे ।' किशा ने विश्-वास के साथ कहा । मृत बालक का शव और जोर से हृदय मे चपका लिया ।

'गौतमी !' भगवान् ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

'कहिये क्या करूँ ।' उसके स्वर मे आशा थी ।

'कुछ सरसों के दाने लाओगी ।'

'हाँ । यह क्या कठिन है ।'

'लेकिन, उस घर से लाना जहाँ कोई मरा न हो ।'

'अच्छा लाऊँगी ।'

किशा बालक का शव लिये नगर की ओर दौड़ी।

× × ×

किशा गौतमी शव के साथ द्वार-द्वार जाती थी। पीली सरसो माँगती थी। कहती थी . 'एक मुठ्टी सरसो दे दो।'

'क्या करोगी ?' नागरिक पूछते।

'मेरा लाल जी जायेगा ।

'यह क्या कठिन है। ला दूँ।'

'लेकिन—।'

'लेकिन क्या ?'

'आपके घर कोई कभी मरा तो नही है ।'

'अरे ! तुम यह क्या कहती हो ? कौन घर ऐसा है जिसमें कभी कोई मरा न हो ।'

'नही-नही, तब नही चाहिए ।'

वह विकल एक घर से दूसरे घर, एक द्वार से दूसरे द्वार जाती। उसे श्रावस्ती में भी एक ऐसा घर नही मिला । जहा कोई मरा नही था। उसे सिद्धार्थक अर्थात् पीली सरसों नहीं मिल सकी ।

× × ×

किशा गौतमी स्रोतापन्न हुई। उसके ज्ञानचक्षु खुले। उसने समझ लिया। जगत् मे सब मरेंगे। उसका शिशु भी मर गया। यह कोई नई बात नही थी।

उसे मृत शव से विराग हो गया। उस शव को उसने अरण्य में छोड़ दिया। उसे अपने शिशु के शव के प्रति स्नेह नही रह गया था। वह जेतवन की ओर चली। इस बार वह शान्त थी। गम्भीर थी। मनन-शील मुद्रा मे थी।

× × ×

तथागत ने गौतमी को आते देखा। वे स्थिर होकर बैठ गये। गौतमी ने पहुँचकर भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। भगवान् ने मृदु स्वर में पूछा :

'किशा! सरसो कही मिली।'

'नही भन्ते।'

देवी !' भगवान् ने कहा . कुल का धर्म, ग्राम का धर्म, जनपद का धर्म, देश का धर्म, देवों सहित समस्त लोक का धर्म एक ही है—वह है अनित्यता।'

'शास्ता, समझ गयी ! समझ गयी।' गौतमी ने भगवान् के चरणो पर मस्तक रख दिया।

'किशा !' भगवान् ने कहा :' हानि और लाभ का जो ज्ञान रखता हुआ, एक सौ वर्ष जीवित रहता है, उससे हानि और लाभ समझकर, जीने वाले का एक दिन उत्तम है।'

'भन्ते ! समझ गयी। भ्रम दूर हो गया। मुझे प्रव्रज्या मिले। उपसम्पदा मिले।'

किशा ने प्रव्रज्या ली। भिक्षुणी बन गयी। थोड़े ही काल मे उसने अर्हत् पद प्राप्त लिया।

× × ×

किशा गौतमी ने धर्म की विकसित अवस्था में उदान कहा :

'मूर्ख सदाचारी मित्रों के संसर्ग से पण्डित होता है। भगवान् ने

कल्याणकारी मित्रता की प्रशसा की है। ज्ञान की वृद्धि सत्पुरुषो के पथा-नुगमन द्वारा होती है। उनकी सेवा द्वारा दु खो से मुक्ति मिलती है। दुःख से समुदय और सत्संग द्वारा दु·ख का ज्ञान होता है। उनके ससर्ग द्वारा दु ख निरोध एव दु.ख निवृत्ति की दिशा की ओर प्रेरित करने वाले आर्य अष्टागिक मार्ग का भी ज्ञान होता है।

'स्त्री, जन्म ! भगवान् ने कहा था। दु·ख है। पत्नी सहवास दु·ख है। प्रसव दु ख है। चाहे कोई कामिनी अपने कण्ठ का छेदन करे, चाहे कोई ललितागी तरुणी विषपान करे, परन्तु प्राण नाशी भ्रूण मातृ गर्भ मे दोनों के नाश का हेतु होता हैं।

'ओह ! मेरा प्रसव काल आया। मै अपने घर जा रही थी। मार्ग मे मृत पति को देखा। घर पहुँचने मे असमर्थ हो गयी। मेरे दो पुत्र दिवं-गत हो चुके थे। मार्ग मे पति का शव मुझ हतभाग्या ने देखा।

'हत भाग्ये ! तूने अनन्त जीवन-मरण की परम्परा मे असीमित दु.ख भोगा है। सहस्रो जन्मो की शृ खला मे अश्रुधारा तुम्हारे नेत्रों से बह चुकी है। श्मशान भूमि मे वन्य जन्तुओ द्वारा अपने पुत्रो का अनेक बार मास नोच-नोचकर खाते हुए देखा है।

'ओह ! मुझे पति ने त्याग दिया। पुत्रो ने त्याग दिया। सब चले गये। मेरा सर्वस्व लुट गया। आश्चर्य ! इस अवस्था मे भी मैं जीवित हूँ।

'किन्तु मैने अमृत प्राप्त किया है। अमरत्व की ओर ले जाने वाले आर्य अष्टांगिक मार्ग का चरण किया है। निर्वाण का साक्षात्कार किया है। धर्म के निर्मल दर्पण मे दर्शन किया है। वेदनाओ से आज मुक्त हूँ। मैने सब सासारिक बोधो को उतार कर फेंक दिया है। मेरे कर-णीय समाप्त हो चुके है। मै बन्धनों से मुक्त हो चुकी हूँ। मै किशा गौतमी यही कहती हूँ।'

× × ×

—और भगवान् की वाणी मे भिक्षु श्रावक एव श्राविका की तालिका में तिरपनवाँ तथा भिक्षुणी श्राविकाओ मे बारहवाँ स्थान प्राप्त, कोसल

श्रावस्ती निवासी वैश्य कुलोत्पन्न किशा गौतमी रुक्ष चीवरधारियों में अग्र हुई।

●

आधार ग्रन्थ :
धम्मपद अ० ८ : १३, २० : ११
थेरी गाथा ६३, उदान २१३-२२३
संयुक्त निकाय ३ ५ : ३, ५ : २
थेरी अपदान

सुन्दरी[1]

अभूतवादी निरयं उपेति यो चापि कत्वा 'न करोमीति' चाह ।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति निहीनकम्पा मनुजा परत्थ ।।

(असत्यवादी नरकगामी होता है । वह भी नरकगामी होता है, जो काम करके अस्वीकार करता है । दोनो प्रकार के नीच कर्मी मरकर एक तरह की गति पाते है ।)

—ध० ३०६

भगवान् श्रावस्ती मे थे । अनाथ पिण्डिक के जेतवन मे विहार कर रहे थे । वे लोगों द्वारा सत्कृत थे । पूजित थे । मानित थे । गुरुकृत थे । आपचित थे । चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लान प्रत्यय भेषज्य के पाने वाले थे । इसी प्रकार पूजित भिक्षुसंघ था ।

[2]तैर्थिक भगवान् के परम शत्रु थे । वे सघ तथा भगवान् मे दोष खोजा करते थे । मिथ्या प्रचार करते थे । उनके विनाश के लिए कटि-बद्ध थे ।

श्रावस्ती मे एक परिव्राजिका थी । उसका नाम सुन्दरी था । उन्होने एक षडयन्त्र रचा । सुन्दरी से जाकर सप्रेम, कपटपूर्ण निवेदन किया :

'बहिन ! क्या अपनी जाति का कुछ उपकार कर सकोगी ?'

'आर्यो ! जाति के लिए हमारा जीवन है ।'

'साधु बहिन ! साधु !' वे कृतकृत्य हो गये ।

---

(१) सुन्दरी : सुन्दरी थेरी, कलिंग राजपुत्री सुन्दरी, सुन्दरी नन्दा, तथा थुल्ल नन्दा की कनिष्ठ बहन सुन्दरी नन्दा सभी भिन्न है । यह सुन्दरी परिव्राजिका थी ।

(२) तैर्थिक . इस शब्द का शाब्दिक अर्थ सन्यासी किंवा साधु होता है ।

'आर्यो ! मै वह सब करूँगी जिससे जाति का उपकार हो। कहिए मैं क्या करूँ।'

'बहिन ! जेतवन नित्य जाया करो।'

'आर्यो ! यह कौन सी बड़ी बात है। मै नियमित रूप से नित्य जाऊँगी।'

'साधु बहिन ! साधु !'

× × ×

सुन्दरी जेतवन जाने लगी। जनता उसे नित्य निश्चित समय पर माल्य, ग्रन्थ, फल सहित जेतवन जाना देखने लगी।

तैर्थिको ने उसे एक दिन जान से मार डाला। जेतवन में गन्ध कुटी के समीपस्थ खाई मे गड्ढा खोदा। उसे गाड़ दिया। निर्दोष महिला का जीवन हरण किया। वे अपने षडयन्त्र की पूर्ति से प्रसन्न हो गये।

× × ×

'महाराज !' तैर्थिक ने कोसल राजा प्रसेनजित से निवेदन किये :

'क्या कष्ट हुआ है भणे ?'

'राजन् ! सुन्दरी परिव्राजिका लोप हो गयी है।'

'कहाँ ?'

'वह नित्य नियमित रूप से जेतवन जाती थी।'

'आप लोगों का सन्देह किसी पर है ?'

'हाँ, राजन् !'

'किस पर ?'

'जेतवन।'

'जेतवन ! ऐसा न होगा।'

'नही राजन् ! हमें उन्ही पर सन्देह है।'

'अच्छा ! जेतवन मे जाकर खोजो।'

तैर्थिक प्रसन्न होकर जेतवन चले।

× × ×

तैर्थिक जेतवन में अन्वेषण करने लगे। वहाँ से शव निकाला। उसे चारपाई पर रखा। शव उनके प्रचार का साधन बन गया। वे शव को चारपाई पर लेकर श्रावस्ती की प्रत्येक सडक, वीथी, तथा विशिखा पर घूम-घूमकर प्रचार करने लगे :

'श्रमण धूर्त होते है। निर्लज्ज होते है। दु शील होते है। मिथ्यावादी होते है। ब्रह्मचर्य से उनसे क्या मतलब ? देखो ! अपनी आँखो से देखो ! शाक्य पुत्रीय श्रमणो का भयंकर पापमय क्रूर कर्म !'

'और सुनो वे श्रमण दावा करते है। सत्यवादी है। धर्मचारी है। समचारी है। ब्रह्मचारी है। शीलवान है। पुण्यात्मा है। और उसका प्रमाण इस सुन्दरी का यह शव है।'

'पुरजनो ! यह न तो श्रमण है। न तो ब्राह्मण है। कहाँ से इन्होने श्रमण धर्म प्राप्त किया है। कहाँ से इन्हे ब्राह्मणत्व मिला है। वे श्रमण धर्म से पतित है। ब्राह्मण धर्म से पतित है। उन्हे लज्जा नही आयी। कुकर्म करके इस निर्दोष सुन्दरी नारी की हत्या कर दी। अपना कुकृत्य छिपाने के लिए जेतवन मे गाड दिया।,

श्रावस्ती की जनता भिक्षुओं के विरुद्ध हो गयी। उन्हे पीडित करने लगी। उन्हे असभ्य कहने लगी। उनको धिक्कारने लगी। घृणा से देखने लगी। उन पर कुपित हुई। फटकारने लगी। उन्हे पीडा पहुँचाने लगी। जहाँ श्रमण जाते यह ध्वनि उठती

'शाक्यपुत्रीय श्रमण ! ओह कितने निर्लज्ज है। कितने पतित है।

कहा गया है। भगवान् स्वय सात दिन तक नगर मे भिक्षाचार के लिए नही गये। जनमत भिक्षुओं के विरुद्ध इतना प्रबल हो गया कि आनन्द ने भगवान् से कहा। नगर त्यागकर दूसरे नगर मे चलना चाहिए। भगवान् ने इस मिथ्या अपवाद के कारण स्थान त्यागना उचित नही समझा।

श्रावस्ती मे भिक्षु पिण्डपात से लौटे। भगवान् के समीप गये। अभिवादन और वन्दना कर एक ओर बैठ गये। भगवान् से बोले :

'भन्ते ! हमारी श्रावस्ती मे दुर्दशा हो रही है। हम घृणित समझे जाते हैं। पीडित किये जाते हैं। असभ्य कहे जाते हैं। धिक्कारे जाते हैं।'

'भिक्षुओ ! यह प्रचार बहुत दिनों तक ठहरेगा नही । सत्य प्रकट होगा । एक सप्ताह के पश्चात् लोप हो जायगा ।'

'हम लोग क्या करे ?'

उन्हे उत्तर दो—अयथार्थवादी नरकगामी होते है। वह तो विशेष तौर पर नरक जाता है, जो काम करेक अस्वीकार करता है।'

विरोधी प्रचार का उत्तर मिलने लगा। लोगों में विश्वास पुन. लौटने लगा। इन श्रमणों ने यह कार्य शायद नही किया था।

× × ×

तैर्थिको ने हत्यारों को धन देकर हत्या के लिए तैयार किया था। उन्हे कार्षापण दिया था। राजा ने गुप्तचरों को नियुक्त किया। सुन्दरी के हत्यारे का पता लगाया जाय।

'हत्यारे एक मदशाला मे गये। मद पीने लगे। मद चढा। वे परस्पर वाद-विवाद करने लगे। एक ने अपनी बहादुरी दिखाने के लिए कहा—'मैने ऐसा मारा कि एक ही प्रहार में सुन्दरी मर गयी । उसे नाला के कूडे मे भीतर फेंक दिया।'

बात फैली । राजप्रतिहारियो ने उन्हे पकड लिया। वे राजा के सम्मुख उपस्थित किये गये। राजा ने पूछा :

'तुम लोगों ने मारा ?'

'हाँ देव !' उनमें से एक बोल उठा।

'किसने यह षडयन्त्र किया था।'

'देव ! हमने नही' तैर्थिकों ने यह सब किया था।'

'अच्छा इन्हे बन्द रखो।'

राजा ने कहा : 'तैर्थिकों को उपस्थित करो।'

× × ×

तैर्थिक पकड़े गये। उन्होने देखा। हत्यारे बन्दी थे। रहस्य खुल गया था। राजा ने क्रूर स्वर मे पूछा :

'तुम लोगो ने यह कुकर्म करवाया है ?'

'राजन् ! क्षमा करे '।

'तुम्हे लज्जा नही आयी।'

'राजन्! अपराध हो गया।'

'सुनो! तुम लोग श्रावस्ती की गलियो मे, सड़कों पर चौराहो पर, वाजार मे जाकर कहो—'श्रमण गौतम के अपवाद के लिए सुन्दरी का वध हम लोगो ने करवाया था। गौतम या श्रमणो का इसमे कोई दोप नही है। हत्या का दोप हम पर है।'

दूसरे दिन जीवन के भय के कारण राजाज्ञा के कारण तैर्थिक घूम-घूमकर यथार्थ बात कहने लगे। जनता ने सच्चाई देखी। वह तैर्थिको के विरुद्ध हो गयी। श्रमणो के प्रति उसका क्रोध जाता रहा।

× × ×

श्रमणो के प्रति दूषित प्रचार तथा बुराभाव सप्ताह भर में समाप्त हो गया। उनका पुन नगर मे आदर सम्मान होने लगा। उनके लिए लोगों में पुन सहानुभूति लौट आयी। अपने कार्य पर जनता पछताने लगी। भिक्षुओं ने भगवान् से कहा·

'भन्ते! आश्चर्य हो गया। अद्भुत वात हो गयी। तथागत का सुभापित ठीक हुआ। मिथ्या प्रचार अन्तर्धान हो गया।'

'भिक्षुओ! तथागत ने कहा, 'वचनो द्वारा असयमी लोग आक्रमण करते है। वचनों से उसी प्रकार वँधते है। जैसे युद्धो मे शत्रुओ द्वारा कुजर बाँधा जाता है। कटु शब्द भी सुनकर अदुष्ट चित्त भिक्षुओं को उस पर ध्यान नही देना चाहिए।'

●

आधार ग्रन्थ:

धम्मपद २१ · १

उदान ४ : ८

बुद्ध चर्या ३६१-३६३

महाकप्पिन

धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥

(धर्मरस पान करने वाला ज्ञानी चित्त सुखपूर्वक सोता है। उत्तम धर्म मे पण्डित सर्वदा रमण करता है।)

—ध० ७९

महाकप्पिन कुक्कुट[1] देश मे निवास करते थे। राजवंशीय थे। उन दिनो भगवान् श्रावस्ती मे विहार करते थे। भगवान् से आयु मे अधिक थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् राजा हुए। उनका नाम महाकप्पिन पड़ा। कप्पिन कुछ ओदात अर्थात् कुछ पाण्डु वर्ण थे। उनकी नाक उभड़ी थी। उनकी अग्रमहिषी का नाम अनोजा था। वह मद्र देशान्तर्गत साकल (स्यालकोट) का निवासी था। रानी राजा के सभी शुभ कर्मो मे सहायक एव भागी था।

---

(१) कुक्कुटीवती नगर चिनाव नदी के उस पार हिमवा अर्थात् हिमालय, हिमवान के समीप एक प्रत्यन्त नगर था। श्री डा० मलल सेकर का मत है कि कुक्कट एक देश था। उसकी राजधानी कुक्कुटवती नगरी थी। उसे राज्य का विस्तार लगभग तीन सौ योजन वताया गया है। श्रावस्ती से यह नगर व्यापारिक मार्ग से सम्वन्धित था। महाभारत सभा पर्व ४४ में 'कुक्कुटा' लोगो का उल्लेख मिलता है। कुक्कुट देश को उससे जोडने का प्रयास कुछ लेखको ने किया है। महाकप्पिन के इस रूप से कि वह गोरा है। उसकी नासिका पतली है। ऊँची है। पतला शरीर है। उसे उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रदेश के समीप भू भाग से जोडने का प्रयास भी किया गया है।

(२) अनोजा : महाकप्पिन की भार्या थी। उसका वर्ण अनोजा पुष्प के समान

महाकप्पिन का आदेश था। नगर के चारो दिशावर्ती द्वारों के सम्मुख पथ से जाने वाले किसी भी गुणी तथा बुद्धिमान को रोक लिया जाय। सूचना राजा के पास भेजा जाय।

राजा के पास पाँच अश्व थे। उनका नाम वाल, पुप्फ, वाल वाहन, पुष्प वाहन और सुयत था। राजा केवल सुयन्त पर आरोहण करते थे। शेष अश्व उसके सन्देश वाहको के काम आते थे। श्रावस्ती के व्यवसायी व्यापार का सामान लेकर कुक्कुट नगर में आये।

× × ×

व्यवसायियो ने विचार किया। कुक्कुट के राजा का दर्शन करना चाहिए। वे परस्पर मिले। निश्चय किया। कुछ भेट राजा को देना उचित होगा।

राजसभा एकत्रित थी। व्यापारियों को सभा प्रवेश की अनुमति प्राप्त हो गयी। वे भेट लेकर उपस्थित हुए।

राजा ने सादर उनका भेट ग्रहण किया। औपचारिक ढग से कुशल मगल पूछा। अन्त मे प्रश्न किया :

'व्यापारियो! आप लोग कहाँ से आ रहे है?'

'राजन्! हम श्रावस्ती से आ रहे है।'

'वहाँ का राजा कौन है? किस प्रकार का 'देश है। किस शासन के अनुयायी है?'

'राजन्! हम इस समय उत्तर देने मे असमर्थ हैं।'

'क्यो—?'

'बिना मुख-हाथ धोये धर्म के विषय मे कैसे बात कर सकते है?'

राजा ने अविलम्ब स्वर्ण झारी में जल लाने का आदेश दिया।

परिचारक जल लाये। व्यापारियों ने हाथ-मुख धोया। वे बोले :

'राजन्! हमारे देश मे बुद्ध का उदय हुआ है।'

था। अतएव उसका नाम अनोजा पड गया था। वह कापिन के चले जाने पर रथों पर उनके पीछे साथिनियो सहित चली। सच्च क्रिया द्वारा नदी पार किया और बोली—भगवान् बुद्ध ने केवल पुरुषो के लिये नही जन्म लिया है। स्त्रियो के लिए भी जन्म लिया है उत्पलवर्णने उसे प्रव्रजित किया था।

'वुद्ध !' राजा शब्द उच्चारण करते ही प्रकम्पित हो गये।

'क्या कहा ?'

'वुद्ध !'

'हाँ वुद्ध।'

व्यापारियो ने पुनः वुद्ध शब्द का घोष किया। राजा ने व्यापारियो को यथोचित उपहार दिया। राजा ने पूछा :

'वुद्ध का धर्म और शासन कैसा है ?'

व्यापारियो ने भरी सभा मे धर्म शासन तथा संघ पर प्रकाश डाला। राजा अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने व्यापारियों को एक लाख मुद्रा देकर उनका सत्कार किया। उसने निश्चय कर लिया। वह धर्म ग्रहण करेगा। ससार का त्याग करेगा।

× × ×

राजा अपने साथियों के साथ तथागत के अन्वेपण मे प्रस्थान किया। वे गगा तट पर आये। वहाँ चमत्कार परीक्षा तथा शक्ति की दृष्टि से वोले . 'यदि यह शास्ता वुद्ध है तो अश्वों का पद विना स्पर्श किये नदो पार कर जाय।'

लोगो के आश्चर्य की सीमा न रही। नदी के स्तर पर से अश्व पार हो गये। एक अश्व का पाँव जल मे नही भीगा। उन्होने मार्गमे अर्वच्छा,[3] नील वाहक[4] और चन्द्रभागा[5] नदी पार की।

× × ×

भगवान् उपाकाल में उठे। कारुणिक भगवान् का ज्ञान हो गया।

---

(३) अर्वच्छा : झेलम तथा चिनाव के मध्य यह नदी होती चाहिए। एक मत है कि अफगानिस्तान तथा चिनाव को मध्यवर्ती वह नदी थी।

(४) नील वाहक : झेलम तथा चिनाव के मध्य यह नदी होनी चाहिए। एक मत है कि अफगानिस्तान तथा चिनाव के मध्य वह नदी वहती थी।

(५) चन्द्रभागा : यह पजाव की चिनाव नदी है। जातको मे श्रावस्ती से चिनाव जहाँ भगवान् वुद्ध ने आसन लगाया था। १२० योजन दूरी बतायी गयी है।

महाकप्पिन ने राज्य त्याग किया था। अपने अनुयायियों के साथ आ रहे थे।

उनसे मिलने का निश्चय किया। पूर्वाह्ण काल में श्रावस्ती नगर में भिक्षाचार किया। तत्पश्चात् चन्द्रभागा के तट पर पहुँचे।

भगवान् एक वट वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये। उनके शरीर की प्रतिभा चतुर्दिक् फैलने लगी। कप्पिन ने प्रतिभा देखी। उसने समझ लिया। भगवान् का आगमन हुआ है।

भगवान् के समीप आये। भगवान् का अभिवादन किये। वन्दना किये। भगवान् ने उन्हे उपदेश दिया। उनके विमल चक्षु खुले। उन लोगो ने प्रव्रज्या ली। उनकी प्रव्रज्या का नाम 'एहि भिक्षु' हुआ। भगवान् के साथ वे श्रावस्ती आये।

× × ×

रानी अनोजा ने सुना। उसके पति तथा उनके साथी भिक्षु हो गये। उसने निश्चय किया अपने पति का अनुसरण करने का। उसका निश्चय उन अमात्यो आदि की पत्नियों ने सुना जो राजा के साथ भिक्षु हो गये थे। उन्होंने ने भी रानी के साथ चलने का निश्चय किया।

वे उसी मार्ग से चली जिससे उनके पति गए थे। उन्होंने नदियों को उसी प्रकार पार किया जिस प्रकार उनके पति किए थे। चन्द्रभागा तट पर उन्हे भगवान् का दर्शन हुआ। भगवान् वट वृक्ष की छाया में बैठे थे।

भगवान् के कारण पति तथा पत्नी एक दूसरे को देख नही सके। भगवान् ने उत्पल वर्णा को उन्हे भिक्षुणी बनाने का आदेश दिया। भगवान् भिक्षुओं के साथ श्रावस्ती पहुँचे।

× × ×

महाकप्पिन अपना समय ध्यान अभ्यास में व्यतीत करने लगे। उन्हें इसमें इतना सुख मिलता था कि वह कहा करते थे—'अहो सुख' अहो सुख।'

भिक्षुओं को शंका उत्पन्न हो गयी। कप्पिन अपने राज-सुख का स्मरण कर इस प्रकार कहा करते थे। भगवान् को वात मालूम हुई।

भगवान् ने उनकी शंका निर्मूल ठहरायी।

× × ×

भगवान् ने लक्ष्य किया। कप्पिन चुपचाप बैठे रहते थे। वे जैसे निष्क्रिय हो गये थे। केवल अपने ध्यान में सुख का आनन्द लेते थे। वह किसी को उपदेश नही देते थे।

भगवान् ने उन्हे एक दिन बुलाया। आने पर आदेश दिया :

'आयुष्मान्! तुम अपने सहयोगियों को धर्म का उपदेश करो।'

'आज्ञा भन्ते!'

भिक्षु सघ आमंत्रित किया गया। अन्य उपस्थित लोग एकत्रित हुए। कप्पिन ने धर्मोपदेश किया। उनके उपदेश का इतना प्रभाव पड़ा कि एक सहस्र सुनने वाले उपासक अर्हत पद प्राप्त हो गये।

श्रावस्ती था। जेतवन था। भगवान् के समीप महाकप्पिन का आसन था। वे शरीर सीधा किये बैठे थे। सावधान थे। भगवान् ने देखा। महाकप्पिन का मेरुदण्ड सीधा था। वह योगियों तुल्य लगते थे।

भगवान् ने भिक्षु सघ आमन्त्रित किया। उनसे कहा :

'भिक्षुओं! महाकप्पिन के शरीर को देखते हो?'

'हाँ भन्ते।'

'इनका शरीर चंचल नही है। हिलता नही है। डोलता नही है।'

'हाँ भन्ते! एकान्त में, सघ मे, सर्वत्र उन्हे इसी रूप मे देखते है।'

'भिक्षुओ! जिस समाधि के भावित तथा अभ्यस्त होने के कारण अचंचलता प्राप्त होती है उसे उन्होने प्राप्त कर लिया है।'

'वह कौन सी समाधि है भन्ते।'

'भिक्षुओ! अनायास समाधि के भावित एवं अभ्यस्त होने पर मन की चंचलता तिरोहित होती है।'

'भन्ते! वह कैसा होगा।'

'आवुसो! किसी वन मे, किसी वृक्ष के तले, शून्य गृह में, शरीर को सीधा कर, आसन लगा लेना चाहिए। सावधान होकर बैठना चाहिए।

श्वास प्रश्वास पर ध्यान लगाना चाहिए। लम्बा श्वास लेने पर उसे ध्यान रहता है। वह लम्बा साँस ले रहा है। श्वास छोड़ते समय उसे ज्ञान होता है। वन श्वास का त्याग कर रहा है। इसी प्रकार लघु श्वास लेता और छोडता हुआ उसे ज्ञान रहता है। समस्त शरीर का ध्यान करता हुआ साँस लेता है। इनका अभ्यास करता है। पूर्ण शरीर का ध्यान करता हुआ श्वास लेता है। इसका अभ्यास करता है। काय सस्कार अर्थात् श्वास-प्रश्वासकी क्रिया को शान्त करता हुआ श्वास लूँगा। काय सस्कार को शान्त करते हुए साँस छोड़ू गा। अभ्यास करता हूँ। प्रीति का अनुभव करते हुए श्वास को लने और छोडने का अभ्यास करता है। सुख का अनुभव करते हुए श्वास लूँगा। सुख का अनुभव करते हुए श्वास का परित्याग करूँगा। इसका अभ्यास करता हूँ। चित्त सस्कार का अनुभव करते हुए सांस लेता और छोडता हूँ। चित्त का अनुभव करते हुए श्वास को लेता और छोड़ता है। चित्त को प्रमुदित करते हुए श्वास लेता और छोडता है। चित्त को समाहित करते हुए श्वास को लेता और छोडता है। चित्त को विमुक्त करते हुए श्वास लेता और छोड़ता है। अनित्यता का चिन्तन करते हुए श्वास लेता और छोड़ता है। विराग का चिन्तन करते हुए श्वास को लेता और छोडता है। त्याग का चिन्तन करते हुए श्वास लेता और छोडता है। निरोध का चिन्तन करते हुए श्वास लेता और छोडता है।'

भिक्षु संघ भगवान् की योग सम्बन्धी गाथा सुन रहा था। भगवान् ने पुन: कहा:

'भिक्षुओ! अनापान स्मृति के भावित तथा अभ्यस्त हो जाने पर उसका उत्तम फल प्राप्त होता है। इसके अभ्यस्त होने पर शरीरमे चचलता नही रह जाती। शरीर हिलता नही। डोलता नही।

एक समय आयुष्मान् महाकप्पिन राजगृह के मद्दकुच्छि सर्थात् मद्रकुक्षि मृगदाव मे विहार करते थे। एकान्त में थे। एकाकी थे। मन में विचार उत्पन्न हुआ। उपसोथ मे वे जॉय या नही। सघ मे जॉय या नही। वहाँ जाकर क्या होगा। वे कथा स्वय अत्यन्त विशुद्ध नही थे?

× × ×

भगवान् महाकप्पिन के सम्मुख आ गये। उन्होंने मुसकुरा कर कहा .

'उपसोथ और संघ मे नही जाने का विचार करते है ?'

'हाँ भन्ते !

'क्यो ?'

'भन्ते ! लाभ—?'

'शावुस ! यदि तुम्हारे जैसा ब्राह्मण उपसोथ नही करेगे। मान नही करेगे। तो और कौन करेगा ?'

'तो मै क्या करू" भन्ते।'

'आवुस ! तुम्हे उपसोथ में जाना चाहिए। संघ कर्म में जाना चाहिए।'

'भन्ते ! जैसा आदेश।'

भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा महाकप्पिन को समुत्तेजित किया। महाकप्पिन ने उपसोथ तथा संघ मे जाने का निश्चय किया।

× × ×

महाकप्पिन ने धर्म पथ पर अभूत पूर्वःसफलता प्राप्त की। उन्होंने एक दिन उदान कहा :

'सुनो ! अनागत हित एवं अनहित का विचार जो पूर्व काल में ही कर लेता है। उन्हे परिलक्षित कर लेता है। उसे छिद्र विरोधी और हितैषी दोनों ही खोजने पर भी नही पाते। अनापान स्मृति जिसकी पूर्ण है, जो उसमे पूर्णरूपेण अभ्यस्त है, भगवान् के उपदेशो द्वारा उत्तरोत्तर सेवित हैं, जगत् को मेघो से युक्त शशि के समान आलोकित करते हैं। मेरा चित्त परिशुद्ध है। अभित है। सर्वांगीण अभ्यस्त है। सुविदित है। दृढ़ है। वह समस्त दिशाओ को प्रकाशित करता है।

'ओह ! धनो मर जाता है। निर्धन होने पर भी प्राज्ञ जीवित रहता है। प्रज्ञाहीन धनवान कैसे जीवित रह सकेगा ? ज्ञान का निर्णय प्रज्ञा द्वारा होता है। कीर्ति एवं प्रशंसा की प्रज्ञा वृद्धि करती है। प्रज्ञावान दुःख में भी शुभ का अनुभव करता है। इसमे कोई आश्चर्य नही है। यह

कोई नयी बात नही है। यह कोई अद्भुत बात नही है। इसमें क्या आश्चर्य की बात है ? जहाँ लोग जन्म लेते है वहाँ मरते हैं यही प्राणियों की प्रकृति है। जीवित लोगो को जो कुछ लाभप्रद होता है वह मृतकों को नही होता। अतएव मृत्यु पर रोने, दु:ख करने से क्या लाभ होगा ? उससे यश नही बढने वाला है। उससे शुद्धि नही होती है। उसकी ब्राह्मण तथा श्रमण प्रशसा भी नही करते।

'ओह ! रोने से क्या होता है ? आँखो को पीड़ा पहुँचती है। शरीर व्यथित होता है। वर्ण हीन होता है। बुद्धि मलिन होती है। शक्ति क्षीण होती है। शत्रुओ को केवल उससे प्रसन्नता होती है। तथापि हितचिन्तक सुखी भी नही होते।

'ओ ! गृहस्थो ! ! मेधावियो की कामना करो। बहुश्रुती की कामना करो। वे प्रज्ञा एवं कृत्य से बोझिल नाव के पार करने तुल्य पार करते हैं।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावकों में अड़तीसवाँ स्थान प्राप्त सोमान्त देश कुक्कुटवती नगर राजवंशीय महाकप्पिन उपदेशको मे अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ . १४

६ : १ : २ : ७

धम्मपद ६ . ४

संयुक्त निकाय ६ · १ ५
५२ · १ · ७
विनय पटक वग्ग २ ४ ५
विनय पिटक चुल्ल वग्ग १ . ४ . १
मज्झिम निकाय ३ २ ८
आनायानसति सुत्त
थेर गाथा २३५, उदान ५४८-५५७

भगवान् की यह योग पद्धति साम्भवी मुद्रा तथा अपजा जप से मिलती है। यह लप योग की क्रिया है।

यह कथा धम्मपद अट्ठकथा में और तरह से दी गयी है।

एक मत है। कप्पिन अस्सजी के उपाध्याय थे। कम्पिन का अधिकतया उल्लेख सारिपुत्र के साथ आता है।

पिलिन्द वत्स

अकक्कस विञ्ञापनिं गिरं सच्च उदीरये ।
याय नाभिसजे किंचि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

(अकर्कश, सार्थक, सत्यवादी जिससे किसी प्रकार की पीडा नही होती, उसे मै ब्राह्मण कहता हूँ ।)

—ध० ४०८

श्रावस्ती में एक ब्राह्मण कुल था । उसका गोत्र वत्स[1] था । पिलिन्द[2] उसी कुल मे उत्पन्न हुए थे । गोत्र पर उसका नाम पिलिन्द वत्स हुआ था । वह भगवान् के बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व जन्म ग्रहण कर चुके थे ।

उसने एक सिद्धि प्राप्त की थी । उसे चुल्ल गन्धार विज्जा कहते थे । इसके कारण प्रसिद्धि पाया था । परन्तु जब भगवान् ने वुद्धत्व प्राप्त कर लिया तो उसकी सिद्धि समाप्त हो गयी ।

उसे मालूम हुआ । भगवान् ने महा गान्धार[3] ऋद्धि प्राप्त की है । उसके कारण चुल्ल गान्धार ऋद्धि का महत्त्व लोप हो गया है । उसे इस विद्या को जानने की तीव्र आकाक्षा हुई । प्रव्रज्या ग्रहण की । सघ मे सम्मिलित हुआ । भगवान् ने उसे कहा था । शासन में सम्मिलित होने पर विद्या प्राप्त हो सकेगी ।

× × ×

---

(१) वत्स : एक देश जिसको राजधानी कौशाम्वी थी । वत्स गोत्र का नाम है । वत्स का अर्थ पुत्र भी होता है ।

(२) पिलिन्द . यह पिलिन्द वत्स का व्यक्तिगत नाम था । वत्स गोत्र का था अतएव उसे पिलिन्द वत्स कहते थे ।

(३) गान्धार ऋद्धि : इसे गान्धार किंवा गान्धार विज्ञा कहते है । यह एक

पिलिन्द की सुखन तकिया थी। बात-बात में भिक्षुओ को वृषल[४] कह देता था। भिक्षुओं को बुरा लगा। उन लोगों ने भगवान् से शिकायत की। भगवान् ने उत्तर दिया :

'भिक्षुओ ! इसमे आश्चर्य नही।'

'क्यो भन्ते ?'

'आवुसो ! अपने पूर्व के एक शत जन्मो में वह वृषल वादी ब्राह्मण कुल मे जन्म लेता रहा है। यह उसी का प्रभाव है।'

× × ×

एक दिन पिलिन्द वत्स ने राजगृह मे प्रवेश किया। एक आदमी एक पात्र मे पिप्पली (पीपर) लिये चला जा रहा था। पिलिन्द ने उससे पूछा :

'भणे ! पात्र मे क्या है।'

'मूस की लेड़ी है।' पात्र वाहक ने क्रोध से कहा। उसे भ्रम हो गया था। पिलिन्द भिक्षु शायद उससे माँग न ले।

'अच्छा—!' पिलिन्द ने विस्मय प्रदर्शित करते हुए कहो।

'ठीक है। ऐसा ही होगा आयुष्मान्।'

पिलिन्द हँस उठा। पात्र वाहकने परिहास देखकर अपना पात्र देखा। सचमुच सब कुछ मूस की लेड़ी हो गया था।

प्रकार की ऋद्धि शक्ति थी जिसके कारण व्यक्ति अदृश्य हो जाता था। अनेक रूप धारण कर सकता था। चाहे वह भूमि, आकाश, जल क्यो न हो। दो प्रकार की ऋद्धियो का वर्णन थेर गाथा में आता है। एक महा तथा दूसरी छोटी थी। पिलिन्द को महा ऋद्धि प्राप्त थी। इसके कारण वह आकाश में उड़ जाता था। दूसरो के मनोगत विचारो को जान सकता था।

(४) वृषल : मुद्रा राक्षस नाटक में शूद्रक ने इसे सखुन तकिया का प्रयोग किया है। चाणक्य प्राय. परिहास के कारण 'वृषल' मुँह लगे लोगो को कह दिया करते थे।

पिलिन्द का चमत्कार देखकर वह घबड़ाया। हाथ जोड़कर क्षमा याचना की। पिलिन्द ने कहा :

'चला जा। फिर ऐसा मत करना।'

पात्र का सामान पूर्ववत् हो गया।

× × ×

वाराणसी का एक कुटुम्ब था। उसने पिलिन्द का उचित सत्कार नही किया। परिणाम तत्काल हुआ। कुटुन्ब में डाका पड़ा। दो लडकियाँ डाकू उठा ले गये। पिलिन्द ने अपनी ऋद्धि शक्ति से लड़कियो को घर में लाकर उपस्थित कर दिया।

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात की शिकायत की। भगवान् ने कहा :

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द वत्स एक समय राजगृह मे थे। पर्वत पर गुफा निर्माण का कार्य आरम्भ किया था। मगधराज सेनिय बिम्बसार पिलिन्द के पास आया। अभिवादन किया। एक ओर वैठ गया। उसने सुअवसर देखकर पूछा :

'भन्ते ! किस कार्य में लगे है ?'

'महाराज ! गुफा निर्माण निमित्त पर्वत साफ करा रहा हूँ।'

'आराभिक की आवश्यकता है।'

'भगवान् ने आरामिक रखने की अनुमति नही दी है।'

'आरामिक रखने में क्या आपत्ति हो सकती है ?' भगवान् से पूछ लीजिए।

'अच्छा।'

विम्बसार ने पिलिन्द की प्रदक्षिणा की। अभिवादन किया। प्रस्थान किया।

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द ने सन्देश दूत भगवान् के पास भेजा। दूत ने भगवान् से घटना का वर्णन किया। भगवान् ने भिक्षुओ को सम्वोधित किया :

'आरामिक की अनुमति देता हूँ।'

दूत ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की । प्रदक्षिणा की। लौट आया।

× × ×

'भन्ते!—विम्बसार ने पिलिन्द के समीप आकर अभिवादन किया।

'राजन्—!'

'भगवान् ने आरामिक की अनुमति दी हे ?'

'हाँ।'

'भन्ते! आपको आरामिक भेजता हूँ।'

'अच्छा महाराज।'

× × ×

विम्वसार राज-कार्य में व्यस्त हो गया। राजा आरामिक भेजना भूल गया। आयुष्मान् पिलिन्द ने आरामिक माँगा भी नही। राजा को किसीने स्मरण नही कराया। उसे अकस्मात् वात स्मरण आयी। चिन्तित हुआ। सर्वार्थक महामात्य से पूछा :

'आयुष्मान् पिलिन्द के यहाँ आरामिक भेजने के लिए मैने कहा था भणे ?'

'हाँ महाराज!'

'भणे! भेजा गया या नही।'

'नही महाराज।'

'ओह! कितना समय व्यतीत हो गया भणे ?'

'देव! पाँच सौ रात्रियाँ बीत गयी।'

'भणे! पाँच सौ ?

'हाँ महाराज।'

'तो—?'

'राजन्! जैसी आज्ञा ?'

'भणे! अविलम्व आराभिक भेजो।'

'देव ! अच्छा ।'

महामात्य ने पाँच सौ आरामिक आयुष्मान् पिलिन्द के पास भेज दिया। उनसे एक ग्राम आबाद हो गया। उसे आरामिक ग्राम[५] कहते थे। पिलिन्द ग्राम[६] भी कहते थे।

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द उस आरामिक ग्राम के भिक्षाटक थे। अर्थात् कुलूपग थे।

एक समय पूर्वाह्ण में पिलिन्द सुआच्छादित हुए। पात्र लिया। चीवर लिया। पिलिन्द ने ग्राम में भिक्षा निमित्त प्रवेश किया।

ग्राम मे उत्सव था। बालको को माताओ और बहिनो ने अलकृत किया था। वे खेल रहे थे। आयुष्मान् पिलिन्द ग्राम में ठहरे नही। भिक्षाचार करते रहे। एक आरामिक के घर पहुँचे।

आयुष्मान् पिलिन्द ने आसन ग्रहण किया। पिलिन्द ने एक बालिका का रोना सुना। वह रो रही थी—'मुझे अलकार दो। मुझे माला दो।' पिलिन्द ने आरामिक की गृहपत्नी से पूछा :

'बालिका क्यों रो रही है ?'

'दूसरे बालक और बालिकाओ को मालाकृत देखकर रो रही है।'

'तो—?'

'हम दरिद्र है भन्ते।'

पिलिन्द चुप हो गये।

'हम कहाँ पायेगे ?' कहती-कहती गृह-पत्नी ने आँसू पोंछ लिये। वह लौटने लगी।

---

(५) आरामिक ग्राम आरामिक ग्राम का नाम आरामिकों के रहने के कारण पडा है जैसे आजकल मजदूर वस्ती आदि किसी वर्ग विशेप के रहने के कारण पड जाता है।

(६) पिलिन्द ग्राम : आरामिक ग्राम का दूसरा नाम था। पिलिन्द के कारण ग्राम वसा था अतएव उनके स्मृति में गाँव का नाम रख दिया गया। आजकल भी इस प्रकार विशेष पुरुपों के नाम पर ग्राम रखने की प्रथा है।

'सुनो ! इस तृण को बालिका के मूर्धा पर रख दो ।' आयुष्मान् पिलिन्द ने कहा ।

उन्होने भूमि से एक तृण उठाया । गृहपत्नी को दे दिया ।

गृह-पत्नी से तृण बालिका के मूर्धा पर रख दिया । बालिका सुवर्ण माला युक्त अभिरूपा हो गयी । दर्शनीय हो गयी । प्रासादिक हो गयी ।

गृह-पत्नी ने बालिका का मुख चूम यिा । आँसू पोछ लिया । बालिका उछलने लगी । उँगलियों से माला लपेटती प्रसन्न होने लगी । गृह-पत्नी ने पिलिन्द के चरणो पर मस्तक रख दिया । उसके काले रूखे केशो से पिलिन्द के चरण कमल काले बादलों मे ढके शशि की तरह लगने लगे ।

लोगो ने सुसज्जित बालिका को देखा । ईर्ष्या हुई । द्वेष हुआ । अन्तः-पुर मे ऐसी सुन्दर माला नही थी । एक दरिद्र को कैसे प्राप्त हुई ? चर्चा का विषय बन गया ।

बात राजा तक पहुँची ।

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द दूसरे दिन पिलिन्द ग्राम मे भिक्षाचार करने आये । बालिका के घर पहुँचे । वहाँ कोई नही था । पड़ोसियो से पूछा :

'आरामिक कहाँ चला गया ।'

'राजा ने बन्दी बना लिया ।'

'सबको ?'

'हाँ भन्ते !'

'बालिका सहित ?'

'हाँ भन्ते ।'

'क्यों ?'

'बालिका के सुवर्ण माला के कारण ।'

'क्यों ?'

'राजा ने कहा—इस दरिद्रा के पास इतने अमूल्य अलकार कहाँ से आयेगे । अन्त पुर मे भी वैसे अलाकर नही थे ।'

'तो—?'

'सन्देह हो गया—वे चोरी के थे।'

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द का आगमन राजा सेनिय विम्बसार के यहाँ हुआ। पवित्र आसन ग्रहण किया। राजा ने सुना। श्रद्धापूर्वक आया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया ! आयुष्भान् पिलिन्द ने पूछा :

'महाराज ! आपने आरामिक कुल को बन्दी किया है ?'

'हाँ भन्ते।'

'कारण—?'

'सुवर्णमाला अमूल्य थी। अन्त.पुर मे भी मिल नही सकती थी।'

'तो—?!

'निस्सन्देह चोरी की होगी।'

'ओह !—?'

आयुष्मान् पिलिन्द ने विचार किया। राजा के भवन की ओर देखा। भवन सुवंण का हो गया। राजा विस्मित हुआ। आयुष्मान् पिलिन्द ने मृदु स्वर मे पूछा ·

'राजा इतना सुवर्ण कहाँ से आ गया ?'

'भन्ते ! भन्ते—!'

राजा पिलिन्द के चरण-कमलो पर गिर पड़ा। 'भन्ते ! क्षमा करें। वे मुक्त किये जाते है।'

आयुष्मान् पिलिन्द आसन त्यागकर उठ गये।

× × ×

आयुष्मान् पिलिन्द का ऋद्धि प्रतिहार्य राजा ने देखा। राज परिषद ने देखा। ख्याति चारो ओर फैल गयी। आयुष्मान् पिलिन्द के पास मक्खन, घी, तेल, मधु, खाड पाँचो भेषज आने लगे। वे परिषद को दे देते थे। आयुष्मान् पिलिन्द की परिपद संग्रही हो गयी। भेषजो से कुण्डे भर गये थे। वे रखे जाने लगे। विहार चूहो से भर गया।

अनन्तर जल-पात्रों तथा थैलियों में भर कर वन में टाँगे जाने लगे। विहार भूमि में अस्त-व्यस्त पडे रहते थे। लोग विहार में आते थे। उन्हे भिक्षुओं का संग्रह रुचता नहीं था। लोग चकित हुए। किस प्रकार आयुष्मान् पिलिन्द की परिषद् संग्रही हो गयी थी। असंग्रह धर्म त्याग दिया था।

× × ×

भगवान् को मालूम हुआ। उन्होंने भिक्षु संघ को और संग्रहीताओं को फटकारा। भिक्षुओ को सम्बोधित किया :

'बीमारों को भी चर्या योग्य भेषज्य पदार्थ एक सप्ताह से अधिक नही रखना चाहिए। इसका अतिक्रमण करने पर धर्मानुसार दण्ड दिया जाय।'

पिलिन्द के कारण भिक्षुसंघ में एक नियम बना।

× × ×

पिलिन्द वत्स ने अपने जीवन का सिंहावलोकन करते हुए उदान कहा था।

'विभिन्न धर्मो मे जो श्रेष्ठ धर्म था उसे मैने प्राप्त किया है। मेरा लाभ हुआ है। अनिष्ट नही हुआ है। मैने जो उपदेश, जो निर्देश प्राप्त किया था, वह मेरे लिये कल्याणकारी सिद्ध हुआ है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावकों मे छब्बीसवाँ स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती ब्राह्मण कुलोत्पन्न पिलिन्द वत्स देवताओं के प्रियों मे अग्र हुए।

●

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ : १४

धम्मपद २६ : २५

विनय पिटक महावग्ग ६ · ३ : १–३

थेर गाथा ९

उदान ९

दो पिलिन्द वत्स भिक्षुओं का उल्लेख मिलता है। एक मत है। राजगृह के पिलिन्द वत्स श्रावस्ती के पिलिन्द वत्स से भिन्न थे।

यह कथा धम्मपद में अत्यन्त संक्षिप्त दूसरी तरह से ही दी गयी है।

सुप्रिया[1]

भगवान् ने राजगृह से प्रस्थान किया। चारिका करते हुए वाराणसी पहुँचे। ऋषि पत्तन मृगदाव में विहार करने लगे। सुप्रिय तथा सुप्रिया दो उपासक और उपासिकाएँ थी। वे श्रद्धालु थे। संघ सेवक थे। वाराणसी निवासी थे।

सुप्रिया रोगी की सेवा मे तत्पर रहती थी। एक दिन की बात है। वह एक विहार से दूसरे विहार मे जाती थी। वह एक परिवेण से दूसरे परिवेण मे जाती थी। भिक्षुओ को देखती थी। किसी को सुश्रुषा की आवश्यकता थी या नही।

सुप्रिया ने एक भिक्षु देखा। वह लेटा था। कृश मालूम होता था। सुप्रिया उसके पास गयी। उसने जिज्ञासा किया।

'भन्ते ! आपकी तबीयत कैसी है ?'

'मैने रेचक औषधि लिया है।'

'आपको किसी वस्तु की आवश्यकता है ?'

'हाँ है, भगिनी !'

'क्या लाऊँ ?'

'पथ्य भगिनी !'

'किस चीज का।'

---

(१) बौद्ध साहित्य मे एक और सुप्पिया का उल्लेख मिलता है। वह त्रितीय इक्षाकु और भट्ट की पाँच कन्याओ मे एक थी।

'प्रतिच्छादनीय—भगिनी !'

'भन्ते !' सुप्रिया कुछ विस्मित हुई। पुन· बोली . 'आप आराम कीजिए। प्रबन्ध हो जायेगा।'

गम्भीर मुद्रा सुप्रिया बाहर निकली।

× × ×

'भणे ! मास लाओ।' सुप्रिया घर आयी। सेवक से बोली :

'आर्ये !—आज्ञा'

सेवक ने सम्पूर्ण वाराणसी ढूँढ डाला। उसे कही मास नही मिला। वह मांस पशु मरवा कर ला नही सकता था। विनय के अनुसार खाने के लिए पशु हत्या करना वर्जित था। दूसरे का मारा हुआ मास भिक्षु ग्रहण कर लेते थे। सेवक उदास लौट आया

'आर्ये !' सेवक ने उदासीन स्वर मे कहा।

'भणे ! मास मिला।'

'नही आर्ये ! वाराणसी में आज पशु वध नही किया गया है।'

सुप्रिया विचार मग्न हो गयी। भिक्षु को मास पथ्य न देना, वचन तोडना होगा। पथ्य के अभाव मे रोग की वृद्धि हो सकती थी। वह मर भी सकता था। सुप्रिया चिन्ताशील हो गयी।

× × ×

'दासी !' सुप्रिया ने दासी को बुलाया।

'आर्ये !' दासी आयी। विनयपूर्वक खड़ी हो गयी।

'हन्त ! पोत्थ निकाल लाओ।'

'आप क्या करेंगी आर्ये !' दासी चकित हुई।

'मास काटूँगी—जा ला।'

कुछ पूछन का साहस दासी नही कर सकी। पोत्थनिका लेकर आयी। सुप्रिया ने अपनी जाँघ खोला। दासी से बोली :

'हन्त ! मेरे इस मांस को बनाना। विहार मे ले जाना। बीमार भिक्षु को देना।'

'आर्ये !—यह क्या ? आप अपना शरीर काटेंगी !'

'ऊँह ! चिन्ता क्या ?'

'आर्ये—!'

'मै अपना मांस काटूँगी। दूसरे का वध नही कर रही हूँ। इसमे क्या दोष ?'

'आर्ये !'

'हन्त ! एक दिन यह शरीर नष्ट होगा। आज किसी काम आ जायेगा।'

सुप्रिया ने अपना मांस काटा। दासी को बनाने के लिये दिया। घाव धोया। कपडा बाँधा। चादर ओढकर सो गयी।

× × ×

उपासक सुप्रिय आया। उसने सुप्रिया को नही देखा। उसने इधर-उधर देखते हुए बुलाया।

'सुप्रिया ! सुप्रिया !! सुप्रिया !! सुप्रिया !!!

'आर्ये ! वह कोठरी मे सोयी है।' एक दासी ने कहा :

'क्यो ?'

'अस्वस्थ है।'

'क्यो सोयी हो ?' सुप्रिय कोठरी में गया। उसने स्नेह से पूछा :

'बीमार हूँ।'

'क्या व्याधि है ?'

सुप्रिया ने सब घटना सुप्रिय से बता दी।

'आश्चर्य ! सुप्रिया आश्चर्य !!

'ऊँह ! सुप्रिया ने करवट बदल लिया।

'तुम्हारे लिए और क्या अदेय हो सकता है सुप्रिया ?'

सुप्रिया को अपनी प्रशंसा अच्छी नही लगी। उसने मुँह फेर लिया।

× × ×

'भन्ते ! भन्ते ! भन्ते ! भगवान्—?'

सुप्रिय ने भगवान् के चरणों की वन्दना की। अभिवादन किया। प्रद-क्षिणा की। उसे अत्यन्त उद्विग्न देखकर भगवान् ने पूछा :

'आवुस ! क्या है ?'

'भगवान् ! कल का मेरा भोजन स्वीकार कीजिए।'

भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार किया।

+ × ×

समय पर पात्र चीवर धारी भगवान् सुप्रिय के निवास स्थान पर पहुँचे। आसन ग्रहण किया। वन्दना, अभिवादन और प्रदक्षिणा कर सुप्रिय एक ओर खडा हो गया ! भगवान् ने चारो तरफ देखा। वह किसी के देखने की आकाक्षा कर रहे थे भगवान् ने जिज्ञासा की :

'सुप्रिया कहाँ है ?'

'बीमार है।'

'बुलाओ।'

'असक्त है।'

'पकड़कर लाओ सुप्रिय !'

'भन्ते ! आज्ञा !'

× × ×

सुप्रिय पकडकर सुप्रिया को लाया। वह लगडा रही थी। भगवान् का दर्शन मिला। खडी हो गयी। अच्छी हो गयी। घाव भर गया। मास पूज गया। उस पर रोम निकल आये। आश्चर्य चकित रह गयी। भगवान् के पवित्र चरण-कमलों पर शिरसा प्रणाम किया। उप-स्थित लोगोने चमत्कार देख स्तब्ध हो गये।

'सुप्रिया उद्विग्न हो उठी। उसने उत्तम व्यजन भगवान् को अपने हाथों परोसा। भोजनोपरान्त भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित किया। सम्प्रहर्षित किया। तत्पश्चात् आसन त्यागकर चले। सबकी बद्ध अजलियाँ वन्दना में मस्तक से लग गयी।

× × ×

भगवान् ने भिक्षुसंघ को आमन्त्रित किया। तथागत ने पूछा :

'किसने सुप्रिया उपासिका से मास माँगा था ?;

'भन्ते मैने !' बीमार भिक्षु ने कहा।

'मास आया ?'

'हाँ भन्ते।'

'ग्रहण किया ?'

'हाँ भन्ते।'

'किसका मास था ? यह जाना ?'

'नही भन्ते।'

'क्यो ?'

भिक्षु नीरव हो गया। भगवान् ने उसे फटकारते हुए कहा :

'मोघ पुरुष ! बिना जाने तुमने मास ग्रहण किया। तुमने मनुष्य मास भक्षण किया है।'

'ओह—!' भिक्षु सघ कम्पित हो गया। बीमार भिक्षु भूमि पर बैठ गया।

'सुप्रिया ने अपना मास इसे दिया।'

'और—?' किसी ने प्रश्न किया।

'इसने खा लिया।'

सबकी घृणा दृष्टि भिक्षु पर केन्द्रित हो गयी। सबका मन विषाद-पूर्ण हो गया। यह कार्य सबको घिनौना लगा। भगवान् ने कहा :

'भिक्षुओ ! जगत् मे श्रद्धालु है। प्रसन्न मनुष्य हैं। अपने मास तक को दे देते है।'

'भिक्षुओ ! मनुष्य का मास नही खाना चाहिए।' भिक्षुओ का मस्तक नत था। भगवान् ने पुन कहा .

भिक्षुओ ने भगवान् को तरफ देखा। भगवान् ने गम्भीरता पूर्वक कहा :

'भिक्षुओ ! हाथी, अश्व, श्वान, सर्प, सिंह, बाघ, चीता अर्थात् द्वीपी, भाल, तरक्ष अर्थात् लकड बग्घा का मास नही खाना चाहिए।'

'खाने वालो को क्या होगा ?'

'उन्हे कुक्कट (दुष्कृति) दोष लगेगा।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावक श्राविकाओं तथा उपासक उपासिकाओं की तालिका मे बहत्तरवाँ तथा श्रावक उपासिकाओं में सातवाँ स्थान प्राप्त काशी देश, वाराणसी, कुलगृहोत्पन्न सुप्रिया उपासिका रोगी सुश्रूषिकियों में अग्र हुई थी।

आधार ग्रन्थ.
अंगुत्तर निकाय १ : १४
विनय पिटक महावग्ग ६ : ४ : १

महाकोष्ठित

महाकोष्ठित श्रावस्ती मे सम्पन्न ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया था। उनके पिता का नाम अश्वलायन तथा माता का नाम चन्दावती था। वय-प्राप्त करने पर वे तीनो वेद में पारगत हो गये। ब्राह्मण के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती थी। सब उनमे था।

महाकोष्ठित ने भगवान् का उपदेश एक बार सुना। वे अत्यन्त प्रभावित हुए। घर त्याग दिया। प्रव्रज्या ली। उपसम्पदा ली। थोड़े में ही समय उन्होने बुद्धधर्म तथा शासन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। चारों अभिज्ञाओ को प्राप्त किया।

× × ×

कोष्ठित तथा तत्कालीन प्रसिद्ध भिक्षुओं के मध्य हुए शास्त्रार्थ तथा धर्म चर्चा का बहुत बडा उल्लेख मिलता है। एक बार कोष्ठित तथा चित्त हत्थिसारपुत्र[1] के मध्य हुए विवाद का उल्लेख किया गया है।

ऋषि पत्तन मे भिक्षुगण एकत्रित थे। अभिधम्म पर चर्चा हो रही थी। हत्थि सारिपुत्र निरन्तर चर्चा में हस्तक्षेप करता था। कोष्ठित हस्तक्षेप से विरत और समय पर बोलने के लिए कहा। चित्त के साथियों ने

---

(१) हत्थि सारपुत्र . यह एक शीलवान का पुत्र था। उसने बुद्ध शासन स्वीकार किया था। छह बार वह बुद्ध शासन में प्रवेश किया था और छह वार छोडा था। अन्तिम वह महाकोष्ठित से झगड गया था। वह सावित्री के अच्छे कुल का युवक था। एक दिन वह हल जोतकर वापस आ रहा था। एक प्रव्रजित के भिक्षा पात्र से उसने स्वादिष्ट भोजन पाया। उसे प्रव्रजित होने पर स्वादिष्ट भोजन मिलेगा अतएव उसने प्रव्रज्या ले लिया। परन्तु गुहविहीन जीवन उसे अच्छा नही लगा अतएव पुन प्रवज्या त्याग दिया। उसे चित्त तथा चित्त हस्त भो कहा जाता है।

इसका विरोध किया। चर्चा में वह भाग लेने योग्य था। यह बात जोरों से कही गयी। कोष्ठित ने कहा—'चित्त से गुण बहुत दूर है। वह शीघ्र ही बुद्ध शासन त्याग देगा।' बात सत्य हुई। चित्त हत्थि सारिपुत्र बुद्ध शासन के अलग हो गया। महाकोष्ठित के प्रति सारिपुत्र बहुत आदर प्रकट करते थे।

× × ×

सारिपुत्र तथा महाकोष्ठित एक समय ऋषिपत्तन मृगदाव में विहार कर रहे थे। सायकाल महाकोष्ठित ध्यान से उठे। सारिपुत्र के समीप गये। कुशल क्षेम पूछा। एक ओर बैठ गये। सुअवसर देखकर महाकोष्ठित ने निवेदन किया ·

'आवुस ! जरा मरण कैसे होता है ? क्या मनुष्य द्वारा स्वय उत्पन्न होता है ? अथवा अन्य द्वारा उत्पन्न किया जाता है। या स्वय एव अन्य दोनो के द्वारा उत्पन्न होता है ? अथवा न तो स्वय या अन्य इसे कोई उत्पन्न करता है ? अथवा अकस्मात् उत्पन्न हो जाता है ?'

'आवुस ! आपकी बातो में एक भी सत्य नही है।'

'आवुस ! क्या जन्म, भव, उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नामरूप स्वय की रचनाएँ हैं ? अथवा अकारण, हठात् उत्पन्न हो जाते हैं ?'

'आवुस ! इनमे एक भी ठीक नही है।'

'और विज्ञान ? आवुस !'

'वह भी—'

'तो—?'

'नाम रूप के प्रत्यय से विज्ञान उत्पन्न होता है।'

'आपके कहने का तात्पर्य है। नाम रूप तथा विज्ञान न तो अपना और न दूसरे का कृतत्व है। और न हठात् उत्पन्न होता है। परन्तु नाम-रूप होता है।'

'कोष्ठित ! मै एक उपमा देता हूँ।'

'आवुस ! अवश्य दें।'

'आवुस ! दो नरकट के बण्डल एक दूसरे का आश्रय लेकर खडे रहते है। उसी प्रकार नामरूप और विज्ञान की स्थिति है। दोनो एक दूसरे के अवलम्ब से खड़े हैं। उनके कारण दुःख समूह उत्पन्न होता है।'

'आवुस—।'

'सुनो कोष्ठित।' सारिपुत्र ने कहा। 'एक बण्डल को हटा लो। क्या होगा ?'

'आवुस ! दोनो गिर जायेगे।'

आवुस !' सारिपुत्र ने कहा। 'नामरूप के निरोध से विज्ञान का निरोध होता है। विज्ञान के निरोध से नामरूप का निरोध होता है। नामरूप के निरोध से षडायतन का निरोध होता है। षडायतन के निरोध द्वारा स्पर्श का निरोध होता है। इस प्रकार समस्त दुःखो का निरोध हो जाता है।'

'अद्‌भुत भन्ते !'

× × ×

सारिपुत्र और महाकोष्ठित ऋषिपत्तन, मृगदाव वाराणसी मे विहार कर रहे थे। महाकोष्ठित ने सारिपुत्र से सायकाल ध्यान से उठकर निवेदन किया

'आवुस ! शीलवान भिक्षु को किन धर्मों का पालन करना चाहिए ?'

'आवुस ! पॉच उपादान स्कन्ध अनित्य है।'

'वे क्या है, आवुस ?'

'दुःख, व्याधि, दुर्गन्ध, घाव, पीड़ा, पराया, असत्य, शून्य और अनात्म है। उनके मनन से भिक्षु स्रोतापत्ति फल प्राप्त करता है।'

'आवुस ! स्रोतापन्न भिक्षु किस धर्म का मनन करे ?'

'आवुस ! उसे मनन करना चाहिए। पॉच उपादान स्कन्ध अनित्य है। वह सकृदगामी, अनागामी का मनन कर अर्हत् फल का साक्षात्कार कर लेगा।'

'अर्हत् पद प्राप्ति निमित्त किन धर्मो का मनन करना चाहिए ?'

'आवुस ! उसे भी यही मनन करना चाहिए। पॉच उपादान, स्कन्ध, दुःख, व्याधि, दुर्गन्ध, घाव, पीड़ा, पराया, असत्य शून्य और अनात्म

अनित्य है। अर्हत् को और कुछ करना शेष नही रह जाता। किये हुए का नाश नही करना होता है। इन धर्मों की भावना का अभ्यास सुख-पूर्वक विहार करने, स्मृतिमान और सप्रज्ञ निमित्त होता है।

'साधु ! सारिपुत्र।'

× × ×

श्रावस्ती में अनाथ पिण्डक का जेतवन था। सायकाल महाकोष्ठित प्रलिसल्लयन से उठे। सारिपुत्र के समीप पहुँचे। समोदन किया। एक ओर बैठ गये।

'आवुस ! महाकोष्ठित ने सारिपुत्र से पूछा, 'दुष्प्रज्ञ क्या है ?'

'नही समझ मे आता इसलिए दुष्प्रज्ञ कहा जाता है।'

'जैसे—?'

'दु:ख है। दुःख समुदाय है। दुःख निरोध है। दु.ख निरोधगामिनी प्रतिपद को जो नही समझता उसे दुष्प्रज्ञ कहा जाता है।'

'प्रज्ञावान—?'

'समझने वाले को प्रज्ञावान कहते हैं।'

'वह क्या समझता है ?'

'दु:ख दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद आदि समझता है। अतएव प्रज्ञा-वान कहा जाता है।'

'विज्ञान—?'

'आवुस ! वह जानता है। (विजानीति) अतएव विज्ञान कहा जाता है।'

'जैसे ?'

'सुख है। दु ख है। जानता है। सुख नही है। दु:ख नही है। यह भी जानता है। अतएव विज्ञान कहा जाता है।'

'आवुस ! विज्ञान और प्रज्ञा दोनों भिन्न हैं अथवा एक ही हैं ?'

'दोनो मिले-जुले हैं।'

'किन्तु उसमें अन्तर क्या है ?'

'प्रज्ञा मनोयोग करने योग्य है। विज्ञान है परिज्ञेय।

'किन कारणों से वेदना कही जाती है।'

'आवुस ! वेदन अर्थात् अनुभव किया जाता है। अतएव उसका नाम वेदना है।'

'क्या वेदना करती है ?'

'सुख और दु:ख, न सुख और न दु:ख दोनों का वेदन करती है। अतएव वेदना कही जाती है।'

सज्ञा का क्या अर्थ है ?

'सजानन करती है। अतएव सज्ञा कहते हैं।'

'क्या सजानन करती है ?'

'नील, पीत आदि वर्ण का सजानन करती है।'

'आवुस ! सज्ञा, वेदना, विज्ञान विभिन्न है। अथवा एक ही है ?'

'यह तीनों मिले-जुले है।'

'तीनों मे क्या भेद है ?'

जिसको वेदन अर्थात् अनुभव किया जाता है। उसीका सजानन किया जाता है। उसी का विजानन किया जाता है अतएव तीनों मिले-जुले हैं। उन्हे एक दूसरे से अलग नही किया जा सकता। उनका भेद नही बताया जा सकता।'

'शुद्ध मनोविज्ञान द्वारा क्या विज्ञेय है ?'

'आवुस ! आकाश अनन्त है। यह आकाश आनन्त्य आयतन विज्ञेय है। विज्ञान अनन्त है। यह विज्ञान आनन्त्य आयतन विज्ञेय है। अकिंचित् है। यह अकिंचन आयतन विज्ञेय है।'

'आवुस ! विज्ञेय धर्मो को किसके द्वारा पूर्णरूपेण जाना जा सकता है ?'

'आवुस ! विज्ञेय धर्म को प्रज्ञा चक्षु द्वारा जाना जाता है।'

'प्रज्ञा का क्या प्रयोजन है ?'

'आवुस ! प्रज्ञा अभिज्ञा निमित्त है। प्रहाण निमित्त है।'

'आवुस ! सम्यक् दृष्टि ग्रहण करने के प्रत्यय क्या है ?'

'दो कारण होते है। प्रथम है उपदेश श्रवण तथा योनिश· मनस्कार अर्थात् मूल पर विचार करना।'

'आवुस! किन अगो से युक्त होने पर सम्यक्‌दृष्टि चेतोविमुक्ति फल वाली होती है। फल के माहात्म्य वाली होती है। प्रज्ञा विमुक्ति फलवाली होती है। फल के माहात्म्य वाली होती है।'

'आवुस! पॉच अगो के युक्त होने पर होती है।'

'वे अग क्या है?'

'शील, श्रुत, साक्षात्कार, समथ (समाधि) तथा विपश्यना (चिन्तन) है।'

'आवुस! भवों की संख्या क्या है?'

'काम, रूप तथा अरूप भव तीन है।'

'आवुस! पुनर्जन्म किस प्रकार होता है?'

'आवुस! अविद्या नीवरणो, तृष्णा, सयोजनो वाले प्राणियो की जहाँ अभिनन्दना होती है, उसी के अनुसार भविष्य मे वे जन्म ग्रहण करते हैं।'

'आवुस! प्रथम ध्यान क्या है?'

'उस ध्यानावस्था में मनुष्य कामनाओं से रहित हो जाता है। वितर्क विचार रहित हो जाता है। दोषों रहित हो जाता है।'

'करता क्या है?'

'आवुस! विवेक द्वारा उत्पन्न प्रथम ध्यान प्राप्त करता है। उसमे विहार करता है।'

'प्रथम ध्यान का अंग क्या है?'

'प्रथम ध्यान के पॉच अग होते हैं।'

'उनकी व्याख्या कीजियेगा।'

'प्रथम ध्यान प्राप्त भिक्षु को वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और चित्त की एकाग्रता रहती है।'

'प्रथम ध्यान किन अंगों से विहीन तथा किन अंगों से युक्त होता है?'

'पाँच अगों से विहीन होता है। पाँच अंगों से युक्त होता है।'

'वे क्या हैं ?'

'प्रथम ध्यान प्राप्त भिक्षु का विषयानुराग समाप्त हो जाता है। द्रोह समाप्त हो जाता है। आलस्य समाप्त हो जाता है। व्यापाद, और औद्धत्य का कृत्य समाप्त हो जाता है। विचिकित्सा समाप्त हो जाती है।'

'और शेष क्या रहता है ?'

'आवुस ! वितर्क, विचार, प्रीति, चित्त एकाग्रता रहती है।'

'आवुस ! पाँच इन्द्रियाँ है। वे अपना-अपना काम करती है। नाक सुन नही सकता। आँख खोल नहीं सकती। इनका अनुभव कौन करता है ? इनका आश्रय कहाँ है ?।

'आवुस !' सारिपुत्र ने कहा, 'इनका आश्रय मन है।'

'इन्द्रियाँ किसके आश्रय मे स्थित रहती है।'

'आयु के आश्रय स्थित है।'

'आयु किसके आश्रय है ?'

'जब तक शरीर में उष्णता है।'

'यह उष्मा किसके आश्रय स्थित है ?'

'आयु के आ।श्रय।'

'आवुस ! आयु की व्याख्या कीजिएगा ?'

'आवुस ! उपमा देता हूँ। ज्ञानी भाषण का अर्थ समझ जाता है। दीप जलता है। लौ के कारण प्रकाश दिखाई देता है। और प्रकाश के कारण लौ दिखाई देती है।'

'तो—?'

'इसो प्रकार आयु उष्मा के अवलम्ब से स्थित है। उष्मा आयु के आलम्ब से स्थित है।'

'आयु संस्कार और वेदनीय धर्म दोनो भिन्न हैं या एक ?'

'वे दोनों एक नही हैं।' सारिपुत्र ने उत्तर दिया।

'यह शरीर जव अचेतन हो जाता है तो कितने धर्म इसका साथ छोड़ देते हैं ?'

'आवुस ! इस काया को आयु, उष्मा और विज्ञान, त्याग करते हैं। उनके त्याग के पश्चात् शरीर काष्ठवत् हो जाता है।'

'आवुस ! मृत तथा सज्ञा वेदित निरोध की अवस्थाओं मे क्या भेद है ?'

'आवुस ! मृत के काय सस्कार निरुद्ध हो जाते है। शान्त हो जाते है। समाधिस्थ की उष्मा समाप्त नही होती। आयु शान्त नही होती। इन्द्रियाँ निर्मल होती है। और मृत के समस्त काय संस्कार शान्त हो जाते है। यही दोनों अवस्थाओ मे भेद है।'

'आवुस ! सुख-दु.ख रहित विमुक्ति के प्राप्ति निमित्त कितने प्रत्यय है।'

'चार है।'

'वे क्या है ?'

'सुख-दु'ख परित्याग, चित्तोल्लास, दौर्मनस्य तथा सुख-दु ख रहित उपेक्षा के कारण स्मृति की परिशुद्धि वाली चतुर्थ ध्यान प्राप्त होता है। इसमे साधक विहार करता है।'

'आवुस ! अनिमित चेतोविमुक्ति की समापत्ति के कितने प्रत्यय हैं ?'

'दो प्रत्यय है।'

'कौन से है ?'

'आवुस !' सारिपुत्र ने कहा। 'निमित्तो को मन से तिरोहित और अनिमित्त धातु का मन मे आश्रय देना।'

'आवुस चेतोविमुक्ति की स्थिति के कितने प्रत्यय अर्थात् आश्रय है ?'

'तीन प्रत्यय हैं।'

'उनका नाम आवुस !'

'किसी प्रकार के निमित्तो को मन मे स्थान न देना, और अनिमित्त धातु का मन मे आश्रय देना। और पूर्व का अभिसस्कार यही तीन प्रत्यय है।'

'आवुस ! अनिमित्त चेतोविमुक्ति के उत्थान के कितने आश्रय है।'

'दो प्रत्यय हैं।'

'कौन से ?'

'निमित्त का मन मे स्थान न देना और अनिमित्त धातु का भी मन मे उदय न होना।'

'आवुस ! अप्रमाण चेतोविमुक्ति, आकिंचन्या चेतोविमुक्ति, शून्यता चेतोविमुक्ति, अनिमित्त चेतोविमुक्ति धर्म नाना अर्थ वाले हैं। नाना व्यंजन वाले है। या एक अर्थ वाले है। एक व्यजन वाले हैं।'

'दोनो है।'

'चेतोविमुक्ति क्या है ?'

'मैत्री युक्त, करुणा युक्त, मुदिता युक्त, उपेक्षा युक्त चेतोविमुक्ति है।'

'आकिंचन्या चेतोविमुक्ति क्या है ?'

'आवुस ! जिस समय भिक्षु विज्ञान आयतन का अतिक्रमण कर लेता है उस समय अकिंचन आयतन प्राप्त करता है उसमे विहार करता है। इसे आकिंचन्या चेतोविमुक्ति कहते है।'

'आवुस ! शून्यता चेतोविमुक्ति क्या है ?'

'जिस समय एकान्त मे, एकाकी, अरण्य, वृक्ष छाया अथवा शून्य आगार मे यह चिन्तन किया जाता है—'यह जगत् आत्मा किंवा आत्मीयता से शून्य है—तो उसे शून्यता चेतोविमुक्ति कहते है।'

'अनिमित्त चेतोविमुक्ति क्या है आवुस ?'

'किसी भी निमित्त का मन में जब धारण नही किया जाता है, तो अनिमित्त चित्त समाधि प्राप्त की जाती है।'

'आवुस ! क्या तात्पर्य है ? जिसके कारण धर्म एक अर्थ वाले हैं। परन्तु व्यजन उनके नाना अर्थ वाले हो जाते है ?'

'आवुस ! राग, द्वेष, मोह प्रमाण उपस्थित करते है। किन्तु क्षीणास्रव भिक्षु के वे क्षीण हो जाते है। मूल से उच्छिन्न हो जाते है। ताड वृक्ष के कटे सिर की तरह हो जाते है। अभाव प्राप्त हो जाते हैं। भविष्य मे उत्पन्न होने योग्य नही रह जाते।'

'और—?'

'सुनो आवुस ! अप्रमाण चेतोविमुक्तियों में अकोप्या चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है। अकोप्या चेतोविमुक्ति राग, द्वेष, मोह से शून्य है। द्वेष किंचन है। मोह किंचन है। क्षीणश्राव भिक्षु के वे क्षीण हो जाते है।

'आवुस ! आकिंचन्या चेतोविमुक्तियो में अकोप्या चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है। राग निमित्त कारण है। द्वेष निमित्त कारण है। मोह निमित्त कारण है।'

'आवुस ! अनिमित्त चेतोविमुक्तियो मे अकोप्या चेतोविमुक्ति श्रेष्ठ है। वह राग, द्वेप, मोह से शून्य है।'

'आवुस ! यह पर्याय है। जिस पर्याय से धर्म एक अर्थ है। परन्तु व्यजन नानार्थक हैं।'

× × ×

महाकोष्ठित धर्म पथ पर आरूढ थे। उनका निरन्तर विकास होता गया। एक समय उन्होने उदान कहा :

'वायु जिस प्रकार वृक्ष के सूखे पत्ते को हिला कर गिरा देती है। उसी प्रकार उपशान्त, पाप विहीन, गर्व रहित, ज्ञान वार्ता वाला पाप धर्मो को हिला देता है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावकों मे उनतीसवाँ स्थान प्राप्त, कोसल श्रावस्ती, ब्राह्मण कुलोत्पन्न, महाकोष्ठित प्रतिसम्मिदा ज्ञान प्राप्तो अग्र हुए।

●

आधार ग्रन्थ :

अंगुत्तर निकाय १ १४

संयुत्त निकाय १२ ७ · ७

२१ ३ : २ १०

मज्झिम निकाय १ ५ ३
३ : २ ८

थेर गाथा २

उदान २

विनय पिटक चुल्लवग्ग १ ४ १

विनय पिटक महावग्ग १० : २ . २

[1]उग्ग गृहपति

वज्जियो के देश मे हस्ति ग्राम एक स्थान था। उग्ग गृहपति की जन्म-भूमि थी। पिता की मृत्यु हुई। पिता के स्थान पर नगर श्रेष्ठी नियुक्त किया गया।

भगवान् वज्जि प्रदेश मे पहुँचे। हस्ति ग्राम मे विहार किया। वे नाग वेणु वन मे थे। वहाँ सात दिनो तक मदपान उत्सव पूर्ण गरिमा, उल्लास, उमग, कोलाहल के साथ चलता रहा। नर्तकियो, गायिकाओ, नट-नटी, वादक, ऐन्द्रजालिक आदि से उत्सव पूर्ण था।

उग्ग उमगित था। खूब मदपान किये था। प्रमत्त था। मदपान रहित भगवान् तथा भिक्षुओ का प्रसग उठा। उल्लास मे वह कह उठा—'चलो देखे वहाँ क्या होता है।' सभी मदमस्त थे। उमग मे कह उठे—'हाँ-हाँ चला जाय।'

---

(१) उग्ग का उल्लेख उग्गृह, उग्गत, उद्गत तथा उग्ग रूप मे किया गया है। उग्ग नामक अनेक लोगो का उल्लेख बुद्ध साहित्य मे मिलता हैं। एक उग्ग काण ग्राम के श्रेष्ठी थे। उसने जेतवन से डेढ मील दूर पर एक विहार भगवान् के लिए निर्माण कराया था। वह भगवान् का उपासक था। दूसरा उग्ग प्रसेनजित कोसलराज का अमात्य था। तीसरा उग्ग उछक रामयुत्त का अनुयायी था। चौथा उग्ग एक थेरा था। वह कोमल निवासी था। मघाराम में भगवान् जब उपदेश दे रहे थे उसी समय उपदेश सुनकर भिक्षु बन गया था। पाँचवाँ उग्ग श्रावस्ती के गृहपति अनाथपिण्डक का मित्र था। एक मत है कि अनाथपिण्डक की कन्या चूल सुभद्रा का विवाह इसके साथ हुआ था। वह निर्गन्थ मत का अनुयायी था। सुभद्रा के कारण भगवान् की शरण मे आया था। छठवें उग्गह माण का उल्लेख मज्झिम निकाय मे है। वह समण मण्डिका का पुत्र था।
उग्ग कोसल में एक नगर था।

भगवान् के विहार की तरफ उग्ग गणिका, नर्तकी, गायिकाओ के साथ सवेग चला। लोगों ने देखा। अमद्यप भिक्षु संघ की ओर जाती, मार सेना तुल्य, उग्ग गृहपति का मद्यप समूह। लोग मद्यपो के इस अभियान पर हँसे। बोले—'अन्तोगत्वा है तो मद्यप ही।'

भगवान् के सम्मुख उग्ग लडखड़ाती अवस्था मे पहुँचा था। उसे अपने कर्म पर लज्जा मालूम हुई। उसका नशा उखड गया। भगवान् ने उसे सप्रेम समीप बैठाया। उसकी मद्यपावस्था पर रोष नही प्रकट किया। उसे कुछ कहा नही। मदपान की उस समय बुराई नहा की। भगवान् ने उपदेश दिया। उग्ग अनागामी होगा।

वह मदमत्त साथियो, नर्तकियो, गायिकाओं आदि के पास आया। उन्हे नमस्कार किया। क्षमा याचना करते हुए उन्हे छुट्टी दे दी। मद्यप सेना नगर की ओर झूमती चली। उग्ग रह गया सघ मे। रात दिन सघ की सेवा मे रत हो गया।

× × ×

देवताओ का एक दिन रात्रि मे उग्ग के पास आगमन हुआ। अनेक भिक्षु, जिन्होने सफलता प्राप्त की थी, उनका उल्लेख किया। उग्ग से बोले :

'तुम सबको एक जैसा दान देते हो।'

'हाँ देता हूँ।'

'दुनिया मे सब एक जैसे नही होते।'

'लेकिन मनुष्य का आकार एक जैसा है। पशुओ-पक्षियो के आकार में विभिन्नता है।'

'केवल प्रसिद्ध और नामी भिक्षुओ को दान किया करो।'

'देव! मानवो के आकार मे भिन्नता होते हुए भी समानता है। दान मे भी क्यो न यह साम्य रहे ?'

'उग्ग! गुण, धर्म, अध्यास, ज्ञान मानवो में भेद उत्पन्न करता है। उनमे स्पष्ट भेद प्रतीत होता है।'

'देव! तो मै क्या करूँ। फिर भी मानव है, मानव।'

'उग्ग! दान देते समय तुम भिक्षुओं का चयन किया करो। उनमें जो

तुम्हे अच्छे लगे उन्हे दान सहर्ष दो ।'

'नही देव । मै मनुष्य और मनुष्य मे कैसे दान के लिए भेद कर सकूँगा ?'

'उग्ग—।'

'देव । क्षमा करें । आपको मेरा प्राजलिभूत नमस्कार है ।'

देवता चले गये । उग्ग सर्वदा की तरह् छोटे-बडे, ऊँच-नीच का बिना विचार किये दान देता रहा ।

× × ×

एक समय भगवान् भिक्षु संघ मे बैठे थे। चर्चा के बीच भगवान् ने कहा .

'उग्ग मे आठ गुण है ।'

एक भिक्षु उग्ग के पास पहुँचा । संघ मे हुई घटना के सन्दर्भ मे पूछा :

'आयुष्मान् ! आप मे आठ गुण क्या है ?'

'आवुस ! मै कैसे बता सकता हूँ ?'

'क्यो ।'

'भगवान् के मन की बात क्या जानूँ ?'

'भगवान् ने क्यो कहा ?'

'वे जाने ?'

'उनका अष्ट गुणो से क्या तात्पर्य था ?'

'मै कैसे बता सकता हूँ ?'

'आयुष्मान् । आप स्वय जो समझते है, वही बताने की कृपा करे ।'

'सुनो !' उग्ग ने कहा । 'मै ज्यो ही भगवान् के सम्मुख पहुँचा मेरा नशा उतर गया ।'

उसने भगवान् की वन्दना की। भगवान् ने उससे नाना विषयो पर चर्चा की।

'वह क्या विषय था ।'

'वह विषय दान और शील था ।'

'आयुष्मान् । दूसरा गुण क्या है ?'

'भगवान् ने देखा। मेरी वुद्धि ठीक है। उन्होने उपदेश दिया। चार अर्य सत्यो को बताया। मैने उसे समझा। अनुभव किया।'

'तीसरा गुण क्या था आयुष्मान् ?'

'मेरी चार पत्नियाँ थी। भगवान् के उपदेशों से प्रभावित हुआ। मनन किया। ध्यान किया। बुद्ध शासन मे रहना स्वीकार किया। घर आया। सब पत्नियो के जीवनयापन निमित्त उचित व्यवस्था कर दी। उनके सुखमय जीवन निर्वाह की योजना बना दी।'

'और क्या किया आयुष्मान्।'

'मेरी चौथी पत्नी ने कहा। वह दूसरा विवाह करना चाहती थी। मुझे विषाद नही हुआ। बिना पति उसे रहना कठिन प्रतीत हुआ। बिना किसी द्वेष-भाव के, बिना किसी ईर्षा के, उसके लिए पति ढूँढ़ दिया। उसका विवाह कर दिया। इसमे मुझे किंचित् मात्र दु.ख, शोक, मात्सर्य एव ईर्ष्या नही उत्पन्न हुई। एक प्रकार की प्रसन्नता का बोध किया।'

'चौथा गुण आयुष्मान् ?'

'आवुस। मैने अपनी सम्पत्ति गुणी तथा प्रियजनों मे विभाजित कर दिया।'

'पाँचवाँ गुण आवुस ?'

'मै जब किसी भिक्षु के समीप जाता हूँ, तो पूर्ण श्रद्धा के साथ जाता हूँ। भिक्षु का उपदेश ध्यान से सुनता हूँ। यदि भिक्षु उपदेश नही देते, तो मै स्वय धर्म सिद्धान्त वताता हूँ।'

'छठा गुण आयुष्मान् ?'

'आवुस। देवताओ से विभिन्न भिक्षुओ के गुणादि के विषय मे वार्तालाप हुआ। परन्तु दान मे मैने किसी गुणी-अवगुणी, सामान्य किंवा बडे, वृद्ध तथा युवक मे कभी भेद नही किया। समान रूप से सबको दान देता हूँ।'

'सातवाँ आवुस ?'

'मैंने कभी गर्व नही किया। आत्मश्लाघा नही की। देवताओ से मैने वार्तालाप किया है। अपनी महत्ता बताने के लिये किसी से स्पृहा नही की।'

'आठवाँ गुण आयुष्मान् ?'

'मै मृत्यु के विषय मे कभी चिन्ता नही करता।'

'क्यो आयुष्मान् ?'

'भगवान् ने मुझे विश्वास दिलाया है। मेरा अब जन्म नही होगा। मै आवागमन से, बन्धनो से, मुक्त हो जाऊँगा।'

+ × ×

भिक्षु भगवान् के पास गया। भगवान् से उसने उग्ग द्वारा वर्णित गुणो की चर्चा की। भगवान् ने कहा

'आयुष्मान् ! मैंने जब उग्ग की प्रशसा की थी तो यही गुण मेरे मष्तिष्क में थे।'

× × ×

उग्ग एक दिन हस्ति ग्राम मे भगवान् के दर्शन निमित्त गया। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् के सकेत पर पूछा :

'भन्ते ! क्या कारण है। कुछ लोग इसी जीवन मे मुक्त हो जाते है। दूसरे नही हो पाते।'

'आयुष्मान् !' भगवान् ने उत्तर दिया। 'उसका कारण बन्धन है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भगवान् के भिक्षु श्रावक, श्राविका तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे बासठवाँ तथा श्रावक उपासको मे आठवाँ स्थान प्राप्त बज्जी देश, हस्ति ग्राम, निवासी श्रेष्ठी कुलोत्पन्न उग्ग गृहपति, सघ सेवको मे अग्र हुआ था।

●

आधार ग्रन्थ :

सगुक्त निकाय ३४ . ३   २   ५ (सक्क सुत्त)
३४ . ३ . २ . २ (वज्जि सुत्त)

अगुत्तर निकाय १ : १४

A. IV 292-296

S IV : 109

A A. I 214

धर्मदत्ता) धम्मदिन्ना)

"वह ऊर्ध्व स्रोत है जो सम्पूर्ण अन्त करण की वृत्तियो द्वारा परम शान्ति की कामना करता है एवं भोग और तृष्णा के आकर्षण से प्रलुब्ध नही होता।"

थेरी गाथा . १२

भगवान् राजगृह में वेणु वन में विहार कर रहे थे। भगवान् का उपदेश एक दिन विशाख ने सुना। उपदेश का उस पर प्रभाव पडा। वह अनागामी हुआ। घर आया। पत्नी ने उसमे परिवर्तन देखा। कोठे पर विशाख आया। परन्तु पत्नी से भाषण नहीं किया। गम्भीर था।

धम्मदिन्ना उदास होकर कोठे से उतर आयी। भोजन का समय हुआ। उसको सस्नेह भोजन परोसा। विशाख ने चुपचाप भोजन ग्रहण किया। परन्तु कुछ बोला नही।

धम्मदिन्ना चकित हुई। उसे पति का यह व्यवहार विचित्र लगा। उसने साहस कर पूछा :

'आप बोलते नही है। क्या मैने कोई दोष किया है ?'

'नही ! धम्मदिन्ने ! तुम्हारा कोई दोष नही है।'

'तो—?'

'मैंने बुद्ध शासन ग्रहण किया है।'

'फिर—?'

'मै स्त्री का स्पर्श नही करूँगा।'

धम्मदिन्ना हतप्रभ हो गयी। विशाख ने थाली हटाते हुए कहा :

'मै भोजन घर का नही कर सकूँगा।'

'तो—?'

'भिक्षा माँगूँगा।'

'मै क्या करूँगी।'

'आर्ये! तुम यह सब सम्पत्ति ले लो।'

'क्यों?' धम्मदिन्ना पति के इस त्याग-भावना से चकित हुई।

'मै गृह-त्याग करूँगा। तुम अपने घर सब सम्पत्ति लेकर चली जाओ।'

'जी नही। मै आपके यहाँ से नही जाऊँगी।'

'फिर क्या करोगी?'

'आप मेरा एक उपकार करेंगे।'

'ओह! निश्चय आर्ये!'

'सत्य?'

'हाँ।'

'मै भी क्यों न आपकी तरह प्रव्रजित हो जाऊँ?'

'वाह—इससे अच्छा और क्या होगा।' विशाख प्रसन्न हो गया।

'तो—!'

'चलो चलें।'

'चलो।' धर्मदिन्ना ने प्रसन्नतापूर्वक कहा।

× × ×

विशाख ने उत्सव का आयोजन किया। सुसज्जित शिविका आयी। धम्मदिना को हर्ष, उल्लास तथा उत्साह के साथ भिक्षुणी संघ मे लाया। वहाँ धम्मदिन्ना प्रव्रजित हुई। उद्योग करती हुई धर्म पथ पर अग्रसर होने लगी।

धम्मदिन्ना ने भगवान् का उपदेश सुना। वह अनागामी हुई। भिक्षुणी सघ के साथ विहार में निवास करने लगी। ज्ञान प्राप्त करने लगी। उसे नगर का जीवन रुचिकर नही लगता था। सघ की आज्ञा से उसने नगर के बाहर एकान्त सेवन पसन्द किया। भिक्षुणियों ने उसके निवास का प्रबन्ध नगर के बाहर कर दिया। उसने शीघ्र अर्हत्व प्राप्त कर लिया। उसे धर्म का विमल ज्ञान हो गया।

उसने निश्चय किया। श्रावस्ती मे बँधे पड़े रहने से क्या लाभ ? भगवान् राजगृह मे थे। उसने राजगृह के लिए प्रस्थान किया। वह राजगृह पहुँची। भगवान् के सान्निध्य मे उसे धर्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। उसके पति विशाख ने विचार किया। धम्मदिन्ना की बात सुननी चाहिए।

× × ×

भिक्षुणी विशाख की भार्या थी। राजगृह के वेणु वन कलन्दक निवाप में भगवान् विहार कर रहे थे। धम्मदिन्ना भी वहाँ विहार करती थी।

विशाख भिक्षुणी धम्मदिन्ना के समीप पहुँचा। अपनी पूर्व पत्नी को अभिवादन किया और एक ओर बैठ गया। उसने सुअवसर देखकर पूछा—

'आर्ये ! सत्काय क्या है ?'

पूर्व पति विशाख का सम्बोधन सुनकर धम्मदिन्ना किञ्चित् मुसकुराई। विशाख नील गगन की गम्भीरता की ओर देखने लगा।

'रूप, वेदना, सज्ञा, सस्कार और विज्ञान उपादान स्कन्ध है। इनको भगवान् ने सत्काय कहा है आवुस ! विशाख !'

धम्मदिन्ना का सम्बोधन सुनकर विशाख विस्मित हुआ। उनके बीच जैसे पूर्व संबंध किसी प्रकार का रह नही गया था। पूर्व मर चुका था।

'आर्ये ! सत्काय समुदाय क्या है ?'

'सुखेच्छा समन्वित विषयों का स्वागत करने वाली, आवागमन की तृष्णा वाली उसी प्रकार है जैसे—काम, भव, विभव, तृष्णादि।

'इनका फल क्या होता है !'

'यह है आत्मवाद के कारण आवुस !'

'सत्काय निरोध क्या आत्मा की भावना के नाश का नाम है ?'

'आवुस ! तृष्णा का सम्पूर्णतया निरोध अर्थात् नाश, त्याग, प्रतिनिस्सर्ग और अनासक्ति सत्काय निरोध है।'

'आर्ये ! सत्काय निरोधगामिनी प्रतिपद क्या है ?'

'आवुस ! यह है अष्टागिक मार्ग।'

'अष्टांगिक मार्ग क्या है आर्ये ?'

'सम्यक् दृष्टि, संकल्प, वचन, कर्मान्त, आजीव, व्यायाम, स्मृति तथा समाधि अष्टांगिक मार्ग है आवुस !'

'उपादान या उपादान स्कन्ध एक ही है या भिन्न ?'

'आवुस ! उपादान एक नही है। पाँच उपादान स्कन्ध एक नही है। उपादान पाँच उपादान स्कन्धों से भिन्न नही है। पाँचो उपादान स्कन्धों में जो राग है वही उपादान है।'

'आर्ये ! सत्काय दृष्टि क्या है ?'

'आवुस ! आर्यों के दर्शन से वंचित, आर्यधर्म से अपरिचित, अविनीत, सत्पुरुषों के दर्शन से वंचित, सत्पुरुष धर्म से अविनीत, अज्ञ, पृथक्-जन, पुरुष रूप को आत्मा देखता है। रूपवान को आत्मा देखता है। आत्मा में रूप देखता है। रूप में आत्मा देखता है। वेदना को आत्मा देखता है। सज्ञा को आत्मा देखता है। संस्कार को आत्मा देखता है। विज्ञान को आत्मा देखता है।'

'आर्ये ! आर्य अष्टांगिक मार्ग संस्कृत है या असस्कृत ?'

'सस्कृत है—विशाख !'

'आर्ये ! तीनो स्कन्ध आर्य अष्टांगिक मार्ग में सग्रहीत नही है। अपितु तीनो स्कन्धो मे आर्य अष्टांगिक मार्ग सग्रहीत है।'

'आर्य ! समाधि, समाधि निमित्त, समाधि परिष्कार और समाधि भावना क्या है ?'

'आवुस ! चित्त की एकाग्रता समाधि है। चार स्मृति प्रस्थान समाधि के चिह्न है। चार सम्यक् प्रधान समाधि के परिष्कार है। उन्ही धर्मो का सेवन तथा भावना और वृद्धि करना समाधि संस्कार है।'

'आर्ये ! संस्कारो की सख्या कितनी है ?'

'आवुस ! काय, वचन तथा चित्त तीन संस्कार हैं।'

'काय संस्कार क्या है आर्ये ?'

'श्वास प्रश्वास काय सस्कार है।'

'वचन संस्कार क्या है ?'

'वितर्क और विचार वाक् संस्कार है।'

'चित्त संस्कार क्या है ?'

'वे इस प्रकार क्यो है, आर्ये ?'

'आवुस ! आश्वास प्रश्वास काया से सम्बन्धित काया के धर्म किंवा क्रियाएँ है। पहले वितर्क किया जाता है। पुनः विचार किया जाता है। तत्पश्चात् वाणी किवा वचन या वाक् प्रस्फुटित होती है। संज्ञा तथा वेदना चित्त के कर्म है। धर्म है।'

'आर्ये ! किस प्रकार सज्ञा वेदित निरोध समाप्त होता है।'

'आवुस ! सज्ञा वेदित निरोध को प्राप्त भिक्षु यह नही विचार करता कि वह सज्ञा वेदित निरोध को समापन्न होगा। समापन्न हो रहा है। यह भी नही विचार करता। वह समापन्न हुआ। यह भी विचार नही करता। वह इस प्रकार अभ्यस्त हो जाता है कि स्वय उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है।'

'आर्ये ! जिसका सज्ञा वेदित निरोध समापन्न होता है, उसके कौन-कौन से कर्म किंवा धर्म निरुद्ध हो जाते है ?'

'उसका सर्वप्रथम वचन, उसके पश्चात् काय और अन्त मे चित्त सस्कार निरुद्ध हो जाता है।'

'सज्ञा वेदित निरोध की समापत्ति का उत्थान कैसे होता है ?'

'आवुस ! उत्थानशील भिक्षु को मैं उठूगा, मै उठ रहा हूँ, मै उठ गया। इस प्रकार की भावना नही होती। उसका चित्त पूर्व से ही, इस प्रकार भावित रहता है कि उस स्थिति को प्राप्त कर लेता है।'

'आर्ये ! सज्ञा वेदित निरोध समापत्ति से उठते भिक्षु को कौन-कौन धर्म पहले उत्पन्न होते है ?'

'आवुस ! उसे पहले चित्त सस्कार, पुन. काय सस्कार, अन्त मे वचन सस्कार उत्पन्न होता है।'

'आर्ये ! सज्ञा वेदित निरोध समापत्ति से उठते भिक्षु को कौन-कौन स्पर्श उसे स्पर्श करते है।'

'आवुस ! तीन स्पर्श उसे स्पर्श करते है।'

'आर्ये ! उनका नाम ?'

'आवुस ! उन्हे शून्यता स्पर्श, अनिमित्त स्पर्श और अप्रणहित स्पर्श तीनो स्पर्श करते है।'

'आर्ये ! उस साधक भिक्षु का किस ओर निम्न, प्रवण तथा प्राग्भार होता है ?'

आवुस ! उसका चित्त विवेक की ओर निम्न होता है। विवेक प्रवण तथा विवेक प्राग्भार होता है।'

'आर्ये ! वेदनाओं की संख्या कितनी है ?'

'आवुस ! वेदनाएँ तीन है।'

'कौन-कौन ?'

'दु:ख वेदना, सुख वेदना और अदुख-असुख वेदना।'

'आर्ये ! सुख में वेदना ? आश्चर्य ! आर्ये, सुख वेदना क्या है ?'

'कायिक, मानसिक अनुभव, जब अनुकूल प्रणीत होता है, तो उसे सुख वेदना कहते है ।'

दु:ख वेदना ?'

'कायिक और मानसिक अनुभव प्रतिकूल प्रतीत होता है, तो वह दु:ख वेदना है।'

'आवुस ! अदु:ख वेदना क्या है ?'

'कायिक और मानसिक अनुभव जब अनुकूल तथा प्रतिकूल नही प्रतीत होते, तो उसे असुख-अदु:ख वेदना कहते हैं।'

'आर्ये ! सुखा वेदना क्या है ? सुखा और दु खा वेदना क्या है ?"

'कहती हूँ।'

सुखा वेदना क्या है ?'

'आवुस ! सुखा अर्थात् सुखमय वेदना की स्थिति सुखा अर्थात् सुखमय वेदना है। किन्तु उसका परिणाम दु:ख होता है।'

'दु:खा वेदना क्या है ?'

'दु:ख वेदना की स्थिति दु:खा है। किन्तु उसका परिणाम सुखा होता है।'

'और अदु:ख-असुखा वेदना क्या है ?'

'अदुःख-असुख वेदना सुखा है, ज्ञान में। अदु.खा है अज्ञान में।'

'सुखा वेदना के समय कौन अनुशय अर्थात् मल लगा रहता है!'

'सुखा वेदना में राग अनुशय स्पर्श करता है।'

'दुःखा वेदना मे—?'

'प्रतिघ अर्थात् प्रतिहिंसा अनुशय स्पर्श करता है। चिपटता है।'

'अदुःख और असुख मे—?'

'उस वेदना मे अविद्या अनुशय चिपटता है।'

'आर्ये! क्या राग प्रतिघ तथा अविद्या अनुशय क्रमशः वेदनाओं में लप्त होते है? चिपटते हैं?'

'नही।'

'आर्ये! सुखा वेदना में क्या प्रहातव्य है?'

'अविद्या अनुशय त्याज्य है।'

'दुःखा में?'

'प्रतिघ अनुशय त्याज्य है।'

'और अदुःख-असुख में क्या त्याज्य है?'

'अविद्या अनुशय प्रहातव्य हैं।'

'आर्ये! क्या सब सुखा वेदनाओ मे राग अनुशय प्रहातव्य है?'

'नही।'

'क्या सभी दु.खा वेदनाओ से प्रतिघ अनुशय, प्रहातव्य है?'

'नही।'

'क्या सभी अदुःख असुखा वेदना में अविद्या अनुशय प्रहातव्य है?'

'नही।'

'आर्ये ''।'

'विशाख! भिक्षु कामना और बुराई रहित, विवेक द्वारा उत्पन्न, वितर्क विचार युक्त, प्रीति एव सुखवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त होता है। उसमे विहरता है। वह राग का त्याग करता है। उसे राग अनुशय नही स्पर्श करते। वह विचार करता है। कैसे वह उस आयतन को प्राप्त

करेगा जिस आयतन को प्राप्त कर आर्य इस समय विहार करते हैं। उत्तम विमोक्षो मे इस प्रकार स्पृहा उपस्थित करने पर, स्पृहा के कारण दौर्मनस्य उत्पन्न होता है। अतएव वह प्रतिघ का त्याग करता है। प्रतिघ अनुशय उसे स्पर्श नही करता। सुख और दुःख के परित्याग द्वारा सौमनस्य तथा दौर्मनस्य का अन्त हो जाता है। सुख-दुःख विरहित होता है। उपेक्षा द्वारा स्मृति की परिशुद्धि वाले चतुर्थ ध्यान को प्राप्त होता है। उसमें विहरता है। अविद्या का त्याग करता है। अविद्या अनुशय उसे स्पर्श नही करती।'

'आर्ये ! सुखा वेदना की प्रतिभाग क्या है ?'

'दुःख वेदना।'

'दु.ख वेदना का प्रतिभाग अर्थात् विरोधी क्या है ?'

'सुखा वेदना।'

'अदु ख असुख वेदना का क्या प्रतिभाग है ?'

'अविद्या।'

'अविद्या का प्रतिभाग क्या है ?'

'विद्या।'

'विद्या का प्रतिभाग क्या है ?'

'विमुक्ति।'

'विमुक्ति का प्रतिभाग क्या है ?'

'निर्वाण।'

'निर्वाण का प्रतिभाग क्या है ?'

'विशाख ! प्रश्न की सीमा पार कर गये। आवुस ! ब्रह्मचर्य निर्वाण तक है। निर्वाण पर्यवसान है। इच्छा हो तो भगवान् से प्रश्न कर लो।'

विशाख अपनी पूर्व पत्नी और अब की भिक्षुणी के भाषण का अभिवादन किया। अनुमोदन किया। आसन से उठा। प्रदक्षिणा की भावना के समीप पहुँचा।

सुअवसर प्राप्त होने पर, विशाख ने पूरा सलाप भगवान् से कहा। भगवान् ने कहा—

'विशाख ! धम्मदिन्ना भिक्षुणी है। पण्डिता है। महाप्रज्ञा है। यदि मुझसे प्रश्न करते तो मै भी यही सब उत्तर देता।'

कालान्तर में सुख की उपदेशिका हुई।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओं की तालिका में छियालीसवाँ और भिक्षुणी श्राविकाओ मे पाँचवाँ स्थान प्राप्त मगध राजगृह विशाख श्रेष्ठी की भार्या धम्मदिन्ना धर्म कथिकाओं मे अग्र हुई थी।

आधार ग्रन्थ :
अंगुत्तर निकाय १ · १४
मज्झिम निकाय १ · ५४
धम्मपद अ० क० २६ ३८
थेरी गाथा १२ उदान १२
Thig. v : 12
M : i : 299
Thig A · P : 15
P v A · P . 21
Ap : ii : 567
A A : i . 196
M A : i : 515
DhA : iv : 229
Thig A : 58

चिंचा[1]

> एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो ।
> वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ॥
>
> —ध० १७६

(एक धर्म सत्य का परित्याग कर, जो असत्य भाषण करता है, उस परलोक चिन्ता शून्य मनुष्य से ऐसा कोई पाप बाकी नही रहता जिसे वह न कर सके।)

भिक्षुओ के आचरण, उनके रहन-सहन तथा व्यवहार के कारण सघ की ख्याति बढने लगी। तैर्थिको का मान-सम्मान कम होने लगा। सम्मान कम होते देख वे चिन्तित हुए। उनका लाभ भी कम हो गया। अतएव घनाभाव उनके चिन्ता का विषय हो गया। उनकी वही दशा हुई जैसे सूर्योदय के कारण जुगनू प्रभाहीन हो जाता है। लोप हो जाता है। उस पर किसी का ध्यान नही जाता। तैर्थिको का आदर-सत्कार समाप्तप्राय हो गया।

वे एकान्त मे एकत्रित हुए। चर्चा चली। बुद्ध तथा उनके सघ की किस प्रकार अपकीर्ति की जाय। उनकी धाक जनता पर से उठ जाय। संघ का किस प्रकार नाश किया जाय।

श्रावस्ती मे चिन्ता माणविका नामक एक परिव्राजिका थी। रूपवती थी। युवती थी। अप्सरा तुल्य थी। सौभाग्य प्राप्त थी। उसके तरुण शरीर से कान्ति प्रस्फुटित होती थी।

एक तैर्थिक के दिमाग मे उपज आई। चिन्ता से बुद्ध की अपकीर्ति कराई जाय। तैर्थिको के मन में यह बात बैठ गयी।

---

(१) चिंचा का पालि में शाब्दिक अर्थ इमली होता है।

तैर्थिको के आराम में माणविका आती थी। उसने वन्दना की। एक ओर खडी हो गयी। उससे किसी ने बात नही की। उपेक्षा दिखायी। उसने सोचा। उससे कोई अपराध हो गया।

उसने निवेदन किया। यदि उसका कोई अपराध हो तो उसे बताया जाय। चिन्ता से लोगो ने कहा :

'बहिन! बुद्ध का लाभ सत्कार यहाँ हो रहा है।'

'यह तो देख रही हूँ।'

'क्या तुम इसे नित्य नही देख रही हो?'

'देखती हूँ।'

'हमारा तो विनाश हो रहा है।'

'हूँ—।'

'चिन्ता—।'

'आर्यो! कहिए। हम क्या करे?'

'बहिन! सचमुच तुम हमारा सुख चाहती हो तो श्रमण गौतम की अपकीर्ति करा सकती हो।'

माणविका सोचने लगी।

'बहिन!' तैर्थिक उसकी रुचि देखकर बोले। 'श्रमण गौतम के लाभ सत्कार का विनाश होना आवश्यक है।'

'आर्यो! मै आप का कार्य करूँगी।'

'सचमुच!'

'हाँ—आप चिन्ता न करे।'

× × ×

माणविका त्रिया चरित्र मे निपुण थी। मायावी थी। उसने भगवान् को बदनाम करने का मार्ग निकाल लिया।

जिस समय श्रावस्ती निवासी धर्म कथा सुनकर समूह में जेत वन से निकलते थे। उस समय वह जेत वन की ओर चलती थी। खूब शृंगार करती थी। वीरवहूटी की तरह वस्त्र धारण करती थी। गन्ध हाथ मे

लेती थी। माला हाथ मे लेती थी। जेतवन की ओर से लौटते लोगो को उन्हे दिखाती थी।

लोगो को आश्चर्य होता था। सब लोग लौटते थे उस समय जेतवन क्यों जाती थी। लोगो ने उससे पूछा .

'यह तुम्हारा उलटा गमन कैसे चिन्ता ?'

'तुमसे मतलब ?'

'यो ही पूछा था।'

'मै कहाँ रहती हूँ। कहाँ जाती हूँ। कहाँ मेरा निवास होता है। यह मेरा काम है।"

वह लोगो को कठोर शब्दों में उत्तर देती। लोग चुप हो जाते थे।

इसी प्रकार प्रात॰काल जब लोग जेतवन की ओर जाते तो वह विगलित शरीर, टूटी माला, बिगड़े शृंगार, अस्त-व्यस्त वस्त्रोंयुक्त जैसा रूप बनाकर लौटती।

लोगो को आश्चर्य होता। चिंचा रात्रि में कहाॅ रहकर लौटती थी—जेतवन जिस समय लोग जाते थे। वह लौटती थी। यह विरोधी कार्य देखकर लोगो का कौतूहल बढा। लोगों ने पूछा :

'चिंचा ! इस समय कहा से आगमन हो रहा है।'

'तुमसे मतलब ?' चिंचा बिगड कर उत्तर देती।

'कौतूहलवश पूछा था।'

'मै रात को कहाॅ रहती हूँ। यह प्रश्न क्या स्त्रियों से पूछने योग्य है। जाओ अपना काम करो।'

लोगो के मन मे शका स्थान करने लगी। वे नित्य ही लौटते और जाते उसी मार्ग मे आती और जाती चिंचा को देखते थे।

लोगो मे कानाफूसी होने लगी। किसी ने पुनः जिज्ञासा की। उसने उचित अवसर जान कर कहा : 'जेतवन मे रहती हूँ।'

'वहाॅ क्या कथा सुनती हो ?'

'नही ! तथागत के साथ एक ही गन्धकुटी में विहार करती हूँ।' वह गर्व से आॅख चमकाकर बोलती।

लोगों मे सशय घर करने लगा।

× × ×

तोन मास बीता। चिंचा का पेट कुछ फूला। लोगो ने देखा। चिंचा पेट पर कपड़ा बाँध लेती। ऊपर से लाल कपड़ा पहनती थी। लोगो ने समझा। वह गर्भवती थी।

जिस प्रकार मास बीतता जाता था उसी प्रकार उसका पेट फूलता जाता था। पेट पर अधिक वस्त्र बाँधकर उसे फूला हुआ बनाती। उसका प्रदर्शन करतो। शिथिल इन्द्रिय होने लगी। उसने सब पर प्रकट किया। वह पूर्ण गर्भवती है। लगभग आठ-नव मास तक उसने यही क्रिया जारी रखी। जेतवन मे आने-जाने वाले उसे निरन्तर देखते थे। उनकी शंका दिन प्रतिदिन बढती गयी।

× × ×

एक दिन भगवान् उपदेश दे रहे थे। जनसमूह उमडा था। श्रावस्ती तथा बाहर से बहुत लोग आये थे। चिंचा ने तैर्थिको की सलाह से यह उपयुक्त समय कलक अपवाद प्रकट करने का समझा।

सायकाल था। भगवान् धर्मासन पर बैठे थे। धर्म सभा एकत्रित थी। उनका उपदेश प्रवचन चल रहा था।

अकस्मात् भगवान् के सम्मुख शिथिल वेदना चिंचा खडी हो गयी। लोगो ने उपदेश के बीच इस प्रकार विघ्न पड़ते देखा। कौतूहल से चिचा और भगवान् दोनो को देखने लगे। चिचा क्रुद्ध होकर वोली

'आप यहाँ धर्मोपदेश देते है। मधुर-मधुर शब्दो के भाषण देते हैं। लोगो को शब्द जाल से मुग्ध करते है।'

चिंचा हाँफने लगी। भिक्षु सघ चकित हुआ। सभा चकित हुई। भगवान् शान्त बैठे रहे। चिंचा ने अपने गर्भ की ओर सकेत करते हुए कहा :

'यह गर्भ तुम्हारा है। मेरा गर्भ पूरा हो गया है। मेरे प्रसूति गृह का क्या प्रबन्ध किया। घृत-तैल आदि कहाँ से आयेगा ?'

लोगो की दृष्टि मे अन्तर पड़ने लगा। सब लोग प्रगल्भा लज्जाहीन

चिंचा की ओर आकर्षित हो गये। चिंचा क्रोध प्रदर्शित करती हुई बोली-'यदि आपसे नही हो सकता तो कोशल राज, 'अनाथ' पिण्डक अथवा अपनी महाउपासिका विशाखा से ही मेरा प्रबन्ध करवा दीजिए।'

'अभिरमण जानते हो।' उसने तिरस्कार करते हुए कहा 'रमण सुख जानते हो। गर्भ उपचार नही जानते। उसका ख्याल नही है। जो मेरे पेट मे तुम्हारा बीज पनप रहा है।'

लोगो की शकित दृष्टि तथागत पर केन्द्रित होने लगी। तथागत ने शान्त सयत स्वर मे कहा

'बहिन ?'

'ओह ?—मुझे बहिन कहते हो !'

चिंचा ने आँख, मुख, नाक, कान, भी सिकोड़ते और नचाते हुए हाथ चमकाकर व्यंग्य किया।

'बहिन !' तथागत की गम्भीर सिंह तुल्य वाणी गूंजी। 'इस सत्य या असत्य को हम और तुम जानते है।'

'ठीक कहा महाश्रमण ! इसे दूसरा और कौन जान सकेगा। यह तो हमारे आपके बीच की बात है।'

अचानक उसके पेट पर बँधी दारु मण्डलिका[१] खिसकी। उसने उसे भय से सम्हाला। भेद खुलने पर अनर्थ हो सकता था। वह कॉप उठो। इसी समय हवा बहने लगी। उसकी धोती फरफराने लगी। उसने अपना वस्त्र सम्हाला। हाथ हटते ही काष्ठ मण्डलिका उसके पैर के पास गिर पड़ी। गर्भ जैसा फूला पेट पचक गया। उसके पजे आहत हो गये।

---

(२) दारु मण्डलिका : इसे कठौती कहते है। काठ अर्थात् लकडी खोद कर इसे छोटे वडे कटोरें के रूप में वना लिया जाता है। यह पूर्वीय उत्तर प्रदेश तथा विहार में आटा सानने के काम मे आती है। छोटी कठौती में रोटी तरकारी दही तथा खट्टी बनी चीज़ रखी जाती है। पत्थर की वनी पथरी से यह हलकी तथा टूटती नही अतएव इसका व्यवहार अब भी व्यापक रूप से होता है। मेरे घर इतने वडे कठौते थे कि उनमें एक मन आटा आसानी से साना जाता था। वे दो सौ वर्ष के पुराने थे।

जनता बिगड़ी। झूठी थी। भगवान् पर मिथ्या आरोप लगाया था। उस पर लोग थूकने लगे। उस पर पथराव होने लगा।

वह प्राण भय से भागी। भीड़ पीछे लगी। भयंकर कोलाहल हुआ। भगवान् की दृष्टि से ओझल होते ही वह भूमि पर गिर पड़ी। उसके प्राण पखेरू उड गये। जिस भूमि पर दौड़ रही थी। भाग रही थी। उसने उसे आश्रय दिया।

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद अट्ठ कथा : १३

बुद्ध चर्या : ३३६

सुश्रूषक भगवान्

एक भिक्षु उदर व्याधि से ग्रस्त था। किसी की जीवन मे सेवा नही की थी। किसी भिक्षु के काम नही आया था। एकाकी था। उसकी भी किसी ने चिन्ता नही की। वह एकाकी, मल-मूत्र में पड़ा, भयकर कष्ट पा रहा था।

आयुष्मान् आनन्द के साथ भगवान् चारिका कर रहे थे। उस भिक्षु के निवास-स्थान पर पहुँचे। भिक्षु अपने विहार मे पड़ा था।

'आवुस ! क्या व्याधि है ?' भगवान् ने उसके समीप जाकर पूछा।

'भन्ते ! उदर व्याधि से ग्रसित हूँ।'

'यहाँ कोई परिचायक नही है।'

'नही है भन्ते।'

'क्या आपकी कोई परिचर्या नही करता ?'

'नही।'

'क्यो ?

'मैने भिक्षुओ की कुछ सेवा नहीं की है। अतएव मेरी कोई क्यो करेगा ?'

'आनन्द ! जल लाओ।' तथागत गम्भीर हो गये। आनन्द से बोले।

'भन्ते ! जल क्या करोगे ?' रोगी बोला।

'आवुस ! तुम्हारा मल-मूत्र साफ करूँगा।'

'भन्ते ! भिक्षु की आँखें भर आयी।

× × ×

आनन्द जल लाये। भगवान् ने भिक्षु को उठाया। उस पर पानी डालने लगे। आनन्द से बोले।

'आनन्द ! तुम मल धोओ।'

उसने पूरा का पूरा स्थान साफ किया। स्नान कराया। रोगी निर्मल हो गया।

भगवान् ने उसका सर पकड़ा। आनन्द ने पैर पकडा। उसे स्वच्छ चारपाई पर लिटा दिया।

भगवान् उसकी सेवा निरन्तर करते रहे। भिक्षु संघ को बुलाकर तथागत ने कहा : 'भिक्षुओ ! आपके यहाँ माता नही है। पिता नही है। बन्धु-बान्धव नही हैं। सम्बन्धी नही हैं। आप लोगो की परिचर्या करने वाला यहाँ कोई नही है।'

'हाँ, भन्ते !'

'यदि' तथागत ने कहा 'आप लोग परस्पर सेवा, उपचार नही करेंगे, तो यहाँ कौन आपकी सेवा उपचार के लिए आयेगा ?'

'भिक्षुओ ? जो रोगी को सेवा करता है। वह मेरी सेवा करता है। जो रोगी का उपचार करता है। वह मेरा उपचार करता है। यदि उपाध्याय है तो उसे आजन्म उपस्थान करना चाहिए। यदि आचार्य है, तो उसे करना चाहिए। यदि शिष्य है, तो उसे करना चाहिए। यदि गुरु है, तो उसे सेवा करनी चाहिए। यदि कोई नही है, तो संघ को सेवा करनी चाहिए।'

●

आधार ग्रन्थ :

बुद्धचर्या : ३३८

हस्तक आलवक[1]

आलवी के राजा का हस्तक आवलक पुत्र था। यक्ष आवलक उसे खा जाना चाहता था। भगवान् ने उसकी रक्षा की थी। उसका नाम हस्तक इसलिए पड़ा था, यक्ष ने उसे हाथो से उठाकर, भगवान् को दिया था। भगवान् ने उसे पुन: हाथो से उठाकर, राजा के दूतो को दिया था। इस प्रकार शिशु दो वार हाथो से उठाकर, एक दूसरे को दिया गया था। (हत्थतो हत्थ गतत्ता)।

हस्तक बड़ा हुआ। उसने भगवान् का नाम सुन रखा था। यह भी सुना था। भगवान् ने उसकी जीवन-रक्षा की थो। हस्तक ने एक वार भगवान् का उपदेश सुना। अनागामी हो गया। उसका अनुसरण सर्वदा पाँच सौ उपासक करते थे।

× × ×

आलवी स्थान था। पंचाल देश था। गो-मार्ग था। सिरस वन था। तथागत पर्णासन पर विहार कर रहे थे।

हस्तक आलवक जघा विहार करता वहाँ आया। तथागत को पर्ण सस्तर पर आसीन देखा। भगवान् के समीप गया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया।

उसने भगवान् के पत्तो का विछौना देखा। उसे आश्चर्य हुआ। पत्तो के बिछौने पर तथागत को निद्रा कैसे आती होगी! उसने विनयपूर्वक पूछा :

'भन्ते! सुखपूर्वक निद्रा आयी थी?'

'हाँ कुमार!' तथागत ने कुमार की चकित मुद्रा को लक्ष्य करते हुए उत्तर दिया।

---

(१) हत्थक एक शाक्य भिक्षु का और वर्णन वौद्ध साहित्य में मिलता है।

के दोनो छोरो पर कोमल तकिया लगी हो। शय्या के ऊपर वितान छाया हो। सुगन्धित तेल प्रदीप प्रज्वलित हो। लावण्यमयी भार्या हो। कुमार! क्या वहाँ कोई सुख से सोएगा ?'

'भन्ते! निश्चय सुख से सोयेगा। इस लोक में सुख से सोने वालों मे वह एक होगा।'

'अच्छा कुमार! एक बात और बताओ।'

'आज्ञा भन्ते।'

'यदि उस गृहपति किवा उसके पुत्र को राग द्वारा उत्पन्न होने वाले कायिक, मानसिक, परिदाह हो, तो क्या उस राग परिदाह के होते, वह दु खी सोयेगा या नही ?'

'दु:खी सोयेगा भन्ते।'

'कुमार! राग परिदाह से दग्ध व्यक्ति की तरह तथागत नही होते। मै राग से दूर हूँ। इसलिए सुख निद्रा आती है।'

'भन्ते—!'

'सुनो कुमार!' तथागत ने पुनः कहा : 'यदि द्वेष से उत्पन्न परिदाह हो। यदि मोह से उत्पन्न परिदाह हो यदि कायिक उत्पन्न परिदाह हो। यदि मानसिक परिदाह हो तो वह दु:ख । से सोयेगा।'

'हाँ भन्ते।'

'कुमार! मै उनसे परिनिर्वृत्त हूँ। अतएव सुख से सोता हूँ।'

'भन्ते! अद्भुत ! ! आश्चर्य !!!'

'कुमार! मुक्त ब्राह्मण सर्वदा सुख से सोता है। रागादि रहित सुख से सोता है। आसक्तियो को छिन्न कर जिसका आन्तरिक भय तिरोहित हो चुका है। जिसके मन मे शान्ति है। जो उपशान्त है। वह सुख से सोता है। आपत्तियो के बन्धनो को छिन्न कर निर्भय सुख से सोता है। उपशान्त सुख से सोता है।'

भगवान् ने हस्तक के प्रस्थान करने पर उसकी प्रशसा की। भिक्षुओ ने जिज्ञासा की :

'भन्ते! हस्तक की प्रशंसा का क्या कारण है?'

'भिक्षुओ ! उसमे आठो गुण विद्यमान है।'

× × ×

चित्र गृहपति के समान हत्थक को भी अनुकरणीय आदर्श माना गया है। उन्हे बुद्ध वश मे भगवान् गौतम बुद्ध का अग्गुपट्ठाक (अग्र उपस्थापक, माना गया है।

× × ×

हस्तक की मृत्यु हो गयी। उसने अविहा (ब्रह्मलोक) में पुनर्जन्म लिया। वहाँ से भगवान् के दर्शन निमित्त आया। भगवान् के सम्मुख खड़ा नही रह सका। गिर पड़ा। उसने भगवान् की ओर करुण नेत्रो से देखा। भगवान् ने कहा

'आवुस ! तुम कुश का शरीर बनाओ।'

उसने तृण की काया बनायी। तत्पश्चात् वह खड़ा हो गया। उसने भगवान् से निवेदन किया .

'भन्ते ! देवगण मुझे सर्वदा घेरे रहते थे।'

'क्यो आयुष्मान् ?'

'वे मुझसे आपका धर्म सुनना चाहते थे।'

'तुम्हारी मृत्यु तो सुख पूर्वक हुई थी।'

'नही भगवन् ! मुझे दु ख ही रहा।'

'क्या हेतु था ?'

'भन्ते ! मुझे तीन बात की कामना रह गयी थी।'

'वे क्या थी आवुस !'

'मैने आपका मन भर दर्शन नही किया था।'

'दूसरी क्या थी आवुस ?'

'मन भर धर्मोपदेश नही सुन पाया।'

'और—?'

'संघ की मन भर सेवा नही किया।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावक-श्राविकाओ, तथा उपासक-उपासिकाओं की तालिका में उनसठवा तथा उपासक श्रावको मे पाचवाँ स्थान प्राप्त पंचाल देश, आलवी राजकुमार हस्तक आलवक चार सग्रह वस्तुओ से परिपद् को मिलाकर रखने वालों मे अग्र हुआ।

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ १४
३ ४ · ५

आलवक सुत्त

बुद्ध चर्या ३५०

A 1 · ,25 88, ii 164 iii 451 : iv , 216

A A i 2 2

S. N A i 240

S A iii . 136 iv 218

S . ii . 235

वंगीश

चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपतिञ्च सब्बसो ।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

(मै उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो प्राणियो की मृत्यु एव उपपत्ति को सब तरह से जानता है । आसक्ति रहित है । सुगत है । ज्ञानी है ।)

—ध० ४२०

वगीश श्रावस्ती ब्राह्मण कुल मे जन्म ग्रहण किया था । उन्होने तीनो वेदो का ज्ञान प्राप्त किया था । विद्वान् थे । उन्होने मृत व्यक्तियो की खोपडी देखकर, भूतकाल की घटनाओ जो वता देने मे, निपुणता प्राप्त कर ली थी । ब्राह्मण मण्डली के साथ भ्रमण करते थे । उन्हे इससे खूब आय होती थी । इस प्रकार वे तीन वर्षो तक घूमते रहे । कथा है । उसका जन्म वग मे हुआ था । इसलिए वगीश कहा जाता था । दूसरी कथा है । वचन मे उसने श्रेष्ठता प्राप्त की थी । इसलिए भी उसे वंगीश कहते थे ।

वगीश मृत व्यक्तियों की कपाल खोपडी देखते थे । मृत व्यक्ति के सिर को ठोकते थे । इस प्रकार मृत के जन्म-स्थानादि के विपय मे बाते बताते थे । जन-साधारण को इस विद्या पर बडा आश्चर्य होता था । वंगीश के साथियों का खूब सत्कार होता था । लाभ भी अत्यधिक होता था । प्रति खोपड़ी की बात बताने का एक शत से एक सहस्र कहापण, फीस लेते थे ।

वगीश के साथियों का पेशा था । नगर-नगर घूमते थे । लोगो को वगीश के चमत्कार की वाते बताते थे । भीड़ एकत्रित करते थे । लोग वगीश को पहुँचा हुआ मानते थे । उनके पहुँचते ही पूर्व प्रचार के कारण

भीड़ एकत्रित हो जाती थी। इस प्रकार वंगीश तीन वर्ष तक भ्रमण करते रहे।

× × ×

'चलो—चलो ! वगीश आये हैं। वगीश आये हैं।'

वगीश के साथियो ने नगर मे प्रचार किया :

'अपना पूर्व जन्म जान सकोगे। मृत का पूर्व जन्म जान सकोगे। वह महान् आत्मा है। सर्वज्ञ है। सब कुछ बता देंगे।'

श्रावस्ती की जनता ने सुना। चमत्कार की बात सुनी। किन्तु प्रभावित नही हो सकी। भगवान् के उपदेश का उस पर प्रभाव था। वह अनेक चमत्कारो को देख चुकी थी।

× × ×

'लोग झुण्ड के झुण्ड कहाँ जा रहे हैं ?' वगीश ने साथियों से पूछा।

'शास्ता के पास जा रहे हैं।' एक साथी ने मुंह विचकाकर कहा!

'क्यो ?'

'उपदेश सुनने।' दूसरे साथी ने व्यग्य किया।

'यहाँ कोई नही आ रहा है।'

'क्या करे। सब पागल हो गये हैं। हमारी बात सुनते ही नही।' तीसरे साथी ने कहा।

'मालूम होता है तथागत कुछ चमत्कार जानते है।'

'और नही तो क्यों जाते ?'

'अच्छा !' वंगीश ने साश्चर्य कहा!

'हाँ।'

'कुछ बात है—।'

वंगीश गम्भीर हो गया। सब चुप थे।

'साथियो—मै भी चलूँगा।' वगीश ने दीर्घ श्वास लेते हुए कहा।

'क्यों ?'

'देखूँगा।'

"क्या ?'

'किस कारण लोग आकर्षित हो रहे हैं ?'

साथी चुप थे। उनका मस्तक नत हो गया। उदास हो गया।

× × ×

वगीश ब्राह्मण साथियो के साथ भगवान् के पास गये। भगवान् ने जान लिया था। वगीश अपने साथिया के साथ आ रहे थे। भगवान् ने चार मनुष्यों के कपाल के साथ एक अर्हत का भी कपाल मंगाया।

वगीश आया। उसने भिक्षु सघ को एकत्रित देखा। भगवान् के सम्मुख रखी खोपड़ियाँ देखी। वह प्रसन्न हो गया। उसके साथी प्रसन्न हो गये। वगीश अपनी विद्या दिखायेगा। लोग अद्भुत चमत्कार देखेंगे। उनका व्यवसाय पुनः चमक उठेगा।

'वगीश !' क्या इन खोपड़ियो का जन्म-स्थान बता सकते हो। वे पूर्व जन्म मे कहाँ उत्पन्न हुए थे ?' भगवान् ने उसे देखकर कहा।

'अवश्य।' वंगीश ने गर्व से कहा।

वंगीश अभिमान से आगे बढा। उसके साथी प्रसन्न मुद्रा मे चारो ओर गर्व से देखने लगे। वंगीश ने खोपडियाँ उठायी। उलट-पुलट, ठोक कर उनका जन्म-स्थान बता दिया।

वगीश के साथी प्रसन्नता से ताली बजाने लगे। 'साधु वाद' करने लगे। उपस्थित जन-समूह चकित हो गया। भगवान् केवल मुसकराये।

वगीश ने पाँचवी खोपडी उठायो। उसे उलटा। उसे पलटा। उसे ठोका। उसने दो-तीन बार यह प्रक्रिया की। कुछ बोल नही सका। साथी उसके विलम्ब पर गुस्सा करने लगे। उनका उत्साह तिरोहित होने लगा। उन्होने समझ रखा था। वगोश तुरन्त चार खोपडियों के समान इसका भी जन्म-स्थानादि बता देंगे।

'वंगीश।' भगवान् ने मृदु स्वर में सम्बोधन किया।

वगीश चुप था। उसके साथी उस पर जल उठे। उन्हे गुस्सा आ रहा

था। उसे जाकर पीट देते। वंगीश के कारण उनकी अप्रतिष्ठा हो रही थी। वंगीश ने अथक प्रयास किया। उसका ललाट पसीना से भर गया। भगवान् ने शान्त स्वर मे पूछा :

'वंगीश थक गये ?'

'नही।' वगीश ने पुन प्रयास किया। सफल नही हो सका।

'वगीश! कुछ जान सके ? इस व्यक्ति ने अब कहाँ जन्म लिया है ?'

वगीश ने खोपड़ी उलट-पलट कर फिर देखी। हताश हो गया।

'भन्ते! मै नही जान सका।'

'वगीश, तुम इसे नही जान सकते।'

उदास वगीश ने खोपडी यथास्थान रख दी ।

'वंगीश! मै दोनों जानता हूँ। यह कहाँ पूर्वकाल मे जन्म लिया था और अब कहाँ लिया है।'

'भगवान्! वह मन्त्र मुझे बताइयेगा। जिससे मै जान सकूँ।'

वगीश के साथियो का मुख लटक गया। उनका साहस जनता की तरफ देखने का नही हुआ। वंगीश शिष्य स्वरूप भगवान् के समीप बैठ गया।

'प्रव्रजित होगे तो बताऊँ।'

'क्यो ?'

'उसी से तुम जान सकोगे।'

'हूँगा।'

वंगीश ने सोचा था। प्रवज्या मिलने पर उसे भगवान् मन्त्र बता देंगे। वह सर्वज्ञ हो जायगा। वह चारो दिशाओं मे भ्रमण करता हुआ धन का अर्जन करेगा। उसके साथी भी प्रसन्न हो गये। उन्हे अपने व्यवसाय का उज्ज्वल भविष्य दिखाई दिया।

× × ×

'वगीश!'

एक दिन वंगीश के साथी उसके पास आये। उन्होने वंगीश को

चीवर पहने देखा। उसकी मुद्रा शान्त देखी। उसकी दृष्टि मे विवेक देखा। वे प्रसन्नता से बोले :

'वगीश ! मन्त्र सीख लिया ? चलो चले।'

'नही बन्धुओ।'

'क्यो ?'

'मै जो जानता था उससे भी अधिक जान गया हूँ।'

'क्या जान गये ?'

'मैं मृत्यु एव जीवन का रहस्य समझ गया हूँ।'

'तो—नही चलोगे ?'

'मित्रो ! मुझे अकेला छोड़ दो।'

साथी उदास हो गये। उनका चलता व्यवसाय अनजाने नष्ट हो गया। उन्हे भगवान् पर क्रोध आया। वे बोले ·

'अब तुम्हारे साथ रहने से क्या लाभ ?'

'धन्यवाद मित्रो !'

× × ×

वगीश भगवान् की वन्दना में सहस्रो पद बनाने लगा। उसके छन्द उत्तम थे। सरस थे। मधुर थे। उनकी अन्तर्दृष्टि दिन प्रतिदिन उन्मीलित होने लगी। उसने अर्हंत पद प्राप्त कर लिया।

वगीश मे वितर्क उत्पन्न हुआ। उस वितर्क के समय उन्होने उदान कहा ·

'मैने गृह त्याग कर प्रव्रज्या ली है। तथापि पाप वितर्क का उदय होता है। चाहे सग्राम के शिक्षित, निपुण, दृढ स्वभाव वाले, अपलायनशील योद्धाओ के सहस्रो वाणमयी वर्षा तुल्य अगणित स्त्रियाँ आये, तथापि वे मुझ धर्म मे प्रतिष्ठित मार्ग की बाधक नही हो सकती। मैंने भगवान् से उपदेश सुना है। मेरा मन उसी में रत है। मार ! तुम मेरे समीप आने का प्रयास मत कर। ओ मृत्यु ! मै उस मार्ग से गमन करूँगा जिसका तुम्हे ज्ञान भी नही है।'

× × ×

एक समय वगीश के मन मे काम वितर्क उत्पन्न हुआ। वगीश कवि थे। उनके समीप आनन्द थे। उनसे वोले :

'आनन्द ! मै काम राग से भस्म हो रहा हूँ। मेरा चित्त भस्म हो रहा है। आनन्द ! उसे कैसे शान्त करू ?'

'वगीश !' आनन्द ने कहा, 'मन विचारो के दूषित होने के कारण तुम्हारा चित्त भस्म हो रहा है। मोहक राग का त्याग करो। निरात्मीय एव दु ख रूप मे, सस्कारो को देखो। उसे आत्म रूप मे देखने का प्रयास मत करो। महाराग इस अवस्था मे शान्त होगा। पुनरपि तुम्हे बारबार भस्म होने की आवश्यकता नही पड़ेगी। एकाग्र चित्त, सुसमाहित हो। इस शरीर के विपय मे स्मृतिमान वनो। विरक्त वहुल होना श्रेयस्कर है। अभिमान का आमूल त्याग कर अनिमित्त समाधि का अभ्यास करना चाहिए। तुम्हारा अभिमान शान्त होगा। उपशान्ति प्राप्ति कर, विचरणशील होगे।'

× × ×

वगीश के उपाध्याय निग्रोध कल्प थे। आलवी[1] के अग्गालव चैत्य[2]

(१) आलवी पचाल देश मे था। भगवान् ने सोलहवाँ वर्षावास यहाँ किया था। इस स्थान के विपय मे दो मत है। एक मत है अर्वल जिला कानपुर किंवा नवल अथवा नेवल जिला उन्नाव उत्तर प्रदेश का यह स्थान था। तीसरा मत है कि इटावा से २७ मील उत्तर पूर्व अवीव ग्राम से मिलाया है। भगवान् ने अन्तराष्टक मे आलवी के समीप शिशयावन (शीशम या सीसो की वारी) का वन विहार किया था। पचाल मे भगवान् से सम्वन्धित अग्गाल चैत्य, कण्ण कु ज, सौरेय्य (सोरो), शिशया वन, किम्पिला तथा आलवी का उल्लेख मिलता है। आलवी सम्भवत गगा नदी के समीप था। इसे एक मत आलम्भिका पुरी मानता है। इसे कानपुर तथा कन्नौज के वीच मे भी होना कहा जाता है। यहाँ की यात्रा फाहियान तथा यूआनचुआङ् ने की थी।

(२) अग्गालव चैत्य . इसे अग्गालव चेतिय भी कहते है। बुद्धघोष ने यहाँ यक्षों का निवास वताया है। यक्ष एक जाति थी। यक्षो से वार्तालाप का वर्णन मिलता है।

मे विहार कर रहे थे। वगीश ने हाल ही में प्रव्रज्या ली थी। अपने उपाध्याय के नियन्त्रण मे रहते थे।

एक दिन कुछ स्त्रियाँ सुअलंकृत विहार देखने के लिए आयी। वगीश का मन उनके अनुपम रूप की ओर आकर्षित हो गया। राग से मन प्रमत्त हो गया।

उन्हें अपनी प्रव्रज्या का ध्यान आया। पश्चाताप होने लगा। उन्होने तर्क किया। वितर्क किया। उनके मन से राग तिरोहित हो गया। पथ भ्रष्ट होते-होते उनके पवित्र विवेक ने उन्हें बचा लिया।

× × ×

उपाध्याय निग्रोध कल्प के साथ वंगीश आलवी के अग्गालव चैत्य मे विहार करते थे। उपाध्याय भिक्षाटन से लौटते थे। भोजनोपरान्त विहार मे प्रवेश करते थे। दूसरे दिन भिक्षाचार के समय ही बाहर निकलते थे।

वगीश अभी नये प्रव्रजित थे। उनका मन चचल हो जाता था। मोह का प्रवेश हो जाता था। मोह एवं राग किसी बाहरी शक्ति से दूर नही होता। आयुष्मान् वगीश ने तर्क-वितर्क किया :

'पृथ्वी किंवा आकाश मे स्थित सभी रूप अनित्य हैं। पुराने हो जाते है। ज्ञानी उन्हे जानकर विचरणशील होता है। सासारिक भोगो में लिप्त नही होता। इनमे अपनी इच्छाओ को दबा कर जो लीन नही होता वही मुनि है। साठो मिथ्या धारणाओ में जो लिप्त नही होता वही भिक्षु है।'

× × ×

अभ्यास और उद्योग से वंगीश धर्म पथ की ओर उत्तरोत्तर आरूढ़ होते जाते थे। उन्हे एक समय अग्गालव चैत्य मे विहार करते हुए अभिमान उत्पन्न हो गया। अपनी प्रतिभा के कारण अन्य भिक्षुओ की निन्दा करने लगे। उन्हे अपने कार्य पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होने तर्क किया। वितर्क किया :

'लोग अभिमान मे लिप्त है। अभिमानी नरकगामी होते हैं। लम्बे समय तक उन्हे शोक प्राप्त होता है। वे नरक मे उत्पन्न होते है।

किन्तु भिक्षु शोकरहित है। अभिमान को, मान को, नष्ट कर, हे मन! शान्ति प्राप्त करे।'

वगीश का अभिमान शान्त हुआ। उस समय वगीश ने उदान कहा :

'हे गौतम शिष्य ! अभिमान तथा नि:शेष अभिमान पथ त्याग दे। अभिमान द्वारा आहत नरक मे पतित होता है। नरक मे उत्पन्न व्यक्ति अनन्त काल तक पश्चात्ताप करता है। सन्मार्ग गामी, धर्म पथ विजयी, कभी पश्चात्ताप नही करता। कीर्ति का अनुभव करता है। सुख का अनुभव करता है। वस्तुत· धर्मदर्शी होता है। बाधाओ को तिरोहित कर, उद्योगी और आवरणो को त्याग कर, विशुद्ध बनकर, त्रिविद्या द्वारा, आवागमन का अन्त कर शान्त होना चाहिए।'

वगीश कविता करते थे। कविता सुनाते थे। वे आशुकवि थे। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, जनपद-जनपद विचरण करते थे। खोपड़ियों का जीवन रहस्य बताते थे। उन्हे आर्थिक लाभ होता था।और अब—?

भगवान् के धर्मोपदेश के कारण स्कन्ध, आयतन एव धातुओ के विषय में ज्ञान हुआ। भगवान् मे दृढ श्रद्धा उत्पन्न हुई। गृह त्याग किया। प्रव्रजित हुए। बुद्ध अनुशासन का स्वागत किया। तीनो विद्याएँ प्राप्त की। अपने पूर्व जन्म की बाते जान गये। चक्षु विशुद्ध हो गया। वह त्रैविद्य हुआ। ऋद्धिमान् हो गया।

× × ×

भगवान् आलवी में थे। अग्गालव चैत्य मे विहार कर रहे थे। आयुष्मान् वगीश के उपाध्याय निग्रोध कल्प स्थविर थे। वे अग्गालव चैत्य मे निवास करते थे। उनका निर्वाण होते ही, अविलम्ब वगीश के मन मे वितर्क उठने लगा। उसके उपाध्याय को वास्तव मे निर्वाण प्राप्त हुआ था या नही।

वगीश अपनी शका समाधान स्वय नही कर सके। सायकाल ध्यान से उठे। भगवान् के समीप गये। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। अनुकूल अवसर पाया। वगीश ने भगवान् से निवेदन किया :

'भन्ते ! मेरे उपाध्याय ने निर्वाण प्राप्त किया है या नही ?'

तत्पश्चात् वगीश ने अपना आसन त्यागा। चीवर कन्धा पर डाला। भगवान् को प्रणाम कर गाथा मे कहा :

'भन्ते ! आपने मेरे उपाध्याय ब्राह्मण का नाम निग्रोध कप्प रखा था। वे मुक्ति को अपेक्षा रखते थे। दृढ पराक्रमी थे। निर्वाणदर्शी आपको प्रणाम कर चारिका करते थे।

'सर्वज्ञ ! शाक्य ! अपने उस उपाध्याय के विषय मे हमारे श्रवण सुनने के लिए उत्सुक हैं। जानना चाहते है। आपके उस शिष्य का क्या हुआ ? मोहोन्मुख अज्ञान सम्बन्धी शका उत्पादक ग्रन्थियाँ, तथागत आप खोलने मे समर्थ है। आप पुरुषो के परम चक्षु है। मेघाच्छन्न आकाश को वायु निर्मल कर देती है। यदि लोगो की वासनाओ को आप तिरोहित नही करेंगे, तो यह लोक मोहाच्छादित रहेगा। ज्योतिर्मय पुरुष भी ज्योति नही प्राप्त कर सकेंगे। धीर प्रकाश देते है। आपको भी हम धीर मानते है। आप विशुद्धदर्शी है। ज्ञानी है। हम आपके सान्निध्य मे है। आप भिक्षु परिषद् मे निग्रोध कल्प के विषय मे प्रकाश डालिये।

'तथागत !' वगीश ने पुनः निवेदन किया, 'हस अपनी सुन्दर ग्रीवा विस्तीर्ण कर मृदु सरस निकूंजन करता है उसी प्रकार आपकी मधुर वाणी हम ध्यानपूर्वक सुनने के लिये उत्सुक है ! आपने अशेष जन्म-मरण का नाश किया है। आपसे उपदेश निमित्त सानुरोध प्रार्थना करते हैं !'

'ऋजु प्रज्ञ !' वगीश ने सानुनय कहा, 'आपके उपदेश को पूर्णतया ग्रहण किया है। साजलि प्रणाम करता हूँ। हमे मोह मे मत रखिये। महाप्रज्ञ ! आदि से अन्त तक आर्य धर्म के ज्ञाता ! आप हमे मोह मे मत रखें। गर्मी से त्रस्त मनुष्य जलेच्छु होता है। उसी प्रकार हम आपकी पवित्र वाणी के इच्छुक है।'

'भन्ते ! जिसके लिए आपके शिष्य ने, मेरे उपाध्याय ने, ब्रह्मचर्य का पालन किया था। क्या वह सफल हुआ ? क्या उन्हे निर्वाण प्राप्त हुआ है। क्या उनका जन्म शेष रह गया है ? हम सुनना चाहते है। उनकी मुक्ति किस प्रकार हुई है।'

'आवुस !' भगवान् ने कहा, 'वे दीर्घकालीन नामरूप सरिता बहने

वाली तृष्णाएँ पार कर चुके हैं। जाति मरण से अशेष हो चुके हैं।'

'ऋषि सत्तम!' वंगीश ने श्रद्धा मिश्रित वाणी से कहा, 'आपकी वाणी से हमे प्रसन्नता हुई है। प्रश्न व्यर्थ नही गया। हमारी उपेक्षा आपने नही की। आपके श्रावक यथावादी थे। तथाकारी थे। उन्होने मार के विस्तृत मायावी जाल का मोचन कर दिया था। भगवन्! कप्पिय को तृष्णा के कारण का ज्ञान था। कप्पिय ने सुदुस्तर मृत्यु राज का अतिक्रमण किया है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावकों मे तेईसवाँ कोसल श्रावस्ती निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न वंगीश प्रतिभावालो (कवियो) मे अग्र हुए।

---

(३) पंचाल : यह जनपद शूरसेन तथा कोसल जनपदों के मध्य में था। इसके पश्चिमोत्तर दिशा में कुरु देश था। दक्षिण पूर्व वंस राज्य था। उत्तर तथा दक्षिण पंचाल का उल्लेख मिलता है। इनके मध्य में गंगा नदी थी। उत्तर पचाल की राजधानी कम्पिल नगर कहा जाता है। उत्तर पाचाल की राजधानी हस्तिनापुर भी बताया जाता है। मैंने यह स्थान देखा है। मुझे वहाँ दो एक टीलो के और कोई विशेष बात नही मिली। सिवा पालि ग्रन्थो मे पचाल की सीमा प्राचीन सीमा से भिन्न प्रतीत होती है। कम्पिल नगर वर्तमान कम्पिल फरुखाबाद जिला फतेहगढ से २८ मील उत्तर पूर्व गंगा तटपर माना जाता है। कुछ किम्बिला को कम्पिल नगर से मिलाने का प्रयास करते है। अनुसन्धान का विषय है।

आधार ग्रन्थ :
अंगुत्तर निकाय १ : १४
धम्मपद २६ ३७
सुत्त निपात २४ (वगीश सुत्त)
संयुक्त निकाय ८ १–१२
थेर गाथा २६४ उदान् १२१२–१२१५,
१२२२, १२३०
१२६७, १२–२

S · i : 185
Thag A ii 211
S A i . 207
Ah ii 49

सुन्दरिक[1] भारद्वाज

भारद्वाज ! मै ब्राह्मण नही हूँ। राजपुत्र नही हूँ। वैश्य नही हूँ। कुछ और नही हूँ। सामान्य जनो के गोत्र को जानकर, इस लोक मे मै अकिंचन भाव से चरण करता हूँ।'

बुद्ध . सुत्त निपात ३० ' १

सुन्दरिक नदी तट पर यज्ञ करने के कारण भारद्वाज का नाम सुन्दरिक भारद्वाज पड गया था। वह अक्कोसक तथा विलगिका भारद्वाज का भाई भी कही-कही कहा गया है।

तथागत सुन्दरिका नदी तट पर कोसल में विहार कर रहे थे। सुन्दरिक भारद्वाज नदी तट पर यज्ञ करता था। अग्नि परिचरण करता था। उसने अग्नि मे हवन किया। अग्निहोत्र परिचरण किया। आसन से उठा। चारों दिशाओ की ओर दृष्टिपात किया। वह ढूढ रहा था किसी को। जिसे हव्य शेष दिया जाय।

भारद्वाज ने देखा। एक वृक्ष की छाया मे एक व्यक्ति शिर ढके बैठा था। उसने वाम हाथ मे हव्य शेष लिया। दाहिने हाथ से कमण्डलु उठाया।

वह वृक्ष मूल मे आया। पद-ध्वनि तथागत ने सुनी। मस्तक से वस्त्र हटा दिया। सुन्दरिक बोल उठा

---

(१) सुन्दरिक एक मत है कि सुन्दरिक भारद्वाज और भगवान् से बाहुका नदी तट पर भेंट हुई। वही स्नान के विषय मे भगवान् से चर्चा हुई थी। सुन्दरिका कोसल देश में एक नदी है। एक मत है कि सई नदी पालि साहित्य मे वर्णित सुन्दरिका नदी है।

'मुण्डक है—मुण्डक है। '

वह लौट जाना चाहा।

उसे आशा नही थी। कोई भिक्षु वहाँ बैठा होगा। वह लौटा। लौटते समय पुन विचार किया कितने ही मुण्डक भी ब्राह्मण होते है। उसकी जाति निश्चय करनी चाहिए।

भारद्वाज तथागत के समीप आया। उत्सुकतापूर्वक पूछा ·

'आपकी जाति क्या है ?'

'ब्राह्मण ! जाति मत पूछो।'

'तो क्या पूछू ?'

'आचरण पूछो।'

'अरे—।'

'कर्म पूछो।'

'ओह—।'

'हाँ ब्राह्मण ! लकडी से अग्नि उत्पन्न होती है। निम्न वर्ण का मानव भी द्युतिमान होता है। विज्ञ होता है। पापहीन होता है। मुनि होता है।'

भारद्वाज सुनने लगा। भगवान् ने पुन कहा—'जो सत्य का वादी है। जितेन्द्रिय है। ज्ञानी है। ब्रह्मचारी है। संयमी है। वही यज्ञ का उपनीत है। वह काल से दक्षिणय मे हवन करता है।

'ओह ! यह मेरा सौभाग्य है। मैने तुम्हारे जैसे वेद-परायण को देखा है। आप लोगो जैसे व्यक्ति न मिलने पर, अन्य लोग शेप हव्य भोजन करते है।'

'दु खो के अन्त का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। ब्रह्मचर्य का फल प्राप्त कर लिया है। उसी ब्राह्मण का तुम आवाहन करो। वही वास्तव मे समय पर हवन करता है। दक्षिणा पाने का पात्र है। सुन्दरिक !'

'गौतम आप भोजन करे।'

'क्यो ?'

'आप ब्राह्मण है।'

'ब्राह्मण, आपके इस भोजन के विषय में मैने एक गाथा कही है। वह मेरे लिए अग्राह्य है। इसका ग्रहण करना धर्म नही है।'

'कारण ?'

'धर्मोपदेश करने पर प्राप्त भोजन मै नही लेता।'

'गौतम ! मै इस हव्य शेष को किसे दूं।'

'ब्राह्मण ! इस हव्य को तृणरहित स्थान मे रख दो। अथवा प्राणि-रहित जल मे रख दो।'

× × ×

भारद्वाज ने शेष हव्य को प्राणी रहित जल मे डाल दिया। हव्य जल मे पड़ते ही चिटचिटाने लगा। भभक उठा। लहरा उठा। वह उसी प्रकार चिटचिटाने लगा जैसे दिन में तप्त हुआ लोहा जल मे डालने से चिटचिटाता है। धुआ छोड़ता है।

ब्राह्मण देखकर रोमाचित हो गया। उसे कौतूहल हुआ। उसे सवेग हुआ। वह भगवान् के पास गया। एक ओर खड़ा हो गया।

'लकडी जलाने से शुद्धि नही होती।' उसे देखकर भगवान् ने कहा 'यह बाहरी बाते है। बाहर से शुद्ध होना, कुशल पण्डितो की दृष्टि मे, वास्तव मे, शुद्धि नही है।'

'तो क्या शुद्धि है ?'

'ब्राह्मण ! मै लकडी जलाने की अपेक्षा अन्तर्ज्योति जलाता हूँ। मैं नित्य अग्नि वाला हूँ। मै नित्य एकान्त चित्त वाला हूँ। मै ब्रह्मचर्य का पालन करता हूँ।'

'ओह—।'

'ब्राह्मण ! मै अध्यात्म ज्योति जलाता हूँ। वह बुझती नही। वह अखण्ड ज्योति है। नित्य समाहित है। क्रोध धूंआ है। असत्य भस्म है। जिह्वा स्रुवा है। हृदय वेदी है। अपनी अन्तर्ज्योति ही यज्ञ-ज्योति है।'

'भन्ते ! यह ज्योति कैसे प्राप्त होती है ?'

'ब्राह्मण ! आत्म दमन द्वारा यह ज्योति मिलती है। धर्म सरोवर है।

शील उसके घाट हैं। सज्जनता जल की निर्मलता है। निर्मल धर्म सरोवर है। उसमें ज्ञानी स्नान निमित्त उतरते है। उनका गात्र भीगता नही है। स्वच्छ गात्र वाले पार उतर जाते है। ब्रह्म प्राप्ति, सत्य, धर्म, संयम और ब्रह्मचर्य पर आधारित है। इस प्रकार हवन करने वाले को मै दम्य सारथी कहता हूँ।'

× × ×

भगवान् श्रावस्ती के जेतवन मे विहार करते थे। एक दिन भगवान् ने भिक्षु सघ को सम्बोधित किया। सुन्दरिक भारद्वाज उपस्थित था। उसने उपदेश के पश्चात् भगवान् से निवेदन किया।

'भन्ते ! बाहुका नदी[2] स्नान निमित्त पधारेगे ?'

'बाहुका नदी ? वहाँ क्या होगा स्नान कर ?'

'भन्ते ! बाहुका नदी लोकमान्य है।'

'और—?'

'पवित्र है।'

'और ?'

'उसमे स्नान करने से पाप का नाश होता है।'

'भारद्वाज ! बाहुका, [3]अधिकक्का, [4]गया, सुन्दरिका, [5]सरस्वती, [6]प्रयाग

---

(२) बाहुका नदी : इसे राप्ती की सहायक नदी धुमेल कतिपय विद्वानों ने माना है।

(३) अधिकक्का : एक पवित्र नदी है। निश्चय नही कहा जा सकता कि यह कौन नदी है।

(४) गया इससे तात्पर्य यहाँ एक तित्थ तथा घाट से था। फाल्गुन मास कृष्ण पक्ष मे गया फग्गुणी घाटपर एक मेला होता था। उसमें लोग इस स्थान पर स्नान करते थे। एक गया पोक्खरिणी अर्थात् पुष्करिणी भी थी। उसमे भी स्नान करना पुण्य माना जाता था।

(५) सरस्वती वेद वर्णित पवित्र सरस्वती नदी है। पूर्वीय पंजाव में वहती है। आधुनिक मत है कि अफगानिस्तान मे यह नदी है। जो सम्भवतः हरिरुद नदी है।

(६) प्रयाग : यहाँ अर्थ सगम पर स्नान करने से है।

तथा [७] बाहुमती नदी में पापकर्मी मूढ चाहे जितना स्नान करें, वे शुद्ध नही होगे। सुन्दरिका, प्रयाग और बाहुलिका नदी में स्नान कर क्या करेगा। वे पापकर्मियो को शुद्ध नही कर सकेगी। शुद्ध मनुष्य के लिए सर्वत्र, फलगू नदी है। सर्वदा उपसोथ है। शुद्ध तथा शुचिकर्मा के व्रत सर्वदा पूर्ण होते है। यदि भारद्वाज! तुम मिथ्या भाषण नही करते। हिंसा नही करते। बिना दिये लेते नही। श्रद्धावान् हो। मत्सर रहित हो। तो गया जाने से क्या लाभ? क्षुद्र जलाशय भी तुम्हारे लिये गया है।'

'आश्चर्य भगवन्! अद्भुत भगवन्!! मै आपसे प्रव्रज्या पाऊँ। उपसम्पदा पाऊँ।'

× × ×

●

---

(७) बाहुमती : बागमती नदी है। यह नेपाल से निकलती है। काठमाडू इसी के तटपर है। पशुपति का मन्दिर इसके तटपर है। मै यहाँ हो आया है। काशी के घाटो की यहाँ छटा मिलती है।

आधार ग्रन्थ :

संयुक्त निकाय ७ . १ ९

सुत्त निपात ३ . ४ (३०)

मज्झिम निकाय १ १ ७

सुन्दरिक भारद्वाज सुत्त

S : i 167

S . ii · A ii . 400

SA i 181

QHA . iv . 463

M : i . 139

पुत्र या कन्या

श्रावस्ती जेतवन में भगवान् विहार कर रहे थे। कोसलराज प्रसेन-जित वहाँ उपस्थित थे। एक ओर बैठे थे।

उस समय कोशलराज के पास एक सन्देशवाहक आया। राजा को प्रणाम किया। उनके कान मे कहा—देव! मल्लिका देवी ने कन्या प्रसव किया है।'

कन्या का जन्म सुनकर राजा खिन्न हो गया। भगवान् राजा का मनोभाव समझ गये। बोले—

'जनाधिप! कतिपय स्त्रियाँ पुरुषो से श्रेष्ठ होती हैं। मेधावी होती हैं। शीलवती होती है। श्वशुर-सेवक होती हैं। प्रतिव्रता होती है।'

राजा प्रसेनजित किंचित् लज्जा बोध करता तथागत की बात सुन रहा था। तथागत ने पुनः कहा—

'राजन्! उनसे दिशाओ पर विजय करने वाला महाशूरवीर पुत्र जन्म लेता है। दिशापति होता है। उस सुयोग्य स्त्री का पुत्र राज्य का शासन करता है।'

●

आधार ग्रन्थ :

संयुक्त निकाय ३ . २–६

सोण कोटि विंश

सोण का जन्म चम्पा[2] के एक समृद्धिशाली कुल मे हुआ था। उनके पिता का नाम उशम श्रेष्ठी था। वह जिस दिन से माता के गर्भ मे

---

(१) थेर गाथा मे सोण का वर्णन है। गाथा सख्या १५७, १०८ तथा ३४३ है। तीनो भिन्न व्यक्ति है। नामो के कारण भ्रम उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इनमें दो भिक्षु श्रावक तथा तीसरे भिक्षु थे।

बुद्ध घोप ने उसका नाम कोटि वेस्स (वैश्य) दिया है। क्योकि वह वैश्य वश का था। कुटुम्व कोटयधीश था। अतएव उसका नाम कोटि वैश्य पडा था।

सोण नाम के अनेक भिक्षु हुए है।

प्रियदर्शी बुद्ध के समय उनका देवदत्त तुल्य शत्रु था।

वेस्समु बुद्ध के समय में एक सोण उनका कनिष्ठ भ्राता था। भगवान् ने प्रथम उपदेश उसी को दिया था।

वाराणसी के राजा को सोण एक अश्व था। उसे महासोण भी कहते थे। सोण एक भिक्षु था जो उत्तर भिक्षु के साथ सुर्वण भूमि में धर्म प्रचार के लिये गया था।

एक सोण महासेन का अमात्य था।

इसके अतिरिक्त सोण पात्रिय पुत्र, सोण गृहपति पुत्र राजगृह पिप्पली विहार के सोण, सोण महा विहार के थे।

(२) चम्पा : अंग जनपद मे था। यह वर्तमान भागलपुर का अंचल है। चम्पा नगरी को बहुजनाकीर्ण बताया गया है। चम्पा नदी का उल्लेख चम्पेय्य जातक मे मिलता है। यह वर्तमान चान्दन नदी है। मगध तथा अग के जनपदो के मध्य बहती थी।

आया था। कुटुम्ब का भाग्योदय हो गया था। धन-धान्य से उसके पिता का घर पूर्ण हो गया था। उसका पिता प्रसन्न था। उसे गर्भ में धारण किये माता प्रसन्न थी। जिस दिन उसने जन्म लिया था समस्त नगर मे उस दिन उत्सव था। उसके माता-पिता ने खूब धन दान दिया था। बाँटा था। बहुत दिनो तक घर मे उत्सव होता रहा।

उसका शरीर सुन्दर था। कोमल था। उसका वर्ण स्वर्ण तुल्य था। अतएव उसे स्वर्ण कहा जाता था। उसके निवास निमित्त तीन ऋतुओं के अनुरूप तीन हर्म्यो का निर्माण हुआ था।

उसका एक नाम सुखमाल (सुकुमार) सोण था। उसका हाथ तथा पाँव बन्धुजीवक पुष्प (अडहुल) की तरह कोमल था। वह सफल वीणा वादक था।

× × ×

भगवान् राजगृह मे थे। गृद्धकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। मगधराज सेनिय विम्बसार था। उसके राज्य मे अस्सी अहस्र ग्राम थे।

चम्पा नगर मे सोण कोटि विंश रहता था। बीस करोड का धनी था। श्रेष्ठीपुत्र था। सुकुमार था। उसके शरीर मे विचित्र विशेषता थी। पाद तल में रोम उगे थे।

राजा विम्बसार को यह विशेषता मालूम हुई। उसने ग्रामो के मुखियो को एकत्रित किया। एक सन्देश वाहक को आदेश दिया :

'सोण के आगमन का इच्छुक हूँ।'

दूत सन्देश लेकर सोण के पास चला।

× × ×

'आयुष्मान् !' दूत ने कहा, 'राजा आपका आगमन चाहते हैं।'

'चलूँगा दूत !' सोण राजा का संवाद सुनकर प्रस्थान की बात सोचने लगा। दूत ने कहा :

'भणे ! एक बात है।'

'क्या ?' सोण ने ध्यानपूर्वक दूत की ओर देखा।

'राजा की ओर पैर फैलाकर मत बैठियेगा।'

'क्यो ?'

'राजा आपके पदतल के रोमो को देखना चाहते है।'

'तो क्या करूँगा ?'

'पलथी मारकर बैठ जाइए। इस प्रकार राजा आपके पद-तल को देख लेगे।'

× × ×

सोण शिविका पर आरूढ हुआ। राजभवन पहुँचा। राजा को प्रणाम किया। पलथी मारकर बैठ गया। तलवे पद्मासन तुल्य ऊपर खुले थे। राजा ने रोमों को देख लिया।

राजा ने ग्राम मुखियो से भगवान् का उपदेश सुनने के लिए आग्रह किया। वे राजा का आदेश मानकर उठे। भगवान् के स्थान की ओर प्रस्थान किया।

उन दिनो भिक्षु स्वागत भगवान् के उपस्थाक थे। उनसे आगत मुखियो ने निवेदन किया ·

'भन्ते ! हम भगवान् के दर्शनाकांक्षी है।'

'आयुष्मानो ! आप यहाँ ठहरिये। मै भगवान् से पूछकर आता हूँ।'

स्वागत अर्धचन्द्र पाषाण मे अन्तर्धान हो गये। भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान् को सब बाते बताई। भगवान् ने कहा ·

'विहार की छाया मे उनके लिए सादर आसन बिछा दिया जाय।'

ग्रामो के मुखिया आयुष्मान् स्वागत को अन्तर्धान होते देखे। वे विस्मित हुए। स्वागत पुन प्रकट हुए। उनके विस्मय की सीमा न रही।

आयुष्मान् स्वागत के साथ वे भगवान् के पास चले।

× × ×

आसन बिछा था। ग्राम मुखियो ने आसन ग्रहण किया। भगवान् का आगमन हुआ ! वह आसन पर बैठ गये। ग्राम मुखिया स्वागत के ऋद्धि

प्रदर्शन से प्रभावित थे। भगवान् की उपस्थिति मे भी वे स्वागत की ओर विस्मय से देखते थे। भगवान् ने उनके मन को बात जान ली। स्वागत से बोले ·

'स्वागत ! इनकी प्रसन्नता के लिए कुछ ऋद्धि प्रदर्शन और करो।'

'भन्ते !' आयुष्मान् स्वागत ने भगवान् को प्रणाम किया।

आयुष्मान् स्वागत गगनगामी हो गये। आकाश में जंघा विहार करने लगे। स्थिर खडे हो गये। बैठ गये। लेट गये। धूआँ उनके शरीर से निकलने लगा। प्रज्वलित हो गये। अन्तर्धान हो गये। पुन. प्रकट हुए। अनेक प्रकार से दिव्य शक्ति ऋद्धि प्रातिहार्य प्रदर्शित किया। तत्पश्चात् भगवान् के चरणो की वन्दना कर बोले :

'भन्ते ! आप मेरे शास्ता है। मै श्रावक हूँ।'

ग्राम मुखिया चकित हो गये। उन्होंने भगवान् को स्वागत से श्रेष्ठ समझा। भगवान् की तरफ देखने लगे। भगवान् की वन्दना की। भगवान् का महत्त्व उनकी समझ मे आया। भगवान् ने उन्हे उसी समय उपदेश दिया। उनके दिव्य चक्षु खुले। उन्हे वास्तविक धर्म का ज्ञान हुआ। वे सब अजलिबद्ध भगवान् की शरण गये। उपासक हुए।

सोण कोटिविंश अत्यन्त प्रभावित हुआ था। मुखियो ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया। अनुमोदन किया। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। प्रस्थान किया। सोण वही ठहर गया। सुअवसर देख कर सोण ने निवेदन किया :

'भन्ते ! मै प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ।'

× × ×

सोण कोटिविंश भिक्षु वन गया। घर त्याग दिया। वह सीतवन[1]

---

(१) सीतवन . मगध राज्य राजगृह में था। पालि मे श के स्थान पर प्राय स शब्द का व्यवहार किया गया है। सीतवन राजगृह के स्मशान के समीप था। अजातशत्रु ने राजगृह के स्मशान के समीप वसाया था। स्मशान अर्थात् सुनसान वन को ही एक मत सीतवन मानता है। अनाथ पिण्डक वही पर प्रत्यप काल में भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ था। यहाँ पर

मे विहार करने लगा। वह अत्यन्त उद्योग परायण था। नंगे पैर टहलता था। उसके तलवे से खून वहने लगा। चक्रमणस्थान रक्त से भर गया।

उसने सोचा था। कोमल शरीर द्वारा श्रमण धर्म नही प्राप्त हो सकता। किन्तु शरीर के परिश्रम की एक सीमा होती थी। उसका शरीर शिथिल होने लगा। दुर्वलता आ गयी। मन श्रमण धर्म से उचटने लगा। उत्साह शिथिल पड़ गया।

भगवान् को सोण की मानसिक दशा का पता लग गया। भिक्षु संघ के साथ सीत वन आये। चक्रमण स्थान देखा। वह खून से सिक्त था। भगवान् ने पूछा ·

'भिक्षुओ ! रक्तसित यह किसके टहलने का स्थान है।'

'सोण का भते !'

भगवान् सोण की कोठरी पर गये। वहाँ आसन पर बैठ गये। आयुष्मान् सोण ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर वैठ गया। भगवान् वोले

'सोण। घर लौटने की वात इस एकान्त स्थान मे उदय हुई है?'

'हाँ भन्ते !'

'गृहस्थाश्रम मे तुम चतुर वीणा वादक थे।'

'हाँ।'

'सोण। वीणा तन्तु जब बहुत खिचे रहते थे, तो क्या उनसे स्वर निकलता था ?'

'नही भन्ते।'

'वीणा तन्तु ढीले होते थे, तो क्या स्वर निकलता था।'

'नही भन्ते !'

सारिपुत्र तथा स्थविर उपसेन सप्प सोणिक पब्भार के समीप धार्मिक चर्चा किया था।

भगवान् ने अपना दूसरा वर्षावास राजगृह के सीतवन मे ईशापूर्व ५२६ वर्ष मे किया था।

'वीणा के तन्तु न तने होते थे, न ढीले होते थे तो क्या वह स्वर युक्त होते थे ?'

'हाँ भन्ते।'

'शोण! अत्यधिक उद्योग परायणता औद्धत्य उत्पन्न करती है। शिथिलता उत्पन्न करती है। उद्योग मे इन्द्रियों की समता तथा कारण ग्रहण कर।'

'भन्ते—!' सोण ने अजलिबद्ध प्रणाम किया।

भगवान् सीत वन से गृद्धकूट चले।

× × ×

भगवान् राजगृह मे थे। वेणुवन कलन्दक[1] निवाप मे विहार कर

---

(१) कलन्दक निवाप वैशाली के समीप एक ग्राम वज्जिया के देश में था। इसे कलन्दक निवाप से मिलाना ठीक नही होगा। वेणु वन कलन्दक निवाप राजगृह मगधराज में था। चतुर्थ वर्षावास भगवान् ने कलन्दक निवाप में किया था। उग्रसेन ने वही भगवान् के उपदेश द्वारा वृहद् शासन स्वीकार किया था। भगवान् के यहाँ परिनिर्वाण के पश्चात् आनन्द ने यहाँ विहार किया था। अग्र श्रावक वक्कुल ने भी यहाँ विहार किया था। सारिपुत्र तथा महामौद्गल्यायन की उपसम्पदा यही पर हुई थी। ६ विनय नियमो का विधान किया गया।

भगवान् के शब्दो मे स्थान रमणीय था। भगवान् ने यहाँ सिगालोवाद सुत्त, सान्तियसुत्त, दयविनीत सुतन्त, चूल वेदल सुतन्त, अभयराज कुमार सुतन्त, भूमिज सुतन्त, धान जानि सुतन्त, महासकलदायि सुतन्त, चूल सकल-दायि सुतन्त, भूमिज सुतन्त, दत्तभूमि सुतन्त, छन्दोवाद सुतन्त, तथा पिणपाल परिसुद्धि सुतन्त यही कहे गये थे। इसके सम्वन्ध मे निम्नलिखित आख्यायिका है। उसक वर्णन बुद्धघोप ने किया है।

कोई मगधराज के इस उद्यान में शिकार खेलने के लिए आया था। वह शिथिल हो गया था। मदपान किया। नीद आ गयी। सो गया। मद की गन्ध मुख से निकल रही थी। एक सर्प वहाँ आ गया। वह उसे डसना चाहता था। वन देवता गिलहरी का रूप धर वहाँ आ गया। वह शोर करने लगा। राजा की निद्रा भग हो गयी। राजा ने देखा। एक गिलहरी के कारण उसकी प्राण रक्षा हुई थी। गिलहरी का अर्थ कलन्दक होता है।

रहे थे। गृहपति सोण भगवान् के समीप आया। भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। भगवान् ने पूछा .

'सोण रूप नित्य है या अनित्य ?'

'भन्ते ! अनित्य।'

'अनित्य दु:ख है या सुख ?'

'भन्ते ! दु ख है।'

'सोण ! जो अनित्य है। जो दु:ख है। जो विपरिणामधर्मा है। क्या उसे तुम मानोगे यह मेरा है ? यह मै हूँ। यह मेरी आत्मा है ?'

'कभी नही भन्ते !'

'सोण !' भगवान् ने प्रश्न किया, 'वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान यह सब नित्य है या अनित्य ?'

'अनित्य है।'

'आयुष्मान् !' भगवान ने कहा, 'जो रूप, अतीत, अनागत, वर्तमान, आध्यात्म, बाह्य, स्थूल, हीन, प्रणीत, दूर किंवा निकट है, उसे प्रज्ञा द्वारा देख लेना चाहिये।'

'क्या देख लेना चाहिए भन्ते ?'

'सोण ! वे अपने है या नही ? वह स्वयं हूँ या नही ? यह मेरी आत्मा है या नही ?'

'भन्ते !'

'सुनो सोण ! श्रावक रूप से निर्वेद करता है। वेदना से निर्वेद करता है। सज्ञा से निर्वेद करता है। सस्कार से निर्वेद करता है। विज्ञान से निर्वेद करता है। निर्वेद से विरक्त होता है। विरक्ति से मुक्त होता है। जब वह विचार करता है। वह मुक्त हो गया। तो उसे इसी प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। उसकी जाति क्षीण होती है। ब्रह्मचर्य

राजा ने प्रसन्न होकर आदेश दिया। यहाँ प्रतिदिन कलन्दको को चारा अर्थात् निवाप बँटा दिया जाय। कलन्दको को निवाप बँटा देने के कारण स्थान का नाम कलन्दक निवाप हो गया था।

पूर्ण होता है। उसे जो कुछ करना रहता है। कर लेता है। उसे कुछ करना शेष नही रहता। इस प्रकार का ज्ञान उसमे उत्पन्न होता है।'

सोण के अंजलिबद्ध कर मस्तक से लग गये।

× × ×

राजगृह का कलन्दक निवाप था। वेणु वन था। सोण भगवान् के पास गया। अभिवादन किया। वन्दना किया। एक ओर बैठ गया। भगवान् ने उसे देखकर कहा ·

'सोण ! श्रमण और ब्राह्मण रूप जानते हो।'

'भन्ते ! कहिए।'

'आवुस ! जो लोग श्रमण और ब्राह्मण रूप को नही जानते है, वे रूप के समुदाय को नही जानते हैं। रूप के निरोध को नही जानते है। रूप के निरोधगामी मार्ग को नही जानते हैं। वे वेदना, सज्ञा, सस्कार, विज्ञान को नही जानते है वे क्या श्रमणो मे श्रमण समझे जायेगे ? क्या ब्राह्मणो मे ब्राह्मण समझे जायेगे ?'

'भन्ते— ?'

'सोण ! वे इस जन्म मे परमार्थ का ज्ञान, दर्शन, एव प्राप्ति कर विहार नही करते ?'

'और जो जानते है ?''

'सोण ! जो श्रमण रूप को जानते है। ब्राह्मण रूप को जानते है। विज्ञान को जानते है। वही श्रमणो मे श्रमण हैं। ब्राह्मणो मे ब्राह्मण है। इसी जन्म मे श्रमण किंवा ब्राह्मण के परमार्थ का ज्ञान, दर्शन एव प्राप्ति कर विहार करते हैं।'

× × ×

सोण कोटिविंश निरन्तर धर्म पथ पर बढता गया। वह निर्मल हो गया। उसने एक दिन उल्लास के साथ उदान कहा .

'सोण ! तू चम्पा का कभी श्रेष्ठ नागरिक था। राज पार्षद था। किन्तु आज तू धर्म मे श्रेष्ठ है। दु ख से दूर हो चुका है। पाँचो बन्धनो का उच्छेद कर, पाँचो बन्धनो का भेदकर, पाँचो इन्द्रियो का अभ्यास कर, पाँचो आसक्तियो को पार कर, तू प्रवाह उत्तीर्ण कहा जाने लगा है।

'मानी, प्रमत्त, बाह्य आशा युक्त, भिक्षु कभी शील, समाधि एवं प्रज्ञा प्राप्त नही करता है। कृत्य का त्याग कर, जो अकृत्य का वरण करता है, उनके गर्व एव प्रमत्त आश्रव वृद्धि करते है। अकृत्य कार्य जो नही करते, कायागत स्मृति मे, कृत्य मे उद्यत, स्मृतिमान, ज्ञानपूर्वक आचरण करने वालो का आश्रव नष्ट हो जाता है। बुद्ध मार्ग का अनुसरण करता अग्रसर होता जाये, प्रत्यावर्तित न होता हुआ, स्वय अनुभूति द्वारा निर्वाण पद प्राप्त करना चाहिए। तथागत ने वीणा की उपमा के साथ मुझे उपदेश दिया था। उनके वचनो का पालन करता हुआ, उनके शासन मे रत हो गया। निर्वाण निमित्त मैने समाधि का प्रतिपादन किया है।

'मै त्रिविद् पारगत हुआ हूँ। बुद्ध शासन को पूर्ण किया है। निष्काम कर्म एव चित्त शान्ति मे लीन रहता हूँ। जो व्यक्ति मैत्री, उपादान के तृष्णाक्षय मे तथा मोह को तिरोहित करने में रत है, आयतनों की उत्पत्ति देख कर उनका चित्त सम्यक् रूप से मुक्त होता है। शान्त चित्त सम्यक् रूप से मुक्त को कर्म सचय नही करता है। उसे और कुछ करना शेष नही रह गया है। स्थिर अर्हत को शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श इष्ट एव अनिष्ट धर्म ये उसी प्रकार विचलित नही कर सकते जिस प्रकार वायु पर्वत को विचलित नही कर सकती। उसका चित्त, सस्कार रहित हो जाता है। स्थिर हो जाता है। वह विनाश को प्रत्यक्ष देखता है।'

× × ×

सोण ने समता ग्रहण की। कारण ग्रहण किया। एकान्त मे प्रमाद रहित हुआ। उद्योग युक्त हुआ। आत्म निग्रही हुआ। अनुपम ब्रह्मचर्य के परिणाम को इसी जीवन में जान गया। विहरने लगा। जीवन मुक्त हुआ।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावको मे सोलहवाँ स्थान प्राप्त, अगदेश, चम्पा नगर श्रेष्ठी कुलोत्पन्न, सोण कोटिविंश आरब्ध वीरों मे अग्र हुआ।

आधार ग्रन्थ :

पालि और हिन्दी

अंगुत्तर निकाय १ . १४

विनय पिटक महावग्ग ५ . १ १-३

संयुक्त निकाय २१ १ ५ ७-६

थेर गाथा २४३, उदान ६३३-६४४

Thag A i 299, 544.

Mh . i · 95, 298.

A A · i 130.

सोण (स्वर्ण कोटिकर्ण)

अवन्ति मे कुरर घर के एक कुलीन घर मे जन्म हुआ था। उसका नाम सोण रखा गया था। वह कानो मे एक करोड का रत्न पहनता था। अतएव उसका नाम कोटिकर्ण रख दिया गया था। उसका पूरा नाम पड गया था—सोण कोटि कर्ण।

वह धन-धान्य पूर्ण होने लगा। उसकी श्री वृद्धि होती गयी। उसका जीवन सुखमय बीत रहा था। बड़े भूखण्ड का वह स्वामी बन गया था।

× × ×

एक समय की वात थी। कात्यायन ने उसके गृह के समीप विहार किया था। उसी समय सोण उनके सम्पर्क में आया था। उसने कात्यायन

---

(१) सोण की माता का नाम कात्यायनी तथा काली दोनो दिया गया है। यह इतना भ्रमपूर्ण मुझे लगा कि मैंने यहाँ उसकी माता का नाम नही दिया है। अग्र श्रावको की जो तालिका भगवान् ने दी है उसमे कात्यायनी को ही सोण की माता कहा गया है।

सोण की माता जहाँ काली कही गयी है। वहाँ सोण की कथा भिन्न है। काली राजगृह सोण के जन्म के कुछ दिन पूर्व गयी थी। एक दिन वह शीतल वायु का सेवन घर पर कर रही थी। उसने दो पक्षियो का सवाद सुना। वे सातागिर तथा हेमवत थे। वे भगवान् के विषय मे वार्तालाप कर रहे थे। उनकी बात सुनकर वह श्रोतापन्न हो गयी। उसी रात्रि में सोण का जन्म हुआ। उसका सोण नाम रखा गया। कुछ समय पश्चात् काली कुरर घर अवन्ती ससुराल लौट आयी। महाकात्यायन उसी के मकान के पास रहते थे। उसके निवास स्थान पर आते थे। महाकात्यायन का सोण भक्त हो गया। उन्होने सोण को बुद्ध शासन में प्रव्रजित किया। तीन वर्ष पश्चात् उसने उपसम्पदा प्राप्त की। सोण श्रावस्ती जाने लगा तो काली ने भगवान् के विहार मे फैलाने के लिए एक कम्बल दिया था।

से धर्म चर्चा सुनी। धर्म का रहस्य समझा। बुद्ध शासन का उसे परिचय हुआ। उसके धर्म चक्षु खुलने लगे।

× × ×

भगवान् श्रावस्ती मे थे। अनाथ पिण्डक के आराम जेतवन मे थे। विहार कर रहे थे। आयुष्मान् महाकात्यायन का सोण उपस्थाक था। [1]अवन्ति देशान्तर्गत [2]कुरर घरमे प्रपात पर्वत था। कहाकात्यायन वहाँ निवास करते थे। सोण कुटिकण्ण का नाम स्वर्ण कोटिकर्ण भी था।

सोण ने विचार किया। क्यो न मै महाकात्यायन से प्रव्रजित हो जाऊँ? अवसर पाकर कात्यायन से विचार प्रकट किया। कात्यायन ने उत्तर दिया :

'सोण! एकाहार तथा एक शय्या युक्त ब्रह्मचर्य दुष्कर है। तुम्हारे लिए उत्तम है कि गृहस्थ रहकर, बुद्ध के शासन का अनुगमन करो। पर्व के दिनो मे एक आहार तथा एक शय्या का व्रत रख लेना।'

सोण का उत्साह शिथिल हो गया। उसमें पुन. वितर्क उत्पन्न हुआ।

---

(१) अवन्ति . बुद्ध वश एक अवन्ती पुर का उल्लेख करता है। अवन्ती राष्ट्र का भी उल्लेख मिलता है। इसका अर्थ अवन्ती ही है। अवन्ती राष्ट्र मे उज्जैन कहा गया है। अतएव अवन्ती ओर अवन्ती राष्ट्र एक ही नाम की दो सज्ञा हैं। एक मत है कि उत्तर और दक्षिण दो अवन्तिका थी। दक्षिणापथ की अवन्ती की राजधानी माहिष्मती तथा उत्तर अवन्ती की राजधानी उज्जैन थी। कोसल और अवन्ती राज्य के मध्य वश किंवा वत्स किंवा वच्छ राज्य था। एक और मत है। अवन्ती उज्जैन से लेकर माहिष्मती तक थी। आठवी शताब्दी मे अवन्ती को मालवा कहने लगे थे।

(२) कुरर घर . श्रावस्ती जनपद में एक कुरर घर नामक पर्वत का उल्लेख है। पठम हालिदिक्कानी, सुत्त, द्वितीय हालिदिक्कानि सुत्त तथा हलिद्दिक सुत्त में उल्लेख है। अवन्ती मे कुरर घर नामक पर्वत का उल्लेख स्पष्ट मिलता है। इस कुरर घर पर्वत के पास ही कुरर घर नगर था। श्रावस्ती से कुरर घर १२० योजन दूर था। कुरर घर के समीप पपात पर्वत भी कहा गया है। कतिपय विद्वान् कुरर घर पर्वत को ही पपात पर्वत कहते है। इस विषय मे अनुसन्धान की और आवश्यकता प्रतीत होती है।

उसने महाकात्यायन से प्रव्रज्या के लिए निवेदन किया। किन्तु उसे पूव उत्तर मिला।

सोण के प्रव्रज्या उत्साह तरग तुल्य थे। उसने तीसरी वार प्रव्रज्या निमित्त निवेदन किया। महाकात्यायन ने उसे अत्यन्त उत्सुक देखा। प्रव्रज्या की प्रौढ भावना देखी। सोण को प्रव्रजित किया।

दक्षिणापथ मे उन दिनो भिक्षुओ का नितान्त अभाव था। तीन वर्ष पश्चात् किसी प्रकार १० भिक्षुओ को एकत्रित किया गया। सोण को महाकात्यायन ने उपसम्पन्न किया।

× × ×

सोण को परिवितर्क हुआ। भगवान् के रूप, गुण, ज्ञानादि के विषय मे बहुत कुछ सुना था। भगवान् के दर्शन की प्रबल इच्छा हुई।

एक दिन सायकाल सोण ध्यान से उठा। आयुष्मान् कात्यायन के पास गया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। उसके सकेत पर निवेदन किया ·

'भन्ते ! मै एकान्त ध्यान रत था। मन मे परिवितर्क उत्पन्न हुआ। तथागत का दर्शन करूँ।'

'साधु ! साधु !! साधु !!! सोण अवश्य ! अवश्य दर्शन निमित्त जाओ। सोण ! भगवान् को तुम प्रासादिक, प्रसादनीय, शातेन्द्रिय, दान्त, गुप्त, जितेन्द्रिय नाग देखोगे।'

सोण ने कात्यायन की वन्दना की। कात्यायन ने पुनः कहा :

'सोण ! भगवान् की शिर से वन्दना करना। उनसे कहना—तुम्हारे उपाध्याय कात्यायन ने भगवान् के चरणो मे शिर से वन्दना की है।'

'भन्ते ! जैसी आज्ञा।'

सोण आसन से उठा। उपाध्याय का अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की।

× × ×

शयनासन, पात्र, चीवर, लेकर सोण श्रावस्ती की ओर प्रस्थान किया। चारिका करता चला। श्रावस्ती पहुँचा। अनाथ पिण्डक के जेतवन विहार में भगवान् के दर्शन निमित्त प्रवेश किया।

भगवान् वहाँ आसन पर विराजमान थे। सोण ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् का सकेत पाकर बोला :

'भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् कात्यायन ने भगवान् के चरणों मे शिरसा नयन किया है। वन्दना की है।'

'भिक्षु ! खमनीय तो रहा ? यापनीय तो रहा ? अल्प कष्ट से यात्रा तो हुई ? मार्ग मे पिण्ड का कष्ट तो नही हुआ ?'

'भगवान् ! खमनीय रहा। यापनीय रहा। यात्रा अल्प कष्ट से हुई। पिण्ड का कष्ट नही हुआ।'

सोण ने भगवान् को प्रणाम करते हुए निवेदन किया। भगवान् ने आनन्द को बुलाया। उनसे कहा :

'आनन्द ! नवागन्तुक भिक्षु को शयनासन दो।'

'आज्ञा भन्ते !'

आनन्दने विचार किया। भगवान् एक ही विहार में नवागन्तुक के साथ रहना चाहते थे। जिस विहार मे भगवान् निवास करते थे। वही आनन्द ने सोण का शयनासन लगा दिया।

भगवान् रात्रि मे निर्मल नील गगन के नीचे विहार करते रहे। तत्पश्चात् पैर धोया। विहार मे प्रवेश किया।

प्रत्यूष काल मे भगवान् उठे। आयुष्मान सोण से भगवान् ने कहा :

'भिक्षु ! धर्म भाषण कर सकते हो।'

'भन्ते !' सोण ने शिरसा वन्दना की।

'अच्छा—कहो।'

'भन्ते—।'

सोण ने सस्वर सोलह अट्ठक वग्गिको का पाठ किया। उसका सस्वर पाठ उत्तम था। स्वर लय समन्वित था। मधुर था। पाठ समाप्त हुआ। भगवान् ने अनुमोदन किया :

'साधु ! साधु !! भिक्षु ! तुमने पूर्णरूपेण अध्ययन किया है। अच्छी तरह धारण किया है। कल्याणी, विस्पष्ट, अर्थ विज्ञापन योग्य वाणी से तू युक्त है।'

सोण ने मुदित मन भगवान को प्रणाम किया। भगवान ने पूछा :

'भिक्षु ! तुम्हारी उपसम्पदा कितने वर्ष की हुई ?'

'भगवान् ! केवल एक वर्ष।'

'इतने विलम्ब से क्यो प्रव्रज्या ली ?'

'भन्ते ! कर्मों के दुष्परिणाम को विलम्ब से देख पाया था। गृहवास बाधक होता है। बहुकरणीय होता है।'

भगवान् ने उदान कहा—'जगत् के दुष्परिणामो को अवलोकन कर, उपाधि रहित धर्म का ज्ञान प्राप्त कर, आर्य पाप में नही रमते। पवित्रात्मा पाप मे नही रमता।'

सोण ने भगवान् से निवेदन करने का काल समझा। आसन त्याग दिया। उत्तरासग एक कन्ध पर रखा। भगवान् के चरण-कमलो पर मस्तक रख कर निवेदन किया :

'भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् कात्यायन भगवान् के चरणो मे शिरसा नमन करते है। वन्दना करते है।'

'भिक्षु ! कहो—।' भगवान् ने सोण का अभिप्राय जान कर कहा।

'भन्ते ! दक्षिणापथ अवन्ती मे भिक्षु वहुत कम है। चीवर पर्याय भगवान् कर दें तो सुविधा होगी।'

'अच्छा।'

भगवान् ने भिक्षु सघ को आमन्त्रित किया। सघ के एकत्रित होने पर भगवान् ने कहा :

'भिक्षुओ ! दक्षिणापथ अवन्ति मे भिक्षु बहुत कम है। मै सभी प्रत्यन्त जनपदो मे विनयधर सहित केवल पाँच भिक्षुओ के गण से उपसम्पदा की अनुज्ञा देता हूँ। यहाँ यह प्रत्यन्त जनपद है। पूर्व दिशा में कजगल निगम है। तत्पश्चात् साखू का वन है। उसके पश्चात् प्रत्यन्त जनपद है। पूर्व-दक्षिण दिशा मे सलिलवती नदी है। उसके पश्चात् प्रत्यन्त जनपद है। दक्षिण दिशा मे सेत कण्णिक निगम है। पश्चिम दिशा मे थूण ब्राह्मण ग्राम है। उत्तर दिशा मे उशीरध्वज पर्वत है। उनके पश्चात् प्रत्यन्त जनपद है। भिक्षुओ ! प्रत्यन्त जनपदो के लिए अनुज्ञा देता हूँ विनयधर सहित पाँच भिक्षुओ के गण को उपसम्पदा करने की।'

भगवान् ने भिक्षु सघ मे दीक्षित करने की एक नवीन विधि बतायी। सोण ने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। अवन्ति के लिए प्रस्थान किया।

× × ×

तोण भगवान् के प्रदर्शित पथ पर निरन्तर उन्नति करते गये। उन्होंने एक दिन उदान कहा :

'मैने उपसम्पदा पायी है। मै आश्रव रहित हूँ। मै मुक्त हूँ। मैने शास्ता का दर्शन किया है। उनके साथ एक साथ विहार मे रहा हूँ। रात्रि मे वहुत काल गये तक भगवान् आकाश के नीचे रहे। तत्पश्चात् शास्ताने विहार मे प्रवेश किया। पर्वत गुहा मे निर्भय जिस प्रकार सिंह शयन करता है उसी प्रकार सघाटी पर भगवान् ने शयन किया। उस समय मैंने भगवान् से धर्म की चर्चा की। पाँचो स्कन्धो का मुझे ज्ञान हुआ। आर्य मार्ग का अभ्यास किया। परम शान्ति का अनुभव किया। आश्रव रहित हो गया। निर्वाण प्राप्त किया।'

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे सत्तरहवाँ स्थान प्राप्त अवन्ति कुरर घर वैश्य कुलोत्पन्न सोण कुटिकण्ण सुवक्ताओ मे अग्र हुआ।

आधार ग्रन्थ :

अंगुत्तर निकाय १ १४

उदान ५ ६

महावग्ग ५ ३ १

संयुक्त निकाय ३४ ३ ३ ५

थेर गाथा २०८, उदान ३६५-३६९

A 1 : 24

Thag A 1 : 429.

Uin : i 194

Ud : v · 6.

Thag vgs 365—369.

A A · 1 · 133.

DhA . iv : 103.

कुररघरिका काली

काली सोण कुटिकर्ण अथवा कुटिकण्ण की माता थी। उसका विवाह कुररघर अवन्ती में हुआ था। कुटिकर्ण जब गर्भ मे था उसी समय काली माता पिता के निवास स्थान राजगृह मे आयी।

एक दिन छत पर शीतल वायु मे आराम कर रही थी। उस समय मातागिर तथा हेमवत के बीच वार्तालाप हो रही थी। भगवान् बुद्ध के गौरव एव महत्त्व के सम्बन्ध मे चर्चा चल रही थी। उनसे भगवान् का उपदेश भी सुन लिया। उसे सुनते ही वह श्रोतापन्न हो गयी। उसी रात्रि मे सोण का जन्म हुआ।

- कालान्तर मे काली राजगृह से कुररघर अवन्ती लौट आयी। महा कात्यायन के पास उपदेश सुनने जाने लगी।

सोण ने बुद्ध शासन मे प्रवेश किया। वह भगवान् के पास जाने लगा तो काली ने एक मूल्यवान कम्बल सोण को दिया। उसे सहेज दिया। भगवान् के विहार मे वह बिछा दिया जाय।

× × ×

सोण भगवान् के पास से लौट कर आया। काली ने उससे कहा- 'सोण! तू मुझे उसी प्रकार बता जिस प्रकार तू ने भगवान् के सामने धर्म की बाते की थी। जिसे सुनकर भगवान् प्रसन्न हुए थे। तुम्हारी प्रशंसा किये थे।

कात्यायनी की काली सखी थी। तथा सर्वदा उसके साथ रहती थी। सोण ने उपदेश देना स्वीकार कर लिया। उसका प्रबन्ध काली करने लगी।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी से भगवान् के भिक्षु श्रावकों, श्रावि-

काओं, उपासको तथा उपासिकाओं की तालिका मे पचहत्तरवाँ तथा उपासिकाओ मे दसवाँ स्थान प्राप्त मगध राजगृह कुल गेहोत्पन्न और अवन्ती कुररघर मे विवाहित कुररघर वाली काली उपासिका अनुश्रव प्रसन्नो मे अग्र हुई थी।

•

आधार ग्रन्थ
अंगुत्तर निकाय १ · १४
A 1 . 26.
A A · 1 : 133, 245, 247.
SnA : 1 : 208.

खुज्ज उत्तरा

घोषित श्रेष्ठी की खुज्ज उत्तरा कन्या थी। कालान्तर मे वह रानी सोमावती की दासो हो गयी। रानी उसे आठ कार्षापण प्रतिदिन देतो थी। राजा की आज्ञा थी। रानी उनसे पुष्प खरीद लिया करे।

खुज्ज उत्तरा सुमन माली को प्रतिदिन चार कार्षापण देती थी। पुष्प खरीदती थी। शेष चार रख लेती थी।

एक दिन भगवान् सुमन माली के यहाँ आमन्त्रित हुए थे। सुमन ने यथाशक्ति भगवान् का सत्कार किया। जो कुछ था परोस दिया। भोजनोपरान्त सुमन ने भगवान् का उपदेश सुना। वहाँ उत्तरा उपस्थित थी। उसने भी उपदेश ध्यानपूर्वक सुना। श्रोतापन्न हो गयी।

उस दिन उसमे विवेक ने प्रवेश किया। वह मननशील हुई। उसे ज्ञान हुआ। पैसा बचाकर उसने अपराध किया था वह घर लौटी। बचे हुए पैसों को निकाला। सबका फूल खरीद लिया। रानी ने फूलो का ढेर देखकर पूछा

'उत्तरे! आज तू इतना फूल कहाँ से लायी ?'

रानी पुष्पराशि देखकर प्रसन्न हो गयी। पुष्पों को अजुलि से उठाती सूँघती थी। पुन रख देती थी। उसे गालो से लगाती थी। वह उनकी सुन्दरता पर मुग्ध थी।

'आर्ये! यह आप ही के पैसो का है।'

'मैंने तो नही दिया था ?'

'देवी! क्षमाकांक्षी हूँ। आपके प्रदत्त कार्षापण मे केवल चार कार्षापणका पुष्प खरीदती थी। आधा बचा लेती थी। उन्ही बचे पैसो से आज फूल खरीदकर लायी हूँ। मैने अपराध किया है, देवो।'

उत्तरा की सत्यवादिता से रानी प्रभावित हुई। उन्हें क्रोध नहीं आया। पुष्पो की कोमलता एव सुगन्ध ने क्रोध को जैसे सुला दिया था।

'उत्तरे !' रानी ने सस्नेह कहा : 'तुम्हारा अपराध क्षम्य है।'

उत्तरा देवी के चरणो पर गिर गयी। रानी ने उसे उठाते हुए पूछा :

'तुममें यह ज्ञान कैसे उत्पन्न हो गया उत्तरे ?'

'आर्ये ! मैने भगवान् का उपदेश सुना था।'

'ओह, उपदेश का यह प्रभाव है ?'

'देवी !' उत्तरा ने विनत नेत्रो से उत्तर दिया।

'मुझे भी सुनायेगी ?'

'देवी ! मेरा सौभाग्य होगा।'

× × ×

रानी सोमावती उत्तरा को प्रतिदिन सुगन्धित जल द्वारा स्नान कराती थी। धर्मोपदेश सुनती थी। खुज्ज उत्तरा रानी सोमावती की माता तुल्य हो गयी थी। वह प्रतिदिन भगवान् का उपदेश कोशाम्बी मे सुनती थी। लौटने पर रानी सोमावती तथा वहाँ उपस्थित पाँच सौ सेविकाओ को सुनाती थी। वे सभी उत्तरा के उपदेश के कारण श्रोतापन्न हो गयी। एक दिन रानी ने उत्तरा से कहा :

'उत्तरे ! मै भी भगवान् का दर्शन करना चाहती हूँ।'

'अवश्य कीजिए देवी !'

'किस प्रकार करूँ ?'

'आर्ये ! आप प्रासाद की दीवाल मे एक झरोखा खुदवा दीजिए।'

'उससे क्या होगा ?'

'भगवान् इधर से पधारते है। आप दर्शन कर लीजियेगा।'

× × ×

कालान्तर में रानी सोमावती तथा उसकी सेवकाएँ भीषण अग्नि काण्ड मे जल मरी। उस समय खुज्ज उत्तरा राजप्रासाद में नही थी। अतएव बच गयी।

रानी की मृत्यु के पश्चात् खुज्ज उत्तरा भगवान् का धर्मोपदेश निरन्तर सुनती थी। धर्माचरण करती थी।

× × ×

भगवान् श्रावस्ती मे थे। भगवान् से आदर्श श्राविकाओ के विपय में प्रश्न पूछा गया। भगवान् ने उत्तर दिया।

'भिक्षुओ! अपनी एकमात्र कन्या को श्रद्धालु उपासिकाएँ शिक्षा दें—'पुत्री! तुम उपासिका खुज्ज उत्तरा तथा वेल कण्डकिय नन्द माता के समान आदर्श बनना।'

'क्यो भन्ते!' भिक्षुओ ने पूछा।

'आयुष्मानो! उपासिका श्राविकाओ मे यही दोनो आदर्श है।'

'और यदि भिक्षुणी बनना हो तो।'

'आयुष्मानो! शिक्षा देना—'भिक्षुणी क्षेमा और उत्पलवर्ण तुल्य बनना। वे ही आदर्श है।'

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भगवान् के भिक्षु श्रावक श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे अडसठवाँ स्थान तथा उपासिकाओं मे तीसरा स्थान प्राप्त, वत्स कौसाम्बी घोषक श्रेष्ठी की धात्री पुत्री खुज्ज उत्तरा वहुश्रुतो मे अग्र हुई थी।

o

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ १४

संयुक्त निकाय १६ ३ · ४ (एकधीतासुत्त)

खुज्ज उत्तरा

A A ı 226, 232, 237.
A . ı · 20, 23, 88 ; : ıı . 164 ; . ıv 368
DhA ı . 208, 226.
P S A 498.
DVY . · 339—4.
ItV A . 32
S . ıı 236
D A : ııı : 910.
V S on : 442.
Vıbm A : 388.
S : ııı . 168 ; V : 192.
M, L 78.
VdA 384.

कात्यायनी (सोण कुटिकण्ण की माता)

परिसन्थार वुत्तस्स आचारकुसलो सिया।
ततो पामज्जवहुलो दुक्खस्सन्त करिस्सति ॥

(आचार कुशल, सेवा-सत्कार युक्त स्वभाव व्यक्ति, सानन्द दुःखों का अन्त करता है।)

ध० ३७६

आयुष्मान् महाकात्यायन के शिष्य कुटिकण्ण सोण थे। अवन्ती (उज्जैन) से चल कर जेतवन श्रावस्ती पहुँचे। भगवान् का उपदेश सुनकर कुररघर[1] वापस लौटे।

उनकी माता का नाम कात्यायनी[2] था। कोसल श्रावस्ती के कुल-गृह मे उत्पन्न हुई थी। पुत्र के लौटने पर प्रसन्न हुई। पुत्र का विचार सुनना चाहा। सोण ने प्रव्रज्या के पश्चात् घर त्याग दिया था।

उपदेश सुनने के लिए भेरी-घोष नगर मे कराया गया। सभी को आमन्त्रित किया गया उपदेश सुनने के लिये।

---

(१) कुररघर : अवन्ती मे एक निगम था। यह कात्यायनी, काली, सोण कुट्टि-कण्ण आदि का निवास स्थान था। महाकात्यायन ने भी यहाँ निवास किया था। कुररघर से सम्बन्धित होने के कारण 'कुररघरिय सोण' की भी सज्ञा सोण कुटिकर्ण को दी गयी थी। श्रावस्तो इसके समीप जनपद पपात पर्वत समीपस्थ कुररघर पर्वत से इसे नही मिलाना चाहिए। अवन्ती के समीपस्थ पर्वत की भी संज्ञा कुररघर से एक मत देता है।

(२) कात्यायनी इसे कच्चानी भी कहते है। इसके विषय मे विशेष प्रकाश वौद्ध साहित्य से नही पडता। इसके माता-पिता कौन थे ? यह कहाँ की निवासिनी थी। इसका पति कौन था। इस पर कोई निश्चित तथा साधि-कारिक मत स्थिर नही हो सका है।

माता नगरवासियों के साथ पुत्र का उपदेश सुनने के लिए चली। कात्यायनी जिस समय उपदेश सुन रही थी उसी समय उसके घर मे चोरो ने सेंध लगायी। उसका धन ढोने लगे। सुवर्ण, रजत, मणि, मुक्ता, रत्न राशि चोर ले जाने लगे। कात्यायनी की दासी ने चोरों को देखा। सवेग उपदेश स्थान पर पहुँची। स्वामिनी कात्यायनी से बोली—

'देवी ! घर में चोर आ गये है।'

कात्यायनी ने ध्यान नही दिया। दासी पुनः बोली

'देवी, सब धन ढो ले जा रहे है।'

कात्यायनी का ध्यान उपदेश मे लगा था। उसने पुन. ध्यान नही दिया। दासी ने पुन. व्यग्र होकर कहा .

'देवी ! सब कुछ चोरी ही जायगा। हम दरिद्र हो जायँगे।'

'ऊँह ! उपदेश मे विघ्न मत डाल।'

'तो—

'चोर धन ले जाते है। ले जाने दें।'

'मै—आर्ये !'

'तू भी उपदेश सुन। चोरो को अपना कार्य करने दे।'

चोरो का नायक वहाँ उपस्थित था। वह कात्यायनी पर दृष्टि रख रहा था। किसी प्रकार की आहट मिलने पर वह चोरों को सकेत कर सकता था।

उसने कात्यायनी की बात सुनी। विस्मित हुआ। प्रभावित हुआ। कात्यायनी के घर की ओर अविलम्ब शीघ्रतापूर्वक भागा।

× × ×

'सुनो !' चोरो के प्रधान ने कहा।

'क्या है भाई !' चोरो ने पूछा।

'चोरी मत करो।'

'क्यों ?' सबने आश्चर्य से पूछा।

'कात्यायनी उपासिका है। ऐसे पवित्र शान्त हृदय के घर चोरी करना उचित नही है।'

'तो हम क्या करें ?'

'कार्य से विरत हो जाओ। जो जहाँ से लिया है वही रख दो।'

'और आप—?

'मै उपदेश सुनने जा रहा हूँ। विलम्ब हो रहा है।'

प्रधान सवेग उपदेश सुनने की तीव्र इच्छा से उलटे पैर भागा। चोरो ने जो चीज जहाँ से उठायी थी। पूर्ववत् लाकर रख दी।

× × ×

उपदेश समाप्त हुआ। धर्म-सभा समाप्त हुई। चोर प्रधान उपदेश से अत्यन्त प्रभावित हुआ था। वह चुपचाप आगे वढा। कात्यायनी के पैरों पर गिर पडा। बोला ·

'देवी ! मुझे क्षमा कर दो।'

'क्या बात है भणे !' कात्यायनी ने शान्त स्वर मे पूछा।

'देवी ! हमने आपके घर चोरी करवायी थी।'

'अच्छा भणे !' कात्यायनी के स्वर मे किंचित् मात्र उद्विग्नता नही थी।

उसे चोर प्रधान को देखकर क्रोध नही हुआ। शान्त बैठी रही। उनकी अद्‌भुत गम्भीरता, अनुद्वेगता, शान्ति देखकर चोर विस्मित हो गया था। दासी चकित थी। उसकी समझ मे, जैसे कुछ आ नहीं रहा था। दासी की आँखे उस चोर प्रधान को देखकर लाल हो गयी थी। वह शोर करना चाहती थी। पकड़वाना चाहती थी। कात्यायनी ने उसे विरत किया। कात्यायनी ने मृदु स्वर मे कहा :

'भणे ! क्षमा तो धर्म है।'

'नही देवी !' उसने देवी का पद जोर से पकड लिया।

कात्यायनी ने सस्नेह उसकी ओर देख कर कहा :

'भणे ! मै क्या करूँ ?'

'देवी ! आप क्षमा करती है ?'

'हाँ। भणे !'

'इस प्रकार नही।'

'तो—।'

'अपने पुत्र से मुझे प्रव्रज्या दिलाइये।'

दासी का आश्चर्य से मुख खुल गया। उसने कल्पना नही की थी। कुछ घडी पूर्व का चोर सब कुछ त्याग कर प्रव्रजित होने का उद्योग करेगा। उसकी क्रोधित आँखें सरल हो गयी। कात्यायनी के करुण नेत्र चोर प्रधान पर उठे।

उसने मृदु स्वर मे कहा :

'आवुस! उठो। तुम प्रव्रजित होगे।'

'और एक बात है देवी।'

'वह क्या भणे।'

'मेरे सब चोर साथी भी प्रव्रजित होगे। तस्कर कर्म का त्याग करेंगे। ससार वन्धन का त्याग करेंगे।'

'भणे! तुमने उत्तम निश्चय किया है।'

× × ×

सब चोर एकत्रित हुए। निश्चय किया। तस्कर कर्म का त्याग करेंगे। प्रव्रजित होगे। सब चोर प्रधान सहित प्रव्रजित हो गये। सोण ने माता के निवेदन पर सबको प्रव्रजित किया।

वे प्रव्रजित हुए। उपसम्पन्न हुए। पर्वत पर वृक्षो के तले अलग-अलग उन्होने आसन लगाया। श्रमण धर्म का पालन करने लगे।

भगवान् एक सौ बीस योजन दूर जेतवन मे थे। दिव्य दृष्टि से सव कुछ देख लिया। उन्होने भिक्षु सघ को उपदेश दिया :

'मैत्री युक्त, विहार करने वाला भिक्षु, हमारे शासन में प्रसन्न रहता है। समस्त सस्कारो का शमन करता है। सुखमय पद प्राप्त करता है।'

'भिक्षुओ! नाव मे आये हुए जल को वाहर फेको। वोझिल नाव हलकी हो जायगी। उसी प्रकार तुम राग-द्वेप से बोझिल हो। उन्हें उच्छिन्न करो। तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।

'आयुष्मानो! पांच को छिन्न, पॉच को त्याग, पाँच की भावना, पाँच के ससर्ग का अतिक्रमण करने वाला ओवो से पार हो जाता है।

'भिक्षुओ ! प्रमाद मत करो। ध्यान में लगो। काम गुणों में चित्त को मत लगाओ। प्रमत्त होकर लोहे के गोले को मत निगलो। तुम्हे इस दह्यमान दु:ख मे क्रन्दन न करना पडे।

'आवुस ! प्रज्ञा हीन को ध्यान नही होता। अध्यानी को प्रजा नही होती। ध्यान एवं प्रज्ञा युक्त निर्वाण के समीप पहुँचता है।

'भिक्षुओ ! शान्त चित्त, शून्य गृह स्थित, धर्म की उत्तमता मे विपश्यता करते हुए, अमानुपी रति प्राप्त होती है।

'आयुष्मानो ! ज्यो-ज्यो पॉच स्कन्धो की उत्पत्ति एव विनाश पर व्यक्ति विचार करता है उसे ज्ञानियो की प्रीति और प्रमोद स्वरूप अमृत की प्राप्ति होती है।

'आवुसो ! इन्द्रिय सयम, सन्तोप प्राप्ति मोक्ष की रक्षा प्रारम्भ मे करना उचित है। उसे शुद्ध जीवी, निरालस्य कल्याणकारी मित्र का सग करना चाहिए।'

भगवान् का उपदेश समाप्त हुआ। सघ ने प्राजलिभूत भगवान् को प्रणाम किया।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भगवान् के भिक्षु श्रावको, श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओं मे तिहत्तरवॉ तथा उपासिकाओं आठवा स्थान प्राप्त, अवन्ति कुररघर वैश्य कुल सोण कुटिकण्ण की माता, कात्यायनी अतीव प्रसन्नो मे, अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद २५ ७

A ı 26

AA : i : 245

विशाखा[1]

पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भय ॥

(प्रेम से शोक उत्पन्न होता है। प्रेम से भय उत्पन्न होता है। प्रेम से मुक्त को शोक नही होता, फिर भय किस लिए होगा ?)

ध० २१२

'देव ! पत्र आया है।'

महामात्य ने राजा विम्बसार से निवेदन किया।

'किसका पत्र है भणे ?'

'कौशल के राजा का।'

'क्या लिखा है ?'

'पढ़ूँ !' अमात्य ने पत्र खोला। पढ़कर बोला, 'कोशल राज की इच्छा है। उनके यहाँ अमित भोग वाला कोई कुल नही है। अतएव एक अमित भोगी कुल कोशल राज्य के लिये भेजने की कृपा कीजिए।'

'अच्छा—!' विम्बसार ने अमात्यो की तरफ उनके मत जानने की दृष्टि से देखा।

महामात्यों तथा अमात्यो ने परस्पर मन्त्रणा की।

'महाकुल को अपने राज्य से हम कैसे भेजेंगे ?'

---

(१) अनेक विशाखा का उल्लेख वौद्ध ग्रन्थ मे मिलता है। एक प्रियदर्शी बुद्ध के समय मे उनकी मुख्य उपासिका थी। दूसरी विशाखा ककुसन्ध बुद्ध माता थी। वह अग्गिदत्त की स्त्री थी। तृतीय ओक्काक की पाँच रानियों में से एक का नाम विशाखा था। मैत्रेय बुद्ध के समय मे एक विशाखा गृह त्याग करेगी।

'किन्तु राजा के पत्र का आदर करना आवश्यक है।'

'श्रेष्ठी पुत्र को भेजना उचित होगा।'

'कौन उपयुक्त होगा। यहाँ तो अनेक श्रेष्ठी है।' राजा ने पूछा।

'धनजय को भेजा जाय।'

'वह कौन है?'

'राजन्! मेडक श्रेष्ठी का पुत्र है।'

× × ×

कोशल पति ने धनंजय[2] श्रेष्ठी को श्रावस्ती से सात योजन दूर पर बसाया। स्थान का नाम साकेत[3] रखा गया। धनजय को श्रेष्ठी का पद दिया गया।

× × ×

मृगार श्रेष्ठी का पुत्र पूर्णवर्धन था। श्रावस्ती निवासी था। वह युवा था। उसके पिता ने उसे गार्हस्थ जीवन मे लगा देने का विचार

---

(२) धनंजय बुद्ध धार्मिक साहित्य में कम से कम ९ धनजय नामक व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। एक धनंजय काशी का राजा था। दूसरा कुरुदेश इन्द्रप्रस्थ का राजा था। तीसरा धनंजय कौरव्य कुरुओ का राजा था। चौथा धनजय युधिष्ठिर गोत्र कौरव्य राजा था। पाँचवाँ धनजय भी कुरु का राजा था। उसका मन्त्री विधुर पण्डित था। छठवाँ धनजय फुस्स बुद्ध का समर्थक था। सातवाँ धनंजय एक स्थान था जहाँ पद्म बुद्ध ने प्रथम उपदेश दिया था। आठवाँ धनजय नगर शिखी बुद्ध के समय मे था। धन-पालक गृहपति को धर्म मे प्रव्रजित किया था।
यह धनंजय भद्दिय नगर का श्रेष्ठी था। मेण्डक उसका पिता तथा चण्ड पदुमश्री उसकी माता थी। उसकी स्त्री का नाम सुमना देवी था। विशाखा और सुजाता उसकी दो कन्याएँ थी।

(३) साकेत : भगवान् बुद्ध के समय भारत के छ महानगरो में एक था। अन्य नगर किंवा पुरियाँ चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, कोशाम्वी तथा वाराणसी थी। कोसल की प्राचीन राजधानी था। साकेत के समीप अजन वन था। कोसल राज जनपद मे था! कोसल में श्रावस्ती के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण नगर था।

किया। अपने कुशल पुरुषो को आदेश दिया। श्रीमान् जाति कुल की कन्या पुत्र के विवाह निमित्त खोजो जाय।

× × ×

कुशल व्यक्तियो को श्रावस्ती मे कन्या नही मिली। वे साकेत पहुँचे।

विशाखा उस दिन पाँच सौ कुमारियो के साथ महावापी पर उत्सव मनाने के लिए गयी थी। कुशल पुरुषों को नगर मे अपने रुचि की कन्या नही मिली। वे नगर द्वार पर खड़े हो गये।

राजा प्रसेनजित के पास आने के लिए धनजय ने प्रस्थान मार्ग मे अपना शिविर वहाँ लगाया था। रात्रि मे वही विश्राम करना चाहता था। उसे मालूम हुआ कि वह स्थान कोसल राज मे श्रावस्ती से सात योजन पर है। उसने राजा प्रसेनजित से आज्ञा लेकर वहाँ नगर बसाया था। सम्भव है प्राचीन साकेत नगर के समीप दूसरा नवीन नगर धनजय ने बसाया हो। उसका सायंकाल सर्व प्रथम यहाँ शिविर लगा था अतएव इसका नाम साकेत एक मत के अनुसार पड गया। श्रावस्ती से प्रतिष्ठान के सीधे मार्ग पर साकेत पडता था। प्राचीन साकेत नगर एक मत है कि श्रावस्ती से भी प्राचीन था।

साकेत और श्रावस्ती के मध्य तोरण वत्थु था। राजा प्रसेनजित साकेत जा रहा था तो वहाँ एक रात्रि विश्राम किया था। वहाँ क्षेमा थेरी रहती थी। राजा उसके यहाँ गया था। साकेत और अयोध्या दो भिन्न स्थान निसन्देह थे।

साकेत के समीप अजन वन था। भगवान् ने वहाँ विहार किया था। साकेत के कालक श्रेष्ठी के पुत्र से अनाथ पिण्डक की कन्या चुल्ल सुभद्दा का विवाह हुआ था। साकेत वर्तमान अयोध्या नही था। दोनो नगरो का नाम बुद्ध ग्रन्थो मे आता है। अतएव भिन्न नगर थे। सम्भव है वे समीप ही रहे हो। एक मत है कि अयोध्या उस समय एक ग्राम मात्र था।

उन्नाव जिला मे सुजान कोट मे प्राप्त ध्वन्सावशेष स्थान सई नदी के तट पर साकेत का होना एक मत मानता है। फाइहान ने साकेत को कन्नौज से तेरह योजन दक्षिण पूर्व बताया है। वह इसका नाम 'शचि' देता है।

इसी समय वर्षा आयी। बड़ी-बडी बूँदे पडने लगी। विशाखा की सखियाँ भागी। शाला मे शरण ली। कुशल पुरुषो ने कन्याओ को ध्यान-पूर्वक देखा। उनके रुचि की कोई कन्या नही मिली।

विशाखा वर्षा से भयभीत नही हुई। सयम नही खोयी। सबके पीछे मन्द गति से शाला मे आयो। उसकी शालीनता मे अन्तर नही पड़ा।

कुशल पुरुषो का ध्यान विशाखा ने आकर्षित किया। उन्होने विचार किया, 'इतनो रूपवती दूसरी कन्या भी हो सकती है। किसी-किसी कन्या का रूप परिपक्व नारियल की तरह होता है। देखना चाहिए। वह मधुर भापिणी है या नही ?'

'अम्म !' वे बोले, 'तुम वृद्ध स्त्री की तरह मालूम होती हो।'

'क्यो तात !' विशाखा ने मृदु स्वर से मुसुकुराते हुए पूछा।

'तुम्हारी सखियाँ वर्षा भय से भाग कर, शाला मे शरण ली। तुम वृद्ध स्त्रियो की तरह पीछे-पीछे आयी। अपनो धोती भी भीगने की चिन्ता नही की।'

'तातो ! मेरे कुल में धोतियाँ दुर्लभ नही हैं।'

'अम्म ! इतनी मन्द गति से क्यो आयी ?'

'तातो ! तरुण कन्याएँ विक्रमोपीय पात्र तुल्य है। हाथ, पैर, क्षत होने पर, विकलागी को कौन पुरुष ग्रहण करना चाहेगा ? शरीर को सुरक्षित रखने की दृष्टि से सहसा नही दौड पडी।'

कुशल पुरुपो को विशाखा रुची। उन्होने मन्त्रणा की। उसके ऊपर घुमा कर माला फेंक दिया।

माला विशाखा के वक्षस्थल पर शोभित हुई। अपरिगृहीत से परि-गृहीत हो गयी। विनय पूर्वक भूमि पर बैठ गयी। उसे वस्त्र से घेर दिया गया। सखियो सहित पितृगृह लौटी। उसके पीछे-पीछे मृगार श्रेष्ठी के कुशल पुरुप चले।

× × ×

'तातो ! आपका निवास-स्थान कहाँ है।

धनजय श्रेष्ठी ने कुशल पुरुषो का सत्कार करते हुए पूछा।

'हम श्रावस्ती के नागरिक है।'

'तातो ! आपका परिचय !'

'हम मृगार श्रेष्ठी के आदमी हैं।'

'तातो ! आपके आगमन का प्रयोजन ?'

'आपके सुन्दर गृह में वय.प्राप्त कन्या है। इसी प्रयोजन से हमारे श्रेष्ठी ने आपकी सेवा मे भेजा है।'

'आपके श्रेष्ठी और मेरे धन में थोड़ा ही अन्तर है। जाति मे समानता है। हर बात में समानता मिलना कठिन है।'

'तो आज्ञा ?'

'अपने श्रेष्ठी से कहिए। हमें सम्बन्ध स्वीकार है।'

× × ×

'तात !' कुशल पुरुषो ने मृगार श्रेष्ठी से निवेदन किया, 'रुचि अनुसार कन्या मिल गयी है।'

'कहाँ मिली ?

'साकेत मे धनंजय श्रेठी की कन्या है। उसका नाम विशाखा है।'

'ओह ! वह तो महाकुल है !! अभी शासन भेजो।'

शासन भेजा गया। प्रतिशासन धनंजय के यहाँ आया। बात पक्की हो गयी।

× × ×

मृगार श्रेष्ठी कोशल राज के यहाँ गया। करबद्ध निवेदन किया।

'देव ! इस सेवक के पुत्र पुण्ड वर्धन के साथ, धनंजय श्रेष्ठी की कन्या विशाखा का विवाह सम्बन्ध स्थिर हुआ है।'

'बहुत उत्तम हुआ श्रेष्ठी।'

'देव ! साकेत जाने की अनुमति प्रदान करें।'

'श्रेष्ठी ! प्रसन्नता से जाओ।'

श्रेष्ठी ने और कुछ नही कहा। राजा ने मुस्कुराते हुए पूछा :

'श्रेष्ठी ! क्या हमे भी विवाह मे सम्मिलित होना होगा ?'

'राजन् ! हमारा इतना भाग्य कहाँ ?'

राजा ने श्रेष्ठो को प्रसन्न देखा। उसे और प्रसन्न करने की दृष्टि से बोले :

'श्रेष्ठी ! मै भी चलूँगा।'

श्रेष्ठी ने राजा के चरण कमल का स्पर्श किया।

× × ×

धनजय ने सुना। मृगार श्रेष्ठी कोशलराज के साथ आ रहा है। वह दूर तक आगवानी के लिये आया। राजोचित आदर-सत्कार किया। राजा को अपने निवास स्थान पर ठहराया। श्रेष्ठी ने सबका यथोचित स्वागत किया। सभी प्रसन्न थे। किसी को शिकायत का मौका नही मिल सका।

विवाह सम्पन्न हुआ। परन्तु बारात बिदा नही हुई।

× × ×

एक दिन राजा ने धनजय को शासन भेजा।

'चिरकाल तक कन्या अपने पितृ गृह में नही रह सकती। चिरकाल तक आगत सज्जनो का सत्कार नही किया जा सकता। कन्या की बिदाई का लग्न ठीक करना आवश्यक है।'

धनंजय ने राजा के शासन का प्रति उत्तर शासन द्वारा भेजा :

'वर्षाकाल आ गया है। यात्रा के लिये चार मास चलना वर्जित है। आपके पक्ष के जितने लोगो को जो कुछ चाहिए, हम उसका यथोचित प्रबन्ध कर देंगे।'

× × ×

बारात चार मास ठहर गयी। साकेत मे प्रतिदिन महोत्सव होता था। तीन मास व्यतीत हो गये। विशाखा का महालता अलकार वन कर तैयार नही हुआ था।

धनंजय अलकार की तैयारी तक बारात रोक रखना चाहता था। सेवको से राय लिया। वे वोले—'और व्यवस्था ठीक है। केवल लकड़ी की कमी राजा के बलकाय के लिए है।'

'तातो ! जाइये, हस्तिशाला, अश्वशाला, गोशाला तोड डालिए। उसकी लकड़ी से भोजन वनाइए।'

पन्द्रह दिन तक लकड़ी का इस प्रकार काम चला। कामकरो ने पुनः निवेदन किया :

'भन्ते ! लकड़ी समाप्त हो चुकी है।'

'अच्छा ! इस समय लकड़ी का मिलना सम्भव नही है। दुस्स कोष्ठ-गार खोलो। बड़ी-बडी साड़ियो (साटक) को निकाल लो। उनकी बत्ती बनाओ। तेल मे उन्हे तरल करो। उन्ही पर भोजन बनाओ।'

नव करोड़ रुपयो का महालता प्रसाधन तैयार हो गया। धनजय ने सभी श्रेणियो को आमन्त्रित किया। राज सेना के मध्य पहुँचा। वहाँ आठ कुटुम्बियो को जामिन रखकर कहा :

'यदि ससुराल मे कन्या का अपराध हो, तो उसका परिशोधन कीजियेगा।'

उसने कोशल राज, मृगार सेठ तथा बारातियो का आदर-सत्कार किया। यथासाध्य भेट देकर विदा किया।

× × ×

श्रावस्ती नगर द्वार पर रथ पहुँचा। विशाखा ने विचार किया। आवृत रथ मे चलना चाहिए अथवा अनावृत। उसने निश्चय किया। वह खुले रथ पर चलेगी। नगरवासी उसके महालता प्रसाधन का अद्भुत सौन्दर्य देखेगे।

वह खुले रथ पर आरूढ हुई। वह अपने रूप तथा अलंकार का प्रदर्शन करती चली। विशाखा की सम्पत्ति देखकर श्रावस्ती के लोगो ने कहा :

'यह विशाखा है। जैसा रूप है। वैसी ही सम्पत्ति है।'

विशाखा ने महान् ऐश्वर्य के साथ पति के विशाल प्रासाद मे प्रवेश किया।

बारातियो ने धनजय सेठ तथा विशाखा की बडी बड़ाई की। नगर मे बारात के स्वागत, सत्कार तथा भेट की चर्चा बहुत दिनों तक होती रही। नगर मे सर्वार्थक अन्य कुलो में भिजवाया गया। जिस दिन विशाखा श्रावस्ती पहुँची थी उसी दिन रात्रि मे एक आजन्म अश्वी को गर्भ वेदना हुई। विशाखा ने दासियो को दण्ड दीपिका (मशाल) तैयार करने के लिए कहा। दण्ड दीपिका के साथ अश्वशाला मे पहुँची। अश्वी को स्नान कराया। तेल से मर्दन करवाया। तत्पश्चात् लौट आयी।

× × ×

एक सप्ताह तक नगर मे खूब उत्सव होता रहा। मृगार श्रेष्ठी ने आठवे दिन तथागत के अतिरिक्त अन्य नग्न महन्तो को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। श्रेष्ठी का घर नग्न श्रमणो से भर गया।

अर्हतो के आसन ग्रहण करने पर मृगार श्रेष्ठी ने वहू विशाखा को बुलाया। उसे सन्देश भेजा। आकर आर्हतो की वन्दना करे।

विशाखा आयी। उसने नग्न श्रमणो को बैठे देखा। उसे आश्चर्य हुआ। उसने कल्पना नही की थी। श्रमण इस प्रकार नग्न होगे। उसे ग्लानि हुई। व्यर्थ ही उसके श्वसुर ने लज्जा भय विवर्जितों की वन्दना करने के लिए वुलाया।

विशाखा उन्हे देखते ही धिक-धिक कहती लौट गयी। नग्न श्रमण कुपित हुए। उन्होने मृगार श्रेष्ठी से कठोर वाणी मे कहा :

'क्या तुम्हे दुनिया मे और कन्या नही मिली ? यह श्रमण गौतम की श्राविका इस पवित्र गृह मे प्रवेश कैसे पा सकी ?'

'इस गृह से इसे बाहर करो। महा कुलक्षणी है।' मृगार चुप था। वे अत्यन्त क्रूर वाणी मे गर्ज कर बोले .

मृगार सेठ के सम्मुख धर्म सकट उपस्थित हो गया। विशाखा महा-कुल की कन्या थी। उसे वह निकाल नही सकता था। उसने उन नग्न श्रमणो से निवेदन किया

'आचार्य ! यदि बालक ज्ञात किवा अज्ञात रूप से कुछ कहे तो उस पर ध्यान नही देना चाहिए। आप लोग उसे क्षमा कीजिए।'

नग्न श्रमण सुस्वादु भोजन कर चले गये।

मृगार एक विशाल आसन पर बैठ गया। सुवर्ण पात्र मे निर्जल खीर रखा था। सुवर्ण कलछुल से निकाल कर खाने लगा।

उसके भोजन के ही काल मे एक पिण्डचारी भिक्षु पिण्डचार करते हुए आया। श्रेष्ठी के द्वार पर खड़ा हो गया। भिक्षा माँगा। विशाखा ने भिक्षु को देखा। वह आड़ लेकर खडी हो गयी। ताकि उसका श्वसुर उसे देख न सके।

श्रेष्ठी ने स्थविर को देखकर भी नही देखा। मुख नीचा किये पायस ख़ाता रहा।

विशाखा लज्जित हुई। श्वसुर ने भिक्षु का आदर नही किया। भिक्षा देने का संकेत नही किया। वह कुछ क्रोधित हो गयी। भिक्षु के समीप आयी। श्रद्धापूर्वक बोली :

'भन्ते ! मेरा श्वसुर पुराना खा रहा है। कृपया आप आगे वढ़िए।'

मृगार श्रेष्ठी पुराना शब्द सुनते ही कुपित हो गया। भोजन से हाथ खीच लिया।

'अरे ! इस पायस को यहाँ से हटाओ। इस विशाखा को वाहर निकालो। मगल गृह मे अशुचि खाद्य मुझे खिलाने की वात करती है।'

गृह के सभी दास-दासी विशाखा के कहने में थे। कोई उसे वाहर निकाल नही सका। कोई उसे कह भी नही सका। वाहर निकल जाये। विशाखा वात समझ गयी। बोली :

'मैं वात से नही निकलने वाली हूँ। मुझे पनिहारिन की तरह नही इस घर मे लाये हो। मेरे माता-पिता जीवित हैं। उनकी कन्या इसी तरह वाहर नही निकलेगी।'

'वाह !—क्या कहती है ?' मृगार झल्ला उठा।

'तात ! इसीलिए विदाई के समय आठ कुटुम्बियों को मेरे पिता ने जामिन रखा था। उन्हे वुलाकर मेरे दोप-अदोप का निर्णय कराइए।'

'ठीक। यही होगा।'

× × ×

श्रेष्ठी ने आठो कुटुम्बियों अर्थात् पंचो को आमन्त्रित किया। उनसे सब घटना कही। पचो ने पूछा :

'अम्म ! क्या तुमने अशुचि खाने की बात कही थी ?'

'तातो ! बात कुछ और है। द्वार पर एक भिक्षु खडा था। उसने भिक्षा मांगी। यह पायस खा रहे थे। उठे नही। मैने निश्चय कहा। मेरा श्वशुर पुराना पुण्य खा रहा है। इस शरीर द्वारा पुण्य नही करता।'

'आर्यं ! यह तो दोष नही है।'

'आर्यो ! बात और है।'

'क्या ?'

'जिस दिन यह आयी उसी दिन से मेरे पुत्र का ध्यान छोड कर अपनी इच्छानुसार चाहे जहाँ चली जाती है।'

'अम्म ! क्या यह ठीक है ?'

'नही। बात दूसरी है। यहाँ एक अश्वी को प्रसव वेदना हुई। दण्ड-दीपिका मँगायी। प्राणी के दु.ख को देखकर कौन चुपचाप बैठा रह सकता है। दासियों सहित अश्वशाला गयी। अश्वी का उपचार करवाया।'

'आर्य ! विशाखा ने तुम्हारे घर मे दासियो के न करने योग्य भी कार्य किया। उसे क्यों दोष देते हो ?'

'आर्यो और बात है। जिस दिन बारात की विदाई थी। उस दिन इसके पिता धनजय ने साकेत मे कहा था। अग्नि घर के बाहर नही ले जाना चाहिए। क्या पड़ोसियो का घर बिना अग्नि के रह जायगा ?'

तातो ! मेरे पिता ने इस अग्नि के विषय मे नही कहा था। उनके कहने का तात्पर्य यह था। सास तथा घर की स्त्रियो मे जो गुप्त बातें होती है। उन्हे दास-दासियो से नही कहना चाहिए। बात बाहर जाती है। कलह बढता है।'

'आर्यो ! यह बात नही है। इसके पिता ने कहा था। बाहर की अग्नि भीतर नही लानी चाहिए। भीतर की अग्नि यदि बुझ जाय तो बाहर से बिना अग्नि लाये कैसे काम चल सकता है ?'

'अम्म ! क्या यह बात है ?'

'तातो ! इसका तात्पर्य और है। इस अग्नि के विषय में नही कहा था। उन दोषो के विषय मे कहा था। जो दास, कर्मकर तथा सेवक करते है। उन्हे घर के आदमियो से नही कहना चाहिए।'

'और बात है !' मृगार ने कहा, 'यह कहती है। देते है उन्ही को देना चाहिए। यह इसके दहेज का गर्व कहवाता है।'

'अम्म !' क्या ऐसी बात है ?'

'तातो ! मैंने कहा था। जो नही देते है। उन्हे नही देना चाहिए। जो लेकर नही लौटाते। उन्हे नही देना चाहिए। देने वाले को देना चाहिए। न देने वालों को भी देना चाहिए। यह मैंने इसलिए कहा था कि गरीब, अमीर, जाति मित्रो का चाहे वे प्रतिदान दे या नही उन्हे देना

ही चाहिए। सुख से बैठना चाहिए। पिता ने कहा था। सास-श्वशुर को देखकर उठने के स्थान पर नही बैठना चाहिए। सुख से खाना चाहिए। यह भी कहा था। यह इसलिए कहा था। सास-श्वशुर तथा स्वामी के भोजन कराने के पूर्व नही खाना चाहिए। सबको भोजन मिलता है या नही। इस बात को जानकर अनन्तर भोजन करना चाहिए। सुख से लेटना चाहिए भी कहा था। इसलिए कहा था कि, सास-श्वशुर, स्वामी के शयन पूर्व शय्या पर नही सोना चाहिए। उनकी सेवा आदि करने के पश्चात् सोना चाहिए।'

'अम्म ! तुमने कहा था अग्निपरिचरण करना चाहिए ?'

'हाँ कहा था। सास-श्वशुर स्वामी को अग्निपुज तुल्य, नागराज के समान देखना चाहिए। इस दृष्टि से कहा था।'

'नही-नही। इसमें चाहे जितने गुण हो, इसका पिता अन्तर्देवता को नमस्कार करवाता है।'

'अम्म !' यह क्या बात है ?'

'मेरे पिता ने यह विचार कर कहा था। अपने गृहस्थी मे जो कुछ भोजन हो उसे सर्वप्रथम द्वार पर आये प्रव्रजितों को देखकर तत्पश्चात् खाना चाहिए।'

'महाश्रेष्ठी ! शायद आपको प्रव्रजितों को देखकर कुछ न देना ही रुचिकर लगता है।'

श्रेष्ठी चुप हो गया।

'श्रेष्ठी ! क्या कन्या के और भी कोई दोष है।'

'आर्यो ! हमें और कुछ नही दिखाई देता।'

'यह निर्दोष है। अकारण किसी को कष्ट नही देना चाहिए।'

श्रेष्ठी चुप था।

'इसे व्यर्थ घर से निकालना ठीक नही है।'

'तातो !' विशाखा ने कहा, 'श्वसुर ने कहा था। मै निकल जाऊँ। उस समय मेरा बहिर्गमन उचित नही था। किन्तु—'

'किन्तु क्या अम्म ?'

'मेरे पिता ने दोष-अदोष का निर्णय आपको दिया था। आपने मुझे निर्दोष बताया। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी। यहाँ से प्रस्थान करूँगी।'

'अम्म!—'

'धन्यवाद! दासी रथ तैयार कराओ। मै जाऊँगी।'

'अम्म!' श्रेष्ठी ने कहा, 'मैंने अनजाने बातें कही थी। मुझे क्षमा करो।'

'तात! क्षमा—आपका क्षन्तव्य दोष क्षमा करती हूँ। परन्तु—।'

'परन्तु क्या?' श्रेष्ठी ने पूछा।

'मेरा पितृ कुटुम्ब बुद्धधर्म मे अत्यन्त अनुरक्त है। भिक्षु संघ के बिना हमारा रहना कठिन है। यदि मुझे यहाँ बुद्ध सघ की सेवा का अवसर मिलेगा तो रहूँगी।'

'अम्म! अपनी इच्छानुसार सघ की सेवा करो। मुझे उसमे कोई आपत्ति नही होगी।'

× × ×

दूसरे दिन विशाखा ने भगवान् तथा सघ को घर पर भोजनार्थ निमन्त्रित किया। नग्न श्रमणो को यह बात मालूम हुई। वे मृगार का घर घेर कर बैठ गये। किन्तु घेरना व्यर्थ हुआ।

विशाखा ने समय पर अपने श्वशुर को बुलाया। निवेदन किया। वह अपने हाथो तथागत तथा भिक्षु सघ को भोजन परोसें। मृगार शान्त था। उसने भोजन परोसा।

विशाखा ने पुन. अपने श्वशुर को शासन भेजा। भगवान् का उपदेश सुनें। वह उपदेश सुनने चला। नग्न श्रमणो ने उसे घेर लिया। बोले :

'अरे! तुम श्रमण गौतम का उपदेश सुनोगे? महा अनिष्ट होगा।'

'मै तो जाने के लिये कह चुका हूँ'

'अच्छा। कनात के बाहर बैठकर सुन लेना। भीतर जाना ठीक नही है।'

मृगार सेठ कनात के बाहर जाकर बैठ गया। भगवान् का उपदेश सुना। उपदेश समाप्त होने पर वह कनात हटाकर भीतर गया। उपदेश से प्रभावित हो गया था। अपने भगवान् की चरण वन्दना की।

उसने शास्ता के समीप विशाखा को देखा। उसने कहा—'अम्म! आज से तू मेरी बहू नही है। माता है।'

मृगार श्रेष्ठी ने विशाखा को माता के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। इस दिन से विशाखा मृगार माता नाम से प्रसिद्ध हुई।

× × ×

भगवान् जेत वन मे विहार करते थे। मृगार माता विशाखा जेतवन मे आयी। भगवान् का अभिवादन और वन्दना की। एक ओर बैठ गयी। भगवान् ने उसे धार्मिक कथाओं से समुत्तेजित किया। संप्रशसित किया। विशाखा ने निवेदन किया :

'भन्ते! कल हमारे निवास-स्थान पर भोजन ग्रहण करें।'

तथागत ने मौन द्वारा स्वीकार किया। स्वीकृति प्राप्त कर मृगार माता ने अभिवादन किया। वन्दना की। चली गयी।

किन्तु उस दिन उस रात्रि के बीतने पर महामेघ की वृष्टि हुई। भगवान् ने कहा :

'यह वृष्टि चारो ओर हो रही है। भिक्षुओ! मेघ स्थान करो।'

'भन्ते! आज्ञा।'

भिक्षुओ ने चीवर उतार दिया। नग्न हो गये। मेघ स्नान करने लगे।'

मृगार माता की दासी भोजन की सूचना देने आयी। उसने आराम मे भिक्षुओं को नही देखा। लौटकर विशाखा से कहा–'भिक्षु आराम में नही है। आजीवक वर्षा स्नान कर रहे है।'

विशाखा समझ गयी। भिक्षु वर्षा स्नान कर रहे थे। उसने पुनः दासी से कहा—'तू जा देख।'

भिक्षु गात्र को शीतल कर चीवर सहित अपने आराम में चले गये थे।

दासी लौटकर आयी। बोली, 'भिक्षुगण आराम में नहीं है। आराम सूना है।'

विशाखा समझ गयी। गात्र को शीतल कर भिक्षु अपनी कोठरियों में चले गये होगे। उसने दासी से कहा—'तू जा। उन्हे बुला ला। वे वही होगे।'

दासी गयी। तथागत ने आज्ञा दी—'पात्र चीवर सहित तैयार हो जाओ। भोजन का समय उपस्थित हो गया है।'

'भन्ते!' सब तैयारी करने लगे।

× × ×

भगवान् पहुँचे। भिक्षु संघ के सहित भिक्षा प्राप्त किया। तत्पश्चात् मृगार माता विशाखा एक तरफ बैठ गयी।

'भन्ते!' मृगार माता ने निवेदन किया।

'विशाखे! क्या कहना चाहती हो?'

'भन्ते! मैं एक वर आपसे माँगती हूँ।'

'विशाखे! तथागत वर से परे हैं।'

'किन्तु भन्ते, जो निर्दोष है।'

'अच्छा बोलो विशाखा।'

'मैं सघ को यावत् जीवन वर्षा की लुगी देनी चाहती हूँ। आगन्तुक को भोजन देना चाहती हूँ। यात्रा पर जाने वालो को भोजन देना चाहतो हूँ। बीमार को भोजन देना चाहती हूँ। रोगी को औषधि देना चाहती हूँ। सर्वदा यवागू अर्थात् खिचड़ी देना चाहतो हूँ। भिक्षुणी सघ को उदकसाटी देना चाहती हूँ।'

'यह आठ वर तुम क्यो माँगना चाहती हो?'

'भन्ते! नग्न रहना घृणित है। धर्म विरुद्ध है। वर्षा स्नान मे भिक्षुओ ने नग्न स्नान किया। अतएव उन्हे यावज्जोवन वार्षिक साटी देना चाहती हूँ। वे उन्हे पहन कर स्नान करें।'

'और—'

'आगन्तुक भिक्षु श्रान्त गलियो मे भिक्षाचार करते हैं। अतएव आगन्तुक मेरा भोजन ग्रहण कर वोथी कुशल, गोचर-कुशल, श्रान्ति हीन होकर, पिण्डचार करें।'

'और— ?'

'गमिक भिक्षु विकाल में श्रान्त हो जाते है। भिक्षा की खोज में तथागत का साथ त्याग देते हैं। उन्हें मै भोजन देना चाहती हूँ।'

'और ?'--

'रोगी को सुचारु ढग से भोजन न मिलने पर व्याधि की वृद्धि होती है। मृत्यु होती है। मेरा भोजन ग्रहण करने से उनकी व्याधि नही बढेगी। वह मर न सकेगे।'

'और ?'

'रोगी के परिचायक भिक्षु विलम्ब से रोगी के लिए भोजन लाते हैं। उपवास हो जाता है। अतएव रोगी के परिवार के भोजन की व्यवस्था होने पर यह कष्ट दूर हो जायगा।

'और— ?'

'औपधि के अभाव मे रोगी का कष्ट बढता है। उसकी मृत्यु होती है। अतएव मैं रोगी की औपधियो की व्यवस्था करूँगी।'

'और— ?'

'आपने खिचडी की प्रशंसा की थी। उससे दश गुणो का होना अन्धक विन्द मे बताया था। मै जीवन भर सघ को निरन्तर खिचडी देना चाहती हूँ।'

'और— ?'

'अचिरवती नदी मे भिक्षुणियाँ एक साथ वेश्याओ के साथ नग्न स्नान करती है। वेश्याये उन्हे ताना मारती है—'तुम तरुणी हो। ब्रह्मचर्य सेवन से अभी क्या लाभ है। काम भोगो। वृद्धावस्था मे ब्रह्मचारी बनना। भिक्षुणिया वेश्याओ की बात सुनकर चुप हो जाती हैं। स्त्रियो को नग्नता उचित नही है। उन्हे मै वस्त्र देना चाहती हूँ।'

'विशाखा! जैसी तुम्हारी इच्छा।' तथागत ने विचार कर उत्तर दिया।

× × ×

उत्सव का दिन था। लोग मण्डित थे। धर्म श्रवणार्थ विहार मे जा रहे थे। विशाखा ने निमन्त्रित स्थान पर भोजन किया। महालता अल-कार से अलकृत हुई। विहार मे पहुँची।

अलकार उतार कर दासी को दिया। विचार किया। लौटते समय उन्हे वह पुन: पहन लेगी। परिषद् में अलकार पहनकर जाना उचित नही समझा। तत्पश्चात् वह उपदेश सुनने चली गयी।

धर्म श्रवण पश्चात् वह उठी। दासी सहित चली। दासी महालता अलकार लेना भूल गयी।

परिषद् तथा सभा मे भूली वस्तु आनन्द सम्हालते थे। महालता मिली। तथागत के पास ले जाकर बोले :

'विशाखा महालता भूल गयी है।

'एक ओर रख दो '

आनन्द ने उसे पीढी के पास रख दिया। विशाखा अपनी सुप्रिया के साथ विहार मे आगन्तुक गमिक तथा रोगियो को देख रही थी।

दूसरे द्वार से वह वाहर निकली। सुप्रिया से वोली :

'अम्म ! महालता ला। पहन लूँ।,

'अरे– ?'

सुप्रिया चकित हुई। अपना शरीर खोजने लगी। अपना वस्त्र झाड़ने लगी। व्यग्र होकर वोल उठी :

'कही भूल गयी।'

'जा खोज ला।'

सुप्रिया व्यग्र चली। विशाखा ने उसे पुकार कर कहा :

'यदि आयुष्मान् आनन्द ने ले लिया हो तो उसे मत लाना।'

सुप्रिया व्यस्त व्याकुल महालता खोजने लगी। आनन्द ने उसे देखा। मुसकुरा कर पूछा :

'क्या कुछ खो गया है ?'

'आवुस ! आर्या महालता भूल गयी है।'

'वह सीढी के पास मैने रख दिया है। ले लो।'

'आर्य ! आपके हाथों का स्पर्श हो गया है।'

'तो क्या हुआ ?'

आर्या नही लेंगी।'

'क्यो ?'

'उनके धारण करने के अयोग्य हो गया है।'

वह खाली हाथ लौट गयी। विशाखा ने खाली हाथ आते देखकर पूछा :

'अम्म ! क्या है ?'

सुप्रिया ने सब बातें बता दी। विशाखा बोली :

'आनन्द को उसे रखने मे कष्ट होगा। उसे ले आ। उससे कुछ नवीन चीज यहाँ बनवा दूँगी।'

सुप्रिया दौड़ी-दौडी गयी। महालता सीढी के समीप रखी थी। उसे उठाया। लौट पड़ी।

× × ×

'इसका क्या मूल्य होगा।' विशाखा स्वर्णकारों को बुलाकर महालता का मूल्याकन करवाने लगी।

'नव करोड़ इसका मूल्य है। इसकी बनवाई एक लाख होगी।'

'इसे बेच दो।'

'किन्तु इतना मूल्य देकर यहाँ कोई खरीदने वाला नही है।'

'बाहर बेच दो।'

'वहाँ भी कोई खरीद नही सकेगा।'

विशाखा चिन्तित हो गयी। पुन: बोली :

'ठीक है। मै ही खरीदती हूँ।'

× × ×

विशाखा ने ९ करोड एक लाख मुद्रा गाड़ियों पर लदवायी। उसे विहार मे लेकर गयी। भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गयी। निवेदन किया :

'भन्ते। मैने महालता बेच दिया है। उसे आयुष्मान् आनन्द ने स्पर्श कर दिया था। अतएव सघ को दे रही हूँ। उसका क्या उपयोग किया जाय।'

'विशाखे ! पूर्व द्वार पर सघ के लिए निवास-स्थान बनवा दें।'

'भन्ते। जैसी आज्ञा।'

विशाखा ने ९ करोड़ की भूमि खरीदी। ९ करोड़ लगाकर भवन निर्माण कराया। दो तल का प्रासाद बनवाया। भूमितल पर ५०० गर्भ अर्थात् कोठरियाँ बनवायी। ऊपरी तल पर ५०० गर्भ बन गये। वह प्रासाद एक सहस्र गर्भो से सुसज्जित हो गया।

× × · ×

भगवान् चारिका करने पुनः श्रावस्ती मे पधारे। विशाखा संघाराम और विहार निर्माण करा रही थी। निर्माण समाप्तप्राय था। शास्ता का आगमन विशाखा ने सुना। वह भगवान् की अगवानी के लिए गयी। उसने सुना था। भगवान् जेतवन पधारेगे।

विशाखा ने तथागत के पास पहुँचकर निवेदन किया :

'भन्ते! चातुर्मास मेरे सघाराम मे विहार करो।'

'क्यो विशाखे ?'

'मै प्रासाद उत्सव करूँगी।'

विशाखा ने संघ के भी भिक्षा का प्रबन्ध कर दिया। वही एक भिक्षादान देती थी।

× × ×

एक दिन विशाखा की सहायिका अर्थात् सखी सहस्र मूल्य का एक वस्त्र लेकर आयी। उसने उसे अमूल्य समझा था। उसने विशाखा से निवेदन किया :

'सहायिके! मै यह वस्त्र तुम्हारे यहाँ बिछाना चाहती हूँ।'

'अवश्य बिछाओ सखी।'

'कहाँ बिछाऊँ ?'

'प्रासाद के दोनो तल तथा सहस्र कोठरियो मे जहाँ चाहे वहाँ बिछा दो।'

सहायिका वस्त्र लेकर चली। उसे कही भी उससे कम मूल्य का वस्त्र वहाँ बिछा दिखाई नही दिया। उसे दुःख हुआ। उसका वस्त्र प्रासाद मे स्थान नही पा रहा था। वह पुण्य की भागी नही बन पा रही थी।

सहायिका अत्यन्त दु:खी हुई। उसकी आँखें भर आयी। आनन्द ने उसे विकल देखा। उससे पूछा :

'देवी ! क्यो दु:खी हो ?'

'मै वस्त्र बिछाना चाहती हूँ। स्थान नही है। कहाँ बिछाऊँ ?'

'चिन्ता मत कर बहन !' आनन्द ने कहा। सहायिका प्रसन्न हो गयी। वस्त्र आनन्द की तरफ बढाया। आनन्द ने कहा :

'बहन ! इसे सीढी और पैर धोने के मध्य चौपत कर बिछा दो।'

'अरे— ।'

'हाँ ।' यह पाँवपोश का काम देगा। जो भिक्षु पाद प्रच्छालन कर भीतर प्रवेश करेंगे, वे सर्व प्रथम तुम्हारे वस्त्र पर पद रखेंगे। तुम्हे प्रत्येक भिक्षु की सेवा का फल प्राप्त होगा।'

विशाखा ने उस स्थान के वस्त्र का ध्यान नही किया था। वह बडे आयोजन मे लगी थी। छोटी योजना का ध्यान नही था।

× × ×

भगवान् ने अपना ३४वाँ वर्ष श्रावस्ती मे व्यतीत किया। मृगार माता के प्रासाद पूर्वाराम मे विहार कर रहे थे।

विशाखा मृगार माता का प्रिय मनाय नाती मर गया। वह भीगे केश, भीगे वस्त्र भगवान् के समीप आयी। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया।

'विशाखे ! मध्याह्न काल मे भीगे वस्त्र, भीगे शरीर कहाँ से असमय आ रही हो ?'

'भन्ते ! मेरी नतिनी मर गयी है। इसीलिए भीगे वस्त्र तथा भीगे शरीर आ रही हूँ।'

'विशाखा ! श्रावस्ती मे जितने लोग है, उतना पुत्र और नाती की तुम कामना करोगी ?

'हाँ ! भगवन् ।'

'श्रावस्ती मे प्रतिदिन कितने प्राणी मरते है।'

'यहाँ दस, नव, आठ, सात, छः, पाँच, चार, तीन, दो, एक प्रतिदिन मरते है।'

'क्या कोई ऐसा दिन है जब कोई न मरता हो ?'

'नही भन्ते ।'

'तो क्या तुम सर्वदा भीगे वस्त्र, भीगे केश रह सकोगी ?'

'नही भन्ते ! मेरे जितने पुत्र, प्रपोत्र हैं वे ही पर्याप्त है ।'

'विशाखे ! जिनके एक सौ प्रिय होते हैं । उनके एक सौ दु:ख होते हैं । जिनकी पुत्र-पौत्रो की क्रमशः कमी होती जाती है । उनके क्रमशः दु:ख कम होते जाते है ।'

'भन्ते— ।'

'विशाखे ! जिन्हे प्रिय नही होता उन्हे दु:ख नही होता । वह शोक-रहित है । रागरहित है । उपायास रहित है ।'

'भन्ते !'

'विशाखे ! लोक मे प्रिय के कारण नाना प्रकार के शोक, दु:ख तथा परिवेदना होती है । प्रिय के अभाव मे उनका भी अभाव हो जाता है । वही सुखी है । वही शोक रहित है । जिसे इस लोक मे कुछ प्रिय नही है । जो चाहता है कि अशोक रहे, निर्मल रहे, उसे इस लोक मे प्रिय नही बनाना चाहिए ।'

× × ×

भगवान् का चालीसवाँ वर्षावास था । श्रावस्ती के मृगार माता के पूर्वाराम मे भगवान् विहार कर रहे थे ।

उस समय विशाखा का एक काम राजा प्रसेनजित् से अटका था । प्रसेनजित् कुछ निर्णय नही कर पाता था ।

मध्याह्न काल था । विशाखा भगवान् के पास आयी । अभिवादन वन्दना कर, एक ओर बैठ गयी । भगवान् ने पूछा

'विशाखे ! इस असमय मे ?'

'भन्ते ! आज्ञा हो तो कहूँ ।'

'कहो विशाखे ।'

'मेरा काम राजा प्रसेनजित् से अटका है ।'

भगवान् ने विशाखा का आशय समझ कर उदान कहा :

'दूसरे के अधीन जो कुछ है। वह सब दु.ख है। लोग सामान्य बातो से पीडित होते है। काम भोगादि योगो का अतिक्रमण करना कठिन है।'

× × ×

—और भभवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावक-श्राविकाओं तथा उपासक-उपासिकाओं की तालिका मे सड़सठवाँ तथा उपासिका श्राविकाओ मे द्वितीय स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती निवासी विशाखा मृगार माता दायिकाओ में अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ :

अगुत्तर निकाय १ . १४

थेरी गाथा १३, उदान १३

धम्मपद १६ : ३

अ० नि० अ० क० १ : ७ : २

महावग्ग ३ . ३ ' ८

८ ४ ५-६

८ . ५ . ३

१० ' २ २

चुल्लवग्ग ६ . ५ १६

चुल्लवग्ग ६ ' १

उदान ८ ८

सयुत्त निकाय ३ २ ' १

८ ७

२१ २ ' ३ १०

४५ : ५ १

४६ ' ५ ' ५

४९ २ . ४

A · i · 26; 205; iv · 91; 269; 348.
DhA : i : 395, 397, 403, 384, 409; 128, 100, 416;
iii : 278, 58.
Udan : ii · 9.
A A : 219, 313; ii : 724.
Ud : viii : 8.
J : ii : 347, iv : 144; 315; v . ii.
Vin : i : 153, 296, ii : 129.
DA : iii : 746

राष्ट्रपाल

कुरुदेश[1] था। उसमे थुल्लकोट्ठित[2] निगम (कस्वा) था।

उसका कुछ समृद्धशाली था। भोग की सभी सामग्रियाँ उपलब्ध थी। अल्प युवाकाल मे ही नारियो के मध्य वह पड गया था। उसके

(१) कुरुदेश : बुद्ध काल में १६ महाजनपदो में एक महाजनपद था। वहाँ के राजकुमारो के नाम पर इसका नाम कुरु पड गया था। बुद्धघोप का मत है कि मान्धाता जव चार महाद्वीपो का भ्रमण कर जम्बूद्वीप में लौट आये तो उनके साथ वहुत से उत्तर कुरु के लोग थे। वे जम्बूद्वीप मे आवाद हो गये। जहाँ वे आवाद हुए थे उसे कुरुत्थ कहते थे। उसमे अनेक नगर तथा ग्राम थे। पूर्व वौद्ध काल में पाचाल, कुरु तथा केकय राज्यो का महत्व था। परन्तु वुद्ध के समय उसका विशेप महत्व नही रह गया था। जातको से पता चलता है कि कुरुदेश ४०० योजन विस्तृत था। उसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी। इन्द्रप्रस्थ सात योजन क्षेत्र मे विस्तृत था। इन्द्रप्रस्थ के राजा युधिष्ठिर गोत्र के थे।

कुरु जनपद सूरसेन तथा मत्स्य जनपद के उत्तर में था। पाचाल जनपद के पश्चिम मे था। कुरु पाचाल का नाम एक साथ आता है। उसके सामीप्य को प्रमाणित करता है। कुरु जनपद मे वर्तमान मेरठ, मुजफ्फर नगर, वुलन्दशहर, सहारनपुर, दिल्ली, कुरु क्षेत्र तथा थानेश्वर सम्मिलित थे। यहाँ के लोगो को स्वच्छ शरीर तथा स्वस्थ चित्त होना कहा गया है।

(२) थुल्ल कोट्ठित निगम कुरु जनपद मे था। कौरव्य राजा इसी निगम मे रहता था। एक मत है कि यह स्थान इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली के समीप था। दूसरा मत है कि हस्तिनापुर के समीप था।

बुद्ध घोप नाम की उत्पत्ति देते हुए कहता है—इसका नाम थुल्ल कोट्ठित इसलिए पड़ा था कि यहाँ के लोगो के कोठे अन्न से सर्वदा भरे रहते थे। वह इसका नाम 'स्थूल कोष्ठक' देते हैं।

सुख की तुलना देवताओं के सुख से की जा सकती थी। जीवन सरलता-पूर्वक आनन्दपूर्वक बीतता जाता था। उसका विवाह हुआ।

× × ×

कुरुदेश था। भगवान् भिक्षु संघ के साथ चारिका कर रहे थे। कुरुओ के निगम थुल्ल कोट्ठित में पहुँचे।

ब्राह्मण गृहपतियो ने तथागत के आगमन की बात सुनी। शास्ता के दर्शन और उपदेश सुनने की इच्छा हुई। वे आये। एक ओर बैठ गये। वे उपदेश द्वारा प्रेरित हुए। सदर्शित हुए। समुत्तेजित हुए। सप्रशसित हुए।

क्षुल्लकोट्ठित के अग्रकुलिक का पुत्र राष्ट्रपाल वहाँ बैठा था। उसने ब्रह्मचर्य सम्बन्धी देशना सुनो। अत्यन्त परिशुद्ध शख-सा प्रच्छालित ब्रह्मचर्य गृह मे रहकर सम्भव नही था। उसने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया। भगवान् की सेवा मे पहुँचा। एक ओर वैठ गया। तथागत के सकेत पर निवेदन किया :

'भन्ते ! मै आपसे प्रव्रज्या पाऊँ। उपसम्पदा पाऊँ।'

'राष्ट्रपाल ! माता-पिता से प्रव्रज्या की अनुज्ञा ले ली है ?'

'नही भन्ते !'

'बिना माता-पिता की आज्ञा मै प्रव्रजित नही करूँगा।'

'अच्छा। मै आज्ञा लूँगा भन्ते !'

राष्ट्रपाल कुलपुत्र ने भगवान् की प्रदक्षिणा की। अभिवादन किया। अपने घर की ओर चला।

× × ×

माता-पिता से उसने प्रव्रज्या की आज्ञा माँगी। उन्होने एकमात्र पुत्र को प्रव्रज्या की अनुमति नही दी। वश लोप होने का भय था।

राष्ट्रपाल ने अन्न-जल त्याग दिया। भूमि पर पड गया। प्राण त्याग की बात उठायी। मित्रो ने मध्यस्थता की। निश्चय हुआ। प्रव्रज्या के पश्चात् माता-पिता को दर्शन देता रहेगा। उभय पक्षों ने बात मान ली। उसे अनुज्ञा मिल गयी।

तथागत ने उसे प्रव्रजित किया। श्रावस्ती भगवान् के साथ गया। वहाँ विहार किया। जो कुछ जानना चाहिए था। जान गया। अर्हत् हुआ।

एक दिन तथागत से सानुनय निवेदन किया : 'भन्ते ! मुझे माता-पिता के दर्शन की आज्ञा दे।'

'समयानुसार जो उचित समझो करो।'

भगवान् ने शान्त स्वर में कहा।

× × ×

आयुष्मान् राष्ट्रपाल थुल्लकोट्ठित आया। वहाँ राजा कौरव[३] के मृगाचीर[४] उद्यान मे विहार किया।

पूर्वाह्न समय पात्र लिया। चीवर उठाया। पिण्डचार निमित्त निगम में प्रवेश किया। अपने घर पहुँचा।

उसका पिता मध्य द्वारशाला में बैठकर बाल बनवा रहा था। दूर से उसने भिक्षु को देखा। पुत्र को श्रवण वेष मे पहचान न सका। वह श्रमणों से चिढता था। श्रमणों के कारण पुत्र खोया था। समीप आने पर, उसने उसकी ओर आँख भी नही उठायी। बोल उठा :

'इन श्रमणों ने मेरे एकमात्र पुत्र को मुझसे छीन मिया। प्रव्रजित कर लिया। मै बिना सन्तान हो गया हूँ।'

राष्ट्रपाल चकित हुआ पिता का व्यवहार देखकर। श्रावस्ती से वह उनके दर्शन निमित्त आया था। प्रतिज्ञा पालन किया था।

अपने ही घर से भिक्षा नही मिल सकी। प्रत्याख्यान नही मिला। कटु शब्दो से स्वागत हुआ था।

घर से उसकी ज्ञात दासी वासी कुल्माष फेंकने बाहर आयी। राष्ट्र-पाल ने दासी से कहा :

'बहन ! इसे व्यर्थ क्यो फेंकती हो। मेरे पात्र में ही इसे फेंक दो।'

दासी ने संकेत किया। राष्ट्रपाल ने पात्र बढा दिया। दासी ने पात्र मे कुल्माष डालते समय उन्हे पहचान लिया।

---

(३) कौरव : कौरव्य . यह कुरु देश का राजा था। विशेष विशाखा मे द्रष्टव्य धनजय टिप्पणी है। राष्ट्रपाल के मिलने के समय राजा की आयु ८० वर्ष की थी।

(४) मृगाचीर . कौरव्य का एक सुरम्य उद्यान था। यह इन्द्रप्रस्थ में था। ऋषि-पत्तन सारनाथ को भी मिगचीर कहा जाता था।

वह दौड़कर भीतर आयी। माता को देखकर चिल्ला उठी—'राष्ट्र-पाल ! राष्ट्रपाल !! राष्ट्रपाल !!! वह आये है।' पिता ने सुना। बाल बनवाना छोड कर दौडा। उसने देखा। उसका पुत्र दिवाल का सहारा लेकर बैठा था। वासी कुल्माष खा रहा था। पिता को विस्मय हुआ। पुत्र को पारुषित कुल्माष खाते देखकर दु खी हुआ।

'यह क्या खाते हो ? चलो घर।'

'गृहपति ! अब मेरा घर कहाँ। प्रव्रजितो का विश्व घर है। हम बेघर हैं। आपके घर गया। वहाँ भिक्षा नही मिली। प्रत्याख्यान नही मिला। कटु वाक्य मिले।'

'तात ! घर चलो।'

'नही। आज मै खा चुका।'

'तो कल—?'

राष्ट्रपाल ने मौन द्वारा स्वीकृति दी।

× × ×

राष्ट्रपाल के पिता ने बहुओ को सुअलकृत किया। घर का सब धन एकत्रित किया। उसका ढेर बनाकर रखवा दिया।

राष्ट्रपाल पूर्व-मध्यान्ह काल मे पात्र और चीवर सहित आया। घर से उसका अभ्युत्थान हुआ। सत्कार हुआ। स्वागत हुआ। पिता ने धन राशि दिखाते हुए कहा :

'देखो। यह अपार सम्पत्ति है। इसका भोग करो। पुण्य करो। शिक्षा को त्याग कर गृहस्थ धर्म पुन: स्वीकार करो।'

'गृहपति !' राष्ट्रपाल ने शान्त स्वर मे कहा, 'इस धन-राशि को गगा में प्रवाहित कर दो।'

'क्यो—?'

'इसके कारण आपको शोक नही होगा। दु:ख नही होगा। दौर्मनस्य नही होगा।'

राष्ट्रपाल की प्रत्येक सुन्दर भार्याएँ उसका चरण पकड़ कर विनती करने लगी घर मे निवास करने के लिये। राष्ट्रपाल ने कहा :

'वहन ! हम ब्रह्मचर्य का पालन करते है।'

'बहन' सम्बोधन सुनते ही भार्यायें मूर्छित होकर गिर पडी। राष्ट्रपाल ने कहा .

'गृहपति ! भोजन देना है या कष्ट ?'

'नही-नही भोजन करो।'

स्वादिष्ट भोजन के पश्चात् राष्ट्रपाल ने उपस्थित लोगो को उपदेश दिया :

'यह मनुष्य आकार देखो। वर्णों से यह सज्जित है। आतुर है। संकल्पो का गेह है। यह स्वय ध्रुव नही है। इसका विचत्र बना रूप देखो : यह मणियों से सज्जित है। कुण्डल से शोभित है। यह सुन्दर सूक्ष्म वस्त्रों से वेष्ठित है। अस्थि-मांस से सम्पादित कितना सुन्दर लगता है। पद मे महावर लगे हैं। मुख पर अंगराग लगा है। यह रूप बालक को आकर्षित कर सकता है। परन्तु पारगवेषी को यह मोहित करने में असमर्थ है।

'और यह कुचित लम्बे केश, अंजन रजित नेत्र, बाल को मोह-जाल में फँसाने मे समर्थ है। पारगवेषी पर उनकी नही चलेगी। यह सड़ता शरीर नवीन विचित्र अजन नाली के समान अलकृत है। यह वालक को मोह सकता है। पारगवेषी को नही।

'व्याध ने जाल फैलाया। मृग जाल मे नही फँसा। हरित तृण चरता चला गया। व्याधा रोता रह गया।'

पिता ने स्नेह से कहा '

'पुत्र ! तुमने कुछ माँगा नही।'

'सौम्य ! भीख माँगना अपने को गिराना है।'

राष्ट्रपाल उठ कर चल दिया। कौरव्य के मिगचीर उद्यान मे विहार किया।

× × ×

कौरव्य राजा का मिगचीर उद्यान था। उद्यान मे मिगव माली उद्यान साफ कर रहा था। वृक्ष मूल मे राष्ट्रपाल श्रमण को देखा। वह दौड़ा राजा के पास गया

'देव ! उद्यान साफ हो गया है। परन्तु—।'

'परन्तु क्या मिगव ?'

'वहाँ थुल्लकोट्ठित के अग्र कुलिक का राष्ट्रपाल व कुलपुत्र वृक्ष मूल मे विहार कर रहा है।

'अच्छा— ?'

'देव ! आप उसकी बहुत प्रशसा करते रहे है।'

'सौम्य मिगव ! मै आज उसी के साथ सत्सग करूँगा। तुम और कष्ट मत उठा।'

राजा साथियो के साथ यान पर रवाना हुआ। जहाँ तक यान जा सकता था। यान से गया। तत्पश्चात् अपने सहचरो के साथ पैदल गया। वृक्ष के समीप पहुँचा। राष्ट्रपाल के साथ समोदन किया। एक ओर खड़ा हो गया।

'आयुष्मान्' राजा कौरव्य ने कहा। 'राष्ट्रपाल ! आप सुख से हत्थत्थर गलीचा पर वैठिए।'

'आप वही बैठे। मै अपने आसन पर सुखी हूँ।'

राजा कौरव्य राजासन पर बैठ गया। कौरव्य ने कहा :

'राष्ट्रपाल ! किन बातो से प्रभावित होकर आपने प्रव्रज्या ली है ?'

'राजन् ! वे चार कारण हैं।'

'वे क्या है ?'

'लोक अध्रुव है।'

'इसका अर्थ ?'

'राजन् ! आप एक समय २० वर्ष के थे। पच्चीस वर्ष के हुए। पचास वर्ष के हुए। साठ वर्ष के हुए। अब आप अपने वर्तमान आयु मे है।'

'तो— ?'

'राजन् ! युवा काल मे आपने युद्धक हाथी, अश्व, रथ की सवारी मे सिद्धता प्राप्त की थी। धनुष, कृपाण, धारण करते थे। आपका ऊरु बलिष्ठ था। बाहु बलिष्ठ था। आप अपने जैसा बली किसी दूसरे को नही देखते थे।'

'तो— ?'

'क्या आपमे वह वल, वह पुरुपार्थ आज है? क्या आपका वल आपका पुरुपार्थ ध्रुव रहा?'

'नही। मैं अव वृद्ध हूँ। अस्सी वर्प मेरी आयु है। अपना शरीर चलाने मे असमर्थ हूँ।'

'यही तथ्य जानकर तथागत ने कहा। अध्रुव है। अतएव मैं प्रव्रजित हुआ था।'

'दूसरी वात— ?'

'राजन्! यह लोक त्राण रहित है। आश्वासन रहित है।'

'इसका क्या अर्थ?'

'राजन्! आपको अनुशायिक व्याधि है?'

'राष्ट्रपाल—है। मैं वायु रोग से पीड़ित हूँ। एक समय तो जीवन से निराश हो गया था। मेरे मित्र, अमात्य, ज्ञाति, मुझे घेर कर खड़े थे। कहते थे। राजा, कौरव्य मृत्यु मुख मे था। मैं सुनता था। अपने मरने की वात अपने मुखापेक्षियो से।'

'राजन्! क्या आपके मित्र, अमात्य, ज्ञाति-वन्धुओ ने आपकी वेदना को वॉट लिया? उसे हलका किया?'

'नही राष्ट्रपाल! मेरी वेदना का कोई भागी नही वना। मैं ही अपनी पीड़ा सहता था। वेदना सहता था।'

'राजन्! इसीलिए तथागत ने कहा था। लोक त्राणरहित है। आश्वासन रहित है।'

'और तीसरी वात— ?'

'राजन्!' तथागत ने कहा, 'यह लोक अपना नही है। इसे त्याग कर जाना है।'

'इसका क्या अर्थ है?'

'राजन्! आप पॉच काम गुणो से आज युक्त है। जन्मान्तर में भी आप उन्हे पायेगे। दूसरे इस भोग को पायेंगे। और आप अपने कर्मानुसार जायेंगे।'

'राष्ट्रपाल! मै इस समय पॉच गुणों से युक्त विचरता हूँ। जन्मान्तर

में मै कैसे इन गुणो से विचर पाऊँगा ? दूसरे इन्हे यहाँ भोगेगे। मै अपने कर्म के अनुसार जाऊँगा।'

'राजन्। इसीलिए भगवान् ने कहा—'लोक अपना नही है।'

'चौथी बात—राष्ट्रपाल ?'

'राजन्। लोक तृष्णा का दास है।'

इसका क्या अर्थ है ?'

'इस समय राजन् आप कुरुदेश के राजा है।'

'हाँ। मै समृद्धिशाली कुरुदेश का स्वामी हूँ।'

'राजन्। यदि कोई आपका विश्वासपात्र दूत आकर कहे—'मै पूर्व दिशा से आ रहा हूँ। वह समृद्धिशालियो से पूर्ण स्थान है। जनाकीर्ण है। वहाँ हाथी काय है। अश्व काय है। रथ काय है। पत्ती काय है। वहाँ हाथी दाँतो तथा मृग चर्मों की बहुलता है। वहाँ कृत्रिम अकृत्रिम सुवर्ण का भण्डार है। वहाँ तरुणी कामिनियाँ खूब मिलती है। आपके पास जितनी सेना है, उनकी उस देश को सरलतापूर्वक जीतने के लिए पर्याप्त है—तो आप उस समय क्या करेगे ?'

'मैं उस देश को जीतकर उसका राजा बन जाऊँगा।'

'राजन्। इसी प्रकार आपके विश्वासपात्र दूत पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओ से आकर इसी प्रकार की बात बढा-चढाकर कहेगे तो आप उन्हे जीतने का प्रयास करेंगे। आपको एक जीत से सन्तोष न होगा।'

'आश्चर्य है! अद्भुत है। राष्ट्रपाल।'

'इसीलिए भगवान् ने कहा है—'लोक तृष्णा का दास है।'

आयुष्मान् राष्ट्रपाल ने पुन कहा .

'इस लोक मे धनी मनुष्यो को देखते है। मोह से वे दान नही करते। धन का सचय करते है। उसे और अधिक धन की, भोग की, आकांक्षा होती है। राजन्। राजा लोग शक्ति से देश जीतते है। समुद्र तक इस भूमि पर शासन करते है। तथापि समुद्र पार पहुँचकर शासन करना चाहते है। मनुष्य तृष्णा रहित नही होते। मृत्यु का वरण करते है। यह लोक काम से तृप्त नही होता। जात वाले मृत देखते हैं। बाल बिखेर कर रोते है। पुक्का फाड़कर रोते है। आकाश भूमि क्रन्दन से एक कर

देते है। परन्तु पुन' उसी शव को अग्नि में लुटा पुटाकर भस्म कर देते है। भोग उसका साथ नही देते। केवल एक वस्त्र से आच्छादित वह स्मशान जाता है। वहाँ उसकी कपाल क्रिया होती है। वहा उसके मित्र, बन्धु-बान्धव सहायक नही होते। उत्तराधिकार के इच्छुक श्मशान में उनके धन हरण की योजना बनाते है, मृत के साथ धन नही जाता। राज नही जाता। माता, पिता, पुत्र तथा स्त्री नही जाती। केवल कर्म जाता है।'

'राजन्! क्या धन से लम्बी आयु प्राप्त हो सकती है? वित्त द्वारा जरा का नाश किया जा सकता है? धीर लोगों ने इस जीवन को स्वल्प, नश्वर तथा भगुर कहा है। धनी और दरिद्र दोनो स्पर्शो को स्पर्श करते है। बाल तथा धीर भी उसी प्रकार है। बाल मूर्खता से विचलित होता है। किन्तु धीर स्पर्श स्पष्ट होकर विचलित नही होता।'

'धन्य है राष्ट्रपाल—धन्य है।'

राष्ट्रपाल ने पुन कहा .

'धन से प्रज्ञा श्रेष्ठ है। प्रज्ञा से तत्त्व का निश्चय होता है। निर्वाण न प्राप्त करने पर यह मोहाभिभूत आकाश मन के चक्कर मे पड़ जाता है। पापो मे रत हो जाता है। परलोक पाता है। वह प्रज्ञावान विश्वासकर गर्भ और परलोक प्राप्त करते है। सेध मे रगे हाथ पकडा गया चोर अपने कर्म से मारा जाता है। इसी प्रकार पापी मर कर, अपने कर्म से, दूसरे लोक मे मारा जाता है। अद्‌भुत मन प्रिय काम चित्त को नाना प्रकार से मथते रहते है। इस काम योग के दुष्परिणाम को देखकर, मैने प्रव्रज्या ली है। फलप्रद वृक्ष के फल समान तरुण तथा वृद्ध प्राणी शरीर त्याग कर गिरते है। किन्तु न गिरने वाला एक भिक्षु है। अतएव मैने यही सब देखकर प्रव्रज्या ली है।

'मैने पूर्ण श्रद्धा के साथ बुद्ध शासन मे प्रवेश किया है। मेरी प्रव्रज्या रिक्त नही है। उऋण होकर मै भिक्षा प्राप्त करता हूँ। विषयों को अग्नि तुल्य देखता हूँ। जन्म को दु.ख देखता हूँ। नरक मे महाभय देखता हूँ। इन दुष्परिणामो को दृष्टिगत कर मुझ मे सवेग उत्पन्न हुआ। दु.ख द्वारा बाधित मैने आश्रवो का क्षय किया है। भव भार को उतार कर फेंक दिया है। तृष्णा को समूल नष्ट किया है। जिस कारण मैने गृह का त्याग किया था, उससे सर्व बन्धनो को क्षय कर प्राप्त किया है।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावको में इक्कीसवाँ स्थान प्राप्त कुरु देश थुल्लकोट्ठित वैश्य कुलोत्पन्न राष्ट्रपाल श्रद्धा द्वारा प्रव्रजितो मे अग्र था।

आधार ग्रन्थ :

मज्झिम निकाय २ ४ २

रट्ठपाल सुत्त

थेर गाथा २५१, उदान ७६८-७९२

A A : i 141, 143, 165, ii : 506.

Ah i 63.

DA : iii 642

DhA : iv 195.

S A iii 201.

M A . ii 722

Thag A ii : 30.

Vidh A . 306.

Vin : iii 148.

अंगुलिमाल

उसभं पवर वीर महेसि विजिताविन ।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमह ब्रूमि ब्राह्मणं ॥

(मै उन्हे ब्राह्मण कहता हूँ । जो उत्तम है । प्रवर है । वीर है । महर्षि है। विजेता है । अकम्प्य है । स्नातक है और ज्ञानी है ।)

—ध० ४२३

अगुलिमाल[1] कोसल के राजा के पुरोहित का पुत्र था। कुलीन

---

(१) अगुलिमाल कथाओ मे कुछ भिन्नता मिलती है। एक कथा है कि अंगुलि-माल की माता अपने पुत्र के पास जा रही थी । वह हिंसक वृत्ति से विरत हो जाय । वह जव वन में पहुँची तो केवल एक आदमी का मारना और वच गया था । एक मत है कि अंगुलीमाल माता को भी मारना चाहता था। परन्तु भगवान् ने आकर माता की रक्षा कर ली । एक कथा है। भगवान् ने अगुलिमाल को हिंसा से विरत करने के लिए उसकी वृद्ध माता को उसके सम्मुख कर दिया था । इसे मारकर वह एक हजार की प्रतिज्ञा पूरी करे । परन्तु वह मार न सका । इसे सारनाथ की मूलगन्ध कुटी विहार मे जापान सम्राट् की तरफ से जापानी चित्रकार ने वहुत ही कलात्मक और भावात्मक शैली मे चित्रित किया है ।

अगुलिमाल * का चरिण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कहा जायगा कि वह इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि पूर्व दुष्कृत वर्तमान के कुशल कर्मों द्वारा नष्ट हो जाता है ।

अगुलिमाल के कारण यह नियम वनाया गया था कि पकडे हुए डाकू को भिक्षु नही बनाना चाहिए । बौद्ध देशो मे यदि कोई अपराधी पकडा नही जाता और सघ मे सम्मिलित हो जाता है तो उसे प्राय वन्दी नही वनाते ।

---

* वौद्ध जगत् में अस्सी अग्र श्रावकों को परम्परा मानने वाले अगुलिमाल को एक अग्र श्रावक मानते है ।

ब्राह्मण कुल का था। उसके पिता का नाम गार्ग्य (भार्गव ?) था। उसकी माता का नाम मैत्रायणी था।

जिस दिन उसका जन्म हुआ था नगर मे अस्त्र-शस्त्र चमकने लगे थे। राजकीय शस्त्रागार के अस्त्र-शस्त्र चमकने लगे थे। राजा अपनी शय्या पर पडा उन्हे देखता रहा। उस रात्रि राजा को निद्रा नही आई।

उसके पिता ने जन्म के समय रात्रि मे ज्योतिषियो से सम्पर्क स्थापित किया। उसके भविष्य जानने का प्रयास किया।

प्रात काल पुरोहित राजा के पास गया। कुशल-मगल पूछा। यह भी पूछा :

'राजन्। रात्रि मे निद्रा तो आई थी ?'

'मै कैसे सुख निद्रा प्राप्त कर सकता हूँ सौम्य !'

'क्यो राजन्।'

'रात्रि पर्यन्त शस्त्रागार मे अस्त्र-शस्त्र ज्योतिर्मय हो उठे थे।'

'राजन्। भयभीत मत होइये।'

'क्यो सौम्य ?'

'मेरे घर मे एक पुत्र का जन्म हुआ है।'

'उससे क्या होता है ?'

'राजन्। उसके प्रभाव के कारण नगर के समस्त अस्त्र-शस्त्र ज्योतिर्मय हो उठे थे।'

'सौम्य। आपका पुत्र क्या पुरोहित होगा ? गुरु होगा ?'

'नही राजन्।'

पुरोहित उदास हो गया।

'क्या भविष्य है ?'

'राजन्। मैने ज्योतिषियों से रात्रि मे ही पूछा था।'

'उन्होने क्या कहा ?'

'वे बोले—'पुरोहित आगे बोल न सका। लज्जित हो गया। राजा ने उत्साहित करते हुए पूछा :

'उन्होने क्या कहा ?'

'मेरा पुत्र चोर होगा।'

पुरोहित का मुख लटक गया। प्रतिभाहीन हो गया।

'ओह—।'

'और कुछ पूछा ?'

'क्या पूछता ?'

'वह अकेले चोर होगा या उसका कोई दल होगा ?'

'पूछा था।'

'क्या उत्तर मिला ?'

'वह अकेला चोर होगा। उसका कोई दस्यु दल नहीं होगा।'

'अच्छा तो उसे मार डालो।'

'यदि वह अकेला चोर होगा तो उस पर नियन्त्रण रखा जा सकेगा राजन्।'

पुरोहित ने उदासीन स्वर मे कहा। राजा के मस्तिष्क में उसके कारण अहिंसा की भावना उत्पन्न हुई थी। अतएव उसका नाम अहिंसक रखा गया। कहा जाता था। उसमे सात हाथियों का बल था। एक मत है। अस्त्र शस्त्रो के कारण किसी की हानि नही हुई थी। अतएव नाम अहिंसक रखा गया।

× × ×

वह मेधावी था। उसे तक्षशिला विद्याध्ययन के लिए भेजा गया। वह व्रत सम्पन्न था। आज्ञाकारी था। आचार प्रिय था। प्रियवादी था। उसका गुण दूसरो की ईर्ष्या का कारण हुआ।

वह सवसे अधिक प्रज्ञावान था। किन्तु दुष्प्रज्ञ नही था। व्रतयुक्त था। उसे दुर्बल नही कहा जा सकता था। जाति मे था। अतएव उसे कुजाति नही कहा जा सकता। गुणो के कारण उसकी किसी प्रकार शिकायत करने का मौका नही मिलता था।

विद्यार्थियों ने निश्चय किया। आचार्य को इससे विमुख करना चाहिए। इसके लिए आचार्याणी को माध्यम वनाने का निश्चय किया। उन्होने तीन दल वनाया। एक वार एक दल जाकर आचार्य से उसकी शिकायत करता था। पहला दल आचार्य के पास गया। शिष्यो को देख कर आचार्य ने कहा .

'तातो! क्या प्रयोजन है ?'

'एक बात सुनाई पडती है।'

'क्या ?'

'माणवक—

'वह बडा सुशील है। गुणी है।

'तथापि—।'

'तथापि क्या ?'

'आपके घर को दूषित करता है।'

'वृषलो! भाग जाओ। मेरे पुत्र तुल्य शिष्य और मुझमे अन्तर डालना चाहते हो ?'

किन्तु योजना बन चुकी थी। दूसरा दल आया। उसने भी यही बात कही। तीसरा दल आया। उसने भी वही बात कही। सबने कहा। उनका विश्वास था। आचार्य स्वय परीक्षा कर देख ले।

आचार्य के मन मे सन्देह ने प्रवेश किया। यह ऐसी बात थी। खुल कर कही नही जा सकती था। आचार्याणी से स्पष्ट पूछी भी नही जा सकती थी।

आचार्य ने विचार किया। अहिंसक माणवक को मारूँ। परन्तु उन्हे ध्यान आया। विद्यार्थी अगर मारा जायगा तो तक्षशिला की बदनामी होगी। विद्यार्थियो का आना बन्द हो जायगा। दिशा प्रमुख आचार्य-गण अपने विद्यार्थियो को यहाँ नही भेजेगे। हत्या कर देने पर मेरे पास कोई विद्यार्जन करने के लिए नही आएगा।

बहुत तर्क-वितर्क करने के पश्चात् आचार्य को एक उपाय सूझा। अहिंसक से गुरु-दक्षिणा मॉगी जाय। उससे कहूँ 'सहस्र को मारो।' इससे यह अहिंसक हिंसक हो जायगा। इसका सब कुछ नष्ट हो जायगा। क्रूरकर्मा होगा।

गुरुदक्षिणा का समय आया। अहिंसक अत्यन्त श्रद्धाभक्ति के साथ गुरु के सम्मुख उपस्थित हुआ।

बोला

'गुरु! दक्षिणा देने की कामना है।'

'स्तुत्य अहिसक।'

'देव !'

'जो माँगूगा दोगे ?'

'निश्चय गुरो !'

'एक सहस्र व्यक्तियो को मारो।'

'यह कैसे होगा आचार्य ?'

'क्यो ?'

'मेरा कुल अहिसक है।'

'वाह— !'

'मेरा नाम इसीलिए अहिसक रखा गया है।'

'तात ! विना दक्षिणा विद्या फलवती नही होती।'

'किन्तु आचार्य— !'

'नही ! तुमने प्रतिज्ञा की है। तुम्हे यह गुरु दक्षिणा देनी होगी।'

अहिसक उदास हो गया। उसे रुलाई आने लगी। उसे अपना जीवन, अपनी विद्या, सब कुछ, नष्टप्राय प्रतीत होने लगा।

× × ×

यह पाँच आयुधो से युक्त हुआ। आचार्य के पास गया। उनकी वन्दना की। कोशल के जालिनी वन मे प्रवेश किया। अटवी के प्रवेश स्थान, मध्य स्थान तथा बहिर्गमन स्थान पर खडा होता था। आगन्तुको की हत्या करता था। उन्हे मारता था। उनकी कोई सम्पत्ति, द्रव्य, वस्त्र, वेष्टन आदि स्पर्श नही करता था। वह मृतको की गणना करता जाता था।

समय आया। गिनती याद करनी उसके लिये सम्भव नही रह गयी। उसने एक उपाय निकाला। मृत व्यक्ति की एक उगली काट कर गिनती मिलाने के लिए रख लेता।

किन्तु रखे स्थान से उ गलियाँ खो जाती। उसको उपाय सूझा। उ गलियो की माला बनाकर पहन लिया। अतएव उसका नाम अंगुलिमाल पड़ गया।

अटवी उसके क्रूर कर्म से आक्रान्त हो गयी। जगल मे लकड़ी आदि काटने कोई नही आता था। भय से सब त्रस्त थे।

जंगल मे लोगों का आना बन्द हो गया। अगुलीमाल चिन्तित हुआ। वह रात्रि में उठता। ग्रामो मे आता। पाद प्रहार से बन्द द्वार तोडता। लोगो की हत्या कर चला जाता। उनकी उ गली काटकर अपनी माला मे गुह लेता।

ग्रामीण जनता उसके आने से निगमो मे आ गयी। ग्राम में मनुष्य नही मिलते थे। वह निगमो मे आकर मनुष्यो की हत्या करने लगा। निगमो से भाग कर लोग नगर मे आ गये।

जंगल के तीन योजन चारो तरफ के लोगो ने श्रावस्ती मे शरण ली थी। शरणार्थियो से श्रावस्ती भर गयी। अपने बच्चे को उ गली पकडे चारो ओर से जन-समुदाय राजा के प्रागण मे एकत्रित हो गया। गोहार देने लगा ·

'देव! अगुलिमाल दस्यु से हम त्रस्त है। आपके राज्य को वह नष्ट कर रहा है।'

राजा चिन्तित हो गये। जनता को सान्त्वना दी। किन्तु जनता को रक्षा का विश्वास नही हुआ। राज्य मे भयकर आतक छा गया था। किसी को भी अपने प्राण-रक्षा का विश्वास नही था।

× × ×

तथागत अनाथ पिण्डक के जेतवन श्रावस्ती मे विहार कर रहे थे। उनके कानो तक बात पहुँची। उन्होने गम्भीरतापूर्वक सुना। कुछ बाले नही।

लोगो ने देखा। भगवान् हाथ मे पात्र और चीवर लिये अंगुलिमाल के निवास-स्थान की ओर चले। मार्ग मे गोपालको ने, कृषको ने, पथिको ने भगवान् को अगुलिमाल से सावधान किया। उसने ९९९ मनुष्यो को हत्या की थी। उसकी अनेक क्रूर कथाएँ सुनाईं। परन्तु भगवान् मार्ग से विरत नही हुए।

और आगे बढने पर लोगों ने अगुलिमाल के अनेक लोम हर्षण पूर्ण घटनाओ से भगवान् को भयभीत करना चाहा। परन्तु भगवान् चलते ही रहे। वे पहुँच गये अंगुलिमाल के निर्जन वन मे।

× × ×

अगुलिमाल ने देखा। शान्त गम्भीर मुद्रा तथागत चले आ रहे थे। उसे क्रोध हुआ। जिस मार्ग से उसके आतक के कारण कोई नही आ सकता था। उस पर कैसे तथागत चले आ रहे थे। उसने समझा। आगन्तुक श्रमण उसका तिरस्कार कर रहा था। निरादर कर रहा था। वह कुपित हो गया।

उसने असि चर्म लिया। धनुष-वाण लिया। तथागत को मार डालने की इच्छा से उनके पीछे चलने लगा। अगुलिमाल तथागत की गति नही पा रहा था। उसे आश्चर्य हुआ। वह खड़ा हो गया। भगवान् को सम्बोधित किया :

'श्रमण ! ओ श्रमण !! खड़ा रह।'

'मै स्थित हूँ।'

'आप तो चलते जा रहे है। आप सत्यवादी है। मिथ्या भाषण क्यो कर रहे, श्रमण ?'

'मै स्थित हूँ। मै खडा हूँ ! अगुलिमाल।'

अगुलिमाल फिर चकित हुआ। उसने भगवान् को गतिशील देखा। पुन. पुकार कर कहा •

'श्रीमान् ! आप चले जा रहे है। और कहते हैं। खड़े हैं ! स्थित हैं ?'

'अगुलिमाल ! तू चल रहा है। मै खडा हूँ।'

'वाह !—मैं खड़ा हूँ। आप चल रहे है। यह कैसी उलटी बात ?'

'मै ठीक कहता हूँ।'

'कैसे आप स्थित है ?'

'प्राणियो के लिए मुझमे दण्ड भावना नही है। अतएव मैं सर्वदा स्थित हूँ।'

'और मै—?

'तू अस्थित है। प्राणियो मे असयमी है। मै सयमी हूँ। दण्ड का तुमने परित्याग नही किया है।'

अगुलिमाल की पूर्व चेतना जैसे जागृत हुई। उसे तथागत की बात गुरु वाक्य तुल्य प्रिय लगी। उसने विचार किया। महर्षि का पूजन किए

बहुत दिन हो चुके थे। श्रमण का दर्शन महावन मे अनायास मिल गया था। उसे ध्यान आया। उनसे धर्मयुक्त गाथा सुनेगा। चिरकाल के पाप से मुक्त होगा।

अगुलिमाल ने हथियार फेंक दिया। तथागत के समीप आया। चरणों की वन्दना की। प्रव्रज्या देने की प्रार्थना की। तथागत ने करुण वाणी में कहा ·

'आ भिक्षु !

× × ×

भगवान् श्रावस्ती मे आये। उनके साथ अगुलिमाल था। भगवान् जेतवन मे पहुँचे।

दूसरी ओर राजा के प्रागण मे महाशब्द हो रहा था। राजा से लोग दीर्घ घोष के साथ कह रहे थे। अंगुलिमाल के अत्याचार से उनकी रक्षा की जाय।

सायकाल दो सौ अश्वारोहियो के साथ राजा प्रसेनजित् अपने राज-भवन से निकला। भगवान् के जेतवन मे पहुँचा। तथागत की वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया।

'राजा! चिन्ता का विषय क्या है ? आप पर राजा विम्बसार क्रुद्ध हैं या वैशाली के लिच्छवी लोग ?'

'भन्ते! उनमे कोई नही। चिन्ता का विपय अगुलिमाल है। मैं अपनी इस अश्वारोही सेना के साथ उसी के निवारणार्थ निकला हूँ।'

'यदि अगुलिमाल को आप श्रमण भिक्षु रूप मे देखेगे तो आप क्या करेंगे।'

'भन्ते ! हम उसका प्रत्युत्थान करेंगे। आसन ग्रहण करने के लिए आमन्त्रित करेंगे।

'ठीक राजन्!'

'किन्तु भन्ते ! इतना दु शील पापी कैसे शील सयमी हो सकता है ?'

अगुलिमाल भगवान् के पार्श्व मे बैठा था। भगवान् ने अगुलिमाल का बाहु पकड़कर राजा को दिखाते हुए कहा ·

'राजन्! यह है अंगुलिमाल।'

उसे देखते ही राजा भयभीत हो गये। स्तब्ध हो गये। उन्हे रोमाच हो आया। तथागत ने कोशलपति को भयभीत मुद्रा में देखा।

राजा ने अगुलिमाल को सामान्य व्यक्ति जैसा देखा। उसे जो नही जानता था उसे उसने तेजस्वी भिक्षु समझा। जो जानते थे उन्हे अनायास उससे घृणा तथा भय उत्पन्न हो जाता था। राजा प्रसेनजित् अगुलिमाल के समीप आकर बोले :

'आप अगुलिमाल है ?'

महाराज !'

'आर्य ! आपके पिता का गोत्र क्या है ?'

गार्ग्य !'

'माता का।'

'मैत्रायणी'

'गार्ग्य मैत्रायणी पुत्र ! आप सुख से मेरे राज्य मे अभिरमण कीजिए।'

'धन्यवाद राजन् !'

'गार्ग्य ! मै आपके चीवर, पिण्डपात, शयनासन आदि परिष्कारो से सेवा करूँगा ?'

'राजन् ! मेरे पास तीनों चीवर है।' आयुष्मान् अंगुलिमाल ने कहा।

राजा की श्रद्धा कभी के पण्डित, कभी के दस्यु और अब के भिक्षु अगुलिमाल पर बढ गयी। वह तथागत के पास आकर बोले .

'भन्ते ! बिना दण्ड, बिना शस्त्र, आपने कैसे अगुलिमाल का दमन कर लिया ? हमारे शस्त्र और दण्ड अंगुलिमाल के दमन में असफल हो हो चुके थे।'

भगवान् ने अगुल्मिाल की ओर देखा। अंगुलिमाल विनत नेत्र था। प्रसेनजित् ने भगवान् से कहा :

'भन्ते ! आज्ञा दे, बहुत काम करना है।'

'जैसा आप काल समझते है वैसा कीजिए।'

राजा ने भगवान की प्रदक्षिणा की। वन्दना की। सेना के साथ लौट गया। जिसका दमन करने आया था। उसका अभिवादन कर लौटा।

श्रावस्ती नगरी थी। भिक्षापात्र लिये अगुलिमाल था। पिण्डपात कर रहा था। उसने एक विद्यातगर्भा किंवा मूढगर्भा स्त्रा देखी। उसका गर्भस्थ शिशु मर गया था। स्त्री की पीडा देखकर अगुलिमाल उठा—'हाय ! हाय !! प्राणी दु.खी है।'

किसो दिन के क्रूरकर्मा से करुणा अनायास प्यार करने लगी। अँगुलिमाल भगवान् के समीप आया। वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर वैठ गया।

'भन्ते ! पूर्वाह्ण काल था। मै श्रावस्ती मे पिण्डचार के लिए गया था। वहां मैने एक मूढगर्भा देखी। आह ! प्राणी कितना दु ख भोग रहा है।

'अंगुलिमाल !'

'देव ! आज्ञा।'

'तुम उस दुःखी स्त्री के पास जाओ।'

'वहाँ जाकर क्या करूँगा ? उसकी वेदना देखकर दु ख होगा।'

'अगुलिमाल ! दु'ख दूर करने जाना होगा। उस स्त्री से कहना—'बहन, जबसे मै आर्य जाति मे जन्म लिया हूँ तबसे जानबूझ कर किसी प्राणी का वध नही किया हूँ। इस सत्य से तुम्हारा मङ्गल हो। गर्भ का मङ्गल हो।'

'भन्ते ! मै यह कैसे कह सकता हूँ।'

'क्यो ?'

'मिथ्या भाषण होगा। मैने जानकर प्राण हत्या की है।'

'अगुलिमाल ! मैने जो कहा है। वही जाकर कह।'

'भन्ते ! आपके आदेश का पालन करूँगा।'

भगवान् का आदेश सुनकर स्त्री के पास पहुँच। स्त्री के सामने जाकर कहा।

उसके कहने से स्त्री का मङ्गल हो गया। गर्भ का मङ्गल हो गया।

× × ×

पूर्वाह्ण काल मे अगुलिमाल ने चीवर उठाया। पात्र उठाया। श्रावस्ती मे पिण्डचार के लिए निकला।

जनता उसकी दुष्कृतियो को सुन चुकी थी। उसके अत्याचार की कहानी सुन चुकी थी। क्रुद्ध थी। कुछ मूर्खो ने उस पर ढेला चला दिया। कुछ ने उसे डंडो से मारा। किसी ने ककड फेक कर उसे कष्ट दिया।

अंगुलिमाल का सर फट गया। खून बहने लगा। चीवर रक्तमय हो गया। उस पर लाल धव्वे पड़ गये। उसका रूप डरावना हो गया। उसका पात्र भग्न हो गया। फूटे पात्र, फटे चीवर, रक्त से भींगा वह भगवान् के समीप पहुँचा। कष्ट सहने पर भी उसकी जिह्वा एक भी कटु शव्द आक्रामको के लिए नही कह सकी। उसका मन क्षुभित नहीं हुआ। उसकी शान्ति मे अन्तर नही पड़ा। गम्भीरता मे व्यथा प्रदर्शित नही हुई।

'ब्राह्मण !' भगवान् ने देखते ही कहा . 'तू ने स्वीकार कर लिया। तुमने स्वीकार कर लिया। जिन कर्मो के कारण सैकडों सहस्रो वर्ष तुम्हे नरक मे रहना पडता, उस कर्म विपाक को ब्राह्मण ! इसी जन्म मे भोग चुका।'

× × ×

अगुलिमाल एकान्त मे आसन लगा कर वैठा था। ध्यानावस्थित था। विमुक्ति सुख का अनुभव करता था। उसने उदान कहा .

'मेघ से मुक्त चन्द्रमा के समान वह इस लोक को प्रभासित करता है जो प्रथम अर्जित कर पश्चात् उसे मार्जित करता है। वह मुक्त है। जिसका पाप कर्म पुण्य से ढँक जाता है। जो तरुण भिक्षु बुद्ध शासन मे प्रविष्ट होता है। वह मेघ से मुक्त शशि तुल्य इस लोक को प्रभासित करता है।

'ओ ! दिशाओ !! मेरे धर्म को सुनो। ओ दिशाओ ! जो बुद्ध शासन से युक्त है। वे सत दिशाओ का सेवन करते हैं। जो धर्म के लिए लोगों को प्रेरित करते है। दिशाओ ! शान्तवादियो ! मैत्री प्रशसको के धर्म को समय-समय पर सुनो। उसके, अनुसार आचरण करो। जो अपने को दूसरे को या किसी को नही मारता वह परम शान्ति पाकर स्थावर जगम की रक्षा करता है। नाली वाले पानी ले जाने के लिए काम करते है। इषुकार शर सीधा करते है। बढई लकडी का पीछा करते हैं। उसी प्रकार पण्डित अपना स्वयं दमन करते है।

'कोई दण्ड से दमन करते हैं। कोई शस्त्र से दमन करते है। कोई कोडा से दमन करते है। किन्तु तथागत द्वारा विना दण्ड, विना शस्त्र, विना कोड़ा के ही मेरा दमन हुआ है। मै पहले हिसक था। आज मेरा नाम हिंसक हो गया है। आज मेरा नाम सार्थक है। मै किसी की हिंसा नही करता।'

'पहले मै अगुलिमाल नाम से प्रसिद्ध था। दस्यु था। जलप्लावन मे डूवते सदृश वुद्ध की शरण आया हूँ। पहले मै रक्तरजित हस्त रुद्र लोहित वाणी नाम से कुख्यात था। शरणागत के कारण मेरा भव जाल संकुचित हो गया है। दुर्गति की ओर खीचने वाले कर्मो द्वारा कर्म करने लगा था। आज उनसे उऋण होकर भोजन करता हूँ। दुर्वुद्धि लोग प्रमाद मे लगे रहते है। मेधावी पुरुप अप्रमाद की श्रेष्ठ धन की भाति रक्षा करते है। काम-रति का साथ त्याग दो। प्रमाद युक्त मत हो। अप्रमाद युक्त पुरुप ध्यान करता, विपुल सुख प्राप्त करता है। यहा मेरा आना स्वागत है। दुरागत नही है। यह मन्त्रणा है। दुर्मन्त्रणा नही है। प्रतिभान होने वाले धर्मो मे जो श्रेष्ठ है। उस निर्वाण को मैने प्राप्त कर लिया है।

'स्वागत है। अपगत नही है। यह मेरी दुर्मंत्रणा नहीं है। मैने तीनो विद्याओं को प्राप्त कर लिया है। वुद्ध शासन को प्राप्त कर लिया है।'

'ओह! उस समय मै अरण्य मे पडा रहता था। पेड की छाया मे पड़ा रहता था। पर्वतो की गुफाओ मे पडा रहता था। चिन्तित रहता था। और अव? सुख से हूँ। सुख से उठता हूँ। मै मारके पाश से मुक्त हूँ।

'पूर्वकाल मे मैं दोनो ओर से परिशुद्ध था। मै औदिच्य ब्राह्मण जाति का था। और मै सुगत, धर्मराज, शास्ता की सन्तान हूँ। मेरी तृष्णाएँ शान्त हो गयी है। सयत हूँ। पाप के मूलो का नाश किया है। आश्रवो का क्षय किया हूँ। मैने भारी भव भार उतार कर फेंक दिया है। भव तृष्णाओ को आमूल नष्ट किया है।'

०

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद १३ ६

२६ : ३६

मज्झिम निकाय २ ४ . ६

अंगुलिमाल सुत्त

विनय पिटक महावग्ग १ · ३ ४

थेर गाथा २५५, उदान ८६५-८६०

अवदान शतक स २७

मिलिन्द प्रश्न २ ३५५

A A i 369

D A . i 240, ii 645.

DhA i 124; iii 185.

J iv . 180; v . 456.

M : ii 103

M A . 747.

Thag 868—70.

Vin . i 74.

बावरी

अत्तानुदिट्ठं ऊहच्च एवं मच्चुतरा सिया।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सतीति ॥

(स्मृतिमान बनकर संसार को शून्य स्वरूप देखिए। आत्म दृष्टि नष्ट होगी। मृत्यु को पार करोगे। मसार का यह स्वरूप जो देखता है। उसे मृत्यु राजा नही देख पाता।)

—सुत्त निपात ७० ४

कोसलराज प्रसेनजित् के पिता के एक पुरोहित थे। उनके घर मे बावरी ने जन्म लिया था। वह महापुरुषो के तीन लक्षणो से युक्त था। तीनो वेदो मे पारगत था। पिता की मृत्यु के पश्चात् राज पुरोहित पद पर प्रतिष्ठित हुआ था। सोलह ज्येष्ठ अन्तेवासियो ने उससे शिक्षा प्राप्त की थी। वह आचार्य था।

कोसल राज की मृत्यु फे पश्चात् उसका पत्र प्रसेनजित् राजा हुआ। कोसल की राजधानी श्रावस्ती थी। आचार्य बावरी को प्रसेनजित् ने यथावत् राज पुरोहित पद पर प्रतिष्ठित किया। बालकाल मे आचार्य बावरी से राजा ने शिक्षा प्राप्त की।

एक दिन आचार्य ने राजा से कहा :

'राजन्! मै प्रव्रज्या लूँगा।'

'आचार्य! पिता की मृत्यु के पश्चात् आप मेरे पिता तुल्य है। आप कृपया यही निवास कीजिए। प्रव्रजित होने पर आपके सग का लाभ न उठा सकूँगा।'

नही राजन्! मै प्रव्रज्या लूँगा।' बावरी ने हठ किया।

'आचार्य! एक उपाय है।'

'कहिये राजन् !'

'प्रातः और सायंकाल मैं जहाँ आपका दर्शन प्राप्त कर सकूँ उस राजोद्यान मे आप प्रव्रज्या लेकर निवास कीजिए।'

'तथास्तु, राजन् !'

बावरी शिष्यो सहित राज्योद्यान मे प्रव्रज्या लेकर विहार करने लगे। राजा ने उनका तथा उनके शिष्यो का प्रबन्ध कर दिया। प्रतिदिन प्रातः तथा सायकाल आचार्य के दर्शन निमित्त जाता था।

किन्तु नगर के समीप जनता की भीड़ आश्रम मे हो जाती थी। स्वाध्याय तथा तपस्या मे विघ्न पडता था। आचार्य के शिष्यो ने निवेदन किया :

'आचार्य ! नगर का सामीप्य प्रव्रजितोके लिए अच्छा नही होता। विघ्न पडता है। हमे कही एकान्त दूर चलना चाहिए।'

'राजा से कहूँगा।' बावरी आचार्य ने विचार करते हुए कहा।

× × ×

आचार्य ने राजा से कही दूर जाने के लिए अनुमति माँगी। राजा ने तीन बार, उन्हे जाने से विरत करने का प्रयास किया। किन्तु आचार्य स्थान त्यागने पर तुल गये थे।

राजा ने आचार्य का हठ देखकर अमात्यो को आदेश दिया। आचार्य की इच्छानुसार उनका आश्रम बना दिया जाय।

आचार्य ने उत्तर दिशा का त्याग किया। दक्षिण दिशा जानेका निश्चय किया। रमणीय कोसल से वे दक्षिण पथ की ओर, शिष्यो सहित चले।

शिष्यो सहित अस्सक[1] के राज्य मे अल्लक की सीमा पार कर आचार्य

(१) अस्सक-अल्लक अंगुत्तर निकाय मे उल्लिखित सोलह महाजनपदो में एक महाजनपद अस्सक है। यह गोदावरी उपत्यका मे था। पर अल्लक के समीप था। अलक पैकन के समीप के भूमि भाग को कहते है। यहाँ अवन्ती के साथ इसका नाम उसी प्रकार लिया जाता है जैसे मगधके साथ अग का लिया जाता है। यह अवन्ती के उत्तर पश्चिम मालूम होता है। कलिंग जातक मे वर्णन मिलता है कि अस्सक के राजा अरुण ने दत्तपुर के कलिंग राज के

पहुंचे। गोदावरी तट पर उन्होने अपना आश्रम बनाया। गोदावरी वहाँ दो धाराओ मे बँट जाती है। मध्य मे द्वीप बनाता है! वहाँ पर पूर्व काल मे ऋषि शरभग का आश्रम था। बावरी उञ्छ तथा फल से जीवन निर्वाह करते थे। वहाँ एक विपुल ग्राम था। उस ग्राम के आय से, उसने एक महायज्ञ का आयोजन किया। महायज्ञ समाप्त होने पर आचार्य पुनः आश्रम मे चले गये।

× × ×

वहाँ एक ब्राह्मण आया। उसका पाँव घिसा था। प्यासा था। दाँतों पर मैल जमी थी। सिर पर धूल थी।

आचार्य ने उसका स्वागत किया। आसन दिया। कुशल-मगल पूछा। ब्राह्मण ने कहा :

'आचार्य ! मुझे पाँच सौ मुद्रा चाहिए।'

'ब्राह्मण! मेरे पास जो कुछ था मैने दान कर दिया।' आचार्य ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

'नही, मुझे पाँच सौ चाहिये।' ब्राह्मण के स्वर मे तीव्रता थी।

'मेरे पास कुछ नही है ब्राह्मण! आचार्य ने मन्द स्वर मे कहा।

साथ युद्ध कर उसे परास्त किया था। कालान्तर मे उसने कलिंग राज कन्या से विवाह कर सम्बन्ध अच्छा कर लिया था। हाथी गुफा के खारवेल लेख से प्रतीत होता है कि खारवेल ने अस्सक या असिका पर आक्रमणार्थ सेना भेजी थी। मारकण्डेय पुराण तथा वृहद् संहिता के अनुसार अस्सक उत्तर पश्चिम था। उसकी राजधानी पोतन महाभारत वर्णित पौदन्य नगर था। भट्ट स्वामी अस्सक को महाराष्ट्र मे मानते हैं। भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् से राजा अस्सक पोतली का राजा था। उसका पुत्र सुजन था। दोनो को महाकात्यायन ने बुद्धशासन मे लिया था। राजा रेणु के समय अस्सक का राजा ब्रह्मदत्त था। भगवान् के समय अस्सक का राजा अन्ध्रक राजा था। पोतन को गोदावरी और मजीरा नदियो के सगम स्थित पोदन नगर कुछ विद्वानो ने माना हैं।

(२) अल्लक : अस्सक के उत्तर तथा विन्ध्य पर्वतमाला के दक्षिण इसे माना जाता है। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान नगरी थी। यह वर्तमान पैठन निगम है।

'आचार्य ! यदि आप मुझे न देगे तो–।' ब्राह्मणने भय प्रदर्शित किया।

'तो क्या ?' आचार्यने विनम्र वाणी से पूछा।

'सातवे दिन तुम्हारी मूर्धा के सात टुकड़े हो जायेंगे।'

ब्राह्मण का वचन कठोर था। भीषण था। आचार्य सुनकर दुःखी हो गये। ब्राह्मण शाप देकर चला गया। आचार्य शाप भय से दिन-रात सूखने लगे। निराहार रहने लगे।

× × ×

आचार्य के हिताकाक्षी एक देवता ने बावरी से कहा :

'आचार्य ! वह पाखण्डी था। पाखण्डी क्या जाने मूर्धा का हाल।'

'आप मूर्धापात जानते है ?' आचार्य ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

'नही, मै भी नही जानता।'

'कौन जानता है ?' आचार्य ने जिज्ञासा की।

'मूर्धा तथा मूर्धापात बौद्धो का दर्शन है।'

'इस पृथ्वी पर जिसे मूर्धा तथा मूर्धापात का ज्ञान है। उसे मै जानना चाहता हूँ देव ?'

'आचार्य ! भगवान् बुद्ध को उसका ज्ञान है। उन्ही से इसकी जिज्ञासा करनी चाहिए।'

आचार्य के सूखे मुख पर किंचित् तेज आया। बडे प्रसन्न हुए। उसने देवता से पूछा :

'लोकनाथ इस समय कहाँ निवास करते है ?'

'कोसल, श्रावस्ती मे निवास है।'

देवता ने प्रस्थान किया। आचार्य ने शिष्यो को आमन्त्रित किया। उनसे बोले :

'माणवको ! जगत् मे बुद्ध ने जन्म ग्रहण किया है। सम्बुद्ध नाम से विख्यात हैं। श्रावस्ती जाइये। नरश्रेष्ठ का दर्शन लाभ कीजिये।'

'हम उन्हे पहचानते नही। उन्हे कैसे जान सकेंगे कि वे बुद्ध हैं।'

'महापुरुषो के बत्तीस लक्षण होते है। शास्त्रोक्त उन लक्षणो को देखकर उन्हे जान जाओगे।'

'और—?'

'अपने मन मे प्रश्न करना, मूर्धा भेदन के विषय में। यदि वह आवरण रहित द्रष्टा होगे तो बिना प्रश्न किये उत्तर देंगे।'

शिष्यो ने आचार्य का आदेश ग्रहण किया। आचार्य बावरी का अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। जटा धारण किया। मृग चर्म लिया। आचार्य को प्रणाम कर उत्तर दिशा को ओर प्रस्थान किया।

× × ×

वे प्रतिष्ठान (पैठन, औरगावाद दक्षिण) उज्जैन, गोनद्ध, विदिशा, वन सह्य, कोशाम्बी, साकेत, श्रावस्ती, सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर, वैशाली, चारिका करते मगध की राजधानी राजगृह पहुँचे। भगवान् उस समय मनोरम पाषाण[1] चैत्य मे विहार कर रहे थे।

शिष्य भगवान् से प्रश्न करने के इच्छुक थे। जैसे प्यासा मनुष्य शीतल जल, वणिक लाभ तथा धूप से पीडित शीतल छाया की आकाक्षा करता है, वैसे ही उन्होंने शीघ्रतापूर्वक पर्वत आरोहण किया।

सिंह जिस प्रकार वन मे गम्भीर गर्जन करता है। उसी प्रकार भगवान् भिक्षु परिषद् मे बैठे थे। उपदेश दे रहे थे। उन्होने प्रखर रश्मि पूर्ण सूर्य तथा पूर्णमॉसी के शशि बिम्ब तुल्य भगवान् को देखा। भगवान् के शरीर के लक्षणो को देखा। उनमें शास्त्रोक्त बत्तीसो लक्षण वर्तमान थे।

आचार्य के आदेशानुसार शिष्यों ने मन मे प्रश्न किया—'आचार्य की आयु क्या है? जाति क्या है? गोत्र क्या है? लक्षण क्या है? मन्त्र की योग्यता क्या है? कितना पाठ करते है?'

'आवुसो!' भगवान् ने कहा, 'उसकी एक सौ बीस वर्ष की आयु है। बावरी गोत्र है। तीन लक्षणो से युक्त है। त्रिवेद मे पारगत है।'

'वह लक्षण शास्त्र, इतिहास, निघंटु युक्त कैटुभ मे पॉच सौ मन्त्रो का पाठ करते है। वह धर्म मे पारंगत है।'

बावरी शिष्य चकित हो गये। उन्होने पुन: परीक्षा की दृष्टि से प्रश्न किया :

---

(१) पाषाण चैत्य : गिज्झकूट (गृद्ध कूट) पर्वत पर यह चैत्य स्थित था। यह चैत्य पाषाण अर्थात् पत्थर का बना रहा होगा अतएव इसका नाम पाषाण चैत्य पड़ गया होगा।

'नरोत्तम ! तृष्णा छेदक !! आचार्य बावरी के लक्षणो को विस्तार-पूर्वक कहिए। हम लोगो को किसी प्रकार की शका न रह जाय।'

'माणवक ! उसकी ऊर्णा भ्रूमध्य है। मुख को अपनी जिह्वा से ढक लेता है। लिग कोष से ढँका है।'

शिष्यो तथा उपस्थित लोग विस्मित हो गये। बिना प्रश्न सुने मनो-गत प्रश्नो का ठीक उत्तर तथागत दे रहे थे।

वे प्रमुदित थे। अजलिवद्ध विचार करने लगे। क्या बुद्ध ब्रह्मा थे। इन्द्र थे। सुजाम्पति थे। कौन देवता थे। जो प्रश्नो का वास्तविक उत्तर दे रहे थे।

'भन्ते !' माणवक ने पूछा। 'आचार्य बावरी, मूर्धा तथा मूर्धपात के विषय मे जिज्ञासु है। भगवान् प्रश्न का उत्तर देकर अनुग्रहीत करेगे। हमारी शका का समाधान हो जायगा।'

'माणको ! तथागत ने कहा, 'अविद्या मूर्धा है। श्रद्धा, स्मृति, समा-धि, छन्द तथा वीर्य युक्त विद्या मूर्धपातिनी है।'

माणवक प्रसन्न हो गये। स्तम्भित हो गये। मृगचर्मो को एक कन्धा पर रखा। भगवान् के चरणो पर श्रद्धापूर्वक मस्तक रख दिया। वन्दना की :

'हे मार्ष ! हे चक्षुष्मान् ! शिष्यो सहित बावरी ब्राह्मण हृष्ट चित्त, सुमन आपकी पाद वन्दना करता है।'

'ब्राह्मण !' भगवान् ने आशीर्वाद दिया। 'शिष्यों सहित बावरी सुखी हो। माणवक ! आप लोग सुखी हो। चिरजीवी हो।'

वे प्रसन्न हो गये। सम्बुद्ध के अवकाश देने पर अजलिवद्ध सब बैठ गये। तथागत से आचार्य बावरी के सोलहो शिष्यो ने प्रश्न किया। मोघराज ने मृत्यु के विषय में पूछा .

'भन्ते ! मैंने दो बार प्रश्न किया। किन्तु चक्षुष्मान् ने उसकी व्याख्या नही की। मैने सुना है। तीसरी बार प्रश्न करने पर देवर्षि उत्तर देते है।'

भगवान् ने मोघराज की ओर देखा। उन्होने प्रश्न का सकेत किया। मोघराज ने पूछा :

'यशस्वी ! लोक है। परलोक है। देवों सहित ब्रह्मलोक है। आपका मत इस विषय मे क्या है ? कैसे लोक को देखने वाले को मृत्युराज नही देख पाता ?'

'मोघराज !' भगवान् ने उत्तर दिया। 'सर्वदा स्मृतिमान होकर इस संसार को शून्य देखो। इस प्रकार आत्मदृष्टि त्यागी मृत्यु से परे हो जाता है। लोक को जो इस प्रकार देखता है। उसकी ओर मृत्युराज नही देख पाता।'

× × ×

बावरी के सोलह शिष्य, अजित, तिस्स मेत्तेय, पुण्यक, मेत्तग, धोतक, उपसीव, नन्द हेमक, तोदेय्य, कप्प, पण्डित जातुकण्णी और भद्रायुध, उदय ब्राह्मण पोसाल, बुद्धिमान मोघराज और महर्षि पिंगिय आचार्य बावरी के समीप पहुँचे। आचार्य का अभिवादन किया। वन्दना की। तथागत से हुए प्रश्नोत्तर तथा समस्त घटना का वर्णन किया। सुनकर बावरी ने पूछा .

'पिंगिय! तत्क्षण फलदायक, तृष्णा निवारक, दु ख हारक, धर्म का जिस महाप्रज्ञ अनुपमेय, महाविज्ञ गौतम ने उपदेश दिया है, क्या उनसे मुहूर्त मात्र विलग रह सकते हो ?'

'ब्राह्मण!' पिंगिय[1] ने उत्तर दिया। 'मै उन महाप्रज्ञ, महाविज्ञ गौतम से अलग नही रह सकता। ब्राह्मण! प्रमत्त होकर रात-दिन अपने मानस मे उनका दर्शन करता रहता हूँ। रात्रि मे मै उन्हे प्रणाम करता हूँ। अतएव कैसे कह सकता हूँ। उनसे अलग हूँ। उनके उपदेश से विरत नही हो सकता। जहाँ उन महाप्रज्ञ का गमन होता है, वहाँ-वहाँ मेरा मस्तक श्रद्धा से विनत हो जाता है। मेरा यह जीर्ण शरीर, बलहीन शरीर, वहाँ नही जा सकता। किन्तु मेरा मन उनके साथ गमन करता है। मै वासना पक मे पड़ा था। वेदना से छटपटा रहा था। एक द्वीप मे जाता था। अन्ततोगत्वा मैने भव-सागर पार किया है। वासनाहीन सम्बुद्ध का दर्शन प्राप्त किया है।'

× × ×

शरीर का धर्म कष्ट है। क्षय है। दु ख है। विगलित होना है। नष्ट

(१) पिंगिय ववेरी के समस्त शिष्य भगवान् के उपदेश के कारण अर्हत हो गये थे। पिंगिय भगवान् जव उपदेश दे रहे थे तो वावरिके विपय मे सोच रहा था। अतएव केवल वह अनागामी रह गया। कालान्तर मे पिंगिय अर्हत हो गया और वावरि केवल अनागामी हुआ। पिंगिय वावरि का भतीजा था।

होना है। मोघराज को कुष्ट हो गया है। वे पीडित थे। विहार के बाहर पुआल बिछा देते थे। उसी पर बैठते थे।

मोघराज भगवान् के दर्शन निमित्त गये। भगवान् की वन्दना की। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गये। उन्हे देखकर भगवान् ने पूछा·

'मोघराज! आप चर्म व्याधि से ग्रसित है। क्या आप प्रसन्न है? सतत समाहित हेमन्त ऋतु की शीतल रात्रि आ रही है। भिक्षु! तुम समय कैसे व्यतीत करोगे?'

'भन्ते! समस्त मगध शस्यपूर्ण है। मैं पुआल बिछा लूँगा। उसी पर शयन करूँगा। मुझे उसी मे सुख मिलेगा जब कि दूसरे सुखासन पर सुखपूर्वक निद्राभिभूत होगे। मुझे शीत का भय नही है।'

मोघराज का जीवन अत्यन्त सरल, सादा और त्याग पूर्ण था। वह व्यापारियो, दर्जियो, रंगरेजो द्वारा जो कपडा खराब समझ कर फेंक दिया जाता था उसे बीन लाते थे। उसी से अपना रुक्ष चीवर बनाते थे।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे इकतालीसवाँ स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती बावरी शिष्य ब्राह्मण कुलोत्पन्न मोघराज रुक्ष चीवर धारियो मे अग्र हुआ था।

●

आधार ग्रन्थ :

सुत्त निपात ५ ५५-७२

थेर गाथा २०, १६४ उदान २०७-२०८

अंगुत्तर निकाय १ . १४

A A 1 . 183.

D A · 1 275.

MiL · 168.

SN vis 976-1148, 1019.

SNA : 603, 575.

प्रिय से दुःख

जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति
सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति ॥

(सुचित्रित राजा का रथ जीर्ण हो जाता है। यह शरीर भी जीर्ण हो जाता है। सन्तो का धर्म जीर्ण नही होता। सन्त लोग सन्तो से यही कहते है।)
—ध० १५१

भगवान् श्रावस्ती जेतवन मे विहार कर रहे थे. श्रावस्ती के गृहपति का एकमात्र पुत्र दिवंगत हो गया था। पुत्र की मृत्यु के पश्चात् पिता को जीवन से विराग हो गया था। उसका मन काम-काज मे नही लगता था। अपने पुत्र के लिए विलाप करता विक्षिप्त घूमता रहता था।

एक दिन वह तथागत के समीप आया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। भगवान् ने उसकी विकल मुद्रा देखी। उन्होने पूछा:

'गृहपति ! तुम्हारी चेष्टाएँ चित्त मे स्थिर नही हैं। क्या उनमें अन्यथात्व आ गया है ?'

'भन्ते ! उनका अन्यथात्व होना स्वाभाविक है। मेरा एकमात्र प्रिय पुत्र मर गया है। उनकी मृत्यु के पश्चात् मेरा किसी काम मे मन नही लगता है। भोजन अच्छा नही लगता है। मै उसकी चिता के समीप जाकर रोता रहता हूँ।'

'गृहपति ! प्रिय से उत्पन्न होने वाले शोक, क्रन्दन, दुःख, दौर्मनस्य तथा उपायास होते है।'

'भन्ते ! यह कैसे प्रिय से ही उत्पन्न होने वाले हैं ?'

'गृहपति ! ऐसा ही है।'

गृहपति क्षुभित हुआ। उसने भगवान् का अभिवादन नही किया। वन्दना नही की। उठकर चला गया।

× × ×

भगवान् के विहार स्थान से बहुत दूर वह नही गया था। उसे अक्ष धूर्त जुआ खेलते मिले। गृहपति वहाँ ठहर गया। उनसे चर्चा की—

'मै श्रमण गौतम के यहाँ गया था। मेरा पुत्र शोक देखकर उन्होने कहा—'तुम्हारी चेष्टाएँ तुममे स्थिर नही हैं। प्रिय से शोक होता है। यह कैसे होगा ? प्रिय से तो आनन्द उत्पन्न होता है।'

'फिर क्या किया ?'

'मैने उनके भाषण का अभिनन्दन नही किया। उठकर चला आया।'

'प्रिय से तो गृहपति आनन्द उत्पन्न होता है।' वे बोले।

गृहपति प्रसन्न हो गया। अक्षधूर्त उसकी बात का समर्थन करते थे।

× × ×

मल्लिका[1] देवी कोसल के मुख्य मालाकार की कन्या थी। अत्यन्त रूपवती थी। शीलवती थी। वह सोलह वर्ष की कुमारी थी। एक दिन वह तीन पात्रो मे मट्ठा लेकर उद्यान जा रही थी। मार्ग मे भगवान् मिल गये। उसने मट्ठा भगवान् को समर्पित कर दिया। भगवान् ने मट्ठा ग्रहण किया। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। भगवान् उसे आनन्दित देखकर मुसकराये।

'भन्ते !' आनन्द ने पूछा, 'क्या करण है। आप मुसकरा रहे है ?'

'आनन्द ! यह कुमारी राजा प्रसेनजित् की मुख्य महिषी आज ही होगी।'

× × ×

राजा अजातशत्रु ने राजा प्रसेनजित् को पराजित कर दिया था। वह अपने अश्व पर लौट रहे थे।

---

(१) मल्लिका . मल्लिका की एक कन्या का उल्लेख मिलता है। उसके किसी पुत्र का वर्णन नही मिलता। केवल एक जगह उल्लेख मिलता है कि मल्लिका ने भगवान् से प्रश्न पूछा था कि क्यो कुछ स्त्रियाँ सुन्दर होती है। कुछ साधारण होती है। कुछ अमीर होती है। कुछ गरीब होती है। भगवान् ने उसका उत्तर दिया था। मल्लिका सुत्त द्रष्टव्य है।

मल्लिका भगवान् को मट्ठा देकर उद्यान मे चली गयी थी। वह उमगित थी। भगवान् ने उसका मट्ठा ग्रहण किया था। वह मजु स्वर से उल्लसित होकर गाने लगी थी।

राजा प्रसेनजित् ने उद्यान मे मधुर सगीत सुना। वह शिथिल थे। पराजय की उदासी उन पर छायी थी। गीत सुनकर उनका भारी मन जैसे कुछ हलका हुआ। उद्यान मे प्रवेश किया।

राजा को देखकर मल्लिका उनके पास आयी। घोडे का रास पकड़ लिया। राजा घोडे से उतरे। राजा तरु-छाया मे बैठ गये। मल्लिका उमंगपूर्वक गाती रही।

राजा को मालूम हुआ। वह अविवाहिता थी। राजा को आराम मिलने लगा। वह ऊँघने लगे। मल्लिका ने राजा का मस्तक अपनी पलथी पर रख लिया। राजा को बडा आराम मिला। कुछ समय पश्चात् राजा की नीद खुली। उनका शरीर विश्राम के कारण हलका हो गया था। मल्लिका के साथ नगर मे प्रवेश किया।

सांयकाल राजा ने उसके घर रथ भेजा। उसे बडे उत्साह तथा सज-धज के साथ राजप्रासाद मे लाये। वहाँ मल्लिका को रत्नों के ढेर पर बैठा दिया। उससे उसी दिन विवाह किया। उसे राजमहिषी का पद दे दिया।

× × ×

मल्लिका भगवान् की उपासिका थी। राजप्रासाद मे रह कर भी वह भगवान् के उपदेशो का मनन करती थी। राजा ने मल्लिका को सर्वदा उचित मन्त्रणा देने वाली पाया। वह निर्भीक सब बात कह देती थी। राजा को उस पर बडा विश्वास हो गया था।

आनन्द ने मल्लिका तथा वासभक्षत्रिया को धर्म उपदेश नियमित रूप से देने लगे। मल्लिका ने धर्म को, वासभक्षत्रिया[1] से अच्छी तरह समझा था।

× × ×

---

(१) वासभ क्षत्रिया . यह महानाम शाक्य की दासी पुत्री थी। इसका विवाह राजा प्रसेनजित् के साथ हुआ था। इसके पुत्र का नाम विडूडभ था। विशेप द्रष्टव्य विडूडभ कथा है।

गृहपति और तथागत की वार्ता की चर्चा राजभवन तक पहुँच गयी। राजा प्रसेनजित् ने मल्लिका देवी को बुलाया। उनके आनेपर पूछा :

'मल्लिके ! तुम्हारा गौतम कहता है, प्रिय से शोक उत्पन्न होता है।'

'यदि तथागत ने यह कहा है तो ठीक ही होगा !'

'मल्लिका ! श्रमण गौतम जो कुछ कहते है, तू उसे ठीक ही मानती है।'

'मै ठीक कहती हूँ।'

'तू तो वैसे ही कहती है। जैसे आचार्य अपने शिष्य को जो कुछ कहता है। शिष्य उसे ही दुहराता है। आचार्य ठीक है।'

'यह होना ही है।'

'मल्लिका ! तू भी अपने श्रमण गौतम की बात का इसी प्रकार समर्थन करती है।'

'करूँगी–।'

'ऊह–मुझे पसन्द नही।'

× × ×

रानी मल्लिका चुप बैठने वाली नही थी। उसने नालीजंघ[1] ब्राह्मण को आमन्त्रित किया। ब्राह्मण आया। मल्लिका देवी ने उससे कहा :

'ब्राह्मण ! आप शास्ता के पास जाइये। मेरी ओर से उनके चरणो मे सिर से वन्दना कीजियेगा। उनका कुशल-क्षेम पूछिए, और उनसे कहिए—'क्या भगवान् ने यह कहा है। प्रिय से शोकादि उत्पन्न होते है।' आकर मुझे उत्तर सुनाइयेगा।'

× × ×

ब्राह्मणने तथागत के चरणों पर शिर से वन्दना की। रानी मल्लिका का प्रश्न सन्देश उनसे पूछा। भगवान् ने कहा :

'ब्राह्मण ! मैने यही कहा था।'

---

(१) नाली जंघ वह ब्राह्मण थे। मल्लिका रानी ने अपना सन्देश वाहक बनाकर भगवान् के पास भेजा था। इससे अधिक और कुछ इसके विषय में उल्लेख नही मिलता।

वह कैसे होगा भगवान् ।'

'सुनो ब्राह्मण ! इसी श्रावस्ती मे एक महिला की माता मर गयी थी । वह माता की मृत्यु से उन्मत्त हो गयी । एक पथ से दूसरे पथ, एक वीथी से दूसरी वीथी, एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर जाकर लोगो से पूछती—'क्या आपने मेरी माता को देखा है ? क्या मेरी माता को देखा है ?'

'भन्ते ।'

'सुनो ब्राह्मण ! इसी श्रावस्ती की एक स्त्री अपने पीहर माता के घर गयी । उसके बन्धु-बान्धव उसे छीनकर दूसरे पति को देना चाहते थे । वह स्त्री इसे नही चाहती थी । उसने अपने पति से कहा ।

'उसका पति सोच मे पड़ गया । उसने एक उपाय निकाला । स्त्री से वियोग असह्य था । उसने सोचा दोनो एक साथ मरकर पुन एक साथ जन्म लेगे पति-पत्नी बनकर रहेगे । उसने अपनी प्रिय पत्नी को मार दिया । उसके दो टुकडे कर दिये । तत्पश्चात् अपनी आत्महत्या कर ली ।

× × ×

नालि जघ ब्राह्मण भगवान् का उत्तर मल्लिका देवीसे यथाविधि सुना दिया । रानी राजा प्रसेनजित् के समीप गयी । उनसे बोली :

'महाराज ! आपको अपना एकमात्र पुत्री वज्रा[1] प्रिय है ?'

'हाँ ! कुमारी मुझे प्रिय है ।'

यदि कुमारी किसी सकट मे पड जाय, या कुछ अन्यथात्व हो जाय, तो आपको दु ख होगा या नही ?'

उसके लिए मै अपना जीवन सकट मे डाल सकता हूँ, मल्लिके ।'

'यही समझकर भगवान् ने कहा था, प्रिय से उत्पन्न शोकादि होता है ।'

'मल्लिका—!'

'सुनो राजन् ! वासभ क्षत्रिया आपकी प्रिय है ?'

---

(१) वेजी (कुमारो वजीरा) वज्रिणी, राजा प्रसेनजित् की एक मात्र कन्या थी । इसका विवाह अजातशत्रु के साथ हुआ था । राजा ने काशी का ग्राम वजीरा के दहेज मे अजातशत्रु को दिया था । इसके कारण अजातशत्रु तथा प्रसेनजित् मे युद्ध हुआ था ।

'हाँ ।'

'यदि वासभ क्षत्रिया को अन्यथात्व हो तो आपको दुःख नही होगा ?'

'मल्लिका ! जोवन का कभी अन्यथात्व होगा ।'

'यही जानकर तथागत ने कहा था ।'

'मल्लिका— !'

'राजन् ! विडूडभ[1] सेनापति आपके प्रिय है ?'

'हाँ ।'

'उसके अभाव मे आपको दुःख होगा या नही ?'

'मल्लिका ! होगा ।'

'सुनो राजन् ! मै आपकी प्रिय हूँ ।'

'हाँ मल्लिके ! तुम मुझे जीवन से भी प्रिय हो ।'

'तो राजन् ! यदि मुझे विपरिणय किंवा अन्यथात्व हो तो आपको दुःख होगा या नही ।'

'होगा मल्लिका ।'

'यही जानकार तथागत ने कहा था–प्रिय से शोकादि होते है ।'

'मल्लिका–!'

'राजन् ! आपको कोशल और काशी प्रिय है ।'

'निश्चय ! काशी-कोशल के अनुभाव पर ही काशिक चन्दन का हम भोग करते हैं । माला, गध, विलेपन का व्यवहार करते हैं ।'

'यदि काशी-कोशल पर सकट हो, तो क्या अपको दुःख नही होगा ?'

'होगा ।'

'देव ! यही जानकार भगवान् ने कहा था–प्रिय से शोक उत्पन्न होता है । दुःख उत्पन्न होता है ।'

'मल्लिके ! तथागत ने ठोक कहा ।'

प्रसेनजित् अपने आसन पर खडा हो गया । उत्तरासग को वाम स्कन्ध पर रख लिया । भगवान् जिस दिशा मे निवास करते थे । अजलि वद्ध उधर मुँह कर खड़ा होकर, बोला·

---

(१) विडूडभ : वासभ क्षत्रिया का पुत्र था । प्रसेनजित का पुत्र था । इसने कपिल वस्तु पर उसके आक्रमण के कारण नष्ट हो गया । पुन वह समृद्धि-शाली नगर नही हो सका । विशेप द्रष्टव्य विडूडभ है ।

'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्य।'

'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्य।'

'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्य।'

× × ×

राजा प्रसेनजित् अपनी रानी मल्लिका देवी के साथ राजप्रासाद के ऊपर गया। वहा से उसने श्रावस्ती का प्राकृतिक मनोरम दृश्य देखा। राजा तथा रानी वार्तालाप करने लगे। राजा प्रसेनजित् ने अनायास पूछा :

'मल्लिके ! तुम सबसे अधिक किससे प्रेम करती हो।'

मल्लिका देवी राजा का प्रश्न सुनकर सस्मित उनकी ओर देखते लगी। राजा ने पुन. पूछा :

'देवी ! तुम्हे अपने जीवन से वढकर क्या और कुछ प्रिय है ?'

'आर्य। इस जीवन से बढ कर जगत् मे और क्या प्रिय हो सकता है ?'

'हूँ–।' राजा ने मल्लिका की ओर देखा। उसे निराशा हुई। वह सुनना चाहता था। मल्लिका उन्ही का नाम लेगी।

'आर्य ! आपको क्या अपने जीवन से बढकर कोई और दूसरा प्रिय है ?'

'मल्लिके। तुम्हारी बात ठीक है। मुझे भी अपने से बढकर और कोई दूसरा प्रिय नही है।' राजा के स्वर मे उदासीनता थी।

'आर्य। यथार्थ बात यही है।'

राजा प्रसेनजित् गम्भीर हो गया। वह राजप्रासाद के ऊपरी तल से उतरा। मल्लिका देवी भी साथ उतरी। राजा ने मल्लिका देवी से कहा :

'आर्य। मै भगवान् के पास जाता हूँ।'

'क्या कहिएगा।' मल्लिका देवी ने प्रसन्नतापूर्वक पूछा।

'वही कहूँगा जो यहाँ मैने कहा है।'

× × ×

राजा प्रसेनजित् भगवान् के समीप पहुँचा। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर वैठ गया। भगवान् ने पूछा :

'क्या है राजन् ?'

'भन्ते ! मै मल्लिका देवी के साथ राजप्रासाद के ऊपरी तल पर गया था ।'

'फिर क्या हुआ ?'

'भन्ते ! मल्लिका ने कहा– 'उसे अपने से बढकर दूसरा प्रिय नही है।'

'आपने क्या कहा आयुष्मान् !'

'मैने भी यही कहा– 'मुझे भी अपने से अधिक दूसरा प्रिय नही है ।'

भगवान् की पवित्र वाणी मे यह गाथा उद्भूत हुई :—

'समस्त दिशाओ मे अपने मन को दौडकर देखो । अपने से प्रिय और कुछ दिखाई नही देगा । इसी प्रकार दूसरो को भी अपना जीवन और शरीर प्रिय है ।

'तो– ?'

'राजन् ! अपनी भलाई का इच्छुक दूसरो को इसलिए कष्ट न दे ।'

●

आधार ग्रन्थ :

मज्झिम निकाय २ . ४ ७

धम्मपद ११ ६

सयुक्त निकाय ३ १ ' ८

मल्लिका सुत्त

A iii 57.

DhA ii : 8, 15, · iii : 119, 121.

J . i 110; iii 20, 405; iv . 437.

M ii : 106.

Mil 115, 291.

S i 77, 86

Lid . v : 1.

Vin iv , 158.

पुण्ण[1]

, सूनापरान्त[2] राष्ट्र था। वहाँ वणिकों का एक ग्राम था।[3] सुप्पारक बन्दरगाह था। दो भाई निवास करते थे। दोनों भाई के पास पाँच सौ गाड़ियाँ थी। जनपदो मे वे जाते थे। माल लादते थे। कभी बड़ा भाई जाता था कभी छोटा भाई।

---

(१) पुण्ण . अनेक पुण्ण नामक भिक्षु तथा उपासको का वर्णन बुद्ध साहित्य मे मिलता है। राजगृह का पुण्य श्रेष्ठी उत्तरा नन्द माता का पिता था। दूसरा पुण्य मेण्डक का दास था। तीसरे पुण्य का उल्लेख आश्वलायन सुत्त में आता है। चौथा पुण्य कोलिय पुत्र था। पाँचवाँ पुण्य मैत्रायणी पुत्र था। सिंहली आदि देशो मे इन्हे अग्रश्रावक की श्रेणी में रखा जाता है। यहाँ तात्पर्य ८० अग्रश्रावको की तालिका से है।
पुण्ण का नाम पुण्णक किंवा पुन्नक भी मिलता है।

(२) सूनापरान्त यह एक प्रदेश था। इसी के अन्दर सोपारक बन्दरगाह था। वर्मा के वौद्ध इसे इरावदी नदी के दक्षिण तटपर पगान के समीप मानते हैं। सूनापरान्त एक मत के अनुसार अपरान्त अचल था। सूनापरान्त जनपद की राजधानी सुप्पारक था। यह जन पन्थ वर्तमान थाना तथा सूरत जिलो का अंश मिलकर उस समय वना था। एक मत के अनुसार अपरान्त किंवा अपरान्तक के अन्तर्गत सिन्ध, पश्चिमी राजपूताना, गुजरात तथा नर्मदा की उपत्यका थी। सिन्ध गुजरात एवं वलभी के राज्य अपरान्तक के अन्तर्गत थे। वाणिज ग्राम, भडौच, नासिक, सूरत तथा लाट आदि नगर इसी के अन्तर्गत थे।

(३) सुपारक . यह सूनापरान्त मे वन्दरगाह था। यहाँ से भरुकच्छ तथा सुवर्ण-भूमि से व्यापार होता था। सुप्पारक से श्रावस्ती एक सौ वीस योजन दूर थी। यह थाना जिला में वम्वई से उत्तर स्थित है। सस्कृत मे इसे सुपार्क कहते हैं। यह वर्तमान सोपारा है। दीप वंश में इसका उल्लेख है।

ज्येष्ठ भ्राता पूर्ण ने कनिष्ठ भ्राता को घर पर छोड़ दिया। पाँच सौ गाड़ियाँ लादा। श्रावस्ती पहुँचा। उसने शकटसार्थ अर्थात् गाडी के कारवा को जेतवन से दूर पर नही ठहराया। प्रातः जलपान किया। अनन्तर अपने स्थान पर बैठ गया।

उसने देखा। श्रावस्ती निवासी प्रातः जलपान के पश्चात् श्रावस्ती के दक्षिण द्वार[1] (महेट द्वार) से निकल रहे थे। वे शुद्ध उत्तरासंग ओढ़े थे। उनके हाथो मे गध था। पुष्प था। वे जेतवन की ओर जा रहे थे। पूर्ण को कौतूहल हुआ। उसने लोगो से पूछा। मालूम हुआ। तथागत के दर्शन निमित्त श्रावस्ती निवासी गमनशील थे।

पूर्ण अपने साथियो के साथ उठा। श्रावस्तीवासियो का अनुगमन किया। भगवान् के निवास-स्थान पर पहुँचा।

भगवान् के सम्मुख भिक्षु संघ एकत्रित था। श्रावस्ती के नर-नारी एकत्रित थे। भगवान् उपदेश दे रहे थे। पूर्ण ने नवीन तर्क सुना। नवीन ज्ञान उसमे स्फुरित हुआ। वह भगवान् की देशना से प्रभावित हो गया। उसने प्रव्रज्या लेने का संकल्प किया।

× × ×

पूर्ण अपने निवास-स्थान पर पहुँचा। पाँच सौ शकटों को देखा। अपने साथियो को देखा। जिनके साथ वह वर्षों से व्यापार करता था। घूमता था। नगर-नगर जाता था। धन अर्जन करता था।

उसने भण्डारी को बुलाया। सब साथियो को बुलाया। वह अत्यन्त शान्त था। गम्भीर था। उसकी जैसे अपने धन में, साथियो मे, शकटों मे कोई स्नेह नही रह गया था।

'भण्डारी!' पूर्ण ने कहा। 'मै प्रव्रज्या लूँगा।'

सुनते ही लोग स्तब्ध हो गये। भण्डारी चकित हुआ। पूर्ण ने कहा :

'भण्डारी! मैं शास्ता से प्रव्रजित हूँगा।'

---

(१) दक्षिण द्वार श्रावस्ती के प्राकार में यह दक्षिण दिशा मे द्वार था। अनाथ-पिण्डक के निवास स्थान से दक्षिण द्वार तक राजपथ आता था। यही श्रावस्ती का बाजार था। इस द्वार के दक्षिण पूर्व कोण पर पूर्वाराम था। यहाँ से एक पथ पूर्वाराम तथा दूसरा पथ पश्चिम उत्तर स्थित जेतवन जाता था। जेतवन और पूर्वाराम दोनो नगर के बाहर थे।

भण्डारी नत मस्तक हो गया। कुछ बोल न सका। सब साथी विस्मयापन्न बैठे रहे। सबने भगवान् का दर्शन किया था। उपदेश सुना था। सभी प्रभावित थे। किसी का साहस नही हुआ। पूर्ण से संकल्प विरत होने के लिए कहते। पूर्ण ने सबको मौन देखा। सबको दु खी देखा। उसने कहा '

'भण्डारी ! समस्त धन, शकटादि मेरे कनष्ठि भ्राता को सौप देना।'

पूर्ण खडा हो गया। उसके साथी खडे हो गये। सबने उसका चरण स्पर्श किया। किसी के नेत्र वाष्प पूर्ण थे। किसी के शान्त थे। किसी मे कौतूहल था। कोई उदास था। कोई एकटक पूर्ण के शान्त मुख-मण्डल पर दृष्टि स्थिर किये था।

पूर्ण ने पूर्ण त्याग किया। उसके पवित्र पद जेतवन की ओर उठने लगे।

× × ×

तथागत ने पूर्ण को प्रव्रजित किया। पूर्ण योगाभ्यास परायण हुआ। उसका अभ्यास ठीक से नही चल रहा था। विघ्न पड जाता था। चित्त वृत्तियो का निरोध नही हो रहा था। उसने निश्चय किया। जनपद का वातावरण उसके अनुकूल नही था। शास्ता से योगविधि प्राप्त कर घर लौट चलूँ।

आयुष्मान् पूर्ण जेतवन पहुँचा। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक और बैठ गया। भगवान् से सुअवसर पाते ही निवेदन किया :

'भन्ते! मै सक्षिप्त धर्म उपदेश सुनना चाहता हूँ। उसे जानकर मै घर लौटूँ। एकान्ती, अप्रमादी, उपयोगी, सयमी होकर विहार करूँ।'

पूर्ण!' भगवान् ने कहा, 'चक्षु द्वारा विज्ञेय इष्ट, प्रिय रूप, रजनीय होते है। यदि भिक्षु उनका स्वागत करता है, अध्यवसाय करता है, तो नन्दी अर्थात् तृष्णा उत्पन्न होगी। नन्दी की उत्पत्ति से दु ख समुदाय की उत्पत्ति होती है। यदि जिह्वा द्वारा विज्ञेय रस इष्ट, यदि नेत्रो द्वारा विज्ञेय रूप इष्ट, का स्वागत नही करता तो नन्दी निरुद्ध हो जाती है। पूर्ण! नन्दी के निरोध से दु.ख का नाश होता है। पूर्ण! मन द्वारा विज्ञेय धर्म इष्ट है। मेरे इस सक्षिप्त उपदेश से तुम उपदिष्ट हो।'

'भन्ते!' पूर्ण ने अजलिवद्ध भगवान् को प्रणाम किया।

'पूर्ण!' भगवान् ने प्रश्न किया, 'किस जनपद मे तुम विहार करोगे?'

'भन्ते !' अजलिबद्ध पूर्ण ने उत्तर दिया, 'सूनापरान्त एक जनपद है। मै वही विहार करना चाहता हूँ।'

'पूर्ण !' भगवान् ने कहा, 'वहाँ के मनुष्य चण्ड है। परुष है।'

'भन्ते !'

'सुनो पूर्ण ! यदि वहाँ के लोग तुम्हारा आक्रोशन करेगे तो तुम क्या करोगे ?'

'भन्ते ! मै यही कहूँगा। सूनापरान्त के प्राणी भद्र है। सुभद्र है। वे मुझ पर हस्त प्रहार नही करते।'

'अच्छा–।'

'सुगत ! मै ऐसा ही संकल्प करूँगा।'

'यदि पूर्ण ! सूनापरान्त के लोग हस्त प्रहार तुम पर करे तो—?'

'भन्ते ! मै यही विचार करूँगा। सूनापरान्त के लोग भद्र है। सुभद्र है। मुझे डण्डा से नही मारते।'

'यदि पूर्ण ! सूनापरान्त के लोग तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा तुम्हारी हत्या कर दे तो ?'

'भन्ते ! मै सोचूँगा। जैसे आपका कोई शिष्य इस जीवन से ऊबकर, घृणाकर, तग आकर, शस्त्र हारक खोजते है। उसी प्रकार मै प्रसन्न हूँगा। मुझे शस्त्र हारक विना परिश्रम मिल गया। सुगत, मेरी यही प्रतिक्रिया होगी। मै सूनापरान्त के लोगो को फिर भी भद्र कहूँगा। सुभद्र कहूँगा।'

'साधु पूर्ण ! साधु !! शम दम से युक्त होकर सूनापरान्त मे तुम निवास कर सकते हो ?'

पूर्ण ने भगवान् की वन्दना की। प्रदक्षिणा की। आदेश की आशा मे खड़ा हो गया। भगवान् ने कहा :

'पूर्ण ! तू जिसका काल समझ, कर।'

पूर्णने भगवान् की चरण वन्दना की। पात्र उठाया। चीवर लिया। सूनापरान्त के लिए प्रस्थान किया।

× × ×

पुण्य सूनापरान्त देश सुप्पारक पत्तन पहुँचा। अपने उद्योग, अभ्यास और प्रयास से त्रिविद्या मे पारंगत हुआ। उसने अर्हत्त्व प्राप्त किया। उसने

बुद्ध शासन मे पॉच सौ उपासको तथा अनेक उपासिकाओ को सम्मिलित किया।

सूनापरान्त मे सर्वप्रथम पुण्य ने अम्बहत्थ[1] पर्वत पर विहार किया। किन्तु वहॉ उसे भाई ने पहचान लिया। अतएव उसने पर्वत का त्याग कर दिया। वह समुद्रगिरि[2] विहार मे आया। वहाँ विहार करने लगा। किन्तु वहॉ समुद्र की उत्ताल तरगें तट से टकराती थी। साधना मे विघ्न पड़ने लगा। उसने समुद्र की लहरों को शान्त कर दिया।

वहॉ से वह मातुल[3] गिरि पर आया। वहा विहार करने लगा। परन्तु पक्षियो का इतना अधिक रव होता था कि उस स्थान से उसका चित्त उचट गया। वहा से वह मकुल[4] ग्राम मे आया। वही विहार करने लगा।

पुण्य के कनिष्ठ भ्राता का नाम चुल्ल[5] पुण्य था। वह पांच सौ व्यापारियो के साथ समुद्र पार जहाज से व्यापार करने जा रहा था। प्रस्थान के पूर्व वह ज्येष्ठ भ्राता पुण्य के पास आया। उनका अभिवादन किया। वन्दना की। उनसे आशीर्वाद मांगा। उसकी यात्रा सुखद हो। उसकी समुद्र मे रक्षा होती रहे।

× × ×

जहाज एक द्वीप के समीप आया। वहा लाल चन्दन खूब पैदा होता

---

(१) अम्बहत्थ सूनापरान्त मे एक पहाडी है।

(२) समुद्रगिरि . यहाँ का चक्रमण चारो ओर चुम्बकीय शिला खण्डो से घिरा था। चंक्रमण पर कोई चल नही सकता था। यहाँ एक विहार था। सूनापरान्त मे था।

(३) मातुलगिरि या मातुगिरि सूनापरान्त मे एक स्थान था। जहाँ पुण्ण ने निवास किया था।

(४) मुकुल आराम : सूनापरातन मे एक विहार था। एक मकुल पर्वत का वर्णन मिलता है। वह वर्तमान कलुहा पहाड हजारीवाग जिला विहार मे वोघ गया से २६ मील दक्षिण है। मकुल आराम तथा मकुल दो भिन्न स्थान एवं नाम है।

(५) चुल्ल पुण्ण . चुल्ल का अर्थ छोटा होता है। यहाँ कनिष्ठ पुन्न से अर्थ लगाना चाहिए।

था। व्यापारियो ने लाल चन्दन से जहाज भर लिया। प्रस्थान किया। द्वीप की आत्मा व्यापारियों के इस काम से क्रुद्ध हो गयी। समुद्र मे भयङ्कर तूफान उठा। व्यापारियो के समुख भयंकर रूप धर कर आया। प्रत्येक व्यापारी अपने इष्टदेव का स्मरण करने लगे। चुल्ल पुण्य ने अपने ज्येष्ठ भ्राता पुण्य का स्मरण किया।

पुण्य को ज्ञान हो गया उसका भाई कष्ट मे था। वह आकाश मार्ग से जहाज के समीप आये। उन्हे देखते ही दुष्ट आत्मा भाग गयी। व्यापा-रियों ने अपने जीवन रक्षा के उपकार स्वरूप रक्तचन्दन एक भाग पुण्य को दिया।

पूर्ण ने प्राप्त रक्त चन्दन द्वारा चन्दनशाला भगवान् के निमित्त बनवायी। वहा वह उपासक तथा उपासिकाओं के साथ विहार करने लगा। उसने भगवान् को एक पुष्प भेजकर आमन्त्रित किया। भगवान् वहा पाच सौ अर्हतो के साथ पधारे! एक रात चन्दन शाला मे विहार किया। दूसरे दिन उषाकाल के पूर्व ही वहा से प्रस्थान किया।

कुण्डधान प्रथम भिक्षु था जो भगवान् के साथ सूनापरान्त मे आया था। शक्र ने पांच सौ शिविका यात्रा निमित्त भेजी थी। सबमे अर्हत थे। एक शिविका खाली थी। उसमे सच्च बद्ध बैठा। भगवान् ने मार्ग में उसे प्रव्रजित किया था।

लौटते समय भगवान् ने नर्वदा के तट पर विहार किया था। यहां नागराज ने भगवान् का स्वागत-सत्कार किया था।

× × ×

उसका अन्तकाल आया। वह मृत्यु का आलिंगन करने के लिए प्रसन्न था। किंचित् दुःख नही था। उसने अन्तिम शब्द कहे :

'जगत् मे शील श्रेष्ठ है। प्रज्ञा सर्वोत्तम है। मानव एवं देवताओ मे शील एवं प्रज्ञा से वास्तविक विजय होती है।'

आधार ग्रन्थ :

संयुक्त निकाय ३४ : २ · ४ : ५

मज्झिम निकाय ३ · ५ · ३

थेर गाथा ७० उदान ७०

दिलावदान ३७-३९

पुन्नोवाद सुत्त

Ap : ii . 341.

Thag A : i · 156

Thag · vso : 70.

M A ii · 1014

S A iii · 14

KhA 149.

वृद्धावस्था

भगवान् ने छत्तीसवाँ वर्षावास मृगार माता के प्रासाद पूर्वाराम में किया।

भगवान् अपराह्ण काल मे ध्यान से उठे थे। प्रासाद के पीछे बैठे थे। आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। भगवान् का शरीर मर्दन करने लगे। वे बोले .

'भन्ते ! भगवान् का शरीर उतना परिशुद्ध, उज्ज्वल नही है। गात्र शिथिल हो गये है। झुर्रियाँ पड़ रही है। कमर लटक रही है। इन्द्रियों मे विकार प्रवेश करने लगे है।'

'आनन्द !'तथागत ने कहा : 'यौवन मे जरा धर्म छिपा है। आरोग्य मे व्याधि-धर्म छिपा है। जीवन मे मरण-धर्म छिपा है। आनन्द ! जरा के कारण शरीर पूर्ववत् सुन्दर नही रहता। गात्र शिथिल हो जाते है। त्वचा संकुचित हो जाती है। शरीर झुक जाता है। इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं।'

'जरा तुझे धिक्कार है। तुम सुन्दरता को नष्ट करती है। सुन्दर शरीर को मसल डालती है। शतायु भी एक दिन मरता है ! मृत्यु किसी को नही छोड़ती। सबको पीस डालती है।'

'इस दुनिया मे ऐसा उपाय नही है। जिससे उत्पन्न प्राणी न मर सके। जरा पिण्ड छोड़ सके।'

'फल पकता है। जरा मनुष्य शरीर पका देती है। पका फल वृक्ष का त्याग करता है। उसकी मृत्यु होती है। उसी प्रकार यह शरीर मृत्यु से भयभीत रहता है।

'मिट्टी के बर्तन फूटते है। उसी प्रकार यह काया भाण्ड फूटता है। मूर्ख और पण्डित सब मृत्यु के अधीन है। पिता पुत्र की रक्षा नही कर सकता। कन्या माता की रक्षा नही कर सकती।

'वध भूमि की ओर जाने वाले पशु की तरह एक-एक प्राणी की मृत्यु हत्या करेगी। अधिक से अधिक यह काया सौ वर्ष चलेगी। इसके लिए विलाप करना बुद्धिमत्ता नहीं है। शोक करना बुद्धिमत्ता नही है। उससे शरीर कृश होता है। शरीर विवर्ण होता है। वेदना होती है। विलाप निरर्थक होता है।

'मरने वाला लौटकर आने वाला नही है। उसका जड़ शरीर विलाप सुनकर दयार्द्र होने वाला नहीं है। उसका भस्म मे मिले, धूल मे उडते, शरीर का शेषाश कुछ भी सुनने और करने मे असमर्थ है। वह शोक-वेदना देखकर द्रवीभूत होने वाला नही है।

तीव्र वियोग वेदना देखकर सान्त्वना देने वाला नही है। जो गया वह गया। उसके निमित्त चिन्ता करना, किसी तरह का प्रयास करना निरर्थक है। वेदना का स्वयं कारण है।'

●

आधार ग्रन्थ :

संयुक्त निकाय ४६ · ५ : १

सुत्त निपात ४४ (जरासुत्त)

नकुल पिता

भर्ग देश मे सुसुमार गिर[1] (चुनार) स्थान है। प्रकृति की सुन्दर गोद मे आबाद है। वहाँ भगवान् एक समय पधारे।

नकुल पिता और नकुल माता सुसुमार गिर के गृहपति थे। भगवान् उस समय सुसुमार गिर के मेषकलावन मे विहार कर रहे थे। पति और पत्नी दोनो भगवान् का दर्शन करने गये। भगवान् का उपदेश श्रवण किया। श्रोतापन्न हो गये।

गृहपति नकुल पिता और माता वृद्ध हो गये थे। भगवान् के समीप आये। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। सुअवसर देखकर नकुल पिता ने निवेदन किया ·

'भन्ते !' मै जीर्ण हूँ। वृद्ध हूँ। आयु प्राप्त हूँ। हारा शरीर हूँ। किसी समय मृत्यु प्राप्त कर सकता हूँ। भिक्षुओं का दर्शन इच्छानुसार नही कर पाता हूँ। भगवन् ! मुझे उपदेश दीजिये। चिरकाल तक जो मेरे हित और सुख के लिए पर्याप्त हो।'

'गृहपति !' भगवान् ने कहा, 'ठीक है। इस प्रकार वृद्ध शरीर धारण करने वाला मुहूर्त मात्र के लिए यदि आरोग्य की आशा रखता है तो वह मूर्खता कही जायेगी।'

'तो मै क्या करूँ भन्ते ?'

'गृहपति ! ध्यान रखो। अभ्यास करो। शरीर चाहे भले ही आतुर हो जाय परन्तु चित्त आतुर नही होना चाहिए।'

गृहपति ने शिरसा प्रणाम किया। भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया। अनुमोदन किया। आसन त्याग कर उठा। अभिवादन किया। वन्दना की। प्रदक्षिणा की। सारिपुत्र के निवास-स्थान की ओर चला।

× × ×

---

(१) सुसुमार गिर—नकुल माता की कथा द्रष्टव्य है।

गृहपति नकुल पिता सारिपुत्र के पास आया। उनका अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। सारिपुत्र ने उसको प्रसन्न मुद्रा देखकर पूछा :

'गृहपति! तुम्हारी इन्द्रियाँ प्रसन्न है। मुख पर दिव्य कान्ति है। परिशुद्ध हैं। क्या तुमने भगवान् का उपदेश सुना है ?'

'भन्ते! मैंने अभी भगवान् का उपदेश सुना है। धर्मोपदेश अमृत द्वारा अभिषिक्त हुआ हूँ।'

'क्या सुना आवुस!'

'भगवान् ने कहा—शरीर चाहे आतुर हो जाय परन्तु चित्त आतुर नही होना चाहिए।'

'इसके आगे की बात नही पूछा आवुस!'

'नही। क्या पूछता ?'

'आवुस! तुम्हे पूछना चाहिए था। किस प्रकार शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर होता है? किस प्रकार शरीर के आतुर होने पर चित्त नहीं आतुर होता ?'

'भन्ते! उत्तम होगा। यदि आप कृपाकर बताएँ।'

'ध्यानपूर्वक सुनोगे ?'

'हाँ भन्ते! किस प्रकार शरीर के आतुर होने पर चित्त आतुर होता है ?'

'गृहपति! अनेक पृथक् जन, अविद्वान् जो आर्यों को नही देखते। आर्य धर्म का जिन्हे ज्ञान नही है। जो आर्य धर्म में विनीत नही है। सत्पुरुषों को नहीं देखते। उनके धर्म को नही जानते। सत्पुरुषो के धर्म मे विनीत नही हुए हैं। अपनेपन की दृष्टि से रूप को देखते है। रूपवान को अपनेपन की दृष्टि से देखते है। अपने को रूप मे देखते है। रूप मे अपने को देखते हैं। विचार करते है। वे रूप है। रूप उनका है। जिस रूप को वे अपने मे देखते है। जिस रूप को अपना समझते है। वह विपरिणत हो जाता है। बदल जाता है। उस रूप के विपरिणत और अन्यथा होने पर उसमे शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास पैदा होते हैं। इसी प्रकार वह वेदनाओ, संज्ञाओ, सस्कारो और विज्ञान को अपनेपन की दृष्टि से देखते हैं। विज्ञान को अपना समझते हैं। अपने मे विज्ञान को देखते है। वे विज्ञान जिन्हें अपने मे देखते हैं। अपना समझते है। विपरिणत हो जाते है। अन्यथा हो जाते है। शोकादि उनमे प्रवेश करते

है। गृहपति ! इस प्रकार शरीर आतुर हो जाते है। अतएव उनका चित्त आतुर हो जाता है।'

'भन्ते ! शरीर के आतुर होने पर किस प्रकार चित्त आतुर नहीं होता ?'

'गृहपति ! कोई विद्वान् आर्य श्रावक है। आर्यों को देखते है। आर्य धर्म को जानते है। आर्य धर्म मे सुविनीत है। सत्पुरुपो के धर्म मे सुविनीत है। वह रूप को अपनेपन की दृष्टि से नही देखते। रूप को अपना नही मानते। अपने में रूप को नही मानते। रूप में अपने को नही अवलोकन करते। वे रूप है। उनका रूप है। इस प्रकार विचार नही करते। उस रूप के विपरिणत हो जाने पर, अन्यथा हो जाने पर, उनको शोकादि नही होते।'

'अद्भुत भन्ते !'

'गृहपति ! वेदना, संस्कार, सज्ञा, विज्ञान को जो अपनेपन की दृष्टि से नही देखते। उनके विपरिणत हो जाने पर, अन्यथा हो जाने पर, उन्हे शोकादि नही होता।'

'और—?'

'हा, और इस प्रकार शरीर के आतुर हो जाने पर चित्त आतुर नही होता।'

गृहपति नकुल पिता सन्तुष्ट हो गया। आयुष्मान् सारिपुत्र को प्रदक्षिणा कर प्रस्थान किया।

× × ×

वृद्धावस्था में बीमारी प्रायः आती रहती है। और उसके पश्चात् आती है मृत्यु। नकुल पिता बीमार पड़ा। बीमारी सांघातिक थी। नकुल माता ने देखा। पति चिन्तित है। पूछा :

'क्या चिन्ता है ?'

'ऊह !' नकुल पिता ने बेचैनी से कहा।

'आवुस ! हमारी क्यों चिन्ता करते हो। हमारी और सन्तानों की चिन्ता त्याग दो।'

'ओह—!' नकुल पिता का मस्तिष्क चिन्ताग्रस्त था।

'आप हमारी चिन्ता त्याग दे। आप अच्छे हो जायेगे।'

नकुल माता ने इतने विश्वास के साथ कहा कि नकुल पिता की चिन्ता हटने लगी। वह थोड़े ही दिनों मे चिन्ता रहित हो गया। उसका स्वरूप पुनः लौट आया।

× × ×

नकुल पिता भगवान् की सेवा मे एक समय पहुँचा। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् ने पूछा :

'कुशल से तो है आवुस !'

'भगवान्, बीमार हो गया था।'

'अच्छे हो गये।'

'हाँ। भन्ते ! नकुल माता ने मुझे उपदेश दिया। सन्तोष दिया। विश्वास दिया। मै अच्छा हो गया।'

'आवुस ! इस प्रकार की स्त्रियाँ विरलो को मिलती हैं।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक श्राविकाओ तथा उपासक-उपासिकाओ की तालिका मे पैसठवाँ और उपासको मे ग्यारहवाँ स्थान प्राप्त भर्ग देश ससुमार गिरि श्रेष्ठीकुलोत्पन्न नकुल पिता गृहपति विश्वासको मे अग्र हुआ था।

आधार ग्रन्थ :

संयुक्त निकाय २१ १ १ १
३४ ३ ३ ८

A 1 26, 216, · 11 · 61; · 111 · 295; 465, · 1v . 268, 348.

A A : 1 216, 246, 514.

S A : 11 : 182.

S · 111 . 1; : 1v . 116.

उत्पलवर्णा

मधुवा मञ्ञति बालो याव पापं न पच्चति।
यदा च पच्चति पाप अथ बालो दुक्खं निगच्छति॥

(मूर्ख को पाप उस समय तक मधुर लगता है, जब तक उसे उसका विपाक नही मिलता। उसे उस समय दु ख होता है, जब पाप का फल मिलता है।)

–ध० ६९

उत्पलवर्णा वास्तव मे उत्पलवर्णा थी। उसका वर्ण नील कमल तुल्य था। कमल से भी कोमल थी। सुन्दर थी। उसका लावण्य अपूर्व था। वह अपने कोसल श्रावस्ती के श्रेष्ठी कुल की कुमुदनी थी।

उसका यौवन निखरा। रोम-रोम मे आकर्षण मुसकुराता। यौवन की ख्याति फैली। रूप की ख्याति फैली। उसके कुल की ख्याति फैली।

उससे विवाह करने वाले राजपुत्रो, कुलपुत्रो एवं श्रेष्ठीपुत्रों की बाढ आ गयी। सब विवाह करना चाहते थे। सब कुछ न्यौछावर करना चाहते थे। पिता के सामने भयकर समस्या मूर्तमान खडी हो गयी। उसे जीवन का भय हुआ। धन का भय हुआ। कन्या का भय हुआ।[1]

उसको एक उपाय सूझा। वह किसी को अस्वीकार कर शत्रुता मोल नही ले सकता था। किसी को अस्वीकार कर एक की मित्रता और सैकड़ो की शत्रुता लेने मे असमर्थ था। उसने कन्या से पूछा :

---

(१) धम्मपद मे यह कथा दूसरे प्रकार से दी गयी है कथा इस प्रकार है कि जम्बू द्वीप के सभी राजा उत्पलवर्णा के रूप के कारण उसे चाहते थे। उसके पिता श्रेष्ठी ने झझट से दूर होने के लिए उसे भिक्षुणी बना दिया। उत्पलवर्णा के मामा का पुत्र नन्द माणव था। उस पर अनुरक्त था। उसके साथ एक विहार मे पहुँचकर बलात्कार किया। वह ज्योही कोठरी के बाहर निकला, जमीन फट गयी और वह उसमें समा गया।

'बेटी ! विकट समस्या है।'

'पिता जी समझती हूँ।' कन्या ने लज्जा से कहा।

'एक उपाय सोचा है।'

'क्या पिता जी ?' उत्पलवर्णा ने सलज्ज नेत्रों को पिता के मुखमण्डल पर स्थिर करते हुए पूछा।

'तुम मानोगी।' पिता का मस्तक नत था। वाणी उदास थी।

'क्यो न मानूँगी पिता जी !' उत्पलवर्णा ने किंचित् उत्साह के साथ उत्तर दिया।

'तुम प्रव्रज्या ले लो !' पिता कहते-कहते कॉप उठा।

'प्रव्रज्या—? भिक्षुणी—?' उत्पलवर्णा विस्मित हुई।

'हॉ बेटो !' पिता ने नोल गगन की ओर देखते हुए कहा।

उत्पलवर्णा नीरव हो उठी।

'यही एक उपाय है।'

'अच्छा लूँगी पिता जी !' कहती-कहती उत्पलवर्णा घर मे चली गयी।

पिता की ऑखो मे ऑसू आ गया।

× × ×

उत्पलवर्णा तैयार हुई। पिता सम्मान के साथ भिक्षुणी संघ की ओर चला। कुटुम्बियों ने उसे विदाई दी। वह सौम्य हो गयी थी। घर त्याग रही थी। उसे दु.ख नही हुआ। एक बार हिचकी। पुनः साहस किया। प्रव्रज्या का उत्साह उत्पन्न हुआ। वह पिता के साथ चल पड़ी।

भिक्षुणी सघ मे पिता और पुत्री पहुँचे। पिता ने कन्या की प्रव्रज्या की सम्मति दी। पुत्री ने प्रव्रज्या लेना स्वीकार किया। उत्पलवर्णा प्रव्रजित हुई। उसका घर छूटा। पिता छूटे। भोग छूटा। बन्धन टूटा। राग भागा। वह निरन्तर धर्म पथ की ओर आग्रसर होने लगी।

एक समय उसकी पारी उपोसथ भवन मे काम करने की आयी। उसने दोप जला कर कोठरी साफ किया। वह दीप शिखा को देखती रही। उसे तेजोकसिण हुआ ! उसका ध्यान लगने लगा। उसके ज्ञान चक्षु खुले। उसका यह ध्यान उसके अर्हत्व के मार्ग मे एक मजिल हुआ। उसे धर्म का रहस्य मालूम हुआ। उसने इस प्रकार निरन्तर परिश्रम,

उद्योग, ध्यान से प्रतिसविद् (पटिसम्मिदा) प्राप्त किया। अर्हत्व प्राप्त किया ऋद्धि विकुर्वण प्राप्त किया।

× × ×

अन्तर्वासिनी उत्पलवर्णा सात वर्षों तक भगवान् का अनुगमन करती रही। विनय स्मरण करना चाहती थी। परन्तु वह भूल जाती थी। उसकी स्मृति दुर्बल थी। उसने विचार किया। इस प्रकार आजन्म भगवान् का अनुगमन करने पर भी वह विनय को स्मरण न रख सकेगी।

भगवान् ने उसके विचारो को जाना। उस समय तक स्त्रियाँ विनय का पाठ नही कर सकती थी। भगवान् ने अनुमति दी—'भिक्षुणियाँ भी विनय पाठ कर सकती है।'

× × ×

श्रावस्ती जनपद था। अन्ध वन[1] था। पुष्पित शाल वृक्षों से पूर्ण

---

(१) अन्धवन : श्रावस्ती के दक्षिण लगभग दो मिल दूर में एक वन था। एक गव्यूती दूर था। श्रावक तथा श्राविकायें यहाँ एकान्त सेवन निमित्त आती थी। यहाँ पर एक प्रधान गृह था। ध्यान निमित्त उसमे उपासक बैठते थे। यहाँ पर अनुरुद्ध वहुत वीमार पड गये थे। भगवान् ने राहुल को यहाँ चुल्ल राहुलोवाद सुत्त सुनाया था। वहाँ पर क्षेमा, सोमा तथा सारिपुत्र ने निवास किया था। उत्पलवर्णा, उदायी आदि सम्बन्धी घटनाओ के कारण यह स्थान प्रसिद्ध हो गया था। वर्तमान मे पुराना स्थान अन्ध वन खण्ड माना जाता है।

अन्ध नाम पडने के दो कारण मुख्यतया दिये जाते है। काश्यप बुद्ध के समय मे सोरक नामक स्थविर की आँखें चोरो ने निकाल ली थी। चोर सव अन्धे हो गये। अतएव नाम अन्ध वन पड गया। दूसरी गाथा फाहियान कहता है। उसने अपनी यात्रा मे अन्धवन को जेतवन से उत्तर पश्चिम दिशा मे देखा था। भगवान् ने यहाँ पाँच सौ अन्धो को आँखें प्रदान की थी अतएव नाम अन्धवन पड गया था। इस वन में चोरो का सर्वदा भय रहता था। एक वार राजा प्रसेनजित् को चोरो ने घेर लिया था। यह स्थान ध्यान के लिए उत्तम समझा जाता था। यहाँ भिक्षुणी, सोमा, कृशा गौतमी, विजया, उत्पलवर्णा, चाला, उपचाला, शिशूपचाला, सेला तथा वजीरा ध्यान करने आयी थी।

मै समझता हूँ कि यह वन इतना सघन था कि दिन मे भी वहाँ अन्धेरा लगता था। अतएव उस का विशेषण अन्ध शब्द हो गया था।

था। सुरभित था। उत्पलवर्णा शाल वृक्ष के नीचे खड़ी थी। शाल पुष्प उसके शरीर पर गिर रहे थे। उसकी शोभा निखर आयी थी। वन जैसे वन देवी की पूजा कर रहा था।

वनश्री कुसुमावली में चेतन थी। गन्धवह मे सुगन्धि प्रसरित था। मुग्धकर था। शीतल था। उस जीवनप्रद प्रकृति सुषुमा में उत्पलवर्णा का यौवन पूर्ण विकसित था। भिक्षुणी वेशभूषा ने शरीर विकास में परिवर्तन नही कर सका था। किन्तु उसका वह यौवन दिव्य था। निर्मल था। नील उत्पल्ल तुल्य सुन्दर था। काया मे निवास करते हुए भी उपेक्षित था। मार ने वह रूप देखा। प्रेम प्रदर्शित करते बोला :

'भिक्षुणी! शाल पुष्पित है। सुरभित है। वनश्री मुग्धकर है। वासन्ती वायु में चंचल होकर प्रकृति यौवन मुखरित है।'

उत्पलवर्णा ने मार की ओर देखा। मार पुनः बोला :

'भीरु! एकान्त है। निर्जन है। तुम एकाकी हो और मैं –।'

मार मुसकराया। उत्पलवर्णाके नेत्रों मे करुणा थी। मार ने पुनः कहा :

'अगने! तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है। मैंने इतना उत्तम सौन्दर्य कभी नही देखा था।'

उत्पलवर्णाने अपने शरीर की ओर देखा। उसे अपने सुन्दर शरीर के प्रति विराग हुआ। अस्थिर सौन्दर्य पर, अस्थिर यौवन पर, अस्थिर रूप सर दया आयी। मार ने वक्र मुसकान के साथ कहा :

'मूढ़े! इस अरक्षित अवस्था में तुम्हे दुष्टो से भय नही लगता?'

उत्पलवर्णा ने पापी मार की ओर देखा। निर्विकार भाव से बोली :

'यदि लक्ष लक्ष आततायी आ जाँय–।'

'तो–?' मार ने व्यग्य से पूछा।

'मेरे एक के हाथ का स्पर्श नही कर सकते।'

'ओह–?'

'हाँ, मेरा रोम-रोम स्थिर रहेगा। विचलित नही होगा। मै अकेली हूँ। निर्जन वन है। तथापि मै तुमसे किंचित् मात्र भयभीत नही हूँ।'

'क्यों–?' मार विस्मित हुआ।

'तुम तो एकाकी हो। अनेक मेरा कुछ नहीं विगाड सकते।'

'मैं अदृश्य हो सकता हूँ।' मार ने गर्व से कहा।

'अच्छा–?'

'तुम्हारे शरीर मे प्रवेश कर सकता हूँ।'

'वाह–?'

'हाँ–तुम्हारी भ्रू मे अदृश्य हो सकता हूँ। वही छिप सकता हूँ।'

'और–?'

'तुम मुझे देख नही सकोगी ?'

'तथापि तुम मेरा कुछ नही कर सकते ?'

'क्यो–?'

'चित्त मेरा वशीभूत है। ऋद्धियाँ करवद्ध स्वत· मेरे पास आ जाती है।'

'और–?'

'मै छहो ज्ञानो की जानने वाली हूँ।'

'और–?'

'वुद्ध शासन मे स्थिर हूँ।'

'और–?'

'तुम भोग को आनन्द कहते हो ?'

'हाँ।'

'मेरे लिए वे दु.ख समुदाय है। घृणा के आधार है।'

'सुनयने–!'

'सुनो काम ! तृष्णा एव स्कन्ध समूह मुझे बर्छी को तरह भेदते है।'

'वाह–!' मार हँसा।

'मैने अज्ञानान्धकार को विदीर्ण किया है। वासना का उच्छेद किया है।'

'हूँ–!' मार गम्भीर हो गया।

'पापी ! तुम प्राणियों का नाश करते हो। तुम्हारा जाल मुझपर नही पड़ सकता।'

× × ×

उत्पलवर्णा अपने विषय मे स्वयं कहती है :

'मुझे दिव्यचक्षु प्राप्त हुआ है। मै दूसरों के चित्त का ज्ञान प्राप्त करने

में समर्थ हुई हूँ। मेरी श्रोत्रेन्द्रियाँ शुद्ध हुई है। मैने योग द्वारा सिद्धियों को साक्षात्कार किया है। मेरा चित्त निर्मल हो गया है। चित्तमलो का नाश हो गया है। मैने श्रेष्ठ ज्ञानों को प्राप्त किया है। बुद्ध शासन पूर्ण किया है। योगबल द्वारा प्रस्तुत चार अश्वो पर आरूढ़ होकर मै आई और भगवान् की पाद वन्दना की।'

उत्पलवर्णा इतनी ऋद्धि सम्पन्न हो गयी थी कि जब भगवान् गण्डम्ब पर प्रातिहार्य करने आये तो उसने स्वयं पहले प्रातिहार्य करने का निवेदन किया। भगवान् ने हँसकर कहा—'अभी नही।'

भगवान् ने जेतवन मे भिक्षुसघ के सम्मुख कहा था—'उत्पलवर्णा अद्भुत ऋद्धि शक्ति से युक्त है।'

× × ×

एक समय की बात है। उत्पलवर्णा की कुटी पर अन्धक वन में कोई मास छोड गया था। सम्भवत: कोई दयालु चोर उसके लिए छोड गया था। मास बनाकर उसे भगवान् के पास वेणु वन मे ले आयी। भगवान् उस समय भिक्षाचार करने गये थे। उसने मास उदायी के पास रख दिया। क्योकि वही विहार की व्यवस्था उन दिनों देख रहे थे। सहेज दिया। उसे भगवान् को दे दिया जाय। किन्तु उदायी ने कहा कि उसकी सेवा के बदले वह अपना अन्तरवस्त्र उसे देंगे।

× × ×

श्रावस्ती था। भगवान् भिक्षु सघ में बैठे थे। भगवान् बोले ·

'भिक्षुओ। लाभ सत्कार से दूर रहना वांछनीय है। घर त्याग कर प्रव्रज्या लेने वालों को उत्पलवर्णा और क्षेमा के आदर्शो का अनुकरण करना चाहिये। भिक्षुणी श्राविकाओ मे वे दोनो आदर्श हैं।

यह बात मालूम हुई। भगवान् ने उसी दिन से भिक्षुणी के लिए नन्दक वन में निवास करना वर्जित कर दिया।

उस समय यह विवाद उठा। अर्हत भी मानव हैं। उन्हें भी इच्छा होती है। उन्हें क्यो न प्रेम तथा काम शान्त करने की अनुज्ञा दी जाय। वे वृक्ष नही हैं। पर्वत नही है। वे अस्थि, मांस, मज्जा पूर्ण मनुष्य हैं।

भगवान् ने जोरों के साथ इस प्रकार के विचारों का खण्डन किया।

उन्होंने कहा कि काम, लोभ, सत्कारादि का विचार भी सन्तो के हृदय मे प्रवेश नही करना चाहिये।

× × ×

और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक-श्राविकाओं को तालिका मे चौवालोसवाँ तथा भिक्षु श्राविकाओं मे तीसरा पद प्राप्त कोसल श्रावस्ती श्रेष्ठी कुलोत्पन्न उत्पलवर्णा ऋद्धिमतियो मे अग्र हुई थी।

आधार ग्रन्थ :

वि० पि० चुल्लवग्ग १० . २ ५

संयुक्त निकाय ५ ५, १६ ३ ४

धम्मपद ५ . १०; २६ १८

अगुन्तर निकाय १ : १४

थेरो गाथा ६४, उदान २२४ २३५

A i . 25, 88 ; ii 164.

A A : i : 188.

DhA ii · 48, 49

S . i 131 , ii · 236.

Thag A · 190, 195.

Vin : ii · 216 : iii : 35, 211, 208.

कुमार काश्यप

अत्त हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया।
अत्तना व सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभ ॥

(अपना स्वामी व्यक्ति स्वयं है। उसका अन्य कोई कैसे स्वामी हो सकेगा ? अपने को वश करने पर वह दुर्लभ स्वामी (निर्वाण) का लाभ करता है।)

—ध० १६०

राजगृह के नगर के श्रेष्ठी की एक पुत्री थी। सुख में पली थी। वह प्रव्रजित होना चाहती थी। माता-पिता ने प्रव्रज्या की आज्ञा नही दी।

समय आया। उसका धूमधाम से विवाह हुआ। वह पति-गृह आयी। पतिभक्त थी। पति की सेवा करती थी। पति उस पर प्रसन्न था। उसका इच्छा पूर्ति करने का भरसक प्रयत्न करता था।

पत्नी ने एक दिन उससे निवेदन किया। प्रव्रजित होना चाहती थी। पति ने वियोग के कारण, उसे अपने विचार से विरत होने के लिए कहा। किन्तु पत्नी के सतत आग्रह पर, उसने प्रव्रज्या की सहर्ष अनुमति दे दी।

पति उसे लेकर भिक्षुणी आश्रम की ओर चला। कुछ विचित्र घटना घटी। भगवान् के आश्रम मे न पहुँचकर, देवदत्त के आश्रम में पहुँच गया। भिक्षुणियो ने उसे प्रव्रजित किया।

× × ×

आश्रम में भिक्षुणियो को सन्देह हो गया। वह गर्भवती थी। बात देवदत्त के कानो तक पहुँची। आश्रम में स्त्री का गर्भिणी होना अपवाद का कारण हो सकता था।

'तुम गर्भवती हो।' देवदत्त ने पूछा।

हाँ।

'यहाँ हुई हो ?'

'नही।'

'भिक्षुणियाँ कहती हैं।'

'मुझे घर पर ही गर्भ रह गया था।'

'तुम यहाँ नही रह सकती।'

'क्यो ?'

'तुम्हारे कारण हमारे आश्रम के विषय में अपवाद फैलेगा।'

'मै निर्दोष हूँ। आप व्यर्थ मुझ पर रुष्ट हो रहे हैं।'

'तुम्हे चीवर त्यागना होगा।'

'और—?'

'श्वेत वस्त्र पहनना होगा।'

'और–?'

'इस आश्रम से बाहर किया जायगा। तुम्हारा आचरण शुद्ध नही है।'

'किन्तु मै आपके शासन में प्रव्रजित नही हूँ।'

'क्या कहा ?' देवदत्त बिगडा।

'मैंने शास्ता के शासन में प्रव्रज्या ली है। यही मेरा प्रारम्भ से विचार था।'

'ओह—!'

'जी हाँ, मुझे शास्ता के पास भेज दिया जाय।'

'अच्छा !'

देवदत्त ने स्वतः बला टलती देखकर आदेश दिया।

'इसे भिक्षु सघ में पहुँचा दिया जाय।'

× × ×

वह तथागत के समीप आयी। तथागत ने उसका तिरस्कार नही किया। निन्दा नही की। उस पर उन्हे करुणा उत्पन्न हुई। तथागत ने उपालि से कहा

'आयुष्मान् ! इस भिक्षुणी की जाँच करनी चाहिए।'

'किस प्रकार—?'

'यह निर्दोष है या नही।'

'आज्ञा भन्ते।'

उपालि भिक्षुणी को लेकर विशाखा के पास पहुँचा। राजा प्रसेनजित्, अनाथपिंडकादि के सम्मुख उसे विशाखा के नियन्त्रण में दे दिया।

× × ×

भिक्षु परिषद् एकत्रित थी। राजा प्रसेनजित भी परिषद् मे उपस्थित थे। विशाखा उसे परदे की आड में ले गयी। उसका जांच की। राजा की उपस्थिति मे घोषित किया गया। वह पवित्र थी। उसे गर्भ युद्ध शासन मे आने के पूर्व रहा था। शास्ता ने निर्णय मान लिया। वह निर्दोष घोषित की गयी।

× × ×

कालान्तर में उससे कुमार काश्यप का जन्म हुआ। शिशु का लालन-पालन विहार मे हुआ। राजा प्रसेनजित् ने शिशु बडे होने पर, लालन-पालन का उत्तरदायित्व लिया। राजाश्रय मे शिशु बढने लगा।

बडा होने पर राजा ने उसे भिक्षु सघ में भेज दिया। गर्भ मे आने के बीस वर्ष पश्चात् प्रव्रजित हुआ! बहुत युवा था। बीस वर्ष की अवस्था मे उपसम्पदा पाया था। अतएव भगवान् कहा करते है—'काश्यप को यह फल दे दो। वह खाने की चीज है? अच्छा, काश्यप को दे दे।'

वहा अनेक काश्यप थे। भिक्षुओ ने पूछा :

'किस काश्यप को दिया जाय?'

'ओह! कुमार काश्यप को।'

भगवान् ने उसका नाम कुमार रख दिया था। वह राजकुल में पला था। कुमार था। भिक्षुओ में भी कुमार था। अतएव वृद्धावस्था तक उसका नाम कुमार काश्यप ही रहा। इसी नाम से वह सम्बोधित किया जाता था।

× × ×

कुमार काश्यप को गर्भ से लेकर बीस वर्ष की अवस्था मे उपसम्पदा दी गयी थी। विवाद उठ खडा हुआ। बीस वर्ष की आयु के पूर्व कैसे उपसम्पदा दी जा सकती थी। भगवान् ने शका समाधान किया। गर्भ-कालीन समय भी जोडा जाता है। इस प्रकार काश्यप बीस वर्ष के थे।

कुमार काश्यप प्रव्रजित हुए। माता से अलग हुए। राजा प्रसेनजित् से विलग हुए।

वारह वर्ष वीत गया। माता अपने द्वार पर थी। उसने एक भिक्षु को देखा। पुत्र को देखते ही उसके स्तनो मे दूध उतर आया। पुत्र स्नेह

से वह प्लावित हो गयी। वह दौडती पुत्र के पास आयी। उसे स्नेह से पकड़ लिया।

काश्यप ने माता को पहचाना। माता की दशा पर उनको करुणा आयी। उन्होने कहा :

'यह क्या ?'

'पुत्र—।'

'स्नेह वन्धन नही तोड़ सकती ?'

'ओह—।'

पुत्र भिक्षु, माता भिक्षुणी दोनो को अपने धर्म का ज्ञान हुआ। स्नेह दुःख का कारण है। माँ रुक गयी। पुत्र भिक्षाचार करता आँखो से ओझल हो गया। और माँ पुत्र के कारण उसी दिन अर्हत हो गयी।

× × ×

श्रावस्ती थी। जेतवन था। अनाथपिण्डक का आराम था। भगवान् विहार कर रहे थे उन्ही दिनो कुमार काश्यप अन्ध वन मे विहार करते थे। शशि गगन मे था। आकाश निरभ्र था। कौमुदो मे जगत् शीतल था।

कुमार काश्यप ने देखा। अन्ध वन अभिक्रान्त वर्ण देवता की ज्योति द्वारा प्रभासित हो उठा था। कुमार काश्यप के समीप देवता हस गति से आया। एक ओर खडा हो गया। काश्यप ने औपचारिक शैली से देवता का अभिनन्दन किया। देवता ने प्रश्न किया :

'भिक्षु ! वल्मीक को देखा।'

'हाँ !'

'आवुस ! रात्रि मे उससे धूँआ निकलता है।'

'हाँ।'

'दिन को प्रज्वलित होता है ?'

'हाँ।'

'कुमार ! यह वल्मीक क्या है ? धुआँ का निकलना क्या है ? प्रज्व-लित होना क्या है ? ब्राह्मण क्या है ? सुमेध क्या है ? शास्त्र क्या है ? अभीक्षण क्या है ? लगी क्या है ? दो मार्ग क्या है ? चगवार क्या है ?

कर्म क्या है ? असिसूना क्या है ? मांसपेशियाँ क्या है ? नाग क्या है ?

काश्यप कुमार विचार करने लगे।

'भिक्षु ! देवता ने कहा . 'मैने तुमसे प्रश्न किया है। उसका उत्तर तथागत से पूछो।'

'उत्तर सुनकर क्या करूँगा ?'

'आवुस ! उन्हे धारण करना।'

देवता अन्तर्धान हो गया।

× × ×

रात्रि व्यतीत हुई। भगवान् के समीप कुमार काश्यप पहुँचे। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। भगवान् के संकेत पर रात्रि की घटना का वर्णन दिया। प्रश्नों को निवेदन किया।

'भिक्षु ! 'भगवान् ने कहा, 'वल्मीक काया है। दिन के कर्म को जो रात्रि मे करने का विचार करता है, वह रात्रि का घुघुवाना है। रात्रि कर्म को जो दिन मे करता है, वही दिन का धधकाना है। ब्राह्मण, यह तथागत, अर्हत सम्बुद्ध का नाम है। सुमेध, निर्वाण मार्गारूढ व्यक्ति का नाम है। शस्त्र, आर्य प्रज्ञा है। अभीक्षण, वीर्यारम्भ अर्थात् उद्योग का नाम है। लंगी, अविद्या का नाम है। घुघुवाना, क्रोध उपायास का नाम है। द्विधा, पथ संशय का नाम है। चगावर, पाँच आवरणो का नाम है। कूर्म, यह पाच उपास्कन्धो के नाम है। असिसूना पाँच काम गुणो के नाम है। मासपेशी, नन्दी है। यह राग का नाम है। नाग, क्षीणाश्रय भिक्षु का नाम है।'

कुमार काश्यप भगवान् के उत्तर से सन्तुष्ट हो गये। उसका अभिनन्दन किया। अनुमोदन किया।

कुमार काश्यप धर्म पथ पर अग्रसर होते चले गये। उन्होने धार्मिक भावनाओ से प्रेरित होकर एक दिन भगवान् के प्रति उदान कहा :

'यह धर्म धन्य है। भगवान् धन्य हैं। उनके अमित गुण धन्य हैं। उनके कारण श्रावक धर्म का साक्षात्कार कर लेता है। असख्य कल्पों से पंच स्कन्धों के चक्कर मे पड़ा था। यह भगवान् का अन्तिम जन्म है।

उनका अन्तिम आविर्भाव है। इस जन्म-मृत्यु संयुक्त जगत् में उसका पुनर्जन्म नही होगा।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में सुश्रावको में अट्ठाईसवां स्थान प्राप्त मगध राजगृह निवासी कुमार काश्यप चित्र कथिको में अग्र हुए थे।

आधार ग्रन्थ :

मज्झिम निकाय १ ३ ३
विनय पिटक महावग्ग १ ४
धम्मपद १२ ४
थेर गाथा १६१, उदान २०१-२०३

A : i : 24.
A A · i 158, 172.
Ap : ii 473.
DhA · iii : 147; ii · 210-212.
J . i : 147, 148.
M : i 143
M A i . 335.
Thag A . i . 322
Ud · i : 80.
Vin . i : 93.

नन्दक

नन्दक श्रावस्ती निवासी था। अपदान के अनुसार जिस दिन जेत वन भगवान् को दिया गया था उसी दिन उसने प्रव्रज्या ली थी।

भगवान् जेतवन मे थे। अनाथपिण्डक के आश्रम में थे। महाप्रजापति गौतमी ५०० भिक्षुणियो के साथ भगवान् के आश्रम मे आई। भगवान् का अभिवादन किया। एक ओर खडी हो गयी। सकेत पाकर भगवान् से प्रार्थना की .

'भन्ते ! भिक्षुणियाँ उपस्थित हैं। आपके आदेश की इच्छुक है।'

क्रम यह था। भिक्षुणियो को स्थविर भिक्षु पर्याय अर्थात् वारी-वारी से उपदेश देते थे। नन्दक के उपदेश देने की आज वारी थी। किन्तु वे उपदेश नही देना चाहते थे। भगवान् ने आनन्द से पूछा :

'आनन्द ! आज किसकी बारी है ?'

'आयुष्मान् ! नन्दक की।'

'नन्दक उपदेश क्यों नही देते ?'

'वह अपनी वारी में नही देना चाहते।'

'नन्दक !' भगवान् ने नन्दक की ओर देखकर कहा . 'भिक्षुणियो का अनुशासन करो ब्राह्मण ! उन्हे धार्मिक कथा सुनाओ।'

'भन्ते !' नन्दक ने आज्ञा शिरोधार्य किया।

× × ×

एक दिन श्रावस्ती में नन्दक भिक्षाचार कर रहा था। उसके हाथ में पात्र था। शरीर पर चीवर था। उसका शरीर ब्रह्मचर्य की दिव्य कान्ति से भूपित था। वह शान्त चित्त भिक्षा माँग रहा था। उसकी चंचलता लोप हो चुकी थी।

अकस्मात् उसने अपने सम्मुख देखा । एक सुन्दर रमणी । वह उसकी पूर्व भार्या थी । पत्नी मुसकरा उठी । उसके नेत्रों में काम था । राग था । मन दूषित था । नन्दक ने उसे भगिनीस्वरूप समझा । उसे नमस्कार किया । उसके सम्मुख निस्सकोच चला गया ।

नन्दन की दृष्टि मे काम नही था । अकाम दृष्टि काम दृष्टि से मिली । अकाम दृष्टि शान्त थी । स्थिर थी । त्याग था । काम दृष्टि मे तृष्णा थी । वासना थी । नन्दक ने वही अपनी पूर्व भार्या को धार्मिक कथाओं से समुत्तेजित किया । उसे शरीर की अनित्यता बतायी । काम को अनित्यता बतायी । उसने धर्म का पवित्र मार्ग उसे दिखाया .

'ओ ! नारी !! तुम्हारी वासना को धिक्कार है । तुम मार के दुर्गन्धमय वातावरण मे निवास करती हो । तुमने देखा है ? तुम्हारे इस शरार मे नव स्रोत हैं । उनसे सर्वदा मल प्रवाहित रहता है । देवी ! मै पूर्व का तुम्हारा पति नही रह गया हूँ । मै तथागत का श्रावक हूँ । मुझे प्रलोभित करने की चेष्टा मत करो । भगवान् के शिष्य स्वर्ग मे भी प्रलोभित नही होते । इस नश्वर जगत् की तुम क्या वात करती हो । वे मार के चक्कर मे पडते है जिनका साथ, मूर्खता, बुद्धहीनता, मतिहीनता ने पकड़ा है । जो मोहाच्छादित है । भवजाल में आसक्त है । जिनका साथ राग, द्वेष एव अविद्या ने त्याग दिया है । जिनके सब सूत्र छिन्न हो गये हैं । जिनके वन्धनो का अवसान हो चुका है । वे आसक्तियो से बहुत दूर हैं ।

पूर्व भार्या मे विमल दृष्टि उत्पन्न हुई । और नन्दक के पद पात्र के साथ उठते-उठते मार्ग मे लोप हो गये । भार्या विस्मित, चकित पूर्व पति की ओर देखती रह गया ।

× × ×

नन्दक ने एक उपदेश मिगार मातु पसाद[१] मे मिगार के पौत्र

---

(१) मृगार मातु प्रसाद : यह एक विहारका नाम है । विशाखा मृगार माता ने श्रावस्ती की पूर्व दिशामे पूर्वाराम मे निर्माण कराया था । भगवान् ने अपने जीवन के अन्तिम बीस वर्षावास श्रावस्ती मे किया था । उन दिनो अनाथपिण्डकाराम, जेतवन मृगारमातु प्रासादाराम में विहार करते थे ।

साल्ह[1] तथा दूसरा उपदेश उसने पेखुनिय[2] के पौत्र को दिया था। वह दूसरा उपदेश उसने जेतवन में दिया था। उसकी वाणी इतनी मधुर एव भाषा प्रांजल थी कि भगवान् उसकी ओर आकर्षित हुए थे।

भवन के बाहर खडे होकर सुनने लगे। द्वार भीतर से बन्द था। बहुत देर तक उसका उच्चस्तरीय मधुर भाषण सुनते रहे। खड़े-खड़े भगवान् की पीठ में दर्द होने लगा। परन्तु वे उपदेश के बीच मे विघ्न नही डालना चाहते थे। उपदेश समाप्त हुआ। भगवान् ने द्वार खट-खटाया।

द्वार खुला। नन्दक तथा श्रोता भिक्षु चकित हो गये। भगवान् द्वार मे खडे थे। अकेले थे। भगवान् को देखते ही सबने उनकी वन्दना की। अभिवादन किया। नन्दक ने क्षमा प्रार्थना करते हुए कहा :

'भन्ते! क्षमा करें। हमे मालूम नही था। आप बाहर खड़े है।'

'नन्दक! तुम्हे मै साधुवाद कहने आया हूँ। मुझे तुम्हारा उपदेश प्रिय लगा। इसलिए खड़ा सुनता रहा।'

नन्दक प्रशसा सुनकर लज्जित हो गया। भगवान् ने पुनः कहा :

'नन्दक! सभी पुण्यकर्मा भिक्षुओ का यह कर्त्तव्य है कि इसी प्रकार उपदेश दिया करे।'

नन्दक ने भगवान् को शिरसा नमन किया। भगवान् भवन से चले गये। नन्दक ने अपना उपदेश पुन आरम्भ किया।

× × ×

---

(१) साल्ह : इन्हें मृगार नट कहा जाता है। यह एक बार पेखुनिय के साथ नन्दक के पास गये थे। उसने श्राविकाओ के निमित्त एक विहार का निर्माण कराया था। सुन्दरी नन्दा उस विहार का काम देखती थी। सुन्दरी नन्दा और वे परस्पर मिलते रहते थे। उनमें अनुराग उत्पन्न हो गया। एक बार सुन्दरी को अपने घर ले जाने के लिए सभी श्राविकाओ को उसने आमन्त्रित किया। नन्दा ने साल्ह का विचार जान लिया। वह नही गयी। किन्तु साल्ह विहार मे दौडा आया। और नन्दा से मिला।

बुद्ध घोप का मत है कि मृगरनट विशाखा का पौत्र था।

(२) पेखुनिय . यह रोहन का पौत्र था। उसे पेखुनिय नट कहा जाता है।

पूर्वाह्न काल था। अयुष्मान् नन्दक सुआच्छादित हुए। पात्र लिया। चीवर लिया। श्रावस्ती मे भिक्षाचार हेतु प्रवेश किया। भिक्षाचार किया। भोजन किया। एक भिक्षु को साथ लिया। श्रावस्ती नगर में राजकाराम[१] विहार था। उसमे भिक्षुणियाँ निवास करती थीं। वहाँ नन्दक पहुँचे।

भिक्षुणियो ने नन्दक की अभ्यर्थना की। हस्त-पद प्रच्छालन निमित्त जल दिया। आसन बिछाया। एकत्रित हुईं। नन्दक ने कहा :

'भगिनियो ! हमारी कथा प्रतिपृच्छ होगी। शंका निवारण करना होगा।'

'भन्ते ! हम इतने से ही सन्तुष्ट है।'

'भगिनियो ! मै प्रश्न करता हूँ।'

'भन्ते–पूछे।'

'चक्षु नित्य है या अनित्य ?'

'भन्ते ! चक्षु अनित्य है।'

'अनित्य से सुख होता है या दु:ख ?'

'भन्ते ! दु:ख।'

'भगिनियो ! मै पूछता हूँ। उत्तर दो। जो अनित्य है। जो दु:ख है। जो विपरिणामधर्मा है। क्या उसके सम्बन्ध मे हम कह सकते हैं ? यह मै हूँ। यह मेरा है। यह मेरी आत्मा है।'

'भते ! नही।'

'क्या ऐसा समझना युक्त है ?'

---

(१) राजका राम : जेतवन श्रावस्ती के समीप एक विहार था। राजा प्रसेनजित् ने उसका निर्माण कराया था। वह श्रावस्ती नगर के दक्षिण पूर्व था। राजा ने इसे उपासिकाओ तथा श्राविकाओ के लिए निर्माण कराया था। राजकाराम शब्द से ही स्पष्ट है कि वह राजकीय आराम था। स्व० श्री राहुल साकृत्यायन ने इसे श्रावस्ती नगर के प्राकार के भीतर ही नगर मे रक्खा है। इसकी स्थिति दक्षिण द्वार से पश्चिम उत्तर की दिशा मे पडती है। फाहियान तथा युआन चुआग दोनो ने इसे देखा था। इसे भिक्षुणी सघाराम कहा गया है।

'नही भन्ते।'

'बोलो भगिनियो ! श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया यह सब तुम्हारे हैं ?'

'भन्ते। नही।'

'मन नित्य है अथवा अनित्य ?'

'अनित्य है। भन्ते।'

'क्या नित्य समझना युक्त है ?'

'नही भन्ते।'

'कारण–भगिनियो ?'

'भन्ते ! पूर्वकाल मे हमने प्रज्ञा द्वारा इसे देखा था। हमारे आध्यामिक आयतन अनित्य है।'

'साधु ! साधु !! भगिनियो। अच्छा, उत्तर दो। रूप नित्य है अथवा अनित्य ?

'अनित्य।'

'शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, धर्म नित्य है या अनित्य।

'अनित्य है भन्ते।'

'चक्षु विज्ञान नित्य है अथवा अनित्य ?'

'भन्ते ! अनित्य।'

'श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन विज्ञान नित्य है अथवा अनित्य ?'

अनित्य है भन्ते।'

'भगिनियो ! जलता तैल दीप देखा है ?'

'देखा है भन्ते !'

'भगिनियो ! तैल अनित्य है। विपरिणामधर्मा है। दीप बत्ती अनित्य है। विपरिणामधर्मा है। अर्चि अनित्य है। विपरिणाधर्मा है। आभा अनित्य है।

'हा भन्ते।'

'क्या उन्हे नित्य कहना उचित होगा ?'

'नही भन्ते।'

'क्योंकि अनित्य है।'

'भगिनियो ! इसी प्रकार, जो कहता है कि उसके छः आयतन अनित्य है। किन्तु आततनो का अनुभव, सुख, दुःख अथवा असुख-अदुःख नित्य है। शाश्वत है। क्या यह विचार ठीक है ?'

'नही भन्ते।'

'क्यो भगिनियो ?'

'जिस कारण से वेदना उत्पन्न होती है। उन कारणो के विरोध से वेदना निरुद्ध हो जाती है।'

'भगिनियो ! महावृक्ष का मूल अनित्य है। स्कन्ध अनित्य है। शाखा अनित्य है। पत्र अनित्य हैं। छाया अनित्य है। कहते है। मूलादि अनित्य है। परन्तु छाया नित्य है। क्या उनका कहना ठीक होगा।'

'नही भन्ते।'

'क्या कारण है भगिनियो ?'

'जब मूलादि अनित्य है तो उनसे होने वाली छाया कैसे नित्य होगी भन्ते ?'

'ठीक है। उसी प्रकार जो कहता है। छः बाह्य आयतन अनित्य है। किन्तु आयतनो द्वारा उत्पन्न वेदना, सुख-दुःखादि नित्य है। क्या यह कहना ठीक होगा ?'

'नही भन्ते।'

'भगिनियो ! एक चतुर गो घातक है। वह गाय को मारता है। गाय के शरीरस्थ मास तथा बाह्य त्वचा को हानि पहूँचाता है। बिना गाय को अनुपहत्य किये उसे तेज धुरा से छेदन करे और काटे। बाह्य त्वचा को साफ कर उस गाय को उस त्वचा मे रख दे और कहे—यह गाय पूर्ववत् है तो क्या यह कहना ठीक होगा ?'

'नही भन्ते।'

'भगिनियो ! मैने यह उपमा अर्थ समझाने के लिये दी है।'

'क्या अर्थ है भन्ते ?'

'अन्तस्थ मांस काय छः आध्यात्मिक आयतनो के नाम है। बाहरी चर्म काय छः बाहरी आयतनों के नाम है अन्तस्थ मांस, अन्तस्थ स्नायु बन्धन राग है। तीक्ष्ण गोविकर्तन आर्य प्रज्ञा का नाम है। यह आर्य प्रज्ञा आन्तरिक मल, अन्तस्थ वन्धन को छेदती है। काटती है।'

'भन्ते ! आस्रवों का क्षय कैसे सम्भव होगा।'

'भगिनियो ! सात बोध्यग है। इनके अभ्यास द्वारा इस जन्म में आस्रवो से व्यक्ति मुक्ति पाता है।'

भन्ते ! सत वोध्यग क्या है।'

'भगिनियो ! वे स्मृति, धर्म विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रान्धि, समाधि और उपेक्षा है।'

भिक्षुणियाँ विचारशील हो गयी। आयुष्मान् नन्दक ने कहा :

'भगिनियो ! जाने का समय हो गया।'

भिक्षुणियो ने नन्दक को अभिनदित की। आसन से उठी। उनका अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। उन्होंने निश्चय किया। भगवान् के पास जाने का।

भगवान् के पास वे गयी। भगवान् ने उन्हे देखकर पूछा .

'भिक्षुणियो ! यह जाने का समय है।'

भिक्षुणियो ने भगवान् का अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। वहाँ से प्रस्थान की।

भगवान् ने नन्दक को सम्बोधित किया :

'नन्दक ! कल पुनः भिक्षुणियों को अपवाद से उपदेश दो।'

'भन्ते ! नन्दक ने भगवान् को शिरसा प्रणाम किया।

× × ×

—भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावकों में छत्तीसवां स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती कुलगृहोत्पन्न नन्दक भिक्षुणियों के उपदेशको में अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ :

मज्झिम निकाय ३ · ५ . ४

थेर गाथा १८९, उदान २७९-२८२

A · i . 25, 193; iv : 358.

A A : ii : 794.

Apadan : i · 499.

MA · i : 348.

Thag A . i : 384.

अड्ढकाशी

काशी मे एक कुलीन तथा प्रतिष्ठित नागरिक की अड्ढकाशी[1] कन्या थी। कालान्तर मे रूप और गुणग्राहकता के कारण वह गणिका हो गयी थी।

भगवान् का उसने उपदेश सुना। भिक्षुणी हो गयी। भगवान् का धर्म द्वार सबके लिए खुला था। उसमे मनुष्य मनुष्य मे भेद का स्थान नही था। जाति, वर्ग अथवा गोत्र का एकाधिकार नही था। भगवान् ने धर्म और मनुष्य के बीच कोई माध्यम नही रखा था। धर्म का मूलाधार लोकतन्त्रीय था।

वह इतनी सुन्दर और कला-पटु थी कि काशी राज्य की जितनी आय थी उतनी उसकी एक रात्रि का शुल्क होता था। उसकी सेवा का मूल्य इससे कम नही होता था।

किन्तु उसका वह अनुपम सौन्दर्य उसकी ग्लानि का हेतु हुआ। उस रूपाजीवा को अपने सोन्दर्य से घृणा हो गयी थी। उसने तीनो विद्याओ का साक्षात्कार किया था। उसने भगवान् के शासन को पूरा किया था। उसकी रुचि धर्म मे निरन्तर बढ़ती गयी।

भिक्षुणी की इच्छा हुई। भगवान् से वह उपसम्पदा प्राप्त करे। भगवान् उन दिनो श्रावस्ती मे विहार कर रहे थे।

---

(१) अड्ढ काशी नामकरण के कई कारण दिये गये है अर्ध=अड्ढ अर्थात् अर्ध काशी इसलिए कहा जाता था कि वह आधा सहस्र मुद्रा एक रात्रि का पारिश्रमिक लेती थी। अश्वघोप के अनुसार काशी का अर्थ एक सहस्र था। एक सहस्र का आधा वह लेती थी इसलिए अड्ढ काशी उसका नाम प्रसिद्ध हो गया था।

नगर के धूर्तो ने सुना। गणिका श्रावस्ती जायगी। धन अपहरण की योजना बनायी। श्रावस्ती के मार्ग में गणिका की सम्पत्ति लूटने के लिए बैठ गये।

गणिका को बात मालूम हुई। उसने यात्रा स्थगित कर दी। भगवान् के पास दूत भेजा। सब घटना दूत को समझा दी। वह भगवान् से निवेदन करे—'गणिका भगवान् से उपसम्पदा चाहती है। वह धूर्तो के कारण नही आ सकती। इस स्थिति मे क्या करणीय है ?'

× × ×

दूत श्रावस्ती पहुँचा। भगवान् से गणिका की प्रार्थना निवेदन किया। भगवान् ने भिक्षु सघ को आमन्त्रित किया।

संघ एकत्रित हुआ। भगवान् ने संघ को उद्बोधित किया :

'भिक्षुओ ! दूत द्वारा उपसम्पदा दी जा सकती है। मै इसकी अनुमति देता हूँ।'

'किस प्रकार भन्ते !'

'भिक्षुओ ! भिक्षु दूत भेजकर उपसम्पदा नही देनी चाहिए।'

'क्या करना चाहिए भन्ते !'

'शिक्षमाण दूत द्वारा उपसम्पदा देना चाहिये। उसे भेजना चाहिये।'

'और–भन्ते !'

'श्रमणो ! दूत भेजना उचित है।'

'और–भन्ते ?'

मूर्ख अज्ञ दूत द्वारा उपसम्पदा नही करना चाहिए।'

'उससे क्या होगा ?'

'दुक्कट[२] होगा। दोष होगा।'

'कैसा दूत भेजा जाय भन्ते ?'

'चतुर दूत भेजा जाय। तदर्थ दूत भेजा जाय। इस प्रकार के भिक्षु दूत से उपसम्पदा दिलानी चाहिए।'

---

(२) दुक्कट दुष्कृति।

'उसकी प्रक्रिया क्या होगी भन्ते ?'

'भिक्षुणी' दूत गणिका के पास जायगी। भिक्षुणी दूत सघ के सम्मुख उपस्थित होगी। कन्धा पर उत्तरासग होगा। भिक्षुओ के चरणो की वन्दना करेगी। उकड़ू बैठेगी। करबद्ध निवेदन करेगी :

'आर्ये ! अमुकनाम्नी भिक्षुणी अमुकनाम्नी उपसम्पदा की इच्छुक है। उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुणी संघ मे दोषो से मुक्त है। वह किसी कारण किंवा अन्तराय के कारण उपस्थित होने मे असमर्थ है। अमुकनाम्नी सघ से उपसम्पदा माँगती है।

आर्यो ! संघ कृपया उसका उद्धार करे।

'तीन बार इस प्रकार उक्त बाते दुहराई जाय। तत्पश्चात्, ज्ञप्ति, अनुश्रावण तथा धारण की प्रक्रिया की जायेगी।

'जिस तरह उपसम्पदा दी जायगी वह समय सगीति बताना चाहिए। समय जानने के लिए छाया नापी जायगी। ऋतु का प्रमाण तथा दिन का भाग बताना चाहिए। यही सगीति होगी। भिक्षुणियो को तीन निश्चय तथा आठ अकरणीय बताना चाहिये।'

⊙

आधार ग्रन्थ

थेरी गाथा २२, उदान २५-२६

चुल्लवग्ग १० ५ ‧ ६

Ap ii 610-611.

Thig vso 25-26.

Thig A : 30, 32

Sp ‧ i : 242.

Vin ii : 277

V T, iii , 306; ii ‧ 195-96

उदयन

कौशाम्बी राज्य था। बौद्ध काल था। नगर धन-धान्य सम्पन्न था। गौरवशाली था। सास्कृतिक केन्द्र था। राजा परन्तप[1] था। उसकी राजमहिषी गर्भवती थी।

एक समय राजा अपनी राजमहिषी के साथ बैठा था। धूप का सेवन कर रहा था। राजमहिषी लाल कम्बल ओढे थी।

हत्थिलिंग पक्षी आकाश में उड रहा था। लाल कम्बल ओढे रानी को देखा। उसे भ्रम हुआ। मास का लाल टुकड़ा समझा। वुभुक्षा तीव्र हो गयी।

रानी पर टूटा। कम्बल चोंच में दबाया। वेग से उडा। रानी जीवन भय से कॉप उठी। कम्बल मे लिपटी रही। निस्तब्ध रही। कुछ करने का साहस नही हुआ।

पक्षी उसे छोड सकता था। आकाश से रानी ताल फल की तरह गिर सकती थी। जीवन लीला समाप्त हो सकती थी। उसने चुप रहना अच्छा समझा।

राजा किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। शोर करने लगा। पक्षी के पीछे कुछ दौडा। परन्तु पक्षी गगन में सवेग लोप हो गया। राजा अपनी विवशता पर खीझ उठा। उसे अपने ऊपर क्रोध आने लगा।

रानी को वस्तुस्थिति समझने मे देर न लगी। कम्वल को दृढतापूर्वक पकड लिया। जीवन मृत्यु के झूले मे झूलती रही। पक्षी आकाश मे उडता रहा। रानी का प्राण कमल पत्र पर पड़े चचल जल विन्दु की तरह था। किसी क्षण टपक सकती थी।

---

(१) परन्तप कोशाम्वी का राजा था। उदयन का पिता। इसका विशेप उल्लेख नही मिलता।

पक्षी कब तक उड़ता रहता। उसे गठरी भारी लगने लगी। शिथिल होने लगा। पर्वत मूल मे हरित वृक्ष देखा। स्थान अल्लकप[1] के आश्रम के समीप था। उसने कम्बल सहित वृक्ष के ऊपर छोड़ दिया। रानी पत्तियो पर गिरी थी। वृक्ष सघन था। वह गिर न सकी।

रानी के जान मे जान आयी। उसे आकाश से गिरने का भय था। एक भय समाप्त हुआ। दूसरे भय का आरम्भ हुआ। पक्षी से भय उत्पन्न हो गया। पक्षी का आहार न बन सका।

रानी ने पूरी शक्ति एकत्रित की। शोर किया। ताली बधायी। उसे आशा थी। उसकी पुकार पर लोग आ जायेंगे। उसकी रक्षा करेंगे। किसी मानव का वहाँ दर्शन नही हुआ। किन्तु पक्षी शोर सुनकर भय-भीत हुआ। भाग गया।

रानी तीन दिनों तक वृक्ष पर बैठी रही। पानी बरसता रहा। बाल कम्बल मे सिकुड गये। कम्बल के कारण जीवन खतरे मे पडा था। कम्बल के कारण आकाश मे वह रक्षित हुई थी। कम्बल सहायक हुआ वर्षा से रक्षा करने मे।

पर्वत मूल के समीप एक तपस्वी रहता था। अरुणोदय था। तपस्वी घूमता पर्वत मूल मे आया। रानी ने वृक्ष शिखर से उसे देखा। उसे जीवन आशा हुई। उसने पुकारा। तपस्वी वृक्ष के समीप आया।

उसने वृक्ष पर वस्तु देखी। उसे किसी विशाल पक्षी का भय हुआ। किसी हिंसक पशु का भय हुआ। किसी वैताल का भय हुआ। तपस्वी

---

(२) अल्लकप : वह अल्ल कप्प के राजा थे। वह राजा वेठदीपक के मित्र थे। दोनो ने ससार त्याग कर साधु हो गये थे। हिमालय पर निवास करने लगे थे। वे पहले एक साथ रहते थे। तत्पश्चात् अलग रहने लगे। पन्द्रहवें व्रत के दिन मिल लेते थे।

वेठदीपक ने देखा कि अल्लकप्प को हाथी परीशान करते थे। उसने एक Lute अल्लकप्प को दिया। उसमें तीन तार थे। पहला बजाने पर हाथी भाग जाते थे। दूसरा बजाने पर वे भागते थे परन्तु हर पग पर पीछे मुडकर देखते थे। तीसरा बजाने पर हाथियो का नायक आता था। अपने पीठ पर बजाने वाले को बैठा लेता था। अल्लकप्प राजा ही वह अल्लकप साधु था।

को रानी ने हिचकता देखा। उसने कम्बल से मुख निकाला। आवाज़ दिया। तपस्वी को मानव ध्वनि सुनकर और विस्मय हुआ।

तपस्वी की भयाकुल मुद्रा रानी ने देखा। उसने तुरन्त सुसस्कृत वाणी मे कहा :

'तपस्वी ! मै मानव हूँ। कृपया मेरी सहायता कीजिएगा ?'

तपस्वी ने वृक्ष पर देखा। एक सुन्दर महिला थी। उसका भय तिरोहित होने लगा। कौतूहल हुआ। वह अनिन्द्य सुन्दरी वहा किस प्रकार आ गयी थी। तपस्वी ने ऊपर देखते हुए प्रश्न किया :

'देवी ! आपकी जाति क्या है ?'

'मुने ! मै मनुष्य हूँ। विपत्ति मे हूँ। कृपया यहाँ से उतारिये।'

'शाखा पकडकर उतर आइये।'

'साधु ! मै गर्भिणी हूँ। कैसे ऊँचे-नीचे पाँव रख सकती हूँ। गिर सकती हूँ। गर्भ नष्ट हो सकता है।'

'तो क्या करूँ—?'

'सीढी मँगाइये।'

'अच्छा'

× × ×

तपस्वी अल्लकप्पने एक सीढी बनवायी। सीढी वृक्ष पर लगायी गयी। रानी वृक्ष से उतरी। तपस्वी के प्रति आभार प्रदर्शित किया। उन्हे प्रणाम किया। तपस्वी रानी को अपनी कुटी मे लाया। उसे पतली खिचडी खिलाया। उस आपत्ति काल मे वह खिचडी भूखी रानी को अमृत से भी उत्तम लगी।

रानी को प्रसव वेदना हुई। उसे पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। बालक वर्षा ऋतु तथा पर्वत ऋतु के साथ जन्म लिया था। उसका नाम उदयन रखा गया।

रानी ने अपना पूरा परिचय तपस्वी को दिया। शिशु रक्षा के लिये निवेदन किया। तपस्वी फलादि से माता तथा उसके शिशु का भरण-पोषण करने लगा। रानी लौटी नही। तपस्वी की कुटी मे रह गयी। उसका एकमात्र जीवन आधार शिशु था। उसी के भविष्य पर उसकी आँखे लगी थी।

रानी तपस्वी के साथ थी। उसके पति कौशाम्बीराज परन्तप की मृत्यु हो गयी। रात्रि मे तपस्वी ने नक्षत्र देखा। उससे मालूम कर लिया।

तपस्वी अल्लकप्प ने रानी को सूचित किया—'तुम्हारे पति का देहान्त हो गया। तुम्हारी क्या इच्छा है।'

रानी पति वियोग से दु.खी थी। वह सहसा कुछ उत्तर न दे सकी। तपस्वी ने कुछ समय पश्चात् पुन पूछा .

'तुम्हारा पुत्र यहाँ निवास करेगा अथवा अपने पिता का छत्र धारण करेगा ?'

'उससे पूछूगी।'

रानी ने पुत्र से पूछा। उसका विचार जानना चाहा। सम्पूर्ण कथा सुना गयी। पुत्र को अपने बास्तविक पिता का ज्ञान हुआ। उसे गर्व हुआ। उसने कहा—'मै यहाँ तपस्या कर क्या करूँगा ? मै राजा का पुत्र हूँ। अपने पिता का छत्र धारण करूँगा।'

रानी ने तपस्वी से पुत्र की इच्छा प्रकट की। तपस्वी ने कहा—'अच्छा।'

× × ×

तपस्वी हस्तिकान्त मन्त्र जानता था। उसे शक्र ने मत्र दिया था। शक्र एक वार उससे प्रसन्न हुए थे। उसकी कुटी पर आये। उससे कहा—

'तुम्हे यदि कष्ट हो तो मै दूर करूँ ?'

'हाथी घेरते है।' तपस्वी ने अपना अत्यन्त लघु दुःख शक्र से निवेदन किया।

'दु ख निवारण होगा तपस्वी ?' शक्र ने प्रसन्न वाणी से कहा। तपस्वी कृतार्थ हो गया। उसने इन्द्र को प्रणाम किया। इन्द्र बोले :

'तपस्वी ! यह हस्तिकान्त वीणा है। यह हस्ति कान्त मत्र है। हाथी भगाने के लिए मत्र पढ कर वीणा बजान पर हाथी भाग जायेंगे।'

'ओर वुलाने के लिये देवेन्द्र ?'

'यह भी मत्र है। हाथी वुलाना हो तो इस मत्र को पढ़ कर वीणा बजाना। हाथी आ जायेंगे।'

तपस्वी ने हस्ति कान्त मंत्र उदयन को सिखाया। कुमार तेजस्वी था। मेघावी था। चतुर था। मंत्र सीख गया।

उदयन[1] कुमार ने परीक्षा करने का विचार किया। वह एक वट वृक्ष पर पढ गया। उसने हाथी बुलाने के लिये वीणा वादन दिया। हाथियों का समूह आ गया।

उसने उन्हे भगाने के लिये पुन: वीणा वादन किया। हाथी भाग गये। शिल्प पर विश्वास हो गया। अपनी शक्ति सचय तथा राज प्राप्ति के साधन मे लगाने का विचार किया। उसे शिल्प के माहात्म्य तथा शक्ति का ज्ञान हुआ।

दूसरे दिन उसने वीणा वादन किया। हाथियो का विशाल समूह उसके सम्मुख एकत्रित हो गया। हाथियो के नायक ने उसके सम्मुख मस्तक झुका दिया।

उदयन उसके स्कन्ध प्रदेश पर आरूढ हो गया। उसने युद्ध योग्य युवक हाथियो का चयन किया। उसने लाल कम्वल जिसे ओढकर माँ वृक्ष पर आयी थी ले लिया। साथ ही पिता को अँगूठी माता से माग ली। माता की वन्दना की। तपस्वी की वन्दना की। प्रदक्षिणा की। तपस्वी ने मगल कामना की। स्वस्ति वाचन किया।

उदयन राज्य प्राप्ति के लिये हस्ति समूह के साथ प्रयाण किया। माता को आँखे भर आयी। वह पुत्र की ओर एक टक उस समय तक देखती रही। जब तक वह ओझल नही हो गया।

मार्ग मे उदयन ने घोषणा की। वह राज्य प्राप्त करने जा रहा था। जिन्हे सम्पत्ति की इच्छा हो। वे साथ आयें। उदयन के पीछे साहसी युवक योद्धाओ का विशाल समूह लग गया। बिना धन व्यय किये। उसने एक सेना संगठित कर ली।

---

(१) उदयन नाम के अनेक लोगो का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थो मे आया है। कम से कम सात उदयन के नामो का उल्लेख स्पष्ट किया गया है। उदयन भिक्षु, कोसल के उदयन उपासक, उदयन सुमन बुद्ध के उपस्थापक, उदयन कौण्डप्प बुद्ध के साथी, राजा उदयन चैत्य, उदयन सिद्धस्त बुद्ध के पिता, जिन्हें जयसेन भी कहा जाता है, उदयन राजा, आदि भिन्न-भिन्न व्यक्ति है।

कौशाम्बी नगर पर घेरा डाल दिया। सन्देश भेजा—'मै राजा का पुत्र हूँ। कम्बल और अंगूठी मेरे पास चिन्ह है। मेरी माता जीवित है। जिन्हे विश्वास न हो वे मेरे पास आएँ। मुझे अपने पिता का राज्य चाहिए। छत्र चाहिए। सम्पत्ति चाहिए।'

किसी को विरोध करने का साहस नही हुआ। कोशाम्बी नगरी का द्वार खुला। जयघोष के साथ, विशाल अवैतनिक सेना के साथ, विशाल हाथी समूह के साथ, उसने नगर मे प्रवेश किया।

पुरोहितो ने, अमात्यो ने, मन्त्रियो ने, पौरजनो ने उदयन को राजा स्वीकार किया। उसे छत्र मिला। सिहासन मिला। सम्पति मिली। कुशल राजा हुआ। किन्तु वह अपना शिल्प भूला नही। अवकाश मिलते ही वनो मे चला जाता था। हाथी का सग्रह करता था।

उदयन ने घोषक को अपना कोषाध्यक्ष बनाया। उसने घोषक की धर्मपुत्री सामावती से विवाह कर लिया।

× × ×

चण्डप्रद्योत उज्जैन का राजा था। उसने सकल्प किया। हाथी पकडने की विद्या उदयन से ग्रहण करेगा। उदयन उसके लिए सहज तैयार नही था।

प्रद्योत ने एक काठ का हाथी[१] बनाया। उसके भीतर वहुत से योद्धाओ को वैठा दिया। उदयन को हाथी पकड़ने का शौक था। वह उस हाथी के पास गया। उसके पहुँचते ही काठ के हाथी का द्वार खुला। वर्मधारी सशस्त्र सैनिक हाथी के पेट से वाहर कूद पड़े। उदयन चकित हो गया। कुछ न कर सका। छल का शिकार वन गया। पकड़ लिया गया।

---

(१) काष्ठ हाथी : ट्राय नगर का पतन काष्ठ के घोडे के कारण हुआ था। यूनानियो ने ट्राय का पतन होता न देखकर काठ का घोडा वनाया। उसमें सैनिक वैठा दिये गये। ट्राय वाले कौतूहल वस घोडा दुर्ग में ले गये। रात्रि मे सैनिक घोड़ा से वाहर निकल आये। दुर्ग का द्वार खुला। यूनानी सैनिकों का प्रवेश हुआ और ट्राय का पतन हुआ :

अवन्ती नरेश प्रद्योत ने उदयन[1] के पास अपनी कन्या वासुलदत्ता (वासवदत्ता) को भेजा। उसे समझा दिया। उदयन से शिल्प सीख ले। उदयन राजकन्या पर अनुरक्त हो गया। राजकन्या को साथ लिया। अपने नगर कौशाम्बी लौट आया। प्रजा प्रसन्न हुई नव दम्पत्ति देखकर।

---

(१) उदयन ने कालान्तर मे मार्गंदिय से भी विवाह किया था। उसका वर्णन सामावती और खुज्ज उत्तरा के प्रसग मे किया गया है।

उदक वन कौशाम्बी में उसका सामना पिण्डोल भारद्वाज से हुआ था। पिण्डोल को उसके प्रासाद की रमणियो ने वस्त्र दिया था। राजा ने पिण्डोल से वस्त्र ग्रहण करने के औचित्य के विषय में प्रश्न किया। पिण्डोल ने कुछ उत्तर नही दिया। राजा ने उसे लाल चीटियो से कटाने की धमकी दी। किन्तु पिण्डोल भारद्वाज अपनी ऋद्धि शक्ति से गगन मे लोप हो गया। भारद्वाज की कालान्तर मे राजा से मित्रता हो गयी। राजा ने उससे धार्मिक प्रश्न किया था। किस प्रकार युवक भिक्षु काम पर नियन्त्रण करते थे। इसी प्रसग मे उदयन ने स्वय अपने को भगवान् का अनुयायी होना घोषित किया था।

उदयन के पुव का नाम बोधिराजकुमार था। उदयन भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् जीवित था। यह पता नही चलता कि बोधिराजकुमार ने उदयन के पश्चात् राज सिंहासन पाया था या नही।

उदयन को वत्सराज, वशराज, कोशाम्बीराज कहा गया है। उसे वत्सराज भी कहा गया है।

●

आधार ग्रन्थ :

विनय पिटक चुल्ल वग्ग ११ . ४ १

DhA i · 216.

J iii : 157; iv . 375, 384.

S · iv . 110.

S A iii . 27

SnA , ii : 514, 515

सामावती

अप्पमादो अमत पदं पमादो मुच्चनो पदं ।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥

(अप्रमाद अमृत पद है । प्रमाद मृत्यु पद है । अप्रमादी की मृत्यु नही होती । प्रमादी तो मृत स्वरूप है ।)

—ध० २१

कोशाम्वी के राजा उदयन थे । उनकी तीन रानियाँ थी ।[१] एक का नाम मागन्दिय था । दूसरी का नाम सामावती (श्यामावती) था । तीसरी का नाम वासवदत्ता था । सामावती भद्रवति राष्ट्र के भद्रिका[२] नगर के भद्रवतिक[३] श्रेष्ठी की कन्या थी ।

भद्रावती मे भयकर प्लेग फैला । नर-नारी मरने लगे । भद्रवतिक सेठ सामावती तथा कुटुम्व की प्राण रक्षा निमित्त भद्रावती से भागकर कोशाम्वी मे आकर शरण ली ।

घोपित[४] श्रेष्ठी का अन्न सत्र कोशाम्बी मे चलता था । पास मे

---

(१) एक मत है कि उदयन की तीन रानियाँ थी ।

(२) भद्रिका किंवा भद्दिय । अंग देश मे एक नगर था ।

(३) भद्रवतिक यह एक निगम भद्रवती था । सामावती के पिता भद्रवतिय श्रेष्ठीका निवास स्थान था । कौशाम्वी तथा भद्दवती अथवा भद्रवती के बीच व्यापार होता था । भद्रवती के आधार पर भद्रवतिक श्रेष्ठी का नाम पडा था ।

(४) घोषित : घोपक श्रेष्ठी भी कहते है । यह राजा के एक दरवारी का पुत्र था । वह घूर पर फेक दिया गया था । एक पथिक ने उस नवजात शिशु को घूर पर से उठा लिया । कौशाम्वी के श्रेष्ठी ने उसे लेकर पाला । कुछ दिन

कुछ नही था। सामावती अन्नसत्र में भोजन लेने गयी। पहले दिन उसने तीन व्यक्ति का भोजन लिया। दूसरे दिन दो व्यक्ति का भोजन लिया। तीसरे दिन केवल एक व्यक्ति का लिया।

प्रथम दिन ही उसके पिता का देहान्त कोशाम्बी पहुँचने पर हो गया। दूसरे दिन उसकी माता का अवसान हो गया। तीसरे दिन जब उसने केवल एक ही व्यक्ति के लिए भोजन माँगा तो मित्त[1] जो भोजन बाँट रहा था उसे चिढाया—

'आज तुम्हे मालूम पडता है तुम्हारे पेट की स्थिति मालूम पडी है।'

'क्या कहते हो भाई? मै समझ नही सकी?' सामावती से उदासीन स्वर मे जिज्ञासा की।

'पहले तुम मालूम पड़ता था बहुत भूखी थी, इसलिए तीन का भोजन लिया। दूसरे दिन भूख की ज्वाला कम हुई इसलिए दो का भोजन लिया। आज तुम्हे साधारण भूख लगी है। इसलिए केवल एक का भोजन ले रही हो।'

पश्चात् घोषक को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने घोषक को दासी काली के द्वारा मार डालना चाहा। पर सफल नही हुआ। उसने एक कुम्भकार को एक सहस्र मुद्रा घोषक को मारने के लिए दी। एक पत्र के साथ घोषक को कुम्भकार के पास भेजा कि पत्र पाते ही प[त्र] वाहक का वध कर दो। मार्ग में घोपक को उसका दूध पीता भाई मिला। पत्र उसे देकर कुम्भकार के पास भेजा। कुम्भकार ने उसे मार डाला। श्रेष्ठी ने एक पत्र के साथ अपने ग्राम के व्यवस्थापक के पास भेजा। उसे देखते ही मार [illegible] पत्र उसके शरीर से बाँध दिया गया ताकि दूसरे को न दे सके। मार्ग मे ग्राम श्रेष्ठी के यहाँ ठहरा। श्रेष्ठी की कन्या उस पर अनुरक्त हो गयी। पत्र कन्या ने पढा। उसके स्थान पर यह लिख कर रख दिया कि घोपक की शादी उसके साथ धूम-धाम के साथ कर दी जाय। घोपक का विवाह हो गया। श्रेष्ठी सुनते ही बीमार पड गया। मृत्यु शय्या के पास घोपक तथा उसकी पत्नी आये। श्रेष्ठी कहना चाहता था। 'मै इसे अपनी सम्पत्ति नही देना चाहता' परन्तु मुख से निकल गया। चाहता हूँ। घोपक बडा पुण्यात्मा हुआ। राजा उदयन ने उसे अपना श्रेष्ठी बना लिया।

(१) मित्त : घोपक के अन्न सत्र का व्यवस्थापक था।

'नही भाई, यह बात नही है।' सामावती की आँखों में आँसू आ गये।

'ओह ! क्या बात है ?'

'भाई ! पहले दिन पिता मर गये। और दूसरे दिन माता, अब मै अकेली हूँ।'

'अरे—!'

सामावती अंचल से आँसू पोछने लगी। मित्त ने उसे सान्त्वना दी। उसकी पीठ सुहला कर सन्तोष दिया। कन्या रूप अनाथ जानकर उसे रख लिया।

× × ×

अन्नसत्र में बडी भीड होती थी। कोलाहल होता था। लोग एक पर एक टटते थे। एक दिन सामावती ने वहाँ की धक्कम-धुक्की देखी। उसने अपने पोष्य पिता से कहा—'यदि कहें तो मै इन्तजाम कर दूँ ?'

'निश्चय ! बडा गडबड होता है।'

'मै ठीक कर दूँगी।'

एक उपाय सामावती ने निकाला। आने और जाने का मार्ग लगा-कर अलग कर दिया। लोग एक पंक्ति में एक तरफ से क्रमश· आने लगे। दूसरी तरफ से निकल जाते थे। हल्ला-गुल्ला शान्त हो गया। सुचारु रूप से काम होने लगा।

घोषक ने देखा। अन्नसत्र में हल्ला-गुल्ला नहीं हो रहा था। उसे आश्चर्य हुआ। कारण पूछा। सामावती की बात मालूम होने पर, उसे बुलाया। बात करने पर प्रभावित हुआ। उसे अपनी दत्तक पुत्री बना लिया।

सामावती का पूर्व नाम श्यामा था। उसने 'वतो' अर्थात् घेरा बनाया था। अतएव उसका नाम सामावती पड़ गया।

× × ×

एक पर्व था। नर-नारी स्थान करने जा रहे थे। सामावती भी स्नान करने निकली। सरिता घाट दिशा मे जा रही थी। राजा उदयन ने उसे देखा। उसकी सोम्य मूर्ति से आकर्पित हुआ। उसके प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उसके कुल का पता लगाया।

सायकाल राजा ने घोषक के यहाँ सन्देश वाहक भेजा। सामावती राजप्रासाद में भेजी जाय। घोषक ने कन्या को राज-भवन में भेजना अस्वीकार कर दिया।

राजा क्रोधित हुआ। उसने घोषक तथा स्त्री को घर से निकलवा दिया। घर में ताला लगा दिया गया। वे बिना घर-बार के हो गये।

सामावती को बात मालूम हुई। घोषक के पास आयी। निवेदन किया :

'पिता जी ! क्या बात है ?'

'राजा तुझे राजभवन में चाहता है।'

'तो—?'

'पुत्री ! मैं कैसे तुम्हें वहाँ भेज सकता हूँ।'

'इसीलिये राजा ने घर बन्द करवा दिया है ?'

'हाँ पुत्री।'

'पिता जी।'

'कहो।'

'मेरी बात मानोगे ?'

'क्यों न मानूंगा ?'

'मैं राज भवन में जाऊँगी।

'ना—।' घोषक चिल्ला उठा। घोषक की पत्नी ने मुँह फेर लिया।

'पिता जी।'

'सामावती ! यह कभी नहीं होगा।'

'पिता जी विश्वास रखो। आपकी प्रतिष्ठा पर [illegible] नहीं [illegible]!'

सामावती राजभवन में आयी। वह राजा उदयन की सुन्दर रानी बन गयी। कालान्तर में मागंदिया को राजा ने रानी बनाया।

वह मागंदिया पुत्री मागंदिय की, जिस मागंदिय ब्राह्मण ने भगवान् के साथ विवाह निश्चित किया था। भगवान् ने उसका तिरस्कार करके अस्वी-कार कर दिया था। मागंदिया उस समय से भगवान् के प्रति द्वेषी थी।

उसके माता-पिता भगवान् का उपदेश सुनकर भिक्षु भिक्षुणी बन गये थे। मागदिय अपने चाचा चुल्ल मागदिय के यहाँ रहने लगी थी।

चुल्ल मागदिय कन्या मागदिय को लेकर कोशाम्बी आया। उसके रूप से आकर्षित होकर राजा उदयन ने उससे विवाह किया। उसे रानी बना लिया। मागदिय भगवान् का वह वाक्य कभी नही भूलती—'यह शरीर मल-मूत्र का पात्र है।' उसे यह बात लग गयी थी। भगवान् से बदला लेना चाहती थी।

घोषक, कुक्कुठ[1], पावारिय[2] तथा खुज्जउत्तरा की प्रार्थना पर भगवान् का कोशाम्बी आगमन हुआ।

कोशाम्बी मे भगवान् का आगमन सुनकर मागदिय ने भगवान् से बदला लेने की योजना बनाना आरम्भ किया।

सामावती रानी की दासी ने भगवान् का उपदेश सुना। वह स्रोतापन्न हुई। रानी उससे प्रतिदिन भगवान् का उपदेश सुनती थी। रानी मागदिय को यह बात मालूम हुई। वह ईर्ष्या से जल गयी। वह भगवान् से द्वेष रखती थी। सामावती को इसका दण्ड देने का विचार किया।

सामावता तथा उसकी सखियाँ राजप्रासाद मे नव-निर्मित झरोखे से भगवान् का दर्शन करती थी। परस्पर चर्चा करती थी।

× × ×

मागदिय को अच्छा अवसर मिला। उसने राजा से कहा–'सामावती आपकी हत्या का षडयन्त्र रच रही है।' राजा ने ध्यान नही दिया। किन्तु मागदिय अपनी बात पर जोर देती गयी। राजा को नव-निर्मित झरोखा दिखाया। उसे षडयन्त्र का आरम्भ बताया गया। राजा मे सन्देह अकुरित हुआ। उसने झरोखा बन्द करवा दिया। खिड़कियाँ ऊपर उठवा कर लगवा दिया। ताकि उनसे कोई बाहर न देख सके।

मागंदिय की पहली योजना विफल हुई। परन्तु भगवान् का जो दर्शन सामावती तथा उनकी सखियो को मिलता था वह बन्द हो गया। मागदिय को थोड़ा सन्तोष हुआ।

---

(१) कुक्कुट : घोषक का मित्र था।

(२) पावारिय . घोषक का साथी था।

मागंदिय ने सामावती के विरुद्ध राजा का कान भरना आरम्भ किया। उस पर नाना प्रकार के दोषारोपण किये। परन्तु राजा ने सामावती को निर्दोष पाथा। उसे कोई एक वर मागने के लिए कहा। सामावती ने यही इच्छा प्रकट की। भगवान् प्रतिदिन राजभवन मे उपदेश देने आया करे। राजा ने सामावती की बात मान ली।

राजा ने भगवान् से निवेदन किया। राज-भवन मे प्रतिदिन उनका शुभागमन हो। वे रानी तथा राजभवन की महिलाओ को उपदेश दे। परन्तु भगवान् ने आनन्द को राजभवन भेज दिया। स्वय नही गये।

मागदिय ने कुछ दासों को रुपयो की लालच देकर एकत्रित किया। उनका काम था। राज मार्ग मे भगवान् की निन्दा करें। उनके प्रति अपशब्दों का व्यवहार करें। अपमान करे।

आनन्द ने यह स्थिति देखकर भगवान् से कहा—'हमे कही और चलना चाहिए।'

नही आनन्द !' भगवान् ने कहा, 'मै उस हाथी के समान हूँ जो मै कीचड़ प्रवेश किया है। मुझे उन कीचड़ो को बर्दास्त करना चाहिए, जो हम पर उछाले जा रहे हैं।'

सात दिन के पश्चात् भगवान् के प्रति होता प्रचार स्वत. समाप्त हो गया। कहने वाले थक गये। भगवान् पर कोई प्रभाव नही पड़ा। जनता वास्तविकता समझ गयी :

× × ×

मागदिय ने दूसरी योजना बनायी। अपने चाचा चुल्ल मागदिय[1] से कहा आप आठ पक्षी एक विदूषक के साथ महाराज की मदशाला मे भेजो। जब वे मदपान रत हो।

चुल्ल मागंदिय ने योजना कार्य रूप मे परिणत किया। राजा ने उन्हे देखकर पूछा :

---

(१) चुल्ल मागंदिय मागदिय का चाचा तथा मागदिय का कनिष्ठ भ्राता था। विशेष मागंदिय कथा मे द्रष्टव्य है।

'इनका क्या किया जाय।'

'राजन् ! इन्हे सामावती के पास भेज दिया जाय।'

'वह क्या करेगी ?'

'आपके निमित्त उन्हे पकायेगी।'

'ठीक है भेज दो।'

मागंदिय के सुना। वह प्रसन्न हुई। परन्तु सामावती तथा उनकी सखियों ने पक्षियों को मारना अस्वीकार कर दिया।

मागदिय ने Page से कहा। उन्हें बुद्ध के भोजन निमित्त तैयार किया जाय। Page को सामावती ने घूस देकर मिला लिया। जीवित पक्षियो के स्थान पर मरे पक्षी रख दिये गये। सामावती ने उनका मांस बनाया और भगवान् के पास भेज दिया।

× × ×

मागदिय ने अपनी यह योजना असफल होती देखकर दूसरी एक और योजना बनायी। उसने अपने चाचा से एक सर्प मंगाया। सर्प का विपैला दात उखड़वा दिया। राजा उदयन वसी बजाता था। उसे अपने साथ रखता था। रानी ने वसी मे साप रख दिया। वसी का मुख एक फूल से बन्द कर दिया।

राजा उदयन एक-एक सप्ताह अपनी तीनों रानियों के अन्त.पुर में विवास करता था। वह सामावती के अन्तःपुर की ओर जाने लगा। मागदिय ने राजा से अनुरोध किया। वहाँ न जाय। जीवन का भय है। राजा ने नही माना। मागदिय स्वयं चलने के लिये तैयार हो गयी। राजा ने उसे साथ ले लिया।

राजा गाढी निद्रा मे सो गया। मागदिय ने वंसी से फूल निकाल लिया। सर्प निकला। तकिया पर गेड़ली मार कर बैठ गया। मागंदिय ने शोर दिया–'साप–साप–साप।'

राजा जाग उठा। उसने अपने तकिया पर सर्प देखा। वह घबड़ाया। मागदिय रोकर बोल उठी–'सामावती ने राजन् ! आपको मारने का यह षडयन्त्र किया था।'

'ओह–बुलाओ उसे।' राजा को इस बार निश्चय हो गया था। सामावती सचमुच उसका अन्त करना चाहती थी। मागदिय का विचार ठीक था। उसका गलत था।

× × ×

राजा ने अपना धनुष-बाण मगाया। वह निपुण धनुर्धर था। वह एक ही बाण से कई व्यक्तियो को घायल कर सकता था।

सामावती आयी। सखियाँ उसके साथ थी। मार्गदिय मुसकुराई। सामावती ने अनुपम किया। विनय किया। वह निर्दोष थी। राजा ने एक बात नही मानी। उन्हे एक पंक्ति मे एक के पीछे दूसरे को खड़ा करवा दिया। सबसे आगे सामावती थी।

राजा ने सामावती के हृदय को लक्ष्य कर बाण छोड़ा। सामावती किंचित् मात्र विचलित नही हुई। बाण छूटते ही मार्गदिय प्रसन्नता से उछली। परन्तु बाण सामावती को स्पर्श नही कर सके। गिर पड़े। राजा चकित हुआ।

मार्गगिय उदास हो गयी। वहाँ से भागी। सामावती शान्त खड़ी रही। राजा को विश्वास हो गया। सामावती निर्दोष थी। राजा प्रेम से उसके पास चला गया। मधुर स्वर मे पूछा :

'रानी! तुम पर व्यर्थ आरोप लगाया गया था।'

'होता ही रहता है राजन्!'

'रानी! तुम्हारी मै क्या इच्छा पूर्ण कर सकता हूँ।'

'आर्य! भगवान् यहाँ प्रतिदिन उपदेश देने आया करे।'

'आवश्य आयेगे आर्ये!'

× × ×

राजा ने भगवान् के पास निमन्त्रण भेजा। भगवान् स्वय नही आये। उन्होंने आनन्द को भेज दिया।

आनन्द प्रतिदिन राजभवन उपदेश देने आने लगे। उन्हे प्रतिदिन वहाँ भोजन मिलने लगा। एक दिन उपस्थित महिलाओं ने पाँच सौ वस्त्र, जिसे राजा ने उन्हे दिया था। आनन्द को दे दिया। राजा बड़ा

क्रोधित हुआ। परन्तु उसे जब मालूम हुआ, कि आनन्द ने उसे भिक्षुओं को दे दिया और कुछ नष्ट नहीं हुआ, तो पांच सौ और भेज दिया।

मागदिय अपनी सब योजनाओं को असफल होते देखकर प्रतिहिंसाग्नि से सुलग उठी थी। उसने सामावती तथा उसकी सखियों को नष्ट करने का अन्तिम निश्चय कर लिया।

चुल्ल मागदिय के साथ उसने पुनः योजना बनायी। षड्यन्त्रकारियों ने सामावती के प्रासाद के स्तम्भों को तेल में डुबोये कपड़ों से ढंक दिया। दाहक पदार्थ सब जगह रख दिये। निश्चित समय पर आग लगा दी गयी। प्रासाद अकस्मात् ज्वालामय हो उठा। सामावती तथा उसकी सखियों को बाहर भाग निकलने का अवसर भी नहीं मिला। सब उसमें भस्म हो गयीं।

× × ×

राजा को सामावती के मरने का बड़ा दुःख हुआ। उसने मागंदिय का यह कार्य समझा। मागदिय के सभी सगे-सम्बन्धी इस प्रलोभन देकर बुलाये गये। राजा उन्हें पुरस्कार देगा।

वे प्रसन्नता पूर्वक एकत्रित हुए। मागंदिय अत्यन्त प्रफुल्लित थी। राजा सामावती की मृत्यु पर उसके सम्बन्धियों का सत्कार कर रहे थे। सगे-सम्बन्धियों सहित अपनी सफलता पर फूली नहीं समाती थी।

किन्तु राजा ने उस समूह को सैनिकों से घिरवा लिया। आज्ञा दी :

'सबको प्रासाद की भूमि मे कमर तक गाढ़ दो। उन पर घास-फूस रखकर आग लगा दो।'

मागदिय चिल्ला उठी। राजा की तरफ बढ़ी। राजा ने सैनिको को सकेत किया। वह आगे न बढ़ सकी। मागदिय के सम्बन्धी उस पर बिगडने लगे। कोसने लगे। उसे मार डालने पर कटिबद्ध हो गये। मागदिय की रक्षा सैनिकों ने उसे दूर ले जाकर की। मागदिय मूर्छित होकर गिर पडी।

राजा पाषाण तुल्य हो गया था। उस पर उसने शोक, दुःख, आर्तनाद का कुछ प्रभाव नही पड़ा। उठकर राजप्रासाद मे चला गया।

× × ×

सब सम्बन्धी प्रासाद के प्रांगण में कमर तक भूमि में गाड दिये गये। उन पर घास-फूस रख कर आग लगा दी गयी। घोर आर्तनाद में वे जल गये। जलने पर उस भूमि पर राजा ने हल चलवा दिया।

मागंदिय के सुन्दर शरीर से मांस के टुकड़े काटे गये। उन्हे पूरी की तरह तेल में छाना गया। मागदिय को जबर्दस्ती उसका ही काटा हुआ, पका हुआ मास जलर्दस्ती खिलाया गया।

× × ×

भिक्षाटन करने भिक्षु गये थे। उन्होने घटना का वृत्तात सुना। भस्म अन्त.पुर देखा। भगवान् के पास आये। भगवान् का अभिवादन तथा वन्दना कर पूछा .

'भन्ते ! सामावती की क्या गति हुई ?'

'भिक्षुओ ! भस्म होने वाली उपासिकाओं मे कुछ श्रोतापन्न थी। कुछ सकृदागामी थी। कुछ अनागामी थी।'

'उनका क्या हुआ भन्ते !'

'उनकी मृत्यु निष्फल नही हुई है।'

'किस प्रकार ?'

'जो प्रव्रजित गृहस्थ प्रमाद के साथ विहार करते है, वे जीवितावस्था मे भी मृत स्वरूप है।'

'और मागदिय रानी–।'

'वह जीवित रहकर भी मृतक स्वरूप है। मृत्यु के परान्त भी वह मृत्यु स्वरूप ही रहेगी।'

'और सामावता ?'

'भिक्षुओ ! सखियों के साथ वह मर कर भी जीवित है। अप्रमादियो की मृत्यु नही होती।'

× × ×

सामावती की दो सखियाँ जिनका नाम भी सामा था इतनी दुःखी हुई कि उन्होने प्रव्रज्या ले ली।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावक-श्राविकाओं तथा उपासक-उपासिकाओं की तालिका में उनहत्तरवां तथा उपासिका श्राविकाओ में चौथा स्थान प्राप्त भद्रवती राष्ट्र भद्दिया नगर, भद्रवतिक श्रेष्ठी पुत्री, पश्चात् वत्स कोशाम्बी घोषित श्रेष्ठी की धर्मकन्या वत्सराज उदयन की महिषी सामावती मैत्री विहार प्राप्तो मे अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ :

धाम्मपद २ १

A i 26; iv 348.

A A ii . 791.

DhA i 187—91, 205—225,

Ud , vii · 10,

शूर अम्वष्ट

शूर अम्वष्ट[1] का जन्म कोसल श्रावस्ती श्रेष्ठी कुल मे हुआ था। वह निर्गन्थो का अनुयायी था। एक दिन भगवान् भिक्षाचार करते उसके द्वार पर गये।

शूर ने भगवान् को घर के अन्दर आने के लिए आमन्त्रित किया। उन्हे सुखासन पर वैठाया। स्वादिष्ट भोजन दिया। भोजन के पश्चात् भगवान् ने प्रस्थान के समय शूर को धन्यवाद दिया।

शूर भगवान् के शील, व्यवहार तथा आचरण से अत्यन्त प्रभावित हुआ। श्रोतापन्न हो गया।

भगवान् ने कुछ समय पश्चात् श्रावस्ती का त्याग किया। मार ने सुअवसर पाया। भगवान् का रूप धारण किया। शूर के पास आया। शूर ने उसका स्वागत किया। शूर से उसने कहा 'जो कुछ पहले कहा था। वह ठीक नहीं है। उसका विरोध करने आया है।' शूर ने किंचित् विस्मित स्वर मे प्रश्न किया।

'आवुस ! मैंने कहा था। सभी संस्कार अनित्य हैं।'

'फिर–।'

'किन्तु यह बात ठीक नही है।'

'तो क्या ठीक है भन्ते ?'

'सभी सस्कार अनित्य नही है।'

'अच्छा–!'

शूर विस्मित हुआ। भगवान् का जो उपदेश सुना था, दूसरों के

---

(१) अम्वष्ट से शूर अम्वष्ट को नही मिलाना चाहिए। इस प्रकार की त्रुटियाँ कई वार लेखको ने की हैं।

मुखों से जो सुना था। जिसे स्वयं माना था। आज अचानक बात कैसे हो गयी। उसने शकित वाणी से प्रश्न किया :

'यह कैसे हुआ भन्ते !'

'आवुस ! उसके पश्चात् मैने मनन किया। मै इसी परिणाम पर पहुँचा कि सभी सस्कार अनित्य नही है।'

'नही-नही। यह नही हो सकता।' शूर ने जोर से कहा, 'तुम तथागत नही हो।'

मार ने देखा। वह पहचाना जा रहा है। वहाँ से भागा।

●

आधार ग्रन्थ :

A : i : 26; iii : 451.

A A : i · 215.

D A : iii : 864.

महानाम[1]

महानाम अमृतोदन के पुत्र थे। अनुरुद्ध के ज्येष्ठ भ्राता थे। भगवान् के भतीजा थे। महानाम स्वय प्रव्रजित होना चाहते थे। परन्तु कनिष्ठ भ्राता अनुरुद्ध के प्रव्रजित होने पर घर रह गये। महानाम भगवान् से एक मास ज्येष्ठ थे।

महानाम को अपने ज्येष्ठ भ्राता बुद्ध के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। उनके ज्ञान को जानने की निरन्तर अभिलाषा रखते थे। एक बार भगवान् कपिलवस्तु पधारे। महानाम से रात्रि मे ठहरने के लिए स्थान की जिज्ञासा की। महानाम ने चारो ओर उपयुक्त स्थान खोजा परन्तु नही मिला। अन्ततोगत्वा भ्रन्दु कालाय के आश्रम मे ठहराया।

दूसरे दिन महानाम भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुए। उस दिन महानाम, भ्रन्दु तथा भगवान् मे धर्म की चर्चा हुई। भ्रन्दु अत्यन्त प्रभावित हुए। कपिलवस्तु त्याग कर चले गये। पुन उन्हे किसी ने इस जगत् मे नही देखा।

महानाम की एक दासी कन्या थी। उसका नाम वासभ क्षत्रिया था। उनकी दासी नागमुण्डा की कन्या थी। कोसल राज प्रसेनजित् शाक्य वंश से सम्बन्ध करना चाहते थे। परन्तु महानाम अपने शुद्ध रक्त वश की कन्या नही देना चाहते थे। महानाम ने वासभ क्षत्रिया का विवाह राजा प्रसेनजित् के साथ करने का विचार किया।

प्रसेनजित् को सन्तोप हुआ। भगवान् के वश से उनके वश का

---

(१) महानाम नाम के कई व्यक्ति हुए है। महानाम थेरा श्रावस्ती के भिक्षु थे। दूसरे महानाम पचंवर्गीय भिक्षुओ मे एक थे। तीसरे महानाम एक लिच्छवी थे। पाँचवें महानाम श्रीलंका के एक राजा हुए हे। छठवे महानाम थेरी द्वीघसण्ड के हुए है। सातवें महानाम थेरा सद्धर्म प्रकाशिनी के लेखक थे।

सम्बन्ध हो गया था। राजा प्रसेनजित् को शंका थी। शाक्य अपने वंश की शुद्ध कन्या नही देगे। राजा ने वासभ क्षत्रिया और महानाम को एक ही पात्र मे भोजन करने के लिये कहलवाया। ठीक भोजन के समय एक दूत आया। महानाम उठ कर चले गये। कन्या ने भोजन किया। सब लोगो ने समझा। महानाम ने कन्या के साथ भोजन किया। इसका विस्तृत वर्णन मैने विदूडभ की कथा मे किया है। यहाँ उसे पुन. लिखना अप्रासगिक होगा।

कपिलवस्तु मे शाक्यो ने सस्थागार निर्माण कराया था। उसका उद्‌घाटन नही हुआ था। उसमे कोई श्रमण किंवा ब्राह्मण ने निवास नही किया था। शाक्य भगवान् के पास पहुँचे। उनमे महानाम भी था। भगवान् की वन्दना कर शाक्यो ने निवेदन किया :

'भन्ते! कपिलवस्तु में हम शाक्यो ने नवीन संस्थागार निर्माण कराया है।'

'अच्छा किया आवुसो।'

'भन्ते! सर्वप्रथम भगवान् उसका उपभोग करे।'

'क्यो शाक्यो ?'

'भन्ते! आपके उपयोग करने पर कपिलवस्तु के शाक्यो के चिरकाल के लिए सस्थागार हितकर होगा। सुखकर होगा।'

भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार किया।

× × ×

भगवान् की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी थी। शाक्यो ने सस्थागार मे बिछौना बिछाया। आसन स्थापित किया। जल पूर्ण कलश रखा। तैल प्रदीप आरोपित किया। रुचिपूर्वक सज्जित किया। तत्पश्चात् भगवान् के पास पहुँचे। करबद्ध निवेदन किये :

'भन्ते! भगवान् जिसका काल समझे करें।'

भगवान् सुआच्छादित हुए। चीवर लिया। पात्र लिया। भिक्षु सघ के साथ संस्थागार के लिए प्रस्थान किया।

सस्थागार के बाहर जल-पात्र रखा था। भगवान् ने भिक्षु सघ के साथ पैर धोया। शाक्यो ने पैर धोया। संस्थागार मे सबने प्रवेश किया।

भगवान् संस्थागार मे पूर्वाभिमुख बैठ गये। भिक्षु संघ भगवान् के पृष्ठ भाग मे पश्चिम दीवाल से लग कर बैठ गया। शाक्य पूर्व की दीवाल से लग कर पश्चिमाभिमुख बैठ गये।

सन्ध्या हुई। सस्थागार आलोकित किया गया। भगवान् ने बहुत रात तक शाक्यो को उपदेश एव धार्मिक कथा द्वारा सदर्शित, समुत्तेजित, सप्रहर्षित किया। भगवान् ने कुछ समय पश्चात् कहा :

'आनन्द ! मै किंचित् विश्राम करूँगा। तुम शाक्यो को उपदेश दो।'

भगवान् ने वही चौपेती सघाट बिछा दिया। दाहिनी करवट लेट गये। पद के ऊपर पद रख लिया। स्मृति सम्प्रजन्य सहित, उत्थान की सज्ञा युक्त सिंह शय्या लगाया।

आनन्द ने अपनी वक्तृता आरम्भ की .

'महानाम ! आर्य श्रावक शील युक्त, सयत इन्द्रिय, नियमित आहार, जागरूक, सप्त सद्धर्मों युक्त, इसी जीवन मे, सुख विहारोपयोगी, चारो चैतासिक ध्यानो का बिना किसी प्रकार की कठिनाई के लाभ प्राप्त करते है।'

'आयुष्मान् ! किस प्रकार आर्य श्रावक शीलयुक्त होते है।'

'महानाम ! आर्य श्रावक सदाचारी प्रातिमोक्ष सवर द्वारा सवृत हो कर विहार करते है। अणु मात्र दोष से भी भयभीत होते है। शिक्षा पदो को ग्रहण करते हैं। अभ्यास करते हैं। उस समय वह शील सम्पन्न होते है।

'आयुष्मान् ! इन्द्रिय सयत किस प्रकार होता है ?'

'महानाम ! आर्य श्रावक चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया स्पर्श आदि मे यदि आरक्षित होकर, विहार करते है, तो अभिध्या दौर्मनस्य प्रवेश करती है ! यदि मन द्वारा धर्म जानकर, मन एव इन्द्रिय मे सवर युक्त होते है, तो वे इन्द्रियो के सयम मे सकल होते है।'

'आयुष्मान् ! भोजन मे नियमित कैसे होते है ? कैसे भोजन की मात्रा जानने वाले होते है ?'

'महानाम ! आर्य श्रावक क्रीड़ा, मद, मडन, विभूषण के लिए आहार नही करते ! शरीर के लिए जितना आवश्यक हो, ब्रह्मचर्य पालन के

लिए जितना आवश्यक हो, भूख प्रकोप शमन करने के लिए जितना आवश्यक हो, भोजन करते हैं। यह सोचकर भोजन करते हैं कि पुरानी भूख की वेदनाओं का नाश करेंगे। नवीन वेदनाओं को उत्पन्न नहीं होने देंगे। शरीर यात्रा निर्दोष होगी। विहार निर्द्वंद्व होगा।'

'आयुष्मान्! किस प्रकार श्रावक जागरण में तत्पर होते है?'

'महानाम!' 'आनन्द ने कहा, 'दिन में टहलना, बैठना एवं आचरणीय धर्मों द्वारा चित्त को शोधित करने से होता है।'

'भन्ते! क्या करना चाहिए।'

'महानाम! रात्रि के प्रथम याम में टहलना, बैठना एवं आचरणीय धर्मों द्वारा चित्त को शोधना चाहिये।'

'रात्रि के मध्यम याम में भन्ते?'

'महानाम! उस समय पद पर पद रखकर स्मृति सम्प्रजन्य युक्त, उत्थान का मन में ध्यान कर, दाहिनी करवट सिंह शय्या से लेटना चाहिए।'

'भन्ते! रात्रि के अन्तिम याम में?'

'महानाम! उस समय टहलना, बैठना एवं आचरणीय धर्मों से मन को शुद्ध करना चाहिए।'

'भन्ते! आर्य श्रावक सप्त सद्धर्मों में किस प्रकार युक्त होते हैं?'

'महानाम! श्रद्धालु, लज्जाशील, सकोची, बहुश्रुत, आरब्ध वीर्य, स्मृति तथा प्रज्ञावान् इनके पालन से, सप्त सद्धर्मों से, आर्य श्रावक युक्त होते हैं।'

'भन्ते! चारो चैतसिक ध्यानों का किस प्रकार लाभ प्राप्त कर आर्य श्रावक विहार करते हैं।'

'महानाम! 'आनन्द ने कहा, 'चारो ध्यानों के अभ्यास से होता है।'

'भन्ते! क्या व्याख्या करेंगे।'

'महानाम! करूँगा।' आनन्द ने कहा, 'प्रथम ध्यान में काम, अकुशल धर्म एवं विवेक द्वारा उत्पन्न सतर्क, सविचार, वाले प्रथम ध्यान को मनुष्य प्राप्त होता है।'

'द्वितीय ध्यान भन्ते !'

'महानाम ! वितर्क एव विचार शान्त होता है आन्तरिक शान्ति, चित्त की एकाग्रता, वितर्क विचार रहित, द्वितीय ध्यान प्राप्त करता है।'

'तृतीय ध्यान भन्ते !'

'महानाम ! उस ध्यान मे साधक प्रीति से विरक्त होता है। उपेक्षक बनता है। स्मृति सप्रजन्य से युक्त होता है।'

'चतुर्थ ध्यान भन्ते !'

'महानाम ! साधक सुख एव दु ख का परित्याग करता है। इस समय तक सौमनस्य एव दौर्मनस्य दोनो का लय हो चुका रहता है। उपेक्षा द्वारा स्मृति शुद्ध हो जाती है।'

'इसके पश्चात् भन्ते !'

'महानाम ! इस अवस्था मे पहुँचे आर्य श्रावक को शैक्ष्य प्रातिपद कहा जाता है। वह निर्भेद योग्य होता है। सबोध योग्य होता है। अनुपम योग-क्षेम प्राप्ति योग्य होता है।'

'आयुष्मान् !'

'सुनो महानाम ! एक उपमा देता हूँ। अनुमान करो आठ-दस मुर्गी के अण्ड है। मुर्गी उन्हे सेती है। मुर्गी का इच्छा न रहने पर भी कुक्कुट पोतक स्वत बाहर निकल आते हैं। उसी प्रकार पन्द्रह अगो से युक्त भिक्षु निर्वद, सम्बोध, अनुत्तर योग-क्षेम प्राप्ति निमित्त योग्य हो जाता है।'

आयुष्मान् ! पूर्वजन्म का स्मरण किस अवस्था मे उत्पन्न होता है ?'

'महानाम ! स्मृति परिशुद्धि उपेक्षा द्वारा आर्य श्रावक पूर्वजनो का स्मरण करता है यह अण्डे का पहला फूटना कहा जायगा।'

'दूसरा आयुष्मान् !'

'महानाम ! आर्य श्रावक उपेक्षा द्वारा अमानुप विशुद्ध दिव्य चक्षु, द्वारा प्राणियो को कर्मानुसार गति प्राप्त करते हुए पहचानता है।' यह दूसरा अण्डे का फूटना है।

'और तीसरा—आयुष्मान् !'

'महानाम ! आर्य श्रावक उपेक्षा द्वारा आश्रवों के क्षय द्वारा आश्रय

रहित चित्त विमुक्ति, प्रज्ञा विमुक्ति का इसी जन्म में साक्षात्कार करता है। यह अण्डे का तीसरा फूटना है।'

'इस आर्य श्रावक को क्या कहते है ?'

'उसे विद्या-चरण सम्पन्न कहते है।'

'अद्भुत ! आश्चर्य !!'

'महानाम ! सनत्कुमार ब्रह्मा द्वारा गाई यह गाथा सुगीता है। सुभाषित है। अर्थ युक्त है। तथागत द्वारा अनुमत है।'

भगवान् उठकर बैठ गये। उन्होने आनन्द की प्रशसा करते हुए कहा :

'साधु आनन्द ! साधु !! तुमने शैक्ष्य मार्गका उचित रूप से व्याख्या की है।'

कपिलवस्तु के शाक्यो ने आनन्द के भाषण का अभिनन्दन किया।

× × ×

आयुष्मान् लोमक्ष वगीस कपिलवस्तु के निग्रोधाराम में विहार कर रहे थे। महानाम उनके पास पहुँचे। प्रणाम किये। एक ओर बैठ गये। सुअवसर देखकर महानाम ने पूछा :

'आयुष्मान् ! शैक्ष्य विहार और बुद्ध विहार एक ही है, या उनमे भिन्नता है।'

'दोनों मे अन्तर है महानाम।'

'क्या अन्तर है आयुष्मान् !'

'जिन भिक्षुओ ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति नही की है, अनुत्तर योगक्षेम निमित्त प्रयत्नशील है, पंच नीवरणो के पुराण निमित्त विहार करते है ! वे भिक्षु अभी शैक्ष्य है।

'वे पच निवारण क्या है भन्ते ?'

'वे काम छन्द, व्यापाद, आलस्य, औद्धत्य कौकृत्य तथा विचिकित्सा है।'

'और ....'

'महानाम ! जो भिक्षु अर्हत हो चुके है। उनके पच नीवारण प्रहीण हो गये हैं। वे शिर कटे ताल वृक्ष की तरह हैं। वे पुन. नही उग पाते।'

× × ×

कपिलवस्तु था। महानाम शाक्य गोध।शाक्य के समीप गये। उन्होने गोधा से प्रश्न किया :

'हे गोधे! किसको आप श्रोतापन्न मानते है ?'

'जो तीनो धर्मो से युक्त है।'

'वे तीन क्या है।'

'जो बुद्ध, धर्म एव संघ के प्रति श्रद्धावान् होते है।'

महानाम के मन मे बात बैठी नही। गोधा ने महानाम के मन की शका समझ ली। प्रश्न किया :

'महानाम! आप किसे श्रोतापन्न मानते है।'

'गोधे! मै चार धर्मो से युक्त को श्रोतापन्न मानता हूँ।

'महानाम! वे चार धर्म क्या है ?'

'मै उनमे चौथा उत्तमशील को और जोड़ देता हूँ।'

'नही।'

'तो क्या किया जाय ?'

'चलो भगवान् के पास चलें।'

'हाँ ठीक है। वही बताएँगे।

महानाम और गोधा भगवान् के पास आये। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। सुअवसर देखकर महानाम ने निवेदन किया :

'भगवान्! श्रोतापन्न कौन होता है ?'

'गोधे!' भगवान् ने पूछा, 'तुमने महानाम शाक्य को उत्तर दिया था?'

'मैने महानाम को कल्याण और कुशल के अतिरिक्त कुछ नही कहा था।'

'महानाम!' भगवान् ने कहा, "तीन सयोजनों के क्षय होने से व्यक्ति श्रोतापन्न होता है।'

× × ×

कपिलवस्तु था। भगवान् निग्रोधाराम मे विहार कर रहे थे। महानाम शक्य ने भगवान् के पास पहुंचकर निवेदन किया :

'भगवान् के लिए कुछ भिक्षु चीवर बना रहे है। सुना है। भगवान् तीन मास पश्चात् चीवर लेकर चारिका के लिये जायेंगे।'

'हाँ। महानाम।'

'भगवन्। जो लोग बीमार पडे है। उन्होने भगवान् का उपदेश नही सुना है। यदि उनके लिये उपदेश दिया जाय तो उत्तम होगा।'

'महानाम। बीमारो को चार धर्मों द्वारा आश्वासन देना उचित है।'

'वे चार क्या हैं, भन्ते ?'

'बुद्ध, सघ, धर्म एव उत्तमशील—।'

'तत्पश्चात्—?'

'उनसे पूछना चाहिए। क्या माता-पिता के प्रति मोह-माया है ?'

'यदि कहे 'हा'।

'महानाम। यदि मोहमाया है, तब भी मृत्यु होगी। यदि नही है, तब भी होगी। ऐसी अवस्था मे क्यो न मोहमाया की गठरी उतार फेके।'

'यदि वे कहे–'मोह-माया प्रहीण हो गयी है ?'

'उनसे पूछना चाहिए–'पत्नी तथा सन्तानो के प्रति मोह-माया है ?'

'यदि वे कहे–'हाँ।

'उनसे कहना चाहिए, मोह–माया रहने पर भी मृत्यु आयेगी। न रहने पर भी आयेगी। इस स्थिति मे क्यो न उसका त्याग कर निर्मल हुआ जाय।'

'यदि वे कहे, 'मानवीय पांच काम गुणों के प्रति उनकी मोह–माया शेष है ?'

'उन गुणो के रहने पर भी मृत्यु अवश्यम्भावी है। न रहने पर भी है। क्यो न उनसे दूर रहा जाय।'

'यदि वे कहे 'चार देवो मे उसका चित्त लगा है ?'

'त्रयस्त्रिश देव उन चार देवों से बड़े है।'

'यदि चार देवो से मन हटाकर त्रयस्त्रिश देव मे मन लगाया हो तो ?'

'महानाम ! त्रयस्त्रिश देव से याम देव, तुषित देव, निर्माण रति देव, पर निर्मित, वश वर्ती देवों से ब्रह्मलोक बड़ा है।'

'यदि वे हे–'सब देवों से हटाकर ब्रह्मलोक मे मन लगा दिया है तो ?,

'आयुष्मान् ! ब्रह्मलोक भी अनित्य है। अध्रुव है। सत्काम की अविद्या से युक्त है।'

'तो क्या करें–?'

'ब्रह्मलोक से मन विरत कर सत्काय निरोध मे लगाये।'

'यदि वे कहे–'ब्रह्मलोक से मन हटाकर सत्काय निरोध मे लगा दिया है तो–?'

'महानाम ! इस पुरुष, और आश्रवो से विमुक्त चित्त भिक्षु, मे कोई भेद नही है।

महानाम ने भगवान् को शिरसा नमन किया।

●

आधार ग्रन्थ :

विनय पिटक

मज्झिम निकाय २ : १ · ३
१ . ४ : ३
१ : १ : ४
१ : २ · ६

संयुक्त निकाय ५३ : ३ : ५
५३ : ६ : ४

J : i . 133, iv : 145.

Vin : ii : 180; iv : 101.

A A : i : 213.

DhA : i : 133, 345; iv . 124.

M A : i . 289.

A : i . 26; iii : 451.

S : v : 327; i : 219.

वक्कलि

> पाओज्ज वहुलो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने।
> अधिगच्छे पद सन्तं सखारूप समं सुखं॥
>
> —छ० ३८१

वक्कलि श्रावस्ती निवासी थे। ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया था। तीनो वेदो के विद्वान् थे। सुन्दर थे। सुआच्छादित होकर भिक्षाटन के लिए जाते थे। उनमें महापुरुषों के ३२ लक्षणो में से कुछ लक्षण थे। ब्रह्मचर्य के कारण उनका शरीर दिव्य सुवर्ण वर्ण भभकता था।

वक्कलि युवक थे। उन्होने एक दिन देखा। भगवान् के हाथो मे पात्र था। चीवर पहने थे। साधारण भिक्षुओ के समान द्वार-द्वार भिक्षाचार कर रहे थे। वक्कलि उस परम शोभनीय रूप को देखकर विस्मित हो गये। भगवान् की रूपश्री देखने लगे। अत्यन्त प्रमुदित हो गये। सर्वदा भगवान् का रूप देखना चाहते थे। भगवान् भिक्षाटन कर विहार मे चले आये। वक्कलि लौट आया।

× × ×

वक्कलि ने विचार किया। यदि वे भिक्षु हो जायँ तो सर्वदा भगवान् का रूप देखते रहेगे। इस निश्चय के साथ प्रव्रज्या ले लिए। भगवान् के समीप रहने लगे। उन्हे देखते रहते थे। हटते नही थे। ध्यान-भावना के स्थान पर वह भगवान् के रूप-सौन्दर्य को निरखते रहते थे।

शनैः-शनैः वक्कलि की अपरिपक्व बुद्धि का विकास होने लगा। उस अपरिपक्व बुद्धि काल मे भगवान् ने वक्कलि से कुछ नही कहा। वे समय देख रहे थे। वक्कलि की गतिविधि तथा कामना का उन्हे ज्ञान था। वक्कलि का ज्ञान कुछ परिपक्व हुआ। भगवान् ने एक दिन वक्कलि को सम्बोधित किया :

'वक्कलि !'

'भन्ते !'

'तुम मुझे देखते रहते हो।'

'हाँ भन्ते।'

'क्यों ?'

'प्रसन्नता होती है।'

'आवुस ! इस अपवित्र शरीर मे क्या रखा है ?'

वक्कलि चुप हो गये।

'इस अनित्य शरीर को देखने से क्या लाभ ?' वक्कलि भूमि की ओर देखने लगे।

'वक्कलि ! जो धर्म को देखता है। वह मुझे देखता है।' वक्कलि गगन की ओर देखने लगा।

'वक्कलि ! तुम धर्म की ओर क्यो नही देखते ?'

वक्कलि नीरव हो गये।

× × ×

समय बीतता गया। वक्कलि तथागत की ओर देखते नही थे। परन्तु तथागत का साथ नही त्याग सके। विहार और उनका मोह उसे बाँध रखा था। चतुर्मास समाप्त हो गया। वर्षावास का अन्तिम दिन था। एक दिन भिक्षुसंघ बैठा था। वक्कलि भी बैठे थे। भगवान् की तरफ देख रहे थे। भगवान् ने कहा :

'वक्कलि !'

वक्कलि ने भगवान् की तरफ देखा।

'वक्कलि ! यहाँ से चला जा।'

वक्कलि उठे नही।'

'वक्कलि ! स्थान त्याग दो।'

वक्कलि को पसीना आने लगा।

'वक्कलि ! यहाँ से हट जा ।'

भिक्षु संघ ने निन्दनीय दृष्टि से वक्कलि की ओर देखा ।

× × ×

वक्कलि उदास थे । उसने सोचा । तथागत उससे भाषण नही करेगे। उससे बोलेगे नही । यहाँ रहने से क्या लाभ ? इस जीवन से क्या लाभ ! यदि भगवान् को न देख सका ।

वक्कलि गृद्धकूट पर्वत पर पहुँचे। शिखर पर चढ गये । नीचे जंगल था । वह ऊपर खडे थे। उन्हें ग्लानि हुई। आत्महत्या करने का निश्चय किये । शिखर से नीचे देखे । कुछ ही क्षणों मे वह मर सकते थे । उसी समय तथागत का ध्यान आया । वह जैसे उसे कह रहे थे । इस कार्य से विरत हो जा । वक्कलि आत्महत्या नही कर सके । शिखर से उतर आये।

वक्कलि का अन्तर्दृष्टि खुलने लगी । वक्कलि मे विवेक उत्पन्न हुआ। उसने धर्म पर विचार किया । भगवान् की वाणी का मनन करना आरम्भ किया। वह रूप से, राग से जैसे हटने लगा। भगवान् के शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा उनके ज्ञान सौन्दर्य मे अद्भुत आनन्द पाने लगा ।

वक्कलित एकान्त मे बैठ गया । विचारशील हुआ । उसने शनैः-शनैः ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

× × ×

वक्कलि निर्जन स्थान मे, दुरूह स्थान मे, कठिन स्थान मे योगभ्यास मे रत हो गया। उसे वात व्याधि ने ग्रस लिया था। भगवान् उसकी व्याधि अवस्था मे उसे देखने, उसके पास उस जन-शून्य स्थान मे पधारे। वक्कलि ने भगवान् का अभ्युत्थान किया। सत्कार किया। अभिवादन किया। वन्दना की। भगवान् के आसन ग्रहण करने पर एक ओर बैठ गया । भगवान् ने पूछा :

'वक्कलि !' तुम इस निर्जन कानन में निवास करते हो । यह वन है। यहाँ भिक्षा मिलना कठिन है । तुम कैसे जीवन निर्वाह करते हो ?'

'भन्ते ! मैने विपुल सुख से शरीर व्याप्त किया है । कठिनाइयो पर नियन्त्रण किया है । इस प्रकार मैं इस जनशून्य कानन में विहार करूँगा।

मै चार स्मृति प्रस्थानो, पाँच इन्द्रियों, पाँच बलो, सात बोध्यगो का अभ्यास करता हुआ, सुखपूर्वक कानन में विहार करूँगा ।

'वक्कलि ! तुम्हारा शरीर व्याधि ग्रस्त है। इस समय अभ्यास कैसे सफल होगा ?'

'भन्ते ! मै उपयोगी हूँ। निर्वाणरत हूँ। दृढ पराक्रमी हूँ। नित्य पराक्रम मे लगा हूँ। मै अपने सह ब्रह्मचारियो के साथ इस कानन मे विहार करूँगा।

'वक्कलि ! तुम्हारा विचार श्लाघनीय है।'

'भन्ते !' वक्कलि ने भगवान् को शिरसा नमन करते हुए कहा : 'मै आप, श्रेष्ठ, दान्त, समाहित, सम्बुद्ध, का रात-दिन तन्द्रा रहित स्मरण करता विहार करूँगा।'

'साधु वक्कलि–!'

भगवान् ने हरित, सघन, पादप पूर्ण दुर्गम कानन की ओर देखते हुए कहा।

× × ×

वक्कलि ने श्रद्धापूर्वक भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। भगवान् ने आसन ग्रहण किया। भगवान् ने देखा। पुराने वक्कलि में आमूल परिवर्तन हो चुका था। वह भगवान् को उस दृष्टि से नही देख रहा था जिससे पूर्वकाल में देखता था। भगवान् ने पूछा :

वक्कलि ! कैसे हैं ?'

'भन्ते ! मुझे पूर्ण आनन्द है।'

क्यो ?'

'भन्ते ! ससार प्रपंचो से दूर हूँ। राग से दूर हूँ। रूप से दूर हूँ।'

भगवान् ने वक्कलि को अपने आनुपूर्वीय कथा से समुत्तेजित किया। वक्कलि के विमल चक्षु खुले। उसे निर्मल ज्ञान का बोध हुआ। उसने अर्हत्त्व प्राप्त किया।

× × ×

राजगृह था। वेणुवन था। कलन्दक निवाप था। तथागत विहार कर रहे थे। राजगृह में एक कुम्भकार था। कुम्भों से उसका घर भरा था। कुम्भकार कच्ची मिट्टी लाता था। कुम्भ लाल होता था। जलपूर्ण

होता था। शुभ कलश बनता था। फिर कुम्भ फूटता था। मिट्टी में मिल जाता था। जिससे बनता था अन्ततोगत्वा वही पहुँच जाता था।

आयुष्मान् वक्कलि व्याधि ग्रस्त थे। कुम्भकार के घर मे पड़े थे। एक दिन इच्छा हुई। तथागत का दर्शन करे। उसने अपने सुश्रूषक से कहा :

'आवुस ! तथागत के दर्शन की इच्छा है।'

'अवश्य करना चाहिये आयुष्मान् ! किन्तु आप वहाँ तक चल नही सकेंगे।'

'आवुस ! तुम भगवान् के पास जाओ। उन्हे मेरी ओर से शिरसा प्रणाम करना।

उनसे प्रार्थना करना। यदि भगवान् वक्कलि भिक्षु को दर्शन दे तो कृपा होगी।'

'आवुस ! जाऊँगा।'

× × ×

भन्ते !' परिचायक ने कहा, 'वक्कलि भिक्षु ने भगवान् के चरणो मे शिरसा प्रणाम किया है। वन्दना की है।

'आवुस ! वक्कलि यापनीय है। क्षमणीय है।'

'नही भन्ते ! वह व्याधि ग्रस्त है।'

भगवान् का ध्यान परिचायक की ओर गया। उसने प्रार्थना की।

'भन्ते ! वक्कलि भगवान् के दर्शनो के इच्छुक है।'

भगवान् ने मौन रहकर स्वीकार किया।

× × ×

भगवान् वक्कलि के निवास-स्थान की ओर हंस गति से चले। वक्कलि ने भगवान् को दूर से ही देखा। प्रसन्न हो गया। सम्पूर्ण शक्ति एकत्रित कर उठा। खाट ठीक करने लगा। भगवान् ने पहुँचकर कहा :

'आवुस ! रहने दो। यहाँ आसन रखा है। बैठ जाऊँगा। खाट पर बैठकर क्या होगा ?'

वक्कलि ने भगवान् के चरणों पर मस्तक रख दिया। अभिवादन किया। वन्दना की। भगवान् ने पूछा :

'आवुस ! बीमारी घट तो रही है ?'

'भन्ते । वढ़ती जा रही है ।'

'आवुस ! तुम्हे इस समय कोई पश्चात्ताप तो नही हो रहा है ?'

'भन्ते ! नही ।'

'शील पालन न करने का पश्चात्ताप तो नही है ?'

'भन्ते ! नही ।'

'आवुस ! तुम्हे किस बात का पश्चाताप हो रहा है ? किस बात का दु:ख हो रहा है ?'

'आपके दर्शन की कामना की । शरीर निर्बल था । पहुँच नही सकता था । इसी का दु:ख था । पश्चात्ताप था ।'

'आवुस !' भगवान् ने अपना शरीर स्वय देखते हुए कहा, 'इस शरीर से तुम्हारी आस्था ? इस शरीर के दर्शन से क्या होगा ? यह तो मलो से भरा है । दूषित पदार्थों से भरा है ।'

वक्कलि के नेत्र श्रद्धा से वाष्प पूर्ण हो गये । भगवान् ने कहा :

'आवुस ! धर्म का दर्शन मेरा दर्शन है । और मेरा दर्शन धर्म का दर्शन है ।'

वक्कलि ने भगवान् को प्रणाम किया । भगवान् ने कहा :

'आवुस ! यह रूप नित्य है, या इसे अनित्य मानते है ।'

'अनित्य ।'

'आवुस ! जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है उसका पुनर्जन्म नही होता ।'

भगवान् ने आसन त्याग दिया । शान्त उठे । वक्कलि ने भगवान् को वन्दना की । प्रदक्षिणा की । शिरसा प्रणाम किया । भगवान् गृद्धकूट पर्वत की ओर चले ।

× × ×

'आवुस !' वक्कलि ने अपने परिचायक से कहा, 'घर में मरना ठीक नही है ।'

परिचायक मरने की बात सुनकर दु:खी हो गया ।'

'मेरी खाट ऋषिगिल शिला[1] पर रखवा देंगे आवुस !'

'अवश्य आयुष्मान् !'

चार व्यक्तियों ने वक्कलि की खाट उठायी। ऋषिगिलशिला पर रख दी।

भगवान् उस दिन-रात गृद्धकूट पर्वत पर विहार करते रहे।

रात्रि भिनी। गृद्धकूट पर्वत देवज्योति से ज्योतिर्मय हो उठा। दो देवदूतों ने भगवान् का अभिवादन किया। एक ओर खड़े हो गये। एक देवता न कहा।

'भन्ते ! वक्कलि भिक्षु का चित्त विमोक्ष में लग रहा है।'

भगवान् गम्भीर हो गये।

'भन्ते !' दूसरा देवता बोला। 'भिक्षु विमुक्त होगा। निर्वाण प्राप्त करेगा।'

भगवान् को सुनकर सन्तोष हुआ। देवताओ ने भगवान् का अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। अन्तर्धान हो गये।

× × ×

रात्रि समाप्त हुई। भगवान् ने भिक्षुओ को आमन्त्रित किया। भगवान् ने देवताओ से हुए संवाद को बताया। भिक्षुओ ने कहा :

'आवुसो ! वक्ललि से देवताओ की बात कहना। यह भी मेरी ओर से कहना—

'वक्कलि ! भयभीत मत हो। तुम्हारी मृत्यु निष्पाप होगी।'

'भन्ते !' भिक्षुओ ने नत-मस्तक श्रद्धापूर्वक आदेश ग्रहण किया।

× × ×

'आयुष्मान् !' भिक्षुओं ने वक्कलि से निवेदन किया। वक्कलि ने उन्हे टोका।

---

(१) ऋषि गिल शिला . राजगृह के पाँच पर्वतो में एक पर्वत है। यह नगर का सुरम्य स्थान था। उसके एक पार्श्व मे एक काली शिला थी। यह स्थान भगवान् को बहुत प्रिय था। यहाँ पर गोधिका तथा वक्कली ने आत्म-हत्या की था। महामोग्गलायन की यही पर हत्या की गयी थी। यहाँ निर्गन्थ नाथ पुत्र का जमावड़ा रहता था।

'आवुसो ! भगवान् का सन्देश मै खाट पर वैठकर कैसे ग्रहण करूँगा ? आप मुझे खाट से उतार दीजिये। मै भूमि पर बैठूँगा। भगवान् का पवित्र सन्देश सुनूँगा।'

'आधु वक्कलि, साधु !'

भिक्षुओ ने वक्कलि को सहारा दिया। खाट से उतारा। वक्कलि पूर्ण श्रद्धा और शुद्ध चित्त आसन पर बैठ गया। भगवान् को स्मरण कर बोला :

'भिक्षुओ ! भगवान् का क्या आदेश है ?

'आवुस ! देवताओ ने कहा है। तुम्हारा चित्त विमोक्ष मे लग रहा है। तुम विमुक्त होगे। निर्वाण प्राप्त करोगे।'

वक्कलि ने शिरसा नमन किया। उसने मृदु स्वर से पूछा .

'तथागत ने कुछ और कहा है ?'

'आवसु !' तथागत ने तुम्हे सन्देश दिया है–'वक्कलि भयभीत मत हो। तुम्हारी मृत्यु निष्पाप होगी।'

'आवुसो !' वक्कलि ने भगवान् का ध्यान किया। अजलिबद्ध कहा : 'तथागत से निवेदन कीजिएगा–वक्कलि भगवान् के चरणो मे शिरसा प्रणाम करता है। कहता है–रूप अनित्य है। अनित्य ही दु ख है। मुझे इस मे किंचित् मात्र सन्देह नही है। मै रूप की आकाक्षा नही करता हूँ। अनित्य दु.ख परिवर्तनशील है। इस शरीर के प्रति मुझे राग नही है।'

भिक्षुओ ने शान्त स्थिर मन वक्कलि का निवेदन ग्रहण किया। वक्कलि ने कहा ·

'आवुसो ! वेदना अनित्य है। संज्ञा अनित्य है। संस्कार अनित्य हैं। विज्ञान अनित्य है।'

'आवुस !' भिक्षुओ ने कहा। 'तथागत से हम तुम्हारी बात कहेगे आयुष्मान् !'

वक्कलि ने सबको शिरसा प्रणाम किया।

× × ×

'भिक्षुओ !' भगवान् ने कहा। 'वक्कलि ने आत्महत्या कर ली है।'

भिक्षु सघ विस्मित हुआ। किन्तु शान्त था। भगवान् ने कहा .

'आवुसो !' ऋषि गिल शिला पर हम चलेगे। वहाँ वक्कलि की अनित्य काया पडी है।'

'भन्ते !' भिक्षुओ ने श्रद्धापूर्वक आदेश ग्रहण किया।

'भगवान् चले। उनके पीछे चला भिक्षु संघ। देखने उस वक्कलि को जो कल चेतन था। आज जिसका शरीर अचेतन था। जो कल जीवित था और आज जिसे लोग कहते है मृत।'

× × ×

भगवान् ने देखा। वक्कलि का मस्तक छिन्न था। वह खाट पर पडा था और प्राची दिशा मे धुधली छाया उड रही थी। प्रतीची को ओर उड रही थी। ऊर्ध्व की ओर उड रही थी। अधः की ओर उड़ रही थी। चारो ओर उड रही थी।

भगवान् ने छाया की ओर देखा। भिक्षुओ को आमन्त्रित किया।

'आवुसो! यह धुधली छाया देखते हो?'

'भन्ते, देख रहे है।' सघ छाया की ओर देखकर बोला।

'भिक्षुओ! यह पापी है। मार है। कुलपुत्र वक्कलि के विज्ञान का अन्वेषण कर रहा है।'

'भन्ते! कुलपुत्र का विज्ञान कहा लगा है?'

'भिक्षुओ! उसका बिज्ञान कही नही लगा है। उसने प्राप्त किया है–परिनिर्वाण।'

भगवान् ने छिन्न मस्तक वक्कलि की मिथ्या काया पर दृष्टिपात करते हुए कहा:

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे उन्नीसवाँ स्थान प्राप्त कोसल श्रावस्ती ब्राह्मण कुलोत्पन्न वक्कलि श्रद्धावानो मे अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ.

थेर गाथा २०५, उदान ३५०-३५४

धम्मपद २५ ११

सयुक्त निकाय २१ २.४ ५

A i. 25

A A i 140.

Ap i 465.

V S M. i 129

Vibh A 276.

S A ii. 229

S N vs 1146

DVY' 49

Thag A i 420.

देवदत्त

यो च वन्त कसावस्स सीलेसु सुसमाहितो।
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ।।

(चित्त मलो को जिसने तिरोहित किया है, शील सयम तथा सत्य युक्त है। वह काषाय वस्त्र धारण करने का पात्र है।)

—ध० १०

देवदत्त सप्रवुद्ध का पुत्र था। उसको माता का नाम अमिता था। उसकी बहन राहुल माता भद्रा कात्यायनी किंवा यशोधरा थी।

प्रव्रज्या के पश्चात् भगवान् का प्रथम बार कपिलवस्तु मे आगमन हुआ था। उन्होने सात दिन कपिलवस्तु मे विहार किया। उसी समय अनूयिया में अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल और देवदत्त को भगवान् ने प्रव्रजित किया था।

भगवान् उन्हे प्रव्रजित कर कोशाम्बी की ओर चारिका के लिए चले। उनके साथ भिक्षु सघ था। देवदत्त भी था। भगवान् का सर्वत्र आदर-होता था। उस आदर-सत्कार को देवदत्त ने देखा। उसकी इच्छा हुई। उसे भी भगवान् की तरह आदर-सत्कार प्राप्त होता रहे।

उसने सोचा। राजा बिम्बसार का पुत्र अजातशत्रु कुमार था। तरुण था। यदि उसकी प्रसन्नता प्राप्त कर ली जाय, तो बडा लाभ-सत्कार प्राप्त हो सकता है। उसने कुमार अजातशत्रु को प्रभावित करने का निश्चय किया।

× × ×

भगवान् तथा सघ का देवदत्त ने त्याग किया। शयनासन तथा चीवर उठाया। अजातशत्र के निवास-स्थान राजगृह को ओर चला।

भगवान् के परिनिर्वाण के आठ वर्ष पूर्व, प्रतिहिंसा भावना के कारण देवदत्त ने अजातशत्रु से मित्रता स्थापित करने का प्रयास किया।

वह ऋद्धिमान था। एक शिशु का रूप धारण किया। उसके शरीर मे एक सर्प गेडुरिया कर लपट गया। वह अजातशत्रु की पालथी पर बैठ गया। अजातशत्रु भयभीत हो गया। देवदत्त ने अपना वास्तविक रूप धारण किया। अजातशत्रु अत्यन्त प्रभावित हुआ। दोनो मित्र हो गये। परन्तु दुर्बुद्धि का आश्रय लेने के कारण देवदत्त की ऋद्धि शक्ति का लोप हो गया।

देवदत्त का आदर-सत्कार बढा। अजातशत्रु उसके यहाँ ससम्मान जाने लगा। जनता ने सोचा। देवदत्त मे कुछ गुण होगा। देवदत्त के यहाँ भीड एकत्रित होने लगी।

× × ×

भगवान् चारिका करते वेणुवन कलन्दक निवाप[1] राजगृह पहुँचे। वेणुवन में विहार करने लगे। भिक्षु सघ ने भी स्थान ग्रहण किया।

देवदत्त की ख्याति हो रही थी। उसके लाभ-सत्कार की चर्चा थी। भिक्षुओ ने एक दिन भगवान् से कहा

'भन्ते! देवदत्त का बहुत लाभ-सत्कार हो रहा है।'

'किस प्रकार—?'

'भन्ते! कुमार अजातशत्रु रथ समूह के साथ उसके यहाँ जाता है। उसके यहाँ पाँच सौ स्थाली-पाक भेजता है।'

---

(१) कलन्दक निवाप वेलुवन मे एक उद्यान था। (Wood land) यहाँ पर नियमित रूप से गिलहरियो को निवाप अर्थात् भोजन दिया जाता था। कहा जाता है एक राजा वहाँ गया था। वह मद पीकर सो गया। उसके पारपद राजा को सुप्तावस्था मे देखकर फल-फूल की खोज मे वन में चले गये। मद की सुगन्ध से आकर्षित होकर एक सर्प राजा के पास आया। वह राजा को काट लेता यदि एक वृक्ष देवता चेखुर का रूप बनाकर राजा की रक्षा न करता। उसने राजा को अपने जगा दिया। राजा ने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि उस स्थान के गिलहरियों को नियमित रूप से भोजन दिया जाया करे।

'भिक्षुओ ! देवदत्त मे स्पृहा मत करो। यह लाभ-सत्कार उसके नाश का कारण होगा। कुशल धर्मों की हानि होगी।'

'भन्ते—!'

'सुनो ! क्रोधी श्वान के नाक पर पित्त चढ जाती है, तो वह चण्ड श्वान और चण्ड हो जाता है। प्रमत्त हो जाता है। देवदत्त का लाभ-सत्कार, उसके आत्म वध के लिये, एक हेतु स्थापित हुआ है।'

'भन्ते ! उसे फल—!'

'आवुसो ! फल कदली स्तम्भ का नाश करता है। फल बाँस का नाश करता है। फल नरकट का नाश करता है।'

'भन्ते—!'

'भिक्षुओ ! सत्कार कुपुरुष को उसी प्रकार मारता है, जिस प्रकार खच्चरी अपने गर्भ के कारण मरती है।'

× × ×

भगवान् राजगृह मे थे। कलन्दक निवाप मे थे। वेणुवन मे विहार करते थे।

तथागत एक बडी परिषद् मे बैठे थे। उपदेश कर रहे थे। राजा भी वहाँ बैठा था। देवदत्त उठा। उसके एक स्कन्ध पर उत्तरासग था। भगवान् की ओर अंजलिवद्ध खडा होकर बोला :

'भन्ते ! आप वृद्ध हो गये है। भिक्षुसघ को आप मुझे दे दे।'

'देवदत्त ! तुझे भिक्षु सघ कैसे रुचिकर होगा ?'

'नही शास्ता मुझे दे दे।'

'देवदत्त ! यह कैसे होगा ?'

'नही भन्ते ! मै उन्हे सम्हालूँगा।'

'देवदत्त ! मै सारिपुत्र और मौद्गलायन को भिक्षु संघ नही दे सकता। तुम्हे कैसे दूँ। तू तो मृत थूक तुल्य है ?"

देवदत्त को ईर्ष्या हुई। वह विगडा। सारिपुत्र मौद्गलायन को भगवान् ने आगे बढाया था। उनके प्रति ईर्ष्या हुई। ईर्ष्या, द्वेप से जलता देवदत्त परिषद् से चला गया।

भगवान् ने भिक्षु संघ को आमन्त्रित किया। बोले .

भिक्षुओ ! भिक्षु सघ देवदत्त के कार्य के लिए उत्तरदायी नही है।'

× × ×

देवदत्त को असफलता ही असफलता मिलती जा रही थी। वह और क्रुद्ध हो गया। प्रतिहिंसा की भावना से जल उठा। उसने भगवान् की शक्ति, भिक्षु संघ की शक्ति, क्षीण करने के लिये सघ मे भेद डालने का प्रयास किया।

कोकालिक,[1] कटमोर तिस्स[2] और खण्ड देवी पुत्र समुद्र दत्त[3] भिक्षुओं के यहाँ देवदत्त पहुंचा। उनका कुशल-मगल पूछकर बोला '

'आवुसो ! गौतम का संघ भेद और चक्र भेद आइये मिलकर करे।'

'क्या करना चाहिए ?

'श्रमण गौतम ! भिक्षु परिषद् के साथ बैठता है। जनता भी एकत्रित रहती है। उस समय हमे ऐसी योजना बनानी चाहिए कि भेद उत्पन्न हो।'

'आपने कुछ सोचा है ?'

'सुनो ! उनसे प्रश्न करना चाहिए—'आजन्म अरण्य मे रहना चाहिए।'

'इससे क्या होगा ?

'श्रमण जनपद मे, ग्राम मे चारिका करते है। इस प्रकार वह अरण्य वासी होकर बँध जायगा।'

'और–?'

---

(१) कोकालिक . यह देवदत्त का साथी भिक्षु था। कोकालिक देवदत्त के अपराधो तथा दोपो का समर्थन करता था। बुद्ध घोप का मत है कि यह जन्मजात ब्राह्मण था। देवदत्त का शिष्य था। इसे यहाँ कोकालिक कहते हैं। एक दूसरे कोकालिक और थे। उन्हे चुल्ल कोकालिक कहा जाता था।

(२) कटमोर तिस्स : यह भिक्षु थे। थुल्ल नन्दा अग्रश्राविका इनका बहुत आदर करती थी। इनके प्रति भगवान् से सुब्रह्म तथा सुधावास भिक्षुओ ने असन्तोप प्रकट किया था।

(३) समुद्रदत्त . देवदत्त का साथी एक भिक्षु था। थुल्ल नन्दा भिक्षुणी इसे मानती थी।

आजन्म पिण्डपात पर निर्भर रहे।'

'इससे क्या होगा?'

'श्रमण गौतम को लोग आमन्त्रित करते है। वह भिक्षु संघ के साथ जाता है। उसका प्रचार होता है। यह आपसे आप बन्द हो जायगा।'

'और-?'

'आजन्म पांसुकूलिक रहे।

'इससे क्या होगा?'

'चिथडा पहनना होगा। गृहस्थ भिक्षुओ को चीवर देते है। उनका आदर-सत्कार करते है। सुआच्छादित होकर वे निकलते है। जनता पर उनका प्रभाव पडता है। वह बन्द हो जायगा।'

'और-?'

'आजन्म वृक्ष मूलिक रहे।'

'इससे क्या होगा?'

'वृक्ष के मूल मे निवास करने पर संघाराम, आराम, विहार नही बनाना पडेगा। आज तो विहार, आराम, वेणु और आम्र वन श्रमण गौतम के प्रचार के केन्द्र हो गये है। वर्षा मे, धूप मे, शीत ऋतु मे कैसे कोई वृक्ष मूल मे रहेगा।'

'ठीक कहा-और?'

'आजन्म मत्स्य, मास का सेवन करना चाहिए।'

'बात आपकी विचारणीय है।'

'चलो चले।' देवदत्त बोला।

भिक्षु सघ एकत्रित था। भगवान् बैठे थे। देवदत्त अपने साथियों के साथ आया। भगवान् को अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। पुन: पाँचो प्रश्न भगवान् से पूछा। भगवान् ने गम्भीरतापूर्वक प्रश्नों को सुना। उन्होने उत्तर दिया.

'देवदत्त! अपनी इच्छानुसार जो चाहे आजन्म अरण्यक, पिण्डपातिक, पासुकूलिक, वृक्ष मूलिक रह सकता है, और चाहे तो नही भी रह सकता।'

'और मत्स्य मांस—।'

'देवदत्त ! मैंने केवल अदृष्ट, अश्रुत तथा अपरिशंकित इन तीनों कोटि के परिशुद्ध मांस की अनुज्ञा दी है।'

देवदत्त प्रसन्न हो गया। उसने समझा। भगवान् उसकी किसी बात का उत्तर हाँ नही मे नही दे सके।

× × ×

देवदत्त ने भगवान् के विरुद्ध प्रचार आरम्भ कर दिया। भिक्षुओं मे भेद फैलने लगा। आनन्द पूर्वाह्न राजगृह मे भिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए। देवदत्त ने उन्हे देखा। समीप आया। देवदत्त बोला

'आवुस ! आनन्द ! मै भिक्षु सघ से अलग उपसोथ करूँगा।'

'क्यो देवदत्त ?'

'मेरा सघ आज से अलग रहेगा।'

'देवदत्त ! विचार कर लिया है ?'

'हाँ आनन्द !'

देवदत्त गर्वपूर्वक चला गया। आनन्द भगवान् के पास आये। सब वृत्तान्त कहा। भगवान् ने उदान कहा

'सज्जनो के साथ भलाई सुखकर है। दुर्जनो के साथ भलाई दुष्कर है। पापियो के साथ पाप सुखकर है। आर्यों के साथ पाप दुष्कर है।'

× × ×

उपसोथ का काल था। उन दिनो पाँच सौ वज्जिपुत्रक नवीन भिक्षु बने थे। उनका ज्ञान पूर्ण नही था। देवदत्त ने अनेक प्रकार से मिथ्या प्रचार किया।

देवदत्त आसन उठाया। शलाका उठाया। भिक्षुओं से बोला .

'भिक्षुओ ! मैने पाँच बाते श्रमण गौतम से पूछी थी। उन्होने उत्तर नही दिया। हम उन्हे मानेगे। जिन महानुभावो को पाँचो बातें पसन्द हो कृपया शलाका उठायें ।'

'वे क्या है ?'

देवदत्त ने पाँचो बातो को बताया। अपरिपक्व बुद्धि भिक्षुओ ने

देवदत्त का समर्थन किया। शलाका उठाने लगे। पॉच सौ वज्जि भिक्षुओ ने शलाका उठा लिया।

'भिक्षुओ! हमारा यह संघ अलग बनेगा।' देवदत्त ने हर्षपूर्वक कहा :

'भन्ते– ?'

'भिक्षुओ! हम गया सीस चलेंगे। वही हमारा निवासस्थान होगा।'

'साधु भन्ते।'

देवदत्त चला। उसके साथ पाँच सौ भिक्षु चले। भगवान् के सघ में फूट पड़ गयी।

× × ×

सारिपुत्र और मौगद्लायन ने भगवान् से भिक्षु सघ की घटना का वर्णन किया। भगवान् ने कहा :

'सारिपुत्र! तुम्हे उन नव भिक्षुओ पर दया नही आयी ?'

'भन्ते– !'

'उसके पास जाओ उन्हे समझाओ।'

'भन्ते।'

× × ×

सारिपुत्र और मोगद्लायन गयाशीर्ष पहुँचे देवदत्त भिक्षु सघ के मध्य बैठा था। उपदेश दे रहा था। उसने सारिपुत्र और मोद्गलायन को आते देखा। भिक्षुओं से कहा :

'आवुसो! मेरा धर्म कितना श्रेष्ठ है। देखो सारिपुत्र और मोगद्लायन भी हमारे सघ मे मिलने आ रहे है।'

'आवुस! देवदत्त! कोकालिक ने कहा, 'आप उनका विश्वास मत कीजिये।'

'नही। उनका स्वागत है। वे मेरे धर्म पर विश्वास कर आ रहे है।'

सारिपुत्र और मोगद्लायन समीप आ गये। उन्हे देखकर देवदत्त ने कहा :

'आवुस ! आओ ! बैठो ।'

सारिपुत्र और मोद्गलायन बैठ गये । देवदत्त ने कहा :

'सारिपुत्र ! भिक्षुओ को उपदेश दो । मेरी पीठ बैठे-बैठे गरम हो गयी है ।'

'अच्छा– ।'

'मै विश्राम करूँगा ।'

देवदत्त चौपाती संघाती बिछाकर दाहिनी करवट लेट गया । उसे निद्रा आ गयी ।

सारिपुत्र ने धर्म की व्याख्या की । भिक्षुओ की समझ मे धर्म आया । उनका विचार पलटा । सारिपुत्र ने अपनी देशना का प्रभाव होते देखकर कहा

'आवुसो ! उठो ! जहाँ भगवान् है वहाँ चले ।'

भिक्षु सघ उठकर तथागत के पास चला । –और देवदत्त की निद्रा भग नही हुई । कोकालिक चिल्ला उठा–'देवदत्त ! सो रहे हो । संघ चला गया ।'

× × ×

उसी रात्रि को देवदत्त बीमार पडा । उसे वडा धक्का लगा था । जिस सघ को उसने सगठित किया था । वह पुन' भगवान् के पास लौट गया था ।

देवदत्त के हृदय पर इस घटना से इतनी चोट लगी कि रात्रि में रक्त वमन होने लगा । वह नव मास तक बीमार पडा रहा । उसकी ख्याति मिट्टी मे मिल गयी थी ! अजातशत्रु भी प्रबल विरोधी जनमत के कारण देवदत्त की सहायता नही कर सका । देवदत्त जगत् से त्यक्त, भिक्षु संघ से त्यक्त; अजातशत्रु से त्यक्त एकाकी भग्न हृदय, भग्न अभिलाषा रह गया था ।

× × ×

उसका अन्त आया । भगवान् का दर्शन करना चाहा । पुराने रक्त सम्बन्ध ने जोर मारा । शिविका मँगायी । जेतवन की ओर प्रस्थान किया ।

मार्ग मे एक पुष्करिणी पडती थी। उसने विचार किया। जेतवन पहुँचने के पूर्व हाथ-मुह धो लेना अच्छा होगा। शिविका से उतरा। पुष्करिणी के तट की ओर चला। तट पर पहुँचने के पूर्व ही भूमि फट गयी। देवदत्त भूमि मे समा गया।

गाथा है कि जब भूमि उसे आत्मसात् कर रही थी तो देवदत्त ने आर्तनाद करते हुए कहा—'भगवान् के अतिरिक्त और कही शरण नही है।'

× × ×

'कुमार!' देवदत्त ने अजातशत्रु के पास जाकर बोला।

'देवदत्त! आइए।'

'कुमार! पूर्वकाल मे मनुष्य दीर्घायु होते थे। स्वल्पायु होते थे।'

'तो—?'

'मुझे चिन्ता है। कही आप कुमार रहते ही मर जायं—।' मृत्यु की बात करते देवदत्त को सकोच नही हुआ।

'तो मै क्या करूँ?'

'पिता को मार कर राजा बनो।'

'और आप?'

'मै बुद्ध को मार कर बुद्ध बनूँगा।'

अजातशत्रु मुसकराया। दोनो घातक साथी मित्र बन गये।

× × ×

मध्याह्न काल था। अजातशत्रु ने जघा मे छुरा बाधा। अन्त:पुर मे प्रविष्ट हुआ। उस पर पाप की छाया थी। वह भयभीत था। शकित था। त्रस्त था। महामात्यो को उसकी मुद्रा देखकर सन्देह हुआ।

कुमार को अपराधी समझ पकड लिया। कुमार से पूछा:

'तुम्हारा क्या मन्तव्य था?'

'पिता की हत्या।'

'किसने आपको उत्साहित किया था?'

'देवदत्त ने।'

'चलिए राजा के पास !'

अमात्यगण अजातशत्रु को साथ लेकर उसके पिता राजा विम्बसार के पास चले।

× × ×

'कुमार !' राजा ने चकित दृष्टि से कुमार की तरफ देखा। अजातशत्रु अपराधी तुल्य था। लज्जित था। उसे भय था। उसे दण्ड दिया जायगा। अमात्यो ने सब बाते राजा को बतायी। पिता विम्बसार ने पुत्र अजातशत्रु से पूछा :

'पुत्र ! पिता की हत्या क्यो करना चाहते थे ?'

'देव ! राज्य चाहता था।'

'राज्य—?'

'हाँ—?'

'यह तो तेरा है पुत्र !'

'पुत्र !' विम्बसार ने सिंहासन पर से उठते हुए कहा 'तुम राज्य करो। इस राज्य के लिए पिता की हत्या की क्या आवश्यकता थी।'

× × ×

विम्बसार सभा-मण्डप से बाहर चला गया।

'कुमार ! आप राजा हो गये।'

'आपकी कृपा से।'

'अब आज्ञा दीजिए।'

'क्या ?'

'श्रमण गौतम की हत्या कर दी जाय।'

अजातशत्रु ने अपने पार्षदो की तरफ देखते हुए कहा :

'भणे ! आचार्य देवदत्त की आज्ञानुसार कार्य किया जाय।'

देवदत्त ने प्रत्येक मार्गों पर, भगवान् के निवास-स्थान पर, हत्यारो को भगवान् की हत्या के लिए नियुक्त किया।

× × ×

प्रत्येक मार्गों पर सशस्त्र सैनिक तथागत की हत्या निमित्त बैठा दिये गये। एक शक्तिशाली व्यक्ति धनुष, बाण, ढाल, तलवार से सुसज्जित हुआ। जहाँ भगवान् थे गया।

उसने भगवान् की भव्य काया देखी। शान्त मुद्रा देखी। वह अपराधी था। भयभीत था। उद्विग्न था। शून्य शरीर तुल्य खडा था। भगवान् ने उसे देखकर बुलाया

'आवुस! भय का क्या कारण? आओ।'

भगवान् की मधुर निर्विकार वाणी सुनते ही, उस पुरुष ने ढाल तलवार फेंक दी। भगवान् के चरणो पर मस्तक रख दिया। उसने प्रायश्चित्त सूचक स्वर मे कहा :

'भन्ते! मेरे अपराधो को क्षमा करे।'

'जो अपराधो को धर्मानुसार प्रतिकार करता है। हम उसे स्वीकार करते है।'

वीर पुरुष ने कहा, 'भन्ते! मुझे उपासक स्वीकार करे।'

'आवुस! तुम दूसरे मार्ग से लौटना। जिस मार्ग से आये हो उससे फिर मत गमन करना।'

× × ×

'भन्ते!' वह पुरुष देवदत्त के पास पहुँच कर बोला।

'ओह! तुम मार आये?' देवदत्त प्रसन्नता पूर्वक बोला।

'नही:'

देवदत्त उदास हो गया। पुरुष ने कहा :

'मै उन्हे नही मार सका। वे महा ऋद्धिक है।'

'ओह! चिन्ता न कर! मै ही श्रमण गौतम की हत्या करूँगा।'

× × ×

भगवान् गृद्धकूट पर्वत की छाया मे चारिका कर रहे थे। भगवान् को मार डालने के विचार से देवदत्त ने एक शिला पहाड़ी से फेंकी। शिला गिर कर टूट गयी। उसकी एक पपडी उछली। भगवान् के पैर मे लग गयी। रुधिर बहने लगा।

× × ×

भगवान् का पैर देवदत्त के फेंके शकलिका के कारण आहत हो गया था। वह घाव पैर पर फरसा से लगे घाव की तरह मालूम होता था। उससे रक्त बहता था। लाक्षा रस की तरह रजित हो गया था। भगवान् को वेदना होने लगी।

भिक्षुओ ने परस्पर परामर्श किया। उज्जंगल[1] निवास योग्य नही था। विषम था। प्रव्रजित तथा क्षत्रिय आदि के पहुँचने मे कठिनाई होती थी। निश्चय किया गया। भगवान् को यहाँ से दूसरे स्थान पर ले जाया जाय। अतएव मच शिविका मे भगवान् को बैठाकर भद्दकुक्षि[2] मे वे ले आये।

× × ×

भगवान् भद्दकुक्षि मे विहार करते थे। भगवान् को तीव्र वेदना हो रही थी। किन्तु भगवान् स्थिर चित्त थे। स्मृतिमान् थे। सप्रज्ञ थे। वेदना का सहन कर रहे थे।

भगवान् ने सघाती चौपत कर विछवा दिया। सिंहशय्या लगायी। पैर पर पैर रखा। स्मृतिमान एवं सम्प्रज्ञ होकर लेट गये।

राजगृह में भद्रकुच्छि मृगदाव में भगवान् विहार कर रहे थे। शारीरिक वेदना होती थी। किन्तु भगवान् को दु:ख नही होता था। उसे उन्होंने शरीर का धर्म समझा। अपना धर्म नही।

× × ×

राजगृह मे नालागिरि हाथी था। महा चण्ड था। मनुष्यघातक था। देवदत्त हस्तिशाला मे गया। फिलवान से बोला·

---

(१) उज्जंगल कुरु वेला के समीप प्रस्कन्दन, वलाकत्थ, उज्जंगल एवं जगल चार गाँवो में एक गाँव उज्जगल था।

(२) भद्द कुच्छि : कोमला देवी राजा प्रसेनजित की बहन तथा अजात शत्रु की माता थी। विम्बसार ने बाहु चीर कर रक्त रानी को वैद्यो के कथन पर पिलाया था। वह इस स्थान मे ज्योतिषियो से यह जानने पर की गर्भ पितृ हन्ता होगा उसे गिराने गई थी परन्तु सफल नही हुई। यह राजगृह में एक एक उद्यान था। गृद्धकूट पर्वत के मूल मे था। यह मृगदाव था। जहाँ मृग तथा पशु पक्षी मारे नही जा सकते थे।

'तथागत राज पथ पर आये, तो इस हाथी को उन पर छोड़ देना।'

'भन्ते ! यही करूँगा।'

देवदत्त प्रसन्न लौट आया।

× × ×

पूर्वाह्न काल पात्र-चीवर तथा भिक्षुओ के साथ भगवान् राजगृह मे भिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए।

राजपथ पर आते ही फीलवान ने हाथी छोड दिया। हाथी भगवान् की हत्या करने दौडा। साथ के भिक्षु भयभीत हुए। चिल्ला उठे :

'नालागिर[7] आता है नाला गिर आता है। भन्ते ! हट जायँ, हट जायँ।'

नर-नारी कौतुक देखने के लिए राजगृह पर, हर्म्यो पर, प्रासादो पर, छतो पर चढ गये,। मोई मूर्ख कहते थे। श्रमण गौतम को नाला गिर-मार डालेगा। बुद्धिमान कहते थे--नाग (बुद्ध) सग्राम करेगा नाग (हाथी) से।

भगवान् के मन मे नाग के प्रति मैत्री भावना थी। उनमे द्वेष नही उत्पन्न हुआ। उसकी हत्या करने हाथी आ रहा था। उन्हे भय नही हुआ।

भगवान् स्थिर राजपथ मे खड़े थे। उनके एक हाथ मे भिक्षा-पात्र था दूसरे मे चीवर था। लोग दूर हट गये थे। राजपथ पर एकाकी भगवान् और दूर से आता क्रोधी हाथी था। भगवान् हाथी की तरफ मुख कर खडे हो गये।

आश्चर्य ! हाथी की आँखो ने देखा भगवान् को, भगवान् की शान्त दृष्टि को।उसका क्रोध स्वय तिरोहित हो गया। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा। सूड़ से भगवान् का चरण-स्पर्श किया। उलटा लौटा। हस्ति-शाला मे अपने स्थान पर जाकर खड़ा हो गया।

●

(७) नालागिर . राजगृह का राजकीय खूंखार हाथी था।

आधार ग्रन्थ :

चुल्लवग्ग ७ · १-३
संयुक्त निकाय १ · ४ · ८
६ · २ · २
१६ · ४ · ५-७
धम्मपद १ · ७

A ii : 73, iii 123, 402; iv · 160, 402
Ap : ii 300.
DhA i . 112, 122, 143, 164; iii 44, 154, 123, 126, 147.
J i 113, 142, 185, 490, 491, ii : 438; iv : 37, 158; v 333, vi . 129
M i 393
M A : i : 298.
MhV : ii : 22
MiL . i . 108, 410.
M T . 136
S A : i : 62.
Ud : i : 5

दर्भ-मल्ल पुत्र

अनूपिया[1] ने एक प्रतिष्ठित कुलीन मल्ल कुल था। दर्भ ने उस कुल में जन्म लिया था। उसके जन्मकाल मे ही उसको माता का देहान्त हो गया था। उसकी मातामही (दादी) ने उसका वाल्यावस्था मे लालन-पालन किया था। वह सात वर्ष का हुआ। अनूपिया मे भगवान् का आगमन हुआ। भगवान् का प्रथम दर्शन किया। आकर्षित हुआ। उसे प्रव्रज्या लेने की इच्छा हुई।

उसने दादी से आज्ञा माँगी। दादी ने उसे भिक्षु बनने को आज्ञा दे दी। स्वय लेकर भगवान् के पास आयी। उसे वुद्ध शासन मे लेने का अनुरोध किया।

भगवान् ने एक भिक्षु को आदेश दिया। दर्भ मल्ल पुत्र को वह धर्म में प्रव्रजित करे। दर्भ का जिस समय मुण्डन किया जा रहा था, उसी समय उसे विमल दृष्टि उत्पन्न हुई। उसे धर्म का ज्ञान हुआ।

भगवान् ने मल्ल देश का त्याग किया। वे राजगृह की ओर चले। वह अकेला रह गया। ध्यान तथा अभ्यास द्वारा धर्म का उत्तरोत्तर ज्ञान प्राप्त करता गया।

× × ×

(१) अनूपिया : कपिलवस्तु के पूर्व मल्ल देश में एक निगम था। अनोमा से चलकर भगवान् ने इसी के आम्र वन मे विहार किया था। राजगृह जाने के एक सप्ताह पूर्व भगवान् ने प्रव्रज्या पश्चात् यहाँ निवास किया था। वोधि प्राप्ति के पश्चात् कपिलवस्तु से लौटते समय वहाँ पुन गये थे। यहाँ पर सुख विहारी जातक की कथा भगवान् ने यहाँ कही थी। यहा से भगवान् कोसाम्वी गये थे। दर्भ मल्ल पुत्र का यह जन्म स्थान था। एक मत है कि देवरिया जिला के ढाढा के समीप मझन नदी के तट पर स्थित भग्नावशेष ही अनूपिया ग्राम है।

भगवान् राजगृह मे कलन्दक निवाप मे थे। वेणुवन में विहार कर रहे थे। दर्भ मल्ल पुत्र के सात वर्ष की अवस्था मे अर्हत्व प्राप्त किया था। विचार किया। सघ के शयन, आसन तथा भोजन का नियमन (उद्देश) करे।

सांयकाल भगवान् के पास पहुँचा। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। सुअवसर मिलने पर, भगवान् से प्रार्थना की ·

'भन्ते ! विचार होता है। मै सघ के शयनासन का प्रबन्ध करूँ। भोजन का उद्देश करूँ ?"

'साधु दर्भ ! साधु !! अवश्य करो।'

भगवान् ने भिक्षु सघ को एकत्रित किया। उनसे बोले ·

'भिक्षुओ ! दर्भ मल्ल पुत्र को सघ शयनासन का प्रबन्धक तथा भोजन का नियामक निर्वाचित करे।'

'भन्ते ! निर्वाचन की प्रणाली क्या होगी ?'

'आवुसो ! पहले ज्ञप्ति करनी होगी। सूचना देनी होगी। संघ शयनासन का प्रज्ञापक तथा भोजन का उद्देशक चुने।'

'उसके पश्चात्—?'

'भिक्षुओ ! तत्पश्चात् अनुश्रावण किया जायगा। संघ मे जो भिक्षु दर्भ मल्ल पुत्र के समर्थक हो, वे शान्त रहे। जिन्हे विरोध करना हो, वे बोले।'

'अनन्तर—?'

'भिक्षुओ ! धारणा करनी चाहिए। कहना चाहिए—'सघ ने शान्त रहकर दर्भ को उद्देशक निर्वाचित कर लिया है। अतएव सघ चुप है। हम ऐसा समझते है।'

× × ×

दर्भ ने, सूत्रान्तिक, विनयधर, धर्मकथिक, ध्यानी, दण्ड, अपराह्ण, आदि के आसन अलग-अलग सुविधानुसार लगवाया। एक दूसरे के कार्य मे विघ्न न पड़ सके। इसका ध्यान रखा। अनेक प्रकार के भिक्षु आते थे। उनका भी प्रज्ञापन करते थे।

मेत्तिय[1] तथा भुम्मज[2] भिक्षु नवीन थे। भाग्यहीन थे। सघ मे सबसे खराब शयनाशन और भोज उन्हे मिलता था। उस समय राजगृह के नागरिक भिक्षुओ को घी, तैल, उत्तरभिग देते थे। किन्तु भुम्मज तथा मेत्तिय को कणाजक तथा विलंगक मिलता था। स्थाविर भिक्षुओ को उत्तम भोजन मिलता था। उनके जिम्मे खराब तथा विडग अनाज पड़ता था।

कल्याण भक्तित गृहपति सघ को चारो प्रकार का भोजन देता था। वह अपने पुत्र तथा स्त्री के साथ स्वय भोजन देता था।

एक दिन उपदेश के पश्चात् कल्याण भक्तिक ने निवेदन किया ·

'भन्ते ! कल मेरे यहाँ किसका भोजन होगा।'

'गृहपति ! मेत्तिय तथा भुम्मज का।'

गृहपति असन्तुष्ट हो गया। वह किसी बडे भिक्षु को भोजन कराना चाहता था।

× × ×

'दासी !' कल्याण भक्तिक गृहपति ने कहा।

'आर्य !'

'कल दो भिक्षु आवेंगे।'

'उन्हे क्या खिलाऊँगी।'

'विलग सहित कणाजक खिलाना।'

'कहाँ बैठाऊगी।'

'कोठरी में।'

× × ×

---

(१) मेत्तिय पटवर्गियो के ६ नेताओ में एक।

(२) भुम्मज : यह भी पटवर्गीय भिक्षुओ के ६ नेताओ मे एक था। मेत्तेयी-भुम्मजका शब्द मेत्तिय तथा भुम्मज के अनुकरण करने वालो के लिये प्रयुक्त किया गया है। वे राजगृह के समीप निबास करते थे। मेत्तिय तथा भुम्मज दर्भ मल्ल पुत्र पर सर्व प्रथम मेन्निया द्वारा दोप लगवाया। उसमे असफल होने पर लिच्छवी बद्ध को प्रोत्साहित किया कि दर्भ मल्ल पुत्र पर अपनी स्त्री के साथ व्यभिचार करने का दोष भगवान् के सम्मुख लगाये। यह दोप भी निराधार प्रमाणित हुआ।

मेत्तिय तथा भुम्मज प्रसन्न थे। उन्हे आशा थी। उन्हें उत्तम भोजन प्राप्त होगा। गृहपति सादर अपने हाथ से परोस कर खिलाएगा। वह इतने प्रसन्न थे कि भोजन की आशा मे रात भर सो नही सके।

दूसरे दिन पूर्वाह्ण काल मे उन्होने पात्र उठाया। चीवर लिया। गृह-पति के निवास-स्थान पर गये।

दासी ने उन्हे देखा। उसने कोठरी में बिछे आसन की ओर संकेत किया। वह बोली :

'आसन ग्रहण कीजिए भन्ते।'

भिक्षुओ ने प्रसन्नतापूर्वक आसन ग्रहण किया। विचार किया। भोजन तैयार नही होगा। अतएव बैठने के लिये कहा गया था।

दासी विलग के साथ कणाजक लायी। उनके सम्मुख परोस कर बोली·

'भन्ते! ग्रहण कीजिये।'

'भगिनी!' उन्होने भोजन की ओर देखकर कहा, 'हम बंधान वाले है।'

'मालूम है।'

'क्या ?'

'आप बन्धान भोजन वाले है।'

'तब—?'

'गृहपति ने मुझे यही आदेश दिया है।'

दोनो भिक्षु चुप हो गये। भोजन को देखने लगे। दासी बोली :

'भन्ते! ग्रहण कीजिये।'

उनके मन मे चित्त विकार उत्पन्न हो गया। उन्होने सोचा। दर्भ ने उनके विरुद्ध कुछ गृहपति से कह दिया होगा। इसलिए खराब भोजन मिला था। किसी प्रकार उन्होने कुछ भोजन ग्रहण किया।

× × ×

वे आराम मे लौटे। एक कोठे मे संघाटी बिछायी। चुपचाप बैठ रहे। मूक थे। कंधा गिरा था। अधोमुख थे। सोच करते-करते

प्रभाहीन हो गये थे। मेन्तिया[1] भिक्षुणी उनके पास आयी। उन्हें उदास देखकर बोली :

'आर्यो! वन्दना स्वीकार कीजिए।'

भिक्षु नीरव थे। भिक्षुणी चकित हुई। उसने तीन बार पूछा। कोई उत्तर नही मिला।

'क्या मैने अपराध किया है ?'

'भगिनी! दर्भ मल्ल पुत्र हमे कष्ट देता है। तुम यह देखती हो। हमारी किंचित् मात्र चिन्ता नही करती!'

आर्यो! मै क्या करूँ ?'

'यदि तुम चाहो तो दर्भ मल्ल पुत्र को भगवान् आज ही नष्ट कर देंगे।'

'आर्यो! मै क्या कर सकती हूँ ?'

'भगिनी! भगवान् से जाकर निवेदन कर।'

'क्या निवेदन करूँ ?'

'भगवान् से निवेदन करो—' जो दिशा पूर्व समय ईतिरहित, उपद्रव रहित, भय रहित थी, वह सहसा ईति, भय, उपद्रव सहित हो गयी है। जहाँ हवा नही बहती थी वहाँ प्रवात अर्थात् आँधी आ गयी है। जल गरम हो गया है। मल्ल पुत्र ने हमे दूषित किया है।'

'अच्छा भन्ते!'

× × ×

मेन्तिया भिक्षुणी भगवान् के यहाँ गयी। अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गयी। सुअवसर देखकर बोली :

'भन्ते! यह अनुचित है।'

'क्या अनुचित है ?'

मेन्तिया ने घटना का वर्णन किया। भगवान् ने भिक्षु सघ को आमन्त्रित किया। दर्भ मल्ल पुत्र से प्रश्न किया :

---

(१) मेन्तिया भिक्षुणी · इसके विषय में विशेष कुछ ज्ञात नही है। पर संघ मे मिथ्या दोष लगाने के कारण निकाल दी गयी थी।

'दर्भ ! भिक्षुणी की बात सत्य है।'

'भगवान् मुझे जानते है।'

'सत्य है ?'

'भगवान् मुझे जानते है।'

'सत्य है, या नही ?'

'भगवान् मुझे जानते हैं।

'दर्भ ! दर्भांकुश इस प्रकार नही खुलता। स्पष्ट करो। तुमने किया है या नही।'

'भन्ते ! जन्म से भी मैने स्वप्न मे भी मैथुन नही किया। जागृत अवस्था की बात ही और है।'

'भिक्षुओ !' भगवान् ने भिक्षु सघ से कहा। 'मेन्तिया भिक्षुणी को नष्ट कर दो। दोनों भिक्षुओं पर अभियोग आरोपित किया जाय।'

भगवान् ने आसन त्याग दिया। विहार में चले गये।

× × ×

भिक्षु सघ से मेन्तिया भिक्षुणी निष्कासित कर दी गयी। मेत्तिय तथा भुम्मजक भिक्षुओ ने उन भिक्षुओ से कहा :

'भिक्षुओ ! वह निरपराध है।'

'कैसे ?

'हमने उसे उत्साहित किया था।'

'क्यो ?'

'हम दर्भ से कुपित थे। असन्तुष्ट थे। उसे च्युत कराने की दृष्टि से ·· ·।'

'आवुसो ! तुमने निर्मूल दुराचार का दोष लगवाया था ?'

'हॉ।'

भिक्षु चिन्तित हुए।

× × ×

भिक्षुओ ने भगवान् से निवेदन किया। भगवान् वोले :

'क्या यह सत्य है ?'

'हाँ भन्ते ।'

'सघ आमन्त्रित किया जाय ।' भगवान् ने आदेश दिया ।

× × ×

'भिक्षुओ !' आमन्त्रित सघ को भगवान् ने सम्बोधित किया । दर्भ मल्ल पुत्र को स्मृति की विपुलता प्राप्त है । उन्हे स्मृति विनय दिया जाय ।'

'भन्ते ! स्मृति विनय देने की प्रक्रिया क्या होगी ?'

'दर्भ मल्ल पुत्र संघ की सेवा मे उपस्थित हो । उसके एक कन्धा पर उत्तरासंग हो । भिक्षुओ के चरणों मे वन्दना करे । उकड़ू बैठ जाय । अंजलिबद्ध कहे —

'भन्ते ! मेत्तिय और भुम्मजक ने निर्मूल दुराचार का दोष लगाया है । स्मृति विपुलता से युक्त हूँ । सघ से स्मृति विनय का आकांक्षी हूँ ।'

'तत्पश्चात् भन्ते ?'

'समर्थ और चतुर भिक्षु संघ को सूचित करे ।'

'किस प्रकार ?'

'भन्ते ! सघ मे ही सुने । यह सूचना है ।'

'अनन्तर –?'

'भन्ते ! संघ मे ही सुने । यह अनुश्रवण है । यह तीन बार कहा जाय ।'

'और –?'

'सघ ने विपुल स्मृति युक्त मल्ल पुत्र को स्मृति विनय दे दिया । सघ चुप है । यह मौन सम्मति है ।'

संघ सुनता रहा ।

'भिक्षुओ !' भगवान् ने कहा, 'पाँच नियमानुकूल स्मृति विनय के दान हैं–(१) भिक्षु निर्दोप सिद्ध होता है । (२) उसके अनुवाद करने वाले होते है । (३) दह स्मृति विनय मांगता है । (४) सघ स्मृति विनय देता है । (५) धर्म से समग्र होकर देता है ।'

भिक्षुओं ने भगवान् को शिरसा प्रणाम किया। दर्भ मल्ल पुत्र निरन्तर धर्म मनन मे, अभ्यास में, ध्यान मे, लगा रहा। उसने एक दिन मनोल्लास मे उदान कहा :

'ओ ! मै प्रवल दर्भ मुल्ल पुत्र, प्रवल दमन द्वारा दान्त हूँ। सन्तुष्ट हूँ। विगत शंका हूँ। विजयी हूँ। स्थित प्रज्ञ हूँ। पूर्ण रूपेण शान्त हूँ।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावकों मे पच्चीसवा स्थान प्राप्त मल्लदेशीय अनूपिया नगर निवासी क्षत्रिय कुलोत्पन्न दर्भ मल्ल पुत्र, शयनाशन प्रज्ञायकों मे अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ :
थेर गाथा ५, उदान ५
चुल्लवग्ग ४ : २ : १
५ · २ . ६

संग्राम

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जय पराजय॥

(विजय वैर उत्पन्न करता है। पराजित दु ख की निद्रा सोता है। रागादि दोप जिसके उपशान्त हो गये है, वह जय-पराजय मे सुख से सोता है।)

—ध० २०१

महाकौशलराज ने अपनी कन्या का विवाह मगधराज विम्बसार के साथ किया था। मगध तथा कोसल के मध्य एक लाख आय का काशी[1] मण्डल था। महाकोशलराज ने कन्या दान मे मण्डल दे दिया था।

---

(१) काशी : एक जनपद था। इसकी राजधानी वाराणसी थी। पूर्व वुद्ध काल मे इसका नाम सुसन्धन, सुदर्शन, ब्रह्मवर्धन, पुष्पवती, मौलिनी और रम्य नगर था। इसका विस्तार १२ योजन था। पूर्व बुद्धवर्ती काल मे यह उत्तर भारत में सवसे अधिक शक्तिशाली जनपद था। वुद्ध काल में इसकी शक्ति क्षीण हो गयी थी। प्राय काशी-कोसल में युद्ध होता था। काशी का चन्दन तथा रगीन वस्त्र प्रसिद्ध थे। इस समय काशीमें चन्दन नही होता। वस्त्र अव भी प्रसिद्ध है।

काशो को राष्ट्र भी कहा गया है। काशो जनपद के उत्तर मे कोसल, पूर्व मे मगध तथा पश्चिम मे वत्स जनपद था। दक्षिण मे सोण नदी इसकी सीमा वनाती थी। पूर्व वुद्ध काल में एक समय दक्षिण मे गोदावरी तक काशी जनपद की सीमा पहुंच गयी थी। धजविदेह जातक में इसकी सीमा तीन सौ योजन वतायी गयी है।

वुद्ध साहित्य में धृतराष्ट्र, अंग, उग्गसेन, उदय, धनंजय, विस्ससेन, कलावु, सयम, किक, राम, जनकादि यहाँ के राजा की उपाधि एक मत के अनुसार व्रह्मदत्त थी। दूसरा मत है कि व्रह्मदत्त राजा था।

अजातशत्रु ने पिता की हत्या की थी। तत्पश्चात् महाकोशल राज की कन्या बिम्बसार की पत्नी का भी देहावसान हो गया।

प्रसेनजित् कोशलराजने बहिन के मर जाने पर अपने भानजे अजातशत्रु पर कन्यादान में दिये गये काशी मण्डल की पुनः प्राप्ति निमित्त सन्देश भेजा। अजातशत्रु से प्रसेनजित् ने कहा :

'माता-पिता के मार देनेके पश्चात् हमारे पिता के दिये ग्रामो को रखने का कोई अधिकार आपको नही है।'

अजातशत्रु ने उत्तर दिया 'वह हमारी माता की भूमि है। पुत्र का माता की सम्पत्तिपर अधिकार होता है।'

अजातशत्रु चतुरगिणी सेना सहित काशी मे आया। प्रसेनजित् ने भी अपनी चतुरगिणी सेना तैयार की। वह भी सेना सहित काशी पहुँचा।

दोनो सेनाओ मे घमासान युद्ध हुआ। राजा प्रसेनजित् पराजित हो गया। प्रसेनजित् कोशल की राजधानी श्रावस्ती की ओर पलायन किया।

× × ×

तथागत श्रावस्ती मे पिण्डाचार के लिये गये। भिक्षुओ से प्रसेनजित् की पराजय का हाल सुना। शास्ता ने कहा :

'भिक्षुओ! अजातशत्रु पाप मित्र है। प्रसेनजित् कल्याण मित्र है। प्रसेनजित् पराजित होकर दुःख से सो रहा है :'

'भन्ते!'

'सुनो भिक्षुओ! जय द्वारा शत्रुता उत्पन्न होती है। पराजित दुःख से सोता है। शान्ति प्राप्त पुरुप जय-पराजय की चिन्ता न कर, शान्ति से शयन करता है।

× × ×

पराजित राजा प्रसेनजित चैन से नही बैठा रहा। उसने फिर आक्रमण करने का विचार किया। अजातशत्रु सेना लेकर काशी आया। प्रसेनजित् और अजातशत्रु मे तुमुल युद्ध हुआ। अजातशत्रु पराजित हो गया। प्रसेनजित् ने उसे जीवित बन्दी बना लिया।

कोशलराज ने विचार किया। यद्यपि अजातशत्रु शत्रुता करता था तथापि वह भानजा है। उसने अजातशत्रु को उसकी सेना लेकर जीवित मुक्त कर दिया।

भिक्षुओं ने आकर भगवान् से प्रसेनजित् के विजय की बात कहा। भगवान् ने उदान कहा :

'कोई अपनी इच्छानुसार लूटता है। किन्तु जब दूसरे लूटने लगते है, तो वह लूटने वाला लुट जाता है।

'मूर्ख समझता है। उसने सफलता प्राप्त कर ली है। परन्तु यह तभी तक प्रतीत होता है, जब तक कि उसका पाप नही फलता। किन्तु जब वह पाप फलता है, तो मूर्ख दु:ख ही दुःख पाता है।

'हत्यारे को हत्यारा मिलता है। जीतने वाले को जीतने वाला मिलता है। गाली देने वाले की गाली देने वाला मिलता है। बिगडने वाले को बिगडने वाला मिलता है। इस प्रकार अपने कृत कर्मो के चक्कर मे लूटने वाला लुट जाता है।'

× × ×

युद्ध मे विजय प्राप्त कर प्रसेनजित् श्रावस्ती लौट आया। भगवान् विहार कर रहे थे। आराम मे गया जहाँ तक यान से जा सकता था, यान से गया। तत्पश्चात् पैदल भगवान् के समीप पहुँचा।

भिक्षु लोग खुले स्थान मे चारिका कर रहे थे। उनसे भगवान् को दर्शन की इच्छा प्रकट की। भिक्षुओ ने कहा :

'राजन्! उस अलिन्द में पधारिए। वहाँ खास कर अपने आगमन की सूचना दीजिये। अर्गल खट-खटाइए। तथागत आपके लिए द्वार खोल देगे।

राजा ने अर्गल खट-खटाया। भगवान् ने द्वार खोल दिया। प्रवेश करते हुए उसने कहा :

'भन्ते! मै राजा प्रसेनजित् हूँ।'

भगवान् का चरण स्पर्श कर राजा प्रेम से भगवान् का शरीर मर्दन करने लगा।

'राजन् !' तथागत ने पूछा, 'किस कारण आप इस शरीर की शुश्रूषा कर रहे हैं। क्या यह मैत्री का उपहार है ?'

'भन्ते ! कृतज्ञता, कृतवादिता के कारण में शुश्रूपा करता हूँ। मैत्री का उपहार प्रदर्शित करता हूँ।'

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद १५ : ३

संयुक्त निकाय संग्राम सुत्त ३ · २ ४-५

अंगुत्तर निकाय · कोसलसुत्त १०-१-१०

उत्तरा नन्दमाता

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिन ।।

(क्रोध को अक्रोध से, असाधुता को साधुता से, कृपणता को दान से, और असत्य को सत्य से जीतना चाहिए ।)

–ध० २२३

राजगृह नगर था। सुमन श्रेष्ठी[1] वहाँ निवास करता था। उसके अधीन पूर्णसिंह[2] था। उसकी पुत्री का नाम उत्तरा था। पुण्यसिंह को पुण्यक भी कहते थे।

---

(१) सुमन श्रेष्ठी . लगभग २५ सुमन नामक व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। सव एक दूसरे से भिन्न है। द्रष्टव्य है कथा अनाथपिण्डक।

(२) पूर्ण सिंह : राजगृह का श्रेष्ठी था। एक दिन उसके स्वामी सुमन श्रेष्ठी ने उसे काम से छुट्टी दे दी थी। तथापि वह खेत पर काम करने चला गया क्योकि वह अत्यन्त दरिद्र था। वह खेत पर जिस समय काम कर रहा था सारिपुत्र का वहाँ आगमन हुआ। सारिपुत्र ने उसे दातुन तथा पानी दिया। पुण्य की स्त्री पति के लिये भोजन लेकर आ रही थी। मार्ग मे सारिपुत्र से भेंट हुई। उसने भोजन सारिपुत्र को दे दिया। घर लौटकर उसने पुनः भात बनाया और पति को भोजन लेकर गयी। पूर्ण भोजन दान की घटना सुनकर वडा प्रसन्न हुआ। वह भोजनोपरान्त पत्नी की पलथी पर मस्तक रख कर सो गया। नीद खुली तो देखा कि खेत सोना हो गया है। उसने राजा को समाचार दिया। राज कर्मचारी के स्पर्श करते ही सोना मिट्टी हो गया। पूर्ण के नाम से सोना स्पर्श किया गया तो वह सोना ही था। राजा ने पूर्ण के नाम से एकत्र किया गया सोना ले लिया। उसे वहुधन श्रेष्ठी की उपाधि दे दी गयी। उसने एक नवीन विहार वनवाया। उसके उद्घाटन के दिन भगवान् तथा भिक्षुओ को भोजन कराया। वहाँ भगवान् का उपदेश सुनकर उसकी स्त्री तथा उत्तरा श्रोतापन्न हो गयी।

पुण्य ने सारिपुत्र को एक दिन भिक्षा दी थी। उस पुण्य प्रताप से उसने यथेष्ठ धन अर्जन किया। वह धन श्रेष्ठी बना दिया गया। उसने सात दिन तक भगवान् तथा भिक्षुओं को भिक्षा दान किया। सातवे दिन उपदेश काल मे पुण्य सिह, उसकी स्त्री तथा कन्या सभी श्रोतापन्न हो गये।

सुमन श्रेष्ठी ने अपने पुत्र का विवाह उत्तरा से करना चाहा। परन्तु पूर्ण सिह ने अस्वीकार कर दिया। वह बुद्ध का अनुयायी नही था। उत्तरा भगवान् की उपासिका थी। प्रतिदिन एक कापार्पण का पुष्प खरीदकर भगवान् को चढाती थी।

सुमन श्रेठो ने कहा। वह प्रतिदिन दो कापार्पण भगवान् के पुष्प के लिये दिया करेगा। पूर्ण यह सुनकर विवाह निमित्त उद्यत हो गया। उत्तरा का विवाह धूमधाम के साथ सुमन श्रेष्ठो के पुत्र के साथ हो गया।

× × ×

उत्तरा भगवान् की उपासिका थी। उनमे श्रद्धा रखती थी। श्रद्धालु थी। दान मे रुचि रखती थी।

उसका पति विपरीत दृष्टिकोण का व्यक्ति था। वह दान पराङ्मुख था। अदयालु था। दो विपरीत मनोवृत्तियो का विवाह सम्बन्ध था। उसका सुखकर होना सम्भव नही था।

पतिगृह आने के पश्चात् उत्तरा विचित्र वातावरण मे पड गयी। वह दान नही दे सकतो थी। उपदेश नही सुन सकती थो। भिक्षु सघ से सम्पर्क रखना कठिन हो गया था। बात बढती गयी। उत्तरा का जीवन कठिनता से व्यतीत होने लगा। वह व्रत भी नही रख सकती थो।

उत्तरा ने अपने पिता के पास सन्देश भेजा—'पतिगृह मेरे लिए बन्धन हो गया है। कैद मे पडी हूँ। दान नही दे सकती। तथागत का दर्शन नही कर सकती। कितना उत्तम होता। विवाह करने की अपेक्षा यदि आप मुझे दासी बनाकर घर से बाहर निकाल दिये होते।'

पूर्ण पुत्री का सन्देश पाकर दु.खो हुआ। उसे पुत्री की अवस्था पर दया आयी। उसने दस सहस्र कार्षापण पुत्री के पास भेजा। सन्देश

भेजा—'राजगृह मे सिरिया[1] नाम्नी अत्यन्त रूपवती गणिका है। वह प्रति रात्रि का एक सहस्र कार्षापण लेती है। उसे अपने पति की सेवा के लिए पन्द्रह दिनो के लिए रख ले। पति गणिका के साथ लगा रहेगा। इन पन्द्रह दिनो मे तुम पुण्य कार्य करना।'

× × ×

उत्तरा ने गणिका को सहस्र कार्षापण प्रतिदिन के हिसाब से देकर रख लिया। वह उसके पति के साथ रहने लगी। चौदह दिन बीत गया।

---

(१) सिरिया राजगृह की गणिका थी। जीवक की कनिष्ठ बहन थी। बुद्धघोष का मत है कि वह शीलावती गणिका की पुत्री थी। उत्तरा के निवास स्थान पर भगवान् का उपदेश सुनकर वह श्रोतापन्न हो गयी थी। उस दिन के पश्चात् नियमित रूप से आठ भिक्षुओ को प्रतिदिन अपने घर पर भिक्षा देती थी।

एक भिक्षु सिरिया के स्थान से तीन योजन दूर रहता था। उसने सिरिया के दान तथा अनुपम सुन्दरता की ख्याति साथी भिक्षु से सुनी। वह सिरिया के निवास स्थान पर भिक्षा निमित्त आया।
सिरिया बीमार थी। उसकी दासी ने भिक्षुको की सेवा की। भोजन परोस दिया गया तो भिक्षुओ को प्रणाम करने वह भोजनशाला मे आयी।

भिक्षु उसे देखते ही मोहित हो गया। भोजन नही कर सका। उसी दिन सिरिया का देहान्त हो गया। भगवान् ने सुनकर आदेश दिया कि श्मशान भूमि में उसका शव पशु और पक्षियो से रक्षित रख दिया जाय। राजा ने घोषित किया कि जो सिरिया का शव देखने जायगा उसे जुर्माना देना पडेगा। भगवान् उक्त भिक्षु के साथ स्वय श्मशान भूमि में सिरिया के शव के समीप गये। भगवान् ने राजा से घोषित करवाया कि जो एक सहस्र मुद्रा देगा वह सिरिया का शव ले जा सकेगा। कोई शव खरीदने नही आया।
ग्राहक न देखकर एक दमडी शव की कीमत घटाते-घटाते रख दिया गया। कोई शव को लेने नही आया। अन्त में घोषित किया गया कि जो चाहे सिरिया का शव मुफ्त उठा ले जाय।

भगवान् ने भिक्षुओ से कहा—जो सिरिया के साथ एक रात रहने का एक सहस्र मुद्रा देते थे वे भी उसके शरीर को लेने के लिए तैयार नही थे, शरीर अनित्य है। कामी भिक्षु सुनकर वही श्रोतापन्न हो गया।

उत्तरा ने इन दिनो खूब दान किया। उपदेश सुना। उसके पति को गणिका से फुरसत नही मिली। अतएव वह पत्नी के कार्य मे व्यवधान उत्पन्न नही कर सका।

× × ×

पन्द्रहवाँ दिन आया। उस दिन महापवारण थी। उत्तरा एक दिन पूर्व से ही भिक्षु सघ के दान का प्रबन्ध कर रही थी। घोर परिश्रम कर रही थी। क्लान्त हो गयी थी। उसका शरीर पसीना से भर गया था। शरीर पर उभडे पसीना के विन्दु मिलकर, शरीर से वर्षा-जल की तरह टपक रहे थे।

उत्तरा के पति ने प्रासाद के ऊपरी तल से उत्तरा को देखा। उसका घोर परिश्रम देखा। उसकी क्लान्त मुद्रा देखी। वह हँसने लगा। कह उठा—'अत्यन्त मूढा है।'

सिरिया गणिका ने श्रेष्ठी पुत्र का हँसना देखा। उसे शका हो गयी। उसका केवल एक दिन यहाँ और रहना हो सकता था। उसने समझा। उत्तरा के साथ श्रेष्ठी पुत्र की मित्रता है। वह ईर्ष्या से विदग्ध हो उठी। उसमे नारी जन्य डाह ने मजबूती से घर कर लिया। उसने उत्तरा को देखा। वह नीचे के तल मे कार्य मे दत्तचित्त थी।

× × ×

सिरिया मे प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठी थी। उत्तरा से बदला लेने का विचार किया। उसे कुरूप करना चाहा। कुरूप होने पर कोई पुरुप उसकी तरफ नही देख सकेगा। जिस पति के साथ वह गत चौदह दिनो से थी, और, जो उत्तरा को देखकर, विहँस रहा था, वह कुरूप होने पर उत्तरा की तरफ भूलकर कभी न देखेगा। और न विहँस सकेगा।

उसने एक कलछुल गर्म खौलता घी लिया। नीचे उतर कर आयी। उत्तरा पूर्ववत काम में भिक्षुओ के दान का प्रवन्ध कर रही थी। उसने सिरिया को देखा।

वह क्रूर राक्षसी तुल्य उत्तरा की तरफ कलछुल का तडकता घी लिए वढ रही थी। उसकी आँखे लाल थी। क्रोध से जल रही थीं।

शरीर कम्पित था। होठ फड़क रहे थे। ललाट की रेखाएँ वक्र होकर गहरी हो गयी थी।

वह भोगी बिल्ली की तरह दबकी बढ रही थी। उत्तरा पर अकस्मात् जलता घी छोड़कर, जला देना चाहती थी। कुरूप करने मे क्रूर उल्लास का अनुभव करना चाहती थी।

उत्तरा का हृदय निर्विकार था। मन निर्मल था। विवेक सन्तुलित था। चित्त स्थिर था। उसमे किंचित् मात्र सिरिमा के लिए अशुभ भावना का उदय नही हुआ। उसके मन में मैत्री-भाव था। वह सिरिमा को मैत्री दृष्टि से देख रही थी।

उत्तरा ने उसका भयकर उग्र रूप देखा। प्रचण्ड क्रोधानल मे वह प्रज्वलित थी। उसने सोचा था। उत्तरा भागेगी। परन्तु उत्तरा दृढता-पूर्वक उसके सम्मुख खड़ी हो गयी। उसकी मुद्रा मे किंचित् मात्र व्यग्रता नही थी। भय ने उसमे प्रवेश नही किया था। वह उस उग्र क्रोधानल से किंचित् दुर्बल नही हुई। उसकी सरलता मे परिवर्तन नहीं हुआ। उसने स्वप्न मे भी नही विचार किया। वह कुरूप हो सकती थी। वह जल सकती थी। सिरिमा का वह भयकर रूप देखकर मुसकराई। मनोविकार का विकृत तामसिक रूप देखकर उसे सिरिमा की स्थिति पर दया आयी। सिरिमा उसका सरल रूप देखकर और भडक उठी। उसने दाँत पीसते हुए उस पर गर्म उबलता घी उछाल दिया।

घी उत्तरा के शरीर पर पड़ा। सिरिमा आशा लगाये थी। उत्तरा आर्तनाद कर उठेगी। उसका रूप बिगड़ जायगा। शरीर पर छाले पड़ जायेंगे। वस्त्र जल उठेंगे। परन्तु उत्तरा शान्त खड़ी रही। घी उसके शरीर पर फैला। परन्तु तुषार तुल्य शीतल बन कर।

सिरिमा चकित हुई। उसने समझा। उसका घी शीतल था। प्रभाव नही कर सका। उसे जैसे धक्का लगा। वह स्वय अपने ऊपर चिढ़ गयी। वह पुनः घी लेने चली।

दासियो ने सिरिमा का कुकृत्य देख लिया। वे दौड़ पड़ी। उस पर टूट पड़ी। उसे पीटने लगी। सिरिमा लगी चिल्लाने। लगी प्राण दान माँगने।

उत्तरा दासियो के पास दौड़ी आयी। उसने दासियो को हटाया।

सिरिमा के घावो को सुहलाने लगी । उसे दु.ख हुआ । अकारण दासियों ने उसपर हाथ छोडा था । उसने उसे अपनी सगी वहन की तरह उठाया । हृदय से लगा लिया । साथ लेकर अन्त.पुर मे चली गयी ।

× × ×

सिरिमा को चोट लगी थी । वेदना से व्यथित थी । उत्तरा ने दासियो को आज्ञा दी । उसके शरीर मे तेल की खूब मालिश की जाय ।

जिन दासियो ने उसे हाथो और घूसो से पीटा था, वे हाथ और मुट्ठियाँ उसे मालिश करने लगी । उसे आराम मिला । मर्दन से शरीर की व्यथा कम हुई ।

उत्तरा ने उसे स्नान कराया । स्वच्छ शीतल जल स्नान द्वारा उसमे नव-चेतना उत्पन्न हो गयी थी । शरीर मे स्फूर्ति आ गयी थी । स्वच्छ सूक्ष्म वस्त्र पहनकर, वह एक सुन्दरी तुल्य लगने लगी थी । उत्तरा के चरणो पर गिर पडी । उत्तरा के आभार, उसके वैर, उसके शील, उसकी मैत्री मानवीय भावना ने उसे जीत लिया था । उसके नेत्रो से निकलती अविरल अश्रु धारा रुकती नही थी । उसके अश्रुधारा से उत्तरा के चरण आर्द्र हो गये । उत्तरा ने भगिनी सदृश उसे हृदय से लगा लिया । सिरिमा रोती यही कहती रही—'मुझे क्षमा करो बहन ! मुझे क्षमा करो । मैंने अपराध किया है । मुझे क्षमा करो ।'

उत्तरा उसके नेत्रो को अंचल से पोछती हुए बोली—'बहन ! भगवान् से क्षमा माँगो ।'

× × ×

दूसरा दिन था । पन्द्रहवाँ दिन था । उत्तरा ने आज के लिए भगवान् सहित भिक्षु सघ को भोजन निमित्त आमन्त्रित किया था ।

समय पर सुआच्छादित भगवान् भिक्षु संघ के साथ उत्तरा के निवास स्थान पर आये । सबके हाथ मे भिक्षा-पात्र था । सब चीवरधारी थे ।

स्वच्छ आसन बिछा था । भगवान् ने आसन ग्रहण किया । उनके साथ भिक्षु सघ ने आसन ग्रहण किया । उत्तरा ने भगवान् का अभिवादन किया । वन्दना की ।

सिरिमा लज्जित आयी । अश्रुपूर्ण नेत्रो से आयी । पश्चात्ताप करती

आयी। अपने कर्म पर दु:ख प्रकट करती आयी। भगवान् के चरणों पर गिर पड़ी। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा :

'भगवान्। मुझे क्षमा करें। सुगत, मुझे क्षमा करें। तथागत मुझे क्षमा करें।'

'भगिनी! क्या बात है।' भगवान् ने पूछा :

सिरिमा अक्षरश: सब घटना सुना गयी। उसने अपने पाप, अपने दोष, अपने अपराध को किंचित् मात्र छिपाने का प्रयास नही किया। उसके आत्म-निवेदन पर भिक्षु संघ चकित हो गया। कारुणिक भगवान् की करुण दृष्टि उत्तरा की ओर उठी :

'साधु! उत्तरे! साधु! क्रोध को इसी प्रकार अक्रोध से विजय करना चाहिए।'

उत्तरा ने भगवान् के चरणो में शिरसा नमन किया। भगवान् ने सिरिमा से स्नेह पूर्ण स्वर मे कहा :

'सिरमे! तुम क्षमा की पात्र हो।'

× × ×

परम सुन्दरी राजगृह की गणिका सिरिमा ने प्रव्रज्या ली। उसने स्रोतापत्ति फल प्राप्त कर लिया था। नित्य भिक्षुओं को अपने निवास-स्थान पर दान देती थी।

उसने एक दिन भिक्षुओ को दान दिया। अकस्मात् व्याधि ग्रस्त हो गयी। तुरन्त ही उसका देहावसान हो गया।

श्मशान मे राजा ने उसका मृत शव सुरक्षित रखवा दिया। तीसरे दिन भगवान् भिक्षु संघ के स्थान श्मशान मे पहुँचे। सिरिमा के शव को देखकर भिक्षुओ को सम्बोधित किया :

'भिक्षुओ! इस प्रकार का अनुपम सुन्दर रूप भी नष्ट होता है। इस शरीर को देखो। आयुष्मानो।'

भगवान् ने पुन: कहा :

'भिक्षुओ! इस चित्रित शरीर को देखो। वर्णो से युक्त है। फूला है। सकल्पो से युक्त है। इसकी स्थिति अनित्य है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु तथा श्रावक-श्राविकाओ की तालिका मे सत्तरहवाॅ तथा श्राविका-उपासिकाओ में पाॅचवाॅ स्थान प्राप्त, मगध राजगृह सुमन श्रेष्ठी के आधीन पूर्ण सिह की पुत्री उत्तरा नन्द माता ध्यानियो में अग्र हुई थी।

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद १७ : ३

A : iv : 347.

A A · ii · 79,

i ; 240.

-

मैत्रायणी पुत्र पूर्ण

कपिलवस्तु के समीप द्रोण वस्तु[1] ग्राम था। वहाँ एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुल था। कौण्डिन्य का वह कुल था। बहन का नाम मैत्रायणी था। माता के नाम पर मैत्रायणी पुत्र वह कहा जाता था। उसका नाम पुण्य रखा गया था।

भगवान् धर्मचक्र प्रवर्तन का उपदेश दे चुके थे। राजगृह चले गये थे। कौण्डिन्य अपने घर लौट आया था। उसने अपने भतीजा मैत्रायणी पुत्र को प्रव्रजित किया था। उसके पश्चात् कौण्डिन्य राजगृह गया। वहाँ से छद्दन्त दह के सुन्दर तट पर विहार करने लगा।

पूर्ण तपस्वी जीवन आरम्भ किया। कपिलवस्तु के पडोस का त्याग किया। घर त्याग किया। सघ मे सम्मिलित हो गया। कुछ ही समय मे उसने अर्हत्त्व पद प्राप्त कर लिया।

पुण्य के अनुयायी पाँच सौ उसके गोत्रीय बन्धु थे। उन्होने भी गृह त्याग किया था। प्रव्रज्या ली थी। उसने शिष्यों को धर्म की शिक्षा दी। अनुशासन की शिक्षा दी। उसे जो कुछ ज्ञान प्राप्त था, निस्सकोच अनुयायियों को बता दिया। उसके अनुयायी भी कुछ दिनो मे अर्हत पद प्राप्त कर लिये।

उसके अनुयायियों ने इच्छा प्रकट की। वे भगवान् का दर्शन करना चाहते थे। उन्होने एक दिन पुण्य से निवेदन किया :

'आयुष्मान्! हमारी एक आकांक्षा है।'

'कहो आवुस!'

---

(१) द्रोणवस्तु ग्राम · कपिलवस्तु में द्रोण वस्तु एक ग्राम था। वह ब्राह्मण ग्राम था। यहाँ आज्ञा कौण्डिन्य का भी जन्म हुआ था।

'हम भगवान् का दर्शन करना चाहते है।'

'अवश्य करना चाहिए आवुसो!'

'हमारी इच्छा है।'

'क्या?'

'आप हम लोगों के साथ भगवान् के समीप चलें।'

'आवुसो! आप लोग अविलम्ब प्रस्थान करे।'

'और आप!'

'मै आप लोगो का अनुकरण कर पीछे आऊँगा।'

'आयुष्मान् की जैसी आज्ञा।'

शुभ काल मे भिक्षु समूह ने राजगृह के लिये प्रस्थान किया।

× × ×

कलन्दक निवाप था। वेणु वन था। राजगृह था। पुण्य सघ के अनेक जाति भूमिक और जाति भूम भिक्षुको ने वर्षावास समाप्त किया। भगवान् के समीप पहुँचे। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। भगवान् ने उनसे कहा .

'भिक्षुओ! जाति भूमि मे, जाति भूमि के भिक्षुओ मे कौन ऐसा प्रतिष्ठित भिक्षु है जो निर्लोभ है। भिक्षुओ के निमित्त निर्लोभ कथा कहने वाला है। सन्तुष्ट है। भिक्षुओ निमित्त सन्तोष कथा वाचक है। स्वयं एकान्त चिन्तनशील है। चिन्तनशील कथा कहने वाला है। स्वयं अनासक्त है। अनासक्त कथा कहने वाला है। स्वय शील सम्पन्न है। शीलसम्पदा कहने वाला है। स्वय समाधि सम्पन्न है। विमुक्ति सम्पदा कहने वाला है। स्वय विमुक्ति ज्ञान दर्शन सम्पन्न है। विमुक्ति ज्ञान दर्शन सम्पदा कहने वाला है। ब्रह्मचारियो के लिए उपदेशक है। विज्ञापक है। सन्दर्शक है। समापदक है। समुत्तेजक है। सम्प्रहर्षक है।'

'भन्ते! पूर्ण मैत्रायणी पुत्र मे यह सब गुण है।'

सारिपुत्र ने मैत्रायणी पुत्र से सम्पर्क स्थापित करने का विचार किया। संलाप करने का विचार किया। भगवान् ने भिक्षु परिषद् समाप्त की। वे उठ गये।

× × ×

भगवान् ने चारिका आरम्भ की। श्रावस्ती पहुँच गये। अनाथ-

पिण्डक के जेतवन मे विहार किया। मैत्रायणी पुत्र भी चारिका करते श्रावस्ती पहुँचे। भगवान् का अभिवादन, वन्दना, प्रदक्षिणा को। अन्ध वन मे विहार करने लगे।

सारिपुत्र मैत्रायणी पुत्र से अत्यन्त प्रभावित थे। सर्वदा उनकी प्रशसा किया करते थे। भिक्षुओ ने उनसे मैत्रायणी पुत्र के आगमन का समाचार कहा।

मैत्रायणी पुत्र भगवान् की कथा सुनकर अन्ध वन की ओर प्रस्थान किये। सारिपुत्र उनका अनुमान करने लगे। मैत्रायणी पुत्र ने अन्ध वन मे प्रवेश किया। एक वृक्ष के तले विहार निमित्त आसन ग्रहण किया।

सारिपुत्र ने भी अन्ध वन मे प्रवेश किया। एक वृक्ष के नीचे विहार निमित्त आसन लगाया। आयुष्मान् सारिपुत्र सायकाल प्रति सल्लपन से उठे। मैत्रायणी पुत्र के समीप पहुँचे। कुशल-मगल पूछ कर एक ओर बौद्ध जगत् के दो महापुरुष वेठ गये। सारिपुत्र ने आश्वस्त होने पर मैत्रायणी पुत्र से सानुनय प्रश्न किया

'आवुस ! आप तथागत के समीप ब्रह्मचर्य वास करते है ?'

'आवुस ! हाँ।'

'क्या शील विशुद्धि के हेतु कहते है ?'

'आवुस ! नही।'

'शका निवारण निमित्त तथागत के समोप ब्रह्मचर्य करते है।'

'आवुस ! नही।'

'तो क्या मार्ग-अमार्ग ज्ञान दर्शन की विशुद्धि के लिए, ब्रह्मचर्य वास करते है, आवुस ?'

'नही, आवुस !'

'मार्ग ज्ञान, दर्शन, विशुद्धि के लिये करते है, आवुस !'

'आवुस ! नही !'

'तो क्या ज्ञान दर्शन की विशुद्धि के लिए करते है आवुस ?'

'नही। आवुस।'

'आवुस ! क्या मै प्रश्न कर सकता हूँ ? आप किसलिये भगवान् के पास ब्रह्मचर्य वास करते है ?'

'परिग्रहहीन परिनिर्वाण के लिये आवुस।'

'आवुस! क्या शील विशुद्धि उपादान रहित परिनिर्वाण है?'

'आवुस! नही।'

'ज्ञान दर्शन विशुद्धि उपादान रहित परिनिर्वाण है?'

'नही—आवुस!

'क्या धर्मो से विलग उपादान रहित परिनिर्वाण है?'

'नही आवुस।'

'आपके कहने का तात्पर्य क्या है आवुस?'

'क्या मै एक उपमा देकर कहूँ आवुस!'

'आवुस! अवश्य कहिये।'

'आवुस! मान लो। कोसल नरेश श्रावस्ती मे निवास करते है। साकेत मे कोई आवश्यक कार्य आ जाय। उसके लिए साकेत और श्रावस्ती मे सात रथविनीत स्थापित कर दे। एक के पश्चात् दूसरे रथविनीत पर आरूढ होकर सातवे पर पहुँचे। वहाँ से साकेत के राजद्वार पर पहुँच जाय। वहाँ अमात्यो के यह पूछने पर कि आप इसी रथविनीत द्वारा साकेत पहुँच गये है। आवुस प्रसेनजित् का क्या उत्तर उचित होगा?'

'आवुस!' सारिपुत्र ने कहा। 'राजा यदि इस प्रकार उत्तर दे तो उचित होगा।'

'मै श्रावस्ती में था। साकेत मे आवश्यक कार्य आ गया। एतदर्थ दोनो के मध्य सात रथविनीत स्थापित किये गये। प्रत्येक रथविनीत से आरूढ होता सातवे रथविनीत से यहाँ पहुँचा हूँ।'

'ठीक है आवुस! इसी प्रकार शील विशुद्धि का तभी तक महत्त्व है, जब तक चित्त विशुद्धि प्राप्त नही होती। चित्त विशुद्धि उस समय तक है, जब तक दृष्टि विशुद्धि प्राप्त नही होती। दृष्टि विशुद्धि उसी समय तक है, जब तक कांक्षा वितरण विशुद्धि प्राप्त नही होती। कांक्षा वितरण विशुद्धि का महत्त्व तभी तक है, जब तक मार्गामार्ग दर्शन विशुद्धि नही प्राप्त होती। मार्गामार्ग दर्शन विशुद्धि तभी तक है, जब तक प्रतिपद ज्ञान दर्शन विशुद्धि प्राप्त नही होती। प्रतिपद ज्ञान दर्शन विशुद्धि उसी समय तक है, जब तक ज्ञान दर्शन विशुद्धि प्राप्त नही

होती। और ज्ञान-दर्शन विशुद्धि उसी समय तक है, जब तक उपादान रहित परिनिर्वाण प्राप्त नही होता।'

'भन्ते!'

'आवुस! मै भगवान् के पास परिनिर्वाण के लिये ब्रह्मचर्य वास करता हूँ।'

'आवुस!' सारिपुत्र ने पूछा, 'स-ब्रह्मचारी आयुष्मान् को किस नाम से सम्बोधित करते है?'

'आवुस! मेरा नाम पूर्ण है। सब्रह्मचारी मुझे मैत्रायणी पुत्र नाम से जानते हैं।'

'आवुस!' पूर्ण ने जिज्ञासा की, 'आयुष्मान् का नाम क्या है? स-ब्रह्मचारी किस नाम से आपको सम्बोधित करते है?'

'आवुस!' सारिपुत्र ने कहा, 'उपतिस्थ मेरा नाम है। सारिपुत्र कहकर स-ब्रह्मचारी मुझे सम्बोधन करते हे।

'आप सारिपुत्र है? यदि मै जानता तो इतनी बात नही करता।'

दोनों महानाग एक दूसरे का परिचय पाकर प्रसन्न हुए। पुण्ण ने उदान कहा—'सत्पुरुषो की सगति पण्डित तथा अर्थदर्शी करते है। वे अप्रमत्त, विलक्षण धैर्य, गम्भीर, दूरदर्शी, निपुण, सूक्ष्म एव महान् अर्थ की प्राप्ति करते है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावक मे नवॉ स्थान प्राप्त शाक्य कपिलवस्तु समीपस्थ द्रोण वस्तु ब्राह्मण ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न पूर्ण मैत्रायणी पुत्र धर्मकथिको मे अग्र हुए।

●

आधार ग्रन्थ :

सयुक्त निकाय १३ . २ . ५
३४ . २ ४ : ५

मज्झिम निकाय १ . ३ . ४

अंगुत्तर निकाय १ . २३

थेर गाथा ४, उदान ४

A · i : 23.

A A : i . 113.

Ap i 38

J · ii 38; iii : 382, iv : 314

M · i : 146.

M A : i : 362; ii : 124.

Thag A : i 37.

S . ii · 156.

विम्बसार का अन्त

विम्बसार भगवान् का बाल सखा था। भगवान् से पाँच वर्ष छोटा था। उनके पिता भी मित्र थे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे राज-सिहासन पर बैठा था। पन्द्रह वर्ष राज्य कर चुका तो सर्व प्रथम भगवान् का नाम सुना। भगवान् के प्रव्रज्या लेने के पश्चात् जैसा लिखा जा चुका है। बिम्बसार और भगवान् की प्रथम भेट राजगृह मे पाण्डव पर्वत पर हुई थी। विम्बसार ने भगवान् के विहार निमित्त वेलु वन का निर्माण करा दिया था। विम्बसार भगवान् का अत्यन्त भक्त था। उनके सुखादि के लिये भरसक प्रयत्न करता था।

विम्बसार की अग्रमहिषी कोसला देवी थी। वह प्रसेनजित् कोसल-राज की बहन थी। उसका पुत्र अजातशत्रु था। उसकी माता का नाम कोसला था। विम्बसार की दूसरी पत्नी का नाम क्षेमा[1] था। एक और पत्नी थी। उसका नाम पद्मावती[2] था। वह उज्जैन की थी। क्षेमा और पद्मा-वती दोनों कालान्तर मे भिक्षुणी हो गयी। पद्मावती का पुत्र अभय राज-कुमार था। विम्बसार को अम्वपाली से एक और पुत्र था। उसका नाम विमल कौण्डिन्य था। अन्य स्त्रियो से उसके दो और पुत्र थे। उनका नाम शीलव तथा जयसेन[3] था। उसे एक कन्या थी। उसका नाम चुन्दी[4] था।

---

(१) क्षेमा : विम्बसार की अग्रमहिपी थी। सम्भ राज की कन्या थी। भद्र देश में जन्म हुआ था। 'क्षेमा कथा' द्रष्टव्य है।

(२) पद्मावती वह उज्जैन निवासी थी। कालान्तर में भिक्षुणी हो गयी। उसका नाम अभय माता पडा।

(३) जयसेन . बुद्धघोष के अनुसार जयसेन विम्वसार का पुत्र था।

(४) चुन्दी : राजा विम्वसार की कन्या थी। कलन्दक निवाप वेणुवन में भगवान् ने उसे चुन्दी सुत्त सुनाया था। एक मत है कि उसके भाई का नाम चुन्द था। वह उन तीन महिलाओ में थी जिन्हे उनके पिता ने काफी धन दिया था। अन्य दो विशाखा तथा सुमना है।

भगवान् एव विम्बसार में प्रतीत होता है कभी उपदेशात्मक संवाद नही हुआ था। भगवान् के लिए विम्वसार के हृदय मे अपूर्व स्नेह था। इस स्नेह का परिचय निम्नलिखित घटना से मिलता है।

लिच्छवियो ने भगवान् को आमन्त्रित किया था। महाली स्वयं आमन्त्रित करने आया था। मार्ग में कष्ट होगा इसलिये विम्बसार ने यात्रा से विरत होने के लिये निवेदन किया। भगवान् जाने पर कटिवद्ध थे।

विम्बसार ने भगवान् को कष्ट न हो इसलिए राजगृह से गंगा तट तक सडक की पूरी मरम्मत करायो थी। मार्ग में उसने धर्मशालाओं का निर्माण विश्राम निमित्त प्रत्येक योजन पर करवाया था। यात्रा के समय पचरगे फूलो से मार्ग पर पुष्प-वर्षा की जाती थी। भगवान् के लिये दो छत्र तथा प्रत्येक भिक्षु के लिए एक छाता का प्रबन्ध किया गया था।

यह यात्रा पाच दिनो मे समाप्त हुई थी। विम्बसार ने स्वयं भगवान् के साथ यात्रा की थी। उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये।

गंगा तट पर उसने दो नावों को एक मे बँधवा कर बडी नाव का रूप दिलवा दिया। उसे पुष्पो तथा रत्नो से सुसज्जित करवाया। स्वय कण्ठ तक जल मे आकर भगवान् को विदा किया।

× × ×

भगवान् गगा पार पहुँच गये। बिम्बसार दूसरे तट पर शिविर लगा कर रह गया। भगवान् जब लिच्छवियो के यहाँ से लौटे, तो पूर्ववत् विम्बसार भगवान् के साथ राजगृह वापस आया।

विम्बसार के पार्षदो एव अमात्यो मे सोण कोटिविंश, सुमन माली, अमात्य कोलिय[1], श्रेष्ठी कुम्भ घोषक[2], तथा जीवक का नाम महत्व-पूर्ण है।

---

(१) कोलिय : कथा 'शाक्य कोलिय' द्रष्टव्य है।

(२) कुम्भघोषक : राजगृह के मुख्य श्रेष्ठी का पुत्र था। एक समय राजगृह मे प्लेग फैला। कुम्भ घोषक तथा उसकी स्त्री दोनो के प्लेग हो गया। मृत्यु समीप आते ही पिता माता ने पुत्र को भाग जाने के लिए कहा। जीवित रहने पर वह लौटकर गडा धन निकाल ले। वह बारह वर्ष तक जगल मे घूमता रहा। तत्पश्चात् लौट कर आया। उसका धन यथावत् गड़ा था।

विम्बसार भिक्षुओं तथा भिक्षुणियो की सेवा मे सर्वदा तत्पर रहता था। धर्मदिन्ना ने प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया तो राजा विम्बसार ने नगर मे उसकी शोभा-यात्रा के लिए स्वर्ण शिविका दी थी।

अजातशत्रु माता के गर्भ मे था। उसके गर्भ मे आते ही रानी को पीड़ा उत्पन्न हुई।

× × ×

राजा ने वैद्यो को बुलाया। उनकी अनुमति पर स्वर्ण छुरी से बाहु चीर कर रक्त निकाला। उसे सुवर्ण प्याली मे रखकर रानी को पिला दिया।

ज्योतिषियो ने सुना। उन्होने भविष्य वाणी की। गर्भ-स्थित शिशु राजा का शत्रु होगा। राजा की उसके द्वारा हत्या होगी।

रानी चिन्तित हुई। उद्यान मे गयी। वहाँ गर्भ-पात का प्रयास किया। किन्तु गर्भ गिर नही सका।

जन्म होते ही रक्षको ने नवजात शिशु को हटा दिया। कुछ चैतन्य होने पर रानी को दिखाया। रानी मे पुत्र-स्नेह उभर आया। वह अपने नवजात शिशु की हत्या न कर सकी।

× × ×

देवदत्त ने राजा को मारने का षड्यन्त्र किया। राजा विम्बसार भगवान् का सबसे बडा समर्थक था। राजाश्रय के कारण भगवान् पर

उसने विचार किया। यदि वह धन खोदेगा और धनी जैसा जीवन व्यतीत करेगा तो लोगो को शंका होगी। वह मिस्त्री का काम करने लगा। एक दिन राजा ने उसका स्वर सुनकर कहा—'यह किसी धनी का स्वर है।' राजा की बात कई बार सुनने पर एक दासी उसके धन लेने का विचार करने लगी। दासी कुम्भघोषक के मकान मे अपनी कन्या के साथ रहने के लिए कुम्भघोषक को तैयार कर ली। अपनी कन्या को उसे फँसाने का जाल रच लिया। उनका विवाह निश्चित हो गया। राजा ने उनके विवाह के लिए घोषणा की। विवाह खर्च के लिए वह भूमि खोदने लगा। उसी समय राजा के यहाँ से बुलाहट आ गयी। षड्यन्त्र पूरा हो गया। वह राजा के पास गया। सब घटना अक्षरश उसने राजा से बता दी। राजा प्रसन्न हो गया। अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया।

कभी विपत्ति नही आती थी। देवदत्त भगवान् को समाप्त करना चाहता था। अतएव प्रथम चरण उसने विम्बसार को समाप्त करने के लिए उठाया। उसने अजातशत्रु को अपना साधन बनाया।

राजा विम्बसार ने पुत्र को युवराज पद दिया। देवदत्त के षड्यन्त्र के कारण राजा ने राज्य भी अजातशत्रु को दे दिया। स्वय राज से अलग हो गया।

× × ×

देवदत्त ने अजातशत्रु को कुमन्त्रण दिया। कुछ समय पश्चात् राजा तुम्हारे अपराध को स्मरण करेगा। वह स्वय राजा बनने का प्रयास करेगा। वह ढोल के अन्दर मूस की तरह है। मूस एक दिन ढोल काट देगा।

अजातशत्रु को देवदत्त ने सलाह दी—'पिता की हत्या कर दी जाय।' अजातशत्रु पितृ हन्ता बनने के लिए उद्यत नही हुआ। उसने स्पष्ट कहा। शास्त्र पिता को अवध्य मानता है। कैसे अपने पिता की हत्या करेगा। दुष्ट प्रकृति देवदत्त ने उपाय निकाल लिया। उसने कहा—'ठीक है। बन्दी गृह मे डाल दीजिए। भूखो मर जायगा। पितृ-हत्या का दोष नही लगेगा।'

अजातशत्रु ने विम्बसार को तापन[१] गृह में रख दिया। आदेश दिया—'उसकी माता के अतिरिक्त उस गृह मे कोई और न जाने पाये। कडा पहरा बैठा दिया जाय।'

× × ×

राजा का खान-पान बन्द था। रानी अपने उत्सग अचल मे भोजन छिपाकर ले जाती थी। उससे राजा जीवन निर्वाह करने लगा।

पिता को मरता न देखकर अजातशत्रु को सन्देह हुआ। उसने जाँच की। उसे वास्तविकता का पता लग गया। उसने आदेश किया—'माता उत्सग (आँचल) बिना बाँधे भीतर प्रवेश किया करे।'

× × ×

---

(१) तापनगेह : कारागार।

रानी ने जूडे मे भोजन छिपाया। भोजन ले जाने लगी। वह बात भी मालूम हो गयी। खुला जूडा जाने की अनुमति मिली।

× × ×

रानी सुवर्ण पादुका मे भोजन छिपाकर ले जाने लगी। इसका भी पता लग गया। रानो को आदेश दिया गया। वह पादुका विहोन प्रवेश पा सकती है।

× × ×

रानी गधोदक से स्नान करती थी। चार मधुर रस मलती थी। वस्त्र पहन कर स्वामी के कारागार मे प्रवेश करती थी। रानी का शरीर चाटकर राजा जीने लगा।

पिता मरता नही। अजातशत्रु को चिन्ता हुई। उसे पता लग गया। उसने रानी का जाना रोक दिया।

× × ×

रानी नित्य की भाँति कारागार के द्वार पर आयी। उसे रोक दिया गया। रानी द्वार से ही पति से बोली—'आर्य ! वालकाल मे आपने इसको हत्या नही करने दी। आपने अपने शत्रु को स्वयं पाला है। स्वयं राज त्याग किया है। यह अन्तिम दर्शन है। अव आपको पुन: नही देख सकूँगी। यदि मैने कोई अपराध किया हो तो क्षमा कीजियेगा।'

रानी करुण रुदन करती लौट आयी।

× × ×

कारागार में राजा आहार हीन निवास करने लगा। सुख से टहलते हुए जीवन व्यतीत करने लगा।

अजातशत्रु पिता को शीघ्र मरता न देखकर चिन्तित हुआ। उसने नापित को आदेश दिया। पिता की हत्या अविलम्व कर दी जाय।

नापित हत्या का प्रकार पूछा। राजा ने कहा :

'पिता के पैर को छूरे से काट दो। घाव में नमक और तेल भर दो। खैर को आग मे उस पैर को चिटचिटाते हुए भूनो।'

अजातशत्रु को अपने पिता पर दया नही आयी। नापित चला गया।

× × ×

नापित बिम्बसार के तापन गेह, जहाँ राजा बन्दी था, गया। राजा ने समझा। नापित बाल बनाने आया था। सम्भवतः पुत्र को अपनी करनी पर पश्चात्ताप हुआ है। बढे केश तथा नाखून काटने के लिए नापित भेजा था।

नापित के मुख पर प्रसन्नता राजा ने नही देखी। नापित लज्जित था। नत-मस्तक था। राजा ने पूछा :

'भणे ! क्या बात है ?'

'राजन् ! मै आपकी हत्या करने आया हूँ।'

'मेरी हत्या–?'

'हाँ राजन् ! राजा अजातशत्रुकी यही आज्ञा है।'

'नापित ! तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरी हत्या करो। मुझे किंचित् दुःख नही होगा। तुम्हे अपराध नही होगा।'

'राजन्–!'

'हाँ ! मै ठीक कहता हूँ। तुम्हें कोई दोष नही लगेगा।'

'राजन् ! मै विवश हूँ।'

'मै समझता हूँ नापित !'

राजा बिम्बसार सहर्ष प्रसन्नतापूर्वक मरने के लिए सन्नद्ध हो गया। नापित राजा की असीम प्रसन्नता देखकर चकित हो गया।

× × ×

अजातशत्रु अपने पुत्र के जन्म का हाल अमात्यो से पूछकर लौट रहा था। अजातशत्रु को उसके अमात्यो ने पुत्र-जन्म का लेख दिया। लेख पढ़कर वह प्रसन्न हो गया।

स्वय पिता हो गया। उसने अनुभव किया। पुत्र-स्नेह क्या होता था। उसने सोचा–'मेरे जन्म लेने पर पिता को भी इसी प्रकार का स्नेह मेरे लिए हुआ होगा। जैसा पुत्र प्राप्ति पर मुझे हो रहा था।' वह चिल्ला उठा :

'पिता को मुक्त करो। पिता को मुक्त करो। बन्दी मुक्त करो।'

अमात्यो ने पिता की मृत्यु का दूसरा लेख अजातशत्रु के हाथ मे रख दिया।

पिता की मृत्यु का समाचार पढते ही वह विकल हो गया। माता के पास दौड़ा गया।

'अम्मा ! क्या मेरे पिता का मुझ पर स्नेह था ?'

'अज्ञ ! पुत्र !! क्या कहता है। वाल्यावस्था मे तेरी उगली मे फोड़ा हुआ था। तू बहुत रो रहा था। परिचायको ने तुम्हे फुसलाना चाहा। समझाना चाहा। उस समय तुम्हारे पिता विनिश्चत शाला मे बैठे थे। परिचायक तुम्हे चुप होता न देखकर तुम्हे लेकर विनिश्चित शाला मे गये। स्नेहभूत पिता ने तेरी उगली अपने मुख मे रख ली। उगली का फोडा मुख मे ही फूट गया। तुम्हारे स्नेह के कारण रक्त मिश्रित पीप को वे थूक न सके। पी गये। इस प्रकार पिता का तुम्हारे ऊपर स्नेह था।

अजातशत्रु रोने लगा। उसने पिता की दाह-क्रिया करने का निश्चय किया।

× × ×

—किन्तु अजातशत्रु ने पितृ-हत्या का जो बीजारोपण किया वह पॉच पीढ़ी तक चलता रहा। अजातशत्रु ने विम्बसार को मारा, उदय ने अजातशत्रु को मारा। महामुण्ड ने उदय को मारा, अनुरुद्ध ने नागदास को मारा, नागदास को मारा, नागदास को राष्ट्रवासियो ने मारा।

●

आधार ग्रन्थ :

दीर्घ निकाय १ . २, २ ५

सामज फल सुत्त

सुत्त निपात ३ . २

(पवज्जा सुत्त)

A : ii : 206.

A A . i . 220; ii . 791.

D : iv · 347

D A · i · 135.

DhA . i : 85, 225, 125, 345.

. iii 206, 438, iv · 211.

DpV . iii · 50, 52

J i . 66, iii . 121; ii : 237, 403.

M . i 95.

M A i . 516

MhV ii : 25, v . 17.

P U A : 204, 89.

S N vs 405.

S N A ii 386.

Thag 64.

Thag A . i 147.

Vin i 35, 36, 190, 101, 179, 207

कंजूस

मध्याह्न काल था। श्रावस्ती में भगवान् थे। कोसलराज प्रसेनजित् भगवान् के पास आये। अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। भगवान् ने पूछा :

'राजन् इस मध्याह्न काल मे आप कैसे पधारे ?'

'भन्ते ! श्रावस्ती के श्रेष्ठ गृहपति का देहावसान हो गया है। वह निःसन्तान था।'

'उसका धन क्या हुआ ?'

'भन्ते ! उसकी सब सम्पत्ति राज-भवन में भेजकर आ रहा हूँ।'

'उसके पास क्या था ?'

'उसके पास अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ थी। रुपयो का गणना करना कठिन था।'

'अच्छा !'

'भन्ते ! यह महान् सम्पत्तिशाली खाता क्या था। आप सुनिएगा ?'

'निश्चय।'

'वह घोर मट्ठा के साथ चावल की खुद्दी का भात खाता था। उसका वस्त्र विचित्र था। तीन जुटे हुए टाट पहनता था। उसका रथ दर्शनीय था। वह जराजीर्ण मनुष्य की काया की तरह लगता था। तृण और पत्तो से छाया हुआ था।'

'राजन् ! बात ठीक घटी है। बुरे लोग अत्यन्त भोग-सामग्री पाकर भी उसका उपभोग नही करते। वे अपने माता-पिता को सुखी नही करते। स्त्री को सुख नही देते। सेवको-परिचायको को सुख नही देते। प्राप्त धन का परिणाम यही होता है। राजा उन्हे ले जाता है। अग्नि जला

देती है। पानी बहा ले जाता है। अप्रिय जनों के हाथों लग जाता है। बिना भोग किये धन व्यर्थ हो जाता है।'

'ठीक कहा भगवन्–।'

'राजन्। कल्पना कीजिए निर्जन स्थान में एक वापी है। उसका जल स्वच्छ है। शीतल है। स्वास्थ्यकर है। वापी उत्तम घाटो से युक्त है। रमणीय है। किन्तु उसका जल न कोई पीता है। न ले जाता है। न उसमे कोई स्नान करता है। न किसी के उपयोग में आता है। विना उपयोग वह निर्मल पेय जल नष्ट हो जाता है।'

'ठीक है भन्ते।'

राजन्। सज्जनगण धन पाकर उससे स्वयं सुख प्राप्त करते है। माता पिता को सुख पहुँचाते है। दान देते है। इस प्रकार भोगा गया धन न तो राजा के कोप मे जाता है। न उसे चोर ले जाते है। न वह नष्ट होता है। यह धन सफल होता है।'

'ठीक है भन्ते !'

'राजन्। किसी जन स्थान के समीप वापी है। उसके जल का उपयोग होता है। निस्सन्देह वह जल सफल होता है। शुद्ध होता रहता है। बँधा रहकर नष्ट भा नही हाता।'

'भगवान् दि।चत्र बात है ?'

राजन् !' भगवान् ने कहा–'उसका पूर्व वृत्तान्त सुनो। इसने भिक्षुओ को भिक्षा दिलायी थी। वह कहता था–श्रमण को भिक्षा दो।—कहकर उठता था। चला जाता था। तत्पश्चात् उसे घोर पश्चात्ताप होता था। सोचता था। नौकर-चाकर इस भिक्षा दिये अन्न को खा जाते तो अच्छा था।'

'विचित्र बात है—।' राजा ने चकित होकर कहा :-

—'यही नही राजन्। उसने भाई के एकमात्र पुत्र की भी धन के लिए हत्या करवा दी थी।'

'उसका परिणाम क्या हुआ भन्ते ?'

'उसने जो भिक्षा दी थी, उसके कारण सातवे स्वर्ग में जन्म लेकर सुगति पायी थी। वहाँ से पतित होनेपर सात बार श्रावस्ती मे श्रेष्ठी

हुआ। उसने दान का पश्चात्ताप किया था। वही कारण था। धन होने पर भी उसका उपभोग नही कर सका।'

'और भतीजे की हत्या— ?'

'उस पाप के कारण निःसन्तान हुआ।'

'अद्भुत भन्ते— !'

'राजन्! साथ में धन, धान्य, नौकर-चाकर कोई नही जाता। सब यहीं छूट जाते है। अपने शरीर से अपने वचन से, अपने चित्त से जो कुछ करता है, वही उसके साथ जाता है। राजन्! उसका वही अपना होता है। उसी को लेकर जाता है। वही उसके पीछे-पीछे छाया तुल्य जाता है। परलोक मे पुण्य ही प्राणियो का आधार होता है।'

आधार ग्रन्थ .

संयुत्त निकाय ३ २ : ६, १०

विडूडभ

फेणूपमं कायमिमं विदित्वा मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो ।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥

(यह काया फेन के समान है। मृगमरीचिका के समान है। अतएव मार के फन्दे को तोडकर यमराज की दृष्टि के परे हो जाइये।)

-ध० ४६

राजा प्रसेनजित् ने विचार किया। भिक्षु सघ के साथ विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। उनका विश्वास-पात्र होना उचित है। तथागत शाक्य-वंशीय थे। अतएव उसने निश्चय किया। शाक्य वश के साथ रक्त सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

शाक्यो के पास राजा का दूत पहुँचा। शाक्य सन्थागार मे थे। दूत ने राजा का प्रयोजन उन्हे मधुर शब्दो मे सुनाया। मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की बात चलायी। शाक्यो ने दूत का आदर किया। सत्कार किया। उसे ठहरने का प्रबन्ध किया।

शाक्य एकत्रित हुए। परस्पर विचार-विनिमय करने लगे।

'राजा प्रबल है। हमे सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।'

'अस्वीकार करने पर हमारा सहार हो सकता है।'

'किन्तु वह समान कुल नही है।'

'रक्त सम्बन्ध असमान कुल से कैसे हो सकता है?'

'किन्तु अस्वीकार नही किया जा सकता।'

'मैने एक उपाय सोचा है।' महानाम ने कहा।

'क्या— ?'

'उसे गोपनीय रखना होगा।'

'अवश्य—'

'मेरी दासी पुत्री को आप लोग जानते है !'

'हाँ—वाषभ क्षत्रिया ।'

'वह अनुपम सुन्दरी है ।'

'युवा है ।'

'राजा के अनुरूप है ।'

'हॉ—हॉ—उसके साथ विवाह कर देना चाहिए ।'

'शाक्य कुलीन कन्या उसे प्रदर्शित किया जाय ।'

'निश्चय ही ।'

शाक्यों ने दूत को बुलाकर स्वीकृति दे दी । कन्या का नाम, गोत्र आदि भी शासन मे लिख दिया ।

× × ×

'राजन् !' दूतो ने प्रसेनजित् से निवेदन किया ।

'शाक्यो के यहाँ से लौट आये ?'

'हॉ, राजन् ।'

'क्या हुआ ?'

'वे अपनी कन्या देने के लिए तैयार है ।'

राजा प्रसन्न हो गया । उसने पुनः पूछा :

'किसकी कन्या है ?'

'सम्यक् सम्बुद्ध के वश की ।'

राजा हर्षित हो गया । वे पुनः बोले ·

'तथागत के कनिष्ठ चाचा के पुत्र महानाम की कन्या है । उसका नाम वाषभ क्षत्रिया है ।'

'किन्तु क्षत्री शाक्य छली होते है ।'

'राजन् !'

'दासी कन्या भी दे देते है ।'

'तो— ?'

'यदि कन्या और पिता को एक थाली मे भोजन करते देखना तो कन्या को लाना।'

× × ×

राजा प्रसेनजित् के दूत शाक्यों के यहाँ पहुँचे। शाक्यो को सब बातें मालूम हो गयी थी।

महानाम ने दूतो को इस प्रकार दिखाया जैसे वह और कन्या एक थाली मे खा रहे थे। दूतो को यही ज्ञान हुआ। वे एक साथ एक पात्र में जैसे खा रहे थे। दूतो के मन में सन्देह नही रह गया।

महानाम ने कन्या को सुअलकृत किया। उसे पूर्ण वैभव के साथ विदा किया।

× × ×

राजा प्रसेनजित् ने कन्या देखी। वह अनिन्द्य सुन्दरी थी। राजा प्रसन्न हो गया। उसे अग्रमहिपी बनाया। उस पद पर उसे अभिषिक्त किया।

रानी वाषभ क्षत्रिया ने समय पर सुवर्ण वर्ण पुत्र प्रसव किया। राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अपनी पितामही के पास सन्देश भेजा। यह भी दूत से कहलवाया कि पुत्र के लिये दादी कोई उपयुक्त नाम का चयन कर दे।

सन्देशवाहक मन्त्री कुछ ऊँचा सुनता था। उसने पुत्र रत्न प्राप्ति की सूचना दी। राजा का सन्देश भी दिया। वार्षभ क्षत्रिया के विषय मे जब बात दादी करने लगी तो वल्लभ के स्थान पर उसने विडूडम नाम सुना। वही नाम पुत्र का भ्रम से रख दिया गया।

अल्प वयस्क होने पर भी राजा ने उसे सेनापति बना दिया।

विडूडम जब सात वर्ष का हुआ तो ननिहाल जाने की उसे प्रबल इच्छा हुई। माता ने बहुत समझाया। मार्ग बहुत लम्बा था। समय जाने का नही था। विडूडभ का ननिहाल जाना उस समय रुक गया।

वह सोलह वर्ष का हुआ। उसने पुन· ननिहाल जाने की इच्छा प्रगट की। माता इस समय रोक नही सकी। राजा ने भी जाने की अनुमति दे दी। मार्ग का समस्त प्रबन्ध कर दिया गया। विडूडभ एक भीड़ के साथ सोत्साह ननिहाल के लिए प्रस्थान किया।

विडूडभ के कपिलवस्तु पहुँचने पर बालक सथागार मे एकत्रित हुए। कुमार सथागार में गया। वहाँ उनका स्वागत हुआ। उसे दिखाने और बताने लगे। कौन उसका मातामह है। कौन उसकी माता तुल्य है। उसने सबकी वन्दना की। उसे आश्चर्य हुआ। किसी ने उसकी वन्दना नही की। उसने पूछा—'हमारी वन्दना कोई क्यों नही कर रहा है ?'

शाक्यो ने सविनय उत्तर दिया—'आपसे अल्प वयस्क कुमार बाहर गये है।'

शाक्यो ने यथोचित सोत्साह उसका स्वागत किया। अभ्यर्थना की। वह सन्तुष्ट हो गया।

उसके जाने का समय आ गया। सबसे विदा लेकर प्रस्थान करना चाहता था।

एक दासी उसके बैठने के फलक को दूध और पानी से धो रही थी। पूछने पर निन्दा करने लगी—'यह वार्षभ क्षत्रिया दासी के पुत्र के बैठने का फलक है। इसलिए धो रही हूँ।'

वहाँ अचानक एक कोशल सैनिक आ गया। वह अपना हथियार भूल गया था। दासी के मुख से उसने बात सुनी। उसे आश्चर्य हुआ। वह पुनः दासी से पूछा। दासी नें वही बात दुहराई। सैनिक ने यह बात आकर सेना मे प्रसारित कर दी।

सेना मे कोलाहल हुआ। कोशल और श्रावस्ती से आये लोगों मे कोलाहल हुआ। चारो ओर इसी बात की चर्चा थी। विडूडभ ने सुना। लज्जित हुआ। उसे शाक्यो पर बड़ा क्रोध आया। उसने निश्चय किया। उसके बैठे फलक को दूध जल से धोया गया है। वह शाक्यो मे छिन्न मस्तक से स्रवित रक्त द्वारा अपना आसन धुलवाएगा।'

× × ×

सदल बल विडूडभ श्रावस्ती पहुँचा। जाते समय उत्साह था। लौटते समय उदासी थी। लज्जा थी।

अमात्यों ने राजा से सब हाल कहा। राजा क्रुद्ध हुआ। उसे जिस छल की आशंका थी। शाक्यों ने वही किया। उसने माता और पुत्र को

दिये गये सब सम्मानो को छीन लिया। उन्हें दास-दासो के स्थान में भेज दिया।

× × ×

तथागत का एक दिन प्रसेनजित के राजप्रासाद मे शुभागमन हुआ। राजा ने उनकी वन्दना की। शाक्यों ने जो दुर्व्यवहार उनके साथ किया था कह सुनाया।

'राजन्!' तथागत ने कहा, 'शाक्यो ने अयुक्त कार्य किया है।'

'एक दासी कन्या के साथ—'

'नही राजन्!'

'भन्ते! आपको सन्देह है।'

'राजन्! वह राजदुहिता है। क्षत्रिय राजा के प्रासाद मे उसने अभिषेक प्राप्त किया है।'

'मेरा पुत्र–विडूडभ– ?'

'वह भी क्षत्रिय राजा से उत्पन्न हुआ है। आप क्षत्रिय नही हैं क्या ?'

'किन्तु उसकी माता का गोत्र ?'

'मातृ गोत्र से क्या होता है। पिता का गोत्र प्रमाण माना जाता है। आपका गोत्र तो ठीक है।'

'भन्ते! मेरा भ्रम दूर हुआ।'

'राजा ने विडूडभ तथा उसकी माता को प्रकृत परिहार किया अर्थात् सम्मान पुनः वापस दे दिया।

× × ×

तक्षशिला के लिए प्रसेनजित, वैशाली का लिच्छवी कुमार महाली तथा कुशीनगगर का मल्ल राजपुत्र बंधुल[1] एक साथ अध्ययन निमित्त प्रस्थान किये।

---

(१) बंधुल कुशीनारा के मल्लो के सरदार का एक पुत्र था। कालान्तर में राजा प्रसेनजित का सेनापति हो गया। इन्हें बन्धु मल्ल भी कहा गया है। इसकी स्त्री का नाम मल्लिका था। महालता प्रसाधन विशाखा, देवदानिय चोर तथा मल्लिका केवल तीन के पास था। पति की मृत्यु के पश्चात् महालता

तक्षशिला नगर के बाहर धर्मशाला में तीनों विद्यार्थी मिले। परस्पर परिचय प्राप्त कर वे एक दूसरे के मित्र बन गये।

उन्होने अध्ययन समाप्त किया। एक साथ ही तक्षशिला से अपने निवास-स्थान की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

प्रसेनजित ने अपनी विद्या का प्रदर्शन किया। पुत्र की निपुणता तथा कौशल देखकर प्रसेनजित् के पिता प्रसन्न हो गये। उन्होने पुत्र का राज्याभिषेक किया।

महाली कुमार ने लिच्छवियों के सम्मुख अपनी विद्या का अनेक प्रकार से प्रदर्शन किया। वे कालान्तर मे अन्धे हो गये। लिच्छवियो ने उनके ज्ञान का यथाशक्ति लाभ उठाने के लिए उन्हे अपने यहाँ रख लिया। वे ५०० विद्यार्थियो को विद्या-दान करने लगे। लिच्छवियों ने उनकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप एक लाख आय का नगर उन्हे दे दिया था।

बन्धुल राजकुमार को मल्ल राजकुमारों ने तग किया। उसके शिल्प की परीक्षा लेने के लिए बाँसों में लोहे की शलाका डालकर खडा कर दिया। वह ऊपर से बाँस जैसा दिखाई देता था।

बाँस काटने के लिए उससे कहा गया। बन्धुल आकाश में उछलकर बाँस पर प्रहार किया। भीतर लोहे की शलाका होनेके कारण तलवार खनखना कर रह गयी।

उसे ग्लानि हुई। तलवार फेंककर रोने लगा। उसके किसी ज्ञाति भाई ने लोह शलाका की बात उससे नही बतायी थी।

वह दुःखी अपने माता-पिता के पास पहुँचा। उनसे क्रोधित स्वर में कहा :

'पिता! मै इन सबको मारकर स्वय राज्य करूँगा।'

पिता ने कहा—'तात! यह प्रवेणी राज्य है। यहाँ ऐसा करना अनुचित होगा।'

प्रसाधन मल्लिका देवी ने उतार दिया। किन्तु भगवान् के शव पर इसने उसे पुन. निकाला और उस पर डाल दिया। उसने निश्चय किया कि जब तक वह जीवित रहेगी किसी प्रकार का अलंकार धारण नही करेगी।

'अच्छा तो मैं अपने मित्र प्रसेनजित के पास जाता हूँ।'

माता-पिता से विदा लेकर वह श्रावस्ती आया। प्रसेनजित उसके गुणों को जानता था। उसे अपना सेनापति बनाया।

वन्धुल ने अपने माता-पिता को श्रावस्ती बुला लिया। वही का निवासी बन गया।

× × ×

राजा का सेनापति बन्धुल था। उसको भार्या का नाम मल्लिका था। बहुत दिनो तक उसे सन्तान नही हुई। कालान्तर में गर्भ ठहर गया। उसे दोहद उत्पन्न हुआ। उसने वधुल से कहा :

'आर्य! वैशाली नगर है। उसमे राजकुल द्वारा अभिषिक्त एक पुष्करिणी है। मै उसमे स्नान करना चाहती हूँ। उसका जल चाहती हूँ।'

'इच्छा पूरी होगी मल्लिके!'

बधुल सशक्ति मल्लिका के साथ रथ पर चला। वैशाली के लिए प्रस्थान किया। विद्यार्थी जीवन के सखा, महाली लिच्छवी के बताये द्वार से उस ने वैशाली में प्रवेश किया।

पुष्करिणी पर कठोर पहरा था। उसका जल कोई ले नही सकता था। लोहे के जाल से आवृत था। पक्षियो का भी उसमे प्रवेश असम्भव था।

बधुल रथ से उतर कर पुष्करिणी पर गया। बेतों से प्रहरियो को पीटा। जाल को काटा। अपनी पत्नी सहित स्नान किया। रथ पर बैठ कर श्रावस्ती की तरफ लौट पड़ा।

प्रहरियो ने लिच्छवियो को सूचना दी। वे क्रुद्ध हुए। दुन्दुभी बजी। लिच्छवी सन्थागार मे एकत्र हुए। निर्णय लिया गया। बधुल का पीछा किया जाय।

लिच्छवी पाच सौ रथो पर आरूढ हुए। पकड़ने चले। महाली को मालूम हुआ। उसने उन्हे रोका। सावधान किया। बधुल बली है। सबको मार डालेगा। वे उपेक्षा से बोले—बधुल मल्ल को बन्दी बनाएँगे। किन्तु सघर्ष मे सभी लिच्छवी मारे गये।

बंधुल पत्नी मल्लिका के साथ श्रावस्ती लौट आया। समय पर मल्लिका

को युगल पुत्र सोलह बार हुए। वे सब बलवान थे। शूरवीर थे। शिल्प में निष्णात थे।

× × ×

एक समय बंधुल आ रहा था। उसने भीड़ देखी। भीड़ दुहाई देने लगी। न्यायाधीश घूस ले रहा था। शोर था। बधुल रुक गया। न्यायालय मे गया। विवाद का निर्णय किया। स्वामी को स्वामी बनाया। जनता ने उसका साधुवाद किया।

राजा सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने अमात्यो को हटा दिया। बधुल के जिम्मे न्याय विभाग दे दिया गया। राज्य मे ठीक ढग से न्याय-कार्य चलने लगा।

निकाले गये अवसर प्राप्त न्यायाधीशो का काम घूस के अभाव मे चलना कठिन हो गया। राजा का कान भरना आरम्भ किया। बंधुल शक्तिशाली हो गया था। राज्य लेना चाहता था। राजा को पहले शंका हुई। पुन. उसके मन मे जुगुप्सा ने बात बैठा दी।

राजा चुगुलखोरो की बात मे आ गया। निश्चय किया। बन्धुल को मरवा दिया जाय।

सीमान्त मे विद्रोह हो गया। बहाना निकाला गया। बन्धुल सीमान्त में भेज दिया गया। सीमान्त से लौट रहा था। मार्ग मे राजा ने उसकी हत्या निमित्त आयुधधारियों को नियुक्त किया। बन्धुल की उसके पुत्रो के साथ हत्या कर दी गयी।

× × ×

गुप्तचर पुरुषो ने राजा को सूचना दी। बन्धुल तथा उसके पुत्र निर्दोप थे। उनको व्यर्थ हत्या की गयी थी। राजा सविग्न हो गया। बन्धुल मल्ल के निवास-स्थान पर गया। उसकी पत्नी मल्लिका तथा उसकी बहुओ से क्षमा याचना की।

मल्लिका कुशीनगर अपने कुलगृह चली गयी। राजा ने बन्धुल की हत्या का प्रायश्चित्त करने का विचार किया। बन्धुल के भानजे दीर्घ कारायण को सेनापति का पद दे दिया जाय। राजा ने दीर्घ कारायण के विधिवत् सेनापति के पद पर नियुक्ति की घोषणा की।

× × ×

दीर्घ कारायण मामा की हत्या भूला नही था। अवसर खोज रहा था। प्रतिहिंसा उसके शिराओं मे घर कर गयी थी।

बन्धुल की निर्दोष हत्या के पश्चात् राजा खिन्न रहता था। उसका किसी काम मे मन नही लगता था। सुख को किंचित्-मात्र अनुभव नही करता था।

उन दिनो शास्ता शाक्यो के उलुम्प[1] नामक ग्राम में विहार कर रहे थे। राजा वहाँ गया। स्कन्धावार (शिविर) डाल दिया। वह स्थान आराम से बहुत दूर नही था। राजा भगवान् के आराम में पहुँचा। अपना छत्र, व्यजन, उष्णीष, खड्ग और पादुका दीर्घ कारायण को दे दिया। एकाकी तथागत के पास गधकुटी में प्रवेश किया।

गधकुटी मे प्रवेश करते ही दीर्घ कारायण ने दूसरी तरफ उन पाच ककुध भाण्ड के साथ विडूडभ को राजा घोषित कर दिया। समस्त सेना वापस चली गयी। राजा के लिए केवल एक अश्व तथा सेविका छोड़ दिया गया। विडूडभ राजधानी श्रावस्ती की ओर सवेग चला।

राजा गंधकुटी से बाहर निकला। उसे वहाँ दीर्घ कारायण तथा उसके साथी परिचायक आदि नही मिले। राजा ने केवल सेविका को देखा। पूछने पर सब बातें उसे ज्ञात हुईं। हतबुद्धि हो गया। उसको समझ मे नही आया क्या करे।

अजातशत्रु की सहायता से विडूडभ को बन्दी बनाने की योजना राजा बनाने लगा। राजगृह के अपने भांजा अजातशत्रु से सहायता प्राप्त करने का विचार किया।

× × ×

सन्ध्या काल था। राजगृह नगर का द्वार बन्द था। राजा एक शाला मे ठहर गया। धूप तथा मार्ग की शिथिलता से वह व्यथित था। वह सोया। फिर न उठा।

रात्रि बीतने पर सेविका ने राजा को मृत पाया। वह रुदन करने

---

(१) उलुम्प : शाक्य देश मे एक निगम था। प्रसेनजित राजा अपने सेनापति बंधुल की मृत्यु पर भगवान् के सम्मुख उपस्थित होकर पश्चात्ताप किया था।

लगी। समाचार अजातशत्रु के पास पहुँचा। अजातशत्रु ने मामा प्रसेनजित की अन्त्येष्टि राजानुरूप और पूर्ण सत्कार के साथ की।

× × ×

विडूडभ को शाक्यों की बातें भूली नही थी। वह प्रतिहिंसा से जल रहा था। उसने बहुत बडी सेना एकत्रित की। कपिलवस्तु की ओर प्रस्थान किया।

कपिलवस्तु पहुँचकर देखा। तथागत एक अत्यन्त क्षीण छाया वाले वृक्ष के नीचे बैठे थे। वहा छाया और धूप चितकबरी गाय की तरह लगती थी।

विडूडभ की राज्य-सीमा में एक बहुत घनी छाया वाला वट वृक्ष था। उसने शास्ता को देखा। समीप गया। अभिवादन किया। वन्दना की। निवेदन किया :

'भन्ते! बडी गर्मी है। स्वल्प छाया वाले वृक्ष के नीचे क्यो बैठे हैं। आइये उस वट के नीचे चलिये।'

'महाराज!' तथागत ने कहा, 'जाति वालो की छाया शीतल होती है।'

विडूडभ समझ गया। शास्ता अपने जाति वालो की रक्षा निमित्त आये थे। वह लौट गया। इसी प्रकार वह तीन बार सदल बल आया। किन्तु शास्ता को देखकर लौट गया।

× × ×

चौथी बार वह पुनः बडी सेना के साथ आया। शाक्य भी युद्ध निमित्त निकले। किन्तु विडूडभ को वे मारना नही चाहते थे। आदेश दिया। विडूडभ की सेना पर इस प्रकार बाण चलाया जाय कि वह मर न सके। शाक्य सेना ने आदेश का पालन किया।

विडूडभ को शाक्यों की बात बताई गयी। वह क्रोधित हो गया। आदेश दिया। जहाँ शाक्य मिलें उन्हे निश्शंक मारा जाय। केवल महानाम तथा उनके समीपस्थ व्यक्तियो पर कोई हाथ न उठाये।

आतंक फैल गया। शाक्य घास-मूली की तरह कटने लगे। कितने ही शाक्यो ने शाक्य होना अस्वीकार कर दिया। कितने ही मुख मे तृण रख कर बोले—'हम शाक्य नही, तिनका हैं। नल को पकड़कर वहुत से

शाक्य खड़े थे। उन्होंने पूछने पर कहा—'हम शाक्य नहीं, नल हैं। हम तृण शाक्य हैं।'

महानाम तथा उनके समीपस्थ शाक्य केवल बच गये। तृण दबाए हुए शाक्यों का नाम तृण शाक्य पड़ा। नल पकड़े शाक्यों का नाम नल शाक्य पड़ा।

दूध पीते नवजात शिशु भी इस हत्या-काण्ड से नहीं बच सके। शाक्यों के छिन्न मुण्ड के निकलते रक्त से उसने फलक धुलवाया। शाक्य वंश विडूडभ की कोपाग्नि में जल गया।

महानाम वन्दी बना लिया गया। वह विडूडभ के साथ चला। विडूडभ को भोजन की बात स्मरण थी। उसकी माँ के साथ उसने भोजन नहीं किया था। विडूडभ ने अपने नाना महानाम से अपने साथ भोजन करने के लिये कहा। महानाम को यह अपमान सह्य नहीं था! उसने एक उपाय निकाल लिया।

विडूडभ से कहा। भोजन के पूर्व स्नान करना आवश्यक है। विडूडभ जानता था। भोजन के पूर्व स्नान करना आवश्यक माना जाता था। उसने स्नान करने की आज्ञा दे दी।

महानाम सरोवर पर स्नान निमित्त आया। उसने निश्चय कर लिया था। दासी-पुत्र के साथ खाने की अपेक्षा मर जाना अच्छा था। आत्म-हत्या की दृष्टि से वह सरोवर मे कूद पड़ा। डूब कर मरना चाहा।

किन्तु सरोवर के नागो ने उसकी जान बचा ली। उसे नागलोक ले गये।

इस महासहार के पश्चात् विडूडभ ने अचिरवती नदी के तट पर शिविर स्थापित किया। उसके सैनिक और साथी कुछ तटीय बालू पर लेट गये। कुछ लोग तटीय भूमि पर सो गये।

घोर घरघराती मेघ घटा उठी। भयकर ओला-वृष्टि होने लगी। बाढ़ आ गयी। कोई भागकर बच नही सका। विडूडभ अपनी सेना सहित सरिता मे बहता समुद्र मे पहुँच गया।

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद ४ . ३

मज्झिम निकाय २ ४ · ९

Ap : 1 300.

DhA · i 346-349, 357-361

J : 1 · 133, iv : 146, 151

M . 2 · 110, 127

UdA : 1 : 265.

उपसेन

नालक ग्राम था। उसमें एक कुलीन ब्राह्मण था। उपसेन[1] ने वहीं जन्म ग्रहण किया था। उसकी माता का नाम रूपसारि था। वह तीनों वेदों मे पारंगत था। उसके पिता का नाम वंगत था। सारिपुत्र का कनिष्ठ भ्राता था।

उसने एक समय भगवान् का उपदेश सुना। गृह त्याग किया। प्रव्रज्या ली। एक वर्ष के पश्चात् उसने विचार किया। धर्म मे जनता को दीक्षित करना चाहिये। प्रव्रजित करना चाहिए।

उसने एक भिक्षु को प्रव्रजित किया। नव प्रव्रजित के साथ भगवान् के समीप गया। भगवान् से उसने अपने कार्य का वर्णन किया। भगवान् प्रसन्न नही हुए। उसकी सत्वर प्रक्रिया की निन्दा की।

उसने निश्चय किया। एक को भिक्षु वनाकर यदि अपराध किया है तो उसी के कारण अर्हत पद प्राप्त करेगा। समय पर परिश्रम, अभ्यास तथा तपस्या के कारण उसने अर्हत्व प्राप्त किया। उसकी अन्तर्दृष्टि खुल गयी। उसने अपनी तपस्या के कारण दूसरो को आकर्षित किया। उन्हे भी अभ्यास तथा उद्योग से अर्हत्व प्राप्त करने के लिए पथ प्रदर्शित किया। इसमें उसे सफलता मिली। भगवान् उसपर प्रसन्न हुए।

× × ×

उपसेन ने एक दिन विचार करते हुए उदान कहा :

'ध्यान के लिए निर्जन, नि.शब्द, वन जन्तुओ द्वारा सेवित स्थान श्रेयस्कर है। घूर पर से, श्मसान भूमि से, गलियों में पड़े चिथड़ों की मोटी सघाटी वनाकर उसे धारण करना अच्छा है। ओ भिक्षु! अपने

---

(१) उपसेन : बौद्ध धर्म ग्रन्थो में विजितसेन भिक्षु के भाई तथा दूसरे सुजात बुद्ध के पुत्र उपसेन. गंध वश का उल्लेख मिलता है।

इन्द्रिय द्वारों का तू निरोध कर। सुसंयत होकर, एक ओर से दूसरी ओर तक नम्रतापूर्वक भिक्षा चरण करो।

ओ ! भिक्षु !' रसमय भोजन से ध्यान नही होता। उसकी चिन्ता त्याज्य है। रुक्ष भोजन सन्तोष निमित्त पर्याप्त है। अल्पेच्छुक, सन्तुष्ट एवं एकान्तवासी गृहस्थ एवं प्रव्रजित दोनो से दूर रह कर विहार करो।

'मुने !' पण्डितो के समूह मे अधिक भाषण अपेक्षित नही है। जगत् के सम्मुख जड और मूक तुल्य रहना उचित है। हिंसा का त्याग कर। दोषारोपण का त्याग कर। प्रतिमोक्ष के नियमो मे सयत हो, उचित मात्रा मे भोजन प्राप्त कर। समाधि का विचार पूर्णरूपेण ग्रहण कर, चितोत्पाद में कुशलता प्राप्त करते हुए, शमथ भावना तथा विदर्शना में तत्पर होना अच्छा है। योगाभ्यास में वीरता तथा तत्परता से युक्त होना उचित है। बिना दुःख के अन्त को प्राप्त किये, पण्डित को अपनी प्राप्ति पर विश्वास करना, उचित नही लगता। शुद्धि कामेच्छु भिक्षु के आस्रव क्षीण हो जाते हैं। वह परम शान्ति प्राप्त करता है।'

× × ×

राजगृह था। सप्प सोण्डिक[1] प्राग्भार था। उसमे शीत वन था। वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र और उपसेन विहार करते थे।

उपसेन भिक्षा ग्रहण कर चुके थे। सप्प सौण्डिक प्राग्भार की छाया मे विश्राम कर रहे थे। शीतल वायु चल रही थी। वह अपना वस्त्र ठीक कर रहे थे। दो सर्प गुफा के ऊपर खेल रहे थे। उपसेन ने वस्त्र उतार दिया था। उनका स्कन्ध प्रदेश खुला था। खेलते-खेलते एक सर्प ऊपर से उनके स्कन्ध प्रदेश पर पड़ा। उन्हे काट लिया।

उपसेन घबड़ाया नही। उसके शरीर मे विष फैलने लगा। उसने समीप ही उपस्थित अपने ज्येष्ठ भ्राता सारिपुत्र तथा अन्य भिक्षुओ को बुलाया। उनसे प्रार्थना की :

'आयुष्मानो ! मुझे विषधर सर्प ने काट लिया है।'
'अरे ?'

---

(१) सप्प : सौण्डिक (पब्भार) सर्प शौण्डिक प्राग्भार यह राजगृह मे पर्वतीय गुफा था। इस पर्वत का आकार सर्प के फण के समान था। वह झुका पर्वत था। यह पर्वत सीतवन मे था।

'हाँ वह देखो जा रहा है।'

सर्प पत्थरो की ओट मे लुप्त हो गया। सर्प इतना अधिक विषैला था कि देखते-देखते उपसेन के शरीर पर विष प्रभाव दिखायी देने लगा। शरीर मलिन हो गया। उठने को शक्ति जाती रही। उसने निवेदन किया।

'भिक्षुओ ! इस शरीर को खाट पर लिटा दो।'

भिक्षुओं ने उपसेन के शरीर को खाट पर लिटा दिया।

उपसेन ने कहा—'भिक्षुओ ! खाट को बाहर आकाश के नीचे रख दो।'

'भिक्षुओ ! कुछ काल पश्चात् यह शरीर एक मुट्ठी भूसे की तरह बिखर जायगा।'

सारिपुत्र समाचार सुनते ही वहाँ पहुँच गये। भिक्षुओ की ओर देखते हुए बोले :

'उपसेन के शरीर में विकलता नही है। इन्द्रियों को विपरिणत नही देख रहा हूँ।'

उपसेन ने ज्येष्ठ भ्राता की बात सुन ली। उसने कहा :

'आयुष्मान् ! सारिपुत्र ! शरीर उसी का विकल होता है। इन्द्रियाँ उसी की विपरिणत होती है, जो समझता है। मै चक्षु हूँ। यह चक्षु मेरा है। मै मन हूँ। यह मन मेरा है।'

सारिपुत्र सहोदर भाई की अन्तिम बिदाई देख रहा था। कुछ बोला नही। उपसेन का शरीर काला पड़ गया था। उसने कहा :

'सारिपुत्र ! मेरा मन कैसे विकल होगा। मेरी इन्द्रियाँ कैसे विपरिणत होगी। मै शरीर नही हूँ। मै इन्द्रिय नही हूँ।'

मृत्यु वेग से उपसेन को अपने अक मे ले रही थी।

शनैः-शनैः उपसेन का स्पन्दन बन्द हो गया। विष ने अपना प्रभाव दिखाया। शरीर की शक्ति एक मुट्ठी भूसे को तरह बिखर गयी।

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे चौबीसवाँ स्थान प्राप्त मगध नालक ब्राह्मण ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न बगत पुत्र उपसेन समस्त प्रसादिको में अग्र हुए थे।

●

आधार ग्रन्थ :

संयुक्त निकाय ३४ २ २ ७

महावग्ग १ २ ७

थेर गाथा २३८, उदान ५६८-५५७

अंगुत्तर निकाय १ २४

धम्मपद

A · i 24.

A A i : 152

D A : ii 525.

DhA . ii 188

J ii : 449

S iv 40.

S A . iii 10

Thag A · i 525,

Vin i : 59; iii · 230

चुल्ल पन्थक

उट्ठानेनप्पमादेन, संयमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥

(उद्योग, अप्रमाद, संयम एवं दम्भ द्वारा मेधावी पुरुष ऐसे द्वीप की रचना करता है जो जलप्लावन से प्लावित नही होता।)

—ध० २ : ३ (२५)

चुल्ल पन्थक मगध राजगृह श्रेष्ठि का पुत्र था। उसके दूसरे भाई का नाम महापथक था।

दोनों ने त्रिरन्त की शरण ली थी। भिक्षु हुए थे। महापन्थक प्रव्रजित हुआ। महा मेधावी था। कुछ समय पश्चात् अर्हत पद प्राप्त कर लिया। चुल्ल पन्थक जहाँ का तहाँ रह गया।

देखा गया है। युगल सन्तानें भो समबुद्धि, सममेधा, सम कार्य कुशल नही होती। इन दोनो भ्राताओं के विषय मे यही बात लागू होती थी। यही पर कर्म सिद्धान्त की प्रामाणिकता मानने के लिए मानव बाध्य हो जाता है। युगलो का एक ही समय गर्भाधान होता है। एक ही समय जन्म होता है। उनके एक ही माता-पिता होते है। एक ही साथ लालन-पालन होता है। उनके ग्रह, नक्षत्र राशि प्रायः सब एक ही होते है। भौतिक दृष्टि से उन्हें एक समान होना चाहिये।

परन्तु देखा गया है। एक महा मेधावी होता है। दूसरा होता है महामूर्ख। एक महा धनी बन जाता है और दूसरा दरिद्रता मे बढ़ता है। रोते दिन बिताता है। कुछ ऐसी बात चुल्ल और महापन्थक के सम्बन्ध मे भी हुई।

चुल्ल और महापन्थक दोनो एक समय राजगृह के वेणु वन मे रहते थे। उस समय भगवान् भी उसी विहार मे विहार कर रहे थे।

चुल्ल पन्थक मन्द बुद्धि था। स्मरण शक्ति दुर्बल थी। वह एक गाथा चार मास में भी नही स्मरण कर पाता था। महापन्थक इसके ठीक विपरीत था। उसकी स्मरण शक्ति तीव्र थी। बुद्धि कुशाग्र थी।

× × ×

महापन्थक एक दिन भाई पर बहुत बिगड़ा। उसे विहार त्याग देने के लिए कहा। उसे अपने भाई की मन्द बुद्धि से उपायास हो गया था। चुल्ल पन्थक क्या करता ? उसके हाथ मे स्मरण शक्ति तेज करना नही था। बुद्धि कुशाग्र करना नही था। अच्छा यही समझा। विहार त्याग कर चला जाय।

चुल्ल पन्थक को महापन्थक ने स्पष्ट कह दिया। घर लौट जाय। उसका स्थान विहार नही था। उसकी बुद्धि धर्म के लिए अनुपयुक्त थी।

चुल्ल पन्थक अपमानित होता था। विहार का जीवन कठिन हो गया। विहार से निकल आया। द्वार पर खड़ा हो गया। उसे निराशा हुई। दु:खी हुआ। उदास हो गया। द्वार पर खड़ा रहा।

भगवान् का उस ओर आगमन हुआ। भगवान् ने चुल्ल पन्थक को उदास खड़ा देखा। उसके समीप आये। चुल्ल पन्थक ने भगवान् की अश्रुपूर्ण नेत्रो से वन्दना की। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। भगवान् ने जिज्ञासा की :

'आवुस ! उदास क्यों हो।'

'भन्ते ! भाई महापन्थक ने विहार से निकाल दिया है।'

'क्यों ?' भगवान् ने सविस्मथ पूछा।

'कहते हैं—मै मन्द बुद्धि हूँ।'

भगवान् संघाराम मे पहुँचे। आसन ग्रहण किया। शास्ता ने पाद पोछनी की ओर चुल्लपन्थक को संकेत किया। चुल्ल पाद पोछनी लेकर बैठ गया। भगवान् ने चुल्ल पन्थक से सहा :

'आवुस ! तुम शुद्ध वस्त्र का मनन करो।'

भगवान् ने प्रात: काल से मध्याह्न काल तक चुल्ल पन्थक को उपदेश दिया। विपश्यना द्वारा चुल्ल पन्थक ने प्रति सम्भिदाओ को प्राप्त किया।

× × ×

चुल्ल पन्थक आम्र वन में चला गया। एकान्तसेवी बन गया। उसने उद्योग, अभ्यास एवं परिश्रम का आश्रय लिया।

उसे दिव्य चक्षु प्राप्त हो गये। वह विशुद्ध हो गया। पूर्व जन्मो का ज्ञान हो गया। तीनो विद्याओं को प्राप्त किया। बुद्ध शासन मे पूर्णतया रत हो गया। मल दूर हो गये थे। निखरे बस्त्र की तरह मलो से शुद्ध हो गया।

एक दिन वह आम वृक्ष मूल में बैठा था। अपने आपमे लीन था। उसने देखा। एक आगन्तुक। चुल्ल पन्थक चकित हुआ। दूत ने समीप आकर प्रणाम किया।

'स्वागत बन्धु! चुल्ल पन्थक ने दूत का खडे होकर स्वागत किया। दूत ने देखा। एक वीतराग भिक्षु।

'आयुष्मान्! भगवान् ने मुझे भेजा है।'

'भगवान्!' चुल्ल पन्थक ने भगवान् का स्मरण किया। उन्हें अजलिबद्ध प्रणाम किया। दूत ने कहा :

'आयुष्मान्! काल है।'

'किसका काल है दूत?'

'भगवान् ने आपको स्मरण किया है।'

'आवुस! आसन ग्रहण कीजिये।'

चुल्ल पन्थक ने तृण आसन दूत को दिया। दूत ने आसन ग्रहण किया। चुल्ल पन्थक ने पूछा :

'भगवान् कुशल से हैं?'

'हाँ, आयुष्मान्।'

'चलता हूँ।'

चुल्ल पन्थक ने आसन लपेट कर वृक्ष मूल में रख दिया। भिक्षापात्र उठाया। चीवर लिया। उसने दूत से कहा :

'आवुस! मै चलता हूँ।'

'अवश्य चले आयुष्मान्।'

चुल्लपन्थक आकाश मार्ग से गमन किया।

× × ×

चुल्लपन्थक भगवान् के विहार मे पहुँचा। भगवान् का अभिवादन की। पाद वन्दना की। एक ओर बैठ गया।

'आयुष्मान्! प्रसन्न हैं।'

'भगवान्! की कृपा—।' चुल्लपन्थक ने नमन करते हुए निवेदन किया।

'चुल्लपन्थक! धर्म मे रुचि है।'

'शास्ता! वन्दना स्वरूप मेरी दक्षिणा स्वीकार करे।'

'स्वीकार है चुल्लपन्थक।'

× × ×

भिक्षुओ को इस परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ। उन्होने भगवान् से जिज्ञासा की :

'भन्ते! चुल्ल पन्थक ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया है?'

'हाँ भिक्षुओ।'

'भन्ते! जो व्यक्ति चार मास मे एक गाथा नही स्मरण कर सकता था। वह किस प्रकार कुछ घड़ियों मे अर्हत्व पद प्राप्त कर लिया?'

'भिक्षुओ! उद्योगी पुरुष अर्हत् पद प्राप्त कर लेता है।'

× × ×

भिक्षुओ मे चर्चा फैली। महापन्थक क्षीणास्रव था। तथापि उसने चुल्लपन्थक पर क्रोध किया था। अर्हतो को क्रोध शोभा नही देता। महापन्थक की निन्दा होने लगी। भगवान् ने सुना। भगवान् ने भिक्षुओ से कहा :

'भिक्षुओ! क्षीणास्रवों को रागादि न होने से क्लेश नही होते।'

'भन्ते! तथापि उसने अपना क्रोध प्रदर्शित किया। चुल्लपन्थक को बाहर निकाल दिया।'

'आवुसो!' भगवान् ने कहा, 'महापन्थक ने धर्म एव अर्थ का विचार कर यह कदम उठाया था।'

भिक्षु चुप हो गये। भगवान् ने गाथा कही :

यस्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

—ध० २६ : २५ (४०७)

'(जिसने आरा पर गिरते सरसो के समान राग, द्वेप, मान, मत्सर (अमरख) को फेंक दिया है। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ, भिक्षुओ)'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु अग्र श्रावको मे ग्यारहवाँ स्थान प्राप्त मगध राज गृह श्रेष्ठी कन्या पुत्र चुल्ल पन्थक मनोमय काय निर्माणकर्त्ताओ तथा चित्त विवर्त चतुरों मे अग्र हुआ था।

●

आधार ग्रन्थ .

चुल्ल पन्थक—थेर गाथा २३६, उदान ५५८-५६७

धम्मपद २ . ३

चुलसेथ जातक .

महा पन्थक

राजगृह मे धन सेठी का पौत्र महापन्थक[1] था। वह अपने प्रपितामह के साथ भगवान् का उपदेश सुनने जाया करता था। चुल्ल पन्थक का ज्येष्ठ भ्राता था।

वह स्रोतापन्न हुआ। प्रव्रजित हुआ। चारो अरूप ध्यान से उसने साधना की। वह अर्हत हुआ।

महापन्थक त्रैविद्य था। उसके साथ उसका कनिष्ठ भ्राता चुल्ल पन्थक भी विहार मे रहता था। चुल्ल पन्थक की मन्द बुद्धि के कारण एक दिन उसने कनिष्ठ भ्राता को विहार से निकाल दिया।

× × ×

भिक्षु क्रोध करता है। यह जानकर अन्य भिक्षुओ को दुःख हुआ। उन्हे महापन्थक का कार्य रुचिकर नही लगा। भिक्षु सघ मे एक दिन चर्चा उठी। भिक्षुओ ने कहा :

---

(१) महापन्थक : थेर गाथा मे महापन्थक को राजगृह के सम्पन्न परिवार की एक कन्या का पुत्र कहा गया है जिसकी उत्पत्ति कन्या के पिता के दास द्वारा हुई थी। अनुवादो तथा मूल कथा मे वडा अन्तर पड गया है। अतएव मैंने यहाँ थेर गाथा के एक अश को आधार नही माना है। परन्तु स्पष्ट कर दिया है कि थेर गाथा में उसकी वश परम्परा उसकी माता के पिता के एक दास—सेवक द्वारा हुआ कहा गया है। थेर गाथा हिन्दी (भिक्षु धर्मरक्षित) तथा पाली टेक्स सोसायटी में भी अन्तर है। पहले में पद संख्या ५११-५१८ और अग्रेजी में ५१०-५१७ दिया गया है। किन्तु अगुत्तर निकाय में पिता का नाम न देकर 'कन्या पुत्र' चुल्ल तथा महापन्थक दोनो के लिये दिया गया है। इससे स्पष्ट है। उनके पिता का नाम सन्दिग्ध था। अतएव 'कन्या पुत्र' नाम पिता के स्थान पर दिया गया है।

'भन्ते ! महापन्थक का कार्य अशोभनीय था। उसने चुल्लपन्थक को व्यर्थ विहार से बाहर निकाल दिया।'

'कहने का तात्पर्य भिक्षुओ ?'

'भन्ते ! भिक्षुओं के लिये क्रोध वर्जित है।'

'आयुष्मानो ! क्षीणास्रवों मे राग नही होता। क्रोध नहीं होता। क्लेश नही होता।'

'किन्तु ?'

'आवुसो ! महापन्थक ने अर्थ एवं धर्म को देखते हुए कार्य किया था।'

'कैसे भन्ते ?'

'आयुष्मानो ! आरो के दाँतो के ऊपर सरसों के दाने ठहर सकते हैं ?'

'नही भन्ते।'

'जिसने अपने चित्त से राग, द्वेष, मान, म्रक्ष, निकाल कर फेंक दिया है। उसमे क्रोध कैसे प्रवेश करेगा ?'

'भन्ते--!'

'आवुसो ! मै इसी प्रकार के व्यक्तियों को ब्राह्मण कहता हूँ।'

महापन्थक ने भिक्षु संघ मे ही उठ कर भगवान् की शिरसा नमन किया।

× × ×

महापन्थक धर्म-पथ पर बढता चला गया। क्षीणास्रव हो गया था। अर्हत्व प्राप्त कर लिया था। उसने ध्यान किया। ध्यान करते समय उसने उदान कहा·

'मैने सर्व प्रथम अकुतोभय शास्ता का दर्शन किया। उनका अवलोकन करते ही मुझमे सवेग उत्पन्न हुआ। मैं अपने घर गया। गृह-त्याग का निश्चय किया।

'मैने एक दिन गृह-त्याग दिया। खाली हाथ जिस गृह मे जन्म लिया था, वहाँ से खाली हाथ बाहर निकल आया। मैने पुत्र, पत्नी, सम्पत्ति, शस्य, सबका मोह त्याग दिया। अपने सुन्दर केशों को मुड़वा दिया।

मुख पर के बाल बनवा दिये। मै मुण्ड हो गया। गृहहीन परिव्राजक हो गया। प्रव्रजित हो गया।

'मै सम्बुद्ध को प्रणाम करता हूँ। मै शिक्षा एव शुद्ध आजीविका से मुक्त हुआ। इन्द्रियो को सयत किया। अपराजित हुआ। विहारशील हुआ। मुझमे सकल्प अंकुरित हुआ। अभिलाषा वर्षाकालीन लता की तरह प्रवल वेग से बढी। मै इस शरीर मे घुसे तृष्णा वाण को बिना निकाले नही रहूँगा। शरीर मे बिद्ध बाण जिस प्रकार अनेक कष्टो का कारण होता है। शरीर से रक्तस्राव कर, शरीर को शिथिल कर देता है। उसी प्रकार तृष्णा मेरे शरीर मे चुभ गयी थी। उसने मुझे निर्बल कर दिया था। शिथिल कर दिया था। मुझे मुहूर्त मात्र इस तृष्णा के साथ रहने मे महान् कष्ट का बोध होने लगा।

'मैने अपने सुदृढ़ पराक्रम द्वारा तीनो विद्याओ को प्राप्त किया है। मैने दृढ़ निश्चय के साथ बुद्ध शासन को पूर्ण किया है।'

'मुझे पूर्व जन्म का ज्ञान है। पूर्व जन्म मे मैने क्या किया था। जानता हूँ। मुझ दिव्य चक्षु प्राप्त हो गये है। मै विशुद्ध हूँ। मै अर्हत हूँ। मै दक्षिणार्द्ध हूँ। पूर्णरूपेण मुक्त हूँ। मै वासना रहित हूँ।

'मुझे ज्ञान हुआ। इस ज्ञान मे मुझे उत्साह हुआ। मनन की शक्ति उत्पन्न हुई। धर्म का रहस्य समझ सका। रात्रि के अवसान काल मे, प्रत्यूष काल मे, अपनी समस्त तृष्णाओ को सब प्रकार शोपित कर पद्मासन पर बैठ गया।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको मे बारहवॉ स्थान प्राप्त मगधराज गृहश्रेष्ठी कन्या द्वारा उत्पन्न महापन्थक सज्ञा विवर्त चतुरो मे अग्र हुआ था।

आधार ग्रन्थ :

थेर गाथा २३१, उदान ५११-५१८
धम्मपद २६ २४
जातक १ १४
A 1 . 24
A A 1 118
DhA · 1 241
J i 114
Thag A · 1 . 490.
Thag Vas 510-517.

सारिपुत्र का परिनिर्वाण

सारिपुत्र[1] ने निश्चय किया। जहाँ उन्होने जन्म लिया है वही परि-निर्वाण प्राप्त करेंगे।

सारिपुत्र ने चुन्दस्थविर[2] से कहा : 'आयुष्मान् चुन्द! मेरे ५०० भिक्षुओ को सूचना दो। मै नालक ग्राम[3] के लिए प्रस्थान करूँगा।'

आदेश मिलते ही सारिपुत्र के भिक्षुगणों ने शयनासन ठीक किया। पात्र-चीवर लिया। सारिपुत्र के समीप उपस्थित हुए।

सारिपुत्र ने अपना शयनासन ठीक किया। दिवा स्थान जहाँ दिन में विश्राम करता था, उसके द्वार पर खड़ा हुआ। उसने अन्तिम वार अपने दिवास्थान को देखा। अनन्तर अपने भिक्षुओ के साथ तथागत के समीप आया। उनका अभिवादन किया। वन्दना की। विनयपूर्वक निवेदन किया।

'भन्ते! अनुज्ञा दीजिये।'

भगवान् ने सारिपुत्र की ओर देखा।

---

(१) सारिपुत्र : कया 'सारिपुत्र' प्रष्टव्य है।

(२) चुन्द : बुद्ध साहित्य मे ४ चुन्दो का वर्णन है। एक पावा का कर्मार पुत्र था। महाचुन्द, चुल्लचुन्द तथा चुन्द समनुद्देश थे। महाचुन्द सारिपुत्र का भ्राता था। चुण्ड अर्थात् चुण्डक भगवान् की अन्तिम यात्रा मे कुशीनगर साथ गया था।

(३) नालक ग्राम उपतिष्य ग्राम : मगध के राजगृह के समीप एक ग्राम था। राजगृह समीपस्थ नालक ग्राम ही यह ग्राम माना जाता है। इसे नाल, नालक एव नालिका भी कहते हैं। यह ब्राह्मण ग्राम था। सारिपुत्र का पूर्व नाम उपतिष्य था। अतएव उनके नाम पर इस गाँव का उल्लेख उपतिष्य रूप मे भी मिलता है। उपतिष्य नगर नाम से भी उल्लेख मिलता है।

'सुगत ! अनुज्ञा दीजिये ।'

तथागत ने सारिपुत्र को एक बार ऊपर से नीचे तक देखा।

'भन्ते ! मेरा परिनिर्वाण काल आ गया है।'

तथागत की दृष्टि गम्भीर हुई।

'भन्ते ! मेरा आयु-सस्कार समाप्त हो गया है।'

'आयुष्मान् ! किस स्थान पर परिनिर्वाण करने का विचार किया है।'

'भन्ते ! नालक ग्राम मे।'

'क्यो ?'

'मगध मे। वह हमारा जन्म-स्थान है। जहाँ यह शरीर पाया है वही इस शरीर का त्याग करूँगा।'

'समय के अनुसार कार्य करो सारिपुत्र !'

सारिपुत्र के कोमल हाथ फैल गये। भगवान् के चरण-कमलों का स्पर्श किया। सारिपुत्र बोले :

'भन्ते ! अमर, क्षेम, सुख, शीतल, अभय, निर्वाण स्थान को प्राप्त करूँगा। मेरे कायिक, वाचिक कर्म यदि भगवान् को कभी अरुचिकर हुए हो तो भन्ते ! क्षमा कीजिएगा। यह मेरे अन्तिम प्रस्थान का समय है।'

'आयुष्मान् ! तुम्हे क्षमा प्राप्त है। तुम्हारा कायिक तथा वाचिक कोई कार्य कभी मुझे अरुचिकर नही लगा।'

'भन्ते !' सारिपुत्र ने भगवान् का चरण-कमल पुनः स्पर्श किया।

आयुष्मान् ! जिसका तुम काल समझते हो करो।'

चरणो की वन्दना कर सारिपुत्र उठा। भगवान् ने अपना आसन त्याग दिया। धर्मासन से उठे। गन्धकुटी के सम्मुख मणिफलक तक अपने शिष्य सारिपुत्र को पहुँचाने आये। वहाँ जाकर खडे हो गये।

सारिपुत्र ने भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा की। चारों स्थानों से वन्दना की।

'तथागत ! आपका यह अन्तिम दर्शन है। अब दर्शन न होगा।'

दश नखों से युक्त समुज्ज्वल अजलिबद्ध भगवान् को प्रणाम करते उलटे सारिपुत्र चलते रहे। भगवान् जब तक दृष्टिगत थे, उनके सम्मुख

मुख किये पीछे बढ़ते गये। भगवान् की दृष्टि ओझल होने पर वह भिक्षुओं के साथ नालक ग्राम की ओर प्रस्थान किये।

× × ×

सारिपुत्र के प्रस्थान के पश्चात् भिक्षुओ ने तथागत को घेर लिया। भगवान् ने कहा :

'भिक्षुओ ! सारिपुत्र तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता है। उनका अनुगमन करो।'

केवल तथागत अपने स्थान पर रह गये। भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक, उपासिका तथा चतुपरिषद जेतवन से बाहर निकली। श्रावस्ती के नगर-वासी भरे नेत्रो से सारिपुत्र का अन्तिम दर्शन करने घर से बाहर निकल आये। उनके केश बिखरे थे। हाथो मे गन्ध था। माला थी। अश्रुपूर्ण नेत्रो से रुदन करते, विलाप करते, सारिपुत्र को विदा किया।

सारिपुत्र ने भिक्षु सघ को लौटाया। अपने मित्रो को तथागत की यथाशक्ति सेवा करने का उपदेश दिया। सबसे यथायोग मिलकर श्रावस्ती का सर्वदा के लिए त्याग किया।

× × ×

सारिपुत्र मार्ग मे एक-एक रात्रि विश्राम करते थे। मार्ग मे सात दिन उपदेश देने के पश्चात् सायकाल नालक ग्राम पहुँचे। नालक ग्राम को ही उपतिष्य[3] ग्राम भी कहते थे। वह राजगृह के समीप था।

ग्राम द्वार पर वट वृक्ष था। उसकी छाया मे खडे हो गये। सारिपुत्र का भानजा उपरेवत[4] ग्राम से बाहर जा रहा था। सारिपुत्र को देखा। सादर समीप जाकर वन्दना की। विनयपूर्वक आदेश के लिए खड़ा हो गया। सारिपुत्र ने पूछा :

'गृह में तुम्हारी नानी कैसी है।'

'भन्ते ! कुशल से है।'

'उनको मेरे आगमन की सूचना दो।'

'और क्या कहूँ ?'

'उनसे कहना मै एक रात्रि यहाँ विश्राम करूँगा।'

---

(४) उपरेवत : सारिपुत्र का भानजा था।

'और— ?'

'जन्मगृह मेरा साफ कर दिया जाय।'

'यह भिक्षुवर्ग ?'

'इनके विश्राम का भी प्रवन्ध करना होगा।'

× × ×

'नानी !'

'क्या है पुत्र ?'

'मामा जी का आगमन हुआ है।'

'कहाँ है।' माता ने पुत्र को देखने की शुभकामना से आतुरतापूर्वक पूछा।

'ग्राम द्वार पर है।'

'एकाकी है।'

'नही। पाँच सौ भिक्षु है।'

'उनके आने का कारण मालूम है ?'

अपनी नानी से उसने जो कुछ बात मामा के साथ हुई थी कह सुनायी। वृद्धा की समझ मे नही आ रहा था। इतने लोगो के लिए क्या व्यवस्था की जाय।

माता ने जन्म-घर साफ कराया। भिक्षुओ के रहने का स्थान ठीक कराया। दण्ड दीपिका प्रज्वलित करायी। द्वार पर सन्देश भेजा। सब ठीक था। आना चाहिये।

सारिपुत्र अपने जन्म-कोष्ठ मे आये। बैठ गये। भिक्षुओ को उनके आसनो पर भेज दिया।

× × ×

सारिपुत्र को मरणांतक पीडा हुयी। रक्तस्राव होने लगा। माता ने लक्षण अच्छा नही देखा। वह वासगृह द्वार पर खड़ी हो गयी।

द्वार पर वह गयी। चुन्द से पूछा :

'तात ! क्या बात है ?'

माता से उसने सब बात बता दी। पुत्र को देखने की कामना माता ने प्रकट की। चुन्द ने बाहर से ही पूछा :

'भन्ते ! महा उपासिका आई है।'

'यह समय है चुन्द।'

'आपको देखने आई है।'

अपने पुत्र का आदर-सत्कार तथा लोगो की श्रद्धा देखकर माता का हृदय प्रफुल्लित हो गया था। माता के हृदय मे प्रीति उत्पन्न हुई थी। सारिपुत्र ने समझा। उपसेन काल उपस्थित जाना। माता से बोला .

'महा उपासिके ! क्या विचार कर रही हो ?'

'यदि तुममे इतने गुण है, तो तुम्हारे शास्ता मे कितने गुण होगे ?'

'महा उपासिके ! उनके समान शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति ज्ञान दर्शन और किसी मे नही है।'

पुत्र ने माता को उपदेश दिया। माँ बोली :

'उपतिष्य ! तुमने मुझे अमृत तुल्य यह बाते पूर्वकाल मे क्यो नही बतायी ?'

'महा उपासिके ! जाइये।'

माता भरे मन चली गयी। सारिपुत्र ने चुन्द से पूछा .

'चुन्द ! समय क्या है।'

'भन्ते ! प्रारम्भिक प्रत्यूष काल है।'

भिक्षु सघ एकत्रित करो।'

× × ×

'भन्ते ! संघ एकत्रित है।'

'चुन्द ! मुझे उठाकर बैठा दो।'

भिक्षुओं से स्थविर सारिपुत्र ने कहा :

'भिक्षुओ ! मेरे साथ आप लोगो को विचरते हुए चौवालीस वर्ष व्यतीत हो गये। आवुसो ! मेरे कायिक, वाचिक जिन बातो को आपने अरुचिकर माना हो उन्हे आज क्षमा कर दीजिये।'

'भन्ते ! हम छाया तुल्य आपके साथ रहे। कभी हमे कोई वात अरुचिकर नही लगी। आप हमारे दोषो को कृपया क्षमा कीजिये।'

× × ×

सारिपुत्र चीवर शरीर पर खीच लिए। दाहिने करवट सो गये। प्रथम ध्यान से चतुर्थ ध्यान तक लगाया। चतुर्थ ध्यान से उठते ही, उन्हे निर्वाण प्राप्त हुआ।

महाउपासिका उसकी माता सारिपुत्र को शान्त देखकर रोने लगी। पैर, पीठ सब सुहलाती जैसे प्राण खोजने लगी। उसने समझा। पुत्र ने परिनिर्वाण प्राप्त किया। हृदय विदारक करुण क्रन्दन से स्थान दुःखमय हो गयी। पुत्र के शव पर गिर पडी।

× × ×

शाल का महा मण्डप बनाया गया। मण्डप के मध्य मे महाकूटागार स्थापित किया गया। उसमे सारिपुत्र का शव रखा गया। उत्सव होने लगा।

एक सप्ताह उत्साहमय उत्सव चलता रहा। सुगन्धित काष्ठो एव द्रव्यो से चिता रची गयी। उनका शव चिता पर रखा गया। खस के पुजो से भर दिया गया। दग्ध स्थान पर रात्रि पर्यन्त उपदेश तथा धर्म वार्ता होती रही।

अनुरुद्ध स्थविर ने गन्धोदक से चिता शीतल किया।

चुन्द स्थविर ने अस्थि चयन किया। उन्हे कलश मे रखा गया।

अनन्तर सारिपुत्र के पात्र, चीवर तथा धातु के साथ चुन्द श्रावस्ती के लिए प्रस्थान किया।

× × ×

सारिपुत्र का पात्र, चीवर तथा धातु लेकर, चुन्द श्रावस्ती में अनाथ-पिण्डक के जेत वन मे आया। आयुष्मान् आनन्द को अभिवादन कर चुन्द ने कहा :

'सारिपुत्र ! परिनिवृत्ति हो गये हैं।'

'आनन्द ने धातु-पात्र देखा। वह शान्त हो गया। उसने धातु-पात्र को अजल्विद्ध नमस्कार किया।

'यह उनका पात्र है। यह उनका चीवर है। यह उनका धातु परि-श्रावण है।'

'आवुस चुन्द ! यह कथा भगवान् से चल कर कहे।'

'भन्ते !'

वे भगवान् के समीप पहुँचे। भगवान् को अभिवादन तथा वन्दना कर एक ओर बैठ गये। आनन्द ने मन्द स्वर से कहा :

'भन्ते! चुन्द आयुष्मान् सारिपुत्र का चीवर, पात्र तथा धातु लेकर आये हैं।'

'आनन्द !' भगवान् ने कहा। 'सारिपुत्र शील स्कन्ध को लेकर परिनिवृत्त हुए हैं। या समाधि स्कन्ध को लेकर परिनिवृत्त हुए हैं। या प्रज्ञ स्कन्ध को लेकर परिनिवृत्त हुए है। या विमुक्ति स्कन्ध को लेकर परिनिवृत्त हुए हैं : या विमुक्ति ज्ञान दर्शन को लेकर परिनिवृत्त हुए हैं ?'

'भन्ते! सारिपुत्र किसी स्कन्ध को लेकर परिनिवृत्त नही हुए हैं। वह मेरे उपदेशक थे। ज्ञात-अज्ञात के विज्ञापक थे! प्रेरक थे। समुत्तेजक थे। सप्रशसक थे। धर्म देशना के अभिलाषो थे। ब्रह्मचारियो के अनुग्राहक थे। सारिपुत्र का यही धर्म स्वभाव था। हम इस धर्मानुग्रह का आज स्मरण करते है।'

'आनन्द! प्रियो से, नाना भाव, विना भाव, अन्य का भाव होता है! जो कुछ उत्पन्न हुआ है। जो कुछ सस्कृत है। सबका अन्त होगा।' नाश न हो, अन्त न हो, यहाँ सम्भव नही है। आनन्द! महाभिक्षु सघ के रहने पर भी सारिपुत्र परिनिवृत्त हो गये! वह अब पुन मिलने वाले नही हैं। आनन्द! आत्मदीप बनो। आत्म शरण लो। अपरावलम्बी होकर विहार करो। धर्मदीप, धर्मशरण, अनन्य शरण होकर विहार करो आनन्द !'

शास्ता ने सारिपुत्र की पवित्र अस्थि किंवा धातु हाथ पर लिया। भिक्षुसंघ को आन्त्रित कर कहा :

'भिक्षुओ! सारिपुत्र ने परिनिर्वाण की अनुज्ञा मागी थी। यह उन्ही का शख वर्ण धातु आपके सामने उपस्थित है। उन्होने पारमिताएँ पूर्ण की थी। धर्मचक्र प्रवर्त्तन का अनुप्रवर्तन करने वाले थे। महा प्रज्ञावान थे। अल्पेच्छ (त्यागी) थे। सन्तुष्ट थे। एकांत प्रेमी थे। असंसृष्ट थे। उद्योगी थे। पाप निन्दक थे। भिक्षुओ! देखो महाप्रज्ञ की धातुओं को। वीतराग, जितेन्द्रिय, निर्वाण प्राप्त सारिपुत्र की वन्दना करो। वह क्षमा में पृथ्वी तुल्य थे। अक्रोधो थे। इच्छाएँ कभी उन्हे विचलित नही कर सकीं। वे

अनुकंपन थे। उन्होंने कारुणिक निर्वाण पद प्राप्त किया है। उस निर्वाण प्राप्त सारिपुत्र की वन्दना करो।'

'जैसे दीन काय चाण्डाल पुत्र नगर मे प्रविष्ट होता है। मन मारे चलता है। कपाल हाथ में लिए विचरण करता है। उसी प्रकार दीन मन बना, विनीत सारिपुत्र विचरता था। उसने निर्वाण प्राप्त किया है। उसको वन्दना करो।

'जिस प्रकार भग्न सीग सांड (वृषभ) नगर के भीतर विना किसी को क्षति पहुँचाता, शान्त विचरता है, उसी प्रकार सारिपुत्र विचरता था। उसने निर्वाण प्राप्त किया है। उसकी वन्दना करो।'

वह दिन कार्तिक पूर्णिमा का था।

अग्र भिक्षु श्रावक वगीश ने सारिपुत्र का मूल्यांकन करते हुए उदान कहा :

'सारिपुत्र महाप्रज्ञ है। गम्भीर है। मेधावी है। मार्गामार्ग मे कुशल है। सक्षेप तथा विस्तार युक्त उपदेश तथा भाषितो मे निपुण है। उनका स्वर सारिका जैसा मधुर है। उनके स्वर द्वारा ज्ञान प्रस्फुटित होता है। उनके रजनीय, श्रवणीय एव मजु स्वर मे, उपदेश काल में, प्रमुदित, प्रसन्न भिक्षु ध्यानपूर्वक उनका उपदेश सुनते है।'

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी में भिक्षु श्रावको में अग्रश्रावक स्थान प्राप्त मगध देशान्तर्गत उपतिष्य अर्थात् नालक ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न सारिपुत्र महा प्रज्ञो मे अग्र हुए थे।

आधार ग्रन्थ ·

थेर गाथा २५९, उदान १२३५-१२३७

धम्मपद ७ ६-८, ८ ५-७, २६ ७, २६ ९, २६ १७

मज्झिम निकाय १ . १ ५, १०, १ २ २, ९, १ ३ ४,
१ . ४ २, २ २ ७, ३ २ : १,
३ . २ ४, ३ २ . ८, ३ . ४ . ११,
३ · ५ १, ३ ५ · २, ३ ५ ९,

संयुत्त निकाय २ २ १०, १२ ३ ४-६, १२ ४ १-७,
२ ३ ६, ६ १ १०, ८ ६
१२ ७ ७, १३ २ ५, १४ . २ १०
१५ २ २७ १-१० ३४ २ ४ ४
३४ ३ २ ७, ३४ ४ ३ ५ ३६ ५-१२,
४२ ३-६, ४३ १ ३, ४४ १ ४-८,
४५ २ १-६, ४६ ५ ४, १० ४६ ६ ८,
५० १ ४, ९, ५३ . १ . ४, ५

महावग्ग १ १ १८, १ २ ४, १ ३ १२, १० २ २

चुल्लवग्ग १ . ३ १, ६, १ ४ १, ६ . ३ . २
६ ४ १, ६ . ५ : २, ७ १ . ६
७ २ ८, ८ २ २

दीर्घ निकाय २ १, ३, ३ ५, ११

सुत्त निपात ३६

महापरिनिर्वाण सुत्त १६

महापन्थक २६ २४

मोग्गल्लान (महा मौद्गलायन) का परिनिर्वाण

तैर्थिको ने मन्त्रणा की। जव तक मौद्गलायन जीवित रहेगा, तैर्थिको का लाभ सत्कार नही होगा। केवल मौद्गलायन के कारण श्रमण गौतम का लाभ सत्कार होता था। वह योग बल से देवलोक भी चला जाता था। देवताओ का कार्य पूछकर मनुष्यो से कहता था। नरक मे उत्पन्न हुए लोगो से भी बाते पूछकर मानवो से कहता था। उसकी बात सुनकर, लोग उसका बहुत लाभ सत्कार करते थे। उसे मारना अपने लिए हित-कर होगा। सघ टूटेगा। श्रमण गौतम की मान्यता कम हो जायगी।

तैर्थिको ने पेशेवर हत्यारो को बुलाया। उन्हे एक सहस्र कार्षापण देने का प्रलोभन दिया। उन्हे आदेश दिया। मौद्गलायन काल शिला[1] मे निवास करता था। वहाँ जाकर उसकी हत्या करनी चाहिए। तैर्थिको ने उन हत्यारो को कार्पापण दे दिया।

हत्यारो ने मौद्गलायन के निवास-स्थान को घेर लिया। मौद्गलायन योगबल से ताली के छिद्र से बाहर निकल आया। हत्यारे स्थविर को नही पा सके। लौट गये।

---

(१) काल शिला . राजगृह मे इशिगिल पर्वत के समीप काल शिला थी। एक तरह से इशिगिल पर्वत पर ही काल शिला थी। फाहियान ने अपनी यात्रा वर्णन मे उल्लेख किया है कि एक बडी चौकोर शिला उसने राजगृह मे देखी थी। उसे तत्कालीन जन-समुदाय काल शिला कहता था।

वक्कलि तथा गोधिय भिक्षुओ ने यहाँ आत्महत्या की थी। यूआन चुआङ ने उनकी स्मृति में बने हुए स्तूपो को देखा था। वे गिरिवज्र। किंवा प्राचीन राजगृह के उत्तरी द्वार के पश्चिम तथा दक्षिणगिर के उत्तर मे थे।

दूसरे दिन पुनः वे गये। स्थविर योगबल से छत फाड कर आकाश में चले गये। इस प्रकार दो मास का समय निकल गया।

मौद्‌गलायन को प्रतिभास हुआ। उनका समय आ गया। कर्म का परिणाम भोगना होगा। अपनी रक्षा का प्रयास त्याग दिया।

हत्यारो ने मौद्‌गलायन को पकड लिया। उनकी हड्डी को कूट कर चावल की खुदी की तरह बना दिया। उन्हे एक झाड़ी के पीछे फेंककर चले गये।

मौद्‌गलायन ने निश्चय किया। शास्ता को देखकर परिनिवृत्त होगे। अतएव शरीर को ध्यानवेष्ठन से वेष्ठित किया। स्थिर किया। आकाश मार्ग से शास्ता के समीप पहुँचे। शास्ता की वन्दना की। निवेदन किया :

'भन्ते ! परिनिवृत्त होऊँगा।'

'परिनिवृत्त--मौद्‌गलायन'

'हॉ भन्ते।'

'किस स्थान पर ?'

'काल शिला प्रदेश में।'

'अच्छा--आवुस।'

शास्ता की वन्दना की। अभिवादन किया। प्रदक्षिणा की। काल शिला प्रदेश मे पहुँचे। वहॉ परिनिवृत्त हुए।

वंगीस अग्र भिक्षुश्रावक ने मौद्‌गलायन के जीवन का बड़ा ही उत्तम मूल्यांकन किया है :

'राजगृह ऋषिगिलि पर्वत समीप आसीन, मुनि की सेवा त्रैविद्य मृत्युनाशक श्रावक करते है। ऋद्धि सम्पन्न मौद्‌गलायन, उनके चित्त का अपने चित्त द्वारा ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। पूर्णता प्राप्त दुःख पारंगत, विविध गुणो से युक्त, वे भगवान् की सेवा करते है।

× × ×

—और भगवान् की पवित्र वाणी मे भिक्षु श्रावको में अग्रस्थान प्राप्त मगध देशान्तर्गत राजगृह के कोलित ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न महामौद्‌गलायन ऋद्धिमानों मे अग्र था।

●

आधार ग्रन्थ :

धम्मपद १० . ७

सुत्त निपात ३६

थेर गाथा २६३, उदान १२५३-१२५५

महापरिनिर्वाण सुत्त १६

दीर्घ निकाय २ . १

अंगुत्तर निकाय १ २३, १८८, ४ . ४२२

संयुत्त निकाय ४५ २ ४, ६ १ ५-१०, ८ . १०,
१३ २ ५, १४ २ १०, १६ ३ ३,
१८ १ १-२, २० १, ३, ३४ ४, ४ ६,
३८ १-१०, ४२ ७, ४४ : २ ५,
४५ २ ४, ४५ · ३ ६, ४६ · २ ४,
४९ ३ ११, ५० १ १-४, ५२ · २ ८-९

मज्झिम निकाय १ · १ . ५, १ ४ . २, ७, १ · ५ . १०
२ २ ९, ३ . २ . ८, ३ ४ ११

महावग्ग १ १ १८, १० २ २

चुल्लवग्ग १ ३ १, ६, ७ . १ ४, १ ४ १,
७ २ ८, ६ ५ २, ९ : १

वैशाली का पतन

इमेसु च सन्तसु अपरिहानियेसु
धम्मेसु वज्जी सन्दिस्सिस्सन्ति,
बुद्धि येव ब्राह्मण ! वज्जीनं
पाटिकंखा नो परिहानि, ति।

(यह सात अपहारिणीय धर्म जब तक वज्जियो मे रहेंगे तब तक ब्राह्मण ! वज्जियो की वृद्धि समझना चाहिए, हानि नही।)

—म० प० नि० सु० ५

गगा के तट के समीप आधा योजन राज्य लिच्छवियो का था। आधा योजन अजातशत्रु का था। पर्वत पाद से बहुमूल्य सुगन्धित सामान आता था। अजातशत्रु के कर लेने के पहले लिच्छवी आकर शुल्क वसूल कर लेते थे। अजातशत्रु सुनता था। क्रोधित होता था। उसमें इतनी शक्ति नही थी। लिच्छवी से युद्ध करता।

अजातशत्रु ने वज्जियो तथा लिच्छवियो का सामना करने के लिए पाटलिपुत्र नगर बसाना आरम्भ किया। उसने बुद्धिमानी तथा कौशल से कार्य निकालने का विचार किया। उसने वर्षकार ब्राह्मण से मन्त्रणा करना उचित समझा।

भगवान् ने सुना। वे बोले—इस वैशाली[1] नगर के तीन शत्रु होगे—

---

(१) वैशाली : लिच्छवियो की राजधानी वैशाली थी। भगवान् ने बुद्धत्व प्राप्ति के पाँचवें वर्ष वैशाली में वर्षावास किया था। वैशाली मे सात हजार सात राजा निवास करते थे। उनके प्रासाद थे। उनके सेवक थे। दास थे। दासियाँ थी। वैशाली धन-धान्य से पूर्ण थी। सुन्दर उद्यानो से पूर्ण थी। वैशाली में भयंकर अवर्षण हुआ। भयकर अकाल ग्रस्त क्षेत्र वैशाली हो गयी। जनता अत्यधिक संख्या में मरने लगी। इतनी अधिक मृत्यु होने लगी

अग्नि, जल तथा पारस्परिक कलह ।'

× × ×

कि शव का उठाना तथा उसका दाह-सस्कार करना कठिन हो गया। शव गलने लगे। सडने लगे। उनकी दुर्गन्धि से वैशाली गन्धा उठी। कीटाणु के फैलने के कारण बीमारी फैल गयी। बिना सेवा, बिना उपचार, बिना औषधि वैशाली निवासी काल मुख मे प्रवेश करने लगे।

जनता ने वैशाली के राजन्य वर्ग से निवेदन किया। इस आपदा से त्राण पाना आवश्यक था। वैशाली के संस्थागार मे राजन्य वर्ग एकत्रित हुआ। बहस के पश्चात् निर्णय लिया गया—'भगवान् को वैशाली आगमन का निमन्त्रण भेजा जाय।'

भगवान् वेलु वन में थे। वैशाली का पुरोहित महाली भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ। महाली ने वैशाली की करुण गाथा वर्णन की। महाली के सुझाव पर भगवान् ने वैशाली यात्रा का निश्चय किया। बिम्बसार ने राजगृह से गंगा तट का मार्ग खूब सुसज्जित किया। भगवान् के साथ गंगा तट तक आया।

भगवान् का वैशाली तट पर अभूत पूर्व स्वागत लिच्छवियो ने किया। बिम्बसार के प्रबन्ध की अपेक्षा लिच्छवियो का प्रबन्ध उत्तम था।

भगवान् के चरण-कमल वैशाली की तटीय भूमि का स्पर्श किये। उत्साहमय तूर्य ध्वनि के साथ भगवान् का अभिनन्दन किया गया। और घटा घिर आयी। प्यासी भूमि अघा उठी।

गंगा तट से वैशाली तीन योजन दूर थी। वज्जि देश में पहुँचते ही शाक्यो ने भगवान् का अभिनन्दन किया।

सायकाल भगवान् ने रतन सुत्त का उपदेश आनन्द को दिया। आदेश दिया कि इस सुत्त का पाठ नगर के तीनो प्राकारो के अन्दर किया जाय। नगर की परिक्रमा लिच्छवी राजन्य वर्ग करे। आनन्द ने रात्रि के तीनो यामो में यह किया। वैशाली का कष्ट दूर हो गया।

भगवान् ने चौरासी हजार जनता के मध्य स्वय रतन सुत्त का पाठ किया। सात दिन तक वैशाली मे इसका पाठ होता रहा। तत्पश्चात् भगवान् ने वैशाली से प्रस्थान किया। लिच्छवी गण भगवान् को गगा तट तक पहुँचाने के लिये आये।

एक कथा है। वैशाली की इस यात्रा के समय भगवान् के पिता शुद्धोदन की

तथागत राजगृह मे गृद्धकूट पर्वत पर विहार कर रहे थे। तथागत को वैदेही पुत्र अजातशत्रु का अभिप्राय ज्ञात हो गया। वह लिच्छवी तथा वज्जियो का सहार करने पर सन्नद्ध हो गया।

अजातशत्रु ने वर्षकार महामात्य को बुलाया। उससे कहा :

'ब्राह्मण ! तथागत के पास पधारिए। मेरी ओर से भगवान् की शिर से वन्दना कीजियेगा।'

'महाराज !'

'उनसे कहिएगा—तथागत ! राजा ने आरोग्य पूछा है। सुख विहार पूछा है।'

'और—?'

'तथागत से निवेदन करना—राजा वज्जि आक्रमण का इच्छुक है। उनके सहार का इच्छुक है।'

मृत्यु हो गयी। वैशाली मे भगवान् ने विनय के अनेक नियमो की रचना की थी। महाप्रजापति गौतमी यही प्रव्रजित हुई थी। यही पर भगवान् ने स्त्रियो के प्रव्रजित होने की आज्ञा दी थी।

वैशाली मे उदयन चैत्य, चापाल चैत्य, गौतमक चैत्य, साम्वक चैत्य, बहुपुत्त चैत्य, सारनद्ध चैत्य, कूटगार शाला अनेक पूजनीय तथा दर्शनीय स्थान थे। वैशाली जलाशयो से पूर्ण थी। सरोवरो में दिन मे सरोज तथा रात्रि मे कुमुदिनी फूलती थी। वहाँ अनेक उद्यान थे। वह राजनीतिक, सास्कृतिक धाराओ का केन्द्र थी। वैशाली के वाहर से हिमालय तक प्राकृतिक महावन था। समीप ही अन्य वन गोसिगल साल आदि थे। वैशाली मे भगवान् ने, महाली, महासिंह नाद, चूलसच्चक, महा सच्चक, तेविज्ज, वच्छगोत्त, सुनक्खत्त और रतन सुत्तो का उपदेश दिया था। तेलो वाद तथा सिगाल जातक यही भगवान् ने कहा था।

भगवान् कुशीनगर की अन्तिम यात्रा काल मे वैशाली होकर गये थे। भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके धातु पर यहाँ चैत्य बनाया गया था।

वैशाली का नाम विशाला भी था। नाग जाति वैशाली मे रहती थी। उन्हें वेशाला कहा जाता था।

किन्तु इस वैशाली के जीवन का नाटक अत्यन्त दु खान्त है। जिन्होने वैशाली को सुन्दर वनाया था, उसके गौरव थे, वही उसके नाश के कारण हुए।

'तो—?'

'तथागत तुम्हारे कहने पर अपना विचार प्रकट करेंगे। मुझसे आकर अक्षरश· वे बातें कहना।'

'अच्छा—राजन्।'

महामात्य वर्षकार[1] ब्राह्मण राजा का उद्देश्य समझ गया। उसने उत्तम शक्तिशाली यानों को योजित कराया। उत्तम यान पर राजगृह से निकला। गृद्धकूट पर्वत पर पहुँचा। जहाँ तक यान जा सकता था। यान से गया। तत्पश्चात् पैदल चला। भगवान् के समीप पहुँचा। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् के संकेत पर बोला :

'गौतम! 'वैदेही'[2] पुत्र राजा अजातशत्रु चरणों मे शिरसा नमन करता है।'

भगवान् ने वर्षकार की ओर देखा। वर्षकार ने कहा .

'गौतम! राजा की इच्छा है। वज्जियो को वह उच्छिन्न करे।'

आनन्द पृष्ठभाग मे खड़ा विजन कर रहा था। भगवान् ने आनन्द को सम्बोधित किया :

'आनन्द! क्या तुमने सुना है? वज्जिगण सन्निपात बहुल है?'

'हाँ भन्ते! वे नियमित रूप से मिलते हैं।'

'आनन्द! जब तक वज्जी सन्निपात बहुल रहेगे। तब तक उनकी समृद्धि समझना चाहिए। उन्नति समझना चाहिए।'

वर्षकार और गम्भीर हो गया। तथागत ने पुन· पूछा—

'क्या वज्जी बैठक का आह्वान सुनते ही एकत्रित हो जाते है?'

'सुना है भन्ते।'

'क्या वे एक साथ उत्थान करते है!'

---

(१) वर्षकार · अजातशत्रु का महामात्य था।

(२) वैदेही पुत्र अजातशत्रु के लिए इस पदवी का प्रयोग किया गया है। बुद्ध-घोष का मत है कि वैदेही का अर्थ गुणी और वैदेही पुत्र का अर्थ गुणी स्त्री का पुत्र है। क्योकि अजातशत्रु की माता विदेह की नही थी बल्कि कोसल-राज प्रसेनजित की बहन थी।

'सुना है भन्ते !'

'वे एकमत करणीय करते है ?'

'सुना है भन्ते !'

'आनन्द ! जब तक वज्जी अविहित, अप्रज्ञप्त को विहित नही करते, विहित का उच्छेद नही करते, उच्छिन्न नही होगे। उनका नाश नही होगा।'

वर्षकार ने भगवान् के मुख की ओर देखा। भगवान् ने शून्य गगन की ओर देखते हुए प्रश्न किया .

'आनन्द ! वज्जि पुरातन नियम का पालन करते है ? व्यवहार करते हैं ?'

'हॉ भन्ते ! सुना है।'

'आनन्द ! जब तक वे यह करते रहेगे वे उच्छिन्न नही होगे।'

वर्षकार की मुद्रा गम्भीर होने लगी। तथागत ने गगन से दृष्टि हटाते हुए पूछा :

'आनन्द ! तुमने सुना है ? वज्जि अपने वृद्धो का सत्कार करते है ?'

'हाँ सुना है।'

'आनन्द ! क्या वे वृद्धो का गुरुकार करते हैं ? उनको मानते है ? उनकी पूजा करते हैं ? उनकी सुनने योग्य बात ध्यानपूर्वक सुनते है ?'

'सुना है भन्ते।'

'आनन्द ! जब तक वे वृद्धो का सत्कार, गुरुकार, पूजा, श्रोतव्य-श्रवण करते रहेगे। उच्छिन्न नही होगे।'

वर्षकार की दृष्टि नत हो गयी। तथागत ने पुनः प्रश्न किया :

'आनन्द ! क्या तुमने सुना है। वे कुल की स्त्रियो, कुल की कुमारियों को शक्ति से नही छीनते। शक्ति से उन्हे कही नही बसाते ?'

'हाँ सुना है भन्ते !'

'आनन्द ! क्या वज्जि अपने चैत्यों की पूजा करते है। सत्कार करते है ? उन पर किये गये दान को धर्मानुसार लुप्त नही होने देते ?'

'हाँ सुना है भन्ते !'

'आनन्द ! क्या तुमने सुना है ? वज्जिगण अर्हतों की रक्षा करते हैं, सत्कार करते है । ज्ञप्ति गुप्ति करते है । भविष्य के अर्हत उनके राज्यो मे आये । इसका ध्यान रखते है । आगत अर्हत सुख से विहार करें । इसका प्रबन्ध करते है ?'

'हाँ सुना है भन्ते !'

'आनन्द ! जब तक वज्जी यह सब करते रहेगे । वे उच्छिन्न नही होंगे ।'

वर्षकार उदास हो गया । भगवान् ने कहा :

'ब्राह्मण ! एक समय मे वैशाली के सारन्दद चैत्य मे विहार कर रहा था । उन्हे मैने यह सातो अपहरणीय धर्म का उपदेश दिया था । यह सातो धर्म जब तक उनमे वर्तमान रहेगे उनका नाश नही होगा । उनकी वृद्धि होती रहेगी ।'

'गौतम ! एक भी अपहरणीय धर्म से उनकी वृद्धि समझनी चाहिए । हम बहुत कृत्य है । बहुत करणीय है । आज्ञा दीजिये ।'

'ब्राह्मण ! जिसका काल आप समझें ।'

वर्षकार ने भगवान् का अभिवादन किया । वन्दना की । प्रदक्षिणा की । आसन त्याग कर चला ।

भगवान् ने आनन्द से कहा—'भिक्षु संघ एकत्रित करो ।'

'अच्छा भन्ते ।'

× × ×

भिक्षु सघ एकत्रित हुआ । तथागत ने कहा : 'भिक्षुओ ! सात अपहरणीय धर्म का आपको उपदेश करता हूँ । सुनो ।'

'अच्छा भन्ते ।'

भिक्षु सावधान होकर बैठ गये । तथागत ने कहा :

'भिक्षुओ ! जब तक तुम सन्निपात बहुल रहोगे । तुम्हारी वृद्धि होती जायेगी ।

'भिक्षुओ ! जब तक एक साथ बैठक करोगे, एक साथ उत्थान करोगे, एक होकर सघ मे करणीय करोगे, तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी । भिक्षुओ !

जब तक प्रज्ञप्त को अप्रज्ञप्त नही करोगे, जब तक प्रज्ञप्त का उच्छेद नही करोगे, प्रज्ञप्त शिक्षाविदो के अनुसार व्यवहार करोगे। तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी।

'भिक्षुओ! जब तक धर्मानुरागी, चिर प्रव्रजित, सघ के पिता, संघ के नायक, स्थविर भिक्षुओं का सत्कार करोगे, गुरुकार करोगे, मानोगे, पूजोगे, तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी।

'भिक्षुओ! जब तक तृष्णा के वश मे नही होगे। तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी।

भिक्षुओ! जब तक तुम लोग अरण्य के शयनासन अर्थात् वन की कुटियो मे शयन के इच्छुक रहोगे तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी। भिक्षुओ! जब तक तुममे से प्रत्येक भिक्षु यह स्मरण रखेगा कि अनागत उत्तम ब्रह्मचर्य से आये, आगत ब्रह्मचारी सुख से विहार करे, भिक्षुओ! तब तक तुम्हारी वृद्धि होती रहेगी।

भगवान् ने गणतन्त्रीय विधान को भिक्षुसघ के संघटन के लिए निश्चित किया।

× × ×

वर्षकार अजातशत्रु के पास लौट आया। राजा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा :

'ब्राह्मण! तथागत ने क्या कहा?'

'उन्होंने कहा' : 'वज्जियों पर विजय पाना कठिन है।'

'तब—?'

'उपलायन और पारस्परिक कलह से उन पर विजय प्राप्त की जा सकती है।'

'वर्षकार! उपलायन से हमारे हाथी-घोडों की हानि होगी। भेद मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए।'

'महाराज! मैने एक उपाय सोचा है।'

'क्या?'

'आप वज्जियों की चर्चा परिषद् मे उठाइए।'

'तत्पश्चात्—?'

'मै कहूँगा।—महाराज आपसे उनसे क्या सम्बन्ध। वे अपनी कृषि, वाणिज्य, द्वारा अपना जीवनयापन करते है। उसमे व्यवधान उपस्थित करने की क्या आवश्यकता है।'

'अच्छा—!'

'मै यह कहकर वहाँ से उठकर चला आऊँगा।'

'उसके बाद ?'

'आप कहिएगा—'यह ब्राह्मण वज्जियों का समर्थक है।'

'इससे क्या होगा ?'

'यह बात फैलेगी। वज्जियों के कानो तक पहुँचेगी। वे मुझे अपना समर्थक समझेंगे। मेरा विश्वास करेगे। उस समय उनमे भेद डालने का अवसर मिलेगा।'

अजातशत्रु के अधरो मे कुटिल मुसकुराहट दिखाई पड़ी।

'हाँ! मै उनके पास उसी दिन पर्णाकार (भेट) भेजूंगा।'

'अच्छा—?'

'आप अप्रसन्नता प्रकट कीजिएगा। मेरा भेजा भेट पकडवा मंगाइएगा। मेरे ऊपर दोष लगाइएगा।' बधन, ताड़न आदि न कर मेरा सर मुड़कर, अपमानित कर, नगर से बाहर निष्कासित कर दीजिएगा।'

'पुन:—?'

'मै क्रोधित होकर कहूँगा।'—'मैने आपके नगर के प्राकार का निर्माण कराया है। परिखा का निर्माण कराया है। मै सामरिक दृष्टि से आपके दुर्बल और गम्भीर स्थानों को जानता हूँ। आपके इस अपमान का पाठ पढ़ा दूंगा।'

'फिर—?'

'उस समय आप बिगड़कर कहिएगा—'अच्छा चले जाओ यहाँ से।'

× × ×

लिच्छवियों ने घटना सुनी। उनको मन्त्रणा हुई। एक ने कहा—'वह शठ है। मायावी है। उसे गगा पार नही उतरने देना चाहिए।'

'वाह! हमारे समर्थन मे राजा से बातें करता है।'

'नही—नही। उसे आने दिया जाय।'

बिना समझे लिच्छवियों ने वर्षकार को नगर में आने की अनुमति दे दी।

× × ×

वर्षकार ने नगर में प्रवेश किया। लिच्छवि अपने संस्थागार में एकत्र हुए। उससे प्रश्न किया :

'ब्राह्मण ! यहाँ आगमन का कारण ?'

राजा ने जिस प्रकार उसे अपमानित किया था। वर्षकार ने सब कुछ बता दिया।

'इतनी तुच्छ बात के लिए इतना बड़ा दण्ड !'

'हमारे लिए ब्राह्मण दण्डित हुआ है।' एक आवाज़ सस्थागार में उठी।

'पूछो इनका वहॉ क्या पद था ?'

'मैं वहॉ विनिश्चित्त महामात्य था।'

'इन्हे वही स्थान यहॉ दिया जाय।'

'यही दिया जाय।'

भावावेश में गण के लोगो ने अपनी सम्मति प्रकट की।

× × ×

वर्षकार सुचारु ढंग से न्याय करता था। लिच्छवि राजकुमार गण उसके यहॉ विद्या पढने आते थे। अपने गुणो के कारण उसने सबको मोह लिया। अपने स्थान पर सुदृढ़ सुप्रतिष्ठित हो गया।

एक दिन वर्षकार ने एक लिच्छवी को एक ओर ले जाकर कान मे कहा।

'आप खेत जोतते हैं।'

'हाँ।'

'दो बैलों से।'

'हाँ।'

वह चला आया। दूसरे लिच्छवियो ने उससे पूछा—

'महामात्य ने क्या कहा ?'

उसने सत्य बात बता दी। लोगों ने समझा। झूठ बोल रहा था। बात छिपा रहा था। उनमे वैमनस्य हो गया।

× × ×

दूसरे दिन लिच्छवी खडे थे। वहाँ महामात्य गया। एक को एकान्त मे ले जाकर पूछा—

'तुम्हारे भोजन का व्यजन क्या था ?'

उसका उत्तर सुनकर चुपचाप लौट पड़ा।

उसके साथियो ने पूछा। महामात्य ने क्या कहा। उसने सत्य बात बता दी। लोगों को विश्वास नही हुआ। महामात्य इतनो छोटी बात इतने एकान्त में ले जाकर क्या कहेगा ?

उनमे वैमनस्य घर करने लगा।

× × ×

एक दिन एक लिच्छवी से वर्षकार ने पूछा :

'तुम अत्यन्त निर्धन हो।'

'किसने कहा।'

वर्षकार ने एक लिच्छवी का नाम बता दिया। कहा नाम किसी से बताना मत। अनिष्ट होगा।

× × ×

एक दिन एक लिच्छवी से अपनत्व प्रदर्शित करते हुए एक ओर ले गया। पूछा।

'आप कायर हैं क्या ?'

'किसने कहा ?'

'अमुक लिच्छवी ने कहा है। लेकिन उसका नाम बताना मत। अनिष्ट हो सकता है।'

× × ×

इस प्रकार परस्पर विरोधी बातों का प्रचार होते-होते तीन वर्षों में लिच्छवियो मे भयंकर द्वेषाग्नि फैल गयी। सघटन मे फूट पड़ गया। ऐसा

समय आ गया। दो लिच्छवी एक साथ एक मार्ग में चलना नापसन्द करने लगे।

एक दिन सन्निपात होने का नगाड़ा बजाया गया। दुन्दुभि बजायी गयी। लिच्छवी एकत्रित नही हुए। वर्षकार ने समझ लिया। विप काम कर गया। अपनी मौत लिच्छवी मरने वाले थे।

उसने दूसरे समय सभा घोषित की · 'ईश्वर लोग एकत्रित हो।'

कोई लिच्छवी सभा-मध्य एकत्रित नही हुआ।

× × ×

वर्षकार ने अजातशत्रु को अविलम्ब आक्रमण करने के लिए शासन भेजा।

अजातशत्रु ने बलभेरी बजवायी। सेना एकत्रित हुई। वह वैशाली की ओर प्रयाण किया।

वैशाली वालों ने अजातशत्रु के आक्रमण की बात सुनी। उन्होंने सुनकर भेरी बजवायी। सन्थागार मे एकत्रित हुए। बोले :

राजा को गगा पार नही उतरने देना चाहिए।

किन्तु वैशाली के लोग बोले : 'देवराज, सुरराज जाये। हमसे क्या मतलब।'

वे एकत्रित नही हो सके।

× × ×

पुन वैशाली में भेरी बजी। लोगों ने कहा—'नगर में अजातशत्रु की सेना न प्रवेश करने पाये। नगर का द्वार बन्द कर दिया जाय।'

कोई भी भेरी घोष पर एकत्रित नही हुआ।

राजा अजातशत्रु अनावृत नगर द्वार से घूमा। नगर नष्ट किया। लिच्छवियों को नष्ट किया। और हँस उठे वर्पकार और अजातशत्रु लिच्छवियो की मूढ़ता पर। और हो गया गणतंत्र का लोप। लुप्त हुआ वैशाली का वैभव। सर्वदा के लिए।

आधार ग्रन्थ .

दीघ निकाय २ ३
अट्ठक ८ ६
सयुक्त निकाय ४५ १ · ९
उदान अ० क० ८ ५

अम्बपाली

सचेपि मे अय्य पुत्त !
वेसालि साहारं दस्सथ एवमहं
तं भत्तं न दस्सामीति ।

(आर्य पुत्रो ! यदि वैशाली का जनपद भी आप दें तो भी मैं इस महान् भात को नही दूँगी—अम्बपाली)

—म० प० नि० सुत्त ५०

वैशाली जनपद था। राजा का आम्र वन था। एक आम्र वृक्ष के नीचे राजोद्यान के माली ने अभिजात कन्या पायी। वह अनिन्द्य सुन्दरी थी। वह आम के नीचे मिली थी। अतएव उसका नाम अम्बपाली रखा गया था।

वह युवती हुई। उसकी सुन्दरता पर अनेक राजपुत्र कुलपुत्र अनुरक्त हो गये। परस्पर युवकों में उसकी प्राप्ति की स्पर्धा उठी।

अन्त में निर्णय किया गया। वह किसी एक व्यक्ति की पत्नी बनकर नही रहेगी। वह जनपद कल्याणी बनी।

× × ×

वैशाली में तथागत का अन्तिम आगमन था। अम्बपाली गणिका के आम्र वन[1] मे तथागत ने विहार किया।

---

(१) अम्बपाली वन अम्बपाली का आम्रवन वैशाली मे था। पर आम्रवन वैशाली के समीप दक्षिण दिशा में स्थित था। प्रधान चीज भगवान् को यहाँ पर एक अशोक स्तम्भ मिला था।

आम, वेणु अर्थात् वास तथा सिसमा अर्थात् शीशम किंवा शीशो के वगीचे में प्राय. निवास या विहार करते थे। पूर्वीय उत्तर प्रदेश एवं पश्चिमी

अम्बपाली ने सुन्दर सुअलंकृत यानों को योजित करवाया। यान पर आरूढ़ हुई। सुन्दर यानो पर चली। उसका वैभव अपूर्व था। यानो की पक्ति अपूर्व थी। वैशाली, राजपथ पर उमड़ आयी थी। वह अपने आराम की ओर अग्रसर हुई। प्रतिभा के साथ। तेजस्विता के साथ। गौरव के साथ।

जहाँ तक यान चल सकता था। यान घण्टियों के नाद के साथ पहुँचा। रथ पर फरफराती पताका के साथ पहुँचा। अश्वो के उठते, गिरते टाप के साथ पहुँचा। पीछे धूल उड़ाते पहुँचा।

अम्बपाली यान से उतरी। पैदल चली। जहाँ तथागत थे पहुँची। उसने भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गयी।

भगवान् ने धार्मिक कथा से अम्बपाली को समुत्तेजित किया। उसने भगवान् के उपदेशो को सुना। उसे लज्जा न थी। वह गणिका थी। वह रूपाजीवा थी। अन्य वृत्तियो के समान अपनी वृत्ति मे गर्व का अनुभव करती थी। समाज मे अपना उच्च स्थान रखती थी। समाज मे उसका आदर था। निरादर नही था।

अम्बपाली ने सानुनय अजलिवद्ध निवेदन किया :

'भगवान्! कल का भोजन स्वीकार करे।'

भगवान् ने मौन स्वीकृति दी। अम्बपाली ने. भगवान् की प्रदक्षिणा की। अभिवादन किया। वन्दना की। अपने निवास-स्थान के लिए प्रस्थान किया।

× × ×

विहार मे प्रत्येक ग्रामो में आम, बाँस तथा शीशो के वृक्ष किंवा बारी मिलेगी। प्रत्येक प्रतिष्ठित परिवार के पास भी आम, तथा बाँस का वगीचा होता है। शीशो के बाग अब कम मिलते हैं। वे प्राय. तालाबो के भीटो अथवा वगीचो के खावो पर लगाये जाते है। वह वगीचे प्राय ग्राम की आबादी के बाहर होते है। मेरे भी कुछ गाँव काशी तथा विहार के शाहाबाद जिले मे थे। बहाँ आम तथा बाँस की वँसवारी अब भी लगी है। शीशम के वृक्ष भीटो पर लगे है। पलास वन भी प्रत्येक गाँव मे होते थे। परन्तु अब वे प्राय काट कर खेत बना लिये गये है। मेरी बाल्यावस्था में मेरे गाँवो में पलास के वन थे। परन्तु अब वे समाप्त हो गये हैं।

वैशाली के लिच्छवियो ने सुना। भगवान् का वैशाली आगमन हुआ है। उन्होने उत्तम अलकार तथा वस्त्रो को पहना। नील वर्ण लिच्छवी ने नीला वस्त्र पहना। नीला अलंकार धारण किया। कोई पिंगल वर्ण लिच्छवी ने पीत वसन, पीत अलकार धारण किया। कोई लोहित वर्ण लिच्छवो ने लोहित वर्ण वस्त्र तथा अलकार धारण किया। कोई श्वेत वर्ण लिच्छवी ने श्वेत वर्ण वस्त्र एव श्वेत वर्ण अलकार धारण किया। वे सब अपने-अपने यानो पर आम्र वन की ओर चले।

अम्बपाली गर्वीली थी। भगवान् ने उसके यहाँ भोजन स्वीकार किया था। वह गर्व से और फूल गयी। उसमे असीम उत्साह था। उल्लास था। आह्लाद था। शोभनीय यान वेग से दौडाती लौट रही थी। प्रसन्न थी। उसका रथ गर्व से धावित था। तरुण लिच्छवियो के धुरो से धुरा, पहियों से पहिया, जुओ से जूआ, लड़ाती उपेक्षा से देखती, व्यग्य बोलती, उपहास करती हंसती, प्रसन्नता से देखती, सवेग चल रही थी।

तरुण लिच्छवियों ने प्रश्न किया :

'ओ अम्बपाली ! धुरों से धुरा क्यों टकराती है ?'

'आर्यपुत्रो ! तुमने नही सुना ?'

'क्या सुनना है ?'

'मैने कल तथागत को भिक्षुसघ सहित आमन्त्रित किया है।'

'किसलिये श्रमणों को आमन्त्रित किया है।' एक तरुण ने व्यग किया।

'भोजन के लिए।'

'तथागत ने स्वीकार किया है ?'

'हाँ।'

अम्बपाली ने उचक कर अश्वो की पीठ पर चाबुक मारा। वे उछल-कर और वेग से चले। लिच्छवि राजकुमार विस्मित हुए।

'ओह अम्बपाली, सौ हजार लेकर यह भात हमे करने के लिये छोड़ दे।'

'लिच्छवियो ! नही।' अम्बपाली विहँस कर बोली।

'क्यों—।'

'यदि समस्त जनपद दे दे तब भी यह भात नही छोड़ने वाली हूँ।' अम्बपाली ने गर्व से कहा।

'ओह ! अम्बिका ने हमें जीत लिया। अम्बिका ने हमे वचित कर दिया।'

कुमारो ने अफसोस की।

'हाँ—हम पीछे रह गये।'

कुमारो ने पराजय स्वीकार किया।

अम्बपाली धूल उडाती, तरुणो को धूल खिलाती, निकल गयी। लिच्छवी अम्बपाली के आम्र वन मे पहुँचे।

× × ×

लिच्छवियो को भगवान् ने आते देखा। भिक्षुओ को आमन्त्रित किया।

'भिक्षुओ। देखो यह लिच्छवियों की परिषद् है। आ रही है। भिक्षुओ! यह देव परिषद् तुल्य है।'

लिच्छवियों ने यान त्याग दिया। पैदल भगवान् तक पहुँचे। भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गये। भगवान् ने उन्हे धार्मिक कथा से समुत्तेजित किया। लिच्छवीगण ने भगवान् से अंजलिबद्ध निवेदन किया .

'भन्ते ! हमारा कल का भात कृपया स्वीकार करे।'

'लिच्छवियो ! मैने अम्बपाली गणिका का भात स्वीकार कर लिया है।'

लिच्छवी लज्जित हो गये। अंगुलियां तोड़ने लगे :

'अम्बपाली ने हमे जीत लिया। हमे तथागत के स्वागत से वचित कर दिया।'

वे उदास हो गये। वैशाली मे भगवान् गणिका के यहाँ भात खायेंगे। वे कुछ न कर सके। उन्होने भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया। अनुमोदन किया। आसन से उठे। भगवान् की प्रदक्षिणा कर चले गये।

× × ×

अम्बपाली ने सर्वश्रेष्ठ, स्वादिष्ठ भोजन का आयोजन किया। जो

कुछ सम्भव था, जो कुछ प्राप्त था, सबका आम्रपाली ने संग्रह किया। भोजन बन जाने पर काल की सूचना तथागत को दी गयी।

तथागत पूर्वाह्ण समय सुआच्छादित हुए। पात्र उठाया। चीवर उठाया। भिक्षुसघ के साथ भोजन स्थान पर पहुँचे।

तथागत ने आसन ग्रहण किया। बिछे आसनो पर बैठ गये। अम्बपाली ने अपने हाथों से भोजन परोसा। लोगों को समर्पित किया।

भोजन समाप्ति के पश्चात् तथागत तथा अन्य भिक्षु संघ यथास्थान बैठ गये। भगवान् के समीप एक नीला आसन बिछा कर अम्बपाली बैठ गयी। भगवान् का संकेत पाकर बोली :

'भन्ते! इस आराम को मै भिक्षु संघ को देती हूँ।'

भगवान् ने मौन रह कर दान भिक्षु सघ के लिए स्वीकार किया।

× × ×

समय दौड़ता गया।

भगवान् के उपदेश के कारण उसमे धर्म-भावना अंकुरित हुई। उसका पुत्र विमल कौण्डिन्य प्रव्रजित हो गया था। पुत्र का उपदेश सुनकर उसने स्वयं प्रव्रज्या ग्रहण की। उसने अपने रूप को आयु के साथ परिवर्तित होता देखा। उसका यौवन ढल गया था। उसने यौवन-श्री बिखरते देखी। उसे भगवान् के वचनो की सत्यता प्रत्यक्ष दिखाई पडी। अपने शरीर की यह अवस्था देखकर उसने उदान कहा :

'मेरे केश के अग्र भाग काले भौरो की तरह काले और घुंघराले थे। आज वे आयु के प्रभाव के कारण सन जैसे श्वेत हो गये है। मेरे केश सुरभित पुष्प मालाओ से गुँथे रहते थे। उनसे यूथिका की सुगन्धि निकलती थी। आज जरा के कारण खरहा के रोओ की तरह उनमे से दुर्गन्धि उत्पन्न होती है। कंघी आदि से सुसज्जित मेरा केश-विन्यास सुन्दर रोपे हुए सघन उपवन के सदृश शोभित था। जरा आक्रमण के द्वारा के सुन्दर केश यत्र-तत्र गिर गये है। विरल हो गये है। मेरा जूडा स्वर्ण सूत्रों से सुसज्जित रहता था। चोटियाँ सुरभित रहती थी। जरा के कुप्रभाव से वही मस्तक आज विनत है। चित्रकार मेरे भ्रू को कौशल से चित्रित करता था। उस भ्रूभंगिमा की शोभा अनुपम होती थी। जरा ने उसमे अब झुर्रियाँ उत्पन्न कर दी है। वे नत हो गयी हैं।

'मेरे विस्तृत उज्ज्वल नेत्रो मे नील मणियो तुल्य दो पुतलियाँ थी। उनमे ज्योति थी। जरा ने उन्हे प्रभाहीन बना दिया है। कुरूप बना दिया है। यौवन के उठते सुन्दर शिखर तुल्य मेरी कोमल सुदीर्घ नासिका थी। जरा ने उसने दबा दिया है। वह बैठ गयी है। चतुर शिल्पी द्वारा प्रस्तुत कंकण तुल्य मेरे कर्ण शिखर थे। जरा ने उन्हे शिथिल बना दिया है। लटका दिया है। कदली की कली के समान मेरी दन्त पक्तियां थी। जरा ने उन्हे खण्डित कर दिया है। उन्हे पाण्डु वर्ण बना दिया है।

'मेरी वाणी वन भ्रमित कोकिल की कूक की तरह मधुर थी। प्रिय थी। जरा ने उसे स्खलित बना दिया है। उसमे भर्राहट पैदा कर दी है। मेरी ग्रीवा खरादे हुए चिकने शंख के समान सुन्दर थी। जरा ने उसे भग्न एवं विनमित बना दिया है। गदा के समान सुन्दर सुगोल मेरी बाहु-लता थी। उन्हे जरा ने पाडर वृक्ष की शाखा तुल्य दुर्बल बना दिया है। मेरी उँगलियाँ मुन्दरिकाओ व स्वर्णालंकारो से विभूषित रहती थी। जरा ने उन्हे गठीला और निर्बल बना दिया है। वक्षस्थल पर स्थूल, सुगोल, उन्नत स्तन शोभित थे। जरा ने पानी की लटकी रीती थैली जैसा उसे बना दिया है। विशुद्ध स्वर्ण फलक तुल्य मेरे शरीर की प्रभा सुवर्ण थी। जरा ने उसे सूक्ष्म झुर्रियो से भर दिया है। मेरा ऊरु प्रदेश हाथी के सूँड की तरह था। जरा ने उन्हे पोपले बास की नली की तरह बना दिया है। नूपुर एवं स्वर्णालंकारों सुसज्जित मेरी जघाएँ रहती थी। जरा ने उन्हे शुष्क तिल के डंठल के समान बना दिया है। मेरे दोनो कोमल पद रुई के फाहो के समान हलके थे जरा ने उन्हे सुखा दिया है। उन्हे झुर्रियो से भर दिया है। वह शरीर एक दिन सुख का आगार था। प्रसन्नता का केन्द्र था। काम का मन्दिर था। जरा ने उसे जीर्ण बना दिया है। दुःख का आलय बना दिया है। बिना मरम्मत, बिना लिपाई-पोताई के जिस प्रकार घर गिर जाता है, उसी प्रकार जरा का यह भवन किंचित् मात्र सेवा बिना गिर जायगा। नष्ट हो जायगा। कंकाल का खंडहर मात्र रह जायगा। यह सब मिथ्या है परन्तु भगवान् का वचन मिथ्या नही होता।'

आधार ग्रन्थ .

संयुक्त निकाय ४५ १ १-२
५० १ ९
महा परिनिर्वाण सुत्त ४७-५३
Ap · ii 613
D ii 95-8
D A ii · 545
Thig A · i · 206-7, 213, 146
Vein i 368, 231-9

महापरिनिर्वाण

हन्द दानि भिक्खवे !
आमन्तयामि वो, वयधम्मा
संखारा, अप्पमादेन
सम्पादेथा इति ।

(कृत वस्तु नाशमान है । अप्रमाद के साथ सम्पादन करो ।'—भगवान् के अन्तिम शब्द ।)

—परिनिर्वाण सुत्त १६३

भगवान् वैशाली से वेलुवग्राम[1] में गये । वहां भगवान् ने वर्षावास किया ।

वर्षावास के समय भगवान् को कडी बीमारी हुई । मरणान्तक वेदना होने लगी । भगवान् ने उस वेदना को बिना दु ख सहन किया । भगवान् ने व्याधि को मनोबल द्वारा आराम किया । प्राण शक्ति को दृढ़तापूर्वक धारण किया । विहार करने लगे ।

'आनन्द ! मै वृद्ध हुआ । अस्सी वर्ष का हुआ । पुरानी गाड़ी जैसे मरम्मत कर चलायी जाती है वैसे ही मै यह शरीर चला रहा हूँ ।'

आनन्द दुःखी हुआ । उसे भविष्य जैसे अन्धकारमय प्रतीत होने लगा । भगवान् ने कहा :

'आनन्द ! स्वयं अपने अवलम्बन बनो । अन्य की सहायता की अपेक्षा करना व्यर्थ है । धर्म ही दीपशिखा है । सत्य ही तुम्हारा चिर सखा है ।'

पूर्वाह्ण काल मे भगवान् सुआच्छादित हुए । पात्र उठाया । चीवर लिया । अस्सी वर्ष के वृद्ध भगवान् स्वयं भिक्षाचार के लिए निकले ।

---

(१) वेणुग्राम : वेलुव ग्राम, यह वैशाली में था ।

भिक्षाटन से लौटकर आये। भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया। बोले :

'आनन्द ! चलो, दिन मे चापाल चैत्य[1] मे विहार करेंगे।'

'भन्ते ! बहुत अच्छा।'

आनन्द ने आसन उठाया। वह भगवान् के पीछे-पीछे चलने लगा।

भगवान् चापाल चैत्य मे पहुँचकर बिछे आसन पर बैठ गये।

भगवान् ने आनन्द से कहा :

'वैशाली रमणीय है आनन्द ! उदयन[2] चैत्य रमणीय है। गौतमक[3] चैत्य रमणीय है। सत्तम्बक[4] चैत्य रमणीय है। बहुपुत्रक[5] चैत्य रमणीय है। सारन्दद[6] चैत्य रमणीय है। यह चापाल चैत्य रमणीय है।'

'आनन्द ! राजगृह में गृद्धकूट रमणीय है। कपिलवस्तु मे न्यग्रोधा-

---

(१) चापाल चैत्य : वैशाली मे था। इसे चापाल चेतिय भी कहते है। भगवान् ने चापाल चैत्य में ही अपने परिनिर्वाण की भविष्यवाणी की थी।

(२) उदयन चैत्य · वैशाली मे था। इसे उदेन चेतिय कहा गया है। वह वैशाली के पूर्व द्वार के समीप था। यह वर्तमान कामन छपरा के चौमुखी महादेव का स्थान कहा जाता है।

(३) गौतमक चैत्य . वैशाली मे था।

(४) सत्तम्बक चैत्य वैशाली मे था। इसका नाम सप्ताम्र चैत्य था। वैशाली के पश्चिम द्वार के समीप स्थित था।

(५) बहुपुत्रक चैत्य . राजगृह और नालन्दा के मध्य राजगृह से पौन योजन दूर बहुपुत्रक न्यग्रोध के समीप बहुपुत्रक चैत्य था। वैशाली का बहुपुत्रक चैत्य उक्त चैत्य से भिन्न था। अश्वघोष का मत है कि वैशाली का बहुपुत्रक चैत्य भी बहुपुत्रक न्यग्रोध के समीप था। महिलाएँ अनेक पुत्र प्राप्ति की कामना से उसके मूल मे आकर मनौती मानती थी अतएव इस प्रकार के वटवृक्ष का नाम बहुपुत्रक पड गया था। यह वैशाली के उत्तर मे था। इस समय बनिया गाँव के बाहर महादेव स्थान है।

(६) सारन्दद चैत्य वैशाली में था।

राम[1] रमणीय है। चौर प्रपात[2] रमणीय है। वैभारगिरि[3] के पार्श्व में काल शिला[4] रमणीय है। सीतवन[5] मे सर्प सैडिक[6] पर्वत रमणीय है। तपोदाराम[7] रमणीय है। वेणुवन कलन्दक निवाप[8] रमणीय है। जीवकम्ब[9]-वन रमणीय है। भद्रकुक्षि[10] मृगदाव रमणीय है।

---

(१) न्यग्रोधाराम न्यग्रोधाराम का अर्थ होता है—वटवृक्ष का बाग। न्यग्रोधाराम वट का बगीचा था। यह कपिलवस्तु आदि मे था।

(२) चोर प्रपात यह एक भयंकर प्रपात था। यह एक पर्वत था। एक ओर से चढने का मार्ग था। दूसरी तरफ किनारा कटा था। यहाँ से अपराधी चोर गिरा दिये जाते थे। उनकी मृत्यु हो जाती थी।

(३) वैभार गिर वैभार पर्वत नाम है। महाभारत मे वैहार तथा जैन अभिलेखो में वैभार तथा व्यवहार कहा गया है। विविधतीर्थकल्प में नाम वैभार ही दिया गया है। इसका आज भी पूर्व नाम ही प्रचलित है। इसमें सत्तवण्णी गुफा है। इस पर्वत के उत्तरीय भाग में थी। श्री कनिंघम इसे वैभार गिर के दक्षिण मूल मे बताया है। यहाँ प्रथम संगति किंवा बुद्ध परिषद् हुई थी।

(४) काल शिला टिप्पणी कथा 'मोग्गलायन का परिनिर्वाण' द्रष्टव्य है।

(५) सीतवन यह एक स्मशान वन राजगृह मे था। इसके समीप ही बिम्बसार ने नवीन राजगृह आबाद किया था। राजगृह निगम के पश्चिम एक स्मशान आज भी है।

(६) सर्प सैण्डिक पर्वत : टिप्पणी कथा 'उपसेन' द्रष्टव्य है।

(७) तपोदाराम . यह मगध राज्य में था। वैभार गिर के मूल मे गर्म पानी के स्रोत तप्तोदका होने के कारण तपोदा कहे जाते थे। तपोदा के समीप ही तपोदाराम विहार था। सबसे बडे गर्म स्रोत को आजकल सात धारा कहते है। विपुल पर्वत पर भी गर्म पानी का सोता है।

(८) कलन्दक निवाप कथा 'सुदिन्न', 'देवदत्त' की टिप्पणियाँ द्रष्टव्य है।

(९) जीवकम्ब वन · इसका नाम 'जीवकाम्र वन' है। जीवक ने इसे बनवाया था। उसके निवास स्थान के समीप राजगृह मे था। वहाँ से वेणुवन तथा गृध्रकूट कुछ दूर पडते थे। राजगृह के अन्तिम नगर के पूर्वीय द्वार से तथा गृध्रकूट की छाया मे होता यहाँ पहुँचा जाया जाता था। फाहियान ने इसे उत्तर पूर्व दिशा मे देखा था।

(१०) भद्र कुच्छि मृगदाव कथा 'देवदत्त' की टिप्पणी द्रष्टव्य है।

भगवान् ने अत्यन्त शान्त मुद्रा मे कहा :

'आनन्द ! प्रियों से वियोग होता है। मैने तुमसे पूर्वकाल मे ही कह दिया था।'

आनन्द सतर्क हुआ। भगवान् के स्वर की ओर ध्यान लगाया। भगवान् ने सौम्य स्वर मे कहा :

'मेरा परिनिर्वाण समीप आ गया है। तीन मास पश्चात् मेरा परिनिर्वाण होगा।'[1]

× × ×

भगवान् ने चापाल चैत्य मे स्मृतिमान, और सप्रज्ञ होकर आयु संस्कार का त्याग किया। भगवान् के जीवन शक्ति का त्याग करते ही रोमाचकारी भूकम्प[2] आया। भगवान् ने उदान कहा :

'निर्वाण और भव को तौलते हुए, संस्कार का त्याग किया है। अध्यात्म रत और समाहित होकर आत्म सम्भव कवच विदीर्ण कर दिया है।

आनन्द की आँखे भर आयी। उसने भगवान् के चरणो पर मस्तक रख दिया। भगवान् ने आनन्द के मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा :

'आनन्द ! चलो। महावन कूटागार[3] मे चले।'

---

(१) फाहियान तथा युआन चुआड को आम्रपालि के वन के समीप एक स्तूप बना मिला था। जहाँ भगवान् ने तीन मास पश्चात् परिनिर्वाण होने की भविष्य वाणी की थी।

(२) भूकम्प : बौद्ध देशो में भगवान् बुद्ध तथा महान्पुरुषो के मृत्यु के समय भूकम्प का आना माना जाता है। पं० जवाहरलाल के निधन काल के समय जापानी राजदूत से मुझे यह बात दिल्ली मे पण्डित जी के शव के समीप ही मालूम हुई थी। इसका उल्लेख मैंने अपनी पुस्तक 'नेहरू के महाप्रस्थान' में किया है।

(३) महावन कूटागार यह वैशाली में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। यहाँ पर एक शाला स्तम्भो पर बनी थी। उस पर शिखर अर्थात् कूट बना था। अतएव उसे महावन कूटागार शाला कहते थे। यह विमान शैली का निर्माण था। फाहियान ने वैशाली के उत्तर दो तल्ला विहार देखा था। वहाँ उसने पुराने अधिष्ठान पर बने एक स्तूप का भी वर्णन किया है। यह स्थान कोल्हुआ बसाढ़ से तीन मील उत्तर है। यहाँ एक अशोक स्तम्भ प्रतिष्ठित था।

भगवान् ने चौपाल चैत्य मे अपनी जीवनी शक्ति का त्याग किया : भगवान् महावन पहुँचे। महावन पहुँचने पर भगवान् ने कहा :

'आनन्द ! वैशाली में जितने भिक्षु इस समय विहार कर रहे है, सबको एकत्रित करो।'

× × ×

भगवान् उपस्थान शाला मे गये। बिछाये आसन पर बैठ गये। भिक्षुओ को धर्मोपदेश देते हुए कहा—

'भिक्षुओ ! कृत वस्तु नाशमान है। प्रमाद रहित होकर सम्पादन करो।'

मेरी आयु पूर्ण हो चुकी है। त्याग का समय आ गया है। करने योग्य मैने सब कर लिया है। आलस्य रहित, सुशील एवं सावधानी से जीवन निर्वाह करो। संकल्पो का समाधान कर चित्त की रक्षा करो। शीघ्र ही मेरा परिनिर्वाण होगा। आज से ठीक तीन माह पश्चात्।'

× × ×

भगवान् पूर्वाह्ण काल मे सुआच्छादित हुए। पात्र लिया। चीवर लिया। वैशाली मे पिण्डचार के लिए निकले। वैशाली का अन्तिम बार दर्शन[1] करते हुए कहा :

'आनन्द ! यह मेरा वैशाली का अन्तिम दर्शन है। आर्यशील, आर्य समाधि, आर्य प्रज्ञा, एवं आर्य विमुक्ति न होने के कारण आवागमन होता है।'

भगवान् ने पुन: आनन्द को सम्बोधित किया :

'आनन्द ! चलो मण्ड ग्राम चलें।'

वहाँ से भगवान् का आगमन अम्बग्राम मे हुआ। जम्बूग्राम मे विहार किया। भोग नगर मे पहुँचे। नगर मे भगवान् ने आनन्द चैत्य मे विहार किया।

---

(१) अन्तिम दर्शन वैशाली के उत्तर पश्चिम में युआन चुआङ ने एक स्तूप निर्मित देखा था। वहीं पर भगवान् ने खडे होकर वैशाली को अन्तिम नमस्कार किया था।

वैशाली से कुशीनगर के मार्ग में दूसरा पड़ाव आनन्द चैत्य था। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को चार महाप्रदेश का उपदेश दिया।

भोगनगर से भगवान् ने पावा की ओर प्रस्थान किया। वहाँ चुन्द कर्मार पुत्र के आम्र वन मे विहार किया।

'चुन्द कर्मार पुत्र को मालूम हुआ। भगवान् उसके आम्रवन में विहार कर रहे थे। उसने पहुँचकर भगवान् का अभिवादन किया। वन्दना की। एक ओर बैठ गया। भगवान् को दूसरे दिन भोजन के लिए आमन्त्रित किया। भगवान् ने मौन सम्मति प्रकट की।

शूकर मार्दव तैयार हुआ। चुन्द ने भगवान् को काल की सूचना दी। पूर्वाह्ण काल तथागत ने पात्र उठाया। चोवर लिया। भिक्षुसघ के साथ चुन्द कर्मार पुत्र के निवास-स्थान पर पहुँचे।

भगवान् को भोजन के पश्चात् मरणान्तक वेदना होने लगी। वेदना को भगवान् ने बिना दुःख के सहन किया। भगवान् को रक्तस्राव की व्याधि हुई। उनकी पूर्व बोमारी बढ़ गयी। भगवान् ने आनन्द से कहा :

'आनन्द ! कुशीनगर चलो।'

'अच्छा भन्ते।'

भगवान् मार्ग से हटकर वृक्ष की छाया मे बैठ गये। आनन्द से बोले :

'आनन्द ! चौपेती सघाटी बिछा दो। मै शिथिल हो गया हूँ। बैठूँगा।'

आनन्द ने सघाटी बिछा दी। भगवान् उस पर बैठ गये। मन्द स्वर मे बोले :

'आनन्द ! प्यास लगी है।'

'भन्ते !' आनन्द ने पात्र उठाते हुए कहा, 'कुकुत्था[1] नदी समीप है। जल लाता हूँ।'

---

(१) कुकुत्था नदी इसे ककुत्था, ककुधा भी कहते है। एक मत है कि यह आजकल बरही नदी हैं। छोटी नदी है। कुसीनगर की अधो दिशा में आठ मील दूर छोटी गण्डक में मिलती है। कतिपय विद्वान् इसे वर्तमान घाघी और कुछ कुकु नदी इसे मानते है। मैंने यहाँ की यात्रा नही की है। अतएव कुछ निश्चय पूर्वक नही कह सकता।

आनन्द जल लाये। भगवान् ने जल पिया। भगवान् के पास उस समय भी केवल एक मृत्तिका का भिक्षा-पात्र था। चीवर था। युवावस्था मे जैसे प्रव्रजित हुए थे। उनके पास जो था। वही अस्सी की अवस्था तक रहा।

वे एक साधारण भिक्षु तुल्य थे। अपने लिए कोई विशेष सामान नही रखा।

अलार कालाम[1] का शिष्य पुक्कुस[2] मल्ल कुशी नगर पावा के मध्य चला जा रहा था। उसने भगवान् को वृक्ष के नीचे बैठा देखा। भगवान् के समीप आया। अभिवादन किया। एक ओर बैठ गया। उसने सविनय कहा :

'इसी प्रकार मेरे गुरु एक बार वृक्ष से लग कर बैठे थे। उनके सामने से ५०० गाडियाँ निकल गयी। उन्हे ध्यान नही रहा कि गाड़ियाँ जा रही है।

'क्या आपने गाडियाँ जाती देखा है?'

'नही।'

'क्या आपने गाडियो की आवाज सुनी है?'

'नही।'

'क्या आप निद्रित थे?'

'नही।'

'जाग्रत थे?'

'हाँ।'

पुन: अभिवादन कर बोला :

'भगवान्! मुझे आज से अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण कीजिये।'

---

(१) अलार कालाम . तपस्या कथा द्रष्टव्य है।

(२) पुक्कुस . यह एक मल्ल राजपुत्र था। अलार कालाम का शिष्य था। बुद्ध-घोप का मत है कि पुक्कुस एक व्यापारी था। उसके पास पाँच सौ गाडियाँ थी। चार पुक्कुस नाम के व्यक्तियो का उल्लेख है। सभी भिन्न व्यक्ति थे।

भगवान् ने उसे धार्मिक कथा से समुत्तेजित किया। वह भगवान् को प्रदक्षिणा कर बोला :

'भन्ते ! यह ईंगुर वर्ण दो जोड़ा शाल है। आप ग्रहण करे।'

'अच्छा ! एक मुझे ओढ़ा दो। दूसरा आनन्द को।'

वह शाल देकर चला गया। आनन्द ने भगवान् के शरीर पर शाल फैला दिया।

आनन्द ने कहा :

'भन्ते ! यह दुशाला आपके शरीर पर किरण तुल्य प्रकट हो रहा है।'

'आनन्द ! प्रथम बार का वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध हो गया था। जब सम्यक् सम्बोधि का साक्षात् कर दिया था और दूसरी बार परिनिर्वाण के समय होगा।'

उसे आश्चर्य हुआ। श्रद्धा प्रकट कर चला गया।

'जाग्रत बोधावस्था मे गाड़ियो का आना-जाना सुनना-देखना कठिन होता है। या होश मे जागते हुए, पानी बरसते हुए, बादल गरजते हुए, बिजली कड़कते हुए, और बिजली गिरते हुए न सुनना, न देखना, न जानना।'

'आपका कहना सत्य है।'

'भन्ते ! एक समय मै भुसागार मे विहार कर रहा था। घोर वर्षा हुई। बादल गरजे। बिजली चमकी। वज्रपात हुआ। दो कृषक तथा चार बैल मर गये। वहाँ भीड़ एकत्रित हो गयी।

'मै भुसागार से निकला। जघा विहार कर रहा था। भीड़ से एक व्यक्ति निकलकर मेरे पास आया। उसने पूछा :

'भन्ते ! आपने क्या देखा ?'

'कुछ नही।'

'क्या आप घोर निद्रा मे थे ?'

'नही।'

'आश्चर्य—।' वह स्तम्भित हुआ।

'मैने कहा : भणे ! इसमे आश्चर्य की बात नही है। प्रव्रजित शान्ति से विहार करता है। वह इन्द्रियो के अधीन नही होता। इन्द्रियाँ उसके अधीन होती है।'

आनन्द ! मै आज रात्रि के पिछले याम मे यमक शाल के मध्य कुशीनगर[1] के उपवत्तन[2] (माथा कुमर) शाल वन मे वहाँ निर्वाण प्राप्त करूंगा।

आनन्द को रुलाई आने लगी। भगवान् ने कहा :

'आनन्द ! कुक्कुसा नदी जहाँ बहती है मै वहाँ चलूँगा।'

भगवान् आनन्द के साथ कुकुत्था नदी तट की ओर चले।

× × ×

भगवान् ने नदी मे अवगाहन किया। स्नान किया। जल पिया। नदी के तट के आम्र वन मे गये। आयुष्मान् चुन्द से भगवान् ने कहा :

'चुन्दक ! थक गया हूँ। चौपेती सघाटी बिछा दो। मै शयन करूगा।'

'अच्छा भन्ते।'

भगवान् दाहिने करवट पैर के ऊपर पैर रखकर सिंह शय्या से लेट गये।

'आनन्द !' आनन्द से भगवान् बोले : 'चुन्द कर्मकार को इस चिन्ता से मुक्त करना। उससे कहना—उसके यहाँ भोजन करने के कारण मे व्याधिग्रस्त नही हुआ था। उसे मन मे किसी प्रकार का विषाद नही लाना चाहिए। उसका भोजन प्राप्त कर मैने परिनिर्वाण प्राप्त किया है।

'आनन्द ! मेरे जीवन मे दो भोजन विशेष महत्त्व रखते है। सुजाता का भोजन प्राप्त कर मुझे सम्यक् सबोधि प्राप्त हुआ था और चुन्द कर्मकार के भोजन के पश्चात् निर्वाण प्राप्त कर रहा हूँ।'

'आनन्द।' भगवान् ने किंचित् ठहर कर कहा : 'हिरण्यवती नदी के

---

(१) कुशी नगर : पावा और कुशीनारा के मध्य भगवान् ने पच्चीस स्थानो पर निर्वलता के कारण विश्राम किया था। यह कुशीनारा कुशीनगर स्थान है।

(२) उपवत्तन . यह शाल वन था। हिरण्यवती नदी के तट पर कुशीनारा के समीप उत्तर दिशा मे था। इसका शुद्ध नाम उपवर्तन था।

दूमरे तट पर कुशीनगर का उपवत्तन है। मल्लोका शाल वन है। वहाँ चलें।'

'अच्छा भन्ते !'

भगवान् ने आनन्द और भिक्षु संघ सहित हिरण्यवती नदी को पार किया। कुशीनगर के मल्लो के उपवत्तन शाल वन में प्रवेश किया। तथागत आनन्द से बोले :

'आनन्द, यमकशालो के मध्य दक्षिण पाद उत्तर शीर्ष करके मचक बिछा दे। थका हूँ। लेटूँगा।'

आनन्द ने मचक बिछा दिया। भगवान् उस पर सिंह शय्या से दाहिने करवट लेट गये।

आयुष्मान् उपवाण[१] शनैः-शनै· पंखा डुला रहे थे। भगवान् ने कहा :

'आवुस, रहने दो।'

आनन्द से कुछ काल पश्चात् भगवान् ने कह :

'सस्कृति अनित्य है। श्रद्धालु कुलपुत्रो के लिए लुम्बिनी, बुद्ध गया, सारनाथ तथा कुशीनगर यह चार स्थान दर्शनीय है। सवेजनीय है।'

'भन्ते।' आनन्द ने पूछा . 'स्त्रियो के साथ हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए ?'

'अदर्शन।'

'यदि दर्शन हो जाय-?'

'आलाप नही करना चाहिए।'

'यदि आलाप करना हो तो ?'

'स्मृति को सयमित कर के आलाप कर।'

आनन्द कुछ देर तक ठहरकर अत्यन्त वेदनामय मन्द स्वर मे निवेदन किया :

'भन्ते ! आपके शरीर की अन्त्येष्टि हम किस प्रकार करेंगे ?'

---

(१) उपवाण श्रावस्ती के एक धनी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। जेतवन जब संघ को दान किया जाता था तो प्रभावित होकर उसने प्रव्रज्या ले ली थी। आनन्द के उपस्थान होने के पूर्व वह भगवान् का उपस्थान था।

'आनन्द ! इस शरीर की चिन्ता मत करना। सत्य पदार्थ के लिए प्रयत्न करना। सत् अर्थ के लिए उद्योग करना। सत् अर्थ के अप्रमाद रूप से रहना। उद्योगी बनना। और आत्म सयम के साथ विहार करना।'

'आनन्द !' भगवान् पुनः बोले : 'मेरा धर्म उत्तर दिशा मे फैलकर बहुत दिनों तक रहेगा।'

'भन्ते ! आपके शरीर का क्या होगा।'

'चक्रवर्ती के शरीर के साथ जो क्रिया की जाती है। वही इस शरीर के साथ करना आनन्द !'

'भन्ते ! चक्रवर्ती के साथ क्या होता है ?'

'चक्रवर्ती के शरीर को नवीन वस्त्र मे लपेटते हैं। नवीन वस्त्र से लपेटे जाने पर नवीन धुनी रुई से लपेटते है। पुनः नवीन वस्त्र से लपेटते हैं। तेल की लौह द्रोणी मे उसे रख देते है। दूसरी लौह द्रोणी से उठे ढक दिया जाता है। गन्ध युक्त काष्ठ चिता रची जाती है। शरीर को अग्नि देते है। भस्म होने के पश्चात् चौराहे पर स्तूप बनाते हैं।'

भगवान् ने मरण पश्चात् की व्यवस्था बता दी। आनन्द का दुःख उमड़ आया। वह भावावेश मे विहार में चला गया। खड़ा रहा। दुःख में खुरी पकड़ लिया। रोने लगा।

भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया। आनन्द को नही देखा।

भिक्षुओं से पूछा ·

'आनन्द कहाँ है ?'

'भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द विहार में चले गये हैं।

'क्यो ?'

'भन्ते ! वहाँ अकेले खड़े रो रहे हैं।'

'भिक्षु ! आनन्द से जाकर कहो–शास्ता बुला रहे हैं।'

आनन्द आये—अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। आनन्द की आखों मे ऑसू देखकर भगवान् बोले .

'आनन्द ! शोक मत करो। रोओ मत। प्रिय से वियोग अवश्यम्भावी

है। जो उत्पन्न हुआ है उसका विनाश होगा। शरीर नाश से बच जाय यह असम्भव है आनन्द ?'

'भन्ते ! आप इस शाखा नगर मे परिनिर्वाण प्राप्त करेगे। यह क्षुद्र नगर है। चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी जैसे महाजनपद मे निर्वाण प्राप्त करना उचित होगा।'

'आनन्द, ऐसा नही है। पूर्वकाल में यहाँ प्रसिद्ध कुशावती नगरी थी। राजा सुदर्शन की राजधानी थी। महासुदर्शन चारो दिशाओं का विजेता था। देशो पर अधिकार प्राप्त किया था। सात रत्नो से युक्त था। धार्मिक था। चक्रवर्ती राजा था। यह राजधानी पूर्व-पश्चिम लम्बाई मे बारह योजन थी। उत्तर-दक्षिण विस्तार मे सात योजन थी। राजधानी समृद्ध स्फीत, सघन, सुभिक्ष थी। देवताओ की आलकमन्दा[1] नामक राजधानी समृद्ध, स्फीत, यक्षो से भरी हुई और सुभिक्ष है उसी प्रकार आनन्द ! कुशावती नगरी दिन-रात हस्ति शब्द, अश्व शब्द, रथ शब्द, भेरी शब्द, वीणा शब्द' गीत शब्द, ताल शब्द, खाइये, पोजिये इन दस शब्दो से गूँजती रहती थी।'

भगवान् शान्त थे। भिक्षुसघ शान्त था। आनन्द शान्त था। भगवान् ने कहा :

'आनन्द ! कुशीनगर मल्लों से जाकर कहो—वाशिष्ठो ! आज तथागत का परिनिर्वाण होगा।'

'अच्छा भन्ते !'

आनन्द नगर मे चला।

× × ×

कुशीनगर के मल्ल कार्यवश संथागार मे एकत्रित थे। वहाँ जाकर आनन्द ने घोषित किया :

'वाशिष्ठो, आज भगवान् परिनिवृत्त होगे।'

सुनते ही मल्ल सभा उदास हो गयी। परिनिर्वाण की बात सुनकर मल्ल वधुएँ, मल्ल आर्याएँ, दुखित हुई। दुःख समर्पित चित्त उनके बाल बिखर गये। एक दूसरे की बाहु मे पकड़कर विलाप करने लगी। मल्ल,

(१) आलकमन्दा यह कुवेर की अलकापुरी थी। उत्तरकुरु में थी।

मल्ल पुत्र, कटे वृक्ष की तरह गिरते थे। भूमि पर लोटते थे। दुःख पूर्ण गात्र से वे भगवान् के स्थान की ओर चले।

रात्रि के प्रथम याम तक सभी मल्लो एवं दर्शनार्थियो को आनन्द ने दर्शन करा दिया।

× × ×

कुशीनगर मे उन दिनो सुभद्र[1] परिव्राजक निवास करता था। उसे धर्मविषयक शका थी। वह आनन्द के पास पहुँचा। अपना तात्पर्य व्यक्त किया। आनन्द ने कहा :

'आवुस ! सुभद्र !! तथागत को इस समय कष्ट देना उचित न होगा !'

भगवान् आनन्द और सुभद्र का सलाप सुन रहे थे। उन्होने लेटे हुए ही कहा :

'आनन्द, सुभद्र को आने दो। वह परम ज्ञान की इच्छा से प्रश्न करेगा।'

'आवुस ! भगवान् के पास जाओ।'

आनन्द ने सुभद्र को भगवान् के समीप भेजते हुए कहा।

भगवान् के साथ संमोदन कर सुभद्र एक ओर जाकर बैठ गया। उसने प्रश्न किया .

'श्रमण, ब्राह्मण, संघी, गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर यथा, पूर्ण काश्यप, मक्खी गोशाल, अजित केश कम्बल, पकुध कच्चायन, संजय वेलट्ठ पुत्र, निगठ नाथ पुत्र सभी अपने-अपने मत का दावा करते है। उनका कहना है। उनका मत हो सत्य है।

'सुभद्र ! उससे क्या मतलब ? तुम मेरे मत को यदि समझ सको तो समझो।'

---

(१) सुभद्र उच्च कुल के ब्राह्मण थे। गृह त्याग के पश्चात् कुशीनारा में निवास करते थे। बुद्धघोष का मत है कि भगवान् ने सुभद्र को प्रव्रजित करने का आदेश दिया तो आनन्द उसे बाहर ले गये। उसके मूर्धा पर जल डाला। उसका मुण्डन संस्कार किया गया। उसे पीत चीवर पहनाया गया। उसने तीन वचनो से शरण जाने की प्रतिज्ञा दुहराई। तत्पश्चात् उसे पुन. भगवान् के पास ले गये।

'अच्छा भन्ते !'

'सुभद्र ! अष्टागिक मार्ग जिस धर्म नियम मे उपलब्ध नही होता, वहाँ श्रमण उपलब्ध नही होते । द्वितीय श्रमण सकृदागामी भी उपलब्ध नही होते । तृतीय श्रमण अनागामी भी नही उपलब्ध होते । चतुर्थ श्रमण अर्हत भी नही उपलब्ध होते । जिस धर्म विनय मे अष्टागिक मार्ग उपलब्ध होता है वहाँ श्रमण उपलब्ध होते हैं ।'

'भन्ते !'

'सुभद्र ! उनतीस वर्ष की अवस्था मे मै प्रव्रजित हुआ था । प्रव्रज्या लिये मुझे इक्कावन वर्ष व्यतीत हुए है ।'

'भन्ते ! मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले ।'

'सुभद्र, अन्य तैर्थिक, अन्य पंथवाले, मेरे इस धर्म मे यदि प्रव्रज्या चाहते है, उन्हे चार मास परीक्षार्थ परिवास करना होता है । चार मास के पश्चात् आरब्ध चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते है । भिक्षु होने के लिए उपसपन्न करते हैं ।'

'भन्ते ! यदि धर्म ज्ञान के लिए, इस धर्म मे सम्मिलित होने के लिए, चार मास ठहरना पडता है, तो मै चार वर्ष ठहर सकता हूँ ।'

'आनन्द ! सुभद्र प्रव्रज्या योग्य है । इसे प्रव्रजित करो ।'

'अच्छा भन्ते !'

सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् के समीप प्रव्रज्या प्राप्त की । उपसम्पदा प्राप्त की । वह भगवान् के अन्तिम शिष्य थे ।

× × ×

'आनन्द !' भगवान् ने आनन्द से कहा : 'मेरे पश्चात् तुम्हारा कोई शास्ता नही होगा । मेरा उपदेश ही तुम्हारा शास्ता है ।'

आनन्द और सघ नीरव था ।

'आनन्द ! भिक्षुगण एक दूसरे को 'आवुस' कह कर सम्बोधन करते हैं । मेरे पश्चात् वे ऐसा नही करेंगे । पुराने भिक्षु नवीन भिक्षु को नाम से, गोत्र अथवा आवुस कहकर सम्बोधन किया करें । नवीन भिक्षु अपने से पुराने भिक्षु को 'भन्ते' अथवा 'आयुष्मान्' कहकर सम्बोधित करे । इच्छा होने पर सघ मेरे पश्चात्, छोटे-छोटे भिक्षु नियमो को त्याग दे ।

मेरे पश्चात् छन्न भिक्षु को ब्रह्म दण्ड करना चाहिए।'

'भन्ते ! ब्रह्मदण्ड क्या है।'

'भिक्षु ! तुम्हे चाहे जो कोई, जो कुछ कहे, किन्तु उन्हें उपदेश नही देना चाहिए। सम्भाषण नही करना चाहिए। और न उन्हे उपदेश अथवा अनुशासन करना चाहिए।'

'आनन्द !' भगवान् ने पुनः कहा –भिक्षुसंघ को एकत्रित करो।'

भिक्षुसंघ एकत्रित हुआ। भगवान् ने पूछा :

'भिक्षुओ ! धर्म के सम्बन्ध मे यदि कोई शंका हो तो प्रश्न कर लो।'

किसो ने नही प्रश्न किया।

भगवान् ने पुन: प्रश्न किया।

किसी ने प्रश्न नही किया।

भगवान् ने पुन: पूछा।

किसी ने कोई प्रश्न नही किया।

'अच्छा भिक्षुओ ! धर्म कहता हूँ :

'संस्कार व्ययधर्मा है। अप्रमाद के साथ जीवन संपादन करो।' यह तुम्हारे तथागत का अन्तिम वाक्य है।

भगवान् ने प्रथम ध्यान प्राप्त किया। प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान प्राँप्त किया। द्वितीय ध्यान से उठकर तृतीय ध्यान प्राप्त किया। तृतीय ध्यान से उठकर चतुर्थ ध्यान प्राप्त किया। आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त किया। विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त किया। आकिंचन्यायतन को प्राप्त किया। नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त किया। संज्ञा वेदयित निरोध को प्राप्त किया।

'भन्ते ! अनिरुद्ध !!' आनन्द ने अनिरुद्ध से कहा : 'भगवान् परिनिवृत्त हो गये।'

'हाँ आवुस आनन्द।' अनिरुद्ध ने कहा : 'भगवान् परिनिवृत्त हुए। सज्ञा वेदयित निरोध को प्राप्त हुए।

तत्पश्चात् भगवान् सज्ञा वेदयित निरोध समापत्ति से उठकर, नैव-सज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हुए। द्वितीय ध्यान से उठकर प्रथम ध्यान

को प्राप्त हुए। चतुर्थ ध्यान से उठने के अनन्तर भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

भगवान् के परिनिर्वाण होते ही भीषण भूकम्प हुआ। सहमति ब्रह्मा ने कहा—'जगत् के प्राणी मात्र जीवन से गिरेंगे। लोक मे अद्वितीय पुरुष ।बल प्राप्त, तथागत, शास्ता बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए है।'

'ओः!' देवेन्द्र शक्र ने कहा . 'उत्पन्न और नष्ट होने वाले! जो उत्पन्न होकर नष्ट होते है। उनका शान्ति ही सुख है।'

आयुष्मान् अनिरुद्ध ने कहा :

'स्थिर चित्त तथागत को श्वास कुश्वास नही रहा। शान्ति निमित्त मुनि ने निष्कम्प होकर काल किया।'

आयुष्मान् आनन्द ने कहा :

'सर्वश्रेष्ठ आकार से युक्त तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए, इस समय भीषणता हुई। उस समय रोमांच हुआ।'

अवीत राग भिक्षु क्रन्दन करने लगे। विलाप ध्वनि से स्थान भर गया। वे एक दूसरे का बाहु पकड़कर रोते थे। कटे वृक्ष की तरह गिरते थे। भूमि पर विकल होकर लोटते थे।

किन्तु वीतराग भिक्षु शान्त थे। वे कहते थे—'संस्कार असत्य है। वह कहाँ प्राप्त होगा?'

लोगो को घोर विलाप करते देखकर आयुष्मान् अनिरुद्ध ने कहा :

'आवुसो! शोक करना व्यर्थ है। रोना व्यर्थ है। तुम्हे स्मरण नही है–भगवान् ने पहले ही कहा था–प्रियो से वियोग होना अवश्यंभावी है।'

भगवान् के महापरिनिर्वाण आसन की शय्या के पास, शेष रात्रि अनिरुद्ध तथा आनन्द ने धर्म कथा मे व्यतीत किया। वह दिन था वैशाख पूर्णिमा का।

× × ×

प्रात.काल अनिरुद्ध ने आनन्द से कहा :

'आवुस! कुशीनगर के मल्लो से कहना चाहिए—'वाशिष्ठो! भगवान् परिनिवृत्त हुए है। जिसका आप काल समझे करे।'

'अच्छा भन्ते।'

आनन्द ने चीवर उठाया। पात्र उठाया। एकाकी कुशीनगर मे प्रविष्ट हुए। मल्लगण सस्थागार मे किसी कार्यवश एकत्रित हुए थे। आनन्द ने वहाँ पहुँचकर कहा.

'वाशिष्ठो! भगवान् परिनिवृत्त हुए। जिसका तुम काल समझो करो।'

सस्थागार दु.खी हुई। रुदन ध्वनि उठी। विलाप सुनायी पडा। शोक-चीत्कार उठा। केश बिखरे। वस्त्र अस्त-व्यस्त हुए। भूमि पर कोई लेट कर रोया। कोई एक दूसरे को पकड़कर रोया।

शोक कम होते ही कुशीनगर के मल्लो ने पुरुषों को आज्ञा दी.

'भणे! कुशीनगर मे प्राप्त सभी गंध, माल्य तथा वाद्य एकत्रित किए जाएँ।'

× × ×

भगवान् महानिर्वाण मुद्रा मे थे। उनका शरीर चीवर वेष्ठित था। पद एक के ऊपर एक थे। दाहिने हाथ की हथेली पर दाहिना गाल था। दाहिने करवट भगवान् लेटे थे। प्रतीत होता था। वह शयन कर रहे थे।

मल्ल समुदाय आया। गन्ध माला से भगवान् का सत्कार किया। सभी प्रकार के वाद्यो के साथ आये। नृत्य, गीत, वाद्य माला, गन्ध से सत्कार करने लगे। प्रात:काल का विलाप करने वाला मल्ल समुदाय शव के सम्मुख गीत, वाद्य-नृत्य मे रम गया।

भगवान् का सत्कार होता रहा। मल्लो ने नवीन वस्त्र का वितान बनवाया। मण्डप बनाया जाने लगा। इस प्रकार प्रथम दिन योजना मे बीत गया। मल्लो ने निश्चय किया। विकाल हो गया था। शरीर दाह कल किया जाय।

दूसरा दिन भी विविध आयोजनों मे बीत गया। दाह-सस्कार नही हुआ। इसी प्रकार तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठाँ दिन नृत्य, गान, उत्सव मे बीतता चला गया।

सातवें दिन कुशीनगर के मल्लो ने निश्चय किया। भगवान् का शरीर नगर के दक्षिण से ले जाया जाय। बाहर ही बाहर नगर के दक्षिण शव-दाह किया जाय।

मल्लो के आठ प्रमुखो ने दिव्य स्नान किया। नवीन वस्त्र धारण किया। भगवान् के शरीर को उठाना चाहा। परन्तु शरीर उठा नही। उन लोगो ने आयुष्मान् अनिरुद्ध से पूछा :

'भन्ते ! क्या कारण है। हम शरीर उठा नही पा रहे है ?'

'वाशिष्ठो ! आपका अभिप्राय दूसरा है। देवताओ का दूसरा है।'

'भन्ते ! देवताओ का अभिप्राय क्या है ?'

'वाशिष्ठो ! तुम्हारा अभिप्राय है। नृत्य, वाद्य, संगीत के साथ भगवान् का शरीर नगर के दक्षिण से ले जाकर, बाहर ही बाहर नगर के दक्षिण मे दाह-कर्म करे।'

'हाँ, और— ?'

'किन्तु, देवताओ का अभिप्राय दूसरा है।'

'वह क्या ?'

'देवता चाहते हैं। भगवान् के शरीर का दिव्य नृत्य से सत्कार करते हुए नगर के उत्तर ले जाकर, उत्तर द्वार से नगर मे प्रवेश कर, नगर के मध्य से चलते, नगर के पूर्व द्वार से निकल कर, नगर के पूर्व, जहाँ मुकुट बन्ध[1] मल्लो का चैत्य है, वहाँ शरीर दाह किया जाय।'

'भन्ते ! देवताओं के अभिप्राय के अनुसार कार्य होगा।' मल्लों ने कहा।

उस दिन कुशी नगर में जंघा पर्यन्त मन्दार दिव्य पुष्प की वर्षा हुई थी। भगवान् के शरीर को दिव्य तथा मनुष्य नृत्य से सत्कार करते हुए, नगर के उत्तर से मुकुटबंध चैत्य पर ले गये। वहाँ भगवान् का शरीर रखा गया।

'भन्ते ! मल्लो ने आनन्द से पूछा : तथागत के शरीर का दाह-संस्कार कैसे किया जाय ?'

---

(१) मुकुटबन्ध चैत्य कुशीनगर के पूर्व दिशा मे स्थित था। यहाँ मल्ल राजाओ का अभिषेक कर उनके मूर्धा पर मुकुट बाँधा जाता था इसलिए इसका नाम मुकुट बन्ध चैत्य पड़ा था। वर्तमान रामाभार सरोवर के पश्चिम तट स्थित एक विशाल स्तूप के ध्वन्सावशेष से इसे सम्बन्धित किया जाता है। माथा कुँअर से एक मली दूर स्थित है। मै यहाँ जा चुका हूँ।

'जिस प्रकार चक्रवर्ती राजाओ के शरीर का किया जाता है।'

'किस प्रकार भन्ते।'

'सुनो!' आनन्द ने तथागत के कहे हुए विधान को बता दिया।

मल्लों ने पुरुषों को आदेश दिया .

'भणे! मल्लो! धुनी रुई लाओ।'

भगवान् का शरीर यथाविधि बतायी प्रक्रिया अनुसार द्रोणी रखकर सुगन्धित काष्ठ की चिता पर रखा गया।

महा काश्यप पाँच सौ भिक्षुओ के साथ पावा और कुशीनगर के मा मध्य गमनशील थे। वह मार्ग से हट कर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। उ समय उन्होने एक आजीवक देखा। वह मन्दार पुष्प लिए कुशीनगर पावा जा रहा था। उससे महाकाश्यप ने पूछा .

'आजीवक! मालूम है हमारे शास्ता कहाँ हैं?'

'आवुस! तथागत परिनिवृत्त हुए।'

सुनते ही भिक्षु सघ स्तब्ध हो गया। आजीवक ने चलते हुए कहा:

'मैने यह पुष्प कुशीनगर मे पाया है।'

'कब हुए—आजीवक!' काश्यप आजीवक के समीप आ गये। उ पकड कर पूछा।

'आज सात दिन हो गया।'

भिक्षु रोने लगे। विकल हुए। एक दूसरे से लिपट कर रोने लगे उनकी यह अवस्था देखकर नव प्रव्रजित एक वृद्ध भिक्षु सुभद्र[1] जिसक आयु १२० वर्ष थी उन्हे उद्बोधित किया:

आवुसो! शोक मत कीजिए। विलाप मत कीजिए। हम सुमुक्त ह गये है। उस महाश्रमण से हम परेशान रहा करते थे। सर्वदा क्या करन चाहिए, क्या नही करना चाहिए। नित्य की इन कठिनाइयो से दूर ह गये। अपनी इच्छानुसार हम विहार करेंगे। अपनी इच्छानुसार का करेंगे। जिसको इच्छा नही होगी उसे नही करेंगे।'

(१) सुभद्र यह आतुपा का एक नापित अर्थात् नाई था। भगवान् के महा परिनिर्वाण पर सुभद्र की आलोचना महाकाश्यप ने सुनी थी। उसी से प्रेरित होकर प्रथम बुद्धपरिषद् बुलाने का निश्चय किया था।

सुभद्र की असमय की यह बात लोगों को रुची नहीं। महाकाश्यप ने भिक्षुओ को आमन्त्रित किया।

'भिक्षुओ! भगवान् ने पहले ही कह दिया था। जो जन्म लेता है उसका अन्त होता है। अन्त न हो यह कल्पना सम्भव नही है।'

× × ×

चार प्रमुख मल्लो ने स्नान किया। नवीन वस्त्र धारण किया। चिता-स्थान लीपना चाहते थे। किन्तु लीप नही पा रहे थे। उन्होने अनिरुद्ध से पूछा :

'भन्ते! अनिरुद्ध!! क्या कारण है। हम लीप नही पा रहे है?'

'वाशिष्ठो! देवताओ का दूसरा अभिप्राय है।'

'क्या अभिप्राय है?'

'वाशिष्ठो! महाकाश्यप भिक्षुओं के साथ पावा और कुशीनगर के मार्ग मे हैं। यह चिता उस समय तक नही प्रज्वलित होगी, जब तक महाकाश्यप यहाँ नही आ जाते।'

'भन्ते! देवताओ के अभिप्राय अनुसार कार्य किया जाय।'

× × ×

महाकाश्यप भगवान् की चिता के पास भिक्षुसघ के साथ पहुँचे। चीवर कन्धा पर रखा। अंजलिबद्ध चिता की तीन बार परिक्रमा की। भगवान् का चरण खोला। चरण पर मस्तक रख कर वन्दना की। उन पॉच सौ भिक्षुओ ने भी एक कन्धे पर चीवर रखा। चिता की तीन बार परिक्रमा की। भगवान् के चरणो पर मस्तक रखकर वन्दना की।

उनकी वन्दना समाप्त होते ही चिता स्वयं जलने लगी। शरीर पूरा जल गया। केवल अस्थियाँ रह गयी।

चिता शान्त करने के लिए जल की आवश्यकता नही पडी। मेघ आकाश मे आ गये। वर्षा जल से चिता शान्त हुई। मल्लो की परम्परा के अनुसार गन्ध मिश्रित जल से चिता शीतल की गयी।

अस्थि चयन कर मल्लो ने भगवान् के धातु-कलश को अपने सस्था-

गार में रखा। सोत्साह नृत्य, वाद्य, संगीत, गन्ध, पुष्प से सत्कार किया। गुरुकार किया। पूजा की।

× × ×

मगधराज अजातशत्रु ने सुना। भगवान् परिनिवृत्त हुए थे। उन्होंने अपना दूत मल्लो के पास भेजा। दूत ने राजा का वचन सुनाया :

'भगवान् क्षत्रिय थे। मै भी क्षत्रिय हूँ। भगवान् की धातु में मेरे भी अधिकार हैं। अस्थि पर स्तूप निर्माण करूँगा। पूजा करूँगा।'

वैशाली के लिच्छवियो ने सुना। उन्होंने अस्थि माँगी।

कपिलवस्तु के शाक्यो ने सुना! उन्होंने दूत भेजा –'भगवान् हमारी जाति के हैं। हमारा भी अधिकार है।'

अल्लकप्प के वुलियों ने सुना। दूत भेजा –'हमारा अधिकार है। मिलना चाहिए।'

रामग्राम के कोलियो ने सुना। उन्होंने दूत भेजा –'अस्थि पर हमारा अधिकार है। हमारा भाग मिलना चाहिए।'

वेठ द्वीप (विष्णु द्वीप) के ब्राह्मणों ने सुना। उन्होने दूत भेजा – 'भगवान् क्षत्रिय थे। हम ब्राह्मण है। हमे भी अस्थि का भाग मिलना चाहिए।'

पावा के मल्लों ने सुना। उन्होने भी दूत भेजा –'हमे अस्थि का भाग मिलना चाहिए।'

कुशीनगर के मल्लों ने उन संघो तथा गणो से कहा –'भगवान् हमारे ग्राम मे परिनिवृत्त हुए हैं। हम अस्थियो का भाग नही देगे।'

द्रोण ब्राह्मण ने मल्लो को समझाया :

'यदि आप लोग मेरी बात सुने तो मैं कुछ निवेदन करूँ।'

'सुनें–इस ब्राह्मण की बात सुने।' मल्लो मे आवाज़ उठी।

'बात सुनने में क्या आपत्ति है।' वृद्धो ने कहा।

'हाँ–कहो ब्राह्मण!'

'तथागत क्षान्तिवादी (क्षमाशील) थे।'

'हाँ, यह सत्य है।'

'क्या क्षान्तिवादी के अस्थि विभाजन मे विवाद होगा।'

'विवाद नही होना चाहिए।' मल्लो ने स्वीकार किया।

'ठीक कहते है।'

'तो क्या किया जाय ?' मल्लो ने प्रश्न किया।

'भणे!' द्रोण ने कहा–'आप अस्थियो को आठ भागो मे विभाजित कीजिये। उन पर दिशाओ मे आठ स्तूप का निर्माण हो सकेगा। वुद्ध स्तूप देखकर बहुत लोग प्रसन्न होगे।'

'ठीक कहा।'

'ब्राह्मण! आप ही उन्हे समान भागो मे विभाजित कर दीजिए।'

'अच्छा भो!'

'यदि अस्थि रखे इस खाली तुम्ब को दे तो मै इस पर कुम्भ का स्तूप बनाऊँगा। पूजा करूँगा।' द्रोण ने निवेदन किया।

मल्लो ने सहर्ष तुम्ब द्रोण[1] को दे दिया।

पिप्पली[2] वन के मोरियो[3] ने सुना। उन्होने सन्देशवाहक भेजे। तथागत क्षत्रिय थे। हम भी क्षत्रिय है। हमे भाग मिलना चाहिए।

---

(१) द्रोण यह ब्राह्मण थे। सर्व प्रथम द्रोण ने भगवान् से भेट उकत्थ तथा सेतव्य के वीच किया था। तत्पश्चात् भगवान् के चरण चिह्न का अनुसरण करते भगवान् जहाँ एक वृक्ष के नीचे वैठे थे आये। वहाँ भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया। द्रोण एक शिक्षक थे। उनकी प्रतिष्ठा थी। उनके अनेक शिष्य थे। भगवान् का उपदेश सुनकर वह अनागामी हो गये। उन्होने भगवान् के सम्वन्ध मे द्रोण गज्जित काव्य की रचना की थी।

(२) पिप्पली वन मोरिय लोगो की राजधानी थी। एक मत है कि युआङ चुआङ ने जो न्यग्रोध वन देखा था वह पिप्पली वन था। इससे पूर्वोत्तर चलकर चीनी यात्री कुशीनगर पहुँचा था। कारलाइल का मत है कि यह स्थान आधुनिक उपधौली का डीह है। यह गोरखपुर से चौदह मील दूर दक्षिण पूर्व गुर्रा नदी के तटपर है। मोरिय ने जिस अंगार स्तूप को वनाया था छन्दक के लौटाये जाने के स्थान से चार योजन पूर्व तथा कुशीनारा से वारह योजन पश्चिम में देखा था। वर्तमान पिपरहवा ग्राम में खुदाई हुई थी। वह लुम्बिनी से १२ मील दक्षिण पश्चिम तथा तिलौरा कोट कपिलवस्तु

मल्लो ने कहा—'भगवान् का शरीर धातु विभाजित हो चुका है। यदि इच्छा हो तो अंगार (कोयला) ले जाओ। मोरियो ने कोयला ले लिया।'

भगवान् के धातु, तुम्ब तथा कोयला पर दस स्तूपों का निर्माण हुआ। अजातशत्रु ने राजगृह में स्तूप निर्माण करवाया। वैशाली मे लिच्छवियो ने स्तूप वनवाया। कपिलवस्तु के शाक्यो ने स्तूप बनवाया। अल्लकप्प के बुलियो ने स्तूप बनवाया। रामग्राम के कोलियों ने स्तूप बनवाया।

से दस मील दक्षिण पूर्व में है। यहाँ के अंग्रेज जमीदार श्री पीपी ने खनन कार्य कराया था। वहाँ से वहुमूल्य सामग्री निकली थी। ब्राह्मी लिपि मे एक शिलालेख, एक घडा तथा उसपर सुवर्ण मछली का ढक्कन मिला था। पिपरहवा को कुछ लोग नया कपिलवस्तु और कुछ पिप्पली वन मानते है। इस पर विशेप अनुसन्धान की आवश्यकता है। अभी किसी स्थान के विपय में निर्णय देना कठिन है।

(३) मोरिय . एक मत मोरिय को मौर्य मानता है। इनकी जाति क्षत्रिय थी। दूसरा मत है कि मोरिय शाक्यो की एक शाखा थी। विडूडभ के भय के कारण हिमालय की ओर चले गये थे। वहाँ पिप्पली वन मे नगर आवाद किया। अतएव उस स्थान का नाम पिप्पली वन पड गया था। तीसरा मत है कि जहाँ मोरिय रहते थे वहाँ मोर बहुत रहा करते थे। मोरो की अधिकता के कारण उनका नाम मोरिय पड गया था। चौथा मत है कि उनके भवन मोर के समान नीले रंग के कण्ठ के समान होते थे। अतएव उनके प्रदेश तथा उनका नाम मोरिय पड गया। पाँचवाँ मत है कि मोरिय लोग मौर्य सम्राटो के पूर्वज थे। सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य इस मत के अनुसार मोरिय राजा की प्रधान महिषी का पुत्र था। महावश की टीका के अनुसार अशोक की माता धम्मा मोरिय राजकुमारी थी। मोरियो का भूखण्ड कोलियो के उत्तर पूर्व तथा मल्ल राज के दक्षिण पश्चिम में स्थित था। दक्षिण मे मगधराज था।

(१) बुलिय महापरिनिर्वाण सुत्त मे सात गणराज्यो का उल्लेख है। उसमें एक बुलिय गणतन्त्र भी है। इस राज्य का विस्तार केवल दस योजन था। कुछ भावुक महानुभावो से इसे बलिया जिला माना है। यह सगत नही प्रतीत होता। इस पर इतनी सामग्री नही मिल सकी है कि इस स्थान का निश्चय किया जा सके।

वेठ द्वीप[1] के ब्राह्मणो ने स्तूप वनवाया। पावा[2] के मल्लो ने स्तूप बनवाया। कुशीनगर के मल्लों ने स्तूप बनवाया। इस प्रकार भगवान् के आठ शरीर स्तूपो का निर्माण हुआ। नवाँ स्तूप द्रोण ब्राह्मण ने तुम्ब पर बनाया। उसका नाम कुम्भ स्तूप हुआ। दसवाँ स्तूप पिप्पली वन मे मोरियो ने कोयला पर बनवाया। उसका नाम अंगार स्तूप हुआ।

चक्षुष्मान् का शरीर-अस्थि आठ द्रोण था। सात द्रोण जम्बू द्वीप में पूजित होते है। पुरुषोत्तम का एक द्रोण रामग्राम मे नागो द्वारा पूजित होता है। और एक गन्धार मे पूजा जाता है। एक को कलिंगराज और एक को पूजा नागराज करते है।

●

---

(१) वेठद्वीप · वेठद्वीप में वने कुम्भ स्तूप को कुम्भ चैत्य की भी संज्ञा दी गयी है। युआन चुआङ ने महासार अर्थात् वर्तमान सार आरा से छ मील दक्षिण से एक सौ ली दक्षिण पूर्व वताया है। एक मत है कि बेतिया नगर प्राचीन वेठदीप है। अभी कुछ भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता।

(२) पावा मल्लो की एक शाखा की राजधानी थी। भोगनगर से भगवान् वहाँ पधारे थे। वहाँ से कुशीनगर के लिये प्रस्थान किये थे। पावा से कुशीनगर तीन गव्यूती अर्थात् ६ मील दूर था। पावा के समीप चुन्द कर्मार पुत्र का आम्रवन था। यहाँ अजक पालक किंवा अजक पालिय नामक चैत्य मे निवास किया था। यहाँ अजकलाय यक्ष को अजवलि दी जाती थी। स्थविर खण्ड सुमन की जन्म भूमि पावा थी।

पावा निर्गन्थो अर्थात् निगण्ठो का भी केन्द्र था। यहाँ जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ था। जनरल कनिंघम गोरखपुर के पडरौना निगम को पावा मानते हैं। श्री कारलाइल ने कुसीनारा से दस मिल दक्षिण पूर्व फाजिल नगर किंवा फाजिलपुर के टीला और मुदवतपा सठियाव डीह को पावा माना है। सुमगल विलासिनी में पावा कुसीनारा के मध्य तीन गव्यूती की दूरी वतायी गयी है। जैन धर्मानुयायी भगवान् महावीर का निर्वाण स्थान विहार शरीफ से सात मील दक्षिण पूर्व दिशा स्थित पावा नगर मानते हैं। एक मत है कि कुशीनगर से वारह मील दूरस्थ छोटी लाइन रामकोला स्टेशन के समीप वउअर ग्राम मानते है। कुछ विद्वान् पावा तथा कुशीनगर को एक ही मानते है। इस पर विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता है।

आधार ग्रन्थ

महापरिनिर्वाण सुत्त
धम्मपद १८ १२

भगवान् बुद्ध की महान् कृपा एवं आशीर्वाद से रघुनाथ सिंह सुत स्वर्गीय बटुकनाथ सिंह मुहल्ला घोहट्टा. काशी क्षेत्र, वाराणसी नगर निवासी ने भगवान् के साथ अग्र श्रावक-श्राविका, उपासक-उपासिकाओ का पवित्र चरित्र हिन्दी भाषा में लोक वृद्धि वर्द्धनार्थ, मगलवार पौष सत्तरह, शक सवत् १८९० तदनुसार सात जनवरी सन् १९६९ ई० विक्रम सवत २०२५ माघ वदी ६ को लिपि वद्ध किया---इति—धन्यवाद।

नोट १ हिरण्यवती नदी कुशीनगर के समीप है। इसे कुसुम्ही नाला भी कहते है।

२ सैथवार जाति है। वाशिष्ठ गोत्र है।

नामानुक्रमणिका

आ

ख

ग

घ

च

छ

ज

स